ओ३म्

सामवेद

(आध्यात्मिक मुनिभाष्य)

भाष्यकार :
स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

प्रकाशक :
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज०)

प्रकाशक : **वैदिक पुस्तकालय**
दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर (राजस्थान)

संस्करण : **विक्रम संवत् २०६१**
ईसवीसन् २००४

(दो खण्डों का सम्मिलित मूल्य)
मूल्य : ४००.०० रुपये

शब्द संयोजक : **भगवती लेज़र प्रिंट्स**
नई दिल्ली–६५

मुद्रक : **राधाप्रेस, २४६५, मेन रोड कैलाशनगर,**
दिल्ली–३१ दूर० ०११–२२०८३१०७

ओ३म्

प्रकाशकीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने परोपकारिणी सभा की स्थापना इसलिए की थी कि उनके शरीरान्त हो जाने पर भी उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया वेदादि आर्षग्रन्थों का प्रचार-प्रसार होता रहे। उन्होंने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परमधर्म बतलाया है। यह सभा उनके इसी आदेश का पालन करती हुई वेदादि शास्त्रों के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार में सतत प्रयत्नशील है। इसीलिए स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक कृत सामवेद का यह आध्यात्मिक भाष्य पुनः प्रकाशित करके लम्बे समय से चले आ रहे अभाव की पूर्ति की गई है।

इससे पूर्व गुरुकुल काँगड़ी में रहते हुए स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने निज व्यय से इस ग्रन्थ का प्रकाशन करवाया था। उसमें पदपाठ और अन्वय नहीं था। प्रूफ़ आदि की अशुद्धियाँ भी बहुत थीं। अब श्रीमती परोपकारिणी सभा के अनुकूल श्री विरजानन्द दैवकरणि ने इस ग्रन्थ में पदपाठ और अन्वय जोड़ कर इसे महर्षि दयानन्द सरस्वती की भाष्य पद्धति का रूप दे दिया है। मन्त्रान्वेषण की सुविधा के लिये मन्त्रों के प्रारम्भ में मन्त्र संख्या भी जोड़ दी गई हैं।

धर्मवीर
मन्त्री—परोपकारिणी सभा
अजमेर

— सम्मतियाँ —

(१) पण्डित प्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार विद्यामार्तण्ड, भूतपूर्व वेदमहोपाध्याय विश्वविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी

"श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी आर्य जगत् में एक प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हैं, जिन्होंने कि वेदानुसन्धान को अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बनाया हुआ है। आपने अपनी लेखन कला द्वारा वैदिक साहित्य को सुन्दर रूप में पल्लवित तथा पुष्पित किया है। आपने सामवेद पर अध्यात्मपरक हिन्दी भाष्य लिखा है। इस हिन्दी भाष्य के कई कठिन मन्त्रों की व्याख्या स्वामीजी के मुख से मैंने सुनी है। इन पर सायणाचार्य ने तथा वर्तमान के वैदिक विद्वानों ने जो अर्थ किये हैं उनकी अयथार्थता को दर्शाकर, स्वामीजी ने प्रमाणों तथा तर्क के आधार पर, इन मन्त्रों के यथार्थ भावों पर अपूर्व प्रकाश डाला है। "**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे**" इस वैशेषिक सूत्र का अनुसरण करते हुए, श्री स्वामीजी ने जो बुद्धिगम्य अर्थ दर्शाए हैं वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं। स्वामीजी के भाष्य से सामवेद के मन्त्रों के कई गूढ़ स्थल सुस्पष्ट हो जायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"

विश्वनाथ विद्यालङ्कार, विद्यामार्तण्ड

२० अप्रैल, १९६९ ई० — काँवली रोड, देहरादून

(२) श्री डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री, एम०ए०, डी० फिल भूतपूर्व प्राचार्य उपकुलपति, वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय

आदरणीय श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक द्वारा निर्मित सामवेद-आध्यात्मिक मुनिभाष्य को मैंने यत्र तत्र ध्यान से देखा, देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री स्वामीजी वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, उन्होंने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिख कर वैदिक साहित्य के भण्डार को बढ़ाया है, उनका सामवेद का आध्यात्मिक भाष्य भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मैं उसका स्वागत करता हूँ।

—मङ्गलदेव शास्त्री

३० सितम्बर, १९७० — २४/६, शक्तिनगर, देहली-७

(३) श्री आचार्य प्रियव्रत की सम्मति

श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी का सामवेद भाष्य ऋषि शैली पर आध्यात्मिक दृष्टि से सफल भाष्य है, सामवेद उपासना काण्ड है, सायण तथा अन्य भाष्यकार इस दृष्टि को निभा न सके। स्वामीजी ने सप्रमाण निभाया। दुरूह मन्त्रों का स्पष्ट व्याख्यान किया। स्वामीजी की प्रतिभा और विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वक्तव्य

इस ''सामवेद—आध्यात्मिक मुनिभाष्य'' उत्तरार्चिक को प्रतिदिन चौदह घण्टे लिखने से मूत्र बन्द हो गया था। ऑपरेशन के लिये बहुत महंगे पन्त हस्पताल के नरसिंग होम में इर्विन हस्पताल से डॉक्टर ले गए, धन तो बहुत व्यय हुआ सो हुआ परन्तु सर्जन डॉक्टर ने ऑपरेशन में भय बताकर आध घण्टे पूर्व ऑपरेशन स्थगित कर दिया, जयपुर के बने तीन इंजेक्शन लम्बे सूए जैसे गुदा के मार्ग से लगाए गए। सवा मास तक इंजेक्शनों की पीड़ा रही। डेढ़ मास पश्चात् मूत्र चालू हो जाने पर हस्पताल से मुक्त हुआ। आर्यसमाज में ऐसे संन्यासी का रोगी हो जाना दुःखदायक है जिसने कि विवाह न किया हो, कोई अपना गुरुकुल या आश्रम न बनाया हो, ऐसी स्थिति में अपने पुत्र पौत्र या अपने गुरुकुल या आश्रम के शिष्य और सेवक काम आते हैं। लगभग डेढ मास तक हस्पताल में पड़ा रहा, परन्तु दिल्ली, नई दिल्ली जैसे स्थान में दो सौ आर्यसमाजें होने पर भी आर्यसमाज के नाते कोई भी सज्जन सेवा के लिये तो क्या पूछने मिलने तक न आया। साथ में पुस्तक की प्रेस कापी लेखन कर बनवाना, छपवाना भी अपने ही व्यय से करना पड़ा, बिना अपना पारिश्रमिक धन या फल लिये भी पुस्तक प्रकाशक छापने को तैयार नहीं। उत्तर आता है कि हम वेद की पुस्तक नहीं छपा सकते, सभा संस्थाओं में उदासीनता है, स्वयं छपवाना पड़ता है। मूल्य भी प्रेस लागत या पुस्तक विक्रेता कमीशन लगाकर रखने पर भी वेद स्वाध्याय के प्रति लोगों की रुचि न होने से पुस्तकें अधिकांश में पड़ी रहती हैं। अनेक महानुभावों ने प्रेरणा की थी कि ऋषि दयानन्द से बचे सामवेद और अथर्ववेद पर भाष्य कर दो, सो सामवेद का भाष्य किया, अब अथर्ववेद का भाष्य मेरे द्वारा करना असम्भव सा ही है, एक तो मैं अभी पूर्ण रोगमुक्त नहीं हूँ। हाथ लिखने में असमर्थ और आँखों में सफेद मोतिया आ गया है, दूसरे अपने पास से धन व्यय लेखन और पुस्तक प्रकाशन पर न कर सकूँगा॥

—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

प्राक्कथन

ऋग्-यजुः-साम-अथर्व नाम से चार वेद हैं, इनमें साम का स्वरूप निम्न प्रकार है—

१. 'साम' शब्द ''सातिभ्यां मनिन्मणिनौ'' (उणादि० ४.१५३) सूत्रानुसार ''षो अन्तकर्मणि'' (दिवादि०) धातु से बना है। 'कर्मणोऽन्तः-अन्तकर्म' कर्म का अन्त 'अन्तकर्म'[१] कहलाता है। 'स्यति कर्मान्तमेति'—कर्मान्तस्वरूप साम हुआ। ऐसा निरुक्त में पक्षान्तर से कहा है ''स्यतेर्वा'' (निरु० ७.१२)।

२. ज्ञान, कर्म, उपासना वेदत्रयी—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के विषय हैं। इससे सामवेद उपासनावेद है, यही अन्तकर्म—कर्मान्तस्वरूप उपासना है साम है। ''**देवाः सोमं दिवः साम्ना समानयन् तत्साम्नः सामत्वम्**'' (तै० सं० २.२.८.७) मुमुक्षु महानुभाव साम अर्थात् उपासना द्वारा द्योतनात्मक मोक्षधाम से सोम—आनन्दरसरूप परमात्मा को हृदय में ले आए। शब्द तथा अर्थ की दृष्टि से 'सामन्'—साम है 'समानयन्' में (समान्-अयन्) पुनः 'अयन्' क्रियारूप को पृथक् कर देने से 'समान्' के अन्तिम दीर्घ आकार को आदि में 'स' के साथ 'सा' रूप में देखने से 'सामन्-साम' हो गया, यह अल्पभेद से शब्दसाम्य में अर्थप्रधान निरुक्ति है।

३. निरुक्त में पक्षान्तर से ''असु क्षेपणे'' (दिवादि०) से 'साम' शब्द बनाया है ''अस्यते....'' (निरु० ७.१२) 'अस्तमृचि' ऋचा में ऋग्वेद के मन्त्र में क्षिप्त रखने से साम है। सामवेदीय उपनिषद् में कहा भी है ''ऋच्यध्यूढं साम गीयते'' (छान्दो० १.६.१) ऋचा में आश्रित साम गाया जाता है। 'सा-ऋक् मन्त्र' और 'अम-साम मन्त्र' दोनों मिलकर 'साम'। ''प्राणो वा अमो वाक् सा तत् साम'' (जै० उ० ४.२३.३) वाक्—जप 'सा' है, प्राण—अर्थसहित जपानुभव 'अम' है ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'' (योगदर्शन १.२८) ओ३म् का जप और अर्थानुभव ही साम है।

४. पक्षान्तर से निरुक्त में ''**समं मेने साम**'' (निरु० ७.१२) सम—समान अर्थात् ईश्वर के गुणकर्म के समान अपने गुणकर्मों को मैं अनुभव करूँ ऐसा उपास्य के गुणकर्मों का उपासक में आ जाना भी साम है ''**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि**'' (यजु० १९.९) परमात्मन् तू तेजःस्वरूप है मुझमें तेज धारण करा। तथा ''**यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः**'' (ऋ० ८.४४.२३) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! जबकि मैं तू हो जाऊँ और तू मैं होजा तो तेरे आशासन—आदेश और हितकामनाएँ इस जीवन में सत्य हो जावें पूरी हो

---

१. ''राजदन्तादिषु परम्'' (अष्टा० २.२.३१)

जावें। लोहे का गोला जैसे अग्नि के प्रखरताप से अग्नि जैसा लाल या प्रकाशमान हो जाता है ऐसा ही 'समं मेने' साम है।

५. यद्यपि चारों वेदों का मुख्य प्रतिपाद्यत्व परमात्मा में स्वामी दयानन्द ने प्रदर्शित किया है जैसा कि कठोपनिषद् में भी घोषित किया है **''सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति....तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्''** (कठो० १.२.१५) सारे वेद 'ओ३म्'—ब्रह्म परमात्मा को कहते हैं लक्षित करते हैं, और फिर सामवेद का लक्ष्य तो परमात्मा ही है, कहा भी है **''ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति''** (निरु० १३.७) अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों से शंसन करते हैं यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन—यज्ञ करते हैं और सामवेद के मन्त्रों से स्तवन—स्तुति करते हैं। साम के गाने का वर्णन आता है **''उभे वाचौ वदति सामगा इव। गायत्रं त्रैष्टुभं चानुराजति। उद्गातेव शकुने साम गायति।''** (ऋग्वेद २.४३.१-२) इन वचनों में सामगान लक्षित है। साम गाना है, प्रत्येक गाने को साम नहीं कहते और न यह कि साममन्त्र केवल गाना ही है अपितु परमात्मा की स्तुतिरूप गाना साम है, जैसे लोक में 'भजन बोलो या भजन गाओ' कथन में 'भजन' गाने को कहते हैं परन्तु प्रत्येक गाने को भजन नहीं कहते हैं, अपितु ईश्वर स्तुति जिसमें हो ऐसे गाने का नाम भजन लक्षित है। 'भजन-भक्ति' एकार्थक शब्द है। यही बात छान्दोग्योपनिषद् में कही है **''ऋच्यध्यूढं साम गीयते''** (छान्दो० १.६.१) ऋच्—**स्तुति में अधिष्ठित सामगान** कहलाता है **''ऋच् स्तुतौ''** (तुदादि०) स्तुतिशून्य गाना साम लक्षित नहीं अपितु स्तुति ही गान—परमात्मगान साम है। अतः साममन्त्रों में परमात्मा से भिन्न वस्तुओं का गुणवर्णन या यजन याग—होम प्रकार को देखना उनसे यज्ञ हवन करना सामवेद के लक्ष्य से बाहिर की बात है अन्यथा व्यवहार है। केवल परमात्मा की चर्चा करना सामवेद का ध्येय है अतएव सामवेद का महत्त्व अधिक है इस बात को ऋग्वेद में स्पष्ट किया है **''यूयमृषिमवथ सामविप्रम्''** (ऋ० ५.५४.१४) अर्थात् हे लोगो! तुम सामवेद के ज्ञाता ऋषि की रक्षा करो, उससे प्रीति करो, उसे तृप्त करो, उससे श्रवण करो, उसे अपना स्वामी— अध्यक्ष बनाओ **''अव रक्षणप्रीतितृप्तिश्रवणस्वाम्यर्थ.....''** (भ्वादि०) स्वामी दयानन्द ने भी सामवेद को उपासना का वेद बतलाया है। ज्ञान, कर्म, उपासना वेदत्रयी का विषय कहा है ऋग्वेद में ज्ञानकाण्ड, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और सामवेद में उपासनाकाण्ड कहा है। अतएव सामवेद में देवतारूप अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि नाम केवल परमात्मा के वाचक हैं, अन्य वेदों में अन्य वस्तुओं के भी नाम होने सम्भव हैं।

सामवेद पर अनेक भाष्य होते हुए इस भाष्य करने का प्रयोजन

सायणाचार्य का भाष्य प्रायः कर्मकाण्डपरक है जो सामवेद के लक्ष्य से दूर का है, अन्य आर्य विद्वानों के भाष्यों में भी सायणभाष्य का अनुसरण कर मन्त्रों के कर्मकाण्डपरक तथा अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि देवताओं वाले अर्थ भौतिक

पदार्थपरक किये हैं। किन्हीं विद्वान् ने अपने भाष्य की भूमिका में "सारे मन्त्रों का आध्यात्मिक प्रक्रिया में ही अर्थ किया गया है" यह प्रतिज्ञा करके भी तीस प्रतिशत ३०% मन्त्रों के आध्यात्मिकता से भिन्न अर्थ किये हैं, अपितु किन्हीं अन्य विद्वान्[१] ने आध्यात्मिक अर्थ करने की प्रतिज्ञा को बहुत निभाया परन्तु पाँच प्रतिशत तो अन्य अर्थ हो ही गए, तथापि उनके आध्यात्मिक अर्थों में प्रमाणशून्य शब्दव्युत्पत्ति या शब्दार्थों में भारी खेंचतान है, साथ में देवतावाचक अग्नि, इन्द्र, सोम आदि नाम जो केवल परमात्मा के ही नाम होने चाहिएँ, उन्होंने बहुत स्थानों पर भावात्मकरूप दे दिया, भाव के अन्दर न घटने वाले गुणों का अन्यथा आरोप कर दिया। उदाहरणार्थ जब इन्द्र देवता है तब वह परमात्मा और उस समय सोम का भक्तिभाव या भक्तिरस अर्थ कर देना तो ठीक है परन्तु जब सोम देवता है तब उसका अर्थ परमात्मा होना चाहिए, इन्द्र का अर्थ जीवात्मा, सोम देवता का परमात्मा अर्थ न करके वही भक्तिभाव या भक्तिरस अर्थ कर डालना उचित नहीं जिसमें कि परमात्मा के गुणों का भारी वर्णन है, यह भारी भूल है, तब दोनों में भेद क्या रहा? इन्द्र देवता परमात्मा उसके लिये सोम (भक्तिभाव) पुनः सोम देवता होने पर भी वह सोम देवता इन्द्र—परमात्मा के लिये रहा, फिर दो पर्व या काण्ड **ऐन्द्र पर्व** या काण्ड और **पवमानपर्व** या काण्ड (सोमपर्व या सोम काण्ड) अन्यथा रहे जब दोनों पर्वों—काण्डों में अदेवता सोम का अर्थ भी भक्तिभाव या भक्तिरस और देवता सोम का भी अर्थ भक्तिभाव या भक्तिरस कर दिया तब सोम के अदेवता और सोम के देवता होने में क्या भेद पड़ा केवल वाग्विनोद ही है और देवता विज्ञान के विपरीत है। अपितु अग्नि, इन्द्र, सोम आदि का अर्थ परमात्मा करके ही कृतार्थता नहीं होनी चाहिए किन्तु जीवन में घट सकने वाली विशिष्ट आध्यात्मिकता उपादेय है वह होनी चाहिए जो हमारे इस भाष्य में मिलेगी। वाक्यार्थ भी सुसङ्गत और सुबोध सरल मधुर भाषा में होगा।

हमारे इस भाष्य में औरों की अपेक्षा यह एक विशिष्टता होगी कि हमने मन्त्रार्थों में मन्त्रों के ऋषिनामों का भी उपयोग लिया है अतएव ऋषिनामों को यौगिकरूप में उपाधिवाचक समझा है, छान्दोग्योपनिषद् में कहा है वेद के विद्यार्थी को "**यदार्षेयं तमृषिर्यां देवतामभिष्टोष्यन् स्यात् तां तेवतामुपधावेद् येन च्छन्दसा स्तोष्यन् स्यात् तच्छन्दः**" (छान्दो० १.३.९-१०) मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द पर ध्यान रखते हुए वेद पढ़े। कारण कि छन्द है पाठ्य "**छन्दो भाषाधर्मः**" देवता है विषय और ऋषि है उपाधि। ऋषि यौगिक या उपाधिवाचक नाम है इसमें निरुक्त के सङ्केत हैं "**ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्**" (निरु० ३.११) स्तुतियों का कर्ता कुत्स ऋषि है, (ऋ० १०.९८) ऋषि देवापि "**देवापिः-देवानामाप्त्या**" (निरु० २.११) देवों की आप्ति करने वाला देवापि ऋषि है। इत्यादि। ऋषियों का

१. श्री भगवदाचार्य रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान्।

देवताओं या मन्त्रविषयों के साथ सम्बन्ध—उपयोक्ता उपयोज्य, ज्ञाता ज्ञेय, याचक याचनीय, उपासक उपासनीय आदि हैं, जैसा **''या ओषधीः पूर्वा जाताः''** (ऋग्वे० मण्ड० १०.९७) का देवता ओषधि, ऋषि भिषक् वैद्य है **''बृहस्पते प्रथमं वाचो.....''** (ऋ० १०.७१) का देवता ज्ञान, ऋषि बृहस्पति। **''न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं दधु....''** (ऋ० १०.११७) का देवता धनान्नदानप्रशंसा, ऋषि भिक्षुक। **''कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि''** (ऋ० ७.८६-८९) का देवता वरुण परमात्मा, ऋषि है वसिष्ठ—परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक। स्कन्द स्वामी ने भी ऋग्वेद के भाष्यप्रसङ्ग में लिखा है **''तत्रार्षदेवतयोरर्थबोधने-उपयुज्यमानत्वात्-ते दर्शयिष्येते''** ऋषि देवता मन्त्रार्थ में उपयुक्त हैं। ऋषि यौगिक उपाधि वाचक नाम है और देवताओं के साथ विशेष सम्बन्ध है मन्त्रार्थ में उपयुक्त है [1]इस विषय में विशेष देखो हमारी लिखी **''वेद में इतिहास नहीं''** या **''वैदिकवन्दन''** पुस्तक में।

हम देवतानिर्देश प्रतिमन्त्र पर नहीं करेंगे, आग्नेयपर्व में अग्नि, इन्द्रपर्व इन्द्र, पवमान पर्व में पवमान सोम हैं इनमें भिन्न देवता का निर्देश अवश्य कर देंगे। छन्दों का ढंग भी ऐसा ही होगा, जहाँ नवीन छन्द होगा उसका नाम दिया जावेगा।

सामवेद में तीन आर्चिक—ऋचासमूह हैं—पूर्वार्चिक, महानाम्न्यार्चिक, उत्तरार्चिक। इनमें विभागक्रम दो हैं शाखाभेद से, एक क्रम है 'प्रपाठक, अर्द्ध, दशति' (प्रायः दशमन्त्रगण) का द्वितीय क्रम है अध्याय, खण्ड को ही देंगे।

प्रथम कुछ अध्यायों में अङ्कस्वर सायणाचार्य के भाष्य वाले सामवेद के अनुसार दिए हैं, पश्चात् अन्त तक वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित सामवेद संहिता के अनुसार दिए हैं। यात्रादि में सायण भाष्य के उपलब्ध न होने से, अन्तर दोनों में शाखाभेद से थोड़ा ही है।

सामवेद के उत्तरार्चिक भाष्य के प्राक्कथन प्रसङ्ग में विशेष वक्तव्य यह है कि स्वामी दयानन्द ने सामवेद को उपासना का वेद बतलाया है, अतएव सामवेद आध्यात्मिक वेद होने से **''यूयमृषिमवत सामविप्रम्''** [ऋ० ५.५४.१४] ऋषियो या श्रोताओ! तुम सामवेद के ऋषि को अपना स्वामी मानो या उसकी रक्षा करो तृप्ति करो। **''ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति''** [निरु० १३.७] ऋग्वेद के मन्त्रों से शंसन करते हैं। यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन-यज्ञ करते हैं, साम के मन्त्रों से स्तवन स्तुति करते हैं। अतएव सामवेद में देवतानाम पद अग्नि, इन्द्र, सूर्य, सोम आदि केवल परमात्मा के ही हैं इससे मन्त्रों में पुनरुक्ति दोष नहीं आता तथा पूर्वार्चिक के मन्त्रों का भी उत्तरार्चिक में पुनरुक्ति दोष नहीं। आध्यात्मिक प्रसङ्ग दोषभागी नहीं पूर्वार्चिक का मन्त्र उत्तरार्चिक में आ जाने से ऋषि एवं देवता से समवेत हो जाता है। अन्य भाष्यकारों ने सामवेद के मन्त्रों में अग्नि आदि देवता नामों

---

१. कहीं-कहीं 'देवता लिङ्गोक्ताः' के समान 'लिङ्गोक्ता ऋषयः' भी मिलता है।

से जगत् के जड़-पदार्थों की जो कल्पना की वह सामवेद के लक्ष्य से बाहिरी है।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।

इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ (साम० पूर्वार्चिक अ० १.१०.७)

यहाँ सामवेद में अध्यात्मपरक अर्थ है—(इन्द्र) परमात्मन्! तू (नः) हम मनुष्यों में से (धानावन्तम्) धारणाओं वाले "डुधाञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] एकाग्रमन वाले योगी को (करम्भिणम्) प्राण का आरम्भ नियन्त्रण करने वाले प्राणायामाभ्यासी को "**प्राणो वाव कः**" [जै० उ० ४.११.२.४] (अपूपवन्तम्) प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी जन को "**इन्द्रियमपूपः**" [ऐ० २.२४] (उक्थिनम्) स्तुतिवचन[1] वाले को (प्रातःजुषस्व) प्रातःकाल या सर्वप्रथम अवसर पर प्रेमपात्र बना—बनाता है।

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।

वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥

(साम० पूर्वार्चिक अ० ६.४.२)

अन्य वेद में इस मन्त्र का अर्थ ऋतुपरक हो सकता है परन्तु यहाँ सामवेद में तो आध्यात्मिक ही अर्थ है—(वसन्तः-इत्-नु रन्त्यः) हे प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन्! मेरा प्राण "**प्राण एव वसन्तः**" [जै० २.५१], शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो प्राणायामादि द्वारा (ग्रीष्मः-इत्-नु रन्त्यः) मेरी वाक्—वाणी "**वाग्ग्रीष्मः**" [जै० २.५०], शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो स्तुति द्वारा (वर्षाणि-अनु) साथ ही मेरी आँख "**चक्षुर्वर्षाः**" [जै० २.५१], शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे दर्शन की उत्सुकता द्वारा तेरे रचे जगत् में तेरी कला को देख देख कर और तेरे पाठ पढ़ पढ़ कर (शरदः) मेरा श्रोत्र—कान "**श्रोत्रं शरदः**" [जै० २.५१], शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे सम्बन्ध में श्रवण द्वारा (हेमन्तः) मेरा मन "**मनो हेमन्तः**" [जै० २.५१] शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे मनन चिन्तन द्वारा (शिशिरः-इत्-नु रन्त्यः) मेरा प्रतिष्ठान नाभि के नीचे का अङ्ग "**शिशिरं प्रतिष्ठानम्**" [मै० ४.९.१८], शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो आसन सदाचरण द्वारा।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते हरी ॥

(साम० पूर्वार्चिक अ० ४.८.६)

अन्य वेद में इस मन्त्र का अर्थ विद्युद्विज्ञान—वैद्युत यान परक हो सकता है परन्तु यहाँ सामवेद में तो अध्यात्मपरक ही अर्थ है—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (सः) वह तेरा उपासक आत्मा (घ) निश्चय से (तं वृषणं गोविदं रथम्) उस सुखवर्षक

१. "वागुक्थम्" [ष० १.१५]।

स्तुति-वाणियों से प्राप्त होने वाले रथ—रमणस्थान मोक्षस्थान रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठना चाहता है **"लिङर्थे लेट्"** [अष्टा० ३.४.७] अब इस शरीर रथ पर नहीं (यः) जो उपासक (हारियोजनं पात्रम्) तेरे दयाप्रसाद रूप दुःखापहरण और सुखाहरण करने वाले जिसमें निरन्तर तेरे द्वारा युक्त किए हुए हैं ऐसे नितान्त पालक रक्षक को (पूर्णं चिकेतति) पूर्णरूप से जानता है कि बस कल्याणस्थान यही है, अतः (ते हरी) तेरे दया और प्रसाद को (नु योज) मुझ उपासक में शीघ्र युक्त कर।

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सुमधु मधुनाभियोधीः ॥

(साम० उत्तरा० अ० १३ ख० ५ तृच २.३)

(विश्वे-ऊमाः) परमात्मन्! तेरे द्वारा सब रक्षण पाए हुए मुमुक्षु (क्रतुं त्वे वृञ्जन्ति) कर्म को तेरे अन्दर त्याग देते हैं—निष्काम बन जाते हैं (यत्-एते द्विः-त्रिः-अपि भवन्ति) चाहे वे एकाश्रमी ब्रह्मचारी हों या द्वितीयाश्रमी गृहस्थ हों या तृतीयाश्रमी वानप्रस्थ भी हों, क्योंकि तू (स्वादोः-स्वादीयः) स्वादु—स्वाद वाले पदार्थ से भी अतिस्वादु—अत्यन्त स्वाद वाला है (स्वादुना संसृज) अपने स्वादुस्वरूप से संयुक्त करा (अदः-मधु) उस अपने मधुस्वरूप को (मधुना सु-अभि योधीः) मुझ उपासक आत्मा[1] के साथ भली प्रकार सङ्गत कर मिला दे[2] ॥

सामवेद में युगल देवतानाम मित्रावरुण आदि परमात्मा के ही वाचक हैं ऐसे ही बहुवचन प्रयुक्त देवतानाम भी परमात्मा का नाम जानना चाहिये अन्य भाष्यकारों ने बहुवचन के परमात्मा से भिन्न अर्थ किए हैं जैसे 'सोमः' का अर्थ तो परमात्मा और 'सोमाः' बहुवचन का भक्तजन परन्तु यह वैदिक शैली के विरुद्ध है वह बहुवचन प्रयोग पूजनार्थ या आदरार्थ माना है। जैसे—

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥

(ऋ० १.९२.१)

एतास्ता उषसः केतुमकृषत प्रज्ञानमेकस्या एव पूजनार्थे बहुवचनं स्यात् ॥

(निरु० १२.७)

निरुक्त के इस वचन को सायणाचार्य और स्वामी दयानन्द ने भी प्रमाण स्वीकार किया तथा इस मन्त्र से भिन्न स्थलों पर भी बहुवचन आदरार्थ दर्शाया है। **"पूयमानो यूयं पात"** [साम० उत्तरा० अ० १२.३.८.३ पूजार्थ बहुवचनम्, सायणः] तथा **"तन्न इन्द्रो.....यूयं पात स्वस्तिभिः"** [ऋ० ७.३५.२५ आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश बहुवचन आदरार्थ] दयानन्द।

कुछ महानुभाव कहते हैं, ऋग्वेद के मन्त्र सामवेद में हैं तब ऋग्वेद पूर्ववर्ती

---

१. "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० स० २३.२.९]।
२. "युध्यति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] अथवा "यू मिश्रणे" [अदादि०]।

है, अन्य कह सकता है सामवेद के मन्त्र ऋग्वेद में है इस कथन को कौन रोक सकता है जबकि ऋग्वेद के अन्दर सामवेद का नाम प्रशंसित किया है—"**उद्गातेव शकुने साम गायसि**" [ऋ० २.४३.२] तथा "**यूयमृषिमवत सामविप्रम्**" [ऋ० ५.५४.१४] अतः वेद में पौर्वापर्य नहीं देखना चाहिये।

ऋग्वेद के उक्त कथन से साम मन्त्र यज्ञ में उद्गाता द्वारा गाकर पढ़ने योग्य है अन्य ऋत्विक् द्वारा आहुति प्रदान अवैदिक है अतः साम पारायण गाने में या अर्थ जानने में करना चाहिए आहुति में नहीं।

—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

११ अगस्त, १९६९ ई०

ओ३म्

सामवेदः

पूर्वार्चिकः

आग्नेयं पर्व, काण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः। ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक *); देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा); छन्दः—गायत्री।

१. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ १॥

पदपाठः— अग्ने। आ। याहि। वीतये। गृणानः। हव्यदातये। (हव्य दातये)। नि। होता। सत्सि। बर्हिषि॥ १॥

अन्वयः—अग्ने वीतये हव्यदातये गृणानः आयाहि होता बर्हिषि नि सत्सि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (वीतये) अपने अन्दर तेरी व्याप्ति—प्राप्ति के लिए "वी गतिव्याप्ति........" [अदादि०] एवं (हव्यदातये) निज को तेरी भेंट देने के लिए (गृणानः) स्तुत किया जाता हुआ [कर्मणि कर्तृप्रत्ययः] (आयाहि) आ—मेरी ओर गति कर (होता बर्हिषि नि सत्सि) मेरे अध्यात्म यज्ञ का होता—सम्पादन करनेवाला ऋत्विक् बना हुआ अध्यात्म यज्ञ के सदन हृदयाकाश में [बर्हिः-अन्तरिक्षम् निघण्टु १। ३] हृदयासन पर विराजमान हो।

भावार्थः—प्रिय परमात्मन्! तू स्तुत किया जाता हुआ मेरी ओर आ, मेरा

---

* "वाजयति—अर्चतिकर्मा" (निघण्टुः ३। १४) तथा "वाजं बलम्" (निघण्टुः २। ९) वाजमर्चनं तद् बलं च भरन् यः स भरद्वाजः। "राजदन्तादिषु परम्" (अष्टाध्यायी २। २। ३१)।

स्वार्थ है मेरे अन्दर अपने ज्ञानप्रकाशस्वरूप से व्याप्त प्राप्त होजा, परन्तु परमात्मन्! मैं केवल अपने ही स्वार्थ के लिए तो नहीं बुला रहा हूँ तेरा भी स्वार्थ है निज समर्पण का, तू चेतन है और मैं भी चेतन हूँ, चेतन को चेतन से प्यार होता है चेतन का चेतन सजातीय है, चेतन की चेतन के साथ आत्मीयता होती है। कृपा करके मेरे हृदयगृह में आ, विराजमान हो मुझे अपना बना मेरा समर्पण स्वीकार कर, मैं तेरे अर्पित हूँ, स्वीकार कर, समर्पित हूँ, मुझे अपने स्वरूप से प्रभावित कर, ज्ञानप्रकाश से प्रतिभासित कर "**आत्मनात्मानमभिसंविवेश**" [यजुः० ३२।११] स्वात्मा से मैं तुझ परमात्मा में समाविष्ट होऊँ इस आकांक्षा को पूरी कर॥ १॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक *);

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

२. **त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः।**
देवेभिर्मानुषे जने॥ २॥

पदपाठः— **त्वम्। अग्ने। यज्ञानाम्। होता। विश्वेषाम्। हितः। देवेभिः। मानुषे। जने॥ २॥**

अन्वयः—अग्ने त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने देवेभिः-हितः (मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता देवेभिः-हितः)॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता) तू समस्त यज्ञों—यजनीय श्रेष्ठकर्मों का सम्पादनकर्ता ऋत्विक् (मानुषे जने देवेभिः-हितः) मानुष जगत् में—मनुष्य समाज में वर्तमान विद्वानों ने धारा—माना। तथा (मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता देवेभिः-हितः) मानव समाज में होने वाले—चलने वाले—किए जाने वाले एवं मानव समाज के निमित्त किए जाने वाले समस्त श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादनकर्त्ता ऋषियों ने तुझे धारा, निर्धारित किया, एवं 'हितः-आहितः' अपने अन्दर आधार किया—संस्थापित किया। अतः मेरे अध्यात्म यज्ञ का भी होता बनकर मेरी ओर आ, हृदय में विराजमान हो।

भावार्थः—परमात्मन्! मैं क्या कहूँ? केवल मात्र मेरे अध्यात्म यज्ञ का ही होता सम्पादनकर्त्ता तू नहीं, किन्तु मानव समाज में जितने भी यजनीय भावना वाले श्रेष्ठ कर्म हैं, भूखों को भोजन दान, पीड़ितों का त्राण, आतुरों को स्वास्थ्य प्रदान, गवादिरक्षाविधान, शिक्षणप्रदान, योगानुष्ठान हैं वे तुझे लक्ष्य करके ही हैं—तेरे आदेश से हैं, तेरे आशीर्वाद को पाने के लिये हैं, तेरे आश्रय से चलते फूलते-फलते हैं, अतः तू मेरी ओर आ, मेरे हृदय सदन में विराज, जिससे मैं अपने इस अध्यात्म यज्ञ को सिद्ध कर सकूँ तेरे स्वरूप को पा सकूँ, दिव्य जीवन बना सकूँ तेरे संग का अमृत पा सकूँ॥ २॥

ऋषिः—काण्वो मेधातिथिः (मननशील मेधावी वक्ता का शिष्य परमात्मा में मेधा से अतनशील प्रवेशशील उपासक[१])॥

३. ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ ३॥

पदपाठः— ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
अग्निम् दूतम् वृणोमहे होतारम् विश्ववेदसम् विश्व
३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वेदसम् अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् सु क्रतुम्॥ ३॥

अन्वयः—अस्य यज्ञस्य होतारं दूतं विश्ववेदसं सुक्रतुं अग्निं वृणीमहे॥

पदार्थः—(अस्य यज्ञस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (होतारम्) सम्पादनकर्ता (दूतम्) अपने दिव्य गुणों के सन्देश के वाहक तथा प्रेरक ''दूतो देवानामसि'' [निरु० ५.१] ''दु गतौ'' [भ्वादि०] (विश्ववेदसम्) समस्त ऐश्वर्य वाले ''वेदस्—धननाम'' [निघं० २.१०] (सुक्रतुम्) सुप्रज्ञान वाले तथा सुप्रज्ञा के हेतुरूप सुकर्मा होते हुए ''क्रतुः प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९] ''क्रतुः कर्मनाम'' [निघं० २.१] (अग्निम्) परमात्मा को (वृणीमहे) वरता हूँ ''अस्मदो द्वयोश्च'' [अष्टा० १.२.५९]।

भावार्थः—परमात्मन्! तू मेरे अध्यात्मयज्ञ का होता—सम्पादनकर्ता ही नहीं अपितु अपने दिव्यगुणों—सृष्टिकर्तृत्व कर्मफलदातृत्व नियन्तृत्व आदि का सन्देशवाहक भी है। प्रिय! 'पत्ती-पत्ती तुझे दर्शा रही है, वसन्त तेरी याद दिला रही है, फूलकली तेरा राग सुना रही है, चन्द्र तारों की चाल तुझे बता रही है, विविध देह तेरा कर्मफलदातृत्व दर्शा रही है।' साथ में तू प्रेरक भी है मेरे जीवन का उत्कर्षक है—मुमुक्षुओं का मार्ग दर्शक है, शोभन प्रज्ञानवान् तथा शोभन प्रज्ञाप्रद शोभन कर्मकुशल तू मेरे अध्यात्म यज्ञ को प्रवृद्ध कर, समस्त सुख-सम्पत्ति वाले हमें समस्त सुखसम्पत्ति का प्रसाद दे, तुझे मैं वरता हूँ॥ ३॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने वाला उपासक)॥

४. ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
१ २ ३ १ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः॥ ४॥

पदपाठः— ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ १ २र
अग्निः वृत्राणि जङ्घनत् द्रविणस्युः विपन्यया समिद्धः
२ ३ २ १ २र २ ३
सम् इद्धः शुक्रः आहुतः आ हुतः॥ ४॥

---

१. ''कण्वो मेधावी'' (निघं० ३.१५) ''कण शब्दार्थः'' (भ्वादि०) वक्ता। ''कण धातोः क्वन्'' (उणादि० १.१५१)॥

अन्वयः—अग्निः विपन्यया समिद्धः शुक्रः-आहुतः द्रविणस्युः वृत्राणि जङ्घनत्॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (विपन्यया) हमारे द्वारा की गई विशिष्ट स्तुति—ध्यानोपासना से (समिद्धः शुक्रः-आहुतः) प्रदीप्त किया हुआ, प्रकाशस्वरूप में आया हुआ, भली-भाँति हृदय में बिठाया हुआ—अपनाया हुआ (द्रविणस्युः) हमारे लिये ज्ञानसुखैश्वर्य चाहने वाला "छन्दसि परेच्छायां चेति वक्तव्यम्, क्यच्" (वृत्राणि जङ्घनत्) ज्ञानसुखैश्वर्य के आवरकों—प्रतिबन्धकों अज्ञान रोग दुःखदारिद्र्य को भली प्रकार नष्ट करता है।

भावार्थः—मानव जब परमात्मदेव की विशेष स्तुति-ध्यानोपासना करता है तो मानव के अन्दर परमात्मा प्रकाशित होकर अज्ञान आदि बाधकों को भली-भाँति विनष्ट करके उपासक के ज्ञानसुखैश्वर्य को चाहता है—पूरा करता है अपितु बिना माँगे ही सब कामनाएँ पूरी हो जाया करती हैं। सचमुच मनुष्य व्यर्थ चाहना को बढ़ा-बढ़ा कर अपने को अशान्त कर बैठता है। यदि एक परमात्मा की ही चाह रखे तो अन्य चाह के उठने का प्रसङ्ग ही न रहे, चाहनाओं के स्वामी के पा लेने से सम्पत्तिमान् को अपनाने का लाभ सम्पत्तिभागी बनना ही है॥४॥

ऋषिः—उशनाः (अपने कल्याणार्थ परमात्मसङ्गति को चाहने वाला[1])।

५. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम्॥५॥

पदपाठः— प्रेष्ठम् वः अतिथिम् स्तुषे मित्रम् मि त्रम् इव प्रियम्
अग्ने रथम् न वेद्यम्॥५॥

अन्वयः—अग्ने वः मित्रम्-इव प्रियं वेद्यं रथं न प्रेष्ठम्—अतिथिम् स्तुषे॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वः) तुझ 'वः-त्वाम्-व्यत्ययेन बहुवचनम्' (मित्रम्-इव प्रियम्) मित्र-समान प्रिय को (वेद्यं रथं न) वेदि—पृथिवी "पृथिवी वै वेदिः" [ऐ० ५.२८] पर रमण करने योग्य प्रिय रथ की भाँति "न उपमार्थे" (निरु० १.४) मेरे अन्तःकरण में रमण करने वाले (प्रेष्ठम्—अतिथिम्) मित्र और रथ से भी प्रिय अतिथिदेव की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थः—परमात्मन्! तू मेरा प्रियतम अतिथि है, तू मेरे हृदय गृह में या अन्तःकरण सदन में आता है, परमात्मन्! तुझे रथ प्रिय है और मुझे उससे भी अधिक प्रिय है वह तो प्रियतर है, मेरा रथ है मेरा शरीर "यदनो वा रथं वा

---

१. "वश कान्तौ" (अदादि०) "वशेः कनसि" (उणा० ४.२३४) उशनाः॥

शरीरम्'' [मै० ४.८.३] मेरा मित्र है मेरा प्राण ''प्राणो मित्रम्'' [जै० उ० ३.१.३.६] परन्तु परमात्मन्! तू मेरे शरीर और प्राण से भी अत्यन्त प्रिय है मैं तेरी स्नेहपूर्ण स्तुति करता हूँ। लौकिक रथ प्यारा है देह का सहारा है लौकिक मित्र प्यारा है मन का सहारा है परमात्मन्! तू अत्यन्त प्यारा है, आत्मा का सहारा है अतः मेरा अतिथि बनजा मेरे शरीर में नस नस में बसजा मेरे प्राण में रमजा मुझ आत्मा में समा जा, तू लेने वाला अतिथि नहीं तू तो लाने वाला अतिथि है अतएव तू अत्यन्त प्यारा है स्तुति लेजा शान्तिप्रसाद देजा॥५॥

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (स्तुति का सुदान कर्ता स्तुति का बहुत सींचने वाला उपासक[1])॥

६. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य॥ ६॥

पदपाठः— **त्वम् नः अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्याः अरातेः अरातेः उत द्विषः मत्स्यस्य॥ ६॥**

अन्वयः—अग्ने त्वं मर्त्यस्य विश्वस्याः अरातेः उत द्विषः महोभिः नः पाहि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (मर्त्यस्य) मरणधर्मी—सांसारिक साधारणजन के अन्दर होने वाली (विश्वस्याः) सारी—(अरातेः) न देने वाली—कृपणता अपि तु अपहरण प्रवृत्ति से (उत) और (द्विषः) द्वेष भावना से (महोभिः) अपने महत्त्वों—ज्ञान बलों के द्वारा (नः पाहि) हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—साधारण संसारीजन के अन्दर अनेक विध अदान भावना अर्थात् अपने पास आवश्यकता से अधिक होने पर भी अन्य अधिकारी के हित में अपना धन अन्न विद्या को न देने की भावना अपितु अन्य से अपहरण की प्रवृत्ति तथा इसी भांति विविध द्वेष भावना अर्थात् अन्य से अल्प अपकार हो जाने पर अपितु स्वाभीष्ट की प्राप्ति न होने पर उसके प्रति क्रोध पीड़ा पहुँचाने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ये दूसरे को तो हानि पहुँचाती है, या नहीं, पर ऐसी भावनाएँ रखने वाले को तो अवश्य ही हानि पहुँचाती हैं उसका अन्तःकरण मलिन और आत्मा अशान्त हो जाती है परमात्मा के सत्सङ्ग का मिलना तो कहाँ? अतः परमात्मन्! मुझ उपासक को इनसे बचाए रखना, यह मेरे अन्दर न उठने पावें॥ ६॥

---

१. ''सुदीतिरादित्यान् जिन्व'' (काठ० १७.७)।

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञानबल को धारण करने वाला उपासक)॥

७. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽ ग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ ७॥

पदपाठः— आ इहि उ सु ब्रवाणि ते अग्ने इत्था इतराः गिरः एभिः वर्द्धसे इन्दुभिः॥ ७॥

अन्वयः—अग्ने ते इतराः-गिरः-उ-इत्या सुब्रवाणि एभिः-इन्दुभिः-वर्धासे एहि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (ते) तेरे लिये (इतराः-गिरः-उ-इत्या सुब्रवाणि) उपासना समय से भिन्न व्यवहार समय में भी वाणियाँ—बातें अवश्य सत्य ही बोलूँ, बोलता हूँ, बोलूँगा। "इत्या सत्यनाम" [नि० घं० ३.१०] (एभिः-इन्दुभिः-वर्धासे) इन सोमों आर्द्र उपासनारसों से "सोमो वा इन्दुः" [श० २.२.३.२३] तू बढता है—मेरे अन्दर साक्षात् होता रहता है, अतः (एहि) मेरे हृदयरूप यज्ञसदन में आ॥

भावार्थः—परमात्मा की सद्भाव से स्तुतियाँ उपासना काल में करें वैसे ही व्यवहारकाल में चरित्रार्थ करें, ऐसा नहीं कि उपासना समय में अन्य स्तुति करना और व्यवहार में उसके विपरीत कहना मानना। उपासक को आध्यात्मिक और सांसारिक एक ही सत्य पर निर्भर रहना चाहिए। प्रवञ्चना से पृथक् रहे, परमात्मा तो बाहिर भीतर की बात सब जानता है वह प्रवञ्चना में नहीं आता। सत्य स्तुति तो बाहिर भीतर जीवन में समान घटने वाली होती है और तब ही उसका भीतर साक्षात्कार बढ़ता जाया करता है कारण कि परमात्मा स्वयं सत्य-स्वरूप है "सत्यश्चित्रःस्रवस्तमः" [ऋ० १.१.५] सो सत्य से ही प्राप्त होता है "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा" [मुण्ड० ३.१.५]॥ ७॥

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मननशील मेधावी का शिष्य या अत्यन्त मेधावी वक्ता—स्तुतिकर्ता जन)॥

८. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्।
अग्ने त्वां कामये गिरा॥ ८॥

पदपाठः— आ ते वत्सः मनः यमत् परमात् चित् सधस्थात् सध स्थात् अग्ने त्वाम् कामये गिरा॥ ८॥

अन्वयः—अग्ने वत्सः परमात् सधस्थात्-चित् ते मनः-आ यमत् त्वां

गिरा कामये ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वत्सः) तेरे गुणों का वक्ता—स्तुतिकर्ता "वदः सः" [उणादि० ३.६२] (परमात् सधस्थात्-चित्) परमसहस्थान—मोक्षधाम से भी (ते मनः-आ यमत्) तेरे माननीय स्वरूप को स्वात्मा में खींच ले आता है (त्वां गिरा कामये) तुझे स्तुति-द्वारा चाहता हूँ।

भावार्थः—हे परम प्रिय परमात्मन्! यद्यपि तू सर्वव्यापक है, परन्तु कैवल्य दृष्टि से तेरा स्थान परमसधस्थ—मोक्षधाम है जहाँ तेरा मेरा परम सहवास होता है, संसार में रहते हुए तेरा मेरा सहवास होता है मेरे हृदय-सदन वह स्थान अल्प है वह अवम सधस्थ है, पर हाँ इस अपने घर में मैं तेरे मननीय स्वरूप को अवश्य परमसधस्थ—मोक्षधाम से स्तुति बल से खींच लाता हूँ तुझे अपना अङ्गसङ्गी बना लेता हूँ जब तक परमसधस्थ—मोक्षधाम में न पहुचूँ। कारण कि मैं तुझे स्तुति से चाहता हूँ, तुझे तेरी स्तुति चाहिए मुझे तेरा मननीय-स्वरूप चाहिए। जब मैं तेरी स्तुति करते करते अपने आत्मा को पूर्णरूप से झुका देता हूँ तब तू भी अपने मननीय स्वरूप को मेरी ओर नमा देता है। स्तुति तेरे दर्शन का अमोघ साधन है अतः स्तुति द्वारा तुझे चाहता हूँ रिक्त हस्त नहीं स्तुति भेट द्वारा ॥ ८ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक) ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
९. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
३ १ २र ३ १ २
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

२ ३ १ २र १ २र १ २र २ ३ ३ २
पदपाठः— त्वाम् अग्ने पुष्करात् अधि अथर्वा निः अमन्थत मूर्ध्नः
१ २र ३ १ २
विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वाम् अथर्वा विश्वस्य मूर्ध्नः—वाघतः पुष्करात्-अधि निरमन्थत ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वाम्) तुझे (अथर्वा) स्थिर वृत्ति वाला ध्यानीजन "अथर्वा-थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः" [निरु० ११.१९] (विश्वस्य मूर्ध्नः—वाघतः) समस्त प्राणीमात्र के मूर्धारूप तथा वहन करने वाले वाहक—निर्वाहक—"वाघतो वोढारः-वाघत्-वोढा" [निरु० ११.१६] (पुष्करात्-अधि) पुष्कर—वपुष्कर—शरीर निर्माण करने वाले "पुष्करं वपुष्करम्" [निरु० ५.१४] हृदयकमल में "पुष्करं पुण्डरीकम्" [तां० १८.९.६] "पुण्डरीकं नव द्वारम्" [अथर्व० १०.८.४३] "हृदयपुण्डरीके" [योग० १.३६ व्यासः] (निरमन्थत) निर्मन्थित करता है—साक्षात् करता है।

भावार्थः—हाँ हे मेरे परमात्मन्! मैं समझ गया, तेरे समागम का अवमसधस्थ

मेरे शरीर में हृदय सदन है जो देह का निर्माण करने वाला एवं रक्त और प्राणों का प्रमुख वाहक है। यहाँ पर ही अभ्यास और वैराग्य के सम्मिश्रण से या सगुण और निर्गुण स्तुतियों के निर्मन्थन से स्थिरध्यानीजन तुझे प्रकाशित करता है—साक्षात् करता है जैसे दो काष्ठों के अनुलोम प्रतिलोम मन्थन से या खनिज वस्तुओं के संघर्षण से अग्नि को प्रकाशित करते हैं। उस तुझ परमेश्वर का साक्षात् कर मैं भी अपने को कृतकृत्य करूँ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय[1] उपासनीय देव परमात्मा वाला उपासक)॥

१०. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

पदपाठः— अग्ने विवस्वत् वि वस्वत् आ भर अस्मभ्यम् ऊतये महे देवः हि असि नः दृशे ॥१० ॥

अन्वयः—अग्ने अस्मभ्यं महे-ऊतये विवस्वत्-आभर दृशे नः-देवः-हि-असि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (महे-ऊतये) महती रक्षा—अखण्डसुखसम्पत्ति—मुक्ति के निमित्त (विवस्वत्-आभर) अभ्यास और वैराग्य से साध्य अपने विशेष प्रकाशमय वास वाले स्वरूप को पहुँचा—प्राप्त करा (दृशे) दर्शन करने—साक्षात् करने के लिये (नः-देवः-हि-असि) तू हमारा इष्टदेव ही है।

भावार्थः—परमात्मन्! हमारे लिये जो महती रक्षा अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति है उसकी प्राप्ति के लिये अभ्यास और वैराग्य के द्वारा या सगुण स्तुति और निर्गुण स्तुति के द्वारा सिद्ध होने वाला तेरा विशेष प्रकाशमय स्वरूप है उसे आभरित कर—प्राप्त करा, वह हमारे दर्शन के लिये—साक्षात् करने के लिये है हम उसके अर्थी हैं और तू हमारा इष्टदेव है, फिर हम उस दर्शन से वञ्चित रह सकें और उसके साधनरूप अभ्यास और वैराग्य तथा सगुण स्तुति निर्गुण स्तुति को तीव्र संवेग से कर रहे हैं अवश्य तेरे दर्शन कर सकेंगे कारण कि हम मनुष्य हैं मननशील हैं तेरे दर्शन के उत्सुक हैं, पशु केवल संसार को देखते हैं मनन नहीं करते, उनकी दृष्टि स्थूल है उसमें मनन नहीं है, हमारी दृष्टि में मनन है, यदि मनन न हो तो हम पशु जैसे हो जावें तेरे दर्शन के विना। संसार में मानव आया परन्तु तेरा दर्शन न पा सका तो मानव जीवन का लाभ क्या ?॥ १० ॥

---

१. "वामस्य वननीयस्य" (निरु० ४.२५)।

द्वितीय खण्ड

छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥ ऋषिः—आयुङ्क्ष्वाहिः (परमात्मा में अपने को समस्तरूप से युक्त कर ऐसा कहने वाला[1] उपासक)॥

११. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय॥ १॥

पदपाठः— नमः ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः अमैः अमित्रम्
अ मित्रम् अर्दय॥ १॥

अन्वयः—अग्ने देव कृष्टयः ओजसे ते नमः-गृणन्ति अमित्रम्-अमैः अर्दय॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्म देव! (कृष्टयः) तुझे अपनी ओर कर्षणशील—खींचने वाले या तेरे प्रति आकृष्ट हुए उपासकजन ''कृष्टयः—मनुष्याः'' [निघं० २.३] (ओजसे) ओज—आत्मबल ज्ञानबल प्राप्त करने के लिये (ते नमः-गृणन्ति) तेरे लिये नम्र स्तवन—स्तुति उच्चारण करते हैं[2] (अमित्रम्-अमैः अर्दय) अध्यात्म यज्ञ के घातक काम क्रोध आदि शत्रु को बलों से ''अमो बलम्'' [निरु० १०.२१] नष्ट कर ''अर्द हिंसायाम्'' [चुरादि०]।

भावार्थः—प्रिय परमात्मन्! तुझे अपनी ओर आकर्षित करने वाले या तेरे प्रति आकृष्ट हुए उपासकजन तेरी ओर आने के लिये ओज—आत्मबल ज्ञान बल को प्राप्त करने के हेतु तेरी नम्र-रसीली स्तुतियाँ किया करते हैं, अतः मैं तेरी ओर आने के लिए तेरी नम्र-मीठी स्तुतियाँ करता हूँ। तेरी ओर आने में काम क्रोध आदि शत्रु बाधक हैं, इन्हें अपने बलों से नष्ट कर, जब मैं तेरी ओर आना चाहता हूँ तो ये बाधक बनकर आगे खड़े हो जाते हैं। तू ओजःस्वरूप है, मुझे ओज दे ''ओजोऽस्योजो मयि धेहि'' (यजुः० १९.९)॥ १॥

ऋषिः—**वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥**

१२. दूतं वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम्।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा॥ २॥

---

१. 'आयुङ्क्ष्व' इति—'आह'-ब्रवीति-इति बाहुलकात् किः प्रत्यय औणदिकः।

२. 'नमः' शब्द का सम्बन्ध वैदिक पद्धति में वाणी के साथ है, यहाँ 'नमः-गृणन्ति' है तथा ''नम उक्तिं विधेम'' (यजु० ४०.१६) मस्तक झुकाना अर्थ नहीं ''नमो महद्भ्य नमो अर्भकेभ्यः'' (ऋ० १.२७.१३) यथायोग्य स्वागत वचन बड़ों के लिये छोटों के लिये भी बोलना 'नमः' है।

पदपाठः— **दूतम् वः विश्ववेदसम् विश्व वेदसम् हव्यवाहम् हव्य वाहम् अमर्त्यम् अ मर्त्यम् यजिष्ठम् ऋञ्जसे गिरा ॥ २ ॥**

अन्वयः—दूतं विश्ववेदसं हव्यवाहं अमर्त्यं यजिष्ठं वः गिरा ऋञ्जसे ॥

पदार्थः—(दूतम्) निज दिव्यगुणों के संदेश वाहक प्रेरक—(विश्ववेदसम्) समस्तैश्वर्यवान् (हव्यवाहम्) मेरे हावभावपूर्ण आत्महवि को मोक्षधाम प्राप्त्यर्थ स्वीकार करने वाले (अमर्त्यम्) मरणधर्मा—मनुष्य विषयक जन्ममरण अज्ञान आदि गुणों से रहित (यजिष्ठम्) मेरे अध्यात्म यज्ञ के महान् सम्पादक (वः) 'त्वाम्' तुझ 'वचन-व्यत्ययः' ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (गिरा) स्तुतिरूप वाणी से (ऋञ्जसे) प्रसाधित करता हूँ—अनुकूल बनाता हूँ—अपने अन्दर संस्थापित करता हूँ।

भावार्थः—हे मेरे अध्यात्म यज्ञ के महान् सम्पादक परमात्मन्! तू अपने गुणों के सन्देश देने वाला मेरे अन्दर दिव्य गुणों को प्रेरित करने वाला अग्रणेता अमर्त्य—अमर धर्मों वाला है, मैं तो मर्त्य हूँ—मरणधर्मा हूँ कारण कि ''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्यो अमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते'' (कठो० २.६.१५) कामभोगों के वश मनुष्य मरा रहता है, कामनाएँ न मिलने पर मनुष्य 'मैं मरा' कहता है अधिक सेवन करने से 'मैं मरा', कमनीय वस्तुएँ नष्ट हो गईं तो मैं मरा कहता है उनके नष्ट होने के साथ 'हाय मैं मरा'—अपने को नष्ट हुआ समझता है। अतः परमात्मन्! तुझे मैं स्तुति द्वारा अपने अन्दर प्रसिद्ध करता हूँ—साक्षात् करता हूँ॥ २ ॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि प्रज्वलन वेत्ताओं की परम्परा में प्रयोगकर्ता उपासक)॥

१३. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन्॥ ३ ॥

पदपाठः— **उप त्वा जामयः गिरा देदिशतिः हविष्कृतः हविः कृतः वायोः अनीके अस्थिरन्॥ ३ ॥**

अन्वयः—हविष्कृतः वायोः-अनीके उप-अस्थिरन् जामयः-देदिशतीः-गिरः त्वा॥

पदार्थः—(हविष्कृतः) जैसे हवियों—आहुतियों को देने वाले आहुतियाँ 'लुप्तोपमानोपमावाचकालङ्कारः' (वायोः-अनीके) वायु के दल-वायुदल—बादल में (उप-अस्थिरन्) उपस्थित हो जाती हैं—पहुँच जाती हैं पुनः वृष्टिजल लाने को, वैसे ही (जामयः-देदिशतीः-गिरः) एक दूसरे के पीछे बढ़-बढ़ कर ''जाम्यतिरेकनाम'' [निरु० ४.२०] निरन्तर अग्र प्रगतिक्रम से एक दूसरे को प्रेरित करती हुई स्तुतियाँ (त्वा) 'उप-अस्थिरन्' तुझ परमात्मा के पास ठहर जाती

हैं—पहुँच जाती हैं उपासक तक तेरे दर्शनामृत को ले आने के लिये—ले आती हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! जैसे अहुतियाँ वायुदल—मेघस्थान में जाकर वृष्टिजल बरसाती हैं वैसे ही उपासक की हावभावभरी आन्तरिक सत्य स्तुतियाँ परस्पर सन्तति क्रम से एक दूसरे के पीछे बढ़–बढ़ कर अग्रगति करती हुईं एक दूसरे को प्रेरित करती हुईं तुझ तक पहुँच तेरे दर्शनामृत मुझ तक बरसाने में—ले आने में समर्थ हो जाती हैं, अतः मैं अध्यात्म प्रयोगकर्ता तेरे दर्शनामृत को प्राप्त करने पान करने में अवश्य समर्थ हो जाऊँगा॥ ३॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (आध्यात्मिक मिठास का इच्छुक उपासक)॥

१४. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ ४॥

पदपाठः— उप त्वा अग्ने दिवेदिवे दिवे दिवे दोषावस्तः दोषा वस्तः धिया वयम् नमः भरन्तः आ इमसि॥ ४॥

अन्वयः—अग्ने वयं दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमः-भरन्तः त्वा उप-एमसि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वयम्) (दिवे दिवे) दिन दिन—प्रतिदिन—निरन्तर ''दिवे दिवे-अर्हनाम'' [निघं० १.८] (दोषावस्तः) सायं प्रातः ''दोषावस्तः सायं प्रातः'' [दयानन्दः वेङ्कट माधवश्च] (धिया) धारणा—ध्यानवृत्ति या मन से ''धीरसीत्याह यद्धि मनसा ध्यायति'' [तै० सं० ६.१.७.४-५] (नमः-भरन्तः) स्तुति समर्पण करते हुए (त्वा) तुझे (उप-एमसि) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—प्रिय परमात्मन्! तेरी समीपता पाने के लिये प्रातः और सायं दोनों वेलाओं में प्रतिदिन ध्यान और स्वात्मा के नम्रीभाव का अनुष्ठान करते हैं। ध्यान—गुणचिन्तन से तेरे प्रति अभिरुचि रूप परवैराग्य बनता है और नमस्कार—स्वात्म समर्पण से अभ्यास साधा जाता है। व्यसन-वासना रूप कालिमा छोड़ी जाती है ध्यान से—गुणानुराग वैराग्य से। और कृतघ्नता नास्तिकता रूप कठोरता छूटती है सर्वतोभाव से स्वात्म समर्पणाभ्यास द्वारा, सो मैं उपासक इन दोनों को प्रातःसायं प्रतिदिन सेवन कर तुझे प्राप्त करूँ॥ ४॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषय लोलुप उत्थान का उच्छुक जन)॥

१५. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥ ५॥

पदपाठः— **जराबोध जरा बोध तत् विविड्ढि विशेविशे विशे विशे यज्ञियाय स्तोमम् रुद्राय दृशीकम्॥ ५॥**

अन्वयः—जराबोध विशे विशे यज्ञियाय रुद्राय तत्-दृशीकं स्तोमम् विविड्ढि॥

पदार्थः—(जराबोध) स्तुति के द्वारा बोध कराने वाले "जरा जरतेः स्तुति कर्मण:" [निरु० १०.८] (विशे विशे) प्रत्येक मनोनिवेशरूप ध्यानयज्ञ के निमित्त "यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि" [श० ८.७.३.२१] (यज्ञियाय रुद्राय) तुझ ध्यान यज्ञ के अभीष्टदेव तथा स्तुति द्वारा पूर्ण प्रकाशमान हुए या जरावस्था द्वारा रुलाने वाले परमात्मा के लिये "अग्निरपि रुद्र उच्यते" [निरु० १०.८] (तत्-दृशीकं स्तोमम्) उस दर्शन साधक स्तुति वचन को (विविड्ढि) भली प्रकार विष्ट हो—अपना ले।

भावार्थः—प्रिय परमात्मन्! जब मैं तेरी स्तुति करता हूँ तो तू मुझे बोध देता है तथा जरावस्था में सावधान करता है—नश्वर संसार से छूट अपनी शरण में आने को प्रेरित करता है। इस प्रकार बोधन कराने वाले परमात्मन्! तू मेरे प्रत्येक मनोनिवेशरूप ध्यान यज्ञ में प्रविष्ट हो—प्राप्त हो—उसे अपना—स्वीकार कर। तुझ प्रकाशस्वरूप ध्यान यज्ञ के इष्टदेव तथा जन्मजन्मान्तर से भोगों की दौड़ में पड़े हुए को पूर्ण पश्चात्ताप कराने वाले के लिये दर्शन साधन मेरे स्तुतिसमूह को स्वीकार कर॥ ५॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा गति प्रवृत्ति वाला)॥

१६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ६॥

पदपाठः— **प्रति त्यम् चारुम् अध्वरम् गोपीथाय प्र हूयसे मरुद्भिः अग्ने आ गहि॥ ६॥**

अन्वयः—त्यं चारुम्—अध्वरं प्रति गोपीथाय अग्ने प्रहूयसे मरुद्भिः—आगहि॥

पदार्थः—(त्यं चारुम्—अध्वरं प्रति) उस सुन्दर तथा हिंसा चाञ्चल्यादि-दोषरहित अध्यात्म यज्ञ के प्रति—उसके साधनार्थ (गोपीथाय) स्तुति-प्रार्थनोपसना रसरूप सोमपान करने—स्वीकार करने के लिए "गोपीथाय सोमपानाय" [निरु० १०.३६] (अग्ने प्रहूयसे) परमात्मन्! तू आमन्त्रित किया जा रहा है (मरुद्भिः—आगहि) अपने ज्ञानानन्दप्रकाश रश्मियों के साथ आ "मरुतः—रश्मयः" [तां० १४.१२.९]।

भावार्थः—हे प्रिय परमात्मन्! यह सत्य है जब मैं हावभाव भरी स्तुति-

प्रार्थनोपासना रूप सोमरस तेरे अर्पित करता हूँ तो तू आमन्त्रित हुआ मेरे सुन्दर अध्यात्म यज्ञ में आता है और अपने ज्ञानानन्द प्रकाश-गुणों के साथ आता है—मुझे ज्ञान आनन्दप्रकाश प्रसाद प्रदान करता हुआ आता है, हे वरप्रद तेरी वरद शरण पाने के लिये मेरा अध्यात्मयज्ञ चलता रहे ॥ ६ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुक जन)॥

१७. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

पदपाठः— अश्वम् न त्वा वारवन्तुम् वन्दध्यै अग्निम् नमोभिः ।
संम्राजन्तम् सम् राजन्तम् अध्वराणाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—अश्वं न वारवन्तम् अध्वराणां सम्राजं तं त्वा-अग्निं नमोभिः—वन्दध्यै ॥

पदार्थः—(अश्वं न वारवन्तम्) दंशमशक निवारक बालवाले "वारवन्तं बालवन्तं बाला दंशमशकनिवारणार्था भवन्ति" [निरु० ३.६२] घोड़े के समान अध्यात्मयाजी के वहनकर्ता विघ्नहर्ता एवं दोष-निवारणबल वाले तथा वरने योग्य ज्ञानानन्द गुणवाले—अपि च वार—वरण शरण रखने देने वाले (अध्वराणां सम्राजं तं त्वा-अग्निम्) विविध स्तुति प्रार्थना उपासना यज्ञों के अधिनायक प्रकाशक तुझ परमात्मा की (नमोभिः—वन्दध्यै) नमस्कारों से आत्मसमर्पण भावों से स्तुति करता हूँ।

भावार्थः—हे अध्यात्म यज्ञ की ओर ले जाने वाले, उसमें आने वाले विघ्न-बाधाओं दोष प्रकोपों को निवृत्त करने वाले घोड़े के समान संसार यात्रा सुख से कराने वाले परमात्मन्! विविध स्तुति प्रार्थनोपासनाओं से तेरी पूजा करता हूँ। मुझे अपनी शरण में स्वीकार कर ॥ ७ ॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि प्रज्वलान[1] में कुशल प्रयोग कर्ता उपासक)॥

१८. और्वभृगुवच्छुचिमप्रवानवदा हुवे ।
अग्निं॑ समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

पदपाठः— और्वभृगुवत् और्व भृगुवत् शुचिम् अप्रवानवत् आ हुवे
अग्निम् समुद्रवाससम् समुद्र वाससम् ॥ ८ ॥

---

१. "भृगुर्भृज्यमानो न देहे" (निरु० ३.१७)।

अन्वयः—और्वभृगुवत् अप्नवानवत् समुद्रवाससं शुचिम्-अग्निम्-आहुवे॥

पदार्थः—(और्वभृगुवत्) उर्वी-पृथिवी में होने वाले—और्व गन्धक पोटास आदि "उर्वी पृथिवीनाम" [निघं० १.१] खनिज पदार्थों से अग्नि को प्रकट करने वाले रासायनिक विद्वान् की भाँति—जैसे वह अग्नि को भौम पदार्थों से प्रकट करता है वैसे। तथा (अप्नवानवत्) संघर्षण कर्म—मन्थन के सेवन करने वाले के समान "अप्नः कर्मनाम" [निघं० २.१] "वन सम्भक्तौ" [भ्वादि०] अथवा दोनों भुजाओं प्रशस्त भुजाओं वाले शिल्पीजन के समान "अप्नवाना बाहुनाम" [निघं० २.४] 'तौ प्रशस्तौ यस्य सोऽप्नवानः, अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः'। अग्नि को प्रकट करता है ऐसे मैं अध्यात्मयज्ञकर्ता उपासक आध्यात्मिक भृगु और आध्यात्मिक आप्नवान बनकर (समुद्रवाससं शुचिम्-अग्निम्-आहुवे) अन्तरिक्ष—आकाश—महाकाश "समुद्रोऽन्तरिक्षनाम" [निघं० १.३] है वासस्—वास स्थान जिसका उस व्याप्त परमात्मा अग्नि को प्रदीप्त-साक्षात् आमन्त्रित करता हूँ—प्राप्त करता हूँ—प्रकट करता हूँ।

भावार्थः—अग्निविद्या में निष्णात विद्वान् गन्धक आदि पदार्थों के सम्मिश्रण से या चकमक पत्थर और लोहे के संघर्षण से या वंशकाष्ठों के मन्थन से अग्नि को प्रकट कर लेता है इसी प्रकार अध्यात्मयाजी ध्यानी उपासक भी अभ्यास और वैराग्य के स्वाध्याय—जप और योग—अर्थभावन के सम्मिश्रण से विश्वाकाश समस्त संसार में व्याप्त परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित कर सकता है "स्वाध्याद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते" [योग० १.२८ व्यासः] अतः मैं आत्मसमर्पी ध्यानी उपासक भी परमात्मन्! तुझे अपने अन्दर साक्षात् कर सकूँगा तुझे अपने अन्दर आमन्त्रित करता हूँ॥ ८॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि प्रज्वलान में कुशल प्रयोग कर्ता उपासक)॥

१९. **अग्निमिन्धानो मनसा धियः सचेत मर्त्यः।**
अग्निमिन्धे विवस्वभिः॥ ९॥

पदपाठः— **अग्निम् इन्धानः मनसा धियम् सचेत मर्त्यः अग्निम् इन्धे विवस्वभिः वि वस्वभिः॥ ९॥**

अन्वयः—मर्त्यः अग्निम्-इन्धानः मनसा धियं सचेत विवस्वभिः-अग्निम्-इन्धे॥

पदार्थः—(मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्-इन्धानः) परमात्मरूप अग्नि को या ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करने के हेतु (मनसा धियं सचेत) मन से परमात्म-चिन्तनरूप कर्म सेवे—करे "धीः कर्मनाम" [निघं० २.१] (विवस्वभिः-अग्निम्-इन्धे) कि मैं परिचर्याओं—"विवासति

परिचरणकर्मा'' [निघं० ३.५] निदिध्यासनरूप अभ्यासक्रियाओं के द्वारा परमात्मा को प्रकाशित करूँ—साक्षात् करूँ।

भावार्थः—परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करने के लिये मनुष्य श्रुतियों से परमात्मा के गुणों का श्रवण करके उन्हें जगत् की रचना में मन से मनन करे कि भिन्नभिन्न जीवशरीरों का गठन हाथी और ऊँट जैसे प्राणी को लम्बी सूँड और लम्बी ग्रीवा ऊपर नीचे से खाने को दे देना, भूतल पर ऊँचे स्थान से जलधाराओं को नीचे स्थानों में मार्ग बना बहाते हुए अत्यन्त निम्न स्थान समुद्र में पहुँचाकर भूपृष्ठ पर मनुष्य आदि के निवासार्थ भूभाग बनाना, आकाश में ग्रहतारों को अपनी अपनी गति से चलाने आदि से परमात्मगुणों का मनन कर पुनः आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधिरूप अभ्यास क्रियाओं से निदिध्यासन कर परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करे। सो मैं उपासक ऐसा कर परमात्मा का साक्षात् करूँ॥ ९ ॥

ऋषिः—वत्सः (अध्यात्म वक्ता जन)॥

२०. आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवि॥ १० ॥

पदपाठः— आत् इत् प्रत्नस्य रेतसः ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् परः यत् इध्यते दिवि ॥१०॥

अन्वयः—आत्-इत् प्रत्नस्य रेतसः वासरं ज्योतिः पश्यन्ति यत्-दिवि परः-इध्यते॥

पदार्थः—(आत्-इत्) अनन्तर ही—निदिध्यासनरूप अभ्यास के अनन्तर ही (प्रत्नस्य रेतसः) इस जगत् से पूर्व वर्तमान शाश्वतिक तथा सर्वत्र जगत् में प्राप्त अग्नि—प्रकाशस्वरूप परमात्मा की ''रेतो वा अग्निः'' [मै० ३.२.१] (वासरं ज्योतिः) 'वास-र' मुक्त आत्माओं को वास देने वाले ज्योति को (पश्यन्ति) देखते हैं ध्यानीजन (यत्-दिवि परः-इध्यते) जो द्योतनात्मक अमृतरूप मोक्षधाम में ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] अत्यन्त दीप्त हो रही है।

भावार्थः—जगत् से पूर्व वर्तमान तथा जगत् में व्याप्त परमात्मा की ज्योति को जो कि प्रकाशमय मोक्षधाम में अत्यन्त दीप्त हो रही है उसे ध्यानी योगाभ्यास के अनन्तर साक्षात् प्राप्त किया करते हैं। परमात्मा का ज्योतिःस्वरूप अनन्त मोक्षधाम में है वही ध्यानी जन के हृदय में साक्षात् होता है केवल अल्पकालिक है और एक देशी सा प्रतीत होता है, परन्तु परमात्मा तो अनन्त है, किन्तु मनुष्य का अधिकार तो हृदय में ही साक्षात् करने का है वह अनन्त नहीं हो सकता ''हृद्यपेक्षा तु मानुष्याधिकारत्वात्'' [वेदान्त० १.३.२५] ॥१०॥

तृतीय खण्ड

छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः। ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अग्नि प्रकटीकरण में कुशल अध्यात्म प्रयोगकर्ता विद्वान्)॥

३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३१२
२१. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
२ ३ २ ३ १२
अच्छा नप्त्रे सहस्वते॥ १॥

३ २ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १२ १ २र १२र
पदपाठः— अग्निम् वः वृधन्तम् अध्वराणाम् पुरूतमम् अच्छ नप्त्रे
१२र
सहस्वते॥ १॥

अन्वयः—अध्वराणां वृधन्तं पुरूतमं वः-अग्निं नप्त्रे सहस्वते अच्छ॥

पदार्थः—(अध्वराणां वृधन्तं पुरूतमम्) हिंसारहित अहिंसा सत्य आदि व्रतों के "ध्वरति हिंसाकर्मा" [निरु० १.८] बढ़ाने वाले अतिमहान्—सर्वमहान् तथा बहुत कमनीय (वः-अग्निम्) 'वः-त्वम्-वचनव्यत्ययः' तुझ ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (नप्त्रे सहस्वते) तेरा नप्ता होने के लिये सहस्वान् होने के लिये—परमात्मन् मुझे अपना नप्ता बना ले, अपने से न पतित कर और सहः—आत्म बल दे, अतः (अच्छ) तुझे अभ्याप्त करूँ—सम्यक् प्राप्त करूँ।

भावार्थः—परमात्मन्! तू अध्यात्म यज्ञ के अङ्गों अहिंसा आदि सद्व्रतों का बढ़ाने वाला है, तेरी शरण में आने से बढ़ते हैं। सूर्य आदि बड़े-बड़े पिण्ड पुरु हैं महान् हैं, आकाश व्यापक होने से पुरुतर अतिमहान् है तू तो आकाश से भी महान् होने से पुरुतम है, अन्यत्र वेद में कहा भी है "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" (ऋ० १.५२.१२) परमात्मन् तू आकाश से भी पार है कामनापूर्तिकर होने से अतीव कमनीय भी है। मैं तेरा नप्ता-पौत्र हो जाऊँ—तेरा पौत्रवत् अति प्रिय हो जाऊँ—आत्मज हो जाऊँ और बल का भागी हो जाऊँ—तुझे अपनी पृष्ठ पर समझ बलवान् रहूँ। सहस्वान् बलवान् बनकर संसार का ऐश्वर्य भोगूँ और नप्ता—गुणवान् बनकर मोक्ष का अमृतानन्द पाऊँ॥ १॥

ऋषिः—बार्हस्पत्यो भरद्वाजः (वेदाचार्य का शिष्य परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला)॥

३ २ ३ १२ ३ २ ३ ३ ३ २ ३ २ १ २
२२. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्या३त्रिणम्।
३ १ २ ३ २
अग्निर्नो वंसते रयिम्॥ २॥

३ २ ३ १२ ३ १ २ १ २र १ २र २ ३ १ २
पदपाठः— अग्निः तिग्मेन शोचिषा यंसत् विश्वम् नि अत्रिणम्
३ २ ३ २
अग्निः नः वंसते रयिम्॥ २॥

अन्वयः—अग्निः-विश्वम्-अत्रिणं तिग्मेन शोचिषा नियंसत् अग्निः-नः-रयिं वंसते॥

पदार्थः—(अग्निः-विश्वम्-अत्रिणम्) तेजःस्वरूप परमात्मा उपासक के अन्दर उठने वाले सकल पाप भाव को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३.१] (तिग्मेन शोचिषा नियंसत्) तीक्ष्ण ज्ञानमय तेज से "शोचिः-ज्वलतो नाम" [निघं० १.१७] नियन्त्रित करता है—दबा देता है—अकिञ्चित्कर बना देता है, पुनः (अग्निः-नः-रयिं वंसते) ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमारे लिये अध्यात्मधन—अमृतानन्द को प्रदान करता है।

भावार्थः—परमात्मा जब मुझ उपासक के अन्दर साक्षात् प्रकाशित हो जाता है तो अपने ज्ञानमय तेज से मेरे आन्तरिक जीवन के भक्षक तत्त्वों—पापभावों को नियन्त्रित भस्मीभूत करके मुझे आध्यात्मिक अमृतधन का भागी बना देता है। कारण कि मुझ आत्मा का वह आत्मा है "य आत्मनि निष्ठन्-आत्मा यस्य शरीरम्" [श० १४.६.७.३२] जैसे मुझ आत्मा का शरीर मेरी देख रेख में होने, मुझे उसके निर्दोष रहने का ध्यान रहता है, वैसा मैं यत्न से निर्दोष करता हूँ तब जब मैं आत्मा उस परमात्मा का शरीर हुआ तो मुझे निर्दोष करना मेरे में स्वगुणप्रसाद भरना स्वाभाविक है॥ २॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय देव परमात्मा जिसका है ऐसा उपासक)॥

२३. **अग्ने मृड महाँ अस्ययं आ देवयुं जनम्।**
इयेथ बर्हिरासदम्॥ ३॥

पदपाठः— **अग्ने मृड महान् असि अयः आ देवयुम् जनम् इयेथ बर्हिः आसदम् आ सदम्॥ ३॥**

अन्वयः—अग्ने महान्-अयः-असि देवयुवं जनं मृड आसदं बर्हिः-आ-इयेथ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (महान्-अयः-असि) महान् प्रगतिशील है (देवयुवं जनं मृड) तुझ इष्टदेव के चाहने वाले मुझ जन को सुखी बना "मृड सुखने" [तुदादि०] अतः (आसदं बर्हिः-आ-इयेथ) भली-भाँति बैठने योग्य मेरे हृदयावकाशरूप सदन में समन्त रूप से विराजमान हो।

पदार्थः—परमात्मन्! सम्बन्धीजन और मित्रगण सुख देने वाले हैं, परन्तु सदा नहीं और न सच्चा सुख दे सकते हैं, जड़ वस्तुओं का सुख तो क्षणिक होता है उसमें भी "भोगे रोगभयं वियोगे शोकभयम्" उनके भोग में रोग भय और वियोग में शोक भय है। सच्चा सुख और स्थायी सुख तू ही अपने चाहने वाले जन को देता है जो तुझे चाहता है, तू उसे चाहता है। अन्य सुखदाताओं का समागम बाहिर बाहिर रहता है तुझ सुखदाता का समागम मेरे अन्दर अभिन्न अछिन्न होता है। अतः मेरे अन्दर आ, अपना सर्वात्मना सुख पहुँचा॥ ३॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

२४. **अग्ने रक्षा णो अꣳहसः प्रति स्म देव रीषतः।**
तपिष्ठैरजरो दह॥ ४॥

पदपाठः— **अग्ने रक्ष नः अꣳहसः प्रति स्म देव रिषतः तपिष्ठैः अजरः अ जरः दह॥ ४॥**

अन्वयः—अग्ने देव नः-अंहसः-रक्ष अजरः तपिष्ठैः-रिषतः प्रतिदह स्म॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव! तू (नः-अंहसः-रक्ष) हमें पाप से बचा (अजरः) तू अजर-जरारहित होता हुआ (तपिष्ठैः-रिषतः प्रतिदह स्म) अपने सन्तापक साधनों से पीड़ित करने वाले कामक्रोध आदि को भस्म कर दे।

भावार्थः—परमात्मदेव! तू अन्दर बैठे पीड़ा देने वाले कामक्रोध आदि पाप को अपने सन्तापक बलों से भस्म करके हमारी रक्षा करता है, परमात्मन्! तू अजर है जरा से रहित है, संसार में हमारी रक्षा करने वाले तो जराधर्मी हैं कोई जरा को प्राप्त हो गए कोई प्राप्त होने वाले हैं, किन्तु तेरा रक्षण सदा रहने वाला है अतः हम तेरे आश्रित हैं तू ही रक्षा कर॥ ४॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को अपने अन्दर धारण करने वाला)॥

२५. **अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।**
अरं वहन्त्याशवः॥ ५॥

पदपाठः— **अग्ने युंक्ष्व हि ये तव अश्वासः देव साधवः अरम् वहन्ति आशवः॥ ५॥**

अन्वयः—अग्ने देव ये तव साधवः-आशवः—अश्वासः अरं वहन्ति युङ्क्ष्व हि॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव! (ये तव साधवः-आशवः—अश्वासः) जो तेरे साधु—कल्याणसाधक संसार में व्यापने वाले कर्तृत्व नियन्तृत्व आदि गुणधर्म घोड़ों के समान 'अत्र लुप्तोपमेयोपमानोपमावाचकालङ्कारः' मेरे मन रूप रथ को मोक्षधाम की ओर वहन करने वाले (अरं वहन्ति) पूर्ण रूप से वहन करें—पहुँचावें (युङ्क्ष्व हि) इन्हें अवश्य जोड़।

भावार्थः—परमात्मदेव मेरी यात्रा के दो क्षेत्र या दो स्थान हैं, एक तो संसार भोगस्थान जिसकी ओर ले जाने वाले शरीररथ में इन्द्रियाँ घोड़े हैं "इन्द्रियाणि

हयानाहु:'' [कठो० १.३.४] जो जहाँ तहाँ भटकाते हैं संकट तक में डालते हैं। दूसरा है यात्रा का मोक्षधाम अपवर्ग स्थान जिसकी ओर ले जाने वाले मनोरथ में जुड़ने वाले तेरे संसारव्यापी कर्तृत्व नियन्तृत्व आदि घोड़े जिनका मनन मन में निरन्तर होने से मनोरथ को मोक्षधाम की ओर ले जाते हैं, कृपया उन्हें मेरे मनोरथ में जोड़ वहाँ मैं अमृत आनन्द प्राप्त करूँ॥५॥

ऋषि:—वसिष्ठ: (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥

२६. नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
सुवीरमग्न आहुत॥ ६ ॥

पदपाठ:— नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तम् धीमहे वयम् सुवीरम् सु वीरम् अग्ने आहुत आ हुत॥ ६ ॥

अन्वय:—नक्ष्य विश्पते आहुत-अग्ने त्वा द्युमन्तं सुवीरं वयं निधीमहे॥

पदार्थ:—(नक्ष्य) हे व्याप्ति में समर्थ तथा प्राप्तव्य—शरण्य ''नक्षति व्याप्तिकर्मा'' [निघं० २.१८] ''नक्षति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] (विश्पते) प्रजाओं के पालक! (आहुत-अग्ने) हम उपासकों द्वारा अध्यात्म यज्ञ के निमित्त समन्त रूप से स्वीकार किए हुए ज्ञान प्रकाश-स्वरूप परमात्मन्! (त्वा) तुझ (द्युमन्तं सुवीरम्) ज्योतिष्मान् तथा अपने सुसिद्ध नियन्तृत्व आदि वीर्यों बलों से युक्त को ''स ह वाव वीरो य आत्मन् एव वीर्यमनु वीर:'' [जै० २.२८२] (वयं निधीमहे) हम उपासक अपने अन्दर धारण करें।

भावार्थ:—परमात्मन्! तू हम प्रजाओं का पालक राजा सब में व्याप्त और प्राप्तव्य है तू गुणों से प्रकाशमान और अपने सुसिद्ध नियन्तृत्वादि बलों से युक्त विश्व का राजा है, तेरे गुण और कर्मबल हमारे लिये कल्याणकारी हैं ग्राह्य हैं, तेरे शासन और शरण में हम तेरी सुप्रजा बनें अत: तुझे अपने अन्दर धारण करें ध्यावें॥ ६ ॥

ऋषि:—विरूप: (परमात्मा को विविध प्रकार से रूपित निरूपित करने वाला उपासक)॥

२७. अग्निर्मूर्द्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥ ७ ॥

पदपाठ:— अग्नि: मूर्द्धा दिव: ककुत् पति: पृथिव्या: अयम् अपाम् रेताꣳसि जिन्वति॥ ७ ॥

अन्वय:—अयम्-अग्नि:-मूर्धा दिव: ककुत् पृथिव्या: पति: अपां रेतांसि जिन्वति॥

पदार्थः—(अयम्-अग्निः-मूर्धा) यह परमात्माग्नि लोकत्रय—पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक की अग्नियों में मूर्धारूप है उनके ऊपर शासक है और उनका भी प्रकाशक है, अपितु (दिवः ककुत्) द्युलोक का उच्च भाग जो प्रकाशक सूर्य है वह गौण है यह परमात्मा ही उच्च प्रकाशक है **''योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म्। खं ब्रह्म''** [यजुः० ४०.१७] सूर्य में जो प्रकाशक पुरुष है सो वह ओ३म् व्यपाक ब्रह्म है। एवं (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी पर जो भौतिक अग्नि है वह गौण है यही परमात्मा अग्नि-अग्रणेता है **''तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति''** [मुण्डक० २.१०] उस परमात्मा के प्रकाशमान होने से सब प्रकाशमान होता है उसी की ज्योति से सब चमकता है (अपां रेतांसि जिन्वति) और जो अन्तरिक्ष के ''आपः-अन्तरिक्षम्'' [निघं० १.३] जलों को ''रेतः-उदकनाम'' [निघं० १.१२] प्रेरित करती है विद्युत् अग्नि सो वह भी गौण प्रेरक है वह भी यह परमात्मा ही है प्रेरक है।

भावार्थः—संसार में प्रकाश और ताप गुणों का आधार अग्नितत्त्व है, वह पृथिवी पर अग्नि नाम से, अन्तरिक्ष में विद्युत् नाम से और द्युलोक में सूर्य नाम से है, परन्तु इन तीनों अग्नियों का प्रकाशक और तापप्रद तीनों लोकों में वर्तमान परमात्मा ही है उसे ही सब ज्योतियों का ज्योति, अग्नियों का अग्नि मान और जानकर उसकी उपासना करें इन जड़ अग्नियों की नहीं॥७॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषय लोलुप, उत्थान का इच्छुक)॥

२८. इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः॥८॥

पदपाठः— इमम् उ सु त्वम् अस्माकम् सनिम् गायत्रम् नव्याꣳसम्
अग्ने देवेषु प्र वोचः॥८॥

अन्वयः—अग्ने त्वम् इमम्-उ गायत्रं सु सनिं नव्यांसम् अस्माकं देवेषु प्रवोचः॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (इमम्-उ) इस ही (गायत्रम्) गायत्री—वाणी से सम्बद्ध—वाणी विषयक ''वाग्वै गायत्री'' [काठ० २३.५] (सु सनिं नव्यांसम्) सुन्दर सम्भजनीय संसेवनीय ''वनषण सम्भक्तौ'' [भ्वादि०] 'नवीयांसम्' ईकारलोपश्छान्दसः, पुनः पुनः नवीन—नवतर अध्यात्म प्रवचन को (अस्माकं देवेषु प्रवोचः) हमारी इन्द्रियों के निमित्त प्रभाषित करा हमें अपनी इन्द्रियों को तेरी ओर प्रवृत्त करने की प्रेरणा दे।

भावार्थः—हे परमात्मन्! हमारी इन्द्रियाँ विषयों में फँसकर कुमार्ग में गति करती हैं अपितु अधःपतन का कारण बन जाती हैं, परन्तु परमात्मन्! जब तेरी

शरण लेते हैं तो तू हमें इन्द्रियों को कुमार्ग में न जाने देने तथा उन्हें सुमार्ग में चलाने का आदेश उपदेश देता है तथापि हमारी भी आकांक्षा इन्द्रियों को तेरी ओर प्रवृत्त करने में हैं "**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः**" [ऋ० १.८९.१] हम कानों से भद्र—अर्चनीय—स्तोतव्य परमात्मा को "भद्रे भन्दनीये" [निरु० ११.२०] "भन्दते अर्चतिकर्मा" [निघं० १.१६] सुनें उसका श्रवण करें और आँखों से अर्चनीय स्तोतव्य परमात्मा को देखें—दृश्य चित्र में चित्रकार को देखें ॥ ८ ॥

ऋषिः—गोपवनः (गौओं—इन्द्रियों को पवित्र करने रखने वाला संयमी उपासक)॥

२९. **तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।**
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

पदपाठः— **तम् त्वा गोपवनः गिरा जनिष्ठत् अग्ने अङ्गिरः सः पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥**

अन्वयः—अङ्गिरः पावक-अग्ने तं त्वा गोपवनः गिरा जनिष्ठत् सः-हवं श्रुधि ॥

पदार्थः—(अङ्गिरः पावक-अग्ने) हे अङ्गों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले पवित्रकारक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (तं त्वा) उस तुझ को (गोपवनः) अपनी इन्द्रियों को पवित्र करने वाला जन (गिरा जनिष्ठत्) स्तुति से अपने अन्दर प्रसिद्ध करता है—साक्षात् करता है (सः-हवं श्रुधि) वह तू हमारे ह्वान-पुकार को सुन ।

भावार्थः—परमात्मन् ! पवित्र करने वाला तथा अपने उपासक की भीतरी अभ्यर्थना को सुनने वाला है तथा उपासक के अन्दर साक्षात् हो जाता है पुनः इन्द्रियों में संयम शक्ति प्राप्त कर उनकी अशान्ति से छूट जाता है। परमात्मा का कृपापात्र बन जाता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला)॥

३०. **परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।**
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

पदपाठः— **परि वाजपतिः वाज पतिः कविः अग्निः हव्यानि अक्रमीत् दधत् रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥**

अन्वयः—वाजपतिः कविः-अग्निः दाशुषे रत्नानि दधत् हव्यानि पर्यक्रमीत् ॥

पदार्थः—(वाजपतिः कविः-अग्निः) अमृत अन्न भोग—मोक्षानन्द का स्वामी "**अमृतोऽन्नं वै वाजः**" [जै० २.१९३] क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप परमात्मा

(दाशुषे रत्नानि दधत्) स्तुति हाव भाव पूर्ण आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये रत्नों—रमणीय अङ्गों उपकरणों को धारण कराने के हेतु (हव्यानि पर्यक्रमीत्) हावभाव पूर्ण स्तुतियों को परिप्राप्त करता है—स्वीकार करता है।

भावार्थः—उपासक की हावभाव पूर्ण स्तुतियों को अमृतान्न भोग का स्वामी सर्वत्र अन्तर्यामी परमात्मा स्वीकार करता है और आत्मसमर्पणकर्ता उपासक के लिये रमणीय अङ्गों तथा स्वास्थ्य, मधुर वाणी, सुबुद्धि, धैर्य, शान्ति, अमृत भोग वररूप में शतगुणित सहस्रगुणितफल प्रदान करता है ''देहि मे ददामि ते'' [यजुः० ३.५०] ''तू दे तो मैं तुझे देता हूँ'' को चतिार्थ करता है ॥ १० ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी)॥ देवता—सूर्याग्निः (सर्वप्रकाशक सर्वप्रेरक परमात्मा)॥

३१. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ ११ ॥

पदपाठः— उत् उ त्यम् जातवेदसम् जात वेदसम् देवम् वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ ११ ॥

अन्वयः—त्यं जातवेदसं सूर्यं देवं विश्वाय दृशे केतवः उ-उद्वहन्ति॥

पदार्थः—(त्यं जातवेदसं सूर्यं देवम्) उस जात-उत्पन्नमात्र में विद्यमान तथा जातमात्र-उत्पन्नमात्र जिसमें विद्यमान हैं ऐसे सर्वाधार तथा प्रकाश प्रेरक परमात्मदेव को (विश्वाय दृशे) विश्व के दृष्ट कराने—बोध कराने के लिये (केतवः) ज्ञान कराने वाले प्रज्ञान रूप ''केतुः प्रज्ञाननाम'' [निघं० ३.९] सरित्, सागर, गिरि, पर्वत, चन्द्र, तारे (उ-उद्वहन्ति) उद्घोषित करते हैं।

भावार्थः—समस्त ग्रह तारे पृथिवी आदि पिण्ड उत्पादक सर्वव्यापक सर्वाधार प्रकाशक परमात्मा को उद्घोषित कर रहे हैं, समस्त मानवों को बोध कराने सुझाने के लिये हैं, इनके द्वारा परमात्मा का मनन होता है ॥११ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमनशील उपासक)॥

३२. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीवचातनम्॥ १२ ॥

पदपाठः— कविम् अग्निम् उप स्तुहि सत्यधर्माणम् सत्य धर्माणम् अध्वरे देवम् अमीवचातनम् अमीव चातनम्॥ १२ ॥

अन्वयः—अध्वरे कविं सत्यधर्माणम् अमीवचातनम्-अग्निदेवम् उपस्तुहि॥

पदार्थः—(अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (कविं सत्यधर्माणम्) क्रान्तदर्शीसर्वज्ञ अविनश्वर नियमवाले—नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव वाले (अमीवचातनम्-अग्निदेवम्) मानस रोग विनाशक परमात्मदेव की (उपस्तुहि) उपासना कर।

भावार्थः—परमात्मा के कर्तृत्व नियन्तृत्व कर्मफलदातृत्व आदि नियम अटल हैं, वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त—स्वभाव और अनन्तप्रकाश-ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी उपासना करना, उसे अध्यात्म यज्ञ का देव बनाना, उपासक के समस्त आन्तरिक रोगों के विनाश का हेतु है ॥१२॥

ऋषिः—सिन्धुद्वीप आम्बरीषस्त्रित आप्त्यो वा (स्यन्दमान संसारप्रवाह और स्यन्दमान मोक्षप्रवाह—दोनों प्रवाहों में आप्ति वाला अभ्युदय और निःश्रेयस का साधक हृदयाकाश में ईषा—गतिवाला या व्यापक परमात्मा में स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर बन्धन से रहित हुआ जीवन्मुक्त)॥

देवता—देव्यः (परमात्मा की ज्ञान ज्योतियाँ)॥

३३. शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥ १३॥

पदपाठः— शम् नः देवीः अभिष्टये शम् नः भवन्तु पीतये शम् योः अभि स्त्रवन्तु नः॥ १३॥

अन्वयः—देवीः नः-अभीष्टये शं भवन्तु नः पीतये शं शंयोः-नः-अभिस्त्रवन्तु॥

पदार्थः—(देवीः) परमात्मा की ज्ञानज्योतियाँ (नः-अभीष्टये) हमारी अभिकांक्षा-आभ्युदयिक सुखसम्पत्ति के लिये (शं भवन्तु) कल्याणकारी होवें, तथा (नः पीतये शम्) हमारी तृप्ति, निःश्रेयसप्राप्ति—मुक्ति के लिये कल्याणकारी होवें (शंयोः-नः-अभिस्त्रवन्तु) वे सुख शान्ति को हमारे 'अभि-उभयतः'—दोनों क्षेत्रों में बहावें वर्षावें।

भावार्थः—परमात्मा की ज्ञानज्योतियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं, वे हैं सृष्टिकर्तृता, नियन्तृता, कर्मफलदातृता आदि हमारी अभिकांक्षाओं गन्धसुख रससुख आदि के लिये, प्रत्येक गन्धादि भोग्य वस्तु में परमात्मा की महिमा, कला, विभूति, झाँकी भासित होती रहे, तभी गन्धादि सुख सच्चा सुख हो सकेगा अन्यथा परिणामतः दुःख ही सिद्ध होगा। एवं आत्मा के अन्दर साक्षात् हुईं ज्योतियाँ आनन्द धाराएँ बनकर तृप्ति—मुक्ति के लिये सिद्ध होंगी ॥१३॥

ऋषिः—उशनाः (कल्याण की कामना करने वाला उपासक)॥

३४. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः॥ १४॥

पदपाठः— **कस्य नूनम् परीणसि परि नसि धियः जिन्वसि सत्पते सत् पते गोषाता गो साता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥**

अन्वयः—सत्पते कस्य नूनं धियः परिणसि जिन्वसि ते गिरः-यस्य गोषाताः ॥

पदार्थः—(सत्पते) हे सत्पुरुषों मुमुक्षुओं के पालक परमात्मन्! (कस्य नूनम्) किसी के फिर "नूनं तर्के" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (धियः) 'मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार' प्रज्ञानों को "धीः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.१] (परिणसि) भूमा में—मोक्ष में "परिणसा बहुनाम" [निघं० ३.१] "भूमा वै सुखम्" [श० ३.१.१.१२] (जिन्वसि) तृप्त करता है (ते गिरः-यस्य गोषाताः) तेरे लिये जिसकी स्तुतियाँ इन्द्रियों में संसेवित—संगत हो गईं।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तेरे लिये की हुई स्तुतियाँ जिसकी इन्द्रियों में बैठ जाती हैं, चरितार्थ हो जाती हैं, इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय से विरत हो तेरी स्तुतियों में लग जाती हैं, वही उपासक महान् आनन्द या महान् धाम—मोक्ष को प्राप्त होता है। उसी जीवन्मुक्त का अन्तःकरण चतुष्टय तृप्त होता है, उसी पर तेरी परम कृपा होती है ॥१४॥

चतुर्थ खण्ड

छन्दः—बृहती। स्वरः—मध्यमा। ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (विद्यानिष्णात आचार्य से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक)॥

३५. **यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।**
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥ १ ॥

पदपाठः— **यज्ञायज्ञा यज्ञा यज्ञा वः अग्नये गिरागिरा गिरा गिरा च दक्षसे प्रप्र प्र प्र वयम् अमृतम् अ मृतम् जातवेदसम् जात वेदसम् प्रियम् मित्रम् मि त्रम् न शंसिषम्॥ १ ॥**

अन्वयः—यज्ञा यज्ञा गिरा गिरा च वः-दक्षसे-अग्नये अमृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न वयं प्र प्रशंसिषम्॥

पदार्थः—(यज्ञा यज्ञा गिरा गिरा च) मेरे सकल यज्ञ और सकल स्तुतियाँ "द्विरुक्तिर्वीप्सायामुभयत्र सुस्थाने-आकारादेशः" "सुपां सुलुकपूर्वसवर्णाच्छे........" [अष्टा० ७.३.३९] (वः-दक्षसे-अग्नये) "तुभ्यम्, वचनव्यत्ययः" तुझ प्रवृद्ध—सर्वत्र व्याप्त एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये हैं, अतः (अमृतं जातवेदसम्) तुझ अमृतरूप तथा उत्पन्नमात्र के आधार और ज्ञाता—(प्रियं मित्रं न) प्यारे मित्र के समान परमात्मा की (वयं प्र प्रशंसिषम्) 'अहं वचनव्यत्ययः' मैं निरन्तर प्रशंसा-

स्तुति करता हूँ।

भावार्थः—हे सर्वोत्पादक सर्वाधार सर्वज्ञ अमृतस्वरूप परमात्मन्! प्रतिदिन किया जाता हुआ यज्ञ—श्रेष्ठकर्म सदाचरण और प्रतिदिन की जाती हुई स्तुति तुझ सर्वत्र व्याप्त–महान् ज्ञानप्रकाशस्वरूप के लिये—तेरी प्राप्ति के लिये हैं। तुझ प्रिय मित्र जैसे को बहुत और निरन्तर प्रशंसित करता हूँ—चाहता हूँ मित्र समान स्नेही सङ्गी बन जा यह प्रार्थना है ॥ १ ॥

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)॥

३६. पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥

पदपाठः— पाहि नः अग्ने एकया पाहि उत द्वितीयया पाहि गीर्भिः तिसृभिः ऊर्जाम् पते पाहि चतसृभिः वसो ॥ २ ॥

अन्वयः—ऊर्जां पते वसो–अग्ने नः एकया पाहि उत द्वितीयया पाहि तिसृभिः–गीर्भिः पाहि चतसृभिः पाहि ॥

पदार्थः—(ऊर्जां पते वसो–अग्ने) हे शक्तियों के स्वामी वसाने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (नः) हमारी (एकया पाहि) अपनी एक शक्ति रूप ऋग्वाणी से—ऋग्वेदानुसार स्तुति से रक्षाकर (उत द्वितीयया पाहि) और अपनी दूसरी शक्तिरूप यजुर्वाणी–यजुर्वेदानुसार प्रार्थना से हमारी रक्षा कर (तिसृभिः–गीर्भिः पाहि) अपनी तीसरी शक्तिरूप तीसरी ''एकवचने बहुवचनं व्यत्ययेन'' सामवाणी सामवेदानुसार उपासना से हमारी रक्षा कर (चतसृभिः पाहि) अपनी शक्तिरूप चतुर्थ अथर्ववाणी अथर्ववेदानुसार जप से हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा वेदचतुष्टयी वाणी से सब मनुष्यों की रक्षा करता ही है और हम उपासकों की वेदानुसार स्तुति प्रार्थना उपासना और साक्षादर्थ–भावन जप से हमारे अन्दर ऊर्जा–ऊँचे बलों को इन्द्रियों और मन को नियन्त्रित करने तथा आत्मबल को मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रदान कर अपने पूर्ण रक्षण में ले लेता है ॥ २ ॥

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (विद्यानिष्णात आचार्य से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक)॥

३७. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

पदपाठः— बृहद्भिः अग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा भरद्वाजे भरत् वाजे समिधानः सम् इधानः यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

अन्वयः—पावक-अग्ने देव बृहद्भिः-अर्चिभिः शुक्रेण शोचिषा समिधानः यविष्ठ भरद्वाजे रेवत्-दीदिहि ॥

पदार्थः—(पावक-अग्ने देव) हे पवित्रकारक परमात्मदेव! (बृहद्भिः-अर्चिभिः) हमारे द्वारा की गई बड़ी अर्चनाओं, हावभावभरी स्तुतियों से "अर्च पूजायाम्" [भ्वादि०] "अर्चति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] "ततः-इसिः प्रत्यय औणदिकः" पुनः प्रसन्न होकर (शुक्रेण शोचिषा) अपने सत्य ज्ञान प्रकाश से "सत्यं वै शुक्रम्" [श० ३.९.३.२५] (समिधानः) दीप्यमान-प्रकाशमान हुआ (यविष्ठ्य) नित्य युवा—जरारहित परमात्मन्! (भरद्वाजे रेवत्-दीदिहि) तेरे अर्चन ज्ञानप्रकाशबल धारण करने वाले मुझ उपासक के निमित्त ऐश्वर्ययुक्त प्रकाशित हो।

भावार्थः—हे पवित्रकारक नित्य अजर परमात्मन्! तू अपने उपासक की महत्त्वपूर्ण हार्दिक अर्चनाओं—स्तुतियों से प्रसन्न होकर उस अर्चनाकर्ता के निमित्त अपने सत्यज्ञानप्रकाश से प्रकाशमान हुआ अध्यात्मैश्वर्य प्रकाशित कर जो अनश्वर है—अमर है ॥ ३ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥

३८. **त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **त्वेइति अग्ने स्वाहुत सु आहुत प्रियासः सन्तु सूरयः यन्तारः ये मघवानः जनानाम् ऊर्वम् दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—स्वाहुत-अग्ने ये सूरयः त्वे गोनाम्-ऊर्वं दयन्त जनानां मघवानः-यन्तारः प्रियासः सन्तु ॥

पदार्थः—(स्वाहुत-अग्ने) हे भली प्रकार अपने अन्दर अपनाए हुए ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (ये सूरयः) जो स्तुतिकर्ता उपासकजन "सूरिः स्तोतृनाम" [निघं० २.१६] (त्वे) तेरे लिये चतुर्थ्यां शे—"सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे..." [अष्टा० ७.३.३९] (गोनाम्-ऊर्वं दयन्त) स्तुतियों का बाहुल्य "उरु बहुनाम" [निघं० ३.१] प्रदान करते हैं—भेंट देते हैं (जनानां मघवानः-यन्तारः प्रियासः सन्तु) वे मनुष्यों में धनवान् दानी प्यारे हैं।

भावार्थः—हे मुझे आत्मभाव से प्राप्त परमात्मन्! तुझे स्तुतिकर्ता उपासक प्यारे लगते हैं वे तेरे लिये स्तुतियाँ देते हैं तेरी दृष्टि में ये जन ही धनी हैं और दानी हैं, भौतिक धन के धनी और दानी ऊँचे धनी और दानी नहीं। उनका धन और दानफल अस्थिर है, यहीं रहजाने वाला है, परन्तु जो स्तुति के धनी और दानी हैं वे महामानव धन्य हैं, हम तेरी स्तुति के धनी और दानी बनें ॥ ४ ॥

ऋषिः —भरद्वाजः (अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला उपासक)॥

३९. अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः।

अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

पदपाठः— अग्ने जरितः विश्पतिः तपानः देव रक्षसः अप्रोषिवान् अ प्रोषिवान् गृहपते गृह पते महान् असि दिवः पायुः दुरोणयुः दुः ओनयुः ॥ ५ ॥

अन्वयः —जरितः-गृहपते देव-अग्ने रक्षसः-तपानः-विश्पतिः दिवः पायुः-महान्-असि दुरोणयुः-अप्रोषिवान्॥

पदार्थः—(जरितः-गृहपते देव-अग्ने) "जरयितः-अन्तर्गतणिजर्थः" हे अपनी स्तुति की प्रेरणा देने वाले, मेरे हृदय सदनवासी स्वामी अन्तर्यामी परमात्मदेव! तू (रक्षसः-तपानः-विश्पतिः) जिससे रक्षा करनी चाहिए ऐसे काम क्रोध आदि पाप का तापित करने वाला प्रजापालक राजा के समान "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः" (दिवः पायुः-महान्-असि) अमृत लोक-मोक्ष धाम का "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [यजु० ३१.३] रक्षक है महान् है, परन्तु (दुरोणयुः-अप्रोषिवान्) मेरे हृदय घर को चाहता हुआ "दुरोणं गृहनाम" [निघं० ३.४] "छन्दसि परेच्छायां क्यच्" उससे प्रवास न करने वाला भी तू है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू दोषों दुष्टविचारों से हमें बचाता है प्रजापालक राजा की भाँति रक्षा करता है, मेरे हृदय घर में आकर बसने वाला सच्चा साथी है, एक बार आकर त्यागता नहीं है। अपनी स्तुति की प्रेरणा देता है, मेरे कल्याणार्थ तथा मेरे लिये मोक्षधाम का रक्षक है॥ ५॥

ऋषिः —प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)॥

४०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥

पदपाठः— अग्ने विवस्वत् वि वस्वत् उषसः चित्रम् राधः अमर्त्य अ मर्त्य आ दाशुषे जातवेदः जात वेदः वह त्वम् अद्य अ द्य देवान् उषर्बुधः उषः बुधः ॥ ६ ॥

अन्वयः —जातवेदः-अमर्त्य-अग्ने दाशुषे उषसः विवस्वत्-चित्रं राधः आवह अद्य त्वम् उषबुधः-देवान्-आवह॥

पदार्थः—(जातवेदः-अमर्त्य-अग्ने) हे उत्पन्नमात्र में विद्यमान तथा उत्पन्नमात्र

के ज्ञाता अमर परमात्मन्! तू (दाशुषे) स्वात्मसमर्पण कर देने वाले उपासक के लिये (उषसः) स्वप्रकाशरूप मोक्षधाम के (विवस्वत्-चित्रं राधः) विशेष सुख जिसमें है ऐसे अलौकिक ऐश्वर्य को (आवह) प्राप्त करा (अद्य) आज—इसी जीवन में (त्वम्) तू (उषर्बुधः-देवान्-आवह) स्वप्रकाशरूप मोक्षधाम को अनुभव करने वाले मुक्तात्माओं की ओर मुझे लेजा।

भावार्थः—परमात्मा के प्रति उपासना द्वारा आत्मसमर्पण करने वाले के लिये मोक्षैश्वर्य प्रदान करता है और उसे मुक्तात्माओं में पहुँचा देता है जहाँ अमर परमात्मा का सङ्ग निरन्तर होता रहता है। नश्वर संसार में तो यह मर्त्य-मरण धर्मा बना रहता है॥ ६॥

ऋषिः—तृणपाणिः (समित्पाणि के समान तृणपाणि—भारी भेंट भी परमात्मा के लिये तृण समान है उसके वरदान के सम्मुख, ऐसा निरभिमान उपासक)॥

४१. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः॥ ७॥

पदपाठः— त्वम् नः चित्रः ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय अस्य रायः त्वम् अग्ने रथीः असि विदाः गाधम् तुचे तु नः॥ ७॥

अन्वयः—चित्र वसो-अग्ने त्वं नः-ऊत्या राधांसि चोदय अस्य रायः-रथीः-असि तुचे तु नः-गाधं विदा॥

पदार्थः—(चित्र वसो-अग्ने) हे अद्भुत गुण शक्ति सम्पन्न तथा सबके अन्दर बसने वाले परमात्मन्! (त्वम्) तू (नः-ऊत्या) हमारी रक्षा हेतु (राधांसि चोदय) संसिद्ध धनों को प्रेरित कर (अस्य रायः-रथीः-असि) इस अभीष्ट धनैश्वर्य का तू रमणकर्ता—धनस्वामी या धन रथ का ईरयिता—प्रेरक प्रदाता है (तुचे तु नः-गाधं विदा) सन्तानोत्पादन के लिये "तुक् 'तुच्' अपत्यनाम" [निघं० २.२] तो जो प्रतिष्ठारूप वीर्य को प्राप्त करा संयत कर "गाधृप्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च" [भ्वादि०]॥

भावार्थः—परमात्मा अद्भुत देव है वह हमें बसने के साधन देता है और संसिद्ध भोग धनों को और भोग साधनों को भी प्रेरित करता है, वह रमणीय धन का स्वामी है। हमारे शरीर के अन्दर मूल धातु वीर्य को संयत करने का बल देता है वह जीवन का स्नेह है स्नेह से ही ज्योति आती है मृत्युरूप तमः को हटाती है॥ ७॥

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविध निरूपित करने वाला उपासक)॥

४२. त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥ ८॥

पदपाठः— **त्वम् इत् सप्रथाः स प्रथाः असि अग्ने त्रातः ऋतः कविः त्वाम् विप्रासः वि प्रासः समिधान सम् इधान दीदिवः आ विवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥**

अन्वयः—त्रातः समिधान दीदिवः-अग्ने त्वम्-इत् सप्रथाः-ऋतः कविः-असि त्वां वेधसः-विप्रासः-आविवासन्ति ॥

पदार्थः—(त्रातः समिधान दीदिवः-अग्ने) हे त्राणकर्ता, अपने गुण प्रदान कर चमकाने वाले "समिन्धयमानः-अन्तर्गतणिजर्थः" स्वयं देदीप्यमान परमात्मन्! (त्वम्-इत्) तू ही (सप्रथाः-ऋतः कविः-असि) सर्वतः पृथु-सर्वत्र-व्याप्त एवं प्रसिद्ध "सप्रथाः सर्वतः पृथु...." [निरु० ६.७] सत्यव्रती "ऋतवान्-अकारो मत्वर्थीयः" सर्वज्ञ है (त्वां वेधसः-विप्रासः-आविवासन्ति) तुझे वेधन करने वाले—लक्ष्य बनाने वाले "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते" [मुण्ड० २.२.४] मेधावी विद्वान् भली प्रकार अपने अन्दर स्तुति द्वारा सेवन करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तू ही त्राणकर्ता सर्वत्र प्रसिद्ध प्रकाशक, प्रकाशमान सर्वज्ञ देव है तथा सत्यवान् सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति धृति में स्थिरधर्मी जीवों के कर्मफलों के देने में सत्यव्रती है, अतएव तुझ से प्रार्थना की परम्परा है "असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय" [श० १४.२.१.३०] असत्—पाप से सत् पुण्य की ओर लेजा, अन्धकार से ज्योति की ओर लेजा, मृत्यु से अमृत की ओर लेजा। मेधावी लक्ष्यवेधी तेरा वेधन करते हैं ओ३म् नाम को धनुष अपने आत्मा को शर और तुझ ब्रह्म को लक्ष्य बनाकर वेधन करते हैं तेरा आनन्दरस चुवाने के लिये। सो मैं उपासक भी उनमें से एक हूँ॥ ८ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषय लोलुप उत्थान का इच्छुक जन)॥

४३. **आ नो अग्ने वयोवृधꣳ रयिं पावक शꣳस्यम्।**
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳ सुनीती सुयशस्तरम्॥ ९ ॥

पदपाठः— **आ नः अग्ने वयोवृधम् वयः वृधम् रयिम् पावक शꣳस्यम् रास्व च नः उपमाते उप माते पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम् सुनीती सु नीती सुयशस्तरम् सु यशस्तरम्॥ ९ ॥**

अन्वयः—पावक-उपमाते-अग्ने नः वयोवृधं शंस्यं रयिं सुनीती-आरास्व पुरुस्पृहं सुयशस्तरं च नः रयिम्-आरास्व॥

पदार्थः—(पावक-उपमाते-अग्ने) हे पवित्रकारक, जीवन को ऊँचा बनाने वाले, अग्रणायक परमात्मन्! (नः) हमारे लिये (वयोवृधं शंस्यम्) आयुवर्धक,

प्रशंसनीय (रयिं सुनीती-आरास्व) ओजधन को सुनेतृत्व से भरपूर दो तथा (पुरुस्पृहं सुयशस्तरम्) बहुत चाहने योग्य, अत्यन्त अच्छेयश करने वाले (च) और (नः) हमारे लिये (रयिम्-आरास्व) ज्ञान धन को सुनेतृत्व से भरपूर दे।

भावार्थः—परमात्मा उपासक के भीतरी जीवन का निर्माण करता है अपितु उसके अन्दर प्रशंसनीय जीवनगतिवर्धक ओज को सुनेतृत्व से भर देता है। तथा उसे पवित्र कर बहुत आकांक्ष्य अत्यन्त अच्छे यश करने वाले अध्यात्म ज्ञान को भी सुनेतृत्व से भर देता है॥ ९ ॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक)॥

४४. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये॥ १० ॥

पदपाठः— यः विश्वा दयते वसु होता मन्द्रः जनानाम् मधोः न पात्रा प्रथमानि अस्मै प्र स्तोमाः यन्तु अग्नये॥१०॥

अन्वयः—यः-मन्द्रः-होता जनानाम् विश्वा वसु दयते अस्मै-अग्नये मधोः-न प्रथमानि पात्रा स्तोमाः प्रयन्तु॥

पदार्थः—(यः-मन्द्रः-होता जनानाम्) जो हर्षित करने वाला दाता "हु दानेऽत्र" परमात्मा जनों के लिये "चतुर्थ्यथे बहुलं छन्दसि" [अष्ट० २.३.१२] (विश्वा वसु दयते) समस्त प्रकार के धनों को देता है। (अस्मै-अग्नये) इस परमात्मा के लिये (मधोः-न प्रथमानि पात्रा) मधुर रस के श्रेष्ठ पात्रों के समान (स्तोमाः प्रयन्तु) हमारे स्तुतिवचन हावभाव रस भरे प्राप्त हों।

भावार्थः—परमात्मा हर्षयिता दाता है, उसके दिए सब प्रकार के पदार्थ हैं उदरपूर्ति के लिये अन्न, स्वाद के लिये फल, स्वास्थ्य के लिये ओषधि, सुख लाभ के लिये कपास काष्ठ लोह, भूषार्थ स्वर्णादि और रत्न, पीने-नहाने-धोने को जल, ताप प्रकाशार्थ अग्नि, श्वास लेने को वायु आदि दिए हैं। इनके प्रतीकार में हम केवल हावभाव भरे स्तुति वचन मधुर रस भरे पात्रों के समान उसके लिये दे सकते हैं—देते हैं कृतज्ञता प्रदर्शित करने और सङ्ग लाभ के लिये॥ १० ॥

पञ्चम खण्ड

छन्दः—बृहती। स्वरः—मध्यमः। ऋषिः—वशिष्ठो वामदेवो वा (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला या वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥

४५. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥ १ ॥

पदपाठः— **एना वः अग्निम् नमसा ऊर्जः नपातम् आ हुवे प्रियम् चेतिष्ठम् अरतिम् स्वध्वरम् सु अध्वरम् विश्वस्य दूतम् अमृतम् अ मृतम्॥ १ ॥**

अन्वयः—वः उर्जः-नपातं प्रियं स्वध्मरं चेतिष्ठं अरतिं विश्वस्य-दूतम् अमृतम्-अग्निम् एनः-नमसा-आहुवे॥

पदार्थः—(वः) तुझ 'वचन व्यत्ययः' (उर्जः-नपातम्) अपने और मेरे आत्मबल के न गिराने वाले (प्रियम्) स्नेह करने वाले और स्नेह करने योग्य—(स्वध्वरम्) श्रेष्ठ अध्यात्म यज्ञ के आधार देव—(चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेताने वाले—(अरतिम्) कामवासनारहित या प्राप्तव्य—(विश्वस्य-दूतम् अमृतं-अग्निम्) सबको अपना सन्देश देने वाले अमर स्वरूप परमात्मा को (एनः-नमसा-आहुवे) इस नम्र स्तुतिरूप भेंट द्वारा अपने अन्दर आमन्त्रित करता हूँ।

भावार्थः—मेरे परमात्मन्! तू अपने और उपासक के आत्मबलों को न गिराने वाला है अपितु उपासक को ऊपर उठाते-उठाते अपने अमृत शरण में ले लेता है, तू अमृतस्वरूप है। उपासक को सदा सावधान रखता है चेष्टाकुशल बनाता है उपासक का प्यारा और उपासक से प्यार करने वाला है सत्य संदेश से हितसाधक परमात्मा तू है, तुझे मैं अपने हृदय में नम्र स्तुति से आमन्त्रित करता रहूँ॥ १ ॥

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)॥

४६. शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि॥ २ ॥

पदपाठः— **शेषे वनेषु मातृषु सम् त्वा मर्त्तासः इन्धते अतन्द्रः अ तन्द्रः हव्यम् वहसि हविष्कृतः हविः कृतः आत् इत् देवेषु राजसि॥ २ ॥**

अन्वयः—वनेषु मातृषु शेषे त्वां मर्तासः समिन्धते अतन्द्रः हविष्कृतः-हव्यं वहसि आत्-इत् देवेषु राजसि॥

पदार्थः—(वनेषु मातृषु शेषे) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू रश्मियों "वनं रश्मिनाम" [निघं० १.५] मानव मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुरसों में "यः कपाले रसो लिप्त आसीत् ते रश्मयोऽभवन्" [श० ६.१.२.६] एवं शरीर की नाड़ियों में "मातरः-नद्यः" [निघं० १.१३] "सीराः-नद्यः" [निघं० १.१३] "सीराः-नाड्यः सीरा युञ्जन्ति कवयो...." [यजु० १२.६७] निहित रहता है (त्वां मर्तासः समिन्धते) तुझे मनुष्य प्रदीप्त करते हैं—साक्षात् करते हैं (अतन्द्रः) तू तन्द्रारहित-सावधान-अनन्त ज्ञानवान् (हविष्कृतः-हव्यं वहसि) आत्मसमर्पी की हावभाव

भरी स्तुतिरूप भेंट को वहन करता है—स्वीकार करता है (आत्-इत्) इसके अनन्तर ही (देवेषु राजसि) तू उस आत्मसमर्पी मर्त्य—मरणधर्मीजन को मुक्तात्माओं में विराजमान कर देता है ''राजयसि-राजसि-अन्तर्गतणिजर्थः''।

भावार्थः—परमात्मन्! तू मानव मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं और शरीर की प्राणनाडियों में अदृश्य रूप में वर्तमान है, तुझे उपासक अपनी स्तुतियों से वैराग्यपूर्वक मन में बिठाता है और मस्तिष्क तन्तुओं में प्राणनाड़ियों में अभ्यास से सिद्ध कर हृदय में साक्षात् करता है। ऐसे उपासक को परमात्मन् तू मुक्तात्माओं में पहुँचा देता है। अपना अमृतानन्द पुरस्कार प्रदान करता है॥ २॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने में कुशल)॥

४७. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः॥ ३॥

पदपाठः— अदर्शि गातुवित्तमः गातु वित्तमः यस्मिन् व्रतानि आदधुः आ दधुः उप ऊ सु जातम् आर्यस्य वर्द्धनम् अग्निम् नक्षन्तु नः गिरः॥ ३॥

अन्वयः—यस्मिन् व्रतानि-आदधुः गातुवित्तमः-अदर्शि आर्यस्य वर्धनं सुजातम्-अग्निम् नः-गिरः उपनक्षन्तु-उ॥

पदार्थः—(यस्मिन् व्रतानि-आदधुः) जिसकी प्राप्ति के निमित्त व्रतों-ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य आदि को समन्त-रूप से धारण करते हैं ''यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'' [कठो० १.१.१५] (गातुवित्तमः-अदर्शि) हमारी विधि का भली-भाँति ज्ञाता ''गातुः-गमनम्'' [निरु० ४.२२] दृष्ट होता है—साक्षात् हो जाता है (आर्यस्य वर्धनं सुजातम्-अग्निम्) उपासक या श्रेष्ठ गुण के वर्धक सम्यक् साक्षात् परमात्मा को (नः-गिरः) हमारी स्तुतियाँ (उपनक्षन्तु-उ) निरन्तर प्राप्त होती रहें ''नक्षति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

भावार्थः—जो परमात्मा हमारी गतिविधियों को जानता है जिसकी प्राप्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य आदि व्रत धारण करते हैं उसका आत्मा में साक्षात्कार हो जाता है, उसे हमारी स्तुतियाँ निरन्तर प्राप्त होती रहें जिससे कि वह मुझ उपासक एवं श्रेष्ठगुण को बढ़ाता रहे॥ ३॥

ऋषिः—मनुः (मननशील उपासक)॥

४८. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम्॥ ४॥

पदपाठः— **अग्निः उक्थे पुरोहितः पुरः हितः ग्रावाणः बर्हिः अध्वरे ऋचा यामि मरुतः ब्रह्मणः पते देवाः अवः वरेण्यम्॥ ४॥**

अन्वयः—उक्थे-अध्वरे अग्निः पुरोहितः-ग्रावाणः-बर्हिः ब्रह्मणस्पते-मरुतः-देवाः वरेण्यम्-अवः-ऋचा यामि॥

पदार्थः—(उक्थे-अध्वरे) स्तुतिरूप यज्ञ में (अग्निः पुरोहितः-ग्रावाणः-बर्हिः) अग्नि तो है परमात्मा शेष पुरोहित, ग्रावाणः-विद्वान्-ऋत्विक् "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३.९.३.१४] और बर्हि-यज्ञासन हैं सो वे (ब्रह्मणस्पते-मरुतः-देवाः) हे मेरे शरीर के अन्दर वर्तमान अन्तःकरणयुक्त प्राण! "प्राणो वै ब्रह्मणस्पतिः" [श० ४.४.१.२३] अन्य प्राण ऋत्विक् "प्राणा देवाः" [श० ६.३.१.१५] और इन्द्रियाँ "प्राणा इन्द्रियाणि" [तां० २.१४.२३] तुम हो। अतः (वरेण्यम्-अवः-ऋचा यामि) यजनीय परमात्मा से वरने योग्य रक्षण को स्तुति के द्वारा माँगता हूँ कि तुम इस वाक्-यज्ञ को सम्यक् सिद्ध करो।

भावार्थः—स्तुतियज्ञ में यज्ञाधिनायक बाहिरी अपेक्षित नहीं किन्तु यजनीय देव तो है परमात्मा, पुरोहित है हृदयस्थ अन्तःकरण सहित मुख्य प्राण, ऋत्विक् हैं अन्य प्राण तथा इन्द्रियाँ, स्तुतिकर्ता अपना आत्मा है यजमान, शरीर है वेदि, स्तुतियाँ हैं आहुतियाँ। ये सब यज्ञिय भावना से प्रवृत्त हुए परमात्मा को प्रकाशित करते हैं॥ ४॥

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (आत्मसमर्पण सुदानकर्ता, स्तुति का बहुत सींचने वाला उपासक)॥

४९. **अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।**
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽ ग्निः सुदीतये छर्दिः॥ ५॥

पदपाठः— **अग्निम् ईडिष्व अवसे गाथाभिः शीरशोचिषम् शीर शोचिषम् अग्निम् राये पुरुमीढ पुरु मीढ श्रुतम् नरः अग्निः सुदीतये सु दीतये छर्दिः॥ ५॥**

अन्वयः—पुरुमीढ-अवसे गाथाभिः शीरशोचिषम्-अग्निम्-ईडिष्व राये श्रुतम्-अग्निं सुदीतये-अग्निः-नरः-छर्दिः॥

पदार्थः—(पुरुमीढ-अवसे गाथाभिः) हे बहुत स्तुतियों को सींचने वाले उपासक तू अपनी रक्षा के लिये स्तुतियों से "गाथा वाङ्नाम" [निघं० १.११] (शीरशोचिषम्-अग्निम्-ईडिष्व) सर्वत्र शयनशील-व्यापक ज्योति वाले परमात्मा की अवश्य स्तुति कर (राये श्रुतम्-अग्निम्) मोक्षैश्वर्य के लिये प्रसिद्ध परमात्मा

की शरण ले (सुदीतये-अग्निः-नरः-छर्दिः) सुदान-आत्मदान-आत्मसमर्पण करने वाले के लिये नायक परमात्मा शरण बन जाता है ''छर्दिः-गृहनाम'' [निघं० ३.४]।

भावार्थः—मानव की सच्ची रक्षा परमात्मा की स्तुति से प्राप्त होती है अतः स्तुतियों से उस को तृप्त कर, सर्वत्र व्याप्त परमात्मा की शरण परमरक्षा है, वह आत्मसमर्पण करने वाले अपने उपासक को मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने के लिये अपनी अनश्वर शरण में ले लेता है॥५॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी उपासक)॥

५०. **श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।**
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे॥ ६॥

पदपाठः— **श्रुधि श्रुत्कर्ण श्रुत् कर्ण वह्निभिः देवैः अग्ने सयावभिः स यावभिः आ सीदतु बर्हिषि मित्रः मि त्रः अर्यमा प्रातर्यावभिः प्रातः यावभिः अध्वरे॥ ६॥**

अन्वयः—श्रुत्कर्ण-अग्ने श्रुधि अध्वरे बर्हिषि सयावभिः-वह्निभिः-देवैः मित्रः-आसीदतु प्रातर्यावभिः-अर्यमा 'आसीदतु'॥

पदार्थः—(श्रुत्कर्ण-अग्ने) हे श्रवणसमर्थ कर्णशक्तिवाले—श्रवणार्थ शक्तिरूप कर्ण वाले परमात्मन्! तू (श्रुधि) मेरी प्रार्थना को सुन स्वीकार कर, वह यह कि (अध्वरे बर्हिषि) अध्यात्म यज्ञ में हृदयाकाश में (सयावभिः-वह्निभिः-देवैः) साथ गमन करने वाले, साथ प्राप्त होने वाले निजस्वरूप वाहक दिव्यगुणों के साथ तू 'आसीद-इत्याकांक्षा' आ विराज। तथा (मित्रः-आसीदतु) आप वायुरूप होकर ''अयं वै वायुर्मित्रोऽयं पवते'' [श० ६:५.४.१४] विराजें (प्रातर्यावभिः-अर्यमा 'आसीदतु') आप अपने से प्रथम आने वाले—प्राप्त होने वाले गुणों के साथ सूर्यरूप में ''अर्यमा-आदित्यः'' [निरु० ११.१३] आ विराजें।

भावार्थः—परमात्मा स्तुति आमन्त्रण को सुनने में स्वीकार करने में पूर्ण समर्थ और स्वतन्त्र है वह उपासक के हृदय में आता है अग्निरूप में ज्वालाओं के समान वाहक गुणों के साथ, वायुरूप में प्रवाहों के समान प्रेरक गुणों के साथ और सूर्यरूप में प्रातः रश्मियों के समान ज्ञानप्रकाशक गुणों के साथ. वह तेज, बल और ज्ञान का दाता है॥ ६॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मगुणों को अपने अन्दर धारण करने में कुशल उपासक)॥

५१. **प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।**
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि॥ ७॥

पदपाठः— **प्र दैवोदासः दैवः दासः अग्निः देवः इन्द्रः न मज्मना अनु मातरम् पृथिवीम् वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्म्मणि॥ ७॥**

अन्वयः—दैवोदासः-अग्निः-देवः नाकस्य शर्मणि तस्थौ मातरं पृथिवीं प्रवावृते-अनु 'अनु वावृते' 'विवावृते' इन्द्रः-नः मज्मना॥

पदार्थः— (दैवोदासः-अग्निः-देवः) द्युलोक के दर्शक सूर्य में वर्तमान "दिवोदासः-षष्ठीविभक्तेरलुक् समासे, दासो दर्शकः सूर्यः" दस दर्शने (चुरादि०) तत्र वर्तमानः-दैवोदासः परमात्मा देव "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म्, खं ब्रह्म" [यजु० ४०.१७] (नाकस्य शर्मणि तस्थौ) आनन्द के घर मोक्षधाम "शर्म गृहनाम" [निघं० ३.४] में स्थिर हुआ (मातरं पृथिवीं प्रवावृते-अनु 'अनु वावृते' 'विवावृते') समस्त वस्तुओं की निर्मात्री प्रथित जगती सृष्टि "जगती हीयं पृथिवी" [श० २.२.१.२०] "जगत्यां जगत्" [यजु० ४०.१] के प्रति पुनः पुनः प्रवृत्त होता है—उत्पन्न करता है, पुनः पुनः अनुवृत्त होता अनुशासित करता है—धारण करता है, पुनः पुनः विवृत्त होता है—उससे विगत होता है—उसका संहार करता है, यह ऐसा है (इन्द्रः-नः मज्मना) जैसे राजा शासन बल से "मज्मना बलनाम" [निघं० २.९] राष्ट्र को बनाता-बढ़ाता है, उसका रक्षण करता है, उससे निवृत्त भी हो जाता है। वह ऐसा परमात्मा मोक्ष से पूर्व मेरे हृदय में प्राप्त हो।

भावार्थः— सूर्य के प्रकाश और ताप का प्रभाव बड़ा भारी है, परन्तु इस में प्रकाश और ताप देने वाला इसके अन्दर वर्तमान व्यापक ओ३म् ब्रह्म परमात्मा है वही मुक्तों को मोक्षरूप आनन्द भवन में बसाता है और वही इस विस्तृत सृष्टि को उत्पन्न करता है धारण करता और अन्त में इसका प्रलय करता है, उसे हृदय में धारण करना चाहिए॥ ७॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से परमात्मा में अतनगमन प्रवेश करने वाला या पवित्र हो गति प्रवेश करनेवाला उपासक)॥

५२. **अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।**
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण॥ ८॥

पदपाठः— **अध ज्मः अध वा दिवः बृहतः रोचनात् अधि अया वर्द्धस्व तन्वा गिरा मम आ जाता सुक्रतो सु क्रतो पृण॥ ८॥**

अन्वयः—जात सुक्रतो अध ज्मः-अधःवा बृहतःरोचनात्-दिवः-अधि मम गिरा अया तन्वा वर्धस्व पृण॥

पदार्थः—(जात सुक्रतो) हे प्रसिद्ध तथा सुकर्मवाले! "क्रतुः कर्मनाम" [निघं० २.१] तू (अध ज्मः-अधःवा बृहतःरोचनात्-दिवः-अधि) अथवा पार्थिव वस्तुओं में वर्तमान "ज्मा पृथिवी" [निघं० १.१] अथवा महान् प्रकाशमान द्युलोक में द्युलोकस्थ तारामण्डल में वर्तमान तेरे गुणों से (मम गिरा) मेरी स्तुति से (अया तन्वा वर्धस्व) इस अपनी द्यावापृथिवीमयी एक पाद काया से "पादोऽस्य विश्वा भूतानि" [ऋ० १०.९०.३] मेरे अन्दर बढ़कर साक्षात् हो (पृण) इस प्रकार मुझे तृप्त कर।

भावार्थः—परमात्मन्! पृथिवी की वनस्पतियों, सोना-चाँदी रत्नों, मनुष्य पशु-पक्षी सरिसृपों, सरित् सागर पर्वतों में और द्युलोक के विविध ग्रहतारों में तेरे कृतिगुणों के दर्शन से द्यावापृथिवीमयी सृष्टिरूप तेरी एक पाद काया द्वारा तेरे अनन्त स्वरूपज्ञान से और मेरे द्वारा की गई स्तुति से मेरे अन्दर बढ़-बढ़ कर साक्षात् होता रहे मुझे प्राप्त कर॥ ८॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सबको मित्र बनाने वाला उपासक)॥

५३. **कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः।**
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः॥ ९॥

पदपाठः— **कायमानः वना त्वम् यत् मातॄः अजगन् अपः न तत् ते अग्ने प्रमृषे प्र मृषे निवर्त्तनम् नि वर्त्तनम् यत् दूरे दुः ए सन् इह अभुवः॥ ९॥**

अन्वयः—अग्ने वना कायमानः यत्-मातॄः-अपः-अजगन् तत् ते निवर्तनं न प्रमृषे यत्-दूरे सन्-इह-अभुवः॥

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन्! तू (वना कायमानः) ज्ञानतन्तुओं—वैराग्यभावनाओं को चाहता हुआ मेरे प्रमाद से (यत्-मातॄः-अपः-अजगन्) जो वैराग्यशून्य अभ्यासमात्र के द्वारा नाड़ियों प्राणों के प्रति चला गया—छिप गया साक्षात् न हो सका (तत् ते निवर्तनं न प्रमृषे) तेरा वह यह मेरी ज्ञानदृष्टि वैराग्यदृष्टि से हट जाना सहन नहीं करता हूँ (यत्-दूरे सन्-इह-अभुवः) कि तू मेरे ध्यान से दूर होता हुआ यहाँ मेरे अन्दर साक्षात् हो सके।

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार अभ्यास और वैराग्य से होता है, वैराग्य का स्थान ऊँचा है "तस्य परं वैराग्यमुपायः" [योग० १.१८ व्यास०] असम्प्रज्ञात् समाधि का उपाय परवैराग्य है, उसे प्रमाद से त्याग कर अभ्यासमात्र से परमात्मा के साक्षात्कार की आशा रखना तो परमात्मा को अपने से दूर करना है॥ ९॥

ऋषिः—कण्वः (मेधावी वक्ता प्रगतिशील उपासक)॥

५४. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ १०॥

पदपाठः— नि त्वाम् अग्ने मनुः दधे ज्योतिः जनाय शश्वते दीदेथ कण्वे ऋतजातः ऋत जातः उक्षितः यम् नमस्यन्ति कृष्टयः॥१०॥

अन्वयः—अग्ने त्वां ज्योतिः शश्वते जनाय मनुः-निदधे ऋतजातः-उक्षितः कण्वे दीदेथ यं कृष्टयः-नमस्यन्ति॥

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन्! (त्वां ज्योतिः) तुझ ज्योति को (शश्वते जनाय) शाश्वतिकजन—अमरजन मुक्त आत्मा हो जाने के लिये (मनुः-निदधे) मननशील उपासक अन्दर धारण करता है, (ऋतजातः-उक्षितः) ऋत-वेदज्ञान के श्रवण से प्रसिद्ध तथा ध्यान से सिक्त-निदिध्यासन से प्राप्त हुआ (कण्वे दीदेथ) मेधावी ध्यानी के अन्दर प्रकाशित हो जाता है (यं कृष्टयः-नमस्यन्ति) जिस परमात्मा को कर्मशील साधारणजन "कृष्टयः-मनुष्याः" [निघं० २.३] नमस्कार करते हैं बाहरी रीति से स्वीकार करते हैं।

भावार्थः—साधारणजन परमात्मा का श्रवण करके प्रत्येक कर्म के अनुष्ठान में उसे नमस्कारमात्र करके स्वीकार करते हैं। उनसे उत्कृष्टजन श्रवण के अनन्तर परमात्मा का मनन भी करते हैं। और ऊँचे अधिकारी उपासक श्रवण मनन के पश्चात् परमात्मा का निदिध्यासन भी करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। "आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्" [योग० १.४८ व्यास०] आगम—श्रवण से, अनुमान—मनन से, ध्यानाभ्यासरस—निदिध्यासन से इन तीन स्थानों में प्रज्ञा को लगाकर साक्षात्कार प्राप्त करते हैं॥ १०॥

इति छन्दःपदे प्रथमप्रपाठकार्द्धः

षष्ठ खण्ड

छन्दः—बृहती। स्वरः—मध्यमः। ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

५५. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते॥ १॥

पदपाठः— **देवः वः द्रविणोदाः द्रविणः दाः पूर्णाम् विवष्टु आसिचम् आ सिचम् उत् वा सिञ्चध्वम् उप वा पृणध्वम् आत् इत् वः देवः ओहते ॥ १ ॥**

अन्वयः—द्रविणोदाः-देवः वः पूर्णाम्-आसिचं विवष्टु उत्सिञ्चध्वं वा-उपपृणध्वं वा आत्-इत् देवः-वः-ओहते ॥

पदार्थः—(द्रविणोदाः-देवः) द्रविण-धन-मोक्षैश्वर्य ''द्रविणोदाः-धनं द्रविणम्'' [निरु० ८.१] को देने वाला परमात्मा ''द्रविणोदा इति द्रविणं ह्येभ्यो ददाति'' [श० ६.३.३.१३] (वः पूर्णाम्-आसिचम्) उपासकजनो तुम्हारी—अपनी हावभावभरी स्निग्ध उपासनास्थलीहृदय भूमि को (विवष्टु) विशेषरूप से चाहे ''वश कान्तौ'' [अदादि०] अतः (उत्सिञ्चध्वं वा-उपपृणध्वं वा) तुम अपनी स्निग्ध उपासनाधारा से परमात्मा को सींचो और आपूर भरपूर कर दो (आत्-इत्) अनन्तर ही—तुरन्त ही (देवः-वः-ओहते) परमात्मदेव तुम्हें अपनी ओर समन्तरूप से वहन कर लेता है—अपने में स्थान दे देता है।

भावार्थः—वह मोक्षदाता परमात्मा उपासक की स्नेहभरी उपासनास्थली हृदयभूमि को चाहता है जबकि उपासक अपनी स्नेहभरी उपासना धारा से उसे सींचे और सींचते सींचते उसे आपूर भरपूर कर दे—सींचते-सींचते सींचने की आत्मशक्ति समाप्त कर दे तो परमात्मा उसे अपनी परमदया से ऊपर उठाकर इस देहबन्धन से छुड़ा निज आश्रय में ले अमृतरूप मोक्ष प्रदान करता है ॥ १ ॥

ऋषिः—कण्वः (मेधावी वक्ता प्रगतिशील उपासक) ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः (वेद एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा) ॥

५६. **प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।**
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥

पदपाठः— **प्र एतु ब्रह्मणः पतिः प्र देवी एतु सूनृता सु नृता अच्छ वीरम् नर्यम् पंक्तिराधसम् पंक्ति राधसम् देवाः यज्ञम् नयन्तु नः ॥ २ ॥**

अन्वयः—ब्रह्मणस्पतिः प्रैतु सूनृता देवी प्र-एतु 'प्रैतु' देवाः नः वीरं नर्यं पंक्तिराधसं यज्ञम् अच्छ नयन्तु ॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पतिः प्रैतु) वेदज्ञान एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा मुझे अध्यात्म यज्ञ में प्रेरित करे—आगे बढ़ावे (सूनृता देवी प्र-एतु 'प्रैतु') दिव्या मन्त्रस्तुति भी मुझे अध्यात्म यज्ञ में प्रेरित करे (देवाः) मेरे प्राण ''प्राणा वै देवाः'' [श० ८.२.२.८] (नः) हमारे (वीरं नर्यम्) प्रगति देने वाले मानवहितकर

(पंक्तिराधसम्) पाँच वाक् श्रोत्र नेत्र मन आत्मा के समर्पण द्वारा सिद्ध हुए (यज्ञम्) अध्यात्म यज्ञ को (अच्छ नयन्तु) व्यासरूप में निर्बाध आगे आगे जीवन में चलावें बढ़ावें।

भावार्थः—अध्यात्मयज्ञ मानव का कल्याणसाधक है जिसे चलाने वाले प्राण हैं। ये बलिष्ठ होने चाहिएँ निर्बलप्राणों वाला मनुष्य स्वास्थ्यरूप भौतिक अमृत को नहीं पा सकता तब आध्यात्मिक अमृत का आस्वादन तो दूर ही रहेगा। अध्यात्मयज्ञ में मानव का सर्वाङ्गसमर्पण आवश्यक है, वाणी, कान, आँख, मन और आत्मा इन पाँचों को हुत हो जाना—लग जाना चाहिये। वाणी से स्तवन कीर्तन करना, श्रोत्र से गुणश्रवण करना, आँख से संसार में उसकी कला परखना, मन से मनन, और आत्मा से उसका भावन-अनुभव करना। साथ में विश्वात्मा ज्ञानदाता की दया उसमें पूर्ण श्रद्धा अपितु उसकी मन्त्रगत स्तुति भी प्रमुख साधन है॥ २॥

ऋषिः—कण्वः (मेधावी वक्ता प्रगतिशील उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

५७. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥ ३॥

पदपाठः— ऊर्ध्वः ऊ सु नः ऊतये तिष्ठ देवः न सविता ऊर्ध्वः वाजस्य सनिता यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे वि ह्वयामहे॥ ३॥

अन्वयः—नः ऊर्ध्वः-उ-ऊतये सुतिष्ठ सविता देवः-न-ऊर्ध्वः वाजस्य सनिता ऊर्ध्वः यत्-अञ्जिभिः-वाघद्भिः विह्वयामहे॥

पदार्थः—(नः ऊर्ध्वः-उ-ऊतये सुतिष्ठ) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू हमारे ऊपर निरन्तर रक्षा के लिये स्थिर रह (सविता देवः-न-ऊर्ध्वः) सूर्य देव जैसे ऊपर स्थित प्रकाश देता है (वाजस्य सनिता) अमृत अन्नमोक्षानन्द का "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] सेवन कराने वाला (उर्ध्वः) हमारे ऊपर बना रह (यत्-अञ्जिभिः-वाघद्भिः) यतः तुझे वहन करने वाली—बुलाने वाली स्निग्धमन्त्रस्तुतियों द्वारा "छन्दांसि वा अञ्जयो वाघतः" [ऐ० २.२] (विह्वयामहे) विशेषरूप से बुलाते हैं—अपने हृदयसदन में आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! सूर्य जैसे अन्धकार से बचाने के लिये प्रकाश देता हुआ ऊपर स्थित है ऐसी तू भी अज्ञान से रक्षा के लिये ज्ञानप्रकाश देता हुआ हमारे ऊपर विराजमान रह यह एक प्रार्थना है, दूसरी प्रार्थना है कि तू मोक्षानन्द अमृतभोग का देने वाला है तुझे मन्त्र स्निग्ध स्तुतियों से अपने हृदय में आमन्त्रित करते हैं, सो दोनों तू स्वीकार कर॥ ३॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने तथा परमात्मा के लिये स्तुति धारण करने वाला उपासक)॥

५८. प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥ ४॥

पदपाठः— प्र यः राये निनीषति मर्त्तः यः ते वसो दाशत् सः वीरम् धत्ते अग्ने उक्थशंसिनम् उक्थ शंसिनम् त्मना सहस्रपोषिणम् सहस्र पोषिणम्॥ ४॥

अन्वयः—यः-मर्त्तः राये प्र-निनीषति 'प्रणिनीषति' वसो यः-ते दाशत् अग्ने सः-वीरम्-उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणम् त्मना धत्ते॥

पदार्थः—(यः-मर्त्तः) जो मनुष्य (राये प्र-निनीषति 'प्रणिनीषति') रमणीय मोक्षैश्वर्य के लिये "रायेरणाय रमणीयाय" [निरु० १३.३०] अपने को प्रणयन करना चाहता है—ढालना चाहता है (वसो) हे मुझे सुख-शान्ति में बसाने वाले परमात्मन्! (यः-ते दाशत्) जो तेरे लिए अपने को दे देता है—समर्पित कर देता है (अग्ने) परमात्मन्! (सः-वीरम्-उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणम्) वह तुझ बलवान् प्रशंसनीय कल्याण प्रवचनकर्त्ता असंख्य प्रकार से पोषणकर्ता को (त्मना धत्ते) अपने आत्मा से—अपने आत्मा में धारण करता है।

भावार्थः—जो उपासक रमणीय मोक्षधाम में पहुँचना चाहता है और परमात्मा के आश्रय में रहना चाहता है उसे अपने आत्मा में प्रशंसनीय कल्याण वक्ता, बहुत प्रकार से पालनकर्ता परमात्मा को स्तुति द्वारा धारण करना चाहिए, सर्वस्थिति में बैठते चलते भी उसका ध्यान रहे, प्रतिकूल विचार और आचार न हो॥ ४॥

ऋषिः—काण्वः (मेधावी से सम्बद्ध उपासक)॥

५९. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निꣳ सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते॥ ५॥

पदपाठः— प्र वः यह्वम् पुरूणाम् विशाम् देवयतीनाम् अग्निम् सूक्तेभिः सु उक्तेभिः वचोभिः वृणीमहे यम् सम् इत् अन्ये अन् ये इन्धते॥ ५॥

अन्वयः—पुरूणां देवयतीनां विशां वः-अग्निं सूक्तेभिः-वचोभिः वृणीमहे यम्-अन्ये-इत् समिन्धते॥

पदार्थः—(पुरूणां देवयतीनां विशाम्) बहुत "पुरु बहुनाम" [निघं० ३.१] तुझ अपने इष्टदेव परमात्मा को चाहने वाले उपासकजनों के "विशः-मनुष्यनाम"

[निघं० २.३] (वः-अग्निम्) 'वः-त्वाम्'-वचन-व्यत्ययः' तुझ अग्रणायक को (सूक्तेभिः-वचोभिः) उत्तम कथन किए मन्त्रवचनों—स्तवनों द्वारा (वृणीमहे) हम सम्यक् भजें "वृङ् सम्भक्तौ" [क्र्यादि०] (यम्-अन्ये-इत् समिन्धते) जैसे अन्य कर्मकाण्डीजन निरन्तर सन्दीपन करते हैं "अत्र लुप्तोमानोपमावाचकालङ्कारः"।

भावार्थः—जैसे भौतिक अग्नि को कर्मकाण्डीजन यज्ञ सदन में सन्दीपन करते हैं वैसे परमात्मदेव को चाहने वाले मनुष्यों में विरले परमात्मा को अपने हृदय सदन में विविध मन्त्र स्तवनों से निरन्तर अपनाना चाहें ॥ ५ ॥

ऋषिः—उत्कीलः (पापदारिद्र्य का उच्छेद करने वाला उपासक)॥

६०. **अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य । राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **अयम् अग्निः सुवीर्यस्य सु वीर्यस्य इशे हि सौभगस्य सौ भगस्य रायः ईशे स्वपत्यस्य सु अपत्यस्य गोमतः ईशे वृत्रहथानाम् वृत्र हथानाम् ॥ ६ ॥**

अन्वयः—अयम्-अग्निः सुवीर्यस्य सौभगस्य-हि-ईशे स्वपत्यस्य गोमतः-रायः-ईशे वृत्राहथानाम्-ईशे ॥

पदार्थः—(अयम्-अग्निः) यह सर्वप्रकाशक परमात्मदेव (सुवीर्यस्य सौभगस्य-हि-ईशे) उत्तम आयु—मुक्ति की आयु "आयुर्वीर्यम्" [मै० १.७.५] का और सौभाग्य का स्वामित्व करता है अतएव उसका प्रदान करता है (स्वपत्यस्य गोमतः-रायः-ईशे) उत्तम अपत्य सन्तान जिससे होती है ऐसे, प्रशस्त इन्द्रियाँ रहती हैं जिसमें ऐसे सदाचार संयमरूप ऐश्वर्य का स्वामित्व करता है (वृत्रहथानाम्-ईशे) पापों के हनन साधनों का "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] भी स्वामित्व करता है ॥

भावार्थः—परमात्मा मानव के मोक्षैश्वर्य का भी स्वामी है जीवन्मुक्त को सौभाग्य प्रदान करता है और मृत्यु के अनन्तर मोक्ष की प्रशस्तदीर्घ आयु को प्रदान करता है तथा इहलोक संसार में मानव की प्रशस्त बीजशक्ति के स्थिर भाव-सदाचार प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमरूप ऐश्वर्य का भी स्वामी है उसे प्रदान करता है। इन दोनों ऐश्वर्यों के घातक पाप भावों के नाशक विचारों का भी स्वामी है उन सद् विचारों से पाप भाव नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)॥

६१. **त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे । त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **त्वम् अग्ने गृहपतिः गृह पतिः त्वम् होता नः अध्वरे त्वम् पोता विश्ववार विश्व वार प्रचेताः प्र चेताः यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥**

अन्वयः—विश्ववार अग्ने त्वं गृहपतिः नः-अध्वरे त्वं होता त्वं पोता प्रचेता वार्यं यक्षि यासि च ॥

पदार्थः—(विश्ववार अग्ने) हे सबके वरने योग्य अग्रणेता परमात्मन्! (त्वं गृहपतिः) तू मेरे हृदय सदन का स्वामी है (नः-अध्वरे) हमारे अध्यात्मयज्ञ में (त्वं होता) तू होता नाम का ऋत्विक्-ऋग्वेदपाठी (त्वं पोता) तू शोधन करने वाला—उद्गाता सामवेदपाठी (प्रचेता) प्रकृष्ट चेताने वाला ब्रह्मा (वार्यं यक्षि यासि च) तू हावभाव रूप उत्तम हवि को यजनकर्ता अध्वर्यु यजुर्वेदपाठी बनकर अमृतफल प्राप्त करा।

भावार्थः—हे परमात्मन्! यद्यपि मैं अपने हृदय सदन का स्वामी हूँ परन्तु परमात्मन्! वहाँ तू रक्षक बनकर आने के कारण तू ही स्वामी है क्योंकि मैंने अपने को तेरे प्रति समर्पित कर दिया। अतः तू ही स्वामी है और मैं अध्यात्मयज्ञ में लगा हूँ तू ही इसे सम्पन्न कर, तू ही इसका होता है तू ही पोता—उद्गाता, तू ही अध्वर्यु है और तू ही ब्रह्मा तू ही अर्ध्वयु है। बाहिरी होता आदि मुझे नहीं चाहिए, तू सबके वरने योग्य अमृतप्रसाद को प्रदान कर ॥ ७ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र हैं)॥

६२. **सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये। अपां नपातꣳ सुभगꣳ सुदꣳससꣳ सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **सखायः स खायः त्वा ववृमहे देवम् मर्त्तासः ऊतये अपाम् नपातम् सुभगम् सु भगम् सुदꣳससम् सु दꣳससम् सुप्रतूर्त्तिम् सु प्रतूर्त्तिम् अनेहसम् अन् एहसम् ॥ ८ ॥**

अन्वयः—सखायः-मर्तासः ऊतये अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिम् अनेहसं त्वा देवं ववृमहे ॥

पदार्थः—(सखायः-मर्तासः) हे परमात्मन्! तेरे मित्र—तुझ से मित्रता चाहने वाले तथा जिन्हें तू मित्र बना लेता है ऐसे हम उपासकजन (ऊतये) रक्षा के लिये (अपां नपातम्) प्राणों के न गिराने वाले अपितु बढ़ाने वाले—"प्राणा वा आपः" [तां० ९.९.४] (सुभगम्) श्रेष्ठ ऐश्वर्य मोक्ष के निमित्तभूत (सुदंससम्) यथार्थ सृष्टिरचनारूप और जीवों के कर्मफल प्रदानरूप कर्मों वाले—"दंसः कर्म" [निघं० २.१] (सुप्रतूर्तिम्) अच्छे संवत्सर-जीवनकाल के हेतु भूत "संवत्सरो वाव प्रतूर्तिः"

[श० ८.४.१.१२] "आयुस्संवत्सरः" [मै० ४.६.८] ऐसे (अनेहसम्) क्रोधरहित अपितु दयालु—"एहस् क्रोधनाम" [निघं० २.१३] (त्वा देवम्) तुझ परमात्मदेव को (ववृमहे) स्वीकार करते हैं 'ववृमहे-छान्दसो लिट्प्रयोगः'।

भावार्थः—परमात्मा हमारा मित्र है वह भी हम उपासकों को मित्र मानता है, उससे रक्षण मिलता है संसार में भी और मोक्ष में भी। वह हमारे प्राणों को चलाने वाला दीर्घजीवन देने वाला है अमृत प्राण भी देने वाला है, उत्तम सुखैश्वर्य को भुगाने वाला जीवनकाल को सुन्दर प्रवाहित कराने वाला पूर्ण दयालु है। जीवन के प्रत्येक क्षण में हम उसे अपनावें—अपनाते रहें॥ ८॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वो वामदेवो वा (प्रगतिशील निर्दोष इन्द्रिय—घोड़ों वाला या वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)॥ छन्दः—१, ३, ५-९ त्रिष्टुप्; २, ४ जगती, १० त्रिपाद् विराड् गायत्री॥
स्वरः—१,३, ५-६ धैवतः; २,४ निषादः, १० षड्जः॥

६३. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्॥ १॥

पदपाठः— आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम् नि होतारम् गृहपतिम् गृह पतिम् दधिध्वम् इडः पदे नमसा रातहव्यम् रात हव्यम् सपर्यत यजतम् पस्त्यानाम्॥ १॥

अन्वयः—हविषा-आजुहोत हविषामर्जयध्वं होतारं गृहपतिं निदधिध्वं पस्त्यानां यजतं राहतव्यं इडः-पदे नमसा सपर्यत॥

पदार्थः—(हविषा-आजुहोत) हे उपासकजनो! उस स्वतेजःस्वरूप परमात्मा को समन्तरूप से आमन्त्रित करो (हविषामर्जयध्वम्) श्रद्धारूप भेंट से प्रेरित करो "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२.४३] (होतारं गृहपतिं निदधिध्वम्) स्वीकार करने वाले हृदयसदन के स्वामी परमात्मा को अपने अन्दर ध्यान से धारण करो (पस्त्यानां यजतम्) प्रजाओं—मनुष्यों के "विशो वै पस्त्याः" [श० ५.३.५.१९] "विशो मनुष्यनाम" [निघं० २.३] यजनीय-सङ्गमनीय—(राहतव्यम्) दिए हैं भोग पदार्थ जिसने उस ऐसे परमात्मा को (इडः-पदे) श्रद्धा के स्थान हृदय में—स्वात्मा में "श्रद्धा इडा" [तै० सं० १.७.२.५] (नमसा सपर्यत) नम्रस्तुति से पूजित करो—सत्कृत करो—सेवन करो।

भावार्थः—मनुष्यमात्र के यजनीय-सङ्गमनीय भोगप्रद तेजःस्वरूप परमात्मा का श्रद्धा के साथ हृदयसदन में नम्रस्तुति द्वारा सत्कार करो अपने अन्दर श्रद्धा,

वैराग्य से आमन्त्रित कर आत्मसमर्पण स्नेह धारा को उसकी ओर प्रेरित कर निरन्तर ध्यान करें, इसमें मानव का उत्थान और आत्मकल्याण है ॥ १ ॥

ऋषिः—वार्ष्टिहव्य उपस्तुतः (ज्ञानवृष्टि में स्नात उपासक)॥

६४. **चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे। अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यां३ चरन्॥ २ ॥**

पदपाठः— **चित्रः इत् शिशोः तरुणस्य वक्षथः न यः मातरौ अन्वेति अनु एति धातवे अनूधाः अन् ऊधाः यत् अजीजनत् अध चित् आ ववक्षत् सद्यः स द्यः महि दूत्यम् चरन्॥ २ ॥**

अन्वयः—शिशोः-तरुणस्य चित्रः-वक्षथः-इत् यः-मातरा धातवे न-अन्वेति अनूधा अजीजनत् अध चित् सद्यः महि दूत्यं चरन् आववक्षत्॥

पदार्थः—(शिशोः-तरुणस्य) इस शिशुरूप प्रशंसनीय प्रिय ''शिशुः-शंसनीयः'' [निरु० १०.३९] एवं युवा के समान महाबलवान् परमात्मा का (चित्रः-वक्षथः-इत्) अद्भुत संसार वहन कार्य है कि (यः-मातरा धातवे न-अन्वेति) जो जगत् भर की माताओं—द्यौ और पृथिवी की ओर स्तन पान करने नहीं जाता है (अनूधा) क्योंकि ये दोनों दुग्धाधान से रहित हैं भले ही जीवात्माओं के लिये रखती हों परमात्मा शिशु के लिये नहीं, क्योंकि (अजीजनत्) जैसे ही यह परमात्मा शिशु प्रसिद्ध हुआ (अध चित्) अनन्तर ही (सद्यः) तुरन्त (महि दूत्यं चरन्) सबके भारी प्रेरणकार्य को करता हुआ (आववक्षत्) समन्तरूप से प्राणीमात्र मनुष्यमात्र का उत्पादन कर्मफलप्रदान को पूरा करता है।

भावार्थः—उपासक की दृष्टि में परमात्मा एक सुन्दर प्रशंसनीय प्रिय शिशु के रूप में आता है, समस्त जगत् के पदार्थों की दो माताएँ हैं, एक द्यौः—जो अपने दिव्य जलरूप दुग्ध का पान कराती है, दूसरी पृथिवी जो अपने ओषधिरस दुग्ध को पिलाती है परन्तु परमात्मा शिशु इन दोनों के दुग्ध लेने नहीं जाता उसके लिये ये दुग्धाधान रखती ही नहीं तब समस्त संसार का चालनकार्य स्वसामर्थ्य से महा बलवान् युवा बनकर करना उसका आश्चर्य ही हुआ कारण कि हमारे जैसा देहधारी तो वह है ही नहीं ॥ २ ॥

ऋषिः—बृहदुक्थः (बढ़ चढ़कर वक्ता—स्तुतिकर्ता उपासक)॥

६५. **इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व। संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे॥ ३ ॥**

पदपाठः— इदम् ते एकम् परः ऊ ते एकम् तृतीयेन ज्योतिषा सम् विशस्व संवेशनः सम् वेशनः तन्वे चारुः एधि प्रियः देवानाम् परमे जनित्रे ॥ ३ ॥

अन्वयः—ते-इदम्-एकं परः-उ ते-एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व संवेशनः तन्वे चारुः-एधि देवानां प्रियः परमे जनित्रे ॥

पदार्थः—(ते-इदम्-एकम्) हे परमात्माग्ने ! यह पृथिवीस्थ अग्नि तेरी एक ज्योति है (परः-उ ते-एकम्) पर—द्युलोकस्थ सूर्य अग्नि तेरी दूसरी ज्योति है (तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व) तीसरी तेरी ज्योति—अमृत ज्योतिस्वरूप है उससे हमारे अन्दर प्रवेश कर। (संवेशनः) अन्दर संवेश गहन प्रवेश समागम करने वाला तू (तन्वे) अपने तनुरूप मुझ आत्मा में ''य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्'' [श० १४.६.७.३२] (चारुः-एधि) भली प्रकार हो—रहो (देवानां प्रियः) तू मुमुक्षुओं का प्रिय है—स्नेही है (परमे जनित्रे) और मैं तुझ परम उत्पादनाधार में समर्पित हूँ।

भावार्थः—द्यावापृथिवी में नीचे ऊपर अग्नि और सूर्य परमात्मा की दो ज्योतियाँ है ''तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'' [कठो० ५.१५] ये ज्योति तो दिन रात प्राप्त होती हैं काम आती हैं परन्तु तृतीय ज्योति परमात्मा की अमृतस्वरूप ज्योति है, जिसके लिये कहा है ''परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते'' [छान्दो० ८.३.४] उस अपनी अमर ज्योति को परमात्मा हमारे आत्मा में प्रविष्ट करता है तब ही आत्मकल्याण होता है वह मुमुक्षुओं का प्रिय है परन्तु परमात्मा अपनी अमृत ज्योति को तब देता है जबकि उस परम उत्पत्तिस्थान परमात्मा में अपना समर्पण कर दिया जाता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता उपासक[1])॥

६६. **इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥**

पदपाठः— इमम् स्तोमम् अर्हते जातवेदसे जात वेदसे रथम् इव सम् महेम मनीषया भद्रा हि नः प्रमतिः प्र मतिः अस्य सꣳसदि सम् सदि अग्ने सख्ये स ख्ये मा रिषाम वयम् तव ॥ ४ ॥

---

१. ''कुत्सः कर्ता स्तोमानाम्'' (निरु० ३.२२)।

अन्वयः—अर्हते जातवेदसे इमं स्तोतं रथं-इव मनीषया सम्महेम अस्य संसदि नः प्रमतिः-भद्रा हि अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम॥

पदार्थः—(अर्हते जातवेदसे) पूजनीय "अर्हते कर्मणि शतृप्रत्ययश्छान्दसः" सर्वज्ञानप्रकाशक तथा सर्वज्ञ परमात्मा के लिये (इमं स्तोमम्) इस स्तुतिसमूह स्तुतिप्रवाह को (रथम्-इव) रथ जैसे को—रथ जैसे अभीष्ट स्थान पर पहुँचाता है ऐसे अभीष्ट मोक्षधाम पर पहुँचाने वाले को (मनीषया सम्महेम) हृद्यभावना—श्रद्धा से हम समर्पित करते हैं (अस्य संसदि) इस परमात्मा की सङ्गति-उपासना में (नः प्रमतिः-भद्रा हि) हमारी प्रकृष्ट धारणा—मानसिक स्थिति—अन्तःस्थली पुण्य एवं कल्याणरूपा हो जावे, अतः (अग्ने तव सख्ये) हे परमात्मन्! तेरे सखापन में (वयं मा रिषाम) हम पीड़ित न हों।

भावार्थः—मानव का प्रासव्य इष्टदेव परमात्मा तथा गन्तव्यस्थान मोक्ष धाम है, परमात्मा पूज्य है जो हम सबको जानने वाला है, उसे पाने या उस तक पहुँचने के लिये स्तुतिप्रवाह रथ के समान है, पहुँचाने वाला साधन है। उसके सहारे हम उस तक पहुँच सकेंगे। परन्तु चलें श्रद्धा से, परमात्मा की उपासना में सङ्गति—हमारी आत्मस्थिति अपने रूप में परिमार्जित कल्याणमयी हो जावेगी जो मोक्ष में होती है, उस परमात्मा के सखिभाव में हम बाधित न होंगे और मोक्ष में निर्बाध रहेंगे॥४॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने में कुशल उपासक[1])॥

६७. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः॥५॥

पदपाठः— मूर्द्धानम् दिवः अरतिम् पृथिव्याः वैश्वानरम् वैश्व नरम् ऋते आ जातम् अग्निम् कविम् सम्राजम् सम् राजम् अतिथिम् जनानाम् आसन् नः पात्रम् जनयन्त देवाः॥५॥

अन्वयः—दिवः—मूर्धानं पृथिव्याः-अरतिं कविं सम्राजं जनानाम्-अतिथिं नः-आसन्-पात्रम् ऋत-आजातं वैश्वानरम्-अग्निं देवाः-जनयन्त॥

पदार्थः—(दिवः—मूर्धानम्) द्युलोक के मूर्धारूप को—द्युलोक से भी परे वर्तमान को (पृथिव्याः-अरतिम्) पृथिवीलोक के स्तर—निम्नरूप—पृथिवी के

---

१. "वाजयति-अर्चतिकर्मा" (निघं० ३.१४)।

भी अवर वर्तमान को (कविं सम्राजम्) क्रान्तदर्शी सम्यक् सर्वत्र राजमान—(जनानाम्–अतिथिम्) जन्यमान प्राणीमात्र के सत्करणीय—(नः–आसन्–पात्रम्) हमारे प्रमुख पूजापात्र (ऋत–आजातम्) अध्यात्म यज्ञ में प्रसिद्ध होने वाले (वैश्वानरम्–अग्निम्) विश्वनायक परमात्मा को (देवाः–जनयन्त) ध्यानी मुमुक्षुजन अपने अन्दर प्रसिद्ध करते हैं—साक्षात् करते हैं।

भावार्थः—परमात्मा द्युलोक के ऊपर और उसके सम्भालने वाला है तथा पृथिवीलोक निम्नस्तर और उसके भी सम्भालने वाला विश्वनायक है वह सर्वज्ञ विश्व का सम्राट् मनुष्यों का सत्करणीय अतिथि और पूजा का प्रमुख पात्र है उसे ध्यान यज्ञ में मुमुक्षुजन साक्षात् करते हैं ॥५॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने में कुशल उपासक)॥

६८. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः। तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः॥ ६ ॥

पदपाठः— वि त्वत् आपः न पर्वतस्य पृष्ठात् उक्थेभिः अग्ने जनयन्त देवाः तम् त्वा गिरः सुष्टुतयः सु स्तुतयः वाजयन्ति आजिम् न गिर्ववाहः गिर्व वाहः जिग्युः अश्वाः॥ ६ ॥

अन्वयः—अग्ने उक्थेभिः देवाः त्वत् विजनयन्त पर्वतस्य पृष्ठात्–आपः–न सुष्टुतयः–गिरः तं त्वा वाजयन्ति गिर्ववाहः–अश्वाः–आजिं जिग्युः॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (उक्थेभिः) स्तुतियों द्वारा नम्र हुए (देवाः) मुमुक्षुजन (त्वत्) तुझ से—तेरे से (विजनयन्त) अपनी प्राप्तव्य कामनाओं को विशेषरूप में प्रादुर्भूत करते हैं—प्राप्त करते हैं (पर्वतस्य पृष्ठात्–आपः–न) जैसे पर्वत के उपरिभाग से निम्न स्थल पर जल बहते हुए प्राप्त होते हैं (सुष्टुतयः–गिरः) भली प्रकार स्तुति वाणियाँ (तं त्वा वाजयन्ति) उस तुझको हमारी ओर प्रेरित करती हैं या प्रेरित होने को बल देती हैं (गिर्ववाहः–अश्वाः–आजिं जिग्युः) जैसा कि योद्धा के 'गिर्ववाह' वाणी समूह को वहन किए हुए—प्रेरणा पाए हुए—घोड़े संग्राम को जीतते हैं ''आजौ संग्रामे'' [निघं० २.१७]।

भावार्थः—परमात्मा की आनन्द धाराएँ पाने के लिये उपासकजन स्तुतियाँ करते करते इतने नम्र हो जाते हैं कि उससे आनन्द धाराएँ बहती हुईं ऐसे चली आती हैं जैसे पर्वत से नम्रस्थल पर जल धाराएँ बहती चली आया करती हैं तथा उपासक की स्तुतियाँ परमात्मा को अपनी ओर प्रेरित करती हैं जैसे संग्राम में योद्धा की बढ़ावा देने वाली वाणियाँ विजय पाने के लिये घोड़ों को प्रेरित करती हैं॥ ६॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥

६९. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ ७॥

पदपाठः— आ वः राजानम् अध्वरस्य रुद्रम् होतारम् सत्ययजम् सत्य यजम् रोदस्योः अग्निम् पुरा तनयित्नोः अचित्तात् अ चित्तात् हिरण्यरूपम् हिरण्य रूपम् अवसे कृणुध्वम्॥ ७॥

अन्वयः—अध्वरस्य राजानं रुद्रं होतारं रोदस्योः सत्ययजं हिरण्यरूपम् अग्निम् अचित्तात् तनयित्नोः पुरा अवसे वः आकृणुध्वम्॥

पदार्थः—(अध्वरस्य राजानम्) अध्यात्म यज्ञ के प्रकाशक इष्टदेव—(रुद्रं होतारम्) सन्मार्ग वक्ता एवं आत्मसमर्पण स्वीकार करने वाले को (रोदस्योः) द्यावापृथिवीमयी सृष्टि के ''रोदसी द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०] (सत्ययजम्) सत्ययजन करने वाले—यथार्थ नियन्त्रण करने वाले—(हिरण्यरूपम्) स्वर्णरूप-तेजः स्वरूप—(अग्निम्) परमात्मा को (अचित्तात् तनयित्नोः पुरा) चेतना रहित जिससे हो जाता है उस शिर पर गर्जते हुए मृत्यु से पूर्व (अवसे) अपने रक्षण के लिये—आत्मरक्षा जिसमें है ऐसे मोक्षधामरूप अमृत शरण प्राप्ति के लिये—जीवन्मुक्त बनने के लिये (वः) तुम उपासको ''विभक्तिव्यत्ययः'' (आकृणुध्वम्) परमात्मा को अपनाओ।

भावार्थः—द्युलोक—ऊपर से लेकर पृथिवी—निम्न तक समष्टि सृष्टि का यथावत् नियमन करने वाला तेजःस्वरूप परमात्मा मानव का सच्चा हितकर और सत्यमार्ग का उपदेश देता रहता है वह अध्यात्मयज्ञ का परम इष्टदेव है उसको पदे पदे शिर पर गर्जते हुए मृत्यु से बचने के लिये अपनाना—धारण करना ध्येय होना चाहिए॥ ७॥

ऋषि—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

७०. इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन। नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि॥ ८॥

पदपाठः— इन्धे राजा सम् अर्यः नमोभिः यस्य प्रतीकम् आहुतम् आ हुतम् घृतेन नरः हव्येभिः ईडते सबाधः स बाधः आ अग्निः अग्रम् उषसाम् अशोचि॥ ८॥

अन्वयः—राजा-अर्यः नमोभिः समिन्धे यस्य प्रतीकं घृतेन-आहुतं नरः सबाधः-हव्येभिः-ईडते उषसाम्-अग्रम् अग्निः-आशोचिः॥

पदार्थः—(राजा-अर्यः) विश्व में राजमान स्वामी परमात्मा "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३.१.१०३] (नमोभिः) नम्र स्तुति वचनों से (समिन्धे) आत्मा में प्रकाशित होता है (यस्य प्रतीकम्) जिसका प्रत्यक्त—प्रतिदर्शन—साक्षात्स्वरूप "प्रतीकं प्रत्यक्तं भवति प्रतिदर्शनमिति वा" [निरु० ७.३१] (घृतेन-आहुतम्) स्वतेज से प्राप्त है युक्त है "तेजो वै घृतम्" [तै० सं० २.२.९.४] अतः जब (नरः सबाधः-हव्येभिः-ईडते) देवजन-मुमुक्षुजन "नरो वै देवविशः" [जै० १.८९] अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विज बनकर "सबाधः-ऋत्विजः" [नि० ३.१८] अपने हावभावरूप स्निग्ध स्तवनों से उसकी स्तुति करते हैं तो (उषसाम्-अग्रम्) उषावेलाओं में—जीवन के प्रभातों में प्रथम (अग्निः-आशोचिः) परमात्मा प्रकाशित होता है।

भावार्थः—विश्व में व्यापक विश्व का राजा अपने तेजःस्वरूप से स्वयं प्रकाशमान है, जब मुमुक्षुजन अध्यात्मयज्ञ के याजक बनकर उसके लिये अपनी हावभाव भरी स्निग्ध स्तुतियाँ अर्पित करते हैं तो वह जीवन की प्रभातवेला में अपना ऐसा प्रकाश देता है वे जीवनभर अज्ञानान्धकार से परे रहकर अपनी जीवनसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—त्वाष्ट्रः-त्रिशिराः (त्वष्टा-सूर्य-ज्ञानसूर्य परमात्मा से सम्बद्ध उपासक वेदत्रयी या स्तुति प्रार्थना उपासना में शिरोवत् मूर्धन्य मुमुक्षु)॥

७१. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥

पदपाठः— प्र केतुना बृहता याति अग्निः आ रोदसीइति वृषभः रोरवीति दिवः चित् अन्तात् उपमाम् उप माम् उत् आनट् अपाम् उपस्थे उप स्थे महिषः ववर्द्ध ॥ ९ ॥

अन्वयः—अग्निः-बृहता केतुना रोदसी प्रयाति-आ वृषभः-रोरवीति दिवः-चित्-अन्तात् उपमाम्-उदानट् महिषः-आपम्-उपस्थे ववर्द्ध ॥

पदार्थः—(अग्निः-बृहता केतुना) प्रकाशस्वरूप परमात्मा अपने महान् प्रज्ञान-प्रकृष्टगुण-ज्ञानप्रकाश से "केतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] (रोदसी प्रयाति-आ) द्युलोक और पृथिवीलोक को—द्यावापृथिवी मयी समष्टि सृष्टि से पृथक् गया हुआ है और इसमें आगत—प्राप्त भी है (वृषभः-रोरवीति) ज्ञानप्रकाश करने वाला वेद का पुनः पुनः उपदेश करता है (दिवः-चित्-अन्तात्) मोक्षधाम से लेकर "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] (उपमाम्) मेरे समीप—हृदय या आत्मा तक "उपमे अन्तिकनाम" [निघं० २.१६] (उदानट्) प्राप्त है (महिषः-आपम्-उपस्थे ववर्द्ध) वह महान् देव "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३.३] मेरे प्राणों के "आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] उपाश्रयभूत हृदय में ध्यान द्वारा प्रवृद्ध होता है।

भावार्थः—परमात्मा अपने महान् ज्ञानमय प्रकाश से समस्त द्यावापृथिवीमयी

समष्टि सृष्टि से बाहिर और उसके अन्दर भी प्राप्त है वह सुख की वृष्टि का कर्ता, सत्य ज्ञान वेद का उपदेश तथा सत्य नियम का घोष करने वाला है, अपने मोक्षधाम से लेकर समीप से समीप हमारे हृदय एवं अन्तरात्मा तक को प्राप्त हुआ है, वह प्राणों के केन्द्र-हृदय में उपासना द्वारा साक्षात् है ॥ ९ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥

७२. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्॥ १० ॥

पदपाठः— अग्निम् नरः दीधितिभिः अरण्योः हस्तच्युतम् हस्त च्युतम् जनयत प्रशस्तम् प्र शस्तम् दूरेदृशम् दूरे दृशम् गृहपतिम् गृह पतिम् अथव्युम् अ थव्युम्॥ १० ॥

अन्वयः—नरः दूरे दृशं गृहपतिम् अथव्युं प्रशस्तं अग्निं दीधितिभिः अरण्योः-हस्तच्युतं जनयत॥

पदार्थः—(नरः) हे मुमुक्षु जनो! "नरो वै देवविशः" [जै० १.८९] तुम (दूरे दृशम्) दूर—अतीन्द्रिय विषय में भी ज्ञानदर्शक—(गृहपतिम्) हृदय सदन के स्वामी—(अथव्युम्) अचल योगी को चाहने वाले—"अथर्वाणोऽथनवन्तः-थर्वति गतिकर्मा तत्प्रतिषेधः" [निरु० ११.१९] "रेफलोपश्छान्दसः" (प्रशस्तम्) अत्यन्त प्रशंसनीय स्तोतव्य (अग्निम्) परमात्मा को (दीधितिभिः) प्राणायाम आदि क्रियाओं से "दीधी दीप्तिदेवनयोः" [जुहो०] "तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्" [मनु० ६.७१] "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" [योग० २.५२] "योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः" [योग० २.२८] (अरण्योः-हस्तच्युतं) 'उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः' दो लकड़ियों में से हस्तगत हुई अग्नि की भाँति मन और हृदय में से हस्तगत—साक्षात् (जनयत) प्रकट करो।

भावार्थः—अतीन्द्रिय विषयक ज्ञान को दर्शाने वाला अत्यन्त स्तुतियोग्य परमात्मा जो अचलचित्त वाले उपासक को चाहता है, वही उसके हृदय सदन का स्वामी—प्रिय सङ्गी रक्षक है, उसे मुमुक्षुजन प्राणायाम योगाङ्गरूप अध्यात्मज्ञान दीपन क्रियाओं द्वारा मन और हृदय में ध्यानरूप मन्थन से साक्षात् करते हैं ॥ १० ॥

अष्टम खण्ड

छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः। ऋषिः—बुधगविष्ठिशवृषी (ज्ञानी और वाणी के चयन में स्थिर—दृढ़प्रतिज्ञ उपासक)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

७३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्त्रते नाकमच्छ॥ १ ॥

पदपाठः— अबोधि अग्निः समिधा सम् इधा जनानाम् प्रति धेनुम् इव आयतीम् आ यतीम् उषासम् यह्वाः इव प्र वयाम् उज्जिहानाः उत् जिहानाः प्र भानवः सस्त्रते नाकम् अच्छ ॥ १ ॥

अन्वयः—जनानां समिधा अग्निः-अबोधि प्रति धेनुम्-इव-आयतीम्-उषासं यह्वाः-इव वयां प्रोज्जिहानाः भानवः-नाकम्-अच्छ प्रसस्त्रते ॥

पदार्थः—(जनानां समिधा उपासकजनों की समिध्—आत्मसमिध् आत्मरूप इध्म—आत्मसमर्पण से "आत्मा वा इध्मः" [तै० सं० ३.२.१०.३] "अयं त इध्म आत्मा" [आश्व० गृ० १.१०.१२] (अग्निः-अबोधि) परमात्माग्नि उपासकों के हृदय में जाग उठता है (प्रति धेनुम्-इव-आयतीम्-उषासम्) जैसे पृथिवी के प्रति "इयं पृथिवी वै धेनुः" [श० १२.९.२.१०] पृथिवी पर जैसे सूर्य-अग्नि "लुप्तोपमानालङ्कारः" आती हुई उषा—प्रभातवेला में प्रकट हो जाती है "उषासम्-अत्यन्तसंयोगे द्वितीया" [अष्टा० २.३.५] (यह्वाः-इव वयां प्रोज्जिहानाः) जैसे महान्—बहुत पक्षी "लुप्तोपमानालङ्कारः" शाखा पर प्रकृष्टरूप से उतरते हैं—आश्रय लेते हैं "वया शाखा" [निरु० १.७] "ओहाङ् गतौ" [जुहो०] 'आत्मनेपदत्वात्' ऐसे (भानवः-नाकम्-अच्छ प्रसस्त्रते) उपासकों के प्रज्ञान—आत्मभावनाएँ भासमान हुईं उस नितान्त सुखरूप परमात्मा को प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—आत्मसमिधा से—आत्मसमर्पण से परमात्मा उपासकों के हृदय में ऐसे प्रकाशमान होता है जैसे उषावेला में पृथिवी पर सूर्य प्रकाशमान हो जाता है। उपासक की सारी आत्मभावनाएँ—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार सब भासमान होकर उस सुखस्वरूप परमात्मा को ऐसे प्राप्त हो जाते हैं जैसे शाखा पर पक्षी आश्रय लेते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—वत्सप्रिः (अपने को परमात्मा का वत्स—पुत्र समझ वैसा प्रेम करने वाला उपासक)॥

७४. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्। नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

पदपाठः— प्र भूः जयन्तम् महाम् विपोधाम् विपः धाम् मूरैः अमूरम् अ मूरम् पुराम् दर्म्माणम् नयन्तम् गीर्भिः वना धियम् धाः हरिश्मश्रुम् हरि श्मश्रुम् न वर्म्मणा धनर्च्चिम् ॥ २ ॥

अन्वयः—प्रभूः जयन्तं महां विपोधां मूरैः पुरां दर्भाणम्-अमूरं गीर्भिः-वनाधियं नयन्तं वर्मणा हरिश्मश्रुं न धनर्चिं धाः ॥

पदार्थः—(प्रभूः) 'प्रभवन्ति यास्ताः प्रभुवस्ताः प्रभूः-स्त्रीलिङ्गे द्वितीया-बहुवचनप्रयोगः' संसार रचने में सम्भव समस्त शक्तियों को (जयन्तम्) पहुँचे हुए—"जयति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (महां विपोधाम्) महान् एवं विप-मेधावी-ऋषि-मुमुक्षु उपासकों को धारण करने वाले—"विपो मेधाविनः" [निघं० ३.१५] (मूरैः पुरां दर्माणम्-अमूरम्) मूढ़ों—अज्ञानबद्ध जीवात्माओं द्वारा प्राप्त पुरों—शरीरों का ज्ञान प्रदान कर विदारण करने वाले—अमूढ़—ज्ञानपूर्ण-सर्वज्ञ अज्ञानबन्धन से रहित—(गीर्भिः-वनाधियं नयन्तम्) स्तुतियों द्वारा वनों—वननीय श्रेष्ठ गुणों और बुद्धि को प्राप्त कराने वाले—(वर्मणा हरिश्मश्रुं न) प्रकाशरूप वारण घेरे की दृष्टि से—ज्ञान प्रकाश का घेरा डालने वाला होने से सूर्य के समान ज्ञानसूर्य हुआ हुआ "**हरिकेशः सूर्यरश्मिः**" [मै० २.८.१०] "**यद्धरिकेश इत्याह-हरिरिव ह्यग्निरादित्यः**" [श० ८.६.१.१६] (धनर्चिं धाः) धारण करने योग्य अर्चि-ज्योति वाले परमात्मा को धारण कर—ध्यान में ला।

भावार्थः—समस्त रचनाशक्तियों वाले एवं मुमुक्षु उपासकों के आधार सर्वज्ञ तथा अज्ञान से बद्ध जीवात्माओं के उद्धारक स्वयं अज्ञानबन्धन से रहित स्तुतियों के द्वारा श्रेष्ठ गुणों और बुद्धि को प्राप्त कराने वाले सूर्य के समान स्वतः प्रकाश से पूर्ण एवं धारण करने योग्य जिसकी अर्चना या ज्योति है ऐसे परमात्मा का ध्यानोपासन करना चाहिए॥ २ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला उपासक[1])॥

७५. **शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥ ३ ॥**

पदपाठः— **शुक्रम् ते अन्यत् अन् यत् यजतम् ते अन्यत् अन् यत् विषुरूपे विषु रूपे इति अहनी अ हनी इति द्यौः इव असि विश्वाः हि मायाः अवसि स्वधावन् स्व धावन् भद्रा ते पूषन् इह रातिः अस्तु॥ ३ ॥**

अन्वयः—**स्वधावन् पूषन् ते विषूरूपे अहनी ते अन्यत्-शुक्रम् अन्यत्-यजतं द्यौः-इव-असि विश्वाः-मायाः-हि-अवसि ते भद्रा रातिः-इह-अस्तु॥**

पदार्थः—(स्वधावन् पूषन्) हे रसवन्—जीवनरस एवं मोक्षरस देने वाले रसीले "स्वधायै त्वा रसाय त्वेत्येतदाह" [श० ५.४.३.७] तथा पोषणकर्ता परमात्मन्! (ते) तेरे (विषूरूपे अहनी) परस्पर विषमरूप—विरुद्धरूप वाले अहन्तव्य दो

---

१. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

दिनमान हैं (ते) तेरा (अन्यत्-शुक्रम्) अन्य—एक तो शुभ्र—प्रकाशमान मोक्षनामक दिनरूप है **''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः''** [कठो० ५.१५] वहाँ न सूर्य प्रकाश कर सकता है न चन्द्र तारे न विद्युतें चमक दिखाती हैं यह अग्नि क्या करेगी (अन्यत्-यजतम्) दूसरा एक यजनीय—यजन में आने योग्य—आचरण में लाने योग्य रात्रिसमान संसार नामक है, इस प्रकार (द्यौः-इव-असि) तू सूर्यसमान है जैसे सूर्य दिन और रात्रि का आधार है या हेतु है ऐसे तू मोक्ष और संसार का आधार या हेतु है (विश्वाः-मायाः-हि-अवसि) एवं तू संसाररूप में अपनी समस्त मायाओं—प्रकृतिजन्य कृतियों की **''मायां तु प्रकृतिं विद्यात्''** [श्वेताश्व० ४.१०] हमारे लिये रक्षा करता है—यथावत् रचन धारण करता है तथा (ते भद्रा रातिः-इह-अस्तु) भजनीय—भानवती दत्ति—देने—मोक्षसम्पत्ति इस मानव जीवन में प्राप्त हो।

भावार्थः—परमात्मा उपासकजनों का पोषक और आनन्दरसप्रद है। संसार में हमें पुष्ट करता है योग्य बनाता है और मोक्ष में आनन्दरस प्रदान करता है। संसार और मोक्ष उसके दिन और रात के समान हैं वह इनका आधार या हेतु है जैसे सूर्य दिन और रात का आधार या हेतु है। उपासकों के लिये परमात्मा संसार भाग में प्रकृति की विकृतियों भिन्न-भिन्न रचनाओं की रक्षा करता है और मोक्ष में कल्याणानन्द सम्पत्ति देता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
७६. इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥

१ २र ३ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ २
पदपाठः— इडाम् अग्ने पुरुदꣳसम् पुरु दꣳसम् सनिम् गोः शश्वत्तमम्
१ २र ३ २ ३ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
हवमानाय साध स्यात् नः सूनुः तनयः विजावा वि जावा
१ २र २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
अग्ने सा ते सुमतिः सु मतिः भूतु अस्मे इति ॥ ४ ॥

अन्वयः—अग्ने इडां गोः सनिं पुरुदंसं शश्वत्तमं हवमानाय साध तनयः सूनुः विजावा ते सा सुमतिः अस्मे-अस्तु ॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्रणेता परमात्मन्! (इडाम्) स्तुति स्थली मेरी हृदय भूमि ''इडा पृथिवी'' [निघं० १.१] को (गोः सनिम्) स्तुति का सम्मक्त—स्तुतिसिक्त बना दे ''गौवाङ्नाम'' [निघं० १.११] (पुरुदंसम्) बहुत कर्मशक्ति वाले—(शश्वत्तमम्) शाश्वतिक मोक्ष सुख को (हवमानाय साध) शुभ आह्वान करने वाले उपासक के लिये सिद्ध कर, तथा (तनयः सूनुः) ''तन तन्तुसन्ताने'' ''ततो घञर्थे कविधानं छान्दसम्'' 'तनं शरीरं याति प्राप्नोति यः स सूनुः प्राणः' शरीर को प्राप्त सुनयनकर्ता प्राण (विजावा) विशेष प्रसिद्ध—प्रबल हो, ऐसी (ते) तेरी (सा सुमतिः) कल्याणी मति कृपाभावना (अस्मे-अस्तु) हमारे लिये हो।

भावार्थः—स्तुति से सिक्त—सनि हुई उपासक की हृदय स्थली जब हो जाती है तो अग्रणेता परमात्मा बहुत कर्मों से प्राप्त होने वाले नित्य सुख मोक्ष को उपासक के लिये सिद्ध करता है, तथा संसार में भी प्राण विशेष प्रसिद्ध बलवान् दीर्घ और स्वस्थ जीवन वाला हो जाता है और परमात्मा की कल्याणी मति—कृपादृष्टि भी प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

ऋषिः—वत्सप्रिः (अपने को परमात्मा का प्रेमपात्र बनाने वाला उपासक)॥

७७. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते। दधद्यो धायी सुते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥

पदपाठः— **प्र होता जातः महान् नभोवित् नभः वित् नृषद्मा नृ सद्मा सीदत् अपाम् विवर्त्ते वि वर्त्ते दधत् यः धायी सुते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः तनू पाः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—महान् होता जातः नृषद्मा नभोवित् अपां विवर्तेन प्रसीदत् यः-दधत् धायी ते विधते वयांसि वसूनि सु-यन्ता तनूपाः ॥

पदार्थः—(महान् होता जातः) महान् स्वीकारकर्ता—अपनाने वाला प्रसिद्ध (नृषद्मा) मनुष्यों में विराजमान (नभोवित्) उनके हृदयाकाश को प्राप्त (अपां विवर्तेन) प्राणों के विवर्तन से गमनागमन संस्थान को "आपो वै प्राणाः" [श० ४.८.२.२] (प्रसीदत्) जीवन प्रसाद देता है (यः-दधत्) जो उन प्राणों को धारण करता हुआ (धायी) तेरा धाता—ध्याता (ते विधते) तुझ आत्मसमर्पण करते हुए के लिये (वयांसि) अन्न ज्ञान जीवनों को (वसूनि) वास भोगों का (सु-यन्ता) सुदाता (तनूपाः) तेरे शरीर का रक्षक परमात्मा है।

भावार्थः—परमात्मा अत्यन्त अपनाने वाला हृदयाकाश को प्राप्त हुआ मनुष्य में रहकर प्राणसंस्थान में जीवनप्रसाद देता है और प्राणों का धारक है वह सब प्रकार के अन्न ज्ञान जीवनबलों का तथा वास भोगधनों का अच्छा दाता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

७८. प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुꣳसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य। इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु॥ ६ ॥

पदपाठः—प्र सम्राजम् सम राजम् असुरस्य अ सुरस्य प्रशस्तम् प्र शस्तम् पुꣳसः कृष्टीनाम् अनुमाद्यस्य अनु माद्यस्य इन्द्रस्य इव प्र तवसः कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥

अन्वयः—कृष्टीनाम् अनुमाद्यस्य-असुरस्य पुंसः प्रशस्तं सम्राजं प्र तवसः-

इन्द्रस्य-इव कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥

पदार्थः—(कृष्टीनाम्) मनुष्यों के "कृष्टयः-मनुष्याः" [निघं० २.३] (अनुमाद्यस्य-असुरस्य) यथार्थ वन्दनीय प्राणप्रद तथा प्रज्ञाप्रद "प्राणो वा असुः" [श० ६.६.२.६] "असुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] (पुंसः) पौरुषयुक्त—सृष्टिरचन-समर्थ तथा कर्मफल प्रदानसमर्थ परमात्मा के (प्रशस्तं सम्राजम्) प्रसिद्ध सम्यक्-राजमान स्वामित्व को (प्र) 'प्रस्तुत'—प्रकृष्टरूप से बखानकर—ध्यान में ला (तवसः-इन्द्रस्य-इव कृतानि) बलवान् सूर्य के समान कर्म—विश्वसञ्चालन और ज्ञान प्रदान हैं उन्हें भी (प्र) बखान कर (वन्दद्वारा) वे कर्म वन्दना के द्वार हैं (वन्दमाना विवष्टु) वन्दन वचनों—स्तुतिवचनों को वह चाहे-स्वीकार करे—करता है।

भावार्थः—मनुष्यों का स्तुतिपात्र परमात्मा है वह प्राण और प्रज्ञा का दाता है, सृष्टिरचना में और मनुष्य के कर्मफल देने में पूर्ण समर्थ है, सूर्य की भाँति उसके प्रताप और प्रकाश कार्य विश्व में हो रहे हैं जो वन्दना के सूचक हैं वह हमारे द्वारा की गई स्तुतियों को स्वीकार कर हम पर कृपा करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब जिसके मित्र हैं जो सबका मित्र है सर्वस्नेही उपासक) ॥

७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥

पदपाठः— अरण्योः निहितः नि हितः जातवेदाः जात वेदः गर्भः इव इत् सुभृतः सु भृतः गर्भिणीभिः दिवेदिवे दिवे दिवे ईड्यः जागृवद्भिः हविष्मद्भिः मनुष्येभिः अग्निः ॥ ७ ॥

अन्वयः—जातवेदाः-अग्निः अरण्योः-निहितः गर्भिणीर्भिः गर्भः-इव-इत् सुभृतः जागृवद्भिः-हविष्मद्भिः मनुष्येभिः दिवे दिवे-ईड्यः ॥

पदार्थः—(जातवेदाः-अग्निः) सबको जानने वाला—जातमात्र—उत्पन्नमात्र में विद्यमान प्रकाशस्वरूप परमात्मा (अरण्योः-निहितः) दो लकड़ियों के समान मन और हृदय में निहित है, मन में मनन और हृदय में निदिध्यासन के द्वारा प्रकट होने से (गर्भिणीर्भिः) गर्भवती स्त्रियों द्वारा (गर्भः-इव-इत् सुभृतः) गर्भ की भाँति ही सम्यक् धारित हुआ सा है (जागृवद्भिः-हविष्मद्भिः) जागरूक सावधान एवं हावभाव भरी स्तुतिरूप भेंट देने वाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों द्वारा (दिवे दिवे-ईड्यः) दिन दिन—प्रतिदिन स्तवनीय-उपासनीय—उपासना से साक्षात्करणीय है।

भावार्थः—परमात्मा महान् चेतन अग्नि है, जो गर्भवती स्त्रियों में गर्भ की भाँति, उपासकों के हृदय में छिपा हुआ है, तथा दो लकड़ियों में छिपा हुआ अग्नि जैसे उनके सङ्घर्षण से प्रकट होता है ऐसे परमात्मा मन में मनन और हृदय में निदिध्यासन साधन से प्रकाशित होता है, प्रतिदिन उसके प्रति हावभाव भरी स्तुति भेंट देने वाले उपासक सावधान हो श्रद्धा से अपने अन्दर साक्षात् करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः पायुः (दोषनिवारण गुणधारण अपनी रक्षा करने वाला उपासक)॥

८०. **सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षाꣳसि पृतनासु जिग्युः। अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥ ८॥**

पदपाठः— **सनात् अग्ने मृणसि यातुधानान् यातु धानान् न त्वा रक्षाꣳसि पृतनासु जिग्युः अनु दह सहमूरान् सह मूरान् कयादः कय अदः मा ते हेत्याः मुक्षत दैव्यायाः॥ ८॥**

अन्वयः—अग्ने यातुधानान् सनात्-मृणसि त्वा रक्षांसि पृतनासु न जिग्युः मूरान् कयादः-सह-अनुदह दैव्यायाः-हेत्याः ते मा मुक्षत॥

पदार्थः—(अग्ने) हे शोधक अज्ञानान्धकारनाशक परमात्मन्! तू (यातुधानान्) अपने तथा अन्यों के प्रति यातना धारण करने वालों पीड़ा पहुँचाने वाले पापविचारों तथा पापीजनों को (सनात्-मृणसि) नित्य या सर्वदा "सनात् नित्ये—सर्वदा वा" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] हिंसित करता है नष्ट करता है (त्वा रक्षांसि पृतनासु न जिग्युः) तुझे राक्षस—जिनसे रक्षा करनी चाहिए ऐसे पापविचार और पापीजन संघर्ष संग्रामों में "पृतनाः संग्राम नाम" [निघं० २.१७] जीत नहीं सकते हैं—तेरे दण्डविधान का उलङ्घन नहीं कर सकते हैं (मूरान् कयादः-सह-अनुदह) मूढ—अज्ञानपरायण तथा शरीरस्थ मांस खाने वालों का एकसाथ भस्म कर दे—कर देता है—तुच्छ असमर्थ कर देता है "लडर्थे लोट्" (दैव्यायाः-हेत्याः) तेरी दैवी—तीक्ष्ण हेति वज्रशक्ति से "हेतिः-वज्रनाम" [निघं० २.२०] (ते मा मुक्षत) वे न छूट सकें—नहीं छूट सकते।

भावार्थः—परमात्मा सदा से या नित्य मनुष्यों के पीडक विचारों—पाप भावों एवं पापियों को नष्ट करता है, पाप और पापी उसके सम्मुख तुच्छ हैं उन ऐसे शरीर का मांस सुखाने तथा खाने वाले पाप-विचारों और पापियों को एक साथ भस्म करने तुच्छ करने में समर्थ है उसके दिव्य वज्र से कोई पाप और पापी बच नहीं सकता, उसका चिन्तनबल पाप को भगाने वाला उसका आश्रय पापियों से रक्षा करता है॥ ८॥

नवम खण्ड

छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः। ऋषिः—गयत्रिः (अध्यात्म धन का रक्षक तथा वर्धक उपासक)॥

८१. **अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो। प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्॥ १॥**

पदपाठः— अग्ने ओजिष्ठम् आ भर द्युम्नम् अस्मभ्यम् अध्रिगो अध्रि गो प्र नः राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्॥ १॥

अन्वयः—अध्रिगो-अग्ने अस्मभ्यम् ओजिष्ठं द्युम्नम् आभर पनीयसे राये वाजाय नः पन्थां प्ररत्सि॥

पदार्थः—(अध्रिगो-अग्ने) हे अधृतगमन—अनिरुद्धगतिवाले—सर्वथा सर्वदा पूर्ण शक्तिवाले परमात्मन्! "अध्रिगो-अधृतगमन" [निरु० ५.१०] (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ओजिष्ठं द्युम्नम्) अत्यन्त ओजस्वी यश सत्कर्म ख्याति को "द्युम्नं यशः" [निरु० ५.५] (आभर) समन्तरूप से धारण करा, तथा (पनीयसे राये वाजाय) प्रशंसनीय ऐश्वर्य—मोक्षैश्वर्य के लिये और प्रशंसनीयबल—आत्मबल के लिये "वाजो बलम्" [निघं० २.९] (नः पन्थां प्ररत्सि) हमारे मार्ग को निर्माण कर—तैयार कर।

भावार्थः—अप्रतिहत शक्तिवाला परमात्मा उपासकों में संसारनिर्वाहक ऊँचा यश धारण कराता है तथा मोक्षैश्वर्य और आत्मबल प्राप्ति का मार्ग भी बनाता है उसकी उपासना करना उसकी शरण लेना अपना समर्पण करना कल्याणकारी और परम आवश्यक है॥ १॥

ऋषिः—वामदेवो वा भरद्वाजो वा (वननीय परमात्मदेव वाला या अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला उपासक)॥

८२. यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम्॥ २॥

पदपाठः— यदि वीर अनु स्यात् अग्निम् इन्धीत मर्त्यः आजुह्वत् आ जुह्वत् हव्यम् अनुषक् अनु सक् शर्म्म भक्षीत दैव्यम्॥ २॥

अन्वयः—यदि 'यत्-इ' मर्त्यः अग्निम्-इन्धीत अनु वीरः-स्यात् आनुषक्-हव्यम्-आजुह्वत् दैव्यं शर्म भक्षीत॥

पदार्थः—(यदि 'यत्-इ') जब हि—जब कि (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्-इन्धीत) परमात्मा को अपने आत्मा में प्रदीप्त करे—उपासना में लावे—ध्यावे (अनु) फिर (वीरः-स्यात्) वह वीर हो जावे स्वात्मबल का बलवान् हो जावे—वास्तविक स्वाश्रय वीर बन जावे "स ह वाव वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० २.२८२] (आनुषक्-हव्यम्-आजुह्वत्) पुनः आनुपूर्व्य—क्रमशः—निरन्तर "आनुषगिति नामानुपूर्व्यस्यानुषक्तं भवति" [निरु० ६.१५] उस परमात्मा अग्नि में अपने आत्मभाव हवि को समन्तरूप से समर्पित करता है, तो (दैव्यं शर्म भक्षीत) देवों—मुक्तों वाले सुख—मोक्षानन्द को "शर्म सुखनाम" [निरु० ३.६] भोगता है।

भावार्थः—धनबल या शरीरबल या सत्ताबल या जनबल के आधार पर बलवान् नहीं होता किन्तु परमात्मा की शरण में जाने से, उसके आराधन से, उस पर आस्था रखने से बलवान् बनता है पुनः निरन्तर परमात्मा के प्रति अपना समर्पण रखने से मोक्षानन्द को भी भोगता है ॥ २ ॥

ऋषिः—वामदेवो वा भरद्वाजो वा (वननीय परमात्मदेव वाला या अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला उपासक)॥

८३. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि संच्छुक्र आततः। सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वेषः ते धूमः ऋ ण्वति दिवि सन् शुक्रः आततः आ ततः सूरः न हि द्युता त्वम् कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥

अन्वयः—पावक ते त्वेषः-धूमः शुक्रः सन् दिवि-आततः ऋण्वति हि सूरः-न द्युता त्वं कृपा रोचसे॥

पदार्थः—(पावक) हे पवित्र करने वाले परमात्मन्! (ते) तुझ (त्वेषः-धूमः) तेजस्वी का तेज (शुक्रः सन्) शुभ्र हुआ (दिवि-आततः) मोक्षधाम में समन्तरूप से वर्तमान हो "त्रिपादस्यामृत दिवि" [ऋ० १०.९०.३] (ऋण्वति) विश्व में गति कर रहा है "ऋण्वति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (हि सूरः-न द्युता) सचमुच सूर्य जैसे दीप्ति से, ऐसे (त्वं कृपा रोचसे) तू अपने तेजोमय सामर्थ्य से प्रकाशित हो रहा है।

भावार्थः—परमात्मन्! मोक्षधाम में वर्तमान तेरा प्रकाशमय अमृतस्वरूप सारे जगत् में फैल रहा है, जैसे सूर्य अपनी प्रखर ज्योति से चमक रहा है ऐसे तू अपनी तेजोमयी शक्ति से विश्व में छाया हुआ है। तू महान् उपासनीय देव है ॥ ३ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला उपासक)॥

८४. त्वं हि क्षैतवद् यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे। त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि॥ ४॥

पदपाठः— त्वम् हि क्षैतवत् यशः अग्ने मित्रः मि त्रः न पत्यसे त्वम् विचर्षणे वि चर्षणे श्रवः वसो पुष्टिम् न पुष्यसि ॥ ४ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वं हि क्षैतवत्-यशः पत्यसे मित्रः-न विचर्षणे वसो त्वं श्रवः पुष्टिं न पुष्यसि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशमान परमात्मन्! (त्वं हि) तू ही (क्षैतवत्-यशः) क्षिति पृथिवी का—पार्थिव देह, "क्षितिः पृथिवीनाम" [निघं० १.१] पार्थिव देहवाले उदक—जीवनरस पर "यशः-उदकनाम" [निघं० १.१२] (पत्यसे)

स्वामित्व करता है "पत्यते-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २.२१] (मित्रः-न) प्राण के समान "प्राणो वै मित्रः" [श० ६.५.१.५] प्राण जैसे शरीरस्थ जीवनरस पर स्वामित्व करता है (विचर्षणे वसो) हे सर्वद्रष्टा वसाने वाले परमात्मन् (त्वम्) तू (श्रवः पुष्टिं न पुष्यसि) मेरे आत्मयश को भी "श्रव इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ११.९] पुष्टि के समान—जीवनरस की पुष्टि के समान पुष्ट करता है—उन्नत करता है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू अपनी महती कृपा से मुझ उपासक के जीवनरस को प्राण के समान उसे प्रवृद्ध करने वाला है और मेरे आत्मयश को भी पुष्ट-प्रवृद्ध करके अपने आश्रय में वसाने वाला है, मैं किस भावना से तेरी शरण में आने को उत्सुक हूँ यह तू जानता है। अतः मुझे अपनी शरण दे॥४॥

ऋषिः—द्वितो मृक्तवाहाः (दोनों प्रकार से शरीर और आत्मा को पवित्र एवं अलङ्कृत कर आगे वहन करने वाला)॥

८५. **प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः। विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते॥५॥**

पदपाठः— **प्रा तः अग्निः पुरुप्रियः पुरु प्रियः विशः स्तवेत अतिथिः विश्वे यस्मिन् अमर्त्ये अ मर्त्ये हव्यम् मर्त्तासः इन्धते॥५॥**

अन्वयः—पुरुप्रियः अतिथिः अग्निः प्रातः विशः स्तवेत यस्मिन्-अमर्त्ये विश्वे मर्तासः हव्यम्-इन्धते॥

पदार्थः—(पुरुप्रियः) बहुत प्रकार से प्रिय "पुरु बहुनाम" [निघं० ३.१] (अतिथिः) मेरे हृदयगृह में प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्रणेता परमात्मा! (प्रातः) प्रातःकाल—सर्व कार्य से प्रथम (विशः स्तवेत) मनुष्य प्रजाओं द्वारा "विशो मनुष्याः" [निघं० २.३] "तृतीयार्थे प्रथमा" स्तवन में लाया जाए—उपासित किया जावे (यस्मिन्-अमर्त्ये) जिस अमरदेव के आश्रय में (विश्वे मर्तासः) सब मरणधर्मा—जन्ममरण में आने वाले मनुष्य (हव्यम्-इन्धते) अपने मन को शुद्धरूप में प्रकाशित करते हैं।

भावार्थः—परमात्मा समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अत्यधिक प्रिय है, उस हृदयसदन के अतिथि सत्करणीय परमात्मा की मनुष्य सर्वप्रथम स्तुति करें, उस के आश्रय में अपने मन को पवित्ररूप में प्रकाशित करें॥५॥

ऋषिः—वसूयव आत्रेयाः-ऋषयः (मोक्षैश्वर्य चाहने वाले इसी जीवन में साधने वाले उपासक)॥

८६. **यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते॥६॥**

पदपाठः— **यत् वाहिष्ठम् तत् अग्नये बृहत् अर्च्च विभावसो विभा वसो महिषी इव त्वत् रयिः त्वत् वाजाः उत् ईरते ॥ ६ ॥**

अन्वयः—विभावसो अग्नये यत्-बृहत्-वाहिष्ठं तत्-अर्च महिषी-इव त्वद्रयिः त्वद्वाजाः उदीरते ॥

पदार्थः—(विभावसो) हे विशेष बुद्धि के साथ वसने वाले उपासक! या विशेष भा—ज्योति जिसमें बसी है ऐसे—"चतुर्थ्यर्थे सम्बोधनम्" (अग्नये) परमात्मा के लिये (यत्-बृहत्-वाहिष्ठम्) जो महान् जीवन को वहन करने वाला प्राण या मन है (तत्-अर्च) उसे समर्पित कर (महिषी-इव) भूमि के समान उस परमात्मा से "भूरिति महिषी" [तै० ३.९.४.५] (त्वद्रयिः) तेरा अभीष्ट धन (त्वद्वाजाः) तेरे भोज्यपदार्थ (उदीरते) उभर आते हैं—प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थः—उपासक का बहुमूल्य पदार्थ प्राण या मन है यदि बुद्धिमान् उसे परमात्मा के प्रति समर्पित कर दे तो पृथिवी के धन और मोक्षपदार्थ उसे सदा प्राप्त होते रहेंगे कारण कि इनका हेतु या स्वामी तो परमात्मा है ॥ ६ ॥

ऋषिः—गोपवनः सप्तवध्रिर्वा (अपनी इन्द्रियों को पवित्र करने वाला या पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि को बान्धने—नियन्त्रण में रखने वाला उपासक)॥

८७. **विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्। अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **विशोविशः विशः विशः वः अतिथिम् वाजयन्तः पुरुप्रियम् पुरु प्रियम् अग्निम् वः दुर्यम् दुः यम् वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥**

अन्वयः—वः वाजयन्तः विशः-विशः अतिथिः पुरुप्रियं वः शूषस्य दुर्यम्-अग्निं मन्मभिः-वचः स्तुषे ॥

पदार्थः—(वः) तुम 'विभक्ति व्यत्ययः' (वाजयन्तः) अपने आत्मबल को चाहने के हेतु (विशः-विशः) मनुष्य मनुष्य—प्रत्येक के (अतिथिः) सदा साथ प्राप्त पूज्य (पुरुप्रियम्) बहुत प्रिय (वः शूषस्य दुर्यम्-अग्निम्) तुम्हारे सुख—कल्याण के "शूषं सुखनाम" [निघं० ३.६] घर "दुर्यं गृहनाम" [निघं० ३.४] परमात्मा को (मन्मभिः-वचः) मननीय वचनों से उसके गुण चिन्तन स्तुति वचनों से "मन्मानि मननीयानि" [निरु० ८.६] 'वचः-वचोभिः-विभक्तेर्लुक्' (स्तुषे) स्तुति करो 'पुरुषवचनव्यत्ययः'।

भावार्थः—मनुष्यों को अपना आत्मबल बढ़ाने के लिये सुखशान्ति के धाम सदा के साथी पूज्य सर्वप्रिय परमात्मा की उसके गुणचिन्तन वचनों से स्तुति करनी

चाहिए ॥ ७ ॥

ऋषिः—आत्रेयः पुरुः (यहाँ ही—इसी जीवन में तृतीय मोक्षधाम का साधक बहुत यत्नशील अपने में परमात्मा को पूरण करने वाला) ॥

८८. बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये। यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥

पदपाठः— बृहत् वयः हि भानवे अर्च्च देवाया अग्नये यम् मित्रम् मि त्रम् न प्रशस्तये प्र शस्तये मर्त्तासः दधिरे पुरः ॥ ८ ॥

अन्वयः—भावने देवाय-अग्नये बृहद्-वयः-हि अर्च मर्तासः प्रशस्तये यं मित्रं न पुरः-दधिरे ॥

पदार्थः—(भानवे देवाय-अग्नये) स्वयं प्रकाशस्वरूप अन्यों को प्रकाशित करने वाले परमात्मदेव के लिये (बृहद्-वयः-हि) अधिक से अधिक जीवनकाल अवश्य (अर्च) हे उपासको! अर्चित करो क्योंकि (मर्तासः प्रशस्तये) मरणशील—जन्ममरण में आए जन अपनी कल्याण प्राप्ति के लिये (यं मित्रं न) जिसको मित्र के समान (पुरः-दधिरे) सम्मुख लक्ष्य में रखते हैं।

भावार्थः—संसार में जन्ममरण चक्र में पड़े जनों की प्रशस्ति—कल्याण भावना का नितान्त सहारा मित्र के समान साक्षात् परमात्मा ही है शोक दुःख ताप से ऊपर उठाए रखता है अतः प्रसिद्ध प्रकाशमान परमात्मा के लिये अपने जीवनकाल का अधिकाधिक भाग उसकी अर्चना में अर्पित करे, बाल्यकाल में तो उसका ध्यान सम्भव नहीं है, वृद्धावस्था में कुछ ही सम्भव है अधिक नहीं, अशक्ति और रोगों के कारण, अतः केवल यौवनकाल से ही उसकी आराधना का अभ्यासी बनना चाहिए वृद्धावस्था में भी वह अभ्यास साथ देगा ही ॥ ८ ॥

ऋषिः—गोपवनः (इन्द्रियों को पवित्र करने वाला उपासक) ॥

८९. अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्। यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥

पदपाठः— अगन्म वृत्रहन्तमम् वृत्र हन्तमम् ज्येष्ठम् अग्निम् आनवम् यः स्म श्रुतर्वन् आरक्षे बृहदनीकः बृहत् अनीकः इध्यते ॥ ९ ॥

अन्वयः—यः स्म श्रुतर्वन् बृहदनीके-आर्क्षे इध्यते वृत्रहन्तमं ज्येष्ठम्-आनवम्-अग्निम् अगन्म ॥

पदार्थः—(यः स्म) जो ही परमात्मा (श्रुतर्वन्) प्रसिद्ध अर्वा-रश्मि-घोड़ों वाले सूर्य में (बृहदनीके-आर्क्षे) बड़े खुले अवकाश में नक्षत्र तारागण द्युमण्डल में

(इध्यते) प्रकाशित हो रहा है। "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" 'ओ३म् खं ब्रह्म' [यजु० ४०.१७] "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [वठो० ५.१५] (वृत्रहन्तमं ज्येष्ठम्-आनवम्-अग्निम्) इस पाप विनाशक "पाम्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] श्रेष्ठ तथा मनुष्य सम्बन्धी "अनवः-मनुष्याः" [निघं० २.३] इष्टदेव परमात्मा को (अगन्म) प्राप्त करें।

भावार्थः—परमात्मा दिन में सूर्य के अन्दर रात्रि में महान् नक्षत्रतारामण्डल में प्रकाश देता हुआ साक्षात् होता है वह मनुष्यों के भीतर आत्मा में से अज्ञानान्धकार और पाप को हटाता हुआ वर्तमान है उसे हम अपने अन्दर साक्षात् करें ॥ ९ ॥

ऋषिः—मारीचो वामदेवः कश्यपो वा, मनुर्वैवस्वतो वा (वासनाओं को मार देने वाली वैराग्य ज्योतियों से सम्पन्न वननीयदेव वाला या शासन में आने योग्य मन से परमात्मामृत का पानकर्ता या सूर्यसमान ज्ञानप्रसारक परमात्मा का मननकर्ता जन)॥

१०. जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः। पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥

पदपाठः— जातः परेण धर्म्मणा यत् सवृद्भिः स वृद्भिः सह अभुवः पिता यत् कश्यपस्य अग्निः श्रद्धा श्रत् धा माता मनुः कविः ॥१०॥

अन्वयः—अग्निः यत् कश्यपस्य पिता श्रद्धा माता मनुः कविः यत् सवृद्भिः सहाभुवः परेण धर्मणा जातः ॥

पदार्थः—(अग्निः) पापों वासनाओं का शोधक ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (यत्) 'यः' 'लिङ्गव्यत्ययः' जो (कश्यपस्य पिता) सूक्ष्मदर्शी मन को निरुद्ध करने वाले योगी का "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १.८.८] पिता—पालक (श्रद्धा माता) श्रद्धा वाले 'श्रद्धावतः-मतुब्लोपश्छान्दसः' श्रद्धा योग में प्रज्ञा के पश्चात् निष्ठा वाले आत्मसमर्पी की माता—मान करने वाला—आश्रय देने वाला "प्रज्ञापूर्वरूपं श्रद्धोत्तररूपम्" [शां० आ० ३.७] (मनुः कविः) 'मनोः' 'विभक्तिव्यत्ययः' मनन करने वाले का अनूचान—गुरु है "ये वा अनूचानास्ते कवयः" [ऐ० २.२.३८] (यत् सवृद्भिः सहाभुवः) जबकि इनके साथ समागम वर्तन करने वालों के द्वारा सहभाव को प्राप्त हुआ परमात्मा (परेण धर्मणा जातः) अलौकिक अमृतगुण से प्रसिद्ध—साक्षात् हुआ करता है।

भावार्थः—परमात्मा सूक्ष्मदर्शी अभ्यासी का पिता—पालक, श्रद्धायुक्त वैराग्यवान् की माता और मननशील का आचार्य बनकर उनके द्वारा धारणा ध्यान समाधि में परम अमृतगुण के साथ साक्षात् होता है। इस प्रकार वह श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा साक्षात् हुआ करता है ॥१०॥

दशम खण्ड

छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः। ऋषिः—अग्निस्तापसः (तप से सम्पन्न अग्निसमान तेजस्वी अभ्यासी उपासक)॥ देवताः—विश्वे देवाः (सब देवनामों से प्रसिद्ध परमात्मा के भिन्न भिन्न स्वरूप)॥

९१. **सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे। आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥ १॥**

पदपाठः— सोमम् राजानम् वरुणम् अग्निम् अन्वारभामहे अनु आरभामहे आदित्यम् आ दित्यम् विष्णुम् सूर्य्यम् ब्राह्मणम् च बृहः पतिम्॥ १॥

अन्वयः—राजानं सोमम् अग्निम् आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् अन्वारभामहे॥

पदार्थः—(राजानम्) सर्वत्र राजमान—विराजमान (सोमम्) उत्पत्तिकर्ता होने से सोमनामक—(अग्निम्) अग्रणायक होने से अग्निनामक—(आदित्यम्) अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के अधिपति होने से आदित्यनामक—(विष्णुम्) सबमें व्यापक होने से विष्णुनामक—(सूर्यम्) सबके प्रेरक प्रकाशक होने से सूर्यनामक—(ब्रह्माणम्) सृष्टि रचयिता होने से ब्रह्मा नाम वाले (च) और (बृहस्पतिम्) वेदवाणी का रक्षक होने से बृहस्पति नाम वाले परमात्मा को (अन्वारभामहे) अनुष्ठित करें—उपासित करें—उपासना में लावें।

भावार्थः—परमात्मा अपने भिन्न भिन्न गुणों और कर्मों के कारण भिन्न भिन्न नाम से उपासित करने—उपासना में लाने योग्य है, संसार के सोम आदि दिव्य पदार्थों में गुण उस परमात्मा से आते हैं वही उनमें उनके दिव्यगुणों का आधान करने वाला होने से उस उस रूप में देखा जाता है अतः वह उस उस रूप में एवं योगवशात् धर्मवान् होने से वैसा स्मरण करने योग्य है, मनुष्य सांसारिक सोम आदि पदार्थों में ही न फँसा रहे॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मा देव जिसका है ऐसा उपासक)॥ देवताः—विश्वे देवाः (सब देवनामों से प्रसिद्ध परमात्मा के भिन्न भिन्न स्वरूप)॥

९२. **इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन्। प्र भूर्जयो यथा पथोद् द्यामङ्गिरसो ययुः॥ २॥**

पदपाठः— इतः एते उदारुहन् उत् आरुहन् दिवः पृष्ठानि आ अरुहन् प्र भूः जयः यथा पथा उत् द्याम् अङ्गिरसः ययुः॥ २॥

अन्वयः—एते-अङ्गिरसः इतः-उदारुहन् दिवः पृष्ठानि-आरुहन् द्यां प्रययुः यथा भूर्जयः पथः॥

पदार्थः—(एते-अङ्गिरसः) ये सोम आदि नाम वाले परमात्मा के उपासक श्रवणशील मननशील निदिध्यासनशील आत्मसमर्पण द्वारा अङ्गी—अङ्गों के स्वामी स्वात्मा को रसीला बनाने वाले योगीजन (इतः-उदारुहन्) इस मर्त्य स्थिति से ऊपर उठ जाते हैं पुनः ऊपर उठते उठते (दिवः पृष्ठानि-आरुहन्) सूर्य की पृष्ठों पर—सूर्य की तेज रश्मियों पर आरूढ़ हो जाते हैं। "तेजो वै पृष्ठानि" [तै० सं० ५.५.८.१] "सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्यय आत्मा" [मुण्डको० १.२.११] (द्यां प्रययुः) तेजों रश्मियों द्वारा अमृतधाम को प्रगमन कर जाते हैं प्राप्त हो जाते हैं "द्यौरपराजिता अमृतेन विष्टा" [तै० ४.४.५.२] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] (यथा भूर्जयः पथः) जैसे स्वगुणपराक्रमों से भूमण्डल पर जय पाते हुए राजा लोग उत्तम शासन पथों मार्गों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—सोम आदि नामों से परमात्मा की उपासना करने वाले श्रवण मनन निदिध्यासन परायण उपासकजन अङ्गों के स्वामी आत्मा को रसीला बनाने वाले योगीजन मरणदेह से ऊपर उठकर सूर्य की तेजोरूप रश्मियों पर आरूढ़ हो जाते हैं पुनः अमृतरूप मोक्षधाम को प्राप्त हो जाते हैं जैसे भूमि को जय करते हुए राजा लोग उत्तम शासन पथों—मार्गों को प्राप्त होते हैं॥ २॥

ऋषिः—कश्यपोऽसितो देवलो वामदेवो वा (सूक्ष्मदर्शी, दुर्वासनारहित, अपने देवधर्मों को लाने वाला या वननीय देव का उपासक)॥

९३. राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि। ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी॥ ३॥

पदपाठः— राये अग्ने महे त्वा दानाय सम् इधीमहि ईडिष्व हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवीइति॥ ३॥

अन्वयः—अग्ने महे दानाय राये त्वा समिधीमहि वृषन् महे होत्राय द्यावापृथिवी हि-ईडिष्व॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (महे दानाय राये) महान् दान मोक्षैश्वर्य के लिये (त्वा समिधीमहि) तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करें—साक्षात् करें, इस हेतु (वृषन्) जीवनवृष्टि करने वाले! तू (महे होत्राय) तेरे महान् दान मोक्षैश्वर्य के प्रतीकार में हमारे महान् होत्र—आत्मसमर्पण के लिये (द्यावापृथिवी हि-ईडिष्व) हमारे प्राण उदान को "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४.३.१.२२] बढ़ा "ईडते वर्धयन्ति" [निरु० ८.१]।

भावार्थः—प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तेरा दान महान् है जो कि मोक्षैश्वर्य है उससे बड़ा दान कोई नहीं है, उसकी प्राप्ति के लिये हम अपने अन्दर तुझे प्रकाशित करें—साक्षात् करें, इसका उपाय या इस के प्रतीकार या परिवर्तन में हम भी अपने आत्मा को आत्मभाव से स्तुतिसमर्पण को तेरी भेंट दे सकें इस हेतु हमारे प्राण

उदान को बढ़ा अर्थात् हमें स्वस्थ दीर्घजीवी बना दे॥ ३॥

ऋषिः—भार्गवाहुतिः सोमो वा (ज्ञान में परिपक्व आत्मसमर्पण से सम्पन्न या सोम्यगुणवाला उपासक)॥

९४. **दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत्। परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत्॥ ४॥**

पदपाठः— **दधन्वे वा यत् ई अनु वोचत् ब्रह्म इति वेः उ तत् परि विश्वानि काव्या नेमिः चक्रम् इव अभुवत्॥ ४॥**

अन्वयः—यत्-ईं-दधन्वे वा अनुवोचत्-ब्रह्म-इति तत् वेः-उ विश्वानि काव्या परिभुवत् चक्रं नेमिः-इव॥

पदार्थः—(यत्-ईम्-दधन्वे) जो उपासक इस स्वात्मसमर्पण द्वारा इष्टदेव परमात्मा को साक्षात् प्राप्त कर लेता है ''धविगत्यर्थः'' [भ्वादि०] 'लिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपं छान्दसं चात्मनेपदम्' (वा) और ''वा-अथापि समुच्चयार्थे भवति'' [निरु० १.५] (अनुवोचत्-ब्रह्म-इति) फिर अन्यों को उसका प्रवचन करता है कि ऐसा ''इति प्रकारे'' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] ब्रह्म—सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्राप्तव्य देव है (तत्) जिससे वह (वेः-उ) निश्चित कान्तिमान् एवं अन्यों का कमनीय हो जाता है ''वी गति कान्ति.....'' [अदादि०] तथा (विश्वानि काव्या परिभुवत्) समस्त जीवनज्ञानविज्ञानों को परिभव करता है—घेर लेता है—आश्रय बन जाता है (चक्रं नेमिः-इव) जैसे चक्र का घेरा चक्र को घेर लेता है—आश्रय में ले लेता है ''यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'' [बृहदा० २.४.५]।

भावार्थः—योगाभ्यास आत्मसमर्पण द्वारा परमात्मा को जो उपासक साक्षात् प्राप्त कर लेता है और अपने साक्षात् ज्ञान के अनुसार उसका अन्य को उपदेश देता है कि ऐसा महत्त्वपूर्णदेव ब्रह्म है तो वह स्वयं कान्तिमान् हुआ अन्यों का भी कमनीय—चाहने योग्य हो जाता है, तथा समस्त जीवन के ज्ञानविज्ञानों का घेरा—आश्रय बन जाता है॥ ४॥

ऋषिः—पायुः (परमात्मशरण ले अपने को पाप दुःखाज्ञान से सुरक्षित रखने वाला उपासक)॥

९५. **प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि। यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम्॥ ५॥**

पदपाठः— **प्रति अग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतः परि यातुधानस्य यातु धानस्य रक्षसः बलम् नि उब्ज वीर्यम्॥ ५॥**

अन्वयः—अग्ने हरसा यातुधानस्य रक्षसः हरः विश्वतः परि प्रति शृणाहि बलं वीर्यं न्युब्ज॥

पदार्थः—(अग्ने) हे पापतापक दोषशोधक अज्ञानान्धकार निवारक परमात्मन्! तू (हरसा) अपने तेज से (यातुधानस्य रक्षसः) मेरे प्रति यातना—पीड़ा धारण करने वाले तथा जिससे हम अपनी रक्षा करते हैं ऐसे पाप रोग दोष के (हरः) ज्वलन वेग, बल को (विश्वतः परि) सब ओर से सब प्रकार से सर्वथा (प्रति श्रृणाहि) प्रतिहिंसित कर दे—प्रतिरोध से नष्ट कर दे (बलं वीर्यं न्युब्ज) प्रबल प्रभाव को भी पूर्वरूप में ऋजु—निर्बल कर दे "उब्ज आर्जवे" [तुदादि०]।

भावार्थः—परमात्मा आत्मसमर्पी उपासकों के पाप रोग दोष एवं उनके पूर्वरूपों को अपने तेज से सर्वथा अकिंचित्कर—निर्बल कर देता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (कण्व—मेधावी का पुत्र—अत्यन्त मेधावी[1])॥

१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ २ १ २ ३२उ ३
९६. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत। यजा स्वध्वरं जनं
१ २ ३ १ २
मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥

२ २ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २
पदपाठः— त्वम् अग्ने वसून् इह रुद्रान् आदित्यान् आ दित्यान् उत
१ २र ३ २ ३ ३ २ १ २र १ २र १ २र ३
यज स्वध्वरम् सु अध्वरम् जनम् मनुजातम् मनु जातम्
३ १ २ ३ १ २र
घृतप्रुषम् घृत प्रुषम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वम् स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं प्रति वसून् रुद्रान्-आदित्यान्-उत यज ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशक तेजस्वी अग्रणेता परमात्मन्! (त्वम्) तू (स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं प्रति) शोभन अध्यात्म यज्ञकर्ता रेतः—वीर्य से पूरण हुए—ब्रह्मचर्यसम्पन्न—संयमी "रेतो वै घृतम्" [श० ९.२.३.४४] "प्रुष स्नेहनसेवनपूरणेषु" [चुरादि०] देव—दिव्यगुण युक्त विद्वान् "ये देवा मनुजाताः" [पै० १.२.३] एवं उपासकजन के प्रति (वसून् रुद्रान्-आदित्यान्-उत) वसुनामक वसाने वाले—जीवन देने वाले प्राणों को "प्राणा वै वसवः प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते" [जै० उ० ४.२.१.३] रुद्रनामक रुलाते हुए प्राणों को "प्राणा वै रुद्राः प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति" [जै० उ० ४.२.१.६] आदित्य नामक रस के आदान करने वाले प्राणों को "प्राणा वा आदित्याः प्राणा हीदं सर्वमाददते" [जै० उ० ४.२.१.९] (यज) सङ्गमनीय—श्रेष्ठ—उपयुक्त बना—बनाता है।

भावार्थः—सद्गुणयुक्त ब्रह्मचर्यसम्पन्न संयमी अध्यात्म यज्ञ के कर्ता उपासक को जीवन धारण कराने वाले प्राणों को, दोषशोधक प्राणों को और आहार ग्रहण कराने वाले प्राणों को परमात्मा उपयुक्त बना देता है ॥ ६ ॥

इति छन्दः पदे प्रथमः प्रपाठकः

---

१. "प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" [निरु० ३.१७]।

अथ द्वितीयः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

छन्दः—उष्णिक्। स्वरः—ऋषभः। ऋषिः—दीर्घतमाः (आयु को चाहने वाला—मुक्ति के जीवन को चाहने वाला उपासक)॥

९७. पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽ रिरग्ने तव स्विदा।
तोदस्येव श र ण आ महस्य॥ १॥

पदपाठः— पुरु त्वा दाशि वान् वोचे अरिः अग्ने तव स्वित् आ
तोदस्य इव शरणे आ महस्य॥ १॥

अन्वयः—अग्ने पुरुदाशिवान् त्वा-आ वोचे अरिः तोदस्य-इव तव महस्य शरणे स्वित्-आ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे जीवन प्रगतिदाता परमात्मन्! (पुरुदाशिवान्) मैं बहुत प्रकार से अपने आत्मा का दानी—स्वात्मसमर्पी (त्वा-आ वोचे) तुझ से ही समन्तरूप से प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि (अरिः) तू ही स्वामी है "ईश्वरोऽप्यरिः" [निरु० ५.८] (तोदस्य-इव तव महस्य शरणे स्वित्-आ) तुझ महान् प्रेरक—आज्ञादाता गृहस्वामी के शरण में—आश्रय में भृत्य की भाँति आ पहुँचूँ, ऐसा सङ्कल्प है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! मैं तेरे प्रति आत्मसमर्पण कर निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि तुझ महान् गृहस्वामी की शरण में भृत्य की भाँति मैं आजाऊँ तेरा कृपापात्र बन जाऊँ॥ १॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)॥

९८. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽ ग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींꣳषि बिभ्रते न वेधसे॥ २॥

पदपाठः— प्र होत्रे पूर्व्यम् वचः अग्नये भरत बृहत् विपाम् ज्योतींꣳषि
बिभ्रते न वेधसे॥ २॥

अन्वयः—न विपां ज्योतींषि बिभ्रते वेधसे होत्रे अग्नये पूर्व्यं वचः बृहत् प्रभरत॥

पदार्थः—(न) अब[१] (विपाम्) मेधावी विद्वानों की (ज्योतींषि) ज्योतियों—ज्ञानरश्मियों के (बिभ्रते) धारक पोषक—(वेधसे) विधाता—(होत्रे) दाता-मोक्षदाता—(अग्नये) ज्ञानप्रकाशक परमात्मा के लिये (पूर्व्यं वचः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ—पूर्णश्रेष्ठ मन्त्रवचनों में नामों से भी श्रेष्ठ स्तुतिवचन—ओ३म् को (बृहत् प्रभरत) हे उपासको! बहुत-बहुत भेंट करो।

भावार्थः—विधाता ज्ञानप्रकाशक परमात्मा विद्वानों—आरम्भकालीन या सृष्टि के प्रारम्भ में होने वाले ऋषियों के लिये ज्ञानरश्मियाँ धारण करता है और प्रदान करता है वह ही बड़े बड़े ज्ञानियों का ज्ञानदाता गुरु है, जैसे कहा है "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" [योग० १.२६] उस ऐसे महान् परम गुरु की श्रेष्ठसद्भाव से स्तुति स्तवन और श्रेष्ठ नाम ओ३म् का जप करना चाहिये ॥ २ ॥

ऋषिः—गोतमः (वेदवाणी को चाहने वाला उपासक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥

९९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥

पदपाठः— अग्ने वाजस्य गोमतः ईशानः सहसः यहो अस्मेइति देहि जातवेदः जात वेदः महि श्रवः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सहसः यहो जातवेदः-अग्ने गोतमः-वाजस्य ईशानः अस्मे महि श्रवः-देहि ॥

---

१. वक्तव्य—"न वेधसे" में 'न' यह शब्द 'वेधसे' की उपमा नहीं हैं क्योंकि उपमावाचक शब्द अपने से पूर्व की उपमा देता है जैसे 'इव' शब्द 'गौरिव गवयः' गौ की भाँति नील गौ। 'सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान' (ऋ० १०.१७८.३) "गा इव तस्थिमे०" (ऋ० ९.११२.६) ऐसे ही 'न' शब्द उपमार्थ अपने से पूर्व की उपमा देता है यास्क निरुक्तकार ने कहा भी है "उपरिष्टादुपचारस्तस्य येनोपमिमीते" (नि० १.४) अर्थात् 'न' उपमार्थ आगे प्रयुक्त होता है जिससे उपमा दी जाती है, जैसे—"मृगो न भीमः" (ऋ० १.१५४.२, १०.१८०.२) इस पर "मृग इव भीमः" (निरु० १.२०) मृग के समान भयङ्कर "स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनं तदिवाविदज्ज्वल्यमानम्" (निरु० ५.३) "मृगमिव व्रा मृगयन्ते" (ऋ० ८.२.६) इस पर "मृगमिव व्रात्याः प्रैषाः" (निरु० ५.४) तथा "समुद्रं न संवरणान्यगमन्" (ऋ० ९.१०७.९) "शूरो न मित्रावरुणा" (ऋ० ५.६३.५) "मनो न येषु हवनेषु" (ऋ० १०.६१.३) "अग्निं मित्रं न दर्शितम्" (ऋ० १.३८.१३) इस प्रकार उपमार्थ 'न' शब्द जिसकी उपमा देता है उसके आगे प्रयुक्त होता है। अतः "न वेधसे" (सा० १.११.२) में 'वेधसे' की उपमा में नहीं है। तब यहाँ सामवेद के उपासनापरक होने से "वेधसे" की उपमा न होकर आध्यात्मिक विधान के सम्प्रति प्रदर्शनार्थ है जैसे वेद में अन्यत्र भी अध्यात्म विधान के सम्प्रति प्रदर्शनार्थ प्रयुक्त है—"भागं न दीधिम" (ऋ० ८.९९.३) इस पर "वयं भागमनुध्यायाम" (निरु० ६.८) यहाँ यास्क ने 'न' को अनु—अब फिर अर्थ में देखा है।

पदार्थः—(सहसः यहो) हे ओम् के जपरूप स्वाध्याय—वैराग्य और तदर्थ भावनरूप योगाभ्यास के सम्पातरूप सङ्घर्षण बल अर्थात् आध्यात्मिक ओज से गत प्राप्त—प्रकाशित साक्षात् होने वाले परमात्मन्! "स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते" [योग० १.२८ व्यास] 'यहुः' "ओहाङ्गतौ" [जुहो०] "औणादिकः कुः प्रत्ययः श्लुश्च बहुलादेव, अभ्यासहकारस्य जकारः" (जातवेदः-अग्ने) उत्पन्न हुए वेद जिससे हैं ऐसे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (गोतमः-वाजस्य ईशानः) वेदवाणी वाले धन का स्वामी है (अस्मे महि श्रवः-देहि) हमारे लिये उस महान् धन ज्ञानरूप को प्रदान कर—हमारे जीवन में आचरित करा धारण करा।

भावार्थः—परमात्मा वेदरूपवाणी वाले ज्ञान धन का धनी स्वामी है वह ओ३म् नाम जप—स्वाध्याय और अर्थभावनरूप योग से या वैराग्य और अभ्यास से साक्षात् होने वाला है उसकी उपासना से वेद के समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं "यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" [बृहदा० १.२.११]।

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब जिसके मित्र हैं और सबका जो मित्र है ऐसा उपासकजन)॥

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १
१००. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज। होता मन्द्रो वि
२र ३ २ ३ १ २
राजस्यति स्त्रिधः॥ ४॥

१ २र १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २
पदपाठः— अग्ने यजिष्ठः अध्वरे देवान् देवयते यज होता मन्द्रः वि
३ १ २र १ २र
राजसि अति सृधः॥ ४॥

अन्वयः—अग्ने मन्द्रः होता यजिष्ठः अध्वरे देवयते देवान् यज स्त्रिधः अति विराजसि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन्! तू (मन्द्रः) हर्षित करने वाला—सुख देने वाला (होता) अपनी शरण में लेने वाला (यजिष्ठः) अत्यन्त याजक (अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (देवयते) तुझ देव को चाहते हुए के लिये (देवान्) दिव्य गुणों को (यज) 'संगमय' सङ्गत कर (स्त्रिधः) क्षयकर्ता हिंसक—दुःखदायक काम वासना आदि दोषों को "स्त्रिध वैदिक धातुक्षयार्थे" "न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति" [ऋ० ५.५४.७] क्षीयते [दयानन्दः] "उषा उच्छेदय स्त्रिधः" [ऋ० १.४८.८] हिंसकान् [दयानन्दः] (अति विराजसि) दबाकर अकिञ्चत्कर विराजमान रह 'लिङर्थे लट्'।

भावार्थः—अग्रणेता प्रेरक परमात्मन्! तू मुझे स्वीकार करने वाला अपनी शरण में लेने वाला प्रशस्त याजक बनकर मेरे अध्यात्म बल में तुझ इष्टदेव को चाहनेवाले मुझ अध्यात्मिक यजमान उपासक के लिये दिव्य गुणों को धारण करा, काम वासना आदि शोषक जीवनरसहीन करने वाले दोषों को अबल अकिञ्चत्कर बना दे॥ ४॥

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (मेधा से तीर्णतम सब प्राप्ति में अधिकारी)॥
देवताः—पवमानः सोमः-अग्निगर्भितः (अग्निरूप प्रकाशमान धाराओं में आता हुआ शान्त परमात्मा)॥

१०१. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये। अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥

पदपाठः— जज्ञानः सप्त मातृभिः मेधाम् आ अशासत श्रिये अयम् ध्रुवः रयीणाम् चिकेतत् आ ॥ ५ ॥

अन्वयः—सप्तमातृभिः जज्ञानः श्रिये मेधाम्-आशासत अयं ध्रुवः रयीणाम्-आ-चिकेतत्॥

पदार्थः—(सप्त) ''सप्तभिः'' सात—(मातृभिः) ज्ञान का मान—कलेवर दर्शाने वाली गायत्री आदि छन्दोमयी ज्योतियों द्वारा ''मातरो भासां निर्मात्र्यः'' [निरु० १२.८] (जज्ञानः) परमात्मा को जानता हुआ उपासक (श्रिये मेधाम्-आशासत) श्री—भद्रा कल्याणमयी स्थिति ''श्रीर्वै भद्रा'' [जै० ३.१७२] मेधा—उत्तम बुद्धि को चाहता है (अयं ध्रुवः) यह अविनाशी एकरस परमात्मा (रयीणाम्-आ-चिकेतत्) समस्त कल्याणकारी धनसम्पदाओं को भली-भाँति सुझा दें।

भावार्थः—परमात्मा का ज्ञान उसकी सात छन्दों वाली वेदरूप ज्ञान ज्योतियाँ भली-भाँति कराती हैं, उपासक अपनी कल्याणकामना के लिये मेधा को प्राप्त कर निश्चय कर लेता है कि वह एक रस अविनाशी परमात्मा ही समस्त धनसम्पदाओं को सुझाता है उसका आश्रय लेना, वेदस्तवनों द्वारा उसकी उपासना करनी चाहिए॥ ५ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में या शब्द में गति जिसकी है ऐसा विद्वान् ''बिठमन्तरिक्षम्''[निरु० ६.३०]''बिट् शब्दे''[भ्वा०]''पृषोदरादिष्ट-सिद्धिः'')॥ देवताः—अदितिः (अदितिरूप से अग्नि परमात्मा)॥

१०२. उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्। सा शन्ताता मयस्करदप स्त्रिधः ॥ ६ ॥

पदपाठः— उत स्या नः दिवा मतिः अदितिः अ दितिः ऊत्या आ गमत् सा शन्ताता शम् ताता मयः करत् अप सृधः ॥ ६ ॥

अन्वयः—स्या मतिः अदितिः नः-ऊत्या दिवा-आगमत् सा शन्ताता मयस्करत् स्त्रिधः-अप॥

पदार्थः—(स्या मतिः) वह मेधा (अदितिः) 'अदितेः''विभक्तिव्यत्ययः' अखण्ड मातृरूप—हमारे लिये सुख साधनों के निर्माण करने वाले परमात्मा के

पास से (नः-ऊत्या दिवा-आगमत्) हमारे रक्षा के निमित्तभूत दिनक्रम से—प्रतिदिन—निरन्तर बढ़ बढ़कर हमें समन्तरूप से प्राप्त हुआ करे—आती रहें (सा शन्ताता) वह शान्ति करे ''शिवशमरिष्टस्य करे'' [अष्टा० ४.४.१४३] (मयस्करत्) सुख करें—सुख पहुँचाती रहे ''मयः सुखनाम'' [नि० ३.६] (स्त्रिधः-अप) कामवासना आदि जीवन रसशोषक दोषों को दूर करती रहे।

भावार्थः—अखण्ड परमात्मशक्ति की आराधना से वह मेधा—बुद्धि निरन्तर आती है दिनोंदिन बढ़ बढ़कर रहती है, जो हमारी रक्षा सदा करती रहती है, साथ में शान्ति और सुखों का विस्तार करती है, समस्त पोषक जीवनरस बढ़ाती है, कामवासना आदि दोषों को दूर किया करती है, अतः परमात्मा की सदा आराधना करनी चाहिये ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (इन्द्रियघोड़ों-इन्द्रियवृत्तियों से विगत होने में कुशल सबमें समान मनोभाव रखने वाला विरक्त समदर्शी जन)॥

देवताः—अग्निः (अन्तर्यामी सर्वसाक्षी परमात्मा)॥

१०३. ई डिष्वा हि प्रतीव्या३ यजस्व जातवेदसम्।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्॥ ७॥

पदपाठः— ईडिष्व हि प्रतीव्यम् प्रति व्यम् यजस्व जातवेदसम् जात वेदसम् चरिष्णुधूमम् चरिष्णु धूमम् अगृभीतशोचिषम् अगृभीत शोचिषम्॥ ७॥

अन्वयः—प्रतीव्यं चरिष्णुधूमम् अगृभीतशोचिषं जातवेदसम् ईडिष्व हि यजस्व॥

पदार्थः—(प्रतीव्यम्) 'प्रति-व्यम्' पदपाठ के अनुसार वस्तु-वस्तु के प्रति व्यापन योग्य ''वी गति व्याप्ति०'' [अदादि०] ततः 'यत्-डित्' (चरिष्णुधूमम्) चरणशील फैलने वाले[१] गुण या धूमसमान व्याप्ति वाले—(अगृभीतशोचिषम्) असीमित तेज वाले—(जातवेदसम्) सब उत्पन्न प्रादुर्भूत को जानने वाले सर्वज्ञ परमात्मा को (ईडिष्व हि) स्तुति में ला—उसकी स्तुति निरन्तर कर (यजस्व) जीवन में सङ्गत कर तदनुसार गुण धारण आचरण कर।

भावार्थः—हे मानव! असीमित तेज वाले परमात्मा की व्याप्ति बड़ी भारी है, दूर-दूर तक पहुँचती है, वह वस्तु वस्तु में व्यापने योग्य सर्वज्ञ है, इसलिए उसकी

---

१. ''विषंस्ते धूमः'' ''शुक्रः'' [साम० १.८.३] शुभ्र तेज वाले धूम केवल धूएँ को ही नहीं कहते किन्तु कम्पते हुए लहराते हुए तेज या प्रकाश की तरंगों को भी कहते हैं। जैसे पुच्छलतारे को धूमकेतु कहते हैं उसका केतु तेज की फरकती हुई तरंगें हैं जो धूम नाम से कही हैं ''धूमकेतवो वातजूता उपदिवि यतन्ते'' [यजु० ३३.२]।

स्तुति सदा करनी चाहिये और जीवन में उसके गुण आदेश धारण करने चाहियें ॥ ७ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (इन्द्रिय घोड़ों-इन्द्रियवृत्तियों से विगत होने में कुशल सबमें समान मनोभाव रखने वाला विरक्त समदर्शी जन)॥
देवता:—अग्निः (अन्तर्यामी सर्वसाक्षी परमात्मा)॥

१०४. न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः। यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥

पदपाठः— न तस्य मायया च न रिपुः ईशीत मर्त्यः यः अग्नये ददाश हव्यदातये हव्य दातये ॥ ८ ॥

अन्वयः—यः हव्यदातये-अग्नये ददाश रिपुः-मर्त्यः-च न मायया न तस्य ईशीत ॥

पदार्थः—(यः) जो जन (हव्यदातये) हव्य स्तुतिरूप भेंट का दान जिसके लिये है ऐसे (अग्नये) अग्रणायक परमात्मा के लिये (ददाश) जो देता है अन्य के लिये नहीं अर्थात् जो केवल परमात्मा की स्तुति में जीवन बिताता है अन्य की स्तुति में नहीं (रिपुः-मर्त्यः-च न) शत्रुजन भी (मायया) प्रज्ञाछल बुद्धि से (न तस्य ईशीत) उस पर स्वामित्व नहीं कर सकता है—दबा नहीं सकता है।

भावार्थः—स्तुतियोग्य एकमात्र परमात्मा है जो उसको ही स्तुतियों द्वारा अपना समस्त जीवन अर्पित कर देता है। शत्रु उस पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता कुछ हानि नहीं पहुचा सकता है क्योंकि वह अकेला न रहा उसके साथ उसका परमात्मा सदा रक्षक है ॥ ८ ॥

ऋषिः—ऋजिश्वा भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने में समर्थ ऋजुगामी उपासक)॥ देवता:—वैश्वदेवोऽग्निः (सर्वश्रेष्ठ गुणवान् अग्रणेता परमात्मा)॥

१०५. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥

पदपाठः— अपत्यम् वृजिनम् रिपुम् स्तेनम् अग्ने दुराध्यम् दुः आध्यम् दविष्ठम् अस्य सत्पते सत् पते कृधी सुगम् सु गम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—सत्पते-अग्ने त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनं दुराध्यं दविष्ठम्-अपास्य सुगं-कृधि ॥

पदार्थः—(सत्पते-अग्ने) हे सन्मार्गगामीजनों के पालक सर्वश्रेष्ठ अग्रणेता परमात्मन्! तू (त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनं दुराध्यम्) उस सन्मार्ग के विरोधी कुटिल पापी, शत्रु, चोर, अनिष्टचिन्तक को (दविष्ठम्-अपास्य) अत्यन्त दूर पृथक् कर

(सुगम्-कृधि) अच्छा चलने वाला कर दे। या वर्जनीय पाप, शत्रुभाव, चोर प्रवृत्ति, अनिष्ट चिन्तन को हम से बहुत दूर रखे—रख, अपितु हमारे में सुगति वाले सद्भाव कर।

भावार्थः—परमात्मा सन्मार्गी जनों का सदा रक्षक है उसकी शरण उपासना से पापी—पापभाव, शत्रु-शत्रुभाव, चोर-चोर प्रवृत्ति, चौर्य कर्म, अनिष्ट चिन्तन से मनुष्य बचा रहता है अर्थात् सुप्रवृत्ति वाला बना देता है॥ ९॥

ऋषिः—वैयश्वो विश्वमनाः (इन्द्रिय घोड़ों की प्रवृत्ति से विगत सबके कल्याण में मनवाला उदार उपासक)॥ देवताः—वैश्वदेवोऽग्निः (सर्वश्रेष्ठ गुणवान् अग्रणेता परमात्मा)॥

१०६. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते। नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह॥ १०॥

पदपाठः— श्रुष्टी अग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते नि मायिनः तपसा रक्षसः दह॥१०॥

अन्वयः—वीर विश्पते-अग्ने मे नवस्य स्तोमस्य श्रुष्टी मायिनः-रक्षसः तपसा निदह॥

पदार्थः—(वीर विश्पते-अग्ने) हे शक्तिमन् प्रजामात्र-प्राणिमात्र के स्वामिन्! (मे) मेरे (नवस्य स्तोमस्य श्रुष्टी) स्तुतिपूर्ण छन्दः-हार्दिक गान को सुनकर 'द्वितीयास्थाने षष्ठीव्यत्ययेन' ''स्नात्व्यादयश्च'' [अष्टा० ७.१.४५] (मायिनः-रक्षसः) छली विपरीत आचरण वाले, मन में और कुछ, आचरण में और कुछ, ऐसे जन से अपने को बचाना चाहिये उनको (तपसा निदह) अपने तेज से दण्ड सामर्थ्य से भस्म कर या मेरे अन्दर से छलयुक्त विचारों को भस्म कर।

भावार्थः—सर्वरक्षक परमात्मा हृदय से स्तुतिपूर्ण गुणगान से छल पूर्ण दुष्ट विचारक और विचारों को नष्ट कर देता है अपने उपासक की उनसे रक्षा करता है॥ १०॥

द्वादश खण्ड

छन्दः—ककुबुष्णिक्, स्वरः—ऋषभः। ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि का प्रज्वलनवेत्ता विद्वानों की परम्परा में कुशल प्रयोगकर्ता)॥

१०७. प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे। उपस्तुतासो अग्नये॥ १॥

पदपाठः— प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे शुक्र शोचिषे उपस्तुतासः उप स्तुतासः अग्नये॥ १॥

अन्वयः—मंहिष्ठाय ऋतावे बृहते शुक्रशोचिषे अग्नये उप-स्तोतारः प्रगायत ॥

पदार्थः—(मंहिष्ठाय) ''मंहते दानकर्मा'' [निघं० ३.२०] अतिशय से दाता—(ऋतावे) अमृत वाले—अमृतरूप मोक्षानन्दधारी—''ऋतममृत-मित्याह'' [जै० २.१६०] (बृहते) महान्—(शुक्रशोचिषे) शुक्र प्रकाश-स्वरूप—(अग्नये) परमात्मा के लिये (उप-स्तोतारः) 'उपगत्य' समीप होकर निमग्न होकर हे स्तुति करने वालो! (प्रगायत) गुणगान स्तुतिबखान करो।

भावार्थः—हे आत्मसमर्पण भाव से स्तुति करने वाले उपासको! अमृतरूप मोक्षानन्द धारण करने वाले बड़े भारी दानी शुभ्रज्योतिःस्वरूप महान् इष्टदेव परमात्मा की प्रगाढ़ स्तुति गुणगान उपासना करनी चाहिये ॥ १ ॥

ऋषिः—सौभरिः (सुभर परमात्मा से गुण प्राप्त करने में कुशल जन)॥

१०८. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ २ ॥

पदपाठः— प्र सः अग्ने तव ऊतिभिः सुवीराभिः सु वीराभिः तरति वाजकर्म्मभिः वाज कर्म्मभिः यस्य त्वम् सख्यम् स ख्यम् आविथ ॥ २ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वं यस्य सख्यं-आविथ सः तव सुवीराभिः वाजकर्मभिः ऊतिभिः प्रतरति ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन्! (त्वं यस्य सख्यं-आविथ) तू जिसकी मित्रता प्राप्त करता है—जो तुझे मित्र बना लेता है (सः) वह जन (तव) तेरी (सुवीराभिः) शोभन प्राणों वाली—''प्राणा वै दश वीराः'' [श० १२.८.१.२२] (वाजकर्मभिः) स्वर्ग्य विशेष सुख देने वाले कर्म जिनसे हो सकें ऐसे कर्म कराने वाली ''वाजो वै स्वर्गो लोकः'' [तां० १८.७.२२] (ऊतिभिः) रक्षाओं—बहुविध रक्षाओं से (प्रतरति) प्रवृद्ध हो जाता है।

भावार्थः—परमात्मन्! जो मनुष्य उपासना द्वारा तुझसे मित्रता कर लेता है—तुझे मित्र बना लेता है—तेरा स्नेहपात्र बन जाता है तो वह प्राण देने वाली और स्वर्ग्य विशेष सुखदायक कर्म कराने वाली बहुत प्रकार की रक्षाओं से बढ़ जाता है ॥ २ ॥

ऋषिः—सौभरिः (सुभर परमात्मा से गुण प्राप्त करने में कुशल जन)॥

१०९. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥

पदपाठः— **तम् गूर्द्धय स्वर्णरम् स्वः नरम् देवासः देवम् अरतिम् दधन्विरे देवत्रा हव्यम् ऊहिषे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—देवासः स्वर्णरम् अरतिं देवं दधन्विरे तं गूर्द्धय देवत्रा हव्यम् ऊहिषे ॥

पदार्थः—(देवासः) अमृत—मृत-मरण-जन्ममरण से रहित मुक्त आत्माएँ ''अमृताः देवाः'' [श० २.१.३.४] (स्वर्णरम्) जिस स्वः-मोक्ष प्रापक ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [१०.९०.३] (अरतिं देवम्) अन्तर्यामी देव को (दधन्विरे) प्राप्त किये हुए हैं (तं गूर्द्धय) उसे अर्चित कर—स्तुति में ला ''गूर्द्धयति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] (देवत्रा) उन देवों—अमृत-अमर मुक्तात्माओं में (हव्यम्) समर्पणीय स्वात्मा को (ऊहिषे) पहुँचाने के हेतु—उनकी गणना में आने—उनकी श्रेणी में होने के हेतु ''वह प्रापणे'' [भ्वा०] ततः ''तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्से.......'' [अष्टा० ३.४.९] ''क्से प्रत्ययः कित्त्वात् सम्प्रसारणं वाह ऊठ्''

भावार्थः—मुक्ति में जिस मुक्तिप्रद अन्तर्यामीदेव को मुक्त आत्माएँ प्राप्त किए हुए हैं उनमें अपने को भी पहुँचाने के लिये उस परमात्मा की अर्चना स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः, सौभरिः कण्वो वा (अग्नि-विद्या में कुशल प्रयोक्ता या परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावीजन)॥

११०. मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः। यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥

पदपाठः— **मा नः हृणीथाः अतिथिम् वसुः अग्निः पुरुप्रशस्तः पुरु प्रशस्तः एषः यः सुहोता सु होता स्वध्वरः सु अध्वरः ॥ ४ ॥**

अन्वयः—यः एषः पुरुप्रशस्तः सुहोता स्वध्वरः वसुः अग्निः अतिथिं नः मा हृणीथाः ॥

पदार्थः—(यः) जो (एषः) यह (पुरुप्रशस्तः) बहुत प्रकार से प्रशंसनीय (सुहोता) हमें अच्छा अपनाने वाला (स्वध्वरः) हमारे अध्यात्म यज्ञ का परम इष्टदेव (वसुः) हृदय घर में बसाने वाला स्वयं भी बसने वाला (अग्निः) ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है (अतिथिम्) उस ऐसे अतिथि—सत्कारयोग्य एवं सदा अतनशील रक्षकरूप प्राप्तस्वभाव वाले परमात्मा के प्रति (नः) हमारे में से कोई भी हे मनुष्य! (मा हृणीथाः) रोष-अनादर या लज्जा न प्रदर्शित करे। ''हृणीङ् रोषणे लज्जायां च'' [कण्ड्वादि०]।

भावार्थः—जो परमात्मा अनेक प्रकार से प्रशंसनीय, हमें अच्छा अपनाने

वाला अध्यात्म यज्ञ का इष्टदेव हृदय में वसने वसाने वाला है उस ऐसे सत्करणीय रक्षणार्थ सदा साथ रहने वाले के प्रति हम लोगों में कोई भी जन पारिवारिक या सामाजिक या राष्ट्रिय सदस्य अनादरभाव नास्तिकपन या अपनी लज्जा को न प्रदर्शित करें, दुःख या मनोवैपरीत्य—मनोविकार के दूरी करणार्थ प्रार्थना करें, उस पर क्रोध करें उसका अनादर करें या उससे कुछ दुःख वेदना को कहने में लज्जा करें तो कौन हमारा भला करेगा ॥ ४ ॥

ऋषिः—सौभरिः कण्वः (परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावी जन)॥

१११. **भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।**
भद्रा उत प्रशस्तयः॥ ५ ॥

पदपाठः— **भद्रः नः अग्निः आहुतः आ हुतः भद्रा रातिः सुभग सु भग भद्रः अध्वरः भद्राः उत प्रशस्तयः प्र शस्तयः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—सुभग अग्निः-आहुतः-नः-भद्रः रातिः-भद्रा अध्वरः-भद्रः उत प्रशस्तयः-भद्राः ॥

पदार्थः—(सुभग) हे शोभन ऐश्वर्यवन्! (अग्निः-आहुतः-नः-भद्रः) तू ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हमारे द्वारा समन्तरूप से गृहीत हुआ—ध्याया हुआ हमारे लिये कल्याणकारी हो (रातिः-भद्रा) तेरी दानधारा हमारे लिये कल्याणकारी हो उसकी प्राप्ति और उपयोग कल्याण करे "ते पूषन्निह रातिरस्तु-पूषन्निदत्तिरस्तु" [निरु० १२.१७] (अध्वरः-भद्रः) यज्ञ कल्याणकारी हो (उत प्रशस्तयः-भद्राः) तेरे लिये की गई गुणगान स्तुतियाँ भी कल्याणकारी हों—फलदायक हों।

भावार्थः—महैश्वर्यवान् ज्योतिःस्वरूप परमात्मा सम्यक् ध्याया हुआ कल्याणकारी होता है उसका दान भी कल्याण साधने वाला, यज्ञ उसका आदिष्ट श्रेष्ठकर्म कल्याणकर हो और उसकी विविध गुणगान—स्तुतियाँ भी कल्याणकारी हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—सौभरिः कण्वः (परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावी जन)॥

११२. **यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ ६ ॥**

पदपाठः— **यजिष्ठम् त्वा ववृमहे देवम् देवत्रा होतारम् अमर्त्यम् अ मर्त्यम् अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् सु क्रतुम्॥ ६ ॥**

अन्वयः—अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं-यजिष्ठं देवत्रा देवम् अमर्त्यं-होतारं त्वा ववृमहे ॥

पदार्थः—(अस्य यज्ञस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (सुक्रतुम्–यजिष्ठम्) सुप्रज्ञानवान्—"क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] अतिशय से यष्टा ब्रह्मा (देवत्रा देवम्) देवों में देव—सर्वोत्तम देव—वर देने वालों में अधिक वर देने वाले (अमर्त्यं–होतारम्) मनुष्य से भिन्न अमर अविनाशी होमने वाले—ऋत्विक् स्थानीय (त्वा) तुझ ज्योतिः–स्वरूप परमात्मा को (ववृमहे) वरते हैं—स्वीकार करते हैं अपनाते हैं।

भावार्थः—हमारे अध्यात्म यज्ञ का उत्तम ऋत्विक् और ब्रह्मा भी देवों में देव इष्ट वरदान देने वाला परमात्मा ही है उसे हम सदा वरते रहें ॥ ६ ॥

ऋषिः—सौभरिः कण्वः (परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावी जन)॥

**११३. तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्।
मन्युं जनस्य दूढ्यम्॥ ७॥**

पदपाठः— तत् अग्ने द्युम्नम् आ भर यत् सासाह सदने कम् चित् अत्रिणं मन्युम् जनस्य दूढ्यम्॥ ७॥

अन्वयः—अग्ने तत्–द्युम्नम्–आभर यत् जनस्य–अत्रिणं कं चित्–मन्युं दूढ्यं सदने सासाहा जनस्य कं चित् मन्युं दुर्धियम्–अत्रिणं सदने सासाह॥

पदार्थः—(अग्ने) हे तेजःस्वरूप परमात्मन्! (तत्–द्युम्नम्–आभर) उस तेजस्वी यश—यशोरूप बल को "द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वा" [निरु० ५.५] "द्युवीर्यबल" "द्युम्निनीराप एता इति वीर्यवत्य इत्येवैतदाह" [श० ५.३.५.१९] समन्तरूप—पूर्णरूप से भर दें (यत्) जो (जनस्य–अत्रिणं कं चित्–मन्युं दूढ्यम्) अन्य मनुष्य के मेरे प्रति किये घातक पाप कर्म को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३.१] क्रोध को क्रुद्धवाणी को और दुश्चिन्तन दुर्विचार को "दूढ्यं दुर्धियम्" [निरु० ५.२] (सदने सासाहा) मेरे हृदयसदन में पूर्णरूप में सह सके दबा सके तथा (जनस्य कं चित् मन्युं दुर्धियम्–अत्रिणम्) अन्य जन के प्रति क्रोध और दुविचार जो मुझे खा जाने वाला है उसको (सदने सासाह) मेरे हृदयसदन में पूर्णरूप से दबा सके—किञ्चत् भी कभी उठने का अवसर न दे सके जिसे मैं अन्य जन के प्रति सदा निरुद्वेग और निर्वैर रहकर अपने देह और अन्तःस्थल को पुष्ट करता रहूँ। "यहाँ श्लेषालङ्कार से वाक्य दो अर्थों वाला है।"

भावार्थः—उपासकजन या मुमुक्षु को अपने जीवन में परमात्मा के उस यशोमय तेज को पूर्णरूप से धारण करना चाहिए या उसकी याचना करनी चाहिए जिससे उसके प्रति किसी अन्य जन के किए पाप कर्म क्रुद्धवाणी और दुश्चिन्तन को हृदय में सह सके उसका प्रतिरोध न उठ सके तथा अन्य जन के प्रति भी अपने से होने वाले क्रोध—वाग्दोष दुश्चिन्तन जो अपने को खा जाने वाला है उसे अपने

हृदय में न उठने दें ऐसा उपासक या मुमुक्षु अपने को निरन्तर उन्नत करता चला जाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (इन्द्रिय घोड़ों की वृत्तियों से विगत होने में कुशल सबमें समान मन रखने वाला उपासक)॥

११४. यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे। विश्वेदग्निः प्रति रक्षांꣳसि सेधति ॥ ८ ॥

पदपाठः— यत् वै उ विश्पतिः शितः सुप्रीतः सु प्रीतः मनुषः विशे विश्वा इत् अग्निः प्रति रक्षांꣳसि सेधति ॥ ८ ॥

अन्वयः—यत्-वै-उ विश्पतिः मनुषः-विशे शितः सुप्रीतः विश्वा रक्षांसि-इत् प्रति-सेधति-'प्रतिषेधति'॥

पदार्थः—(यत्-वै-उ) जब ही निश्चय (विश्पतिः) प्राणिप्रजा का स्वामी (मनुषः-विशे) मनुष्य के निवेश स्थान—हृदय में (शितः सुप्रीतः) उपासनारूप स्नेह से तीव्र और सुतृप्त कर लिया होता है तो (विश्वा रक्षांसि-इत्) सारे ही राक्षसों राक्षसी-विचारों का (प्रति-सेधति-'प्रतिषेधति') निवारण करता है—हटाता है।

भावार्थः—तेजःस्वरूप परमात्मा जब मानव के—आत्मा के निवेश हृदय प्रदेश में उपासना स्नेह द्वारा प्रदीप्त सुतृप्त हो जाता है तो यह उसके राक्षसी—रक्षा करना बचना जिनसे चाहिये उन ऐसे उसके प्रति अन्यों के विचारों को तथा उसके भी अन्यों के प्रति उभरने वाले विचारों का प्रतिरोध करता है हटा देता है। फिर वह मानव निर्दोष मुक्ति का अधिकारी परमात्मा का प्रिय बन जाता है ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्याय

आग्नेय पर्व, काण्ड समाप्त ॥

ऐन्द्रपर्व या काण्ड

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

देवता-इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् सर्वशक्तिमान् परमात्मा)। छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः। ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्य (विद्यानिष्णात का शिष्य कल्याण का इच्छुक उपासकजन)॥

११५. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

पदपाठः— तत् वः गाय सुते सचा पुरुहूताय पुरु हूताय सत्वने शम् यत् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

अन्वयः—वः सुते सचा पुरुहूताय-सत्वने गवे न शाकिने तत्-शं गाय ॥

पदार्थः—(वः) तू आत्मशक्ति प्रार्थीजन! ''विभक्तिवचनव्यत्ययः'' (सुते) ब्रह्मचर्यकाल में ज्ञान निष्पन्न हो जाने पर—स्नातक बनते ही (सचा) जब वधू का साथ हो तब (पुरुहूताय-सत्वने) बहु प्रकार से स्तुति करने योग्य—समस्त ऐश्वर्य के देने वाले—''सन सम्भक्तौ'' [भ्वादि०] (गवे न शाकिने) वृषभसमान शक्त—शक्तिमान् इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये ''शक्नोतीति शाकी'' 'छान्दसो णिनिः' (तत्-शं गाय) उस-गार्हस्थ्यभार उठाने, संयम से रहने और ऐश्वर्य पाने के हेतु ''तत् हेतौ कारणे सम्बन्धे च'' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] शं-शान्त सुख पूर्वक गा—स्तुति में ला।

भावार्थः—जैसे विद्यासम्पन्न होकर आचार्य के यहाँ स्नातक बनकर पत्नी का साथ हो तब से उस बहुत स्तुत्य ऐश्वर्यदाता वृषभसमान शक्त परमात्मा के लिये अपने गृहस्थ में संयम से रह सकने, ऐश्वर्य प्राप्त करने, गृहस्थभार उठाने, चलाने के हेतु सुखपूर्वक मधुर गान स्तवन नित्य किया करें अन्यथा गृहस्थ में जीवन का पतन सम्भव है ॥ १ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (आचार्य के यहाँ कक्षा में क्रमशः अध्यात्मज्ञान श्रवण किया जिसने ऐसा विद्वान्) ॥

११६. **यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः। तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥**

पदपाठः— यः ते नूनम् शतक्रतो शत क्रतो इन्द्र द्युम्नितमः मदः तेन नूनम् मदे मदेः ॥ २ ॥

अन्वयः—शतक्रतो-इन्द्र ते यः नूनं द्युम्नितमः-मदः तेन मदे नूनं मदेः ॥

पदार्थः—(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत कर्मरूप पराक्रम वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! (ते) तेरा (यः) जो (नूनम्) निश्चय (द्युम्नितमः-मदः) अत्यन्त यशस्वी हर्ष है—अन्य वस्तुओं में से प्राप्त होने वाला नहीं (तेन मदे) उस हर्ष में (नूनं मदेः) मुझे अवश्य हर्षित कर।

भावार्थः—बहुत पराक्रम वाले प्रिय परमात्मन्! किसी भी भोग वस्तु में हर्ष—सुख क्षणिक है और अधिक सेवन हानिकारक, पतन की ओर ले जाने वाला, अपयश करने वाला है, परन्तु तेरे अन्दर जो हर्ष—आनन्द है, वह तो अत्यन्त यशस्वी जीवन बनाने वाला है, उस अपने यशस्वी आनन्द से अवश्य आनन्दित कर—मैं सदा गृहस्थ में ही या संसार में—संसार के भोगों में ही न पड़ा रहूँ ॥ २ ॥

ऋषिः—हर्य्यतः प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—उत्तम स्तुतिवाक् में कुशल कान्तिमान् तेजस्वीजन)॥

११७. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया॥ ३ ॥

पदपाठः— गावः उप वद अवटे महीइति यज्ञस्य रप्सुदा रप्सु दा उभा कर्णा हिरण्यया॥ ३ ॥

अन्वयः—गावः अवटे उप 'उपगत्य' वद 'वदत' 'वचनव्यत्ययः' यज्ञस्य रप्सुदा मही उभा कर्णा हिरण्यया॥

पदार्थः—(गावः) वाक् स्तुतियो! (अवटे उप 'उपगत्य') रक्षणधाम आश्रयरूप आनन्दरूप ऐश्वर्यवान् इन्द्र—परमात्मा के समीप जाकर (वद 'वदत' 'वचनव्यत्ययः') मुझ स्तुति करने वाले को बतलाओ सूचित करो कि (यज्ञस्य) मेरे अध्यात्म की (रप्सुदा) रूप देने वाली—(मही) भूमियाँ—अभ्यास और वैराग्य योग भूमियाँ "मही पृथिवीनाम" [निघं० १.१] (उभा कर्णा) दोनों सिरे—(हिरण्यया) तुझ परमात्म ज्योतिःस्वरूप हिरण्यमय तुझे प्राप्त करने वाले बन गए। "स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।" [योग० १.२८ व्यास]।

भावार्थः—स्तुतियाँ ज्योतिःस्वरूप परमात्मा में आश्रित हो जाती हैं उपासक की हृद्भावना को सूचित करती हुईं परमात्मा को झुकाती हैं अध्यात्मयज्ञ को रूप देने वाले अभ्यास और वैराग्य या जप और अर्थभावन रूप दोनों योग्य भूमियों को जो कि दो दिशाएँ हैं वे परमात्मा के प्रकाश वाली बन जाती हैं॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (अध्यात्मज्ञान का कक्ष—पार्श्व जिसने सुन लिया ऐसा उपासक आत्मा)॥

११८. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे। अरमिन्द्रस्य धाम्ने॥ ४ ॥

पदपाठः— अरम् अश्वाय गायत श्रुतकक्ष श्रुत कक्ष अरम् गवे अरम् इन्द्रस्य धाम्ने॥ ४ ॥

अन्वयः—श्रुतकक्ष इन्द्रस्य अश्वाय अरं-गायत गवे अरं धाम्ने अरम्॥

पदार्थः—(श्रुतकक्ष) हे अध्यात्मज्ञान कक्ष को सुन चुके आत्मन्! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के दिए हुए (अश्वाय अरं-गायत) शरीर रथ को चलाने वाले प्राण को पुष्ट करने के लिये उस इन्द्र परमात्मा का पर्याप्त गानकर (गवे) विषयों में जाने वाले इन्द्रियगण को संयम में रखने के लिये (अरम्) बहुत गानकर (धाम्ने) अपने शरीरधाम के स्वस्थ रखने के लिये परमात्मा का (अरम्) पर्याप्त गान करें।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने कृपा करके आत्मा या मनुष्य को भोग और अपवर्ग के लिये प्राण, इन्द्रियगण और शरीर दिये हैं, अतः हमें परमात्मा का कृतज्ञ होना चाहिये तथा उस की भरसक स्तुति करनी चाहिए। जिससे उभयसिद्धि के अर्थ प्राण ठीक चलें, इन्द्रियगण संयम से विषय से अपना विषय ग्रहण करें और शरीर स्वस्थ दीर्घजीवी बनें ॥ ४ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (अध्यात्मज्ञान का कक्ष—पार्श्व जिसने सुन लिया ऐसा उपासक आत्मा)॥

१ २र ३२ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १
११९. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो
२
भुवत् ॥ ५ ॥

२ १ २र ३ ३२ ३ २ १ २र २ १ २र ३ २
पदपाठः— तम् इन्द्रम् वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे सः वृषा वृषभः
३
भुवत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—तम्-इन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे सः-वृषा वृषभः-भुवत् ॥

पदार्थः—(तम्-इन्द्रं वाजयामसि) हम उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अर्चित करते हैं—स्तुति में लाते हैं "वाजयति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (महे वृत्राय हन्तवे) महान् आवरक पाप भाव को नष्ट करने के लिये (सः-वृषा) वह परमात्मा सुखज्ञान का वर्षक (वृषभः-भुवत्) सुख ज्ञान वर्षाने में समर्थ हो।

भावार्थः—हमें सुखवर्षक परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए जिससे वह अज्ञान—पाप का नाश करके सुख का वर्षाने वाला हो।

ऋषिः—इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः (इन्द्र का पालन करने वाली विद्वानों की पत्नियाँ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १
१२०. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः। त्वं
२र ३ १ २र
सन्वृषन्वृषेदसि ॥ ६ ॥

२ ३ १ २र १ २र १२र ३ २ १ २र २ २
पदपाठः— त्वम् इन्द्र बलात् अधि सहसः जात ओजसः त्वम् सन्
१ १ २र २ ३
वृषन् वृषा इत् असि ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्द्र त्वं बलात् सहसः-ओजसः-अधिजातः त्वं वृषन् सन् वृषा-इत्-असि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवाले परमात्मन्! (त्वम्) तू (बलात् सहसः-ओजसः-अधिजातः) बल से—शरीर बल से, सहने वाले क्षात्र बल से—मनोबल से, ओज-ऋजुबल—आत्मबल से ऊपर प्रसिद्ध हुआ है (त्वं वृषन् सन्) तू इन तीन बलों—शरीरबल मनोबल आत्मबल को अपने उपासकों में बर्षाता हुआ (वृषा-इत्-असि) नितान्त सुखवर्षक है।

भावार्थः—संसार में या मानव में तीन बल होते हैं शरीरबल, मनोबल और आत्मबल, परमात्मन्! तू इन तीनों से ऊपर प्रसिद्ध इनका धारक स्वामी है, अपने उपासक में इनका सञ्चार और प्रसार करता है, अतः समस्त सुखों की वृष्टि करने वाला है। शरीरबल प्रदान कर स्वास्थ्य दीर्घ जीवन देता है, मनोबल प्रदान कर प्रसाद-हर्ष देता है, आत्मबल प्रदान कर शम्-शान्ति देता है॥ ६॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ (इन्द्रियों के विषय में अच्छी उक्ति समर्पण करने वाला और प्राण के सम्बन्ध में अच्छी उक्ति प्राणायाम करने वाला जन)॥

१२१. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि॥ ७॥

पदपाठः— यज्ञः इन्द्रम् अवर्द्धयत् यत् भूमिम् व्यवर्त्तयत् वि अवर्त्तयत् चक्राणः ओपशम् ओप शम् दिवि॥ ७॥

अन्वयः—यज्ञः-इन्द्रम्-अवर्धयत् यत्-भूमिं व्यवर्तयत् ओपशं-दिवि-चक्राणः॥

पदार्थः—(यज्ञः-इन्द्रम्-अवर्धयत्) अध्यात्म यज्ञ ने उपासक के अन्दर परमात्मा को बढ़ा दिया—स्पष्ट साक्षात् करा दिया—करा देता है (यत्-भूमिं व्यवर्तयत्) पुनः वह परमात्मा उपासक की भूमि—स्थिति को विवर्तित कर देता है—बदल देता है बद्धावस्था से जीवन्मुक्तावस्था कर देता है (ओपशं-दिवि-चक्राणः) उस परमात्मा के समीप में शयन करने वाले उपासक आत्मा को दिव्यधाम-अमृतधाम में पहुँचाने के हेतु।

भावार्थः—अध्यात्म यज्ञ से उपासक के अन्दर परमात्मा साक्षात् हो जाता है, पुनः वह साक्षात् हुआ परमात्मा उपासक आत्मा की भूमि को बदल देता है उसे बद्ध से जीवन्मुक्त कर देता है परमात्मा के समीप शयन करने वाले आत्मा को अमृतधाम—मोक्ष में पहुँचाने के लिये॥ ७॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ (इन्द्रियों के विषय में अच्छी उक्ति समर्पण करने वाला और प्राण के सम्बन्ध में अच्छी उक्ति प्राणायाम करने वाला जन)॥

१२२. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोसखा स्यात्॥ ८॥

पदपाठः— यत् इन्द्र अहम् यथा त्वम् ईशीय वस्वः एकः इत् स्तोता मे गोसखा गो सखा स्यात्॥ ८॥

अन्वयः—इन्द्र यत्-यथा त्वं वस्वः-एकः इत् 'ईशिषे' अहम्-ईशीय मे गोसखा स्तोता स्यात्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्-यथा त्वं वस्वः-एकः इत् 'ईशिषे') जबकि जैसे तू ऐश्वर्य का अकेला स्वामित्व करता है—स्वामी है (अहम्-ईशीय) तेरे साथ में रहता हुआ ऐश्वर्य का स्वामी हो जाऊँ—हो जाता हूँ तो (मे गोसखा) मेरा सहपाठी 'विद्या में समान रहने वाला' (स्तोता स्यात्) तेरी स्तुति करने वाला हो जावे—हो जाता है।

भावार्थः—परमात्मा की स्तुति करने वाला जीवन्मुक्त उपासक परमात्मा के आनन्द आदि ऐश्वर्य से युक्त है उसे ऐसा देख—देखादेखी से सहपाठी साथी भी परमात्मा का स्तोता बन जाता है, यह आस्तिक भाव का प्रचार एक आदर्श उपासक से होता है॥८॥

ऋषिः—मेधातिथिः-आङ्गिरसः (मेधा से अतन प्रवेश करनेवाला संयमी जन)॥

१२३. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय॥ ९॥

पदपाठः— पन्यंपन्यम् पन्यम् पन्यम् इत् सोतारः आ धावत मद्याय
सोमम् वीराय शूराय॥ ९॥

अन्वयः—सोतारः मद्याय वीराय शूराय पन्यं-पन्यं सोमम् आधावत॥

पदार्थः—(सोतारः) हे स्तवन सम्पादन करने वालो! (मद्याय) हर्षयिता—(वीराय) वीर—शक्तिमान् (शूराय) पराक्रमी इन्द्र परमात्मा के लिये (पन्यं-पन्यं सोमम्) स्तुत्य स्तुत्य—आत्मभाव से हार्दिक स्तवन स्तुति प्रवाह को (आधावत) समर्पित करो।

भावार्थः—हे उपासको! शक्तिमान् पराक्रमी हर्षित करने वाले परमात्मा के लिये हल्का स्तवन नहीं किन्तु भारी हार्दिक स्तवन समर्पित करो जिससे वह अतिहर्षित करें॥ ९॥

ऋषिः—प्रियमेधः काण्वः (मेधावी का शिष्य मेधाप्रिय जिसको है ऐसा जन)॥

१२४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
अनाभयिन् ररिमा ते॥ १०॥

पदपाठः— इदम् वसो सुतम् अन्धः पिब सुपूर्णम् सु पूर्णम् उदरम्
उ दरम् अनाभयिन् अन् आभयिन् ररिम ते॥ १०॥

अन्वयः—वसो इदं सुतम् उत्-अरम् अन्धः सुपूर्णम् पिब अनाभयिन् ते ररिमा॥

पदार्थः—(वसो) हे मेरे हृदय में एवं मेरे में बसने वाले परमात्मन्! (इदं

सुतम्) इस निष्पन्न (उत्-अरम्) ऊपर गमनशील उभरने वाले—उछलने वाले (अन्धः) सोम—''अन्धसः सोमस्य'' [निरु० १३.८] ''अन्धसस्पते सोमस्य पते'' [श० ४.१.१.२४] सोम्य हावभाव भरे स्तुति प्रार्थना उपासनारसधाराप्रवाह को (सुपूर्णम्) जो भलीभाँति पूर्ण है, समस्त आत्मभावना से भरा हुआ है उसे (पिब) पानकर स्वीकार कर (अनाभयिन्) 'आभयम्-ईषद्भयं नेषद्भयं यस्मिन्-यस्याश्रये तथाभूतं' थोड़ा भी भय जिसके आश्रय में नहीं वह ऐसे सर्वथा निर्भयशरण वाले परमात्मन्! (ते ररिमा) तेरे लिये हम देते हैं—समर्पित करते हैं। जैसे अन्यत्र भी कहा है—

न घा त्वद्रिगपवेति मे मनस्त्वे इत् कामं पूरुहूत शिश्रय।

राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते॥

[ऋ० १०.४३.२]

भावार्थः—मेरे हृदय मेरे आत्मा में बसने वाले निर्भयशरण परमात्मन्! तू मेरे अन्दर उभरते-उछलते हुए समस्त आत्मभावना से पूर्ण सोम्य हावभाव भरे स्तुति प्रार्थना उपासनारूप रसधारा प्रवाह को पानकर स्वीकार कर तेरी भेंट करता हूँ, तू मुझे अपना ले मैं तेरी निर्भयशरण में रहूँ क्योंकि तेरा स्वभाव है ''देहि मे ददामि ते'' [यजुः० ३.५०] मुझे दे तुझे देता हूँ॥ १०॥

द्वितीय खण्ड

देवता—इन्द्रः। छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥ ऋषिः—सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा (सम्पन्न अध्यात्म कक्ष या श्रुत—सुना अध्यात्मज्ञान विषय जिसने ऐसा जन)॥

१२५. **उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।**

अस्तारमेषि सूर्य॥ १॥

पदपाठः— **उत् घ इत् अभि श्रुतामघम् श्रुत मघम् वृषभम् नर्यापसम् नर्य अपसम् अस्तारम् एषि सूर्य॥ १॥**

अन्वयः—सूर्य श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् अस्तारम् अभि घ-इत् उदेषि॥

पदार्थः—(सूर्य) हे सरणशील या सूर्यसमान इन्द्र परमात्मन्! तू (श्रुतामघम्) प्रसिद्ध धन वाले—(वृषभम्) सुखवर्षक—(नर्यापसम्) नरों के हितकर कर्म वाले—(अस्तारम्) अज्ञान अन्धकार को फेंकने हटाने वाले स्वरूप को (अभि) अभिलक्ष्य दर्शाने को (घ-इत्) निश्चय ही (उदेषि) उदय होता है—उपासकों के अन्दर साक्षात् होता है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू सरणशील या सूर्य समान होकर उपासकों के अन्दर साक्षात् होता है अपने प्रसिद्ध धन वाले, सुखवर्षक, नरहित कर्म वाले, अज्ञानान्धकार

विनाशक स्वरूप को दर्शाता हुआ और उपासकों को भी अपने जैसे गुणों वाला बनने को प्रभावित करता हुआ॥ १ ॥

ऋषिः—सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा (सम्पन्न अध्यात्म कक्ष या श्रुत-सुना अध्यात्मज्ञान विषय जिसने ऐसा जन)॥

१२६. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥ २ ॥

पदपाठः— यत् अद्य अ द्य कत् च वृत्रहन् वृत्र हन् उदगाः उत् अगाः अभि सूर्य सर्वम् तत् इन्द्र ते वशे॥ २ ॥

अन्वयः—वृत्रहन् सूर्य-इन्द्र अद्य यत्-कत्-च-अभि उदगाः तत् सर्वं ते वशे॥

पदार्थः—(वृत्रहन् सूर्य-इन्द्र) हे ज्ञान और सद्गुण के आवरक को नष्ट करने वाले, सरणशील या सूर्य समान प्रकाशमान परमात्मन्! तू (अद्य) सम्प्रति (यत्-कत्-च-अभि) जिस किसी को अभिमुख करके या प्राप्त करने को (उदगाः) उपस्थित होता है—सुकर्मफल सुख देने को तथा दुष्कर्मफल दुःख देने को (तत् सर्वं ते वशे) वह सब तेरे वश में है।

भावार्थः—अज्ञान पाप के नाशक प्रकाश प्रेरक परमात्मन्! संसार में कोई भी पापी या पुण्यात्माजन दुःख फल देने और सुख फल लेने को तेरे वश में है यथायोग्य उनका कर्मफल देना तेरे अधीन है॥ २ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मज्ञान को धारण करने वाला)॥

१२७. य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।
इन्द्रः स नो युवा सखा॥ ३ ॥

पदपाठः— यः आनयत् आ अनयत् परावतः सुनीती सु नीती तुर्वशम् यदुम् इन्द्रः सः नः युवा सखा स खा॥ ३ ॥

अन्वयः—यः-इन्द्रः सुनीती परावतः यदुं तुर्वशम्-आनयत् सः-नः युवा सखा॥

पदार्थः—(यः-इन्द्रः) जो ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सुनीती) सुनीति-शोभन नेतृत्व से—पथप्रदर्शकता से (परावतः) दूर गये—पथभ्रष्ट कुमार्ग से (यदुम्) मनुष्य को "यदवः मनुष्याः" [निघं० २.३] (तुर्वशम्-आनयत्) समीप—अपने समीप—सन्मार्ग में "तुर्वशः-अन्तिकनाम" [निघं० २.१६] ले आता है (सः-नः) वह हमारे (युवा सखा) सदा बलवान् बना रहने वाला मित्र है।

भावार्थः—परमात्मा शोभन पथप्रदर्शकता से भटके हुए जन को सुपथ पर ले आता है वह मानव का सदा साथी मित्र है उस जैसा पथप्रदर्शक और मित्र कोई नहीं है ॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (श्रवण किया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन) ॥

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र

१२८. मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।

२ ३ १ २ ३ २

त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥

२ ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १२र ३ १ २ २

पदपाठः— मा नः इन्द्र अभि आदिशः आ दिशः सूरः अक्तुषु आ

३ २ ३ २ ३ २

यमत् त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्द्र आदिशः सूरः अक्तुषु (अक्तुषु सूरः) नः मा-आयमत् तत् त्वा युजा वनेम ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (आदिशः) दिशा-दिशा से किसी भी दिशा से या दिशा-दिशा में वर्तमान—किसी भी दिशा में वर्तमान ''आङ् अभिविध्यर्थे'' (सूरः) सूर्य के समान तापक पीडक ''लुप्तोपमावाचकालङ्कारः'' (अक्तुषु) रात्रियों के समान अवसरों—अज्ञानादि में या (अक्तुषु सूरः) रात्रियों में—रात्रियों का सूर्य—रात्रियों अन्धकारों में ताप देने वाला पाप पापिष्ठ हिंसक (नः) हमें (मा-आयमत्) मत आयत कर—दबावें (तत्) तिससे—अतः प्रथम ही (त्वा युजा वनेम) तुझसे युक्त होने वाले साथी परमात्मा के साथ—मेरी सहायता से हिंसित करें—नष्ट करें उसको दबाने का अवसर न दें।

भावार्थः—परमात्मन्! किसी दिशा से रात्रि—अज्ञान अवसर पाकर जो तापक पापभाव पापिष्ठ प्राणी हमें न दबा लें अतः प्रथम ही तुझ साथी से युक्त हुए हम उसे हिंसित कर दें ॥ ४ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मधु तन्त्र या मीठी इच्छा वाला) ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

१२९. ऐन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।

१ २ ३ १ २

वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ५ ॥

२ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

पदपाठः— आ इन्द्र सानसिम् रयिम् सजित्वानम् स जित्वानम्

३ १२ ३ १२र १ २र ३ १ २ ३

सदासहम् सदा सहम् वर्षिष्ठम् ऊतये भर ॥ ५ ॥

अन्वयः—इन्द्र सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आभर ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (सानसिम्) सम्भजनीय (सजित्वानम्) समान जय कराने वाले शत्रु के समकक्ष में जिताने वाले—(सदासहम्) सदा शत्रु के बल को अभिभूत करने वाले (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े

चढ़े—(रयिम्) धन-आत्मबलरूप धन को "वीर्यं वै रयिः" [श० १३.४.२.११] (ऊतये) स्वरक्षा करने के लिये (आभर) समन्तरूप से हमारे अन्दर भर दें।

भावार्थः—परमात्मन्! तू निरन्तर सेवन करने योग्य है, शत्रु के समकक्ष में सदा विजय कराने वाले सदा शत्रु के दमन करने वाले परमात्मन् अध्यात्म धन को हमारे अन्दर भरपूर कर दें॥५॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मधु तन्त्र या मीठी इच्छा वाला)॥

१३०. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ६॥

पदपाठः— इन्द्रम् वयम् महाधने महा धने इन्द्रम् अर्भे हवामहे युजम् वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ६॥

अन्वयः—वयं युजं वज्रिणम्-इन्द्रं वृत्रेषु महाधने हवामहे अर्भे इन्द्रम्॥

पदार्थः—(वयम्) हम (युजं वज्रिणम्-इन्द्रम्) हमारे साथ युक्त होने वाले साथी वज्री—वीर्यवान्-ओजस्वी परमात्मा को "वीर्यं वै वज्रः" [श० ७.३.१.१९] "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (वृत्रेषु) सद्गुण आवरक पापभावों में "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] हमारे साथ चलते हुए (महाधने) संग्राम में "महाधने संग्राम नाम" [निघं० २.१७] (हवामहे) आहूत करते हैं—करें (अर्भे) "अर्भे-अनिष्टे" थोड़े अनिष्ट प्रसंग में (इन्द्रम्) परमात्मा को आहूत करते हैं।

भावार्थः—हमारे अन्दर उठते हुए पापभावों के प्रति हमारा संग्राम चलने पर या उनसे अल्प अनिष्ट हो जाने पर वीर्यवान् बलवान् ओजस्वी परमात्मा का हमें स्मरण चिन्तन करना चाहिये॥ ६॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों—ज्ञानत्रयी उपासना से प्राप्त दीप्ति वाला जन[1])॥

१३१. अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।
तत्राददिष्ट पौंस्यम्॥ ७॥

पदपाठः— अपिबत् कद्रुवः कत् द्रुवः सुतम् इन्द्रः सहस्रबाह्वे तत्र अददिष्ट पौंस्यम्॥ ७॥

अन्वयः—इन्द्रः कद्रुवः सुतम्-अपिबत् सहस्रबाह्वे तत्र पौंस्यम् आददिष्ट॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमात्मा (कद्रुवः) ईषत् गति वाले बाधाओं से निर्बल

---

१. "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.१६]

दीन बने जन के (सुतम्-अपिबत्) अन्दर से निष्पन्न हावभावपूर्ण उपासनारस को सेवन करता है—स्वीकार करता है। तो (सहस्रबाह्वे) बहुत प्रकार बाधा—पीड़ा पहुँचाने वाली प्रवृत्तियों वाले के लिये—उसके हननार्थ (तत्र) उस दीन जन के अन्दर (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (आददिष्ट) अति सर्जित करता है—देता है—प्रेरित करता है।

भावार्थः—जब दीन—बाधाओं से पीड़ितजन अपने अन्दर से हावभावपूर्ण स्तुतिप्रार्थना उपासनाप्रवाह परमात्मा के प्रति समर्पित करता है तो वह स्वीकार कर उन बाधाओं को हटाने के लिये उस दीन जन में पौरुष को प्रेरित कर देता है ॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥

१३२. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन्।
विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥८॥

पदपाठः— वयम् इन्द्र त्वायवः अभि प्र नोनुमः वृषन् विद्धि तु अस्य नः वसो ॥८॥

अन्वयः—वृषन्-इन्द्र वयम्-आयवः त्वा-अभि प्र-नोनुमः वसो नः-अस्य तु विद्धि ॥

पदार्थः—(वृषन्-इन्द्र) हे सुखों की वर्षा करने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वयम्-आयवः) हम प्रापणशील—प्राप्त करने वाले प्रार्थीजन "आयवः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (त्वा-अभि) तेरी शरण में (प्र-नोनुमः) प्रकृष्टरूप से पुनः पुनः स्तुति करते हैं "णु स्तुतौ" (अदादि०) "नौति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (वसो) हे बसने वाले—अन्तर्यामिन् देव! (नः-अस्य तु विद्धि) हमारे इस हृद्गत भाव को तो तू जान। पदपाठ में "त्वायवः" ऐसा एक पद पढ़ा है, यहाँ 'त्वा आयवः' ऐसा पदच्छेद करके अर्थ किया है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू हमारे अन्दर वसने वाले अन्तर्यामी हमारे प्रत्येक हृद्गत भाव को जानता है तो फिर तेरी शरण में पहुँचने वाले हम मनुष्य तेरी पुनः पुनः स्तुति करते हैं तू इसे पूरा कर ॥८॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों ज्ञान कर्म उपासना से प्राप्त दीप्ति वाला जन)॥

१३३. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९॥

पदपाठः— आ घ ये अग्निम् इन्धते स्तृणन्ति बर्हिः अनुषक् अनु सक् येषाम् इन्द्रः युवा सखा स खा ॥९॥

अन्वयः—येषां युवा-इन्द्रः सखा ये घ अग्निम् आ-इन्धते ते आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति॥

पदार्थः—(येषाम्) जिनका (युवा-इन्द्रः) सदा बलवान् बना रहने वाला अजर-अमर इन्द्ररूप से ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सखा) समान ख्यान जान लिया गया—अन्य वस्तु या सम्बन्धियों से ममत्व हटा कर अपना लिया है (ये घ) जो भी (अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (आ-इन्धते) समन्तरूप से ध्यान द्वारा प्रदीप्त करते हैं (ते) वे उपासकजन (आनुषक्) अनुपूर्वता से अनुक्रम से—क्रमशः (बर्हिः) अपने हृदयावकाश को "बर्हिः-अन्तरिक्षनाम" [निघं० १.३] (स्तृणन्ति) इन्द्ररूप परमात्मा के सखित्व स्नेह से अग्निरूप परमात्मा के ज्ञानप्रकाश से आच्छादित कर लेते—पूर्ण कर लेते—भर लेते हैं।

भावार्थः—जो जन इन्द्ररूप परमात्मा को मित्र बना लेते हैं उस जैसे अपने अन्दर गुण धारण करके परमात्मा को ध्यान से अपने में प्रदीप्त कर लेते हैं वे अपने हृदयावकाश को परमात्मा के स्नेह और ज्ञानप्रकाश से भर लिया करते हैं॥ ९॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों ज्ञान कर्म उपासना से प्राप्त दीप्ति वाला जन)॥

१३४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर॥ १०॥

पदपाठः— भिन्धि विश्वाः अप द्विषः परि बाधः जहि मृधः वसु स्पार्हम् तत् आ भर॥ १०॥

अन्वयः—विश्वाः-द्विषः अपभिन्धि बाधः मृधः परिजहि स्पार्हं वसु तत्-आभर॥

पदार्थः—(विश्वाः-द्विषः) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू समस्त द्वेष करने वाली प्रवृत्तियों को (अपभिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दे (बाधः) समस्त बाधाभावनाओं को (मृधः) पापप्रवृत्तियों को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६.३.३.८] (परिजहि) सब प्रकार से हत कर दे—(स्पार्हं वसु तत्-आभर) स्पृहणीय—वाञ्छनीय गुणधन है उसे समन्तरूप से धारण करा या ले आ।

भावार्थः—परमात्मन्! मेरे अन्दर से दूसरों के प्रति होने वाली तथा मेरे प्रति दूसरों की भी सब द्वेषप्रवृत्तियों को छिन्न-भिन्न कर दे, मेरे अन्दर दूसरों के प्रति होने वाली बाधाप्रवृत्तियों और पापवृत्तियों को एवं मेरे प्रति दूसरों की बाधाभावनाओं पापवृत्तियों को मिटा दे। पुनः वाञ्छनीय वननीय गुणधन को मेरे अन्दर धारण करा दे—भर दे जिससे दूसरे का अहितचिन्तन न करूँ न मेरे प्रति कोई अहितचिन्तन कर सके॥ १०॥

तृतीय खण्ड

छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः। ऋषिः—कण्वो घौरः (बक्ता का शिष्य मेधावी)॥ देवताः—इन्द्रसखायो मरुतः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उसके सखा अग्नि आदि ऋषिजन)॥

१३५. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।
नि यामं चित्रमृञ्जते॥ १॥

पदपाठः— इह इव शृण्वे एषाम् कशाः हस्तेषु यत् वदान् नि यामन् चित्रम् ऋञ्जते॥ १॥

अन्वयः—एषां हस्तेषु कशाः इह-इव शृण्वे यत्-वदान् यामन् चित्रं-नि-ऋञ्जते॥

पदार्थः—(एषां हस्तेषु कशाः) इन इन्द्र सखाजनों ''इन्द्रस्य वै मरुतः'' [कौ० ५.४.५] ऋत्विजों विद्वानों के ''मरुतः ऋत्विजः'' [निघं० ३.१८] सप्तप्राण, लोकों के सात प्राण स्थानों में—''सप्त हस्तास इति येषु सप्तसु लोकेषु चरन्ति प्राणा गुहाशयाः'' [काठक० २५.२-३] ''सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः'' [मुण्ड० २.८] वाणियों—वेदवाणियों को ''कशा वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (इह-इव शृण्वे) यहाँ अपने अन्दर जैसा ही मैं सुनता हूँ (यत्-वदान्) कि जैसे मैं बोलता हूँ (यामन् चित्रम्-नि-ऋञ्जते) कि जो इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा अध्यात्म मार्ग में या अध्यात्म कर्म में ''यामे कर्मणि'' [श० ६.३.२.३] अद्भुतरूप में अर्न्तदृष्टि से साथ प्रसिद्ध करता है, साक्षात् करता है ''ऋञ्जति प्रसाधनकर्मा'' [निरु० ६.२१]।

भावार्थः—विद्वान् जन अपने प्राणसंस्थानों में जिन वेदवाणियों को धारण कर यज्ञ आदि प्रसङ्ग में बोलते हैं मैं अध्यात्म यज्ञ का याजक उन ईश्वरीय वाणियों को अपने अन्तःकरण में सुनता हूँ वह परमात्मा अध्यात्म मार्ग या अध्यात्म कर्म में उन वेदवाणियों को सुन्दर रूप में सार्थ प्रसिद्ध कर देता है साक्षात् समझा देता है॥ १॥

ऋषिः—त्रिशोकः (ज्ञान कर्म उपासना में दीप्तजन)॥ देवता—इन्द्रः॥

१३६. इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः।
पुष्टावन्तो यथा पशुम्॥ २॥

पदपाठः— इमे उ त्वा वि चक्षते सखाय स खाय इन्द्र सोमिनः पुष्टावन्तः यथा पशुम्॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र इमे सखायः सोमिनः उ त्वा विचक्षते यथा पुष्टावन्तः पशुम्॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (इमे सखायः सोमिनः) ये समान ख्यान उपासक विद्वान् अपने सोम उपासनारस लिए हुए (उ) निश्चय (त्वा विचक्षते) तुझे निहार रहे हैं (यथा पुष्टावन्तः पशुम्) जैसे पोषण पदार्थ वाले घास दाना आदि लिए हुए "पुष्टेषु पशुम्" [निरु० १३.५] अपने दूध देने वाले गौ आदि पशु को निहारते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे उपासक अपनी इष्टसिद्धि के लिये अपने उपासनारस को समर्पित करने के लिए तुझे ऐसे निहारते हैं जैसे दूध के इच्छुकजन घास दाना आदि पुष्टि कर वस्तु लिये दूध देने वाले गौ आदि पशु को निहारते हैं॥ २॥

ऋषिः—वत्सः काण्वः (मेधावी का शिष्य वक्ता)॥

१३७. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः॥ ३॥

पदपाठः— सम् अस्य मन्यवे विशः विश्वाः नमन्त कृष्टयः समुद्राय सम् उद्राय इव सिन्धवः॥ ३॥

अन्वयः—अस्य मन्यवे विश्वा-विशः कृष्टयः सं-नमन्त समुद्राय सिन्धवः-इव॥

पदार्थः—(अस्य) इस इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (मन्यवे) दीप्त प्रकाशस्वरूप प्राप्ति के लिये "मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०.३.३०] (विश्वा-विशः कृष्टयः) सब प्रवेश करने वाली मनुष्य प्रजाएँ (सम्-नमन्त) द्रवीभूत होती हैं झुकी जाती हैं (समुद्राय सिन्धवः-इव) समुद्र के लिये—समुद्र को पाने के लिये जैसे नदियाँ झुकी चली जाती हैं।

भावार्थः—परमात्मा के प्रकाशस्वरूप को पाने के लिये उसमें प्रवेश करने के लिये सब जन उसकी ओर झुकते चले जाया करते हैं जैसे नदियाँ समुद्र को पाने के लिए झुकती चली जाती हैं॥ ३॥

ऋषिः—कुसीदी काण्वः (मेधावी का शिष्य संश्लेषण धर्म वाला)॥

१३८. देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।
वृष्णामस्मभ्यमूतये॥ ४॥

पदपाठः— देवानाम् इत् अवः महत् तत् आ वृणीमहे वयम् वृष्णाम् अस्मभ्यम् ऊतये॥ ४॥

अन्वयः—वृष्णां देवानां-इत् तत्-महत्-अवः वयम्-आवृणीमहे अस्मभ्यम्-ऊतये॥

पदार्थः—(वृष्णां देवानां-इत् तत्-महत्-अवः) ज्ञानवर्षक इन्द्र परमात्मा एवं ऋषि विद्वानों के अवश्य उस भारी बोध ज्ञान को ''अव रक्षण-बोध......'' [तुदादि०] (वयम्-आवृणीमहे) हम समन्तरूप से वरते हैं (अस्मभ्यम्-ऊतये) जो हमारी रक्षा के लिए है।

भावार्थः—परमात्मा और ऋषि विद्वानों के वेदज्ञान को अवश्य स्वीकार करें अपने अन्दर धारण करें जो हमारी रक्षा इस संसार में करता है॥४॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन-गमन प्रवेश करने वाला)॥

१३९. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
कक्षीवन्तं य औशिजः॥५॥

पदपाठः— **सोमानाम् स्वरणम् कृणुहि ब्रह्मणः पते कक्षिवन्तम् यः औशिजः॥५॥**

अन्वयः—ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तं सोमानां स्वरणं कृणुहि यः-औशिजः॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदज्ञान के स्वामिन् इन्द्र ज्ञानैश्वर्यवन् परमात्मन्! (कक्षीवन्तम्) मुझ कक्षगत समीपवर्ती उपासक आत्मा को (सोमानां स्वरणम्) ''सोमवताम्, अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः'' उपासनारसवालों में—उनकी श्रेणी में प्रकाशवान् स्तुति प्रार्थना उपासनारस को सुप्रेरक सुप्रापक सुसम्पादक (कृणुहि) कर दे (यः-औशिजः) जो कि मैं उशिक्—तुझ परमात्मा का पुत्र हूँ ''**उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्तेष्वग्निरमृतो निधायि**'' [ऋ० १०.४५.७]।

भावार्थः—हे वेदस्वामिन् ज्ञानैश्वर्य वाले परमात्मन्! मुझ अपने समीपवर्ती जीवात्मा जो तुझ प्रकाशस्वरूप का पुत्र है उसे उपासनारस सम्पादकों के मध्य में प्रकाश वाला कर दे या स्तुति प्रार्थना उपासनारसों का सम्पादक कर दे॥५॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (अध्यात्मकक्ष सुना है जिसने ऐसा कुशल उपासक)॥

१४०. बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम्॥६॥

पदपाठः— **बोधन्मनाः बोधत् मनाः इत् अस्तु नः वृत्रहा वृत्र हा भूर्यासुतिः भूरि आसुतिः शृणोतु शक्रः आशिषम् आ शिषम्॥६॥**

अन्वयः—बोधन्मनाः वृत्रहा भूर्य्यासुतिः इत् नः-अस्तु शक्रः आशिषं शृणोतु॥

पदार्थः—(बोधन्मनाः) "बोधन्मनाः-बोधते जानाति मनोभावं यः स छान्दसः समासः" मन के भाव को जानने वाला (वृत्रहा) पापनाशक (भूर्य्यासुतिः) बहुत प्रकार की आनन्द धारा जिससे प्राप्त होती है ऐसा परमात्मा (इत्) अवश्य (नः-अस्तु) हमारा ही—है (शक्रः) वह शक्तिमान् परमात्मा (आशिषं शृणोतु) स्तुति प्रार्थना को सुने—सुनता है।

भावार्थः—परमात्मा हम उपासकों की पापवृत्तियों को नष्ट करता मनोभाव को जानता, बहुत प्रकार की आनन्द धाराओं को प्राप्त कराता और हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है—स्वीकार करता है॥ ६॥

ऋषिः—श्यावाश्वः (बड़े बलवान् प्राण घोड़ों वाला प्राणायामाभ्यासी योगी)॥

१४१. अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्।
परा दुःष्वप्न्यं सुव॥ ७॥

पदपाठः— अद्य अ द्य नः देव सवितरिति प्रजावत् प्र जावत् साविः सौभगम् सौ भगम् परा दुष्वप्न्यम् दुः स्वप्न्यम् सुव॥ ७॥

अन्वयः—देव सवितः नः अद्य प्रजावत्-सौभगं सावीः दुष्वप्न्यं परासुव॥

पदार्थः—(देव सवितः) हे सुखोत्पादक इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मदेव! तू (नः) हमारे लिये (अद्य प्रजावत्-सौभगम्) आज इस जीवन में प्रजा वाला मुझे प्रजा के लिए देने योग्य कल्याणरूप ऐश्वर्य (सावीः) अपनी ओर से प्रेरित कर (दुष्वप्न्यं परासुव) अनिष्ट विचार के निमित्तभूत अकल्याण वासना व्यसन को दूर कर।

भावार्थः—सुखदाता परमात्मन्! तू हम उपासकों के इसी जीवन में अपनी प्रजा समझ वैसा कल्याण प्रेरित करता—प्रदान करता है और अनिष्ट विचारों के कारणरूप वासना व्यसन को भी हटा देता है। तू ऐसा कृपालु है॥ ७॥

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः (प्रकृष्ट गाथा—स्तुति वाला मेधावी का शिष्य)॥

१४२. क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्तꣳ सपर्यति॥ ८॥

पदपाठः— क्व स्य वृषभः युवा तुविग्रीवः तुवि ग्रीवः अनानतः अन् आनतः ब्रह्मा कः तम् सपर्यति॥ ८॥

अन्वयः—स्यः वृषभः युवा तुविग्रीवः अनानतः क्व कः-तं-सपर्यति ब्रह्मा॥

पदार्थः—(स्यः) वह (वृषभः) सुखवर्षक (युवा) सदा अजर एकरस

(तुविग्रीवः) बहुत ज्ञानोपदेष्टा "तुवि बहुनाम" [निघं० ३.१] "ग्रीवा गृणातेः" [निरु० २.२८] "गृ शब्दे" (क्र्यादि०) या बहुत ज्ञानशक्ति वाला "सहस्रशीर्षाः पुरुषः" [यजुः० ३१.१] की भाँति (अनानतः) किसी से नत न किया जाने वाला—सर्वाधिपति सर्वमहान् परमात्मा "अनानतस्य महतः" [निरु० १२.२३] (क्व) कहाँ है—किसी देश विशेष में नहीं अपितु सर्वत्र ही है (कः-तं-सपर्यति) कौन उसको परिचरण में ला सकता है यथार्थ जानकर उपासना में ला सकता है "सपर्यति परिचरणकर्मा" [निघं० ३.५] (ब्रह्मा) ब्रह्मज्ञानी महान् विद्वान्, साधारण विद्वान् नहीं।

भावार्थः—अरे लोगो! वह सुखवर्षक अजर एकरस बड़ा उपदेष्टा अनन्त ज्ञान शक्ति वाला सर्वाधिपति महान् परमात्मा किसी एक देश में सीमित नहीं, सर्वत्र है 'परमात्मा कहाँ है' इसका उत्तर 'विश्व में है' उसको यथार्थ जानकर उपासना में लाने वाला कौन हो सकता है ब्रह्मा ब्रह्मज्ञानी पूर्ण विद्वान् ही है। अतः उसको किसी विशेष देश में स्थान में समझना उसे ढूंढने के लिए भटकना भूल है और उसकी यथार्थ उपासना के लिए पूर्ण ज्ञानी बनना भी आवश्यक है॥ ८॥

ऋषिः—वत्सः (अध्यात्म वक्ता)॥

१४३. **उपह्वरे गिरीणाꣳ सङ्गमे च नदीनाम्।**
धिया विप्रो अजायत॥ ९॥

पदपाठः— **उपह्वरे उप ह्वरे गिरीणाम् सङ्गमे सम् गमे च नदीनाम्**
धिया विप्रः वि प्रः अजायत॥ ९॥

अन्वयः—गिरीणाम्-उपह्वरे च नदीनां सङ्गमे धिया विप्रः-अजायत॥

पदार्थः—(गिरीणाम्-उपह्वरे) पर्वतों के प्रान्त में (च) और (नदीनां सङ्गमे) नदियों के सङ्गम में (धिया) ध्यान प्रज्ञा से (विप्रः-अजायत) मेधावी बन जाता है उनकी स्थिति गति सङ्गति का विवेचन एवं परमात्मा का ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान में कुशल हो जाता है।

भावार्थः—पर्वतों के प्रान्त भागों और नदियों के सङ्गमों पर विवेचन एवं वहाँ परमात्मा का ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान में समर्थ ब्रह्मा बन जाया करता है, सदा नहीं तो कभी-कभी अवश्य उन स्थानों पर जाकर रहना ध्यान करना चाहिए॥ ९॥

ऋषिः—इरिम्बिठः काण्वः (मेधावी का शिष्य अन्तरिक्ष—हृदयाकाश में परमात्मज्ञान में प्रवृत्ति वाला)॥

१४४. **प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।**
नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम्॥ १०॥

पदपाठः— **प्र सम्राजम् सम् राजम् चर्षणीनाम् इन्द्रम् स्तोत नव्यम् गीर्भिः नरम् नृषाहम् नृ साहम् मंहिष्ठम् ॥ १० ॥**

अन्वयः—चर्षणीनां नव्यं सम्राजं नरं नृषाहं मंहिष्ठं इन्द्रं गीर्भिः प्रस्तोत ॥

पदार्थः—(चर्षणीनाम्) मनुष्यों के—(नव्यम्) स्तुत्य—(सम्राजम्) विश्व भर में सम्यक् राजमान—(नरम्) नायक (नृषाहम्) नरों मनुष्यों को सम्भालने वाले पाप पुण्य का कर्मफल देने वाले (मंहिष्ठम्) अति दानी (इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतियों से (प्रस्तोत) हे मनुष्यो! तुम स्तुति में लाओ—उसकी स्तुति करो।

भावार्थः—मनुष्यों के स्तुत्य विश्वभर में भली-भाँति विराजमान सबके नायक मनुष्यों के कर्मफल को आप करने वाले अति दानी परमात्मा को वैदिक स्तुतिवचनों से स्तुति में लाओ—उसकी स्तुति किया करो ॥ १० ॥

इति छन्दःपदे द्वितीयः प्रपाठकः

अथ तृतीयः प्रपाठकः

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा परमात्मज्ञानी)॥

१४५. अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः॥ १॥

पदपाठः— अपात् उ शिप्री अन्धसः सुदक्षस्य सु दक्षस्य प्रहोषिणः प्र होषिणः इन्दोः इन्द्रः यवाशिरः यव आशिरः॥ १॥

अन्वयः—सुदक्षस्य प्रहोषिणः यवाशिरः अन्धसः इन्दोः शिप्री-इन्द्र-अपात्-उ॥

पदार्थः—(सुदक्षस्य) सुचतुर—उच्च ज्ञान बल वाले (प्रहोषिणः) प्रकृष्ट यथावत् आत्मसमर्पी उपासक के (यवाशिरः) समागम—भावना से युक्त—(अन्धसः) आध्यानीय—(इन्दोः) स्निग्ध उपासनारस का (शिप्री-इन्द्र-अपात्-उ) आत्मा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अवश्य पान करता है—स्वीकार करता है।

भावार्थः—ऊँचे ज्ञानी आत्मसमर्पी उपासक के समागम भावना से युक्त समन्त ध्यान सहित स्निग्ध उपासना रस को आत्मा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अवश्य पान करता है—स्वीकार करता है॥ १॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन गमनशील)॥

१४६. इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः।
गावो वत्सं न धेनवः॥ २॥

पदपाठः— इमाः उ त्वा पुरूवसो पुरू वसो अभि प्र नोनुवुः गिरः गावः वत्सम् न धेनवः॥ २॥

अन्वयः—पुरूवसो इमाः-गिरः त्वा-अभि उ प्रनोनुवुः धेनवः-गावः-वत्सं न॥

पदार्थः—(पुरूवसो) हे बहुत धन वाले—विविध धन प्रदाता परमात्मन्! (इमाः-गिरः) ये मेरी वाणियाँ या वेदवाणियाँ (त्वा-अभि उ) तुझे ही—तेरे प्रति ही (प्रनोनुवुः) स्तवन करती जा रही हैं (धेनवः-गावः-वत्सं न) जैसे दुधारी—दूध पिलाने वाली गौवें बछड़े की ओर जा रही होती हैं।

भावार्थः—हे बहुत धन वाले परमात्मन्! मेरी स्नेहमयी वाणियाँ या वेदवाणियाँ तेरे प्रति ही स्तुति करती हुई झुकी जा रही हैं—मेरी कोई भी वाणी या वेदवाणी ऐसी नहीं जो स्तुति न करती हो ऐसी सारी वाणियाँ तेरी स्तुतिपरायण तेरी ओर झुकी जा रही हैं, जैसे दूध पिलाने वाली गौवें बछड़े को दूध पिलाने दौड़ी जा रही हों। स्नेह प्रदर्शनमात्र में उपमा है। गौवें दूध पिलाने दौड़ रही हैं पर वाणियाँ स्नेहपूर्ण गुणगान करती हुई स्नेह से अपनाने जा रही हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—गोतमः (अत्यन्त प्रगतिशील ज्ञानी)॥

२उ ३ १२ ३ २३ १ २ ३क २र
१४७. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे॥ ३ ॥

१२र १२र २ ३ १२र १ २र ३ ३क २ ३ २
पदपाठः— अत्र अह गोः अमन्वत नाम त्वष्टुः अपीच्यम् इत्था
३ १ २ ३ २ ३ ३ २
चन्द्रमसः चन्द्र मसः गृहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—अत्र त्वष्टुः ह गोः अपीच्यं नाम अमन्वत इत्था चन्द्रमसः-गृहे॥

पदार्थः—(अत्र त्वष्टुः) ''अत्र त्वष्टरि'' दिन के समय इस प्रकाशमान आदित्य में ''त्वष्टा-आदित्यः'' [निरु० १२.११] (ह) अवश्य (गोः) सर्वत्र गतिशील व्यापक परमात्मा के (अपीच्यं नाम) अपिहित—अन्तर्हित नमस्कार योग्य स्वरूप को (अमन्वत) उपासक मानते हैं—जानते हैं—अनुभव करते हैं, जैसे अन्यत्र वेद में कहा है—''हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। याऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म'' [यजु० ४०.१७] (इत्था) 'इत्थं' इसी प्रकार (चन्द्रमसः-गृहे) रात्रि के समय चन्द्रमा के मण्डल—नक्षत्रों सहित चन्द्रमण्डल में भी उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप में अपिहित—अन्तर्हित जन मानते हैं।

भावार्थः—चाहे दिन में प्रकाशात्मक पिण्ड सूर्य हो या रात्रि में प्रकाशात्मक चन्द्रमादि नक्षत्रगण हो सबमें उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप को उपासक मानते हैं—जानते हैं—''तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्'' [कठो० ५.१५] संसार के किसी भी तापक या शीतल प्रकाश वाले पदार्थ को देखकर उपासकजन उस-उस पदार्थ को उपास्य इष्टदेव नहीं मानते किन्तु उसके अन्दर चेतन इष्टदेव परमात्मा को मानते हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्म ज्ञान को अपने अन्दर भरण धारण करने वाला)॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१४८. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तत्र पूषाभुवत् सचा ॥ ४ ॥

पदपाठः— **यत् इन्द्रः अनयत् रितः महीः अपः वृषन्तमः तत्र पूषा अभुवत् सचा ॥ ४ ॥**

अन्वयः—यद् वृषन्तमः-इन्द्रः महीः-रितः-अपः-अनयत् तत्र सचा पूषा अ भुवत् ॥

पदार्थः—(यत्) जब (वृषन्तमः-इन्द्रः) अत्यन्त सुखवृष्टिकर्ता परमात्मा (महीः-रितः-अपः-अनयत्) महती गतिशील व्यापन शक्तियों को प्रेरित करता है (तत्र) तब (सचा) साथ (पूषा अ भुवत्) सूर्य अपना रश्मिप्रसाद करने में और पृथिवी वनस्पति उगाने में समर्थ होती है।

भावार्थः—परमात्मा की व्यापन शक्तियों को पाकर ही सूर्य किरणों का सञ्चार करता है और पृथिवी भी ओषधि वनस्पतियों प्राणियों को उत्पन्न करती है ॥ ४ ॥

ऋषिः—विन्दुः पूतदक्षो वा (सूक्ष्म विवेचनशील या पवित्र ज्ञान बल वाला जन)॥

१४९. **गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्।**
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— **गौः धयति मरुताम् श्रवस्युः माता मघो नाम् युक्ता वह्निः रथानाम् ॥ ५ ॥**

अन्वयः—मघोनां मरुताम् अवस्युः गौः-माता धयति रथानां वह्निः ॥

पदार्थः—(मघोनां मरुताम्) ज्ञान धन वाले अध्यात्म याजकों की "मरुत ऋत्विङ्नाम" [निघं० ३.१८] (अवस्युः) रक्षणेच्छुक (गौः-माता) इन्द्र परमात्मा गौरूप ज्ञानप्रद माता बनकर (धयति) निजामृतरस पिलाता है (रथानां वह्निः) रथों के वहन करने वाले घोड़े की भाँति रमण साधन योगाङ्गों में युक्त हुई वह गौ माता इस लोक परलोक की सुख यात्रा कराती है।

भावार्थः—भाग्यवान् ज्ञानधनवान् आत्मसमर्पी विद्वानों का रक्षण चाहता हुआ इन्द्र परमात्मा गौ माता बनकर उन्हें निज अमृत रस पिलाता है तथा योगाङ्ग रमणसाधनों से युक्त होकर रथों में जुड़े घोड़े की भाँति इस लोक और परलोक की सुख यात्रा भी कराता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (अध्यात्मकक्ष जिसने सुन लिया या शोभन अध्यात्मकक्ष जिसका चल रहा है ऐसा जन)॥

१५०. **उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते।**
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

पदपाठः— उप नः हरिभिः सुतम् याहि मदानाम् पते उप नः हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—मदानां पते नः सुतं हरिभिः-उप-याहि नः सुतं हरिभिः-उप ॥

पदार्थः—(मदानां पते) हे समस्त हर्षों और आनन्दों के स्वामिन्! तू (नः सुतम्) हमारे निष्पादित हावभावपूर्ण उपासनारस एवं भक्तिभाव को (हरिभिः-उप-याहि) दुःखापहरण करने वाले एवं सुखाहरण करने वाले गुणों से प्राप्त हो (नः सुतं हरिभिः-उप) हमारे निष्पादित भक्तिभाव को दुःखापहरण करने वाले सुखाहरण करने वाले गुणों से प्राप्त हो।

भावार्थः—हर्ष सुखों के स्वामिन् परमात्मन्! तू हमारे द्वारा निष्पादित उपासनारस को दुःखापहरण करने वाले सुखाहरण करने वाले गुणों से हमें प्राप्त होता है अतः हम प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे उपासना रस को हमारे कल्याणार्थ सेवन कीजिए॥ ६॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन)॥

१५१. **इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे।**
अच्छावभृथमोजसा॥ ७॥

पदपाठः— इष्टाः होत्राः असृक्षत इन्द्रम् वृधन्तः अध्वरे अच्छ अवभृथम् अव भृथम् ओजसा ॥ ७ ॥

अन्वयः—अध्वरे इन्द्रं वृधन्तः इष्टाः-होत्राः-असृक्षत ओजसा अवभृथम्-अच्छ ॥

पदार्थः—(अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (इन्द्रं वृधन्तः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को सम्यक् साक्षात् करने के हेतु (इष्टाः-होत्राः-असृक्षत) अनुकूल या जहाँ तक हो सके आत्मभावनाएँ—स्तुति-प्रार्थनोपासनाएँ हैं, उनको हे उपासको तुम लोग छोड़ो समर्पित करो पुनः (ओजसा) मानस रस से (अवभृथम्-अच्छ) अवभृथ—स्नान को भली प्रकार प्राप्त होओ।

भावार्थः—अध्यात्म यज्ञ—योगानुष्ठान में परमात्मा के साक्षात् करने के हेतु अनुकूल स्तुतिप्रार्थनोपासनाओं को भेंट करो पुनः परमात्मा के सत्संग मानस रस में गोता लगाना चाहिए॥ ७॥

ऋषिः—वत्सः काण्वः (मेधावी का शिष्य या पुत्र अत्यन्त मेधावी अध्यात्म वक्ता जन)॥

१५२. **अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।**
अहं सूर्य इवाजनि॥ ८॥

पदपाठः— **अहम् इत् हि पितुः परि मेधाम् ऋतस्य जग्रह अहम् सूर्यः इव अजनि ॥ ८ ॥**

अन्वयः—अहम्-इत्-हि पितुः ऋतस्य मेधां परि जग्रह अहं सूर्यः-इव-अजनि ॥

पदार्थः—(अहम्-इत्-हि) मैं स्वयं अवश्य ही (पितुः) परमपिता परमात्मा से (ऋतस्य मेधां परि जग्रह) सत्यज्ञान की मेधा को—ऋतम्भरा बुद्धि को पूर्णरूप में पा लेता हूँ उक्त उपासना द्वारा (अहं सूर्यः-इव-अजनि) मैं उपासक सूर्य की भाँति परमात्मा से ज्योति पाकर प्रसिद्ध हो जाता हूँ जैसे परमात्मा से ज्योति पाकर सूर्य प्रसिद्ध होता है।

भावार्थः—उपासक परमात्मा से ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर ऐसे प्रसिद्ध हो जाता है जैसे सूर्य परमात्मा से ज्योति पाकर प्रसिद्ध होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्त्तः (विषय लोलुप हो इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में आया हुआ आत्मकल्याण का इच्छुक जन)॥

१५३. **रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।**
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥

पदपाठः— **रेवतिः नः सधमादे सध मादे इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः तुवि वाजाः क्षुमन्तः याभिः मदेम ॥ ९ ॥**

अन्वयः—नः रेवतीः सधमादे-इन्द्रे तुविवाजाः सन्तु याभिः क्षुमन्तः-मदेम ॥

पदार्थः—(नः) हमारी (रेवतीः) प्रशस्त भोगैश्वर्य वाली इन्द्रियाँ—इन्द्रियवासनाएँ (सधमादे-इन्द्रे) माद—आनन्द साथ जिसके है उस स्वभावतः आनन्दस्वरूप परमात्मा में (तुविवाजाः सन्तु) बहुत सुखमय लोक वाली हो जावें "वाजो वै स्वर्गो लोकः" [ता० १८.७] (याभिः) जिनके द्वारा (क्षुमन्तः-मदेम) उत्तम अन्न भोग वाले हम हो सकें।

भावार्थः—हमारी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों का सेवन करती हुईं यदि परमात्मा में लग जायें तो इनका भोग प्रशस्त हो जावे, इस प्रकार परमात्मा के साथ उत्कृष्ट भोग वाली हो जाती हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—शुनः शेप आजीगर्त्तः (विषय लोलुप हो इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में आया हुआ आत्मकल्याण का इच्छुक जन)॥

१५४. **सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम्।**
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥

पदपाठः— **सोमः पूषा च चेततुः विश्वासाम् सुक्षितीनाम् सु क्षितीनाम् देवत्रा रथ्योः हिता ॥ १० ॥**

अन्वयः—विश्वासां-सुक्षितीनां सोमः पूषा च हिता देवत्रा रथ्योः-चेततुः ॥

पदार्थः—(विश्वासां-सुक्षितीनाम्) सारी सुन्दर भूमिवाली नसनाड़ियो में वर्तमान (सोमः पूषा च हिता) जीवनरस और पोषणकर्ता प्राण वायु को "रसः सोमः" [श० ७.३.१.३] "अयं वै पूषा योऽयं पवते, एष, हि सर्वं पुष्यति" [श० १४.२.१.९] शरीर में रहने वाले (देवत्रा) देवों की ओर जाने वाले (रथ्योः-चेततुः) ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग को सुप्रसिद्ध करते हैं।

भावार्थः—पूर्वोक्त इन्द्रिय वासनाओं को परमात्मा की ओर झुका दें तो जब इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ भोग के साथ परमात्मा की ओर झुकी हुई होती है तो शरीर की समस्त नाड़ियों में जीवनरस और प्राण वायु ये दोनों शरीर में रहते हुए मानव को देवों—उत्कृष्ट मानवों मुमुक्षु और जीवन्मुक्त दशा की ओर जाने वाले ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग को सुप्रसिद्ध करते हैं ॥ १० ॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने) ॥

१५५. **पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।**
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

पदपाठः— **पान्तम् आ वः अन्धसः इन्द्रम् अभि प्र गायत विश्वासाहम् विश्वा साहम् शतक्रतुम् शत क्रतुम् मंहिष्ठम् चर्षणीनाम् ॥ १ ॥**

अन्वयः—वः-चर्षणीनाम् अन्धसः-आ पान्तं विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठम् इन्द्रम् अभि प्रगायत ॥

पदार्थः—(वः-चर्षणीनाम्) तुम दर्शनेच्छुकों के (अन्धसः-आ पान्तम्) आध्यानीय उपासनारस को समन्तरूप से पान करने वाले (विश्वासाहं) सबको अभिभूत करने वाले समर्थ—(शतक्रतुम्) बहुत कर्म और प्रज्ञान वाले—सर्वशक्तिमान्-सर्वज्ञानवान्—(मंहिष्ठम्) महान् आनन्द देने वाले—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (अभि प्रगायत) निरन्तर गाओ—स्तुत करो।

भावार्थः—मनुष्यो! जो तुम दर्शनेच्छुकों के उपासना ध्यान को सच्चा स्वीकार करने वाला सबका स्वामी सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ अत्यानन्दप्रद परमात्मा है उसकी निरन्तर स्तुति प्रार्थना उपासना किया करो ॥ १ ॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

१५६. **प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत।**
सखायः सोमपाव्ने॥ २॥

पदपाठः— **प्र वः इन्द्राय मादनम् हर्यश्वाय हरि अश्वाय गायत**
सखायः स खायः सोमपाव्ने सोम पाव्ने॥ २॥

अन्वयः—वः सखायः हर्यश्वाय सोमपाव्ने इन्द्राय मादनं प्रगायत॥

पदार्थः—(वः सखायः) तुम सखा जनो! (हर्यश्वाय) दुःखापहरणशील सुखाहरणशील व्यापक गुण शक्ति वाले परमात्मा (सोमपाव्ने) उपासना रस को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) परमात्मा के लिये (मादनं प्रगायत) आनन्द गान गाओ जिससे तुम्हें आनन्द प्राप्त हों।

भावार्थः—उपासक जनो! परमात्मा के सखा—मित्र बन दुःखापहरण सुखाहरण गुण शक्ति वाले उपासना ध्यान स्वीकार करने वाले परमात्मा के लिये आनन्दादि गुणगान करो—स्तुति ध्यान करो॥ २॥

ऋषिः—मेधातिथिः काण्व प्रियमेधा वा (मेधावी का शिष्य मेधा से अतन परमात्मा में प्रवेश करने वाला प्रिया मेधा जिसकी है ऐसा विद्वान्)॥

१५७. **वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।**
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥ ३॥

पदपाठः— **वयम् उ त्वा तदिदर्थाः तदित् अर्थाः इन्द्र त्वायन्तः**
सखायः स खायः कण्वाः उक्थेभिः जरन्ते॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र कण्वाः सखायः त्वायन्तः उक्थेभिः जरन्ते वयम्-उ तदिदर्थाः त्वा॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (कण्वाः) मेधावी (सखायः) तेरे मित्रजन (त्वायन्तः) तुझे चाहते हुए (उक्थेभिः) प्रशंसनीय वचनों—वैदिक स्तुत्य नामों से (जरन्ते) स्तुति में लाते हैं (वयम्-उ) हम भी (तदिदर्थाः) उस ही अर्थ—लक्ष्य को लेकर वैसे बनकर (त्वा) तुझे स्तुति में लाते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! हम भी अन्य पूर्ववर्ती या अपने से ऊँचे विद्वानों की भाँति तुझे चाहते हुए वैदिक नामों द्वारा तेरी स्तुति करते हैं। अपने से ऊँचे विद्वानों को आदर्श बनाकर परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए॥ ३॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा अध्यात्म ज्ञानी)॥

१५८. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः।
अर्कमर्चन्तु कारवः॥ ४॥

पदपाठः— इन्द्राय मद्वने सुतम् परि स्तोभन्तु नः गिरः अर्कम् अर्च्चन्तु कारवः॥ ४॥

अन्वयः—नः-गिरः मद्वने-इन्द्राय सुतं परिष्टोभन्तु कारवः-अर्कम्-अर्चन्तु॥

पदार्थः—(नः-गिरः) हमारी वाणियाँ (मद्वने-इन्द्राय) हर्ष—आनन्द देने वाले परमात्मा के लिए (सुतम्) उपासनारस को (परिष्टोभन्तु) प्रेरित करें (कारवः-अर्कम्-अर्चन्तु) स्तुति करने वाले "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] जैसे अपनी वाणियों से उस पूजनीय को पूजा करते हैं।

भावार्थः—पूजनीय परमात्मा की पूजा अर्चना जैसे स्तुति करने वाले किया करते हैं उसी प्रकार हमारी वाणियाँ उस आनन्दप्रद के लिये स्तुति-स्तवन को प्रेरित करती हैं॥ ४॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में—हृदयाकाश में गतिवाला उपासक)॥

१५९. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब॥ ५॥

पदपाठः— अयम् ते इन्द्र सोमः निपूतः नि पूतः अधि बर्हिषि आ इहि ईम् अस्य द्रव पिब॥ ५॥

अन्वयः—इन्द्र ते बर्हिषि-अधि अयं सोमः-निपूतः ईम्-एहि अस्य द्रव पिब॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते) तेरे लिये (बर्हिषि-अधि) निज हृदयावकाश में (अयं सोमः-निपूतः) यह उपासनारस निष्पन्न किया है (ईम्-एहि) इसके पास आ (अस्य द्रव पिब) इसके प्रति शीघ्र गति कर और इसे पान कर।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! मैंने अपने हृदयावकाश में तेरे लिये उपासनारस को श्रद्धा से निष्पादित किया है तू मेरे हृदय में आ शीघ्र आकर इसका पान कर—स्वीकार कर॥ ५॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधुपरायण जन)॥

१६०. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि॥ ६॥

पदपाठः— **सुरूपकृत्नुम् सुरूप कृत्नुम् ऊतये सुदुघाम् सु दुघाम् इव गोदुहे गा दुहे जुहूमसि द्यविद्यवि द्यवि द्यवि ॥ ६ ॥**

अवन्यः—गोदुहे सुदुघाम्-इव ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि ॥

पदार्थः—(गोदुहे सुदुघाम्-इव) गौ का दूध दूहने के लिये सुगमता से दूहने योग्य गौ को दूहता है ऐसे (ऊतये) जीवनरक्षा—आत्मस्वरूप प्राप्ति के लिये (सुरूपकृत्नुम्) शोभन रूप करने वाले—आत्मा को संस्कृत करने वाले परमात्मा को "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन'रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८.३.४] (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हम अपने अन्दर आदान करें—धारण करें।

भावार्थः—सुगमता से दूहने योग्य को दूध प्राप्ति के लिये जैसे गौ को दूहा करते हैं ऐसे ही आत्मस्वरूप को शोभन बनाने वाले परमात्मा को अपनी आत्मरूपता प्राप्ति के लिये प्रतिदिन अपने अन्दर धारण करना चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन प्रकार की ज्ञानदीप्ति वाला—विद्यात्रयी ज्ञान वाला)॥

१६१. **अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये।**
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥

पदपाठः— **अभि त्वा वृषभ सुते सुतम् सृजामि पीतये तृम्प वि अश्नुहि मदम् ॥ ७॥**

अन्वयः—वृषभ सुते पीतये सुतं त्वा अभिसृजामि तृम्प मदं व्यश्नुहि ॥

पदार्थः—(वृषभ) हे सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मन्! (सुते) उपासनारस निष्पन्न होने पर (पीतये) पान करने—स्वीकार करने के लिये (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस को (त्वा) तेरे प्रति (अभिसृजामि) भेंट करता हूँ (तृम्प) मुझे तृप्त कर (मदं व्यश्नुहि) हर्ष—आनन्द को मुझे प्राप्त करा।

भावार्थः—सुखों की वृष्टि करने वाले परमात्मन्! उपासनानिष्पन्न रस को स्वीकार करने के लिये तेरे प्रति भेंट करता हूँ निःसन्देह तू भी मुझे तृप्त करता है अपना आनन्द प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—कुसीदः (योगभूमि पर विराजमान महानुभाव)॥

१६२. **य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।**
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

पदपाठः— **यः इन्द्र चमसेषु आ सोमः चमूषु ते सुतः पिब इत् अस्या त्वम् ईशिषे ॥ ८ ॥**

अन्वयः—इन्द्र यः सुतः सोमः ते चमसेषु चमूषु पिब-इत् त्वम्-अस्य ईशिषे ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यः सुतः सोमः) जो निष्पन्न उपासनारस (ते) तेरे निमित्त (चमसेषु) अपने अन्दर के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार चमसों में जिनसे मैं तेरे लिए मनन, विवेचन, स्मरण, ममभाव द्वारा उपासनारस भरता हूँ तथा (चमूषु) बाहर के इन्द्रियपात्रों में वाणी, नेत्र, श्रोत्र में स्तुति, दर्शन, श्रवण करके भरता हूँ (पिब-इत्) अवश्य पान कर स्वीकार कर (त्वम्-अस्य ईशिषे) तू इसका स्वामी है "अधीगर्थदयेशां कर्मणि इति सूत्रेण षष्ठी" [अष्टा० २.३.५२]।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे लिये अपने मनबुद्धि चित्त अहङ्कार रूप अन्दर के पात्रों में उपासनारस सूक्ष्मरूप से तैयार करता हूँ पुनः बाहर के वाणी, नेत्र कानरूप पात्रों में भी स्तवन दर्शन श्रवण पात्रों में दृढ़ करता हूँ तू उसे स्वीकार कर तू उसका स्वामी है, अधिकारी है ॥ ८ ॥

ऋषिः—शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा आत्मकल्याण का इच्छुक)॥

१६३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

पदपाठः— यौगेयोगे योगे योगे तव स्तरम् वाजेवाजे वाजे वाजे हवामहे सखायः स खायः इन्द्रम् ऊतये ॥ ९ ॥

अन्वयः—योगे योगे वाजे वाजे तवस्तरम्-इन्द्रम् ऊतये सखायः-हवामहे ॥

पदार्थः—(योगे योगे) योग योग—प्रत्येक सुख सम्पत्ति के संयोग पर (वाजे वाजे) वाज वाज—प्रत्येक सुख सम्पत्ति के संग्राम संघर्ष पर "वाजे संग्राम नाम" [निघं० २.१७] (तवस्तरम्-इन्द्रम्) अत्यन्त बलवान् परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः-हवामहे) सखाभूत हम उपासकजन बुलाते हैं—स्मरण करते हैं।

भावार्थः—प्रत्येक सम्पत्ति के अवसर पर तथा प्रत्येक विपत्ति के अवसर पर अति बलवान् परमात्मा का अपनी रक्षार्थ सखाभाव से स्मरण करना चाहिए जिससे सम्पत्ति में हम अभिमत्त होकर आत्महानि न कर सकें और विपत्ति पर निराश होकर आत्मग्लानि न कर सकें ॥ ९ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधुपरायण जन)॥

१६४. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥

पदपाठः— **आ तु आ इत नि सीदत इन्द्रम् अभि प्र गायत सखायः स खायः स्तोमवाहसः स्तोम वाहसः ॥१०॥**

अन्वयः—स्तोमवाहसः सखायः आ-इत-तु-आ निषीदत इन्द्रम्-अभिप्रगायत ॥

पदार्थः—(स्तोमवाहसः सखायः) हे स्तवन गान को बहाने वाले गायक स्तुतिकर्ता उपासक मित्रो! (आ-इत-तु-आ) आओ तो आओ—अवश्य आओ शीघ्र आओ आ—आकर (निषीदत) नियतरूप से बैठो—श्रद्धा स्नेह से बैठो (इन्द्रम्-अभिप्रगायत) सर्वैश्वर्य—सम्पन्न परमात्मा को लक्षित कर उसके गुणगान करो।

भावार्थः—परमात्मा की स्तुति को प्रवाहित करने वाले उपासक सखा जन सामूहिक स्तवन का तान्ता बिठाने वाले एकत्र श्रद्धा स्नेह से बैठकर परमात्मा के गुणगान करें तो आनन्द का प्रवाह प्रवाहित हो जावे ॥ १० ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबको मित्र मानने वाला जन)॥

१६५. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

पदपाठः— **इदम् हि अनु ओजसा सुतम् राधानाम् पते पिबतु अस्य गिर्वणः गिः वनः ॥ १ ॥**

अन्वयः—गिर्वणः-राधानां पते अनु-ओजसा हि सुतम्-इदम् अस्य तु पिब ॥

पदार्थः—(गिर्वणः-राधानां पते) हे स्तुति वचनों से वननीय सेवनीय तथा हमारी समस्त आराधनाओं के पालक—किसी भी आराधना को व्यर्थ न जाने देने वाले परमात्मन्! (अनु-ओजसा हि सुतम्-इदम्) अनुक्रमपूर्वक—श्रवण मनन कर पुनः निदिध्यासन बल से उपासनारस को निष्पन्न किया है (अस्य तु पिब) इसका अवश्य पान कर—इसे स्वीकार कर।

भावार्थः—परमात्मन्! तू उपासक की समस्त आराधनाओं का पालन स्वागत करता है, किसी की भी उपेक्षा नहीं करता है, व्यर्थ नहीं जाने देता है, और स्तुति द्वारा हमारा वननीय सेवनीय है, हम तुझे स्तुति से ही सेवन कर सकते हैं, अन्य भौतिक वस्तुएँ तो तेरी दी हुई हैं, उनकी तुझे क्या भेंट देनी, तुझे उनकी आवश्यकता भी नहीं, अतः जो हमने श्रवण, मनन, पुनः निदिध्यासनरूप पूर्ण प्रयत्न बल से

उपासनारस सम्पन्न किया है, उसे अवश्य पान कर—स्वीकार कर, ऐसी प्रार्थना है॥ १॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला, मधु परायण)॥

१६६. महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः॥ २॥

पदपाठः— महान् इन्द्रः पुरः च नः महित्वम् अस्तु वज्रिणे द्यौः न प्रथिना शवः॥ २॥

अन्वयः—इन्द्रः महान् पुरः-च द्यौः-न प्रथिना शवः वज्रिणे नः-महित्वम्-अस्तु॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (महान्) सर्वमहान् है (पुरः-च) अतएव वह प्रत्येक के सम्मुख भी है जब सबसे महान् सर्वत्र है तो मेरे सामने भी होना ही है (द्यौः-न प्रथिना शवः) द्यौ—द्युलोक की भाँति विस्तृत या फैला हुआ उसका बल—व्यापन बल है, उस ऐसे (वज्रिणे नः-महित्वम्-अस्तु) सर्वविध वज्रशक्ति वाले के लिए हमारा महिमा गुणगान हो।

भावार्थः—परमात्मा सर्वमहान् है अतएव प्रत्येक के सम्मुख भी वह द्युलोक के समान विस्तृत व्याप्ति वाला है उस वज्र शासन वाले परमात्मा के लिए महिमा—गुणगान हमारे द्वारा होता रहे॥ २॥

ऋषिः—कुसीदी काण्वः (मेधावी का पुत्र योगभूमि पर बैठने वाला)॥

१६७. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन॥ ३॥

पदपाठः— आ तु नः इन्द्र क्षुमन्तम् चित्रम् ग्राभम् सम् गृभाय महाहस्ती महा हस्ती दक्षिणेन॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र महाहस्ती दक्षिणेन नः क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं तु आसंगृभाय॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (महाहस्ती) बड़े हाथों वाला—प्रशस्त दानी होता हुआ (दक्षिणेन) दक्षिण पार्श्व से—निज सखा सङ्गी बन (नः) हमारे लिये (क्षुमन्तं चित्रं ग्राभम्) प्रशस्त भोग वाले अद्भुत मुट्ठी को (तु) अवश्य (आसंगृभाय) भलीभाँति प्रदान कर।

भावार्थः—परमात्मन्! हमारे लिए भोग और आनन्द दान करने को तू महादानी है विशाल हाथों वाला है "तू छप्पर फाड़ कर देने वाला है" ऐसी उक्ति भी है, तू सदा हमारे साथ दक्षिण पार्श्ववर्ती सखा के समान है तू उस अद्भुत आनन्द भोग वाली विचित्र मुट्ठी को हमें प्रदान कर देता है॥ ३॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसकी ऐसा जन)॥

१६८. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥ ४॥

पदपाठः— अभि प्र गोपतिम् गो पतिम् गिरा इन्द्रम् अर्च्च यथा विदे सूनुम् सत्यस्य सत्पतिम् सत् पतिम्॥ ४॥

अन्वयः—यथाविदे गोपतिं सत्पतिं सत्यस्य-सूनुम् इन्द्रम् अभि गिरा प्रार्च॥

पदार्थः—(यथाविदे) हे उपासक तू यथावत् वेत्ता होने के लिये (गोपतिम्) वेदवाणी के स्वामी—(सत्पतिम्) सत्पुरुषों—उपासकों के पालक (सत्यस्य-सूनुम्) सत्य के प्रेरक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (अभि) पुनः पुनः उसे (गिरा प्रार्च) स्तुति से अर्चित कर।

भावार्थः—मानव तू यथार्थवेत्ता होने के लिये वेदवाणी के स्वामी, उपासकों के पालक, सत्य के प्रेरक परमात्मा की स्तुति से पुनः पुनः या निरन्तर अर्चना किया कर॥ ४॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय वन्दनीय देव—इष्टदेव जिसका है ऐसा उपासक जन)॥

१६९. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ ५॥

पदपाठः— कया नः चित्रः आ भुवत् ऊती सदावृधः सदा वृधः सखा स खा कया शचिष्ठया वृता॥ ५॥

अन्वयः—कया-ऊती कया शचिष्ठया वृता नः सदावृधः सखा आभुवत्॥

पदार्थः—(कया-ऊती) किसी भी स्तुति प्रवृत्ति से (कया शचिष्ठया वृता) किसी भी अत्युत्तम प्रज्ञा—आत्मभावनामय वृत्ति से (नः) हमारा (सदावृधः सखा) सदावर्धक उत्कर्ष करने वाला मित्र वह परमात्मा (आभुवत्) हो जाता है।

भावार्थः—परमात्मा की कृपा अपार है वह हमारी किसी भी ऊँची स्तुति से या किसी ऊँची श्रद्धामय आत्मभावना वैराग्य प्रवृत्ति से सदा उत्कर्ष करने वाला मित्र बन जाता है। अतः हमें उसकी स्तुति और अनुरागभरी श्रद्धा आत्मभावना से अर्पित करनी चाहिए॥ ५॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन)॥

१७०. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
आ च्यावयस्यूतये॥ ६॥

पदपाठः— **त्यम् उ वः सत्रासाहम् सत्रा साहम् विश्वासु गीर्षु आयतम्**
आ यतम् आ च्यावयसि ऊतये ॥ ६ ॥

अन्वयः—विश्वासु गीर्षु आयतं सत्रासाहं त्यम्-उ वः ऊतये आच्यावयसि ॥

पदार्थः—(विश्वासु गीर्षु) समस्त स्तुतियों में (आयतम्) व्याप्त—(सत्रासाहम्) सत्य—अविनाशी एवं सत्यरूप से सब पर अभिभूत "सत्रा सत्यनाम" [निघं० ३.१०] (त्यम्-उ) उसी इष्टदेव ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (वः) "त्वम्-विभक्ति वचनव्यत्ययः" तू (ऊतये) रक्षा के लिये (आच्यावयसि) स्तुतियों से अपनी ओर झुका लेता है।

भावार्थः—सत्य से सब पर अधिकारकर्ता परमात्मा को अपनी रक्षार्थ उपासक स्तुतियों से अपनी ओर झुका लेता है क्योंकि समस्त स्तुतियों में वह परमात्मा व्याप्त है प्रत्येक स्तुति का सत्पात्र है प्रत्येक स्तुति को स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला) ॥

१७१. **सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।**
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

पदपाठः— **सदसः पतिम् अद्भुतम् अत् भुतम् प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम्**
सनिम् मेधाम् अयासिषम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—सदसः पतिम् अद्भुतं प्रियं काम्यं सनिम् इन्द्रस्य मेधाम् अयासिषम् ॥

पदार्थः—(सदसः पतिम्) सब जिसमें देव सूर्य आदि रहते हैं ऐसे जगत् के स्वामी—"यदस्मिन् विश्वे देवा आसीदन् तस्मात् सदो नाम" [श० ३.५.३५] (अद्भुतम्) आश्चर्य गुण वाले—(प्रियम्) प्रिय-इष्ट (काम्यम्) कमनीय—स्तुत्य (सनिम्) दाता (इन्द्रस्य) "इन्द्रम्-विभक्ति व्यत्ययः" ऐश्वर्यवान् परमात्मा को—से (मेधाम्) मेधा को (अयासिषम्) प्राप्त करता माँगता हूँ।

भावार्थः—जगत् के स्वामी अद्भुत प्रिय-इष्टदेव—कमनीय दाता परमात्मा से आर्ष मेधा को माँगता हूँ जिससे मैं सदा उसकी स्तुति करता हुआ मेधावान् उपासक बन जाऊँ ॥ ७ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय इष्टदेव वाला उपासक जन) ॥

१७२. **ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।**
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

पदपाठः— **ये ते पन्थाः अधः दिवः येभिः व्यश्वम् वि अश्वम्**
ऐरयः उत श्रोषन्तु नः भुवः ॥ ८ ॥

अन्वयः—ते ये पन्थाः दिवः-अधः येभिः-अश्वं वि-ऐरवः नः-भुवः-उत श्रोषन्तु॥

पदार्थः—(ते) हे इन्द्र परमात्मन्! तेरे—तेरे सृजे हुए (ये पन्थाः) जो मार्ग (दिवः-अधः) द्युलोक के—अमृतधाम के "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] नीचे हैं (येभिः-अश्व वि-ऐरवः) जिन मार्गों वातसूत्रों के द्वारा आदित्य को विशेषरूप से प्रेरित करता है "असौ वा आदित्योऽश्वः" [तै० ३.९.२३.२] "चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ" [ऋ० १.२४.८] (नः-भुवः-उत श्रोषन्तु) हमारी भूमियों—देहों को भी "आशृण्वन्तु" स्वीकार करें—स्वीकार करते हैं संचालित करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे वातसूत्र मार्ग द्युमण्डल के नीचे जैसे सूर्यादि प्रकाश पिण्डों को चलाते हैं वैसे वे हमारी भूमियों एवं देहों को भी स्वाधीन करते हैं एवं तेरा नियन्त्रण समस्त विश्व पर है॥८॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)॥

१७३. भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो।
यदिन्द्र मृडयासि नः॥ ९॥

पदपाठः— भद्रम्भद्रम् भद्रम् भद्रम् नः आ भर इषम् ऊर्जम् शतक्रतो शत क्रतो यत् इन्द्र मृडयासि नः॥ ९॥

अन्वयः—शतक्रतो-इन्द्र नः भद्रं भद्रम् इषम् ऊर्जम् आभर यत् नः-मृडयासि॥

पदार्थः—(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत प्रज्ञा और कर्म वाले परमात्मन्! तू (नः) हमारे लिये (भद्रं भद्रम्) कल्याण कल्याण—सर्वथा कल्याण (इषम्) अदनीय अन्न "इषम्-अन्नम्" [निघं० २.७] (ऊर्जम्) रस को "ऊर्ग् वै रसः" [मै० ३.१०.४] (आभर) प्राप्त करा (यत्) यतः क्योंकि (नः-मृडयासि) तू हमें सुखी किया करता है।

भावार्थः—बहुत प्रज्ञा और कर्म शक्ति धारने वाले परमात्मन्! तू हमारे लिये कल्याणकारी अन्न भोजन और रस पान प्राप्त करा, यह प्रार्थना करते हैं, यह प्रार्थना अन्यथा नहीं किन्तु योग्य है क्योंकि तू हमें सुखी करता है॥ ९॥

ऋषिः—बिन्दुः (स्व वासनाओं को छिन्न-भिन्न करने वाला[१])॥

१७४. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
उत स्वराजो अश्विना॥ १०॥

१. "विदि अवयवे" [भ्वादि०]

१ २र १२र ३ २ ३ २ १२र ३ ३ १ २ ३ २
पदपाठः— **अस्ति सोमः अयम् सुतः पिबन्ति अस्य मरुतः उत**
३ १ ३ १२र ३ १ २
स्वराजः स्व राजः अश्विना ॥ १० ॥

अन्वयः—अयं सोमः-सुतः-अस्ति उत अस्य स्वराजः-अश्विना ('अश्विनः') मरुतः पिबन्ति ॥

पदार्थः—(अयं सोमः-सुतः-अस्ति) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! यह उपासनारस निष्पन्न किया है तू इसे पान कर यह निकृष्ट रस नहीं (उत) अपितु (अस्य) "इमम्-विभक्तिव्यत्ययः" इसको (स्वराजः-अश्विना 'अश्विनः' मरुतः पिबन्ति) अपनी शक्ति से राजमान मेरे शरीर में व्यापनशील "व्यश्नुवते-अश्विनः" [निरु० १२.१] प्राण भी पीते हैं—इसका पान करते हैं जो अपने प्राणों के लिये प्रिय है वह निकृष्ट नहीं वह तो प्राणों के भी तुझ प्राण को भेंट है। "प्राणो वै मरुतः स्वापयः" [ऐ० ३.१६] "अश्विनः स्थाने 'अश्विना' इत्याकारादेशः"।

भावार्थः—परमात्मन्! उपासनारस तेरी भेंट है तू इसे पान कर यह निकृष्ट भेंट नहीं अपितु उत्कृष्ट है मेरे प्राण इस पान को प्रथम पीते है जो कि मेरे साथ शरीर में राजमान और व्यापने वाले हैं, प्राणों से प्यारा कोई नहीं यह लौकिक उक्ति है, परन्तु तू प्राणों से भी प्यारा है इसलिय यह उपासना रस तेरी भेंट है ॥ १० ॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः (परमात्मा का मान—स्वीकार करने वाली मानव को देव का जन्म देने वाली दैवी वृत्तियाँ)॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
१७५. **ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।**
३ १ २ ३ १ २
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ २ १२र ३
पदपाठः— **ईङ्खयन्तीः अपस्युवः इन्द्रम् जातम् उप आसते**
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वन्वानासः सुवीर्यम् सु वीर्यम् ॥ १ ॥

अन्वयः—ईङ्खयन्तीः अपस्युवः सुवीर्यं-वन्वानासः जातम् इन्द्रम्-उपासते ॥

पदार्थः—(ईङ्खयन्तीः) परमात्मा के प्रति गमन करने की हेतुभूत "ईङ्खते गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (अपस्युवः) स्वकर्म को चाहने वाली (सुवीर्यम्-वन्वानासः) उत्तम प्राणभाव—शोभन जीवन को चाहती हुई मानव देवत्व को उत्पन्न करने वाली परमात्मा का मान करने वाली स्वीकार ध्यान करने वाली वृत्तियाँ—दैवी वृत्तियाँ (जातम् इन्द्रम्-उपासते) साक्षात् प्रसिद्ध परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त हो जाती हैं।

भावार्थः—मानव के अन्दर उसको देव बनाने वाली दैवी वृत्तियाँ परमात्मा

की ओर जाने की हेतुभूत होकर शोभन कर्म में प्रवृत्त हुई सुन्दर प्राणों वाले जीवन को चाहती हुई प्रसिद्ध परमात्मा की उपासना में लग जाया करती है ॥ १ ॥

ऋषिः—गोधा (स्तुति वाणी को धारण करने वाला)॥

१७६. न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

पदपाठः— न कि देवाः इनीमसि न कि आ योपयामसि मन्त्रश्रुत्यम् मन्त्र श्रुत्यम् चरामसि ॥ २ ॥

अन्वयः—देवाः न कि-इनीमसि न कि-आयोपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥

पदार्थः—(देवाः) हे देवो—विद्वानो ! (न कि-इनीमसि) न किसी को या न कभी हिंसित करती है ''इनीमसि-मीङ् हिंसायाम्'' [क्र्यादि०] ''मकारलोपश्छान्दसः'' पूर्वोक्त दैववृत्तियाँ या दैववृत्ति वाली प्रजाएँ हम (न कि-आयोपयामसि) न किसी को या न कभी आगूढ़ करती हैं जड़त्व की ओर ले जाती हैं। अपितु (मन्त्रश्रुत्यं चरामसि) मन्त्रश्रुति के अनुरूप—परमात्मपरक मन्त्रों में जो श्रवण किया है तदनुसार वर्तती हैं।

भावार्थः—दैवीवृत्तियाँ या देवश्रेणिजन कभी किसी को हिंसित नहीं करते हैं और न कभी किसी को व्यामोह में डालते हैं जड़ बनाते हैं अपितु परमात्म-विषयक मन्त्रों के कथनानुसार वर्तते हैं। ऐसी दैवीवृत्तियाँ या देवजन सेवनीय हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—दध्यङ्ङाथर्वणः ('दधि-ध्यानमञ्चति प्राप्नोति दध्यङ्'-ध्यानशील अथर्वा 'स्थिरमनाःसोऽति-शयितः' मन की स्थिरता करने में कुशल)॥

१७७. दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— दोषा उ आ अगात् बृहत् गाय द्युमद्गामन् द्युमत् गामन् आर्थवण स्तुहि देवम् सवितारम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—द्युमद्गामन् आथर्वण वृहद्गाय दोषा-उ-आगात् सवितारं देवं स्तुहि ॥

पदार्थः—(द्युमद्गामन्) हे द्युतिमान् परमात्मा को प्राप्त करने वाले ज्ञानी उपासक ! ''द्युमन्तं गच्छतीति 'द्युमत्' उपपदपूर्वकाद् गाधातोर्मनिन् प्रत्ययः'' ''आतो मनिन्०'' [अष्टा० २.२.७४] (आथर्वण) अत्यन्त स्थिर मन वाले (बृहद्गाय)

बहुत गुणगायक मुमुक्षु जन। (दोषा-उ-आगात्) अरे रात्रि आ रही है—आने वाली है, अत: उससे पूर्व-पूर्व (सवितारं देवं स्तुहि) उत्पादक प्रेरक सुखैश्वर्यप्रद परमात्मा की स्तुति कर।

भावार्थ:—प्रकाशमान परमात्मा को प्राप्त करने वाले स्थिरमना गुणगायक मुमुक्षु जन! रात्रि में सायं समय तथा जीवन की निशा से पूर्व ही युवावस्था में उत्पादक प्रेरक विविध भोग और आनन्द के दाता परमात्मा की स्तुति निरन्तर किया कर॥ ३॥

ऋषि:—प्रस्कण्व: (अत्यन्त मेधावी उपासक)॥

१७८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिव:।
स्तुषे वामश्विना बृहत्॥ ४॥

पदपाठ:— एषा उ उषा: अपूर्व्या अ पूर्व्या वि उच्छति प्रिया दिव:
स्तुषे वाम् अश्विना बृहत्॥ ४॥

अन्वय:—उ-एषा-उषा: अपूर्व्या प्रिया दिव:-व्युच्छति बृहत् स्तुषे अश्विना-वाम्॥

पदार्थ:—(उ-एषा-उषा:) अरे यह उषा—प्रातर्वेला (अपूर्व्या) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ जिससे श्रेष्ठ कोई वेला नहीं (प्रिया) प्यारी (दिव:-व्युच्छति) उस प्रकाशक सविता परमात्मा की ओर से प्रकाशित हो रही है (बृहत् स्तुषे) मैं उसकी बहुत स्तुति करता हूँ—करता रहूँ (अश्विना-वाम्) हे दोनों दिन रातो! मैं दिन और रात में भी उस सविता परमात्मा की स्तुति करता हूँ "अहोरात्रौ-अश्विनौ" [निरु० १२.१] "अहोरात्रे वा अश्विनौ" [मै० ३.४.४] यहाँ "अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया विभक्ति है।

भावार्थ:—मैं उस प्रकाशक परमात्मा की ओर से प्रकाशित उषावेला-प्रातर्वेला में तथा जीवन की कुमार वेला में उत्पादक प्रेरक भोग और आनन्द के दाता परमात्मा की स्तुति करता रहूँ अपितु इन उषा और सायं वेला के मध्य दिन और रात में जागता सोता हुआ व्यवहारकाल और शायनकाल में परमात्मा को न भूलूँ उसके विपरीत आचरण न करूँ और स्वप्न न लूँ॥ ४॥

ऋषि:—गोतम: (उपासना में अत्यन्त गतिशील ध्यानी)॥

१७९. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत:।
जघान नवतीर्नव॥ ५॥

पदपाठ:— इन्द्र दधीच: अस्थभि: वृत्राणि अप्रतिष्कुत अ प्रतिष्कुत:
जघान नवती: नव॥ ५॥

अन्वयः—अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः वृत्राणि अस्थभिः जघान नव नवतीः ॥

पदार्थः—(अप्रतिष्कुतः) 'कुतोऽपि गुणकर्मस्वभावात्–अप्रतिः–न प्रतिनिधिर्यस्य सः–अप्रतिष्कुतः' गुणकर्म स्वभाव से प्रतिनिधिरहित तथा न प्रति–आप्रवणशील—अपने गुणकर्म स्वभाव से न विचलित होने वाला—एकरस ''स्कुञ् आप्रवणे'' [क्र्यादि०] एवं न प्रतिकृत—प्रतिकार से रहित ''मध्ये सकारागमश्छान्दसः'' और किसी से न प्रतिहिंसित ''अप्रतिष्कुतः–अप्रतिष्कृतः'' [निरु० ६.१६] (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दधीचः) दधि–ध्यान—परमात्म–ध्यान को प्राप्त ध्यानी के ''दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानम्'' [निरु० १२.३६] (वृत्राणि) पापों—पापविचारों को ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ११.१.५.७] (अस्थभिः) अस्थियों उपतापित करने वाली ''असु उपतापे'' [कण्ड्वादि०] समिधाओं—समिद्ध ज्ञानप्रकाश से प्रदीप्त स्वशक्तियों से ''अस्थीनि समिधः'' [श० ९.२.६.४६] (जघान) नष्ट कर देता है तथा (नव नवतीः) नौ—पाँच ज्ञानेन्द्रियों मन बुद्धि चित्त अहङ्कार वाली गतिप्रवृत्तियों वासनाओं को भी ''नवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] नष्ट कर देता है।

भावार्थः—किसी भी ज्ञान दया न्याय शक्ति आदि गुण, सृष्टिरचना, जीवों के कर्मफलादि कर्म सर्वगत, विभु आदि स्वभाव से प्रतिनिधि—समकक्ष से रहित तथा स्वगुणादि से अविचलित एकरस एवं प्रतिकार न कर सकने योग्य न प्रतिकार का इच्छुक और अन्य से अहिंसित होता हुआ अपने ध्यान में अपनी उपासना में रत हुए ध्यानी उपासक के पापों स्वविषयक पापों अन्य के प्रति पापों को नष्ट किया करता है अपितु वह ध्यानी के नौ प्रकार की वासनाओं को भी नष्ट कर देता है जो कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ग्रहण वासनाएँ हैं एवं मन बुद्धि चित्त अहङ्कार के अर्थात् मन के संकल्प बुद्धि की तर्कनाएँ, चित्त के स्मरण, अहङ्कार की ममताएँ संसार को लक्ष्य करके होती हैं उन्हें भी नष्ट करता है निरुद्ध कर देता है ॥५॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला, मधुतन्त्र उपासक)॥

१८०. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥

पदपाठः— इन्द्र आ इहि मत्सि अन्धसः विश्वेभिः सोमपर्वभिः
सोम पर्वभिः महान् अभिष्टिः ओजसा ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्द्र–एहि अन्धसः विश्वेभिः सोमपर्वभिः मत्सि ओजसा महान्–अभिष्टिः ॥

पदार्थः—(इन्द्र-एहि) हे मेरे परमात्मन्! मेरे हृदय में आ (अन्धसः) आध्यानीय—ध्यानोपासन के (विश्वेभिः) सारे—(सोमपर्वभिः) मेरे द्वारा अनुष्ठित सोम्ययोग के अङ्गों से (मत्सि) तू मुझ पर हर्षित हो—मुझे उपकृत कर (ओजसा) अपने आत्मबल से (महान्-अभिष्टिः) महान् सर्वमहान् सबको बाहर भीतर से प्राप्त है प्राप्त करता है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू महान् से महान् आत्मबल से सबके अन्दर बाहर प्राप्त है अतः तू मेरे अन्दर आ और मेरे ध्यानोपासन योगाङ्गों के द्वारा मुझ पर प्रसन्न हो, मुझे उपकृत कर, यह प्रार्थना है। परमात्मन् निश्चय तेरी ओर आने वाले मार्गों पर चलते हुए को देखकर तू प्रसन्न होता है और उसे उपकृत करता है॥ ६॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय धारणीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)॥

१८१. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।
महान्महीभिरूतिभिः॥ ७॥

पदपाठः— आ तु नः इन्द्र वृत्रहन् वृत्र हन् अस्माकम् अर्द्धम् आ गहि महान् महिभिः ऊतिभिः॥ ७॥

अन्वयः—वृत्रहन्-इन्द्र महान् अस्माकम्-अर्द्धं तु-आ महीभिः-ऊतिभिः-आगहि॥

पदार्थः—(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापविनाशक ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (महान्) महान् है—स्वरूपतः और उपकारक गुणों से महान् है, अतः (अस्माकम्-अर्द्धम्) हमारे पास या हमारे घर (तु-आ) शीघ्र आ, परन्तु साधारणरूप से नहीं किन्तु (महीभिः-ऊतिभिः-आगहि) महती—रक्षाकरणशक्तियों के साथ आ जा।

भावार्थः—पापनाशक परमात्मन्! हमारे पास या हमारे स्थान हृदयगृह में आ, हम जानते हैं तू आमन्त्रित करने पर आता है परन्तु हमारे प्रेम आग्रह मात्र से या साधारणरूप में ही नहीं किन्तु अपनी रक्षा शक्तियों से आया करता है—तब हम निर्भय रहते हैं॥ ७॥

ऋषिः—वत्सः (परमात्मगुणों का वक्ता)॥

१८२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥ ८॥

पदपाठः— ओजः तत् अस्यं तित्विषे उभेइति यत् समवर्त्तयत् सम् अवर्त्तयत् इन्द्रः चर्म्म इव रोदसीइति॥ ८॥

अन्वयः—अस्य तत्-ओजः-तित्विषे यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी चर्म-इव समवर्तयत्॥

पदार्थः—(अस्य) इन्द्र परमात्मा का (तत्-ओजः-तित्विषे) वह ओज स्वात्मीय बल प्रदीप्त हो रहा है (यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी) यतः-जिससे ऐश्वर्यवान् परमात्मा दोनों द्यावापृथिवी—द्युलोक और पृथिवी लोक को द्यावापृथिवीमयी सृष्टि को "रोदसी पृथिवीनाम" [निघं० ३.३०] ऐसे संवृत कर लेता है, ढक लेता है (चर्म-इव समवर्तयत्) जैसे कोई शिल्पी ऊपर चमड़ा चढ़ा कर वस्तु को उसकी रक्षार्थ ढक देता है। संवृत कर लेता है, ढक लेता है।

भावार्थः—परमात्मा का स्वात्मीय बल प्रकाशित होकर सारी द्युलोक पृथिवीलोकमयी सृष्टि को ढक रहा है चमड़े की भाँति अर्थात् परमात्मा का स्वात्मबल प्रत्येक वस्तु में प्रकाशित है जो प्रत्येक वस्तु को उसके अपने स्वरूप में बनाए रखता है, वह प्रत्येक वस्तु की रक्षा भी करता है और प्रत्येक वस्तु के स्वरूप को भी निरूपित करता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषय सङ्गी जन उत्थान का इच्छुक)॥

१८३. अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

पदपाठः— अयम् उ ते सम् अतसि कपोतः इव गर्भधिम् गर्भ धिम्
वचः तत् चित् नः ओहसे ॥ ९ ॥

अन्वयः—ते अयम्-उ समतसि कपोतः-इव गर्भधिं तत्-चित् नः-वचः-ओहसे ॥

पदार्थः—(ते) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरा पुत्र या सखा (अयम्-उ) यह ही मैं जीवात्मा (समतसि) 'समतति' पुरुषव्यत्यये न मध्यमः, शरीर में भोगार्थ निरन्तर पुनः पुनः गमन कर रहा है—भटक रहा है (कपोतः-इव गर्भधिम्) जैसे कबूतर पौधे के गर्भरूप अन्न धरे हुए हैं जहाँ ऐसे जाल को प्राप्त हो रहा है उसमें अन्नभोगार्थ फँस रहा है "अन्नं वै गर्भाः" [तै० सं० ५.३.३.४] "कर्मण्यधिकरणे च" [अष्टा० ३.३.९३] 'इत्यधिकरणेऽर्थे धाधातोः किः प्रत्ययः' (तत्-चित्) उस हेतु भी—(नः-वचः-ओहसे) हमारे—मेरे आर्तवचन—प्रार्थना वचन—शरीर बन्धन या भोग-बन्धन से या भोगसंकट से विमुक्तिनिमित्तप्रार्थनावचन को समन्त रूप से प्राप्त होता है "ऊहे......वहति" 6[निरु० ६.३५] सुनता है—स्वीकार करता है।

भावार्थः—परमात्मन्! दाने के लोभ में दाने वाले जाल में फँसे कबूतर की भाँति भोगार्थ भोगस्थान शरीर में भटकते हुए फँसे हुए इस मुझ जीवात्मा के पश्चात्तापरूप आर्त्तनाद को अवश्य सुनता है—सुन, मुझे मुक्ति प्रदान कर ॥ ९ ॥

ऋषिः—वातायन उल्लः (सुन्दर अध्यात्म वातावरण अयन आश्रय में विराजमान उल्लास को प्राप्त उपासक जन)॥

१८४. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूँषि तारिषत्॥ १० ॥

पदपाठः— वातः आ वातु भेषजम् शम्भु शम् भु मयोभु मयः भु नः हृदे प्र नः आयूꣳषि तारिषत् ॥१० ॥

अन्वयः—वातः नः हृदे शम्भु मयोभु भेषजम् आ वातु नः-आयूंषि प्रतारिषत्॥

पदार्थः—(वातः) 'वाति सर्वत्र विभुगत्या प्राप्तो भवतीति वातः-स एव-इन्द्रः परमात्मा' सर्वत्र विभुगति से प्राप्त परमात्मा 'वातः प्राणस्तदयमात्मा' [काठ० ७.१४] (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्भु मयोभु भेषजम्) अध्यात्म कल्याण भावित करने वाले लौकिक सुख भावित करने वाले अमृत-स्वरूप को "यद् भेषजं तदमृतम्" [गो० १.३.४] (आ वातु) सञ्चारित करें (नः-आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओं को—प्राणों को "आयुः प्राणः" [तै० ३.३.४.३] बढ़ावें।

भावार्थः—वातस्वरूप इन्द्र परमात्मा हमारे हृदय के लिये अन्तःकरण के लिए शान्ति भावित करने वाले तथा सुख भावित करने वाले अपने अमृतस्वरूप को सञ्चारित करें—करता है, जब कोई उसका बन जाता है उसमें रत हो जाता है तथा उसके भौतिक प्राणों को भी बढ़ाता है—मुक्ति में रहने वाले अमृत प्राणों को भी प्रदान करता है ॥ १० ॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—घौरः कण्वः (अति वक्ता मेधावी विद्वान्)॥

१८५. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

पदपाठः— यम् रक्षन्ति प्रचेतसः प्र चेतसः वरुणः मित्रः मि त्रः अर्यमा न किः सः दभ्यते जनः ॥ १ ॥

अन्वयः—यं वरुणः मित्रः अर्यमा प्रचेतसः रक्षन्ति सः-जनः न किः-दभ्यते॥

पदार्थः—(यम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! जिस उपासक को तेरी उपासना से उसके अन्दर (वरुणः) वरणीय-शरणप्रद (मित्रः) सहायक स्नेही

(अर्यमा) आनन्दप्रद स्वामी नाम से ये तेरे स्वरूप (प्रचेतसः) प्रत्यक्ष—साक्षात् हुए (रक्षन्ति) रक्षित रखते हैं, सम्भालते हैं (सः-जनः) वह उपासक जन (न किः-दभ्यते) न कभी दबाया—सताया जा सकता है।

भावार्थः—जिस उपासक के अन्तरात्मा में हे परमात्मन्! तेरे वरुण-शरणप्रद, मित्र सहायक स्नेही, अर्यमा आनन्ददाता स्वामी स्वरूप साक्षात् हो जाते हैं वे उसकी नितान्त रक्षा करते हैं वह विपरीत विघ्न या विघ्नकर्ता से दबाया सताया नहीं जा सकता है॥ १॥

ऋषिः—वत्सः (वक्ता—निवेदयिता प्रार्थी)॥

१८६. गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया।
वरिवस्या महोनाम्॥ २॥

पदपाठः— गव्या उ सु नः यथा पुरा अश्वया उत रथया वरिवस्या महोनाम्॥ २॥

अन्वयः—उ सु गव्या अश्वया उत रथया महोनां नः यथा-पुरा वरिवस्य॥

पदार्थः—(उ सु) अरे मानव! अपने कल्याणार्थ (गव्या) 'गव्यया' प्रशस्तवाणी की इच्छा से—वाणी परमात्मा की स्तुति करने वाली वाणी प्राप्त हो (अश्वया) सब विषय व्यापक प्रशस्त मन की इच्छा से—मन परमात्मा का चिन्तन करने वाला हो (उत) और (रथया) प्रशस्त शरीर रथ की इच्छा से—सदाचरण करने वाला संयमी स्वस्थ रहें (महोनाम्) महान्—श्रेष्ठों में श्रेष्ठ इन्द्र ऐश्वर्यवन् इष्टदेव परमात्मन्! 'निर्धारणे षष्ठी' तू (नः) हमें (यथा-पुरा) पूर्व की भाँति—पूर्वजन्म की भाँति—पूर्वजन्म में ये दिये थे ऐसे देकर (वरिवस्य) अपनी परिचर्या में बना पुनः पूर्व की भाँति मोक्ष का आनन्द भुगा।

भावार्थः—सर्वमहान् परमात्मन्! हमें पूर्वजन्म की भाँति जिस पूर्वजन्म में उत्तम वाणी स्तुति करने वाली उत्तम मन तेरा चिन्तन करने वाला, उत्तम शरीर तेरी प्राप्ति के सदाचरण करने वाला पाकर पूर्व मोक्षानन्द को कभी प्राप्त किया था उसे पुनः प्राप्त कर सकूँ ऐसे इन वाणी आदियों को देकर अपनी परिचर्या उपासना हमसे करवा पुनः मोक्षानन्द को भुगा॥ २॥

ऋषिः—वत्सः (वक्ता—प्रार्थना वचन-कर्ता)॥

१८७. इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्।
एनामृतस्य पिप्युषीः॥ ३॥

पदपाठः— इमाः ते इन्द्र पृश्नयः घृतम् दुहते आशिरम् आ शिरम् एनाम् ऋतस्य पिप्युषीः॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र ते-इमाः-पृश्नयः आशिरं घृतं दुहते एनाम्-ऋतस्य पिप्युषीः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते-इमाः-पृश्नयः) तेरे लिये अर्पित—तेरे लिये की हुई—मुझे स्पर्श करती हुई वाणियाँ स्तुतियाँ "वाग्वै पृश्निः" [काठ० ३४.१] (आशिरं घृतं दुहते) मेरे लिये तुझसे आश्रयणीय "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६.८] ज्ञानमय तेज—ज्ञानामृत को "तेजो वै घृतम्" [मै० १.६.८] "घृतं.......अमृतम्" [मै० ४.१२.४] "घृ दीप्तौ" [जुहो०] दुहती है—मेरे अन्दर भर देती हैं (एनाम्-ऋतस्य पिप्युषीः) 'एनाम्-एनाः' 'विभक्तिवचनव्यत्ययः' ये स्तुतियाँ अध्यात्म यज्ञ की बढ़ाने वाली हैं 'पिप्युषीः' प्रथमार्थे द्वितीया-'विभक्तिव्यत्ययः'।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे लिये समर्पित ये स्तुतियाँ मेरे लिये तुझसे आश्रयणीय ज्ञानमय तेज या तेजोमय अमृत को दूहती हैं जो मेरा अमर सहारा है, वस्तुतः ये स्तुतियाँ अध्यात्म यज्ञ को आगे-आगे बढ़ाती रहती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा अध्यात्म ज्ञानी जन) ॥

१८८. अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत।
यत् सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥

पदपाठः— अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरु नामन् पुरुष्टुत पुरु स्तुत यत् सोमेसोमे सोमे सोमे आभुवः आ अभुवः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पुरुणामन् पुरुष्टुत अनया गव्यया धिया च सोमे-सोमे यत्-आभुवः ॥

पदार्थः—(पुरुणामन्) हे बहुत नामों वाले—बहुत नामों से पुकारे जाने वाले जैसे अन्यत्र वेद में कहा है "अग्निं मित्रं वरुणमाहुः" [ऋ० १.१६४.४६] (पुरुष्टुत) बहुत गुण प्रकारों से स्तुत्य उपासनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तू (अनया गव्यया धिया च) इस स्तुति की इच्छारूप बुद्धि—धारणा से (सोमे-सोमे) निरन्तर निष्पादित उपासनारस में "वीप्सायां द्विरुक्तिः" (यत्-आभुवः) जब कभी भी तू मेरे अन्दर आभूत हो जाता—साक्षात् हो जाता है—हो जावेगा यह तो विश्वास है।

भावार्थः—हे बहुत नामों वाले तथा बहुत गुणयोग से स्तुति करने योग्य परमात्मन्! इस जिस किसी भी नाम विधि या जिस किसी भी गुण स्तुति की इच्छा वाली धारणा भावना से निरन्तर उपासनारस निष्पादित करने पर तू जब कभी—कभी न कभी—कभी तो मेरे अन्दर साक्षात् होता है—होगा ही यह निश्चय है तेरा सत्य-स्वभाव है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधु अध्यात्म परायण जन)॥

१८९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥

पदपाठः— पावका नः सरस्वती वाजेभिः वाजिनीवती यज्ञम् वष्टु धियावसुः धिया वसुः ॥ ५ ॥

अन्वयः—सरस्वती वाजेभिः वाजिनीवती नः पावकाः धियावसुः-यज्ञं वष्टु ॥

पदार्थः—(सरस्वती) वाक्-स्तुति वाणी (वाजेभिः) विविध बलों से—शरीर मन आत्मबलों से "वाजः-बलम्" [निघं० २.९] (वाजिनीवती) बलवती प्रवृत्ति वाली होती हुई (नः पावकाः) हमें पवित्र करने वाली (धियावसुः-यज्ञं वष्टु) कर्म से वसी हुई कर्मपरायण क्रियाशील—प्रगति वाली होती हुई "धियावसुः कर्मवसुः" [निरु० ११.२६] "तृतीयायाः अलुक्" अध्यात्म यज्ञ को चाहे—सम्पन्न करे—बढ़ावे—चमकावें।

भावार्थः—शरीर मन आत्मा के बलों की अपेक्षा स्तुति में होती है "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" [मुण्ड० ३.२.४] इन तीनों बलों से स्तुति वाक् बलवती होकर हमें पवित्रकारिणी होती है वह ऐसी स्तुति वाणी प्रगतिशील कर्म प्रगति में बसी हुई अध्यात्म यज्ञ को चाहा या चमकाया करती है ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य देव है जिसका ऐसा उपासनापरायण जन)॥

१९०. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात्।
स नो वसून्या भरात् ॥ ६ ॥

पदपाठः— कः इमम् नाहुषीषु आ इन्द्रम् सोमस्य तर्पयात् सः नः वसूनि आ भरात् ॥ ६ ॥

अन्वयः—नाहुषीषु कः-आ इमम्-इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् सः नः वसूनि-आभरात् ॥

पदार्थः—(नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओं में—मनुष्यों में "नहुषः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (कः-आ) कोई विरला जन मुमुक्षु "आः स्मरणे" (अव्ययार्थनिबन्धनम्) (इमम्-इन्द्रम्) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (सोमस्य) उपासनारस के समर्पण से (तर्पयात्) अपने ऊपर प्रसन्न कर सकता है—उसका कृपापात्र बन सकता है (सः) वह जो इन्द्र—परमात्मा (नः) हम सब मनुष्यों के लिये (वसूनि-आभरात्) नाना प्रकार के भोगधनों को प्रदान करता है।

भावार्थः—परमात्मा सामान्यतः हम सब मनुष्यों को सांसारिक भोगधनों को

प्रदान करता है, परन्तु हम मनुष्यों में से कोई ही विरला मुमुक्षुजन होता है जो उपासनारस के समर्पण से परमात्मा को अपने ऊपर प्रसन्न करता है—प्रसन्न कर उसके आश्रय में रह अमृत सुख ब्रह्मानन्द एवं मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (बिठ—अन्तरिक्ष—हृदयाकाश में मन की प्रवृत्ति करनेवाला)॥

१९१. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

पदपाठः— आ याहि सुषुम ते हि इन्द्र सोमम् पिब इमम् आ इदम् बर्हिः सदः मम ॥ ७ ॥

अन्वयः—इन्द्र आ याहि ते सोमं सुषुम हि इमं-पिब मम-इदं बर्हिः इदम्-आसदः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (आ याहि) आजा (ते) तेरे लिए (सोमं सुषुम हि) उपासनारस को हम सम्पादन करते हैं (इमं-पिब) इसको पान कर—स्वीकार कर (मम-इदं बर्हिः) मेरे इस हृदयाकाश में ''बर्हिः-अन्तरिक्षम्'' [निघं० १.३] (इदम्-आसदः) इस पर बैठ।

भावार्थः—परमात्मा के लिये उपासनारस तैयार करना उसे स्वीकार करने को आग्रह करना अपने हृदयाकाश में समन्तरूप से बिठाना चाहिए ॥ ७ ॥

ऋषिः—वारुणिः सत्यधृतिः (वरुण-वरणीय परमात्मा के सम्बन्ध में सत्यधारणावाला उपासक)॥

१९२. महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥

पदपाठः— महि त्रीणाम् अवरिति अस्तु द्युक्षम् द्यु क्षम् मित्रस्य मित्रस्य अर्यम्णः दुराधर्षम् दुः आधर्षम् वरुणस्य ॥ ८ ॥

अन्वयः—त्रीणां मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य महि द्युक्षम् दुराधर्षम् अवः अस्तु ॥

पदार्थः—(त्रीणाम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरे तीनों नाम उपासनीय (मित्रस्य) मित्र सहायक स्नेही—(अर्यम्णः) अर्यमा-आनन्दप्रद स्वामी—(वरुणस्य) वरुण-वरणीय—शरणप्रद स्वरूप का (महि) महत्—महत्त्वपूर्ण (द्युक्षम्) द्यु-प्रकाश में निवास करने वाला (दुराधर्षम्) न धर्षणीय न मिटने योग्य—न हटाने योग्य (अवः) रक्षण (अस्तु) हमारे लिये सदा रहे।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे मित्र—सहायक स्नेही, अर्यमा-आनन्दप्रद स्वामी,

वरुण–वरणीय शरणप्रद तीनों नामों या साक्षात् स्वरूपों का महत्—भारी तेजस्वी, न दबाने योग्य रक्षण उपासक को मिलता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वत्सः (परमात्मगुणों का वक्ता प्रार्थी) ॥

१९३. त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥

पदपाठः— त्वावतः पुरूवसो पुरू वसो वयम् इन्द्र प्रणेतः प्र नेतरिति
स्मसि स्थातः हरीणाम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हरीणां स्थातः पुरूवसो प्रणेतः इन्द्र वयं त्वावतः स्मसि ॥

पदार्थः—(हरीणां स्थातः) हे मनुष्यों के स्थितिस्थापक! "हरयो मनुष्याः" [निघं० २.३] (पुरूवसो) बहुत बहुविध भोगापवर्ग धनप्रद! (प्रणेतः) प्रेरक—(इन्द्र) परमात्मन्! (वयं त्वावतः स्मसि) हम तेरे जैसे इन्द्र की उपासना वाले अनन्य हैं—रहें।

भावार्थः—परमात्मन्! तू हम मनुष्यों का स्थितिस्थापक मानवता के स्तर पर रखने वाला बहुत प्रकार के भोग अपवर्ग ऐश्वर्य का स्वामी, प्रेरक है, हम भी तेरे जैसे परमात्मा की उपासना करने वाले हैं—बने रहें, तुझ से भिन्न की कभी उपासना न करें। तेरे अनन्य उपासक बने रहें तेरी शरण के पात्र बने रहें ॥ ९ ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः

नवम खण्ड

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—वाणी—स्तुति जिसकी है ऐसा उपासक)॥

१९४. **उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।**
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १ ॥

पदपाठः— **उत् त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधः अद्रिवः अ द्रिवः**
अव ब्रह्मद्विषः जहि॥ १ ॥

अन्वयः—अद्रिवः त्वा सोमाः उत्-मदन्तु राधः कृणुष्व ब्रह्मद्विषः-अवजहि॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे अद्रिवन्-आनन्दघनवन्—आनन्द बरसाने वाले परमात्मन्! (त्वा) तुझे (सोमाः) हमारे द्वारा निष्पादित—विविध उपासनारस (उत्-मदन्तु) हमारी ओर उद्धर्षित करें—उल्लसित करें, इस प्रकार कि तू (राधः कृणुष्व) समृद्ध करने वाले धन को प्रदान कर (ब्रह्मद्विषः-अवजहि) तुझ ब्रह्म से द्वेष करने वाले तुझसे विमुख करने वाले नास्तिक विचार या मुझे ब्रह्म—ब्राह्मणत्व पद पाने के विरोधी नास्तिकपने को दबा दें।

भावार्थः—हे आनन्द घन वाले परमात्मन्! मेरे विविध उपासनारस तुझे मेरी ओर उल्लसित करें उल्लास पूर्ण करें, जिससे तू समृद्ध करने वाले ऐश्वर्य मोक्षैश्वर्य को प्रदान करे तथा तेरी ओर आने में बाधक को मुझे ब्राह्मण बनने में विरोधी नास्तिक विचार को हटा दें॥ १ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र—सबके लिये उदार जन)॥

१९५. **गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।**
इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ २ ॥

पदपाठः— **गिर्वणः गिः वनः पाहि नः सुतम् मधोः धाराभिः अज्यसे**
इन्द्र त्वादातम् त्वा दातम् इत् यशः॥ २ ॥

अन्वयः—गिर्वणः-इन्द्र नः सुतं पाहि मधोः-धाराभिः-अज्यसे त्वादातम्-इत्-यशः॥

पदार्थः—(गिर्वणः-इन्द्र) हे स्तुतियों से वननीय परमात्मन्! ''गिर्वणः-

गीर्भिरेनं वनयन्ति'' [निरु० ६.१४] (नः सुतं पाहि) हमारे निष्पादित उपासनारस को सम्भाल (मधोः-धाराभिः-अज्यसे) मीठे उपासना रस की धाराओं से सराबोर किया जाता है (त्वादातम्-इत्-यशः) बस तेरे द्वारा संस्कृत पवित्र यश—यशोमय जीवन हो।

भावार्थः—हे स्तुतियों से वननीय—भजनीय परमात्मन्! तू हमारे निष्पादित उपासनारस को रख—सम्भाल—अपना, तू इस मीठे उपासनारस की धाराओं से स्निग्ध किया जा रहा है, इस प्रकार करने से तेरे द्वारा शोधा हुआ—पवित्र किया हुआ यह मेरा यशोमय जीवन हो॥ २॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—सेवनीय—उपास्य देव जिसका है वह परमात्मा का अनन्य उपासक)॥

१९६. सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन्।
न देवो वृतः शूर इन्द्रः॥ ३॥

पदपाठः— सदा वः इन्द्रः चर्कृषत् आ उप उ नु सः सपर्यन् न देवः वृतः शूरः इन्द्रः॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्रः वः सदा आचर्कृषत् सः नु उप-उ-सपर्यन् न शूरः-देवः-इन्द्रः-वृतः॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वः) तुम मनुष्यों को (सदा) सभी कालों में (आचर्कृषत्) आकर्षित करता है (सः) वह (नु) हाँ शीघ्र (उप-उ-सपर्यन् न) समीप में ही परिचर्या कराता हुआ सा (शूरः-देवः-इन्द्रः-वृतः) शूर—पापसंहारक शुभ गुणदाता इन्द्र परमात्मा वरण किया जाना चाहिए।

भावार्थः—हे सज्जनो! परमात्मा पापों का संहारक गुणों का दाता वरण किया हुआ—स्वीकार किया हुआ सदा तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता है अपने समीप लेकर परिचर्या कराने जैसा व्यवहार करता हुआ वर्तमान रहता है॥ ३॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)॥

१९७. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥ ४॥

पदपाठः— आ त्वा विशन्तु इन्दवः समुद्रम् सम् उद्रम् इव सिन्धवः न त्वाम् इन्द्र अति रिच्यते॥ ४॥

अन्वयः—इन्द्र इन्दवः त्वा आविशन्तु सिन्धवः समुद्रम्-इव त्वां-न अतिरिच्यते॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (इन्दवः) मेरे ये आर्द्र उपासनारस (त्वा आविशन्तु) तेरे में आविष्ट हो जावें (सिन्धवः समुद्रम्-इव) नदियाँ जैसे समुद्र में आविष्ट हो जाती हैं, परन्तु भेद यह है कि नदियां तो समुद्र में खारी हो जाती है, परन्तु आर्द्र स्निग्ध उपासनारस तेरे अन्दर मेरे लिये तुझे आर्द्र स्नेहपूर्ण कर देती हैं (त्वां-न अतिरिच्यते) तुझे कोई अतिरिक्त नहीं कर सकता तेरे से बढ़कर गुणवान् दयालु स्नेहवान् कोई नहीं है।

भावार्थः—परमात्मन्! उपासक के द्वारा तेरे प्रति समर्पित आर्द्र स्निग्ध उपासनारस तुझ में ऐसे आविष्ट होते हैं जैसे नदियाँ समुद्र में आविष्ट हो जाती हैं, परन्तु समुद्र तो उन्हें खारी बनाकर अपने अन्दर ही रख लेता है किन्तु परमात्मन्! तू तो उपासनारसों को अपने आनन्द रस से संयुक्त कर उपासक के अन्दर प्रतिवर्तित करता है क्योंकि तू महान् दयालु है तुझ जैसा मधुर दयासागर कोई नहीं॥ ४॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधु परायण उपासक जन)॥

१९८. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ५॥

पदपाठः— इन्द्रम् इत् गाथिनः बृहत् इन्द्रम् अर्केभिः अर्किणः इन्द्रम् वाणीः अनूषत॥ ५॥

अन्वयः—गाथिनः बृहत् इन्द्रम् अर्किणः इन्द्रम् वाणीः इन्द्रम् अनूषत॥

पदार्थः—(गाथिनः) गाथा वाले वैराग्यवान् जन वैराग्यपूर्ण गीतिगान स्तुतियों से (बृहत्) महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (अर्किणः) अर्चना करने वाले समस्त बाह्य पदार्थ तथा कर्म को अर्चित—समर्पित करने वाले अर्कों—अर्चनाओं से सर्वस्व समर्पण करनेवाले अपने समर्पण भाव से (इन्द्रम्) परमात्मा को (वाणीः) 'वाणीभिः' गान और अर्चना करने वालों से भिन्न साधारण नम्र वाणियों द्वारा वक्ता जन अपनी वाणियों से (इन्द्रम्) परमात्मा को (अनूषत) स्तुत करें—स्तुति में लावें।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को गाने वाले, स्तुतियों द्वारा अर्चना करनेवाले, समय पर वरने वाले अपनी अर्चनाओं से—समर्पण भावनाओं से, साधारण वाणियों से स्तुति करने वाले अपनी साधारण वाणियों से स्तवन करते हैं—किया करें॥ ५॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने)॥

१९९. इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्।
वाजी ददातु वाजिनम्॥ ६॥

पदपाठः— इन्द्रः इषे ददातु नः ऋभुक्षणम् ऋभु क्षणम् ऋभुम् ऋभुम् रयिम् वाजी ददातु वाजिनम्॥ ६॥

अन्वयः—इन्द्रः नः-इषे ऋभुक्षणम् ऋभुम् रयिम् ददातु वाजी वाजिनं ददातु॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! (नः-इषे) हमारी कामनाओं के लिये पूर्ण काम होने के लिए (ऋभुक्षणम्) महान् ''ऋभुक्षा महन्नाम'' [निघं० ३.३] या उरुक्षयण—महान् निवास रूप (ऋभुम्) अपने धाम-मोक्ष निःश्रेयस को ''ऋभुः-इन्द्रस्य प्रियं धाम'' [ता० १४.२.५] (रयिम्) ऐश्वर्य सांसारिक अभ्युदय को (ददातु) दे (वाजी वाजिनं ददातु) वह समस्त बलों वाला परमात्मा वाजिन—मोक्षसाधक ब्रह्मचर्यपूर्ण संयम को दे ''रेतो वाजिनम्'' [तै० १.६.३.१०]।

भावार्थः—मानव के दो लक्ष्य हैं रयि—ऐश्वर्य—अभ्युदय और मोक्षधाम-निःश्रेयस है इन दोनों को परमात्मा प्रदान करता है इन दोनों का साधन ब्रह्मचर्य संयम सदाचार बल है उसे भी सब बलों का स्वामी या बलों से सम्पन्न हमें प्रदान करे—करता है॥ ६॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु या स्तोता और हर्षालु)॥

२००. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्।
स हि स्थिरो विचर्षणिः॥ ७॥

पदपाठः— इन्द्रः अङ्ग महत् भयम् अभि सत् अप चुच्यवत् सः हि स्थिरः विचर्षणिः वि चर्षणिः॥ ७॥

अन्वयः—इन्द्रः महत्-भयम् अङ्ग अभीषत् अपचुच्यवत् सः-हि स्थिरः-विचर्षणिः॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमात्मा (महत्-भयम्) भारीभय को (अङ्ग) शीघ्र ''अङ्गेति क्षिप्रनाम'' [निरु० ५.१७] (अभीषत्) अभिगत करता है तथा दबा देता है (अपचुच्यवत्) च्यवित कर देता है—नष्ट कर देता है, (सः-हि) वह ही (स्थिरः-विचर्षणिः) नितान्त विशेष द्रष्टा है।

भावार्थः—परमात्मा अपने उपासक के भारी भय को भी शीघ्र दबाता है और सर्वथा नष्ट कर देता है, वह ही अपने उपासकों के दुर्गुणों और अन्य विघ्नकर्ताओं को नितान्त देखता, उपासक अपने ऊपर आए भय न जान सकें पर वह तो जानता है॥ ७॥

ऋषिः—भरद्वाजः (आत्मबल को भरण धारण करने वाला उपासक)॥

२०१. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।
गावो वत्सं न धेनवः॥ ८॥

पदपाठः— इमाः उ त्वा सुतेसुते सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणः गिः वनः गिरः गावः वत्सम् न धेनवः॥ ८॥

अन्वयः—गिर्वणः इमाः-गिरः सुते सुते त्वा-उ नक्षन्ते वत्सं न धेनवः-गावः ॥

पदार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय सेवनीय परमात्मन्! (इमाः-गिरः) ये स्तुतियाँ (सुते सुते) प्रत्येक निष्पादित उपासनारस पर प्रत्येक उपासना प्रसङ्ग पर (त्वा-उ) तुझे ही (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं "नक्षति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] 'गतेरत्र प्राप्त्यर्थः' (वत्सं न धेनवः-गावः) बछड़े के प्रति जैसे दुधारु गौवें प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—हे स्तुतियों से सम्भजनीय परमात्मन्! प्रत्येक निष्पन्न उपासनारस पर मेरी स्तुति वाणियाँ तेरे प्रति इस प्रकार प्राप्त हो रही हैं जैसे बछड़े के प्रति दुधारु गौवें प्राप्त होती हैं, उपमा यहाँ केवल प्राप्ति में उत्सुकता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (आत्मबल को भरण धारण करने वाला उपासक)॥

२०२. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये।
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

पदपाठः— इन्द्रा नु पूषणा वयम् सख्याय स ख्याय स्वस्तये सु अस्तये हुवेम वाजसातये वाज सातये ॥ ९ ॥

अन्वयः—इन्द्रा नु पूषणा वयम् सख्याय स्वस्तये वाजसातये हुवेम ॥

पदार्थः—(इन्द्रा) इन्द्र—ऐश्वर्यवान् "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया०" [अष्टा० ७.१.३९] 'आकारः' (नु) न केवल ऐश्वर्यवान् अपितु 'नु वितर्के' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (पूषणा) पोषणकर्ता परमात्मा को (वयम्) हम उपासक (सख्याय) सखापन—साथी मित्र बनाने के लिये (स्वस्तये) संसार में सु-अस्तित्व—उच्च जीवन लाभ के लिये—अभ्युदय के लिये (वाजसातये) आत्मबल सम्भागी होने के लिये निःश्रेयस अमृतसुख के लिए "अमृतो अन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (हुवेम) अपने हृदय में आमन्त्रित करते—अर्चित करते हैं स्तुति में लाते हैं "ह्वयति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] "हुवेम ह्वयेम" [निरु० १०.२८]।

भावार्थः—सकल ऐश्वर्य वाले एवं पोषणकर्ता परमात्मा को अपना सखा बनाने के लिए—सखा बन जाने पर हमारी स्वस्ति संसार में अच्छा अस्तित्व-अभ्युदय और वाजसाति अमृत भोग प्राप्ति—निःश्रेयस प्राप्ति के लिये उसे आहूत—आमन्त्रित तथा अर्चित करते हैं स्तुति में लाते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य इष्टदेव परमात्मा जिसका है ऐसा अनन्य उपासक)॥

२०३. न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥

पदपाठः— न कि इन्द्र त्वत् उत्तमम् न ज्यायः अस्ति वृत्रहन् वृत्र हन् न कि एवम् यथा त्वम् ॥ १० ॥

अन्वयः—वृत्रहन्-इन्द्र त्वत् उत्तरं न किः ज्यायः-न-अस्ति यथा त्वं न किः-एवम् ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापनाशक एवं आवरक अन्धकार के नाशक परमात्मन्! (त्वत्) तुझ से (उत्तरं न किः) सूक्ष्म नहीं—तू सूक्ष्म से सूक्ष्म है ''अणोरणीयन्'' [कठो० २.२०] ''य आत्मनि तिष्ठन्'' [श० १४.६.७.३२] (ज्यायः-न-अस्ति) महान् नहीं—तू ही महान् से महान् ''महतो महान्'' [कठ० २.२०] ''त्वमस्य पारे रजसो व्योम्नः'' [ऋ० १.५२.१२] (यथा त्वं न किः-एवम्) जैसा—जितना तू इतना भी नहीं हैं—तेरे समान नहीं।

भावार्थः—परमात्मन्! तू सूक्ष्म से सूक्ष्म है तभी तो आत्मा में रहता हुआ वहाँ के पाप का नाश करता है, तू महान् आकाश के भी पार है तभी अन्धकार का नाशक है फिर तेरे समान किसी को क्या होना है ॥ १० ॥

दशम खण्ड

ऋषिः—त्रिशोकः (तृतीय ज्योति का ज्ञान जिसको है ऐसा उपासक)॥

२०४. **तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।**
समानमु प्र शंसिषम् ॥ १ ॥

पदपाठः— तरणिम् वः जनानाम् त्रदम् वाजस्य गोमतः समानम् सम् आनम् उ प्र शंसिषम् ॥ १ ॥

अन्वयः—वः-जनानाम् समानम्-उ तरणिम् गोमतः-वाजस्य त्रदम् प्रशंसिषम् ॥

पदार्थः—(वः-जनानाम्) तुम हम मनुष्यों के (समानम्-उ) समान ही (तरणिम्) तारक-उत्तारक ऊपर अध्यात्म क्षेत्र में उन्नायक (गोमतः-वाजस्य त्रदम्) इन्द्रियों सम्बन्धी भोग के चेष्टाकारक प्रेरक परमात्मा को ''त्रदि चेष्टायाम्'' [भ्वादि०] ''नुमभावश्छान्दसः'' (प्रशंसिषम्) प्रशंसित करें—स्तुति में लावें। ''वचनव्यत्ययः''।

भावार्थः—हे सांसारिक जनो! तुम सब और हम उपासकों का समान तारक उद्धारक कल्याण मार्ग मोक्ष की ओर ले जाने वाले और संसार में इन्द्रियभोग के प्रेरक नियामक परमात्मा की हम सब प्रशंसा स्तुति किया करें इतनी कृतज्ञता तो प्रकट करना हम सबका कर्त्तव्य होना चाहिए ॥ १ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण)॥

२०५. **असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।**
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

पदपाठः— **असृग्रम् इन्द्र ते गिरः प्रति त्वाम् उत् अहासत सजोषाः स जोषाः वृषभम् पतिम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्र ते सजोषाः-गिरः असृग्रम् त्वां-वृषभं पतिं प्रति उदहासत ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (ते) तेरे लिए (सजोषाः-गिरः) समान सेवनीय इष्टदेव जिनका है तुझ एक ही देव को लक्षित कर स्तुतियाँ (असृग्रम्) मैं सर्जित करता हूँ—सर्जन कर रहा हूँ—प्रेरित कर रहा हूँ, जो कि (त्वां-वृषभं पतिं प्रति) तुझ सुखपूर्वक पालक के प्रति (उदहासत) उछल-उछल कर जा रही हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे लिए मेरी स्तुतियाँ हैं तुझे ही एक लक्ष्य बनाकर निरन्तर मैं कर रहा हूँ जो तुझ सुखवर्षक पालक की ओर उछल उछल कर जा रही हैं अतः मुझ जैसे अनन्य स्तुतिकर्ता की स्तुतियों को स्वीकार कर मुझे अपना बना अपनी शरण दे ॥ २ ॥

ऋषिः—वत्सः (स्तुति वचन का वक्ता जन)॥

२०६. **सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।**
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

पदपाठः— **सुनीथः सु नीथः घ सः मर्त्यः यम् मरुतः यम् अर्यमा मित्राः मि त्राः पान्ति अद्रुहः अ द्रुहः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सः-मर्त्यः-घा सुनीथः यं मरुतः यम्-अर्यमा मित्रः अद्रुहः पान्ति ॥

पदार्थः—(सः-मर्त्यः-घा—सुनीथः) वह मनुष्य अवश्य प्रशस्य-सुमार्ग वाला—शोभन संसार पथिक है "सुनीथः प्रशस्यनाम" [निघं० २.२०] (यं मरुतः) जिसको मरुतों पापभावनाओं को मार देने वाले गुणों से युक्त इन्द्र-ऐश्वर्यवान् परमात्मा "मतुब्लोपश्छान्दसः" "इन्द्रो वै मरुतः" [गो० २.१.२३] (यम्-अर्यमा) जिसको आनन्दप्रद परमात्मा और (मित्रः) स्नेही साथी परमात्मा (अद्रुहः पान्ति) द्रोहभावरहित हितचिन्तक रूपों में वर्तमान परमात्मा रक्षा करते हैं।

भावार्थः—वह मनुष्य प्रशंसनीय सुपथगामी भाग्यशील है जिसके द्वारा उपासना से पापभावनानाशक ऐश्वर्यवान् आनन्दप्रद परमात्मा स्नेही परमात्मा अपना लिया गया है ॥ ३ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों ज्ञान ज्योति से सम्पन्न)॥

२०७. **यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।**
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥

पदपाठः— **यत् वीडौ इन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् परा भृतम् वसु स्पार्हम् तत् आ भर॥ ४॥**

अन्वयः—इन्द्र स्पार्हं वसु यत्-वीडौ यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् तत्-आभर॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (स्पार्हं वसु) स्पृहणीय वसु—वसा हुआ—व्यापा हुआ स्वरूप (यत्-वीडौ) जो बल वाले सूर्य जैसे पदार्थ में या सत्त्वगुण में (यत् स्थिरे) जो ठोस पृथिवी जैसे पिण्ड में अग्नि में या तमोगुण में (यत् पर्शाने) जो तरल मेघ जैसे पदार्थ में "पर्शानः-मेघनाम" [निघं० १.१०] "स्पृश धातोः आनच् प्रत्यय औणादिकः सकारलोपश्च छान्दसः" [उणा० २.९०] विद्युत् में या रजोगुण में (पराभृतम्) तूने अपना स्वरूप भरा हुआ है (तत्-आभर) उसे मेरे अन्दर भरपूर कर।

भावार्थः—परमात्मन्! तूने अपना अन्य में बसने वाला—व्यापने वाला जो स्वरूप सत्त्वगुण में रजोगुण में तमोगुण में तीनों गुणों में भरा है या सूर्य में विद्युत् में अग्नि में तीनों ज्योतियों में भरा है "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [कठो० ५.१५] या प्रकाशपिण्ड सूर्य में दोलायमान तरल पदार्थ मेघ में ठोस पदार्थ पृथिवी में भरा हुआ है इन सबको अपने व्यापन स्वरूप को मुझ उपासक के अन्दर भर दे॥४॥

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन कक्ष अध्यात्म कक्षा में रहने वाला)॥

२०८. **श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।**
आशिषे राधसे महे॥ ५॥

पदपाठः— **श्रुतम् वः वृत्रहन्तमम् वृत्र हन्तमम् प्र शर्द्धम् चर्षणीनाम् आशिषे आ शिषे राधसे महे॥ ५॥**

अन्वयः—वः-चर्षणीनाम् आशिषे महे राधसे श्रुतम् वृत्रहन्तमम् शर्धम् प्र॥

पदार्थः—(वः-चर्षणीनाम्) तुम मनुष्यों के "चर्षणयः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (आशिषे) इच्छा कामनापूर्ति के लिए तथा (महे राधसे) मोक्षरूप महान् ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये केवल इन्द्र परमात्मा है अतः उस (श्रुतम्) प्रसिद्ध विख्यात—(वृत्रहन्तमम्) पाप भावना नाशक—आवरक हन्ता—(शर्धम्) बलवान् इन्द्र परमात्मा को "मत्वर्थीयोऽ-कारश्छान्दसः" (प्र) प्रार्थित करो "उपसर्गाद् योग्यक्रियाध्याहारः"।

भावार्थः—मनुष्यो! तुम अपनी इच्छा कामनाओं की पूर्ति एवं महान् ऐश्वर्य सिद्धि अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिये पापभावनाविनाशक विध्वंसक बलवान् प्रसिद्ध

इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना किया करो ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है) ॥

२०९. अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
अरं शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

पदपाठः— अरम् ते इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः अरम् शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

अन्वयः—शूर-इन्द्र ते श्रवसे त्वावतः अरं गमेम शक्र परेमणि-अरम् ॥

पदार्थः—(शूर-इन्द्र) हे विक्रमशील या विविध प्रगतिशील परमात्मन्! (ते) तेरे (श्रवसे) श्रवणीय यश के लिये "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९] (त्वावतः) हम तेरे वाले—तेरे आश्रय वाले—तुझे अपना बना चुके हुए (अरं गमेम) समर्थ हो जावें, तथा (शक्र परेमणि-अरम्) हे परमात्मन्! तेरे परत्वे-पर-अभीष्ट मोक्षस्वरूप के निमित्त भी पूर्ण समर्थ हो सकें। "परेमणि-पर शब्दात्, भावे-इमनिच् प्रत्ययः" "पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा" [अष्टा० ५.१.१२१]।

भावार्थः—हे विक्रमशील परमात्मन्! संसार में फैले हुए तेरे सुनने योग्य विक्रम यश को अपने जीवन में धारणार्थ तुझे अपनाकर हम समर्थ होवें तथा तेरे पर—अभीष्ट मोक्षस्वरूप के निमित्त भी हम तेरे बने हुए पूर्ण समर्थ होवें यह हमारी आकांक्षा है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र सबको मित्ररूप से देखने वाला) ॥

२१०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥

पदपाठः— धानावन्तम् करम्भिणम् अपूपवन्तम् उक्थिनम् इन्द्र प्रातः जुषस्व नः ॥ ७ ॥

अन्वयः—इन्द्र नः धानावन्तम् करम्भिणम् अपूपवन्तम् उक्थिनम् प्रातः-जुषस्व ॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन्! तू (नः) हम मनुष्यों में से (धानावन्तम्) धारणाओं वाले "डुधाञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] एकाग्रमन वाले योगी को (करम्भिणम्) प्राण का आरम्भ नियन्त्रण करने वाले प्राणाभ्यासी को "प्राणो वाव कः" [जै० उ० ४.११.२.४] (अपूपवन्तम् प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी जन को "इन्द्रियमपूपः" [ऐ० २.२४] (उक्थिनम्) स्तुति वचन वाले को (प्रातः-जुषस्व) प्रातःकाल या सर्वप्रथम अवसर पर प्रेमपात्र बना—बनाता है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! यह हम जानते हैं कि जो हम मनुष्यों में धारणा

वाला एकाग्र मन वाला ध्यानी प्राणायामाभ्यासी इन्द्रियसंयमी स्तुति करने वाला होता है उसको प्रातःकाल या प्रथम अवसर पर तू प्रेमपात्र बनाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियों की प्रशस्त उक्तियों वाला तथा मन की प्रशस्त उक्ति वाला)॥

२११. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥

पदपाठः— अपाम् फेनेन नमुचेः न मुचेः शिरः इन्द्र उत् अवर्त्तयः
विश्वाः यत् अजयः स्पृधः ॥ ८ ॥

अन्वयः—इन्द्र अपाम् फेनेन नमुचेः शिरः उदवर्तयः विश्वाः स्पृधः यत् अजयः॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (अपाम्) मेरे अन्दर अपनी व्यापन शक्तियों के ''तद्यदब्रवीद् ब्रह्माभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं किञ्चेति तस्मादापोऽभवन्'' [गो० पू० १.२] (फेनेन) हिण्डोर—निरन्तर प्रवृद्ध वर्तन से (नमुचेः) न छोड़ने वाले—संसार में बाँधने वाले पाप को ''पाप्मा वै नमुचिः'' [शत० १२.७.३.४] (शिरः) राग को, बन्धन का प्रधान कारण राग है कहा भी है ''राग एव बन्धनं नान्यद् बन्धनमस्ति'' (उदवर्तयः) उद्वर्तित कर देता है—उखाड़ देता है—पृथक् कर देता है तथा (विश्वाः स्पृधः) सारी बाधक वृत्तियों को भी (यत् अजयः) जिससे जीत लेता—विनष्ट कर देता है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू अपने उपासक के अन्दर अपनी व्यापन शक्तियों का ऐसा चक्र चलाता है जिससे संसार में बन्धन के कारण राग को उखाड़ फेंकता है और अन्य समस्त बाधक वृत्तियों को भी छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय देव वाला)॥

२१२. इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः।
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

पदपाठः— इमे ते इन्द्र सोमाः सुतासः ये च सोत्वाः तेषाम् मत्स्व प्रभूवसो प्रभू वसो ॥ ९ ॥

अन्वयः—प्रभूवसो-इन्द्र ते इमे सोमाः सुतासः च ये सोत्वाः तेषां मत्स्व ॥

पदार्थः—(प्रभूवसो-इन्द्र) संसार में प्रभू—अपनी स्वामिनी शक्तियों के बसाने वाले परमात्मन्! (ते) तेरे लिये (इमे सोमाः सुतासः) ये उपासनारस हमारे द्वारा निष्पादित हैं (च) और (ये सोत्वाः) जो उपासनारस निष्पादन किये जाने वाले हैं

''कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः'' [अष्टा० ३.४.१४] 'त्वन् प्रत्ययः' (तेषां मत्स्व) उनके प्रतीकार में—उनसे हम पर प्रसन्न हो।

भावार्थः—संसार में अपनी स्वामिनी शक्तियों को बसाने वाले परमात्मन्! हमारे द्वारा जो उपासनारस निष्पन्न किए हैं या किये जाने वाले हैं उनके द्वारा तू हम पर प्रसन्न हो जिससे हम आगे-आगे बढ़ते हुए तेरे साथ समागम लाभ लेते रहें॥ ९॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)॥

२१३. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय॥ १०॥

पदपाठः— तुभ्यम् सुतासः सोमाः स्तीर्णम् बर्हिः विभावसो विभावसो स्तोतृभ्यः इन्द्र मृडय॥ १०॥

अन्वयः—विभावसो-इन्द्र तुभ्यम् सोमाः सुतासः बर्हिः-स्तीर्णम् स्तोतृभ्यः-मृडय॥

पदार्थः—(विभावसो-इन्द्र) विशेष दीप्ति को बसाने वाले परमात्मन्! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोमाः सुतासः) उपासनारस निष्पन्न किए हैं (बर्हिः-स्तीर्णम्) तेरे विराजने के लिये हृदयसदन भी विस्तृत है (स्तोतृभ्यः-मृडय) स्तोताओं के लिये सुख पहुँचा दे।

भावार्थः—विशेष दीप्तियों को बसाने फैलाने वाले परमात्मन्! तेरे लिये उपासनारस निष्पन्न किये हैं और तेरे विराजने को हृदयसदन भी विशाल बनाया हुआ है तू आ विराजमान हो हम-स्तोताओं को अपने समागम से आनन्दित कर॥ १०॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप छुटकारा चाहने वाला)॥

२१४. आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः॥ १॥

पदपाठः— आ वः इन्द्रम् कृविम् यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् शतक्रतुम् मंहिष्ठम् सिञ्चे इन्दुभिः॥ १॥

अन्वयः—आ वः वाजयन्तः शतक्रतुम् मंहिष्ठम् इन्द्रम् इन्दुभिः सिञ्चे कृविं यथा॥

पदार्थः—(आ) आ 'आगच्छत' 'उपसर्गाद् योग्यक्रियाऽध्याहारः' (वः) 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम-हम मिलकर सब (वाजयन्तः) अपने अमृत अन्न-भोग को चाहते हुए "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (शतक्रतुम्) बहुकर्मशक्तिवाले बहुप्रज्ञान वाले (मंहिष्ठम्) महान् से महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (इन्दुभिः) आर्द्र उपासनारसों से (सिञ्चे) "सिञ्चामहे" सीचें—भर दें "वचनत्यव्ययः" (कृविं यथा) जैसे खुदे हुए खत्ती नामक शुष्क कूप को अन्न से भर देते हैं पुनः उसमें से अन्न प्राप्त करने के लिये। "क्रिविर्दन्ती विकर्तनदन्ती" [नि० ६.३०] "कृविः कूपनाम" [निघं० २.२३] ऐसे अमृत अन्न पाने के लिये परमात्मा को उपासनारसों से भरते हैं। भरने में उपमा है।

भावार्थः—आओ उपासकजनो तुम और हम अपने योग्य अमृत अन्न भोग को प्राप्त करना चाहते हुए असंख्य ज्ञान कर्म वाले उपकार करने वाले महान् से महान् परमात्मा को अपने स्नेहपूर्ण उपासनारसों से भर दें जैसे खत्ती को अन्नों से भरते हैं पुनः अवसर पर अपने अन्नों को पाने के लिये ॥ १ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने)॥

२१५. **अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया।**
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥

पदपाठः— **अतः चित् इन्द्र नः उप आ याहि शतवाजया शत वाजया**
इषा सहस्रवाजया सहस्र वाजया ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्र अतः-चित् शतवाजया सहस्रवाजया इषा नः-उपायाहि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (अतः-चित्) इन्हीं हमारे आर्द्र उपासनारसों से हम पर कृपालु होकर (शतवाजया सहस्रवाजया) शतगुणित अमृतान्न भोग वाली सहस्रगुणित अमृतान्न भोग वाली—(इषा) अपनी गति-प्रवृत्ति क्रिया से (नः-उपायाहि) हमारे पास आ—प्राप्त हो।

भावार्थः—परमात्मन्! तू इन्हीं आर्द्र उपासनारसों से शतगुणित अमृत भोग वाली अपितु सहस्रगुणित भोग वाली अपनी प्रशस्त गति से हमारे पास आ—आता है तेरे प्रति हमारा उपासनारस निष्फल नहीं जाता है किन्तु शतगुणित अपितु सहस्रगुणित फल देने वाला हो जाता है ॥ २ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों आध्यात्मिक ज्योतियों से सम्पन्न विद्वान्[१])॥

२१६. **आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम्।**
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥

१. मन, आत्मा, परमात्मा "शुक्रं-शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः" [निघं० ८.१५]।

पदपाठः— **आ बुन्दम् वृत्रहा वृत्र हा ददे जातः पृच्छात् वि मातरम् के उग्राः के ह शृण्विरे॥ ३॥**

अन्वयः—वृत्रहा जातः बुन्दम् आ-ददे मातरं 'मातरः' विपृच्छत् के-उग्राः के ह शृण्विरे॥

पदार्थः—(वृत्रहा) पाप अज्ञान का नाशक परमात्मा "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (जातः) अन्तरात्मा साक्षात् हुआ (बुन्दम्) "येन बुन्दन्ति निशामयन्ति शृण्वन्ति जनाः स हिरण्ययः सारङ्गवाद्यो वेदः" जिससे ज्ञान सुनते हैं वह हिरण्यय सारङ्गवाद्य वेद को "बुन्दिर् निशामने श्रवणे" [भ्वादि०] "साधु बुन्दो हिरण्ययः" [ऋ० ८.७७.११—निरु० ६.३३] (आ-ददे) समन्तरूप से देता है (मातरं 'मातरः' विपृच्छत्) मान करने वाले सत्कार करने वाले उपासकों को विशेष रूप में उस वेदज्ञान से अर्चित करता है सुभूषित "पृच्छति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] जिस वेदज्ञान में (के-उग्राः) 'के च' कुछ ज्ञानविषय उग्रसूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं (के ह शृण्विरे) कुछेक संसारप्रसिद्ध सुने जाने वाले हैं।

भावार्थः—पाप अज्ञानान्धकार नाशक परमात्मा जब उपासकों—ऋषियों के अन्दर साक्षात् होता है वेदज्ञानरूप सारङ्गवाद्य को समन्तरूप से प्रदान कर प्रकाशित कर उन मान करने वाले उपासकों ऋषियों को अर्चित करता सुपूज्य बनाता है जिस वेद में कुछ ज्ञान सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और कुछेक लोक में सुने जाने वाले साधारण हैं संसार में जीवन चलाने वाले हैं॥ ३॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतनशील गमनशील विद्याविषय में गति रखनेवाला)॥

२१७. **बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।**
साधः कृण्वन्तमवसे॥ ४॥

पदपाठः— **बृबदुक्थम् बृबत् उक्थम् हवामहे सृप्रकरस्त्रम् सृप्र करस्त्रम् ऊतये साधः शृण्वन्तम् अवसे॥ ४॥**

अन्वयः—बृबदुक्थम् सृप्रकरस्नम् साधः कृण्वन्तम् ऊतये अवसे हवामहे॥

पदार्थः—(बृबदुक्थम्) बृहत्-महान् उक्थ-उपदेश वचन वेद जिसका है हमारे लिये अथवा बृबत्—वक्तव्य-स्तुतिवचन जिसके लिए हमारा है ऐसे "बृबदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्मा उक्थमिति वा" [निरु० ६.४] तथा (सृप्रकरस्नम्) सर्पणशील सर्वत्र व्याप्त बाहुएँ निर्माण पालनरूप गुण हैं जिसके ऐसे "सृप्लृ गतौ" [भ्वादि० ततो रक् उणा० २.१३] "करस्नौ बाहूनाम" [निघं० २.४] एवं (साधः कृण्वन्तम्) कर्मानुरूप फलसिद्धि करने वाले इन्द्र—परमात्मा को (ऊतये) संसार में रक्षा के लिये, तथा (अवसे) अपवर्गप्राप्ति के लिये (हमामहे) अपने आत्मा में बुलाते

हैं—उपासित करते हैं।

भावार्थः—जो परमात्मा हमें वेदरूप महान् उपदेश देता है या जिसके लिए हमारा स्तुतिवचन है तथा कर्मफल सिद्ध करने वाला है उसको संसार में अपनी रक्षार्थ और अपवर्गप्राप्ति के लिए अपनी आत्मा में बुलाते हैं—उपासित करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (वाणी—स्तुति को चाहने वाला परमात्मा)॥

२१८. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

पदपाठः— ऋजुनीती ऋजु नीती नः वरुणः मित्रः मि त्रः नयति विद्वान् अर्यमा देवैः सजोषाः स जोषाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—वरुणः मित्रः अर्यमा विद्वान् देवैः सजोषाः नः ऋजुनीती नयति ॥

पदार्थः—(वरुणः) वरणीय शरणप्रद (मित्रः) स्नेही सदा साथ रहने वाला (अर्यमा) आनन्ददाता स्वामी (विद्वान्) हमारे सब कर्मों को जानता हुआ (देवैः सजोषाः) अपने दिव्यगुणों के साथ समानरूप से सेवित होने वाला (नः) हमें (ऋजुनीती) सरल नयन क्रिया से (नयति) ले जाता है।

भावार्थः—परमात्मा हमारा सच्चा नेता हूँ, जो हमारा वरणीय, शरणदाता, स्नेही, सांथी, आनन्ददाता स्वामी है, वह अपने समस्त दिव्य गुणों के साथ युक्त हुआ हमारे अन्तर्भावों को जानता हुआ सरल नयन क्रिया से ले जाता है।

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः (ब्रह्म—परमात्मा में निरन्तर गति रखने वाला उपासक)॥

२१९. दूरादिहेव यत्सतोऽ रुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥

पदपाठः— दूरात् दुः आत् इह इव यत् सतः अरुणप्सुः अशिश्वितत् वि भानुम् विश्वथा अतनत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—अरुणप्सुः दूरात् इह-इव यत् सतः अशिश्वितत् विश्वथा भानुम् वि-अतनत् ॥

पदार्थः—(अरुणप्सुः) आरोचमानरूप जिसका है ऐसा इन्द्र—परमात्मा "प्सुः-रूपनाम" [निघं० ३.७] "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम्" [यजु० ३१.१८] (दूरात्) दृष्टिपथ से दूर होतें हुए (इह-इव) यहीं समीप सा होकर हृदय में या अन्तरात्मा में होकर (यत्) यदा—जब (सतः) सत्पुरुषों—उपासकों को (अशिश्वितत्) रञ्जित कर देता है "शिवता वर्णे" [भ्वादि०] तब (विश्वथा) सब प्रकार से (भानुम्) ज्ञानप्रकाश को (वि-अतनत्) विशेष रूप से फैलाता—

बढ़ाता है।

भावार्थः—सूर्यसमान आरोचमानरूप वाला परमात्मा दृष्टि से दूर होकर भी समीप सा हृदय में अन्तरात्मा में जब सत्पुरुषों उपासकों को रञ्जित कर देता है तब सब प्रकार ज्ञानप्रकाश को विशेषरूप से फैला देता है—बढ़ा देता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा (सबका मित्र या प्रज्वलित ध्यानाग्नि वाला)॥

२२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥

पदपाठः— आ नः मित्रा मि त्रा वरुणा घृतैः गव्यूतिम् गो यूतिम्
उक्षतम् मध्वा रजांꣳसि सुक्रतु सु क्रतुइति ॥ ७ ॥

अन्वयः—सुक्रतू-मित्रावरुणा नः गव्यूतिं घृतैः आ-उक्षतम् मध्वा रजांसि ॥

पदार्थः—(सुक्रतू-मित्रावरुणा) शोभन प्रज्ञा कर्म वाले मित्र-स्नेही सखारूप और वरुण-वरणीय शरणद आदि रूप परमात्मा (नः) हमारी गव्यूतिम् इन्द्रियों की गतिविधि को (घृतैः) ज्ञान प्रदीपन प्रवाहों से (आ-उक्षतम्) सीञ्च दो, तथा (मध्वा रजांसि) मधुर प्रवाहों से रञ्जनात्मक मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार स्थानों को सींच दो।

भावार्थः—परमात्मा शोभन ज्ञान कर्मवान् स्नेहीसखा रूप से इन्द्रियों को दीपन प्रवाहों से और वरुण-वरणीय शरणदानरूप मधुर प्रवाहों से मन बुद्धि चित्त अहङ्कार स्थानों को सींच देता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी)॥

२२१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

पदपाठः— उत् उ त्ये सुनवः गिरः काष्ठाः यज्ञेषु अत्नत वाश्राः
अभिज्ञु अभि ज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

अन्वयः—यज्ञेषु ये-उ गिरः सूनवः काष्ठाः-उद्-अत्नत वाश्राः-अभिज्ञु यातवे ॥

पदार्थः—(यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञों में (ये-उ) वे निश्चय (गिरः) वाणी—स्तुति के (सूनवः) प्रकट करने वाले—उच्चारण करने वाले उपासक स्तोता जन (काष्ठाः-उद्-अत्नत) दिशाओं में "काष्ठा दिक्" [निघं० १.६] अपनी-अपनी दिशाओं का विस्तार करते हैं (वाश्राः-अभिज्ञु यातवे) ये स्तोता स्तवन करते हुए अल्पवयस्क बालक जैसे घुटने के बल चलते हैं ऐसे परमात्मा की ओर जाने को समर्पण करते हैं।

भावार्थः—अध्यात्मयज्ञों में वाणी स्तुति को प्रकट करने वाले स्तोता अपनी दिशा-पद्धति या भूमि का विस्तार करते हैं पुनः स्तवन करते हुए अल्पायु वाले बालक जैसे चलने को घुटने के बल चलते हैं ऐसे परमात्मा के प्रति जाने के लिये अपना समर्पण करते हैं॥८॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश—करने वाला)॥

२२२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पाँसुले॥९॥

पदपाठः— इदम् विष्णुः वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् समूढम् सम् ऊढम् अस्य पांꣳसुले॥९॥

अन्वयः—विष्णुः इदं विचक्रमे त्रेधा-पदं-निदधे अस्य-पांसुले (रे) समूढम्॥

पदार्थः—(विष्णुः) व्यापक एवं तीनों लोकों में और तीनों से बाहर भी इन्द्र—परमात्मा ''विष्णुर्विषितो भवति'' ''विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा'' [नि० १२.१९] (इदं विचक्रमे) इस समस्त जगत् को स्वाधीन किए हुए हैं (त्रेधा-पदं-निदधे) तीन—तीनों स्थानों—द्युलोक में, अन्तरिक्ष में और पृथिवी लोक में अपना शक्तिस्वरूप रखता है (अस्य-पांसुले (रे) समूढम्) इसका स्वरूप इसके एकदेशी न होने से धूल राशि में पड़े पद की भाँति पद दृष्टिपथ नहीं होता, उसे तो योगी उपासक जन ही उस अन्तर्निहित स्वरूप को अपने आत्मा में देखता है।

भावार्थः—व्यापक ऐश्वर्यवान् परमात्मा इस सारे जगत् को अपनी व्याप्ति से स्वाधीन किए हुए है और द्युलोक अन्तरिक्ष पृथिवी लोक—तीनों लोकों में इसका स्वरूप निहित है वह धूलि में रखे पद की भाँति दृष्टि पथ नहीं होता, परन्तु उपासक जन अपनी अन्तरात्मा में निहित उसके पद-स्वरूप का साक्षात् करता है॥९॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से गमनशील प्रवेशशील)॥

२२३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।
अस्य रातौ सुतं पिब॥१॥

पदपाठः— अति इहि मन्युषाविणम् मन्यु साविनम् सुषुवांꣳसम् उप आ ईरय अस्य रातौ सुतम् पिब॥१॥

अन्वयः—मन्युषाविणम्-अतीहि सुषुवांसम्-उपेरय अस्य रातौ सुतं पिब॥

पदार्थः—(मन्युषाविणम्-अतीहि) 'मन्युं क्रोधं सुनोति यः स मन्युषावी तम्' मन्यु-क्रोध स्त्रवित करने वाले को तिरस्कृत कर (सुषुवांसम्-उपेरय) उपासनारसप्रस्त्रावी को ऊपर प्रेरित—उन्नत कर अपने समीप ले (अस्य रातौ) इस मुक्त सोमस्त्रावी के दान में—आत्मसमर्पण में (सुतं पिब) निष्पादित उपासनारस को स्वीकार कर।

भावार्थः—परमात्मन्! तू क्रोधस्त्रावी क्रोध करने वाले जन को तिरस्कृत करता है किन्तु उपासनारस स्त्रावी को तू ऊपर उठाता अपने पास लेता है यह तेरा स्वभाव है अतः मुझ इस उपासनारसस्त्रावी के आत्मसमर्पण प्रसङ्ग में निष्पन्न उपासनारस को तू स्वीकार करता है ॥ १ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है उपासना-परायण जन)॥

२२४. कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते।
तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

पदपाठः— कत् उ प्रचेतसे प्र चेतसे महे वचः देवाय शस्यते तत् इत् हि अस्य वर्द्धनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—प्रचेतसे महे देवाय कत्-उ वचः-शस्यते अस्य तत्-हि-वर्धनम् ॥

पदार्थः—(प्रचेतसे महे देवाय) प्रकृष्ट चेताः उपकार प्रज्ञान वाले ''चेतः प्रज्ञाननाम'' [निघं० ३.९] महान् इन्द्र—परमात्मदेव के लिये (कत्-उ वचः-शस्यते) कोई भी वचन स्तुतिरूप में कहता—देता है ''शंसु स्तुतौ'' [भ्वादि०] 'कर्तरि कर्मप्रत्ययो यक् छान्दसः' (अस्य) इस स्तुतिवचन प्रदाता का (तत्-हि-वर्धनम्) वह निश्चय वृद्धिनिमित्त हो जाता है।

भावार्थः—उपकारक ज्ञान वाले महान् परमात्मा के लिये जो भी वचन स्तुति निमित्त अर्पित करता है उसका वह निश्चय समृद्धिकारक बनता है ॥ २ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधा च (मेधा से गमन करने वाला तथा प्रिय है मेधा सङ्गमनीय परमात्मा जिसको ऐसा उपासक)॥

२२५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— ऊक्थम् च न शस्यमानम् न अगोः अ गोः रयिः आ चिकेत न गायत्रम् गीयमानम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अगोः न-उक्थम् च न शस्यमानम् न गीयमानं गायत्रम् रयिः आचिकेत ॥

पदार्थः—(अगोः) ''गौः स्तोता'' [निघं० ३.१६] 'अगोः-अस्तोता तद्विरुद्धो

नास्तिकः' नास्तिक जन के (न-उक्थम्) न प्रार्थनावचन को (च) और (न शस्यमानम्) न स्तुतिवचन को (न गीयमानं गायत्रम्) न गाने योग्य उपासना को (रयिः) 'रयिमान्' ऐश्वर्यवान् इन्द्र—परमात्मा "मतुब्लोपश्छान्दसः" (आचिकेत) मानता है—स्वीकार करता है।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा अपने विरोधी नास्तिक की दम्भ या प्रदर्शन या भय या लोभ से—की गई प्रार्थना, स्तुति, उपासना को कभी स्वीकार नहीं करता, वह परमात्मा के ऐश्वर्यस्वरूप का लाभ नहीं उठा सकता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२२६. इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरिवान्त्सुतानां सखा ॥ ४ ॥

१ २र ३ १ २ १ २र १ २र ३ १ २र १ २र
पदपाठः— इन्द्रः उक्थेभिः मन्दिष्ठः वाजानाम् च वाजपतिः वाज
३ १ २र ३ १ २ १ २र २ ३
पतिः हरिवान् सुतानाम् सखा स खा ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्द्र उक्थेभिः मन्दिष्ठः च वाजानाम् वाजपतिः सुतानां सखा हरिवान् ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (उक्थेभिः) प्रार्थना वचनों से (मन्दिष्ठः) हमें अतिशय से आनन्द देने वाला है या अत्यन्त अर्चनीय है "कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः" (च) और (वाजानाम्) समस्त वाजों—अन्न बल ज्ञानों का (वाजपतिः) अन्न बल ज्ञान का स्वामी है (सुतानां सखा) "सुतवताम्-अकारो मत्वर्थीयः" उपासनारस वाले उपासकों का मित्र (हरिवान्) दुःखों के हरण—अपहरण बल सुखों के हरण—आहरण धर्म से युक्त है।

भावार्थः—परमात्मा प्रार्थनावचनों से अत्यन्त आनन्दप्रद या अत्यन्त अर्चनीय, अन्न बल ज्ञानों का स्वामी, उपासनारस वाले उपासकों का मित्र दुःखापहरण सुखाहरण धर्म वाला है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेधातिथिप्रियमेधावृषी (मेधा से अतन गमनशील और प्रिय है मेधा जिसको ऐसे उपासक)॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
२२७. आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।
३ १ २ ३ १ २
महाँइव युवजानिः ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र ३ ३ २ १ २र २ ३ ३ २
पदपाठः— आ याहि उप नः सुतम् वाजेभिः मा हृणीयथाः महान्
३ १ २र १ २र ३
इव युवजानिः युव जानिः ॥ ५ ॥

अन्वयः—नः सुतम् वाजेभिः उपायाहि मा हृणीयथाः महान् युवजानि-इव ॥

पदार्थः—(नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस के प्रति—उसे स्वीकार करने के लिये (वाजेभिः) अपने अमृत सुख भोगों के साथ (उपायाहि) समीप आ (मा हृणीयथाः) मत क्रोध करना 'हृणीयते क्रुध्यतिकर्मा' [निघं० २.१३] (महान् युवजानि-इव) महान् युवति पत्नी वाले के समान।

भावार्थः—हे परमात्मन्! हमारे निष्पादित उपासनारस को प्राप्त हो, स्वीकार कर, अपने अमृत भोगों के साथ, तू हम पर कभी क्रोध नहीं करना जैसे युवति पत्नी वाला अपनी सुखभोग युवति पत्नी पर क्रोध नहीं करता। हम तेरे प्रति सदा उपासनारस प्रदान में समर्थ हैं॥५॥

ऋषिः—कौत्सो दुर्मित्रः (अतिशय से स्तोमों स्तुतियों को करने वाला—दुष्ट का भी मित्र—सर्व हितैषी)॥

२२८. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।
दीर्घं सुतं वाताप्याय॥६॥

पदपाठः— कदा वसो स्तोत्रम् हर्यते आ अव श्मशा रुधत् वारिति
दीर्घम्। सुतम् वाताप्याय वात आप्याय॥६॥

अन्वयः—वसो स्तोत्रं हर्यते श्मशा कदा-वाः-आ-अवरुधत् दीर्घं सुतं वाताप्याय॥

पदार्थः—(वसो) हे सबमें बसने वाले परमात्मन्! (स्तोत्रं हर्यते) मेरे स्तोत्र-स्तवन—स्तुतिवचन को चाहते हुए तुझ से प्रार्थना करता हूँ (श्मशा) यह आनन्दरस बहाने वाली धारा "श्मशा शु अ अश्नुत इति वाश्माश्नुन इति वा" [निरु० ५.१२] (कदा-वाः-आ-अवरुधत्) कब तक आनन्दरस को बन्द रखेगी (दीर्घं सुतं वाताप्याय) कभी से—बहुत काल से निष्पादित उपासनारस मुझ स्तोता की ओर लाने के लिए चालू होगी।

भावार्थः—सबमें बसने वाले परमात्मन्! तू स्तुतिवचन को चाहने वाला है, तेरे आनन्दरस को रोकने वाली धारा कब तक रुकी रहेगी? कभी तो चालू होगी ही क्योंकि दीर्घकाल से यह निष्पन्न उपासनारस तेरे प्रति समर्पण किया जा रहा है कभी तो मुझे अपना आनन्दरस प्रवाहित करने को प्रेरित करेगा॥६॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतनशील अध्यात्म में प्रवेशशील विद्वान्)॥

२२९. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु।
तवेदं सख्यमस्तृतम्॥७॥

पदपाठः— ब्राह्मणात् इन्द्र राधसः पिब सोमम् क्रतून् अनु तव
इदम् सख्यम् स ख्यम् अस्तृतम् अ स्तृतम्॥७॥

अन्वयः—**इन्द्र ब्राह्मणात्-राधसः ऋतून्-अनु सोमं पिब तव-इदं सख्यम्-अस्तृतम्॥**

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ब्राह्मणात्-राधसः) आराधना करने वाले ब्रह्मचिन्तक उपासक के पास से (ऋतून्-अनु) योगाङ्गों के अनुसार "ऋतवः अष्टावङ्गानि" [तै० ७.५.२५.१] या उद्गीथ—प्रणवों के साथ "ऋतवः-उद्गीथः" [ष० ३.१] (सोमं पिब) उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर (तव-इदं सख्यम्-अस्तृतम्) तेरा यह मित्रभाव अविनश्वर—स्थिर है। "स्तृणाति वधकर्मा" [निघं० २.१९]।

भावार्थः—परमात्मन्! तू आराधना करने वाले ब्राह्मण के पास से अष्टांग योग के अनुसार ओ३म् उद्गीथों के साथ उपासनारस को पान करता है यह तेरा मित्रभाव सदा स्थिर है रहा करे॥७॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन—गमन करने वाला जन)॥

२३०. वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
त्वं नो जिन्व सोमपाः॥ ८॥

पदपाठः— वयम् घ ते अपि स्मसि स्तोतारः इन्द्र गिर्वणः गिः वनः त्वम् नः जिन्व सोमपाः सोम पाः॥ ८॥

ऋषिः—विश्वामित्रो गाथिनोभीपाद उदलो वा (सर्वमित्र वेदाचार्य या सब भीतियों—भयों को पाद के नीचे करके ऊपर गतिशील दृढ़ निश्चयी)॥

२३१. एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम्॥ ९॥

पदपाठः— आ इन्द्र पृक्षु कासु चित् नृम्णम् तनूषु धेहि नः सत्राजित् सत्रा जित् उग्र पौंस्यम्॥ ९॥

अन्वयः—सत्राजित्-उग्र इन्द्र कासु चित् पृक्षु नः तनूषु पौंस्यम्-नृम्णम्-आ धेहि॥

पदार्थः—(सत्राजित्-उग्र) हे सत्यस्वरूप से जीतने वाले "सत्रा सत्यनाम" [निघं० ३.१०] या सबको वश में करने वाले "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४.६.१.२५] तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (कासु चित् पृक्षु) किन्हीं अभीष्ट संयमन क्रियाओं में उन्हें साधने के लिये "पृच् संयमने" [चुरादि०] (नः) हमारे (तनूषु) देहों में (पौंस्यम्-नृम्णम्-आ धेहि) आत्मीय बल—आत्मबल का आधान कर "नृम्णं बलनाम" [निघं० २.९]।

भावार्थः—सत्यस्वरूप सबको जीतने वाले या सब जड़ जङ्गम को स्ववश

करने वाले तेजस्वी ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! किन्हीं संयम क्रियाओं के—निमित्त हमारी देहों में आत्मबल का आधान कर जिससे अपने जीवन को संसार सम्पर्क से ऊँचे उठा तेरी ओर चलें॥ ९॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने)॥

२३२. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः॥ १०॥

पदपाठः— एव हि असि वीरयुः एव शूरः उत स्थिरः एव ते राध्यम् मनः॥ १०॥

अन्वयः—एवा हि-वीरयुः-असि एव शूरः उत स्थिरः एव ते मनः-राध्यम्॥

पदार्थः—(एवा हि-वीरयुः-असि) इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू हाँ अवश्य हमारे वीरों—प्राणों को चाहने वाला है "प्राणा वै वीराः" [श० ९.४.१०.२०] 'छन्दसि परेच्छायामपि' (एव) हाँ तू (शूरः) सर्वत्र गतिशील "शूरः शवतेर्गतिकर्मणः" [निरु० ४.२३] (उत) तथा (स्थिरः) एक रस (एव) हाँ (ते मनः-राध्यम्) तेरा मन—मनन ज्ञान प्रशंसनीय है या तेरी आराधना करने वाला मेरा मन है "कृत्यल्युटो बहुलम्" 'कर्तरि कर्मप्रत्ययः'।

भावार्थः—परमात्मन्! तू निश्चय हमारे प्राणों को चाहने वाला दीर्घ जीवन देने वाला है तू निश्चय जड जङ्गम में गति देने वाला स्वयं सर्वत्र गतिशील एकरस है हाँ तेरा मन—मननीय ज्ञान प्रशंसनीय है या हमारा मन तेरी आराधना करने का साधन है॥ १०॥

ऐन्द्र पर्व या काण्ड (ख)

अथ तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवताः—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

२३३. अभि त्वा शूर नोनुमोऽ दुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ १॥

पदपाठः— अभि त्वा शूर नोनुमः अ दुग्धाः इव धेनवः ईशानम् अस्य जगतः स्वर्दृशम् स्वः दृशम् ईशानम् इन्द्र तस्थुषः॥ १॥

अन्वयः—शूर इन्द्र अस्य जगतः-ईशानम् तस्थुषः-ईशानम् स्वर्दृशं-त्वा-अभि नोनुमः अदुग्धाः-धेनवः-इव॥

पदार्थः—(शूर) हे सर्वगत "शूरः शवतेर्गतिकर्मणः" [निरु० ४.१३] (इन्द्र) परमात्मन्! (अस्य जगतः-ईशानम्) इस जङ्गम के स्वामी (तस्थुषः-ईशानम्) स्थावर के स्वामी—(स्वर्दृशं-त्वा-अभि) अमृत सुख के दिखाने वाले तुझे लक्ष्य कर "स्वरिति सामभ्योऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोकोऽभवत्" [ष० १.५] "यदा वै स्वर्गत्याथामृतो भवति" [जैमि० १.३३२] "स्वर्देवा आगामामृता अभूम" [मै० १.११.३] (नोनुमः) पुनः-पुनः नमते हैं अपने को समर्पित करते हैं (अदुग्धाः-धेनवः-इव) जैसे विना दुही हुई—दूध भरी गौएं स्वामी के प्रति दूध देने को नमी जाती है ऐसे हम उपासक अपने उपासनारस को तुझ अपने स्वामी के प्रति अर्पित करने को नमे हुए हैं अथवा जैसे विना दुही हुई गायों के दूध दूहने के लिए दूध के इच्छुक जन नमन हो जाते हैं ऐसे तेरे अमृत सुख के इच्छुक हम आपकी ओर नमते जाते हैं।

भावार्थः—हे सर्वगत परमात्मन्! तुझ स्थावर जङ्गम के स्वामी तथा स्वः—मोक्ष के अमृतसुख दिखाने भुगाने वाले स्वामी की ओर दोहने योग्य गौएं जैसे स्वामी की ओर नमी जाती हैं ऐसे हम उपासनारस के समर्पणार्थ पुनः पुनः नमते हैं या जैसे दूध भरी गायों के प्रति दूध प्राप्त करने को जन गायों के प्रति नमते जाते हैं ऐसे तुझ अमृत—सुखपूर्ण के प्रति अमृत सुख पाने के लिए हम उपासक झुके जाते हैं॥ १॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अमृत भोग को धारण करने में समर्थ उपासक)॥

२३४. १ २र ३ १ २र ३१ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
२ ३१ २ ३ १ २ ३ २३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥ २॥

पदपाठः— २ २ २ १ २र ३ २ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २
त्वाम् इत् हि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः त्वाम् वृत्रेषु
३ १ २र २ ३ १ २र २ १ २र
इन्द्र सत्पतिम् सत् पतिम् नरः त्वाम् काष्ठासु
१ २र
अर्वतः॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र कारवः वाजस्य सातौ त्वाम्-इत्-हि हवामहे नरः वृत्रेषु त्वां सत्पतिम् अर्वतः काष्ठासु त्वाम्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (कारवः) हम तेरे स्तोता—वाणी से स्तुति करने वाले होते हुए "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] (वाजस्य सातौ) अमृत अन्न-मोक्ष के अमृत भोग की सम्भक्ति—प्राप्ति के निमित्त "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (त्वाम्-इत्-हि) केवल तुझे ही (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं—स्मरण करते हैं—उपासते हैं (नरः) हम नयनकर्ता—पथप्रदर्शक देवश्रेणी में होते

हुए—मन से प्रार्थना ध्यान चिन्तन करते हुए भी "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (वृत्रेषु) पाप प्रसङ्गों—पाप भावनाओं से बचे रहने के निमित्त "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (त्वां सत्पतिम्) तुझ सत्पुरुषों के रक्षक को स्मरण करते हैं (अर्वतः) तथा "अर्वन्तः प्रथमार्थे द्वितीया छान्दसी" हम आत्मा से उपासना—उसके सामीप्य को प्राप्त करने वाले परम पुरुषार्थ करने वाले उत्तमाधिकारी जीवन्मुक्त होते हुए भी "पुमांसोऽर्वन्तः" [श० ३.३.४.७] (काष्ठासु) संसार की या बन्धन की सीमाओं को पार करने में—प्रकृति के अन्तिम स्तरों को पार करने में "सुवर्गो वै लोकः काष्ठाः" [तै० १.३.६.५] (त्वाम्) तुझे स्मरण करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे अमृत भोग की प्राप्ति के निमित्त हम वाणी से तेरी स्तुति करते हुए या मन से प्रार्थना ध्यान करते हुए और ऊँचे उठे हुए देवश्रेणी में होते हुए या और ऊँचे उठे हुए आत्मभाव से उपासना करते हुए संसार की दुःखमय बन्धन सीमाओं को पार करने के लिये तुझ श्रेष्ठ जनों के रक्षक का आमन्त्रण—स्मरण करते हैं॥ २॥

ऋषिः—बालखिल्या ऋषयः (बालमात्र से पृथक् न होने वाले प्राणों के ज्ञानी अभ्यासी विद्वान्[1])॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
२३५. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥ ३॥

३ २ २ ३ १ १ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २र
पदपाठः— अभि प्र वः सुराधसम् सु राधसम् इन्द्रम् अर्च्च यथा
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २र ३ १ २
विदे यः जरितृभ्यः मघवा पुरूवसुः पुरु वसुः सहस्रेण
३ १ २र
इव शिक्षति॥ ३॥

अन्वयः—वः यथाविदे सुराधसम्-इन्द्रम् अभिप्रार्च यः पुरूवसुः-मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण-इव शिक्षति॥

पदार्थः—(वः) 'यूयम्' विभक्तिव्यत्ययः हे उपासको! तुम (यथाविदे) यथावत् ज्ञान के लिये "भावे क्विप् छान्दसः" (सुराधसम्-इन्द्रम्) अच्छे कल्याणकारी धन—मोक्षैश्वर्य वाले परमात्मा को (अभिप्रार्च) निरन्तर प्रकृष्ट रूप से अर्चित करो 'अर्चत' वचनव्यत्ययः (यः पुरूवसुः-मघवा) जो बहुत प्रकार से सबका वसाने वाला या बहुत धन वाला—धनदाता है (जरितृभ्यः) अपने स्तोताओं के लिये (सहस्रेण-इव) सहस्र प्रकार से 'इव पदपूरणः' (शिक्षति) देता है "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३.२०]।

भावार्थः—परमात्मा को यथार्थ जानने के लिये उस उत्तम अमृत भोगरूप धन वाले की भली प्रकार अर्चना करो जो बहुत धन वाला है और स्तोताओं को

---

१. "बालमात्रादु हेमे प्राणाः—असम्भिन्नाः" [श० ८.३.४.१]—तदधीते तद्वेद तद्धितप्रत्ययः।

सहस्र प्रकार से दान कर रहा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—नोधाः (नवन-स्तवन का धारक उपासक[1])॥

२३६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ ४ ॥

पदपाठः— तम् वः दस्मम् ऋतीषहम् ऋती सहम् वसोः मन्दानम् अन्धसः अभि वत्सम् न स्वसरेषु धेनवः इन्द्रम् गीर्भिः नवामहे ॥ ४ ॥

अन्वयः—वः ऋतीषहम् वसोः—अन्धसः मन्दानम् दस्मम् तम्-इन्द्रम् गीर्भिः अभि नवामहे स्वसरेषु धेनवः-वत्सं न ॥

पदार्थः—(वः) हे उपासको! तुम्हारे और हमारे (ऋतीषहम्) निन्दनीय भावनाओं को अभिभूत करने वाले (वसोः—अन्धसः) हमारे अन्दर वसे उपासनारस से (मन्दानम्) हम पर हर्षित होने वाले (दस्मम्) दर्शनीय "दस दर्शने" [चुरा०] (तम्-इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (गीर्भिः) वाणियों—स्तुतियों से (अभि नवामहे) तुम हम सब प्रशंसित करते हैं—उसका रुचि से स्मरण-चिन्तन करते हैं (स्वसरेषु धेनवः-वत्सं न) गोसदनों में आ जाने पर दूध देने वाली गायें बछड़े का जैसे रुचि से स्मरण करती हैं "स्वसराणि गृहाणि" [निघं० ३.४]।

भावार्थः—परमात्मा हम सब उपासकों से निन्दनीय भावनाओं को दूर करने वाला है और दर्शनीय है हमारे अन्दर बसे हुए उपासनारस से जब हम उसे अर्पित करते हैं तो वह हम पर हर्षित होते हैं तथा हमें भी हर्ष प्रदान करते हैं उस ऐसे परमात्मा को अपनी स्तुति वाणियों से प्रशंसित करते हैं—स्मरण करते हैं—जैसे दूध देने वाली गायें अपने बछड़े को गोसदनों में रुचि से स्मरण करती हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—कलिः प्रगाथः (वक्ता प्रकृष्ट वाणी वाला)॥

२३७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्॥ ५ ॥

पदपाठः— तरोभिः वः विदद्वसुम् विदत् वसुम् इन्द्रम् सबाधः स बाधः ऊतये बृहत् गायन्तः सुतसोमे सुत सोमे अध्वरे हुवे भरम् न कारिणम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—वः सबाधः ऊतये तरोभिः विदद्वसुम् भरं न कारिणम् सुतसोमे-अध्वरे बृहद्गायन्तः-हुवे ॥

---

१. "नोधा नवनं दधाति" [नि० ४.१६]।

पदार्थः—(वः) तुम और हम (सबाधः) 'बाधते या सा बाधा क्विबन्तः प्रयोग, तथा सह–सबाधः–बहुवचने' जब बाधने वाली वासना से पीड़ित हुए हो तो (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (तरोभिः) समस्त बलों से युक्त "तरः–बलनाम" [निघं० २.९] (विदद्वसुम्) प्राप्तामृत धन वाले (भरं न कारिणम्) भरण पोषण करने वाले उपकारी—उपकारकर्ता—परोपकारी की भाँति उस परमात्मा को (सुतसोमे–अध्वरे) निष्पादित उपासनारस वाले अध्यात्म यज्ञ के अवसर पर (बृहद्गायन्तः–हुवे) बहुत गान—हार्दिक भावना से गुणगान करते हुए अपने अन्दर आमन्त्रित करें 'हुवे–हुवेम' "वचनव्यत्ययः"।

भावार्थः—उपासक जब कभी वासना से बाधित हो तो अपनी रक्षा के लिये समस्त बलों से युक्त अमृत धन के स्वामी भरण पोषणकर्ता उपकारकारी जन की भाँति परमात्मा को निष्पादित उपासनारस वाले अध्यात्म यज्ञ के अवसर पर अपने अन्दर आमन्त्रित करें ॥ ५ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥

२३८. तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥

पदपाठः— तरणिः इत् सिषासति वाजम् पुरन्ध्या पुरम् ध्या युजा आ वः इन्द्रम् पुरुहूतम् पुरु हूतम् नमे गिरा नेमिम् तष्टा इव सुद्रुवम् सु द्रुवम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—युजा पुरन्ध्या तरणिः–इत् वाजं सिषासति आ वः पुरूहूतम्–इन्द्रम् गिरा नमे सुद्रुवम्–नेमि–तष्टा–इव ॥

पदार्थः—(युजा पुरन्ध्या) योगानुसार स्तुति के द्वारा "पुरन्ध्या–स्तुत्या" [निरु० १२.३०] (तरणिः–इत्) शीघ्र ही तीव्र संवेगी योगी "तरणि क्षिप्रनाम" [निघं० २.१५] (वाजं सिषासति) अमृतभोग को "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] सेवन करता है अतः (आ) 'आगच्छत' आओ (वः) तुम और हम (पुरूहूतम्–इन्द्रम्) बहुत प्रकार से या बहुत बार आमन्त्रणीय परमात्मा को (गिरा नमे) स्तुति से अपनी ओर नमावें 'नमामहे' 'वचनव्यत्ययः' (सुद्रुवम्–नेमि–तष्टा–इव) जैसे शोभन द्रु—काष्ठ वाले चक्र वलय—पहिये के घेरे को "द्रुपदे दारुपाद्वोः" [निघं० ४.१५] "वनस्पतयो वै द्रु" [तै० १.३.९.१] बढई अपनी ओर नमाता है।

भावार्थः—योगवाली बुद्धि के द्वारा शीघ्र ही तीव्रसंवेगी योगी परमात्मा के अमृतभोग को सेवन करता है, अतः आओ तुम हम बहुत प्रकार से या बहुत बार आमन्त्रित करने योग्य परमात्मा को स्तुति द्वारा अपनी ओर नमावें—आकर्षित करें जैसे बढई शोभन काष्ठ वाली चक्रनेमि—पहिये के घेरे को नमाता है—झुकाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से गमन प्रवेश करने वाला)॥

२३९. **पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः॥ ७॥**

पदपाठः— **पिब सुतस्य रसिनः मत्स्व नः इन्द्र गोमतः आपिः नः बोधि सधमाद्ये सद माद्ये वृधे अस्मान् अवन्तु ते धियः॥ ७॥**

अन्वयः—इन्द्र सुतस्य गोमतः रसिनः पिब नः-मत्स्व आपिः बोधि ते धियः सधमाद्ये वृधे-अस्मान्-अवन्तु॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (सुतस्य) निष्पादित—(गोमतः) स्तुति वाणी से युक्त—(रसिनः) मधुर उपासनाप्रवाह को 'द्वितीयार्थे षष्ठी' ''रसो वै मधु'' [श० ६.४.३.२] (पिब) पान कर—स्वीकार कर (नः-मत्स्व) हमें तृप्त कर ''मद तृप्तियोगे'' [चुरादि०] (आपिः) हमें प्राप्त होने वाला होकर (बोधि) बोध दे (ते धियः) तेरी बोध धारायें ''धीः प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९] (सधमाद्ये) साथ बर्ष सम्पादन योग्य अध्यात्म यज्ञ में (वृधे-अस्मान्-अवन्तु) वृद्धि—उन्नति के लिये हमें रक्षित करें।

भावार्थः—परमात्मन्! स्तुतियों से युक्त निष्पादित मधुर उपासनाप्रवाह का पान कर—स्वीकार कर, पुनः हमें तृप्त कर तू अध्यात्म यज्ञ में हमें प्राप्त हुआ बोध दे तेरी बोध धारायें उन्नति के लिए हमारी रक्षा करें॥ ७॥

ऋषिः—भर्गः (आत्मप्रतापवान्[१])॥

२४०. **त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥ ८॥**

पदपाठः— **त्वम् हि आ इहि चेरवे विदाः भगम् वसुत्तये उत् वावृषस्व मघवन् गविष्टये गो इष्टये उत् इन्द्र अश्वमिष्टये अश्वम् इष्टये॥ ८॥**

अन्वयः—मघवन्-इन्द्र चेरवे भगं विदा वसुत्तये गविष्टये उद्वावृषस्व अश्वम्-'अश्वस्य' इष्टये-उद्-उद्वावृषस्व॥

पदार्थः—(मघवन्-इन्द्र) हे प्रशस्त अध्यात्मैश्वर्यवान् परमात्मन्! तू (चेरवे) तेरे अध्यात्मधन के चयन करने वाले मुझ उपासक के लिये ''चिञ् चयने'' [स्वा०] ततः ''मीपीभ्यां रुः'' [उणा० ४.१०१] ''बाहुलकाद् रुः प्रत्ययः''

---

१. ''भृगुः-भृज्यमानो न देहे'' [निरु० ३.१७]।

(भगं विदा) अध्यात्म धन को प्राप्त करा, तथा (वसुत्तये) प्राणों की दान क्रिया प्राणायाम क्रिया के लिये ''प्राणा वै वसवः'' [तै० ३.२.३.३] (गविष्टये) इन्द्रियों की दृष्टि संयमरूप समर्पण यजन क्रिया के लिये ''इन्द्रियं वै वीर्यं गावः'' [श० ५.४.३.१] (उद्वावृषस्व) मुझे अधिक उल्लसित कर (अश्वम्–'अश्वस्य' इष्टये–उद्–उद्वावृषस्व) सर्व विषयव्यापी मन की ''षष्ठ्यर्थे द्वितीया'' इष्टि—निरोध क्रिया के लिये अधिक उल्लसित कर।

भावार्थः—हे प्रशस्त धन वाले परमात्मन्! तू अध्यात्म धन के चयन करने वाले मुझ उपासक के लिये अध्यात्म धन को प्राप्त करा तथा प्राणों की दान क्रिया के लिये—प्राणायाम में तेरा स्मरण हो इसलिये, इन्द्रियों की संयमरूप यजन क्रिया के लिये तथा सर्वविषयव्यापी मन की निरोध क्रिया के लिये मुझे अधिकाधिक उल्लसित कर॥ ८॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवताः—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धा मरुतः' (इन्द्र के मरुत—पाप को मारने वाले गुण[1])॥

२४१. न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते। अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः॥ ९॥

पदपाठः— न हि व चरमम् च न वसिष्ठः परिमंसते परि मंसते अस्माकम् अद्य अ द्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः॥ ९॥

अन्वयः—वसिष्ठः वः चरमं च न न हि परिमंसते अद्य सुते सचा विश्वे अस्माकं कामिनः मरुतः पिबन्तु॥

पदार्थः—(वसिष्ठः) परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक आत्मा (वः) तुम्हारे में से (चरमं च न) चरित—ज्ञान हुए गुण नाम को भी (न हि परिमंसते) नहीं त्याग कर मानता है ''परिपूर्वक मनधातोर्लडर्थे लेट्'' (अद्य) आज—अब (सुते) निष्पन्न उपासनारस को (सचा) मिलकर (विश्वे) सब (अस्माकं कामिनः) हम उपासकों के कल्याण की कामना करने वाले (मरुतः) इन्द्र—ऐश्वर्यवान्—परमात्मा के, वासनामारक गुण नाम देव ''इन्द्रो वै मरुतः'' [गो० २.१.२३] ''इन्द्रस्य वै मरुतः'' [कौ० ५.४] (पिबन्तु) पान करें—स्वीकार करें।

भावार्थः—परमात्मा में अत्यन्त बसा हुआ उपासक इन्द्र—परमात्मा के वासनामारक गुण नामों में से किसी ज्ञान गुण का भी परित्याग नहीं करता है अतः आज अवसर पर कल्याण चाहने वाले निष्पन्न उपासनारस को वे सब वासनामारक गुणनाम देव पान करें—स्वीकार करें॥ ९॥

---

१. ''इन्द्रस्य वै मरुतः'' [कौ० ५.४]।

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः (मेधावी का शिष्य उत्तम स्तुति वाणी वाला)॥

२४२. मा चिदन्यद् वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत॥ १०॥

पदपाठः— मा चित् अन्यत् अन् यत् वि शꣳसत सखायः स खायः मा रिषण्यत इन्द्रम् इत् स्तोत वृषणम् सचा सुते मुहुः उक्था च शꣳसत॥ १०॥

अन्वयः—सखायः अन्यत् मा विशंसत मा रिषण्यत वृषणम्-इन्द्रम्-इत् स्तोत सुते सचा च मुहुः-उक्था शंसत॥

पदार्थः—(सखायः) हे समान वृत्ति वाले उपासको! (अन्यत्) परमात्मा से भिन्न की (मा विशंसत) मत विशेष प्रशंसा करो (मा रिषण्यत) मत अपना हिंसन चाहो परमात्मा से भिन्न की प्रशंसा में आत्महिंसा है—"आत्मनो रिषणमिच्छत क्यजन्तः प्रयोगः" (वृषणम्-इन्द्रम्-इत् स्तोत) सुखवर्षक परमात्मा की स्तुति करो (सुते) निष्पन्न उपासनारस पर (सचा) साथ (च) और (मुहुः-उक्था) पुनः पुनः स्तुति वचनों का—से (शंसत) प्रशंसा करो।

भावार्थः—हे उपासक मित्रो! परमात्मा से भिन्न की उसके स्थान पर स्तुति न करो, उससे भिन्न की उपासना से अपनी हिंसा है—आत्मवञ्चना है उससे बचो सुखवर्षक परमात्मा की ही स्तुति करो निष्पन्न उपासनारस प्रसङ्ग में पुनः पुनः स्तुति वचन उच्चारित करो॥ १०॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—आङ्गिरसः पुरुहन्मा (अग्नि—परमात्माग्नि की विद्या में कुशल बहुत प्रकार से दोषों का हन्ता)॥

२४३. न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा॥ १॥

पदपाठः— न किः तम् कर्मणा नशत् यः चकार सदावृधम् सदा वृधम् इन्द्रम् न यज्ञैः विश्वगूर्त्तम् विश्व गूर्त्तम् ऋभ्वसम् अधृष्टम् अ धृष्टम् धृष्णुम् ओजसा॥ १॥

अन्वयः—तं कर्मणा न किः-नशत् यज्ञैः विश्वगूर्तम् ऋभ्वसम् अधृष्टम् ओजसा धृष्णुम् सदावृधम् इन्द्रं न यः-चकार॥

पदार्थः—(तं कर्मणा न किः-नशत्) उसे कर्म से कोई व्याप्त—प्राप्त—दबा नहीं सकता "नशत् व्याप्तिकर्मा" [निघं० २.१८] (यज्ञैः) अध्यात्म यज्ञों से (विश्वगूर्तम्) सर्वस्तुत्य—(ऋभ्वसम्) व्यापक महान्—(अधृष्टम्) अधर्षणीय (ओजसा धृष्णुम्) बल से सबका धर्षण करने वाले (सदावृधम्) सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं न) परमात्मा को सम्प्रति "न सम्प्रत्यर्थे" (यः-चकार) जो अपना कर लेता है।

भावार्थः—जो अपने जीवन में निरन्तर अध्यात्मयज्ञों के द्वारा विश्ववन्दनीय महान् अधर्षणीय बल वाले धर्षणशील सदा वर्धक परमात्मा को सम्प्रति अपना कर लेता है—अपना बना लेता है उसे कर्म से कोई व्याप्त नहीं कर सकता, पा नहीं सकता, दबा नहीं सकता॥ १ ॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (मेधा से अतन—गमन प्रवेशशील या पवित्र परमात्मा में अतन—गमन प्रवेशशील)॥

२४४. **य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः। सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः॥ २॥**

पदपाठः— **यः ऋते चित् अभिश्रिषः अभि श्रिषः पुरा जत्रुभ्यः आतृदः आ तृदः सन्धाता सम् धाता सन्धिम् सम् धिम् मघवा न पुरूवसुः पुरु वसुः निष्कर्त्ता निः कर्त्ता विह्रुतम् वि ह्रुतम् पुनरिति॥ २॥**

अन्वयः—यः—पुरूवसुः-मघवा जत्रुभ्यः आतृदः पुरा अभिश्रिषः-ऋतेचित् सन्धिं सन्धाता पुनः वि ह्रु तं 'विह्रुतम्' निष्कर्ता॥

भावार्थः—(यः—पुरूवसुः-मघवा) जो सबमें वसने वाला—सर्वव्यापक या सबको अपने अन्दर वसाने वाला रक्षक "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १.५२.४] इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा (जत्रुभ्यः) ग्रीवा जोड़ों से प्रधान अङ्ग या ऊपर के अङ्ग को (आतृदः पुरा) आतर्दन—हिंसक—टूटने से—अलग होने से पूर्व "तृदिर् हिंसायाम्" [रुधादि०] (अभिश्रिषः-ऋतेचित्) अभिश्लेष—चिपकाने या जोड़ने वाले साधन के विना भी—विना ही (सन्धिं सन्धाता) सन्धान योग्य—जोड़ने योग्य को जोड़ने की शक्ति रखने वाला है (पुनः) अपितु (वि ह्रु तं 'विह्रुतम्') प्रधान या ऊपर के अङ्ग से अन्य अलग अलग जो मांस आदि अङ्ग हैं उसे भी उसी भाँति उनके हिंसित होने से पूर्व (निष्कर्ता) प्रत्येक का निष्करण नियोजन—यथास्थान पर निष्ठापन करने वाला है वह उपास्य है।

भावार्थः—मानवदेह को लक्ष्य बनाकर परमात्मा का मनन प्रकार दर्शाया है कि संसार में शल्यचिकित्सक तो ग्रीवा आदि अङ्ग जब अपने जोड़ों से कट जाते

अलग हो जाते हैं तभी उसे जोड़ते हैं और जोड़ने के साधन से जोड़ते हैं परन्तु परमात्मा जो सबमें वसा हुआ सबको अपने में वसाने वाला है वह तो ग्रीवादि प्रधान या ऊपर के अङ्ग को अपने जोड़ वाले अङ्गों से अलग होने से पूर्व ही जोड़ने वाला है और विना जोड़ने वाले साधन के एक सन्धि जोड़ को दूसरे जोड़ से सन्धान—जोड़ने की शक्ति रखने वाला एवं एक हड्डी को दूसरी हड्डी से जोड़ता है फिर इसी प्रकार जो अवयव पृथक् होने वाले मांस आदि है उसे भी उसके कटने फटने से पूर्व विना जोड़ने वाले साधन के नियोजित करने यथास्थान निष्ठापित करने में समर्थ है उस ऐसी शरीरकृति को देख विचार—मनन कर उस परम शल्य चिकित्सक या परम शिल्पी की उपासना करनी चाहिए॥ २॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (मेधा से अतन—गमन प्रवेशशील या पवित्र परमात्मा में अतन—गमन प्रवेशशील)॥

२४५. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥ ३॥

पदपाठः— आ त्वा सहस्रम् आ शतम् युक्ताः रथे हिरण्यये ब्रह्मयुजः ब्रह्म युजः हर यः इन्द्र केशिनः वहन्तु सोमपीतये सोम पीतये॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र हिरण्यये रथे युक्ताः ब्रह्मयुजः केशिनः हरयः शतं सहस्रम् त्वा सोमपीतये आ-वहन्तु॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (हिरण्यये रथे) अमृतरूप रमणीय महान् मोक्षस्वरूप में "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० ६.२.७.२] "तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति रथस्य हैतद्रूपम्" [जै० २.१२] (युक्ताः) युक्त (ब्रह्मयुजः) तुझ परमात्मा से योग मेल कराने वाले (केशिनः) ज्ञान ज्योति वाले "केशः काशनाद्वा प्रकाशनाद्वा" [निरु० १२.२६] (हरयः) तुझे लाने वाले हमें ले जाने वाले गुणस्वरूप (शतं सहस्रम्) सौ एवं सहस्र बहुत—बहुत असंख्य (त्वा) तुझे (सोमपीतये) हमारे उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये (आ-वहन्तु) लावें शीघ्र लावें।

भावार्थः—परमात्मा के अमृत मोक्षधाम में वर्तमान उसके ज्योतिर्मय गुण स्वरूप सैकड़ों सहस्रों हैं जो हमें ब्रह्म से योग कराने वाले हैं वे परमात्मा को हम तक लाने वाले और हमें परमात्मा तक ले जाने वाले हैं वे हमारे उपासनारस को पान कराने स्वीकार कराने के लिये हमारे तक पहुँचावें॥ ३॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबसे स्नेह करने वाला सबका मित्र)॥

२४६. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नि येमु रिन्न पाशिनोऽ ति धन्वेव ताँ इहि॥ ४॥

पदपाठः— **आ मन्द्रैः इन्द्र हरिभिः याहि मयूररोमभिः मयूर रोमभिः मा त्वा के चित् नि येमुः इत् न पाशिनः अति धन्व इव तान् इहि ॥ ४ ॥**

अन्वयः—इन्द्र मयूररोमभिः-मन्द्रैः-हरिभिः आयाहि केचित् त्वा मा नियेमुः-इत् पाशिनः-न धन्व-इव तान्-अतीहि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (मयूररोमभिः-मन्द्रैः-हरिभिः) मोरपक्षी के रोमसदृश कमनीय अपनी रश्मियों—ज्ञान ज्योतियों के द्वारा जो तेरे स्वरूप को प्रदर्शित करती हुई तुझे हमारे तक लाने वाली और हमें तेरे तक पहुँचाने वाली हैं उनके द्वारा (आयाहि) समन्तरूप से हमें प्राप्त हों (केचित्) कोई अन्य (त्वा मा नियेमुः-इत्) तुझे न निरुद्ध करें—रोकें (पाशिनः-न) पाशवाले व्याध जनों की भाँति (धन्व-इव तान्-अतीहि) अथवा वे बाधक आ भी खड़े हों तो उन्हें मरुदेशों की भाँति अतिक्रमण करके प्राप्त हो।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू मोरपक्षी की चमक दमक सुन्दर रोम समान कमनीय ज्ञान रश्मियाँ—ज्ञान ज्योतियाँ जो कि तेरे स्वरूप को प्रदर्शित करती हुई हमारे तक तुझे लाने वाली और हमें तेरे तक पहुँचाने—आकर्शित करने वाली हैं उनके द्वारा समन्तरूप से प्राप्त हो। परमात्मन्! इस तेरे आगमन को रोकने वाला कोई भी दोष हमारे अन्दर उत्पन्न न हो जो हमारी सद्वृत्तियों को व्याध के समान रोककर तुझे हमारे तक पहुँचने में बाधक हो जावे, तथा हमारे से अन्यों द्वारा प्रसिद्ध किए अन्यथा दोषों को तू मरुप्रेदश के समान शुष्कनीरस समझकर लाङ्घकर प्राप्त हो ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मज्ञान में अत्यधिक प्रगतिशील उपासक)॥

२४७. **त्वमङ्ग प्र शंꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **त्वम् अङ्ग प्र शंꣳसिषः देवः शविष्ठ मर्त्यम् न त्वत् अन्यः अन् यः मघवन् अस्ति मर्डिता इन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—अङ्ग शविष्ठ-इन्द्र त्वं मर्त्यं प्रशंसिषः मघवन् त्वत्-अन्यः-मर्डिता देवः न-अस्ति ते वचः-ब्रवीमि ॥

पदार्थः—(अङ्ग शविष्ठ-इन्द्र त्वम्) अच्छा तो फिर "अङ्ग पुनरर्थे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] निर्विघ्न तेरी उपासना में मैं लगा रहूँ अति बलवान् परमात्मन्! तू (मर्त्यं प्रशंसिषः) मुझ मरणधर्मी जन्म मरण में आने वाले अमृत होने के इच्छुक उपासक को प्रशंसित कर—प्रोत्साहन दे—आन्तरिक बल दे 'लिडर्थे लेट् प्रयोगः'

(मघवन्) हे प्रशस्त धन वाले—प्रशस्त धन देने वाले! (त्वत्-अन्यः-मर्डिता देवः) तुझसे भिन्न सुखदाता देव (न-अस्ति) नहीं है (ते वचः-ब्रवीमि) तेरे लिये मैं स्तुति वचन बोलता हूँ निवेदन करता हूँ।

भावार्थः—अच्छा! तो मेरे प्रिय बलवन् परमात्मन्! मैं निर्विघ्न तेरी उपासना में लगा रहूँ अतः तू मुझ इस जन्ममरणधर्मी उपासक को जो मैं अमृत होने की आकांक्षा करता हूँ मुझे प्रोत्साहन दे मुझ में आन्तरिक बल दे, हे प्रशस्त धन देने वाले तेरे से भिन्न कोई सुखदाता देव नहीं है मैं तेरी स्तुति करता हूँ—तुझसे निवेदन करता हूँ॥ ५॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायक मेधा वाला पौरुष बुद्धि वाला उपासक)॥

२४८. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणी-धृतिः॥ ६॥

पदपाठः— त्वम् इन्द्र यशाः असि ऋजीषी शवसः पतिः त्वम् वृत्राणि हꣳसि अप्रतीनि अ प्रतीनि एकः इत् पुरु अनुत्तः अ नुत्तः चर्षणीधृतिः चर्षणि धृतिः॥ ६॥

अन्वयः—इन्द्र त्वं यशाः ऋजीषी शवसः-पतिः असि त्वम् एकः-इत् पुर्वनुत्तः चर्षणीधृतिः अप्रतीनि वृत्राणि हंसि॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (त्वम्) (यशाः) 'महायशाः' महा यशस्वी "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२.३] (ऋजीषी) 'ऋज्यते-इति-ऋज् क्विप्कर्मणि-ऋजमीषते गुणार्जनं प्रेरयति' "ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु" [भ्वादि०] इति तच्छीलः—"सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" [अष्टा० ९३.२.६८] सद्गुण सञ्चय को प्रेरित करने वाला (शवसः-पतिः) समस्त बलों का भण्डार या स्वामी "शवो बलम्" [निघं० १.१२] (असि) है (त्वम्) तू (एकः-इत्) अकेला ही (पुर्वनुत्तः) बहुतों से न तिरस्कार होने वाला या बहुत अप्रहित (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों का धारक मनुष्यों का सहारा उनके (अप्रतीनि वृत्राणि) घोर पाप वृत्तों—पाप संकल्पों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.२.५.७] (हंसि) नष्ट करता है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू महायशस्वी है वस्तु वस्तु में तेरा यशस्वी नाम प्रतिभासित हो रहा है, तू उपासक में गुणसमूह को प्रेरित करने वाला समस्त बलों का स्वामी है तू अकेला भी अनेक विरोधी तत्त्वों से पराभूत न होने वाला है मनुष्यों का धारक—सहारा है, उनके गहरे पाप संकल्पों को भी नष्ट करता है॥ ६॥

ऋषिः—मेधातिथिः—(पवित्र गुणों में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥

२४९. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ ७॥

पदपाठः— इन्द्रम् इत् देवतातये इन्द्रम् प्रयति प्र यति अध्वरे इन्द्रम् समीके सम् ईके वनिनः हवामहे इन्द्रम् धनस्य सातये ॥ ७ ॥

अन्वयः—वनिनः देवतातये इन्द्रम्-इत् हवामहे प्रयति-अध्वरे इन्द्रम् समीके इन्द्रम् धनस्य सातये इन्द्रम् ॥

पदार्थः—(वनिनः) हम परमात्मा का सम्भजन करने वाले उपासक (देवतातये) देव भाव को प्राप्त होने के लिये—ऊँचे ज्ञानवान् होने के लिये "सर्वदेवात् तातिल्" [अष्टा० ४.४.१४२] (इन्द्रम्-इत्) परमात्मा को अवश्य (हवामहे) स्मरण करें (प्रयति-अध्वरे) पुनः सम्प्रति चलते हुए या आरम्भ किये जाते हुए अध्यात्म यज्ञ के निमित्त—(इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें (समीके) पश्चात् संघर्ष दैववृत्तियों और आसुरवृत्तियों के संग्राम में "समीके संग्रामनाम" [निघं० २.२७] (इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें (धनस्य सातये) आनन्द भोगधन की सम्भक्ति—प्राप्ति के लिये (इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें।

भावार्थः—हम परमात्मा के सम्यक् सेवन करने वाले उपासक प्रथम अपने को देव—ऊँचे ज्ञानी बनाने के लिये परमात्मा का स्मरण करें पुनः ऊँचे ज्ञानी बनकर अध्यात्म यज्ञ प्रारम्भ करने पर उसका स्मरण करें पश्चात् आरम्भ किए अध्यात्म यज्ञ में दैववृत्तियों और आसुर वृत्तियों के कदाचित् संग्राम होने पर परमात्मा का स्मरण करें, फिर अध्यात्म आनन्द भोग धन की प्राप्ति के लिये परमात्मा का स्मरण करें। इस प्रकार जीवन के उत्कर्षार्थ इन चार प्रसङ्गों पर परमात्मा का स्मरण हमारा भारी सहायक है ॥ ७ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः—(पवित्र गुणों में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥

२५०. **इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥ ८ ॥**

पदपाठः— इमाः उ त्वा पुरूवसो पुरु वसो गिरः वर्द्धन्तु याः मम पावकवर्णाः पावक वर्णाः शुचयः विपश्चितः विपः चितः अभि स्तोमैः अनूषत ॥ ८ ॥

अन्वयः—पुरूवसो याः-इमाः-उ गिरः त्वा मम वर्धन्तु पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूषत ॥

पदार्थः—(पुरूवसो) हे बहुत गुण रूप से हमारे अन्दर वसने तथा अपने अन्दर वसाने वाले परमात्मन्! (याः-इमाः-उ गिरः) जो ये प्रस्तुत स्तुतियाँ "स्तुतयो गिरः" [निरु० १.११] (त्वा) तेरे प्रति समर्पित हैं वे (मम वर्धन्तु) 'अस्मान्' "विभक्तिवचनव्यत्ययः" [निरु० १.११] अतः सहयोगी (पावकवर्णाः) अग्निवर्ण

वाले तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) मेधावी उपासको! "विपश्चितः—मेधाविनः" [निघं० ३.१५] (स्तोमैः) स्तुति समूहों से (अभ्यनूषत) पुनः पुनः स्तुत करो—परमात्मा की स्तुति करो।

भावार्थः—परमात्मन्! ये स्तुतियाँ जो तेरे प्रति समर्पित की जा रही है हमें बढ़ावें ऊँचे स्तर पर ले जावें—ले जाती हैं अतः मेरे साथी तेजस्वी पवित्र मेधावी उपासको! तुम उसकी स्तुति करो॥ ८॥

ऋषिः—मेधातिथिः—(पवित्र गुणों में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥

२५१. **उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव॥ ९॥**

पदपाठः— **उत् उ त्ये मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः ईरते सत्राजितः सत्रा जितः धनसाः धन साः अक्षितोतयः अक्षित ऊतयः वाजयन्तः रथाः इव॥ ९॥**

अन्वयः—त्ये-उ मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः उदीरते सत्राजितः धनसाः अक्षितोतयः वाजयन्तः रथाः-इव॥

पदार्थः—(त्ये-उ) वे फिर (मधुमत्तमाः) अधिक मधुर (गिरः) स्तुतियाँ (स्तोमासः) प्रशंसावचन (उदीरते) उच्चरित हो रही हैं (सत्राजितः) समस्त संघर्षों को जीतने वाले (धनसाः) अमृत धन वाले (अक्षितोतयः) अक्षीण रक्षा वाले परमात्मा के (वाजयन्तः) अमृत भोग को चाहते हुए (रथाः-इव) रथों की निरन्तर गति की भाँति गति करते हैं—आगे बढ़ा करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! हमारी स्तुतियाँ और प्रशंसा वचन बहुत मधुर निरन्तर उच्चरित हो रहे हैं ये संघर्षों को जीतने वाली अमृत भोगों वाली क्षीण न होने वाली रक्षायुक्त हैं अपने अमृत भोग को चाहते हुए रथों की भाँति तेज गति करते हैं॥ ९॥

ऋषिः—देवातिथिः (उपास्य देव के लिये—उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर गति प्रवृत्तिशील मेधावी का शिष्य)॥

२५२. **यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥ १०॥**

पदपाठः— **यथा गौरः अपा कृतम् तृष्यन् एति अव इरिणम्। आपित्वे नः प्रपित्वे तूयम् आ गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥ १०॥**

अन्वयः—यथा गौरः तृष्यन् इरिणम् अपाकृतम् अव-एति आपित्वे प्रपित्वे नः तूयम्-आगहि कण्वेषु सचा सुपिब॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (गौरः) मृग-जाङ्गल पशु—हरिण (तृष्यन्) प्यासा

हुआ प्यास को प्राप्त हुआ (इरिणम्) तृणादि ओषधियों से अनाच्छादित निर्मल दृश्यमान "इरिणः—अपरता अस्मादोषधय इति वा" [निरु० ९.६] (अपाकृतम्) 'अद्भिः कृतम्' जल भरे स्थान—जलाशय को (अव-एति) अवतरित होता दौड़कर प्राप्त होता है ऐसे (आपित्वे प्रपित्वे) बन्धुत्व प्राप्त हो जाने पर (नः) हमें (तूयम्-आगहि) हे परमात्मन्! शीघ्र "तूयं क्षिप्रनाम" [निघं० २.१५] प्राप्त हो (कण्वेषु सचा सुपिब) हम मेधावी उपासकों के अन्दर साक्षात् होकर हमारे साथ सम्बन्ध करके सुन्दर उपासनारस का पान कर स्वीकार कर।

भावार्थः—हे परमात्मन्! जैसे प्यासा हरिण तृणादि से न ढके जलाशय को शीघ्र प्राप्त होता है ऐसे ही तू हमारे बन्धुत्व प्राप्त होने पर हम मेधावी उपासकों में प्राप्त साक्षात् होकर हमारे साथ बन्धुत्व कर हमारे सुन्दर उपासनारस को पिया कर—स्वीकार किया कर॥ १०॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—भर्गः (ज्ञान से जाज्वल्यमान तेजस्वी)॥

२५३. ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। भगं न हि
२र ३१ २ ३ २३१२ ३ १ २
त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि॥ १॥

पदपाठः— ३ २ ३ २ ३ ३ ३ १ २र १ २ ३ १ २
शग्धि उ सु शचीपते शची पते इन्द्र विश्वाभिः ऊतिभिः
१२र २ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२र १२र
भगम् न हि त्वा यशसम् वसुविदम् वसु विदम् अनु
३ १ २र
शूर चरामसि॥ १॥

अन्वयः—शचीपते-शूर-इन्द्र विश्वाभिः-ऊतिभिः उ सुशग्धि यशसं त्वा हि भगं न वसुविदम् अनुचरामसि॥

पदार्थः—(शचीपते-शूर-इन्द्र) हे प्रज्ञानों-प्रज्ञावालों चेतनों के तथा कर्मी-कर्म वालों-क्रिया वाले जड़ पदार्थों के स्वामिन् "शची प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] "शची कर्मनाम" [निघं० २.१] पराक्रमी परमात्मन्! तू (विश्वाभिः-ऊतिभिः) समस्त रक्षाविधियों से प्रज्ञानरक्षाओं क्रियारक्षाओं से (उ) निश्चय (सुशग्धि) रक्षा करने में सुशक्त है पूर्ण समर्थ है (यशसं त्वा हि भगं न) यश वाले जिससे हमारा यश हो ऐसे तुझ ऐश्वर्यस्वरूप के समान (वसुविदम्) अध्यात्मधन—मोक्षैश्वर्य के प्राप्त कराने वाले के प्रति (अनुचरामसि) अपने को समर्पित करते हैं।

भावार्थः—हे प्रज्ञानो प्रज्ञा वालों चेतनों तथा कर्म कलापों क्रिया वाले जड़ पदार्थों के स्वामिन् परमवीर पराक्रमी परमात्मन्! तू अपनी समस्त रक्षाओं प्रज्ञान रक्षाओं या क्रिया रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ है, ऐश्वर्यवान् के समान तुझ यशोरूप यश के निमित्तरूप मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने वाले के प्रति हम

अपना समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—रेभः काश्यपः (कश्यप-मन निरोध में कुशल स्तोता[1])॥

२५४. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

पदपाठः— याः इन्द्र भुजः आभरः आ अभरः स्वर्वान् असुरेभ्यः अ सुरेभ्यः स्तोतारम् इत् मघवन् अस्य वर्द्धय ये च त्वेइति वृक्तबर्हिषः वृक्त बर्हिषः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्र स्वर्वान् असुरेभ्यः याः-भुजः-आभरः अस्य मघवन् स्तोतारम्-इत् वर्धय च ये त्वे वृक्तबर्हिषः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (स्वर्वान्) हमारे लिये विशेष सुख वाला—सुख देने वाला होता हुआ (असुरेभ्यः) 'असुरान् अतिरिच्य ल्यब्लोपे पञ्चम्युपसंख्यानम्' मानवता से अस्त व्यस्त हुये जनों को अतिरिक्त कर—छोड़कर वञ्चित कर (याः-भुजः-आभरः) जो भोगने वाली सामग्री 'भुज् धातोः क्विप् कर्मणि' समन्तरूप से तू धारण कर रहा है (अस्य) 'आभिः' ''विभक्तिवचनव्यत्ययः' इन भोगसामग्रियों से (मघवन्) धनवन् परमात्मन्! (स्तोतारम्-इत्) 'स्तोतॄन्-वचनव्यत्ययः' अवश्य स्तोताओं को (वर्धय) बढ़ा (च) और (ये) जो (त्वे) 'त्वे-एके' कोई (वृक्तबर्हिषः) प्रवृक्त प्रकट किया ज्ञान अग्नि जिन्होंने ''बर्हिः—अग्निः'' [निरु० ८.९] ऐसे असुरविरोधी देववृत्ति वाले हैं।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू असुरों को वञ्चित कर ले जो प्रशस्त भोग सामग्रियाँ धारण करता है उनके विपरीत ज्ञानाग्नि प्रदीप्त करने वाले स्तोता जन हैं उनको उनसे प्रवृद्ध करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि जिसके अन्दर है[2])॥ देवताः—इन्द्रो मित्रार्यमवरुणरूपः (मित्र अर्यमा वरुण रूप इन्द्र परमात्मा)॥

२५५. प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो। वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥

पदपाठः— प्र मित्राय मि त्राय प्र अर्यम्णे सचथ्यम् ऋतावसो ऋत वसो वरुथ्ये वरुणे छन्दयम् वचः स्तोत्रम् राजसु गायत ॥ ३ ॥

---

१. ''रेभः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।

२. ''जमदग्नयः प्रज्वलिताग्नयः'' [निरु० ७.२५]।

अन्वयः—ऋतावसो मित्राय सचथ्यं छन्द्यं वचः स्तोत्रं प्र-गायत वरुथ्ये वरुणे प्र राजसु॥

पदार्थः—(ऋतावसो) हे सत्य धन वाले उपासक! (मित्राय) मित्र रूप स्नेही साथी इन्द्र परमात्मा के लिये (सचथ्यं छन्द्यं वचः स्तोत्रम्) सेवनीय—उपासनीय, स्वाभिप्रायानुरूप वचन स्तुति समूह को (प्र–गायत) 'गाय' प्रकृष्ट रूप से गा–बोल (वरुथ्ये वरुणे प्र) घर में रहने, हृदय में वसने वाले वरुणरूप—वरने योग्य इन्द्र–परमात्मा के निमित्त भी वैसे ही प्रकृष्ट गान कर (राजसु) इन राजरूपों के लिये प्रकृष्ट गान कर।

भावार्थः—हे उपासक तू मित्ररूप स्नेही संसारव्यापी वरुणरूप वरणीय हृदय वासी परमात्मा अर्यमा रूप आश्रयदाता मोक्षवासी परमात्मा के लिये उपासनीय स्वाभिप्रायानुरूप स्तुति वचन का उत्तम गान कर॥ ३॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन प्रवेश शील उपासक)॥

२५६. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥ ४॥

पदपाठः— अभि त्वा पूर्वपीतये पूर्व पीतये इन्द्रम् स्तोमेभिः आयवः समीचीनासः सम् ईचीनासः ऋभवः ऋ भवः सम् अस्वरन् रुद्राः गृणन्त पूर्व्यम्॥ ४॥

अन्वयः—इन्द्र त्वा पूर्व्यम्-अभि पूर्वपीतये स्तोमेभिः आयवः समीचीनासः-ऋभवः समस्वरन् रुद्राः-गृणन्त॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वा पूर्व्यम्–अभि) तुझे पूर्वतः सृष्टि से पूर्व में भी वर्तमान या श्रेष्ठों में श्रेष्ठ को लक्ष्य कर (पूर्वपीतये) तेरे उपासक अपने अपने उपासनारस को पृथक् पान कराने स्वीकराने के लिये या तेरा दर्शनामृत प्रथम पान करने के लिये (स्तोमेभिः) विविध स्तुति वचनों से (आयवः) जन प्रार्थी जन "आयवः–मनुष्याः" [निघं० २.३] (समीचीनासः–ऋभवः) सम्यक् गति वाले मेधावी लोग "ऋभुः–मेधाविनाम" [निघं० ३.१५] (समस्वरन्) संशब्द–संस्तवन निरन्तर स्तुत करते हैं (रुद्राः–गृणन्त) स्तोता—उपासक जन "रुद्रः स्तोता" [निघं० ३.१६] गुणगण वर्णन करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तुझे अपने अपने उपासनारस को पृथक् पान कराने स्वीकराने के लिये या तेरे दर्शनामृत प्रथम पान करने के लिए तेरे तीन प्रकार मानने वाले प्रार्थी जन सम्यग् गति वाले स्तुति करने वाले मेधावी महानुभाव तथा उपासना करने वाले जीवन्मुक्त तेरी अर्चना गुणगान करते हैं हम भी उन्हीं तीनों में तेरी उपासना कर अमृत को सेवन करे॥ ४॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और पौरुष बुद्धि वाला उपासक)॥

२५७. प्र व इन्द्राय बृहते मरु ते ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥

पदपाठः— प्र वः इन्द्राय बृहते मरुतः ब्रह्म अर्च्चत वृत्रम् हनति वृत्रहा वृत्र हा शतक्रतुः शत क्रतुः वज्रेण शतपर्वणा शत पर्वणा ॥ ५ ॥

अन्वयः—मरुतः बृहते-इन्द्राय ब्रह्म प्र-अर्चत शतक्रतुः वृत्रहा शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हनति ॥

पदार्थः—(मरुतः) हे अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक जनो! ''मरुतः-ऋत्विङ्नामसु'' [निघं० ३.१८] (वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम (बृहते-इन्द्राय) महान् परमात्मा के लिये (ब्रह्म प्र-अर्चत) तुम्हारे पास तुम्हारी बड़ी वस्तु मन है उस मन को अर्पित करो ''मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म'' [श० १४.६.१०.१२] (शतक्रतुः) बहुत प्रज्ञान और कर्म वाला (वृत्रहा) पापनाशक (शतपर्वणा वज्रेण) बहुत शक्तिसन्धान वाले शासन के ''वज्रः शासः'' [श० ३.८.१.५] (वृत्रं हनति) पाप को नष्ट करता है ''शपो लुगभावश्छान्दसः''।

भावार्थः—अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासको! महान् परमात्मा के लिये अपने मन को अर्पित करो। वह बहुत प्रज्ञान कर्म वाला पाप संकल्प का नाशक, बहुत शक्ति सन्धान वाले शासन से तुम्हारे मन के पाप को नष्ट कर देता है॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और पौरुष बुद्धि वाला उपासक)॥

२५८. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिर जनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥

पदपाठः— बृहत् इन्द्राय गायत मरुतः वृत्रहन्तमम् वृत्र हन्तमम् येन ज्योतिः अजनयन् ऋतावृधः ऋत वृधः देवम् देवाय जागृवि ॥ ६ ॥

अन्वयः—मरुतः वृत्रहन्तमं देवाय-इन्द्राय बृहत्-गायत येन ऋतावृधः देवं जागृवि ज्योतिः-अजनयन् ॥

पदार्थः—(मरुतः) अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक जनो! (वृत्रहन्तमं देवाय-इन्द्राय) वृत्रहन्ता-पापाज्ञाननाशक परमात्मदेव के लिये ''वृत्रहन्तमम्''-

सुपां सुपो भवन्तीतिङेस्थानेऽम् (बृहत्-गायत) बड़ा भारी गुणगान करो (येन) जिस गुणगान कर्म से (ऋतावृधः) परमात्मज्ञान को बढ़ाने वाले (देवं जागृवि ज्योतिः-अजनयन्) दिव्य-अलौकिक जागरणशील ज्योति को अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं।

भावार्थः—हे अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासको! पापाज्ञाननाशक परमात्मदेव के लिये भारी गुणगान करो जिससे कि परमात्मज्ञान के बढ़ाने वाले दिव्य जागने वाली-निरन्तर चेताने वाली ज्योति को अपने अन्दर प्रकट किया करते हैं॥ ६॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

२५९. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ ७॥

पदपाठः— इन्द्र क्रतुम् नः आ भर पिता पुत्रेभ्यः पुत् त्रेभ्यः यथा शिक्ष नः अस्मिन् पुरुहूत पुरु हूत यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि॥ ७॥

अन्वयः—पुरुहूत इन्द्र पुत्रेभ्यः-यथा पिता नः क्रतुम्-आभर नः-शिक्ष अस्मिन्-यामनि जीवाः-ज्योतिः-अशीमहि॥

पदार्थः—(पुरुहूत) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (पुत्रेभ्यः-यथा पिता) पुत्रों के लिये पिता की भाँति (नः क्रतुम्-आभर) हमारे लिये प्रज्ञान ऊँचा ज्ञान सौंप दे (नः-शिक्ष) हमें सर्वस्व गुण सम्पत्ति दे "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३.२०] (अस्मिन्-यामनि इस संसारयात्रा में (जीवाः-ज्योतिः-अशीमहि) हम जीते हुए तेरी ज्योति को प्राप्त कर सकें।

भावार्थः—परमात्मन्! तू हमारा पिता है हम तेरे पुत्र हैं, पुत्रों के अन्दर जैसा पिता अपने प्रज्ञान को भरता है और सर्वस्व का प्रदान करता है तू भी प्रज्ञान भर दे तथा गुणसम्पत्ति का भी प्रदान कर दे अतः इस संसारयात्रा में मार्ग निर्देश कर कि हम कैसे संसार के भिन्न भिन्न मार्गों में चलें, यहाँ जीवन की सफलता प्राप्त करें, पुनः जीते हुए तेरी अनुपम ज्योति को पा सकें॥ ७॥

ऋषिः—रेभः (परमात्मा के गुणगान करने वाला स्तोता)॥

२६०. मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये। त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक्॥ ८॥

पदपाठः— मा नः इन्द्र परा वृणक् भव नः सधमाद्ये सध माद्ये त्वम् नः ऊती त्वम् इत् नः आप्यम् मा नः इन्द्र परा वृणक्॥ ८॥

अन्वयः—इन्द्र नः-मा परावृणक् नः-सधमाद्ये भव त्वं नः-ऊती त्वं-इत् नः-आप्यम् इन्द्र नः-मा परावृणक् ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मान्! (नः-मा परावृणक्) हमें नहीं त्यागना ''वृजी'' वर्जने (रुधादि०) (नः-सधमाद्ये भव) हमारे साथ हर्ष सदन-हृदय में विराजमान हो (त्वं नः-ऊती) तू हमारी रक्षा शरण है (त्वं-इत्) तू ही (नः-आप्यम्) हमारा प्राप्त करने योग्य मित्र है (इन्द्र) परमात्मन्! (नः-मा परावृणक्) हाँ हमें मत त्यागना।

भावार्थः—परमात्मान्! तू हमें न त्याग अपितु हमारे साथ हर्षसदन हृदयसदन में विराजमान हो, क्योंकि तू हमारा रक्षाशरण है और तू ही प्राप्तव्य सहज मित्र है अतः आशा है तू हमें न त्याग सकेगा ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से निरन्तर परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला)॥

२६१. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्रस्त्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥

पदपाठः— वयम् घ त्वा सुतावन्तः आपः न वृक्तबर्हिषः वृक्त बर्हिषः पवित्रस्य प्रस्त्रवणेषु प्र स्त्रवणेषु वृत्रहन् वृत्र हन् परि स्तोतारः आसते ॥ ९ ॥

अन्वयः—वृत्रहन् पवित्रस्य वयं घ सुतावन्तः वृक्तबर्हिषः स्तोतारः त्वा परि-आसते 'आस्महे' आपः-न प्रस्त्रवणेषु ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्) हे पापनाशक परमात्मन्! (पवित्रस्य) तुझ पवित्र के (वयं घ सुतावन्तः) हम तो निष्पन्न उपासनारस वाले (वृक्तबर्हिषः) प्रकटित ज्ञानाग्निवाले (स्तोतारः) उपासक (त्वा परि-आसते 'आस्महे') तुझे—तेरे आश्रय बैठते हैं (आपः-न प्रस्त्रवणेषु) जल जैसे प्रस्त्रवण स्थानों—जलाशयों—तड़ाग सरोवर—सागरों में परिनिष्ठित हो जाते हैं—आश्रित होते हैं। 'प्रस्त्रवन्ति जलानि येषु तानि प्रस्त्रवणानि'।

भावार्थः—पापनाशक परमात्मन्! तुझ पवित्रकारक के हम स्तुतिकर्ता उपासनारस निष्पादक प्रकटित ज्ञानाग्नि वाले तेरे आश्रय में परिनिष्ठित हैं जैसे विविध जल अपने गिरने वाले तडाग—सरोवर—समुद्र—जलाशयों में परिनिष्ठित हो जाते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न को धारण करने वाला)॥

२६२. यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु। यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥

पदपाठः— यत् इन्द्र नाहुषीषु आ ओजः नृम्णम् च कृष्टिषु यत् वा पञ्च क्षितीनाम् द्युम्नम् आ भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥

अन्वयः—इन्द्र नाहुषीषु कृष्टिषु यत्-ओजः-नृम्णं च-आ-'आभर' यत्-वा क्षितीनां पञ्च द्युम्नं सत्रा विश्वानि पौंस्या आभर॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन्! (नाहुषीषु कृष्टिषु) 'णह बन्धने' [दिवादि०] ''नह्यति बध्नातीति नह्-क्विपि नह् रागः, तं रागमोषति दहतीति नहुष् क्विपि यद्वा नहो रागस्य-उषो दग्धा दहनकर्ता नहुषः'' ''इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'' [अष्टा० ३.१.१३५] इति कप्रत्यये—उषः, राग बन्धन को जला चुकाने वाली कृष्टि—विशिष्ट देह, प्रशस्त देहों—जीवन्मुक्तों में ''कृष्टयः-विकृष्टदेहाः'' [निरु० १०.२२] ''कृष्टशब्दान्मतुबर्थीय-इकारश्छान्दसः प्रशस्तार्थे'' (यत्-ओजः-नृम्णं च-आ-'आभर') जो तेज—आत्मिक प्रताप ''ओजो वा अग्निः'' [काठ० २०.१०] और बल—परमात्मतेज ''तेजोऽसि तेजो मयि......'' [यजु० १९.९] होता है 'नृम्णं बलनाम' [निघं० २.९] उसे आभरित कर (यत्-वा) और जो (क्षितीनाम्) अज्ञान का क्षय करने वाले ज्ञानियों—मुमुक्षुओं का (पञ्च) ज्ञानपञ्चक—ज्ञानेन्द्रियविषयक भोग प्रवृत्ति से रहित संयम शुभ ज्ञान वैराग्य परमात्म दर्शन है तथा (द्युम्नम्) यश है ''द्युम्नं द्योततेर्यशो.....'' [निरु० ५.५] (सत्रा) सत्य—सदाचार ''सत्रा सत्यनाम'' [निघं० ३.१०] (विश्वानि पौंस्या) समस्त पौरुष—साहस—कर्मेन्द्रियों और शरीर पर पूर्णाधिकार हुआ करते हैं उन्हें (आभर) हमारे अन्दर आभरित कर।

भावार्थः—परमात्मन्! राग बन्धन को दग्ध करने वाली—आकृष्ट या प्रशस्त देहवाली जीवन्मुक्त आत्माओं में जो आत्मबल और परमात्म तेज है और जो अज्ञान का क्षय करने वाले ज्ञानी मुमुक्षुओं में ज्ञानपञ्चक—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का शुभज्ञान तथा यश एवं संयम सदाचार समस्त साहस है उन्हें हम उपासकों के अन्दर भर—भरता है यह तेरी बड़ी कृपा है॥ १०॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में प्रवेशशील)॥

२६३. सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता। वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः॥ १॥

पदपाठः— सत्यम् इत्था वृषा इत् असि वृषजूतिः वृष जूतिः नः अविता वृषा हि उग्र शृण्विषे परावति वृषा उ अर्वावति श्रुतः॥ १॥

अन्वयः—उग्र वृषाजूतिः नः-अविता वृषा हि परावति शृण्विषे वृषा-उ-अर्वावति श्रुतः इत्था सत्यं वृषा-इत्-असि॥

पदार्थः—(उग्र) हे तेजस्विन् परमात्मन्! (वृषाजूतिः) समस्त सुखवर्षकों की गति—आश्रय हुआ ''जूतिर्गतिः'' [निरु० १०.२८] (नः-अविता) तू हमारा

रक्षक हो (वृषा हि परावति शृण्विषे) सुखवर्षक ही दूर काल में सुना जाएगा "सामर्थ्याद् भविष्यत्कालाभिधायी प्रयोगः" "परावतः परागतात्" [निरु० ७.२६] (वृषा-उ-अर्वावति श्रुतः) सुखवर्षक ही सुना गया अभी—हाल निकट भूत में भी सुना गया है (इत्था सत्यं वृषा-इत्-असि) इस हेतु "था हतौ च छन्दसि" [अष्टा० ५.३.२६] तू ही सच्चा सुखवर्षक है।

भावार्थः—हे तेजस्वी परमात्मन्! तू सुखवर्षकों की गति—आश्रयभूमि है कोई भी सुखवर्षक आपके विना स्वतन्त्र सुखवर्षक नहीं, तू हमारा रक्षक है, तू सुखवर्षक अभी सुना गया है और आगे भी सुखवर्षक सुना जाएगा इस हेतु तू ही सच्चा सुखवर्षक है, तुझे छोड़कर कहाँ जावें॥ १॥

ऋषिः—रेभः (परमात्मगुणों का कथनकर्ता स्तोता)॥

२६४. यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्। अतस्त्वा गीर्भिर्द्युमदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति॥ २॥

पदपाठः— यत् शक्र असि परावति यत् अर्वावति वृत्रहन् वृत्र हन् अतः त्वा गीर्भिः द्युगत् द्यु गत् इन्द्र केशिभिः सुतावान् आ विवासति॥ २॥

अन्वयः—वृत्रहन्-शक्र द्युमत्-इन्द्र केशिभिः यद् परावति यद् अर्वावति असि अतः त्वा सुतावान् गीर्भिः आविवासति॥

पदार्थः—(वृत्रहन्-शक्र द्युमत्-इन्द्र) हे पापनाशक सर्वशक्तिसम्पन्न स्वप्रकाशस्वरूप को प्राप्त परमात्मन्! तू (केशिभिः) ज्ञानरश्मियुक्त बलों से (यद्) जबकि (परावति) दूरस्थान में (यद्) 'यदा' जबकि (अर्वावति) निकट स्थान में भी (असि) है (अतः) इस कारण (त्वा) तुझे (सुतावान्) उपासनारस वाला उपासक (गीर्भिः) स्तुतियों से (आविवासति) समन्तरूप से उपासित करता है।

भावार्थः—हे पापनाशक सर्वशक्तिमन् स्वप्रकाशरूप में विराजमान परमात्मन्! तू अपने ज्ञानरश्मियुक्त बलों से दूर देश में दूर से दूर देश में भी और निकट देश में—निकट से निकट देश में भी है, इस कारण उपासनारस वाला उपासक अपनी स्तुतियों द्वारा सुगमता से तेरी उपासना करता है॥ २॥

ऋषिः—वत्सः (परमात्मगुणों का वक्ता)॥

२६५. अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्। इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा॥ ३॥

पदपाठः— अभि वः वीरम् अन्धसः मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् वि चेतसम् इन्द्रम् नाम श्रुत्यम् शाकिनम् वचः यथा॥ ३॥

अन्वयः—वः अन्धसः-मदेषु वीरे विचेतसम् श्रुत्यं शाकिनम् इन्द्रं नाम महागिरा वचः-यथा अभिगाय॥

पदार्थः—(वः) हे उपासको! तुम "विभक्तिव्यत्ययः" (अन्धसः-मदेषु) आध्यानीय—समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के "अन्धः-आध्यानीयं भवति" [निरु० ५.१] अर्चन स्तवन—उपासन प्रसङ्गों में "मदति-अर्चतिकर्मा" [निरु० ३.१४] (वीरे विचेतसम्) पराक्रमी विशेष ज्ञानी—सर्वज्ञ—(श्रुत्यं शाकिनम्) श्रवणीय शक्तिमान् (इन्द्रं नाम) प्रसिद्ध परमात्मा का (महागिरा) महत्त्व वाली स्तुति से (वचः-यथा) 'यथा वचः' वाणी शक्ति के अनुसार (अभिगाय) 'गायत वचनव्यत्ययः' निरन्तर गान—गुणगान करो।

भावार्थः—हे उपासको! तुम समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा से स्तुतिप्रसङ्गों में पराक्रमी सर्वज्ञ श्रोतव्य सर्वशक्तिमान्—प्रसिद्ध परमात्मा का खुलकर गुणगान करो जब तक वाणीशक्ति गा सके॥ २॥

ऋषिः—शंयुर्भरद्वाजो वा (कल्याणकर परमात्मा को प्राप्त होने वाला या अमृत अन्न को अपने में भरने वाला)॥

२६६. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ ४॥

पदपाठः—इन्द्र त्रिधातु त्रि धातु शरणम् त्रिवरूथम् त्रि वरूथम् स्वस्तये सु अस्तये छर्दिः यच्छ मघवद्भ्यः च मह्यम् च यावय दिद्युम् एभ्यः॥ ४॥

अन्वयः—इन्द्र स्वस्तये मह्यं च एभ्यः-मघवद्भ्यःच त्रिधातु त्रिवरूथम् छर्दिः शरणम् यच्छ दिद्युं यावय॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (स्वस्तये) सु—अस्ति—शोभन अस्तित्व—स्वात्मस्वरूप के लिये—अपने अविनाशी—अमरत्व के लिये "स्वस्तीत्यविनाशि नाम। सु अस्तीति" [निरु० ३.२१] "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८.३.४] (मह्यं च) मुझ उपासक के लिये और (एभ्यः-मघवद्भ्यः-च) इन मेरे जैसे अध्यात्म यज्ञ वालों के लिये भी "यज्ञेन मघवान्" [तै० सं० ४.४.८.१] (त्रिधातु) तीन—स्तुति प्रार्थना उपासनारूप परमात्मा को धारण करने के साधनों से सिद्ध होने वाले—(त्रिवरूथम्) तृतीय धाम मोक्ष में "तृतीय धामन्नध्यैरयन्त" [यजु० ३२.१०] यथा "त्रिनाके त्रिदिवे" "तीयप्रत्ययलोपश्छान्दसः" [ऋ० ९.११३.९—त्रिदिवे तृतीयायां दिवि त्रिनाके तृतीयनाके सायणः] इन्द्रिय मन आत्मा में से आत्मा द्वारा वरणीय मोक्षधाम में, अथवा तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर का वारण निवृत्ति जिसमें हो जावे ऐसे

मोक्षधाम "तस्मादु हैतत्पुरां परमं रूपं यत् त्रिपुरम्" [श० ६.३.३.२५] (छर्दिः) सन्दीप्त प्रकाशमय—ज्योतिर्मय—"छृदी सन्दीपने" [चुरादि०] (शरणम्) घर को "शरणं गृहनाम" [निघं० ३.४] (यच्छ) "प्रयच्छ" प्रदान कर (दिद्युं यावय) हमारे अध्यात्मयज्ञ को खण्डित करने वाले "दिद्युद् द्यतेः" [निरु० १०.७] वाण या वज्र के समान वाधक पाप या वासनाभाव को "इषवो दिद्यवः" [श० ५.४.२.२] "दिद्युद् वज्र नाम" [निघं० २.१०] पृथक् कर दें।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू स्वस्ति—शोभन अस्तित्व—अपने स्वरूप अमरत्व के लिये मुझ उपासक के लिये और मेरे जैसे अध्यात्म यज्ञ—सेवन करनेवाले उपासकों के लिये भी तुझे धारण कराने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना से सिद्ध होनेवाले तृतीयधाम तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों का वारण निवृत्ति जिसमें हो जाती है ऐसे मोक्षरूप ज्योतिर्मय घर को अपनी कृपा से प्रदान कर जहाँ हम अपने अमर स्वरूप से तुझ परम अमृत का आनन्द प्राप्त कर सकें अतः अध्यात्म यज्ञ को खण्डित करने वाले वाण या वज्र के समान किसी वाधक पाप या वासनाभाव को दूर रख॥४॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधा वाला उपासक)॥

२६७. श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥५॥

पदपाठः— श्रायन्तः इव सूर्यम् विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत वसूनि जातः जनिमानि ओजसा प्रति भागम् न दीधिमः॥५॥

अन्वयः—सूर्यम्-इव श्रायन्त इन्द्रस्य विश्वा जाता जनिमानि-इत्-उ भक्षत ओजसा भागं न प्रति दीधिमः॥

पदार्थः—(सूर्यम्-इव श्रायन्त) "लुप्तोपमानोपमेयालङ्कारः" रश्मियाँ—किरणें सूर्य को आश्रित हुई रहती हैं ऐसे उपासक इन्द्र—परमात्मा को आश्रित हुए रहते हैं (इन्द्रस्य) परमात्मा के (विश्वा जाता जनिमानि-इत्-उ) सब प्रसिद्ध हुए—साक्षात् हुए प्रसिद्ध होने वाले—साक्षात् होने वाले अमृत भोगधनों को भी अवश्य (भक्षत) सेवन करने के इच्छुक हुए—प्राप्त करने के इच्छुक हुए "भज् धातोः सन्नन्तात् 'अतच्' औणादिकः कर्तरि, अभ्यासाभावो जसो लुक् च छान्दसः" "भक्षत—विभक्षमाणाः" [निरु० ६.८] (ओजसा भागं न प्रति दीधिमः) अपने आत्मिक बल तेज—स्वस्वरूप से उस भजनीय इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को हम साक्षात् अनुभव करें "ते वयं भागमनुध्यायाम" [निरु० ६.८]।

भावार्थः—जैसे किरणें सूर्य को आश्रित हुई रहती हैं ऐसे उपासक मोक्ष में परमात्मा को आश्रित होकर रहते हैं, परमात्मा के समस्त साक्षात् हुए और होने वाले अमृत भोग धनों को भी अवश्य सेवन करने के इच्छुक हुए—प्राप्त करने के

इच्छुक हुए अपने आत्मिक बल—तेज—स्वरूप से उस भजनीय परमात्मा को हम उपासक साक्षात् अनुभव करें—कर सकें॥५॥

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत वासनाओं का हन्ता)॥

२६८. न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः। एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते॥६॥

पदपाठः— न सीम् अदेवः अ देवः आप तत् इषम् दीर्घायो दीर्घ आयो मर्त्यः एतग्वा एत ग्वा चित् यः एतशः युयोजते इन्द्रः हरीइति युयोजते॥६॥

अन्वयः—दीर्घायः मर्त्यः अदेवः तत्-इषम् सीं न-आप यः-एतग्वा एतशः-चित्-युजोजते इन्द्रः-हरी-युयोजते॥

पदार्थः—(दीर्घायः) आयु आय जिसका है ऐसा आयुधन—जीवनधन "आयु वैं धीर्घनम्" [प्रा० १३.११.१२] केवल जीना ही अभीष्ट मानने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (अदेवः) परमात्मदेव जिसका इष्ट नहीं वह नास्तिक (तत्-इषम्) उस एषणीय अमृत सुखभोग को (सीं न-आप) सर्वभाव से—सर्वथा नहीं प्राप्त करता है उससे नितान्त वञ्चित रहता है, परन्तु (यः-एतग्वा एतशः-चित्-युजोजते) जो इस परमात्मा की ओर गति करने वाला "एतं गच्छतीति-एतद् गमधतोः वनिप् प्रत्ययः छान्दसः दकार—लोपश्च" 'एतस्मिन् शेते अन्येष्वपि दृश्यते' [अष्टा० ३.२.११०] "डः प्रत्ययः" तथा उस परमात्मा में शयन प्रवेश करने वाला होकर पूर्णरूप से "चित् साकल्ये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] परमात्मा को युक्त हो जाता है, पुनः (इन्द्रः-हरी-युयोजते) परमात्मा दुःखापहरणकर्ता और सुखाहरणकर्ता "हरयो हरणाः" [निरु ७.२४] अपने ज्योति और स्नेह को या ऋक् और साम, स्तवन और सान्त्वन धर्मों को या अमृतरस और देवान्न दिव्य भोग को उपासक में युक्त कर देता है "ऋक्सामे वा इन्द्र हरी" [मै० ३.१०.६] "ज्योतिस्तदृक्" [जै० १.७६] "अमृतं वा ऋक्" [कौ० ७.१०] "साम देवानामन्नम्" [जै० १.७१]।

भावार्थः—केवल जीना ही धन मानने वाला—परमात्मा को न मानने वाला नास्तिक सदा मरणधर्मी जन परमात्मा के एषणीय—कमनीय सुखभोग को कभी नहीं प्राप्त कर सकता है, किन्तु जो इस परमात्मा की ओर गति प्रवृत्ति करने वाला तथा इस परमात्मा में शयन—प्रवेश करने वाला परमात्मा को युक्त हो जाता है तो परमात्मा उस उपासक के प्रति दुःखापहरण करने तथा सुखाहरण करने वाले ज्योति और स्नेह को या प्रशंसन और सान्त्वन धर्मों को या अमृतरस मुक्तों के रस और देवान्न—दिव्यभोग मुक्तों के अन्न को उस उपासक में युक्त कर देता है॥६॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और बहुत बुद्धि वाला)॥

२६९. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत। उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम॥ ७॥

पदपाठः— आ नः विश्वाम् हव्यम् इन्द्रम् समत्सु भूषत उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् वृत्र हन् परमज्याः परम ज्याः ऋचीषम॥ ७॥

अन्वयः—विश्वासु समत्सु हव्यम्-इन्द्रम् आः-भूषत ऋचीषम परमज्याः वृत्रहन् नः ब्रह्माणि सवनानि उपभूषत॥

पदार्थः—(विश्वासु समत्सु) समस्त प्रतिद्वन्द्वी प्रवृत्तियों में दैववृत्तियों आसुरवृत्तियों के संघर्षों में (हव्यम्-इन्द्रम्) आमन्त्रणीय परमात्मा को (आः-भूषत) आभूषित करो पूजित करो। यतः (ऋचीषम) स्तुति के अनुरूप फलप्रद ''ऋचीषमः-ऋचा समः'' [निरु० ६.२३] (परमज्याः) विरोधियों पर अलौकिक जय साधन वाला (वृत्रहन्) सर्वत्र ''सुपां सुलुक्'' [अष्टा० ७.३.३९] ''सुलुक् छान्दसः'' पापनाशक (नः) हमारे (ब्रह्माणि सवनानि) मन-बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, उपासना रस निष्पादन स्थानों को ''मनो ब्रह्मेति व्यजानात्'' [तै० आ० १०.६४.१] (उप—उपभूषत) उपभूषित कर अपने आनन्द स्वरूप से वासित कर।

भावार्थः—उपासको! सारी विरोधी प्रवृत्तियों के प्रसङ्ग में आमन्त्रणीय परमात्मा को आहूत करो स्मरण करो जिससे वह उन पर परम जय साधन वाला पापनाशक स्तुति के अनुरूप फलप्रद परमात्मा हमारे मनों-मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार उपासना रस के निष्पादन स्थानों को उपभूषित करें अपने आनन्द स्वरूप से वासित कर दें॥ ७॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

२७०. तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्। सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते॥ ८॥

पदपाठः— तव इत् इन्द्र अवमम् वसु त्वम् पुष्यसि मध्यमम् सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किः त्वा गोषु वृण्वते॥ ८॥

अन्वयः—इन्द्र अवमं वसु तवः-इत् मध्यमं त्वं पुष्यसि विश्वस्य परमस्य राजसि गोषु सत्रा त्वा न किः वृण्वते॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (अवमं वसु) उरला—इन्द्रियों द्वारा सेवनीय भोगने योग्य धन जिसे हम इन्द्रियों से भोगते हैं वह (तवः-इत्) तेरा ही है (मध्यमं त्वं पुष्यसि) उससे ऊपर दूसरा मनोग्राह्य-मन द्वारा सेवनीय ज्ञान

धन—वेद जिसे मनसे सेवन करते हैं उसको तू पोषण देता है—रक्षित करता है (विश्वस्य परमस्य राजसि) स्वात्मा के प्रवेश योग्य अन्तिम मोक्षानन्द अमृतधन का तू स्वामित्व करता है जिसे हम स्वात्मा से भोगते हैं, अत: (गोषु) वाणियों में वाणियों के द्वारा ''गौ:-वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (सत्रा) यथावत् पूर्णरूप से (त्वा) तुझे—तेरा (न कि:) ''न केचन'' कोई भी-कितने भी जन नहीं (वृण्वते) 'विवृण्वते' विवरण कर सकते हैं।

भावार्थ:—परमात्मन्! तू अद्भुत स्वामी है इन्द्रियों से भोगने योग्य धन-भोगधन का स्वामी, मन से सेवन करने योग्य ज्ञान वेदरूप धन का स्वामी और आत्मा जिसमें प्रवविष्ट हो जावे उस ऐसे आत्मा के द्वारा मोक्षानन्द अमृत धन का भी स्वामी है अत: तुझ स्वामी का वाणियों द्वारा यथार्थ विवरण से खोलकर कथन करने वाले जन कोई नहीं हैं तेरा जितना स्तवन करता है वह मानव वाणी से अल्प थोड़ा ही हो पाता है॥८॥

ऋषि:—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से गमन प्रवेश करने वाला और पवित्र गुणों में गमन शील)॥

२७१. क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः। अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः॥ ९॥

पदपाठ:— क्व इयथ क्व इत् असि पुरुत्रा चित् हि ते मनः अलर्षि युध्म खजकृत् खज कृत् पुरन्दर पुरम् दर प्र गायत्राः अगासिषुः॥ ९॥

अन्वय:—युध्म खजकृत्-पुरन्दर पुरुत्रा ते चित् हि-मनः क्व-इयथ क्व-इत्-असि अलर्षि गायत्रा प्र-अगासिषुः॥

पदार्थ:—(युध्म खजकृत्-पुरन्दर) हे पापों से संग्राम करने वाले ''खजे संग्राम नाम'' [निघं० २.१७] योद्धा पाप शरीरों को विदीर्ण करने वाले परमात्मन् ''आत्मा वै पू:'' [श० ७.५.१.२] तू (पुरुत्रा) बहुत उपासक जनों में ''देवमनुष्य-पुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्'' [अष्टा० ५.४.५६] 'त्रा' (ते चित् हि-मन:) तेरे लिये ही निरन्तर मन है (क्व-इयथ क्व-इत्-असि) कि तू कहाँ गया था, कहा हैं? (अलर्षि) तू आ (गायत्रा प्र-अगासिषु:) उपासक लोग प्रकृष्ट स्तुति गान गाते हैं।

भावार्थ:—हे पापों से संग्राम करने वाले योद्धा! पापात्माओं पाप शरीरों को विदीर्ण करने वाले परमात्मन्! बहुत उपासकों में तेरे दर्शन के लिये मन लगा हुआ है कि तू कहां गया? कहाँ है? तू आ जा। वे ऐसे गुणगानों को प्रकृष्ट गाते हैं॥ ९॥

ऋषिः—कलिः (गुण कथनकर्त्ता)॥

२७२. **वयमेनमिदा ह्योऽ पीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १० ॥**

पदपाठः— **वयम् एनम् इदा ह्यः अपीपेम इह वज्रिणम् तस्मै उ अद्य अ द्य सवने सुतम् भर आ नूनम् भूषत श्रुते ॥ १० ॥**

अन्वयः—वयम् एनं वज्रिणम् इह ह्यः-इदा अपीपेम तस्मै-उ अद्य सवने सुतंभर 'भरामः' नूनम् श्रुते आभूषत ॥

पदार्थः—(वयम्) हम (एनं वज्रिणम्) इस ओजस्वी परमात्मा को "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (इह) इस जीवन में (ह्यः-इदा) कल और अब—आज (अपीपेम) स्तुतियों से प्रवृद्ध करें और करते हैं (तस्मै-उ) उसके लिये ही (अद्य सवने) आरम्भ होने वाले स्तुति प्रसङ्ग में (सुतंभर 'भरामः') निष्पन्न उपासनारस को समर्पित करते हैं (नूनम्) निश्चित (श्रुते) 'श्रुतेन' श्रुत—श्रवण चतुष्टय—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से (आभूषत) 'आभूषेम' पुरुषव्यत्ययः पूजित करें, ध्यावें।

भावार्थः—हम ने इस ओजस्वी परमात्मा को गत कल स्तुतियों से प्रवृद्ध किया और आज भी करते हैं उसके लिये ही आरम्भ होने वाले भावी स्तुति प्रसङ्ग में निष्पन्न उपासनारस को समर्मित करते हैं निश्चित श्रवण चतुष्टय-श्रवण मनन निदिध्यासन साक्षात्कार से उसे पूजित करें ध्यावें-ध्याते हैं ॥ १० ॥

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुतों को अध्यात्म में प्रेरित कर्त्ता)॥

२७३. **यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यः राजा चर्षणीनाम् याता रथेभिः अध्रिगुः अध्रि गुः विश्वासाम् तरुता पृतनानाम् ज्येष्ठम् यः वृत्रहा वृत्र हा गृणे ॥ १ ॥**

अन्वयः—यः-चर्षणीनां राजा रथेभिः-अध्रिगुः-याता विश्वासां पृतनानां तरुता यः-वृत्रहा ज्येष्ठः गृणे ॥

पदार्थः—(यः-चर्षणीनां राजा) जो आदित्य के समान ज्ञान से प्रकाशमान जनों का राजा—दीपयिता—ज्ञानदाता "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघं० २.३] "चर्षणिः-चायितादित्यः" [निरु० ५.२४] (रथेभिः-अध्रिगुः-याता) रथों—वेग वाले यानों के द्वारा जाने वालों का उनमें भी अधृतगमन—अप्राप्त गति वाला जाने वाला

"अध्रिगुरधृतगमनः" [निरु० ५.१०] (विश्वासां पृतनानां तरुता) समस्त युद्ध करने वाली शक्तियों का "युधौ वै पृतनाः" [श० ५.२.४.१६] तारक—तारयिता प्रेरक "तरुतारं तारयितारम्" [निरु० १०.२९] (यः-वृत्रहा ज्येष्ठः) जो पापाज्ञाननाशक महान् है (गृणे) मैं उसे स्तुति में लाऊँ—उसकी स्तुति करूँ।

भावार्थः—जो सूर्यसमान ज्ञानप्रकाश से प्रकाशमान ज्ञानियों का—आदि ऋषियों का प्रकाशक ज्ञानदाता है, जो तीव्र गतिवाले यानों से जाने वालों का भी—उनमें—उनसे भी अप्राप्त गति वाला विभु—गतिवाला जाने वाला है और समस्त युद्ध करने वाली शक्तियों—विद्युत् आदियों का प्रेरक है जो पाप अज्ञानों का नाशक अति महान् है उसकी मैं स्तुति करता हूँ अर्थात् ज्ञान, गति, शक्ति, पापाज्ञाननिवृत्ति का अधिष्ठाता परमात्मा है उसकी स्तुति करनी चाहिए॥ १ ॥

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)॥

२७४. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥ २ ॥

पदपाठः— यतः इन्द्र भयामहे ततः नः अभयम् अ भयम् कृधि मघवन् शग्धि तव तत् नः ऊतये वि द्विषः वि मृधः जहि॥ २ ॥

अन्वयः—मघवन्-इन्द्र यतः-भयामहे ततः-नः-अभयं कृधि तव शग्धि तत् नः-ऊतये द्विषः-विजहि मृधः-वि॥

पदार्थः—(मघवन्-इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यतः-भयामहे) जिससे हम भय करें (ततः-नः-अभयं कृधि) उससे हमें अभय कर (तव) हम तेरे हैं (शग्धि) तू समर्थ है (तत्) तिस कारण (नः-ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (द्विषः-विजहि) द्वेषवृत्तियों को नष्ट कर (मृधः-वि) पाप भावनाओं को विनष्ट कर "पाप्मा वै मृधः" [श० ६.२.३.८]।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! जिस दुर्भाव से हम डरते हैं उससे हमें अभय कर—उसे कभी न सेवन कर सकें, तू ऐसा करने में समर्थ है, अतः हम तेरी शरण में हैं तिससे तू हमारी रक्षा के लिये द्वेष भावनाओं और पाप वृत्तियों को हमसे नष्ट कर—उन्हें दूर रख॥ २ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (गति-प्रवृत्ति है व्योम समान परमात्मा में जिसकी ऐसा ध्यानी जन)॥

२७५. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणꣳ सत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा॥ ३ ॥

पदपाठः— **वास्तोः पते ध्रुवा स्थूणा अꣳसत्रम् सोम्यानाम् द्रप्सः पुराम् भेत्ता शश्वतीनाम् इन्द्रः मुनीनाम् सखा स खा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम्यानाम् वास्तोः-पते ध्रुवा स्थूणा अंसत्रम् इन्द्रः शश्वतीनां पुराम् भेत्ता द्रप्सः मुनीनां सखा ॥

पदार्थः—(सोम्यानाम्) हम सोम—उपासनारस सम्पादक उपासकों के (वास्तोः-पते) वासस्थान हृदय गृह के स्वामिन् परमात्मन्! "वास्तुर्वसतेर्निवास-कर्मण:" [निरु० १०.१६] (ध्रुवा स्थूणा) ध्रुव, स्थापक जीवन स्तम्भ है (अंसत्रम्) पाप से बचाने वाला है "अंसत्रमंहस्त्राणम्" [निरु० ५.२६] (इन्द्रः) 'इन्द्र' सुविभक्तेरलुक्छान्दसः हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (शश्वतीनां पुराम्) शाश्वतिक—आत्मा के साथ चली आई मन बुद्धि चित्त अहङ्कार स्थलियों का "मन एव पुरः 'अन्त:करणम्' मनो हि प्रथमं प्राणानाम्—इन्द्रियाणाम्" [श० १०.३.५.७] (भेत्ता) उद्घाटयिता उद्घाटन करने वाला, तथा (द्रप्सः) हर्षयिता—विकसित करने वाला "दृप हर्षे" [दिवा०] (मुनीनां सखा) मननशील—तेरा मनन चिन्तन करने वालों का तू सखा है—मित्र है।

भावार्थः—उपासनारस सम्पादक उपासकों के हृदय गृह के स्वामी परमात्मन्! तू उनके जीवन का स्तम्भ—सहारा—आधार तथा उन्हें पापों से बचाने वाला है एवं ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू शरीर में आत्मा के साथ प्रथम होने वाली मन बुद्धि चित्त अहङ्कार शक्तियों को उद्घाटित करता तथा विकसितकर्त्ता एवं अपने मननशील चिन्तन करने वालों का मित्र भी है ॥ ३ ॥

ऋषिः—जमदग्निः (जिसमें प्राप्त परमात्माग्नि प्रकाशित है ऐसा उपासक है)॥

२७६. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ ४ ॥

पदपाठः— बट् महान् असि सूर्य बट् आदित्य आ दित्य महान् असि महः ते सतः महिमा पनिष्टम मह्ना देव महान् असि ॥ ४ ॥

अन्वयः—सूर्य बट् महान्-असि आदित्य बट् महान्-असि महः-सतः-ते महिमा अपनिष्टम देव मह्ना महान्-असि ॥

पदार्थः—(सूर्य) हे सरणशील संसार में विभुगति से चरणशील इन्द्र परमात्मन्! तू (बट्) सत्य—सचमुच "बट् सत्यनाम" [निघं० ३.१०] (महान्-असि) महत्त्व—वाला है—सांसारिक महान् वस्तु से भी महान् है (आदित्य) हे अदिति—अखण्ड सुख-सम्पत्ति मुक्ति के स्वामी इन्द्र परमात्मन्! तू (बट्) सचमुच (महान्-असि) महान् है (महः-सतः-ते महिमा) महान् होते हुए का तेरा महत्त्व (अपनिष्टम)

हमारे द्वारा स्तुत किया जाता है (देव) हे द्योतन दानादि गुण युक्त इन्द्र परमात्मन्! तू (मह्ना महान्-असि) महत्त्व—गुणमहत्त्व से महान् है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू संसार में विभुगति से सर्वत्र चरणशील होता हुआ सचमुच महान् है सर्व महान् है, तू अखण्ड सुख-सम्पत्ति मुक्ति का स्वामी होता हुआ सचमुच महान् है नितान्त महान् से महान् है तुझ महान् होते हुए की महिमा प्रसंशित की जाती है, हे द्योतनशील दाता परमात्मन्! तू महत्त्व से महान् है तेरे जैसा सर्वगुणसम्पन्न कोई नहीं है॥४॥

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्म देव की ओर निरन्तर गमन-प्रवेश करने वाला उपासक)॥

२७७. अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा। श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप॥५॥

पदपाठः— अश्वी रथी सुरूपः सु रूपः इत् गोमान् इन्द्र यत् ते सखा स खा श्वात्रभाजा श्वात्रा भाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैः याति सभाम् स भाम् उप॥५॥

अन्वयः—इन्द्र यत् ते सखा अश्वी रथी सुरूपः गोमान् इत् श्वात्रभाजा वयसा सचते सदाचन्द्रैः-सभामुपयाति॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्) 'यतः' क्योंकि (ते सखा) तेरा मित्र तुझ से सङ्ग कर लिया जिसने ऐसा समागमशील उपासक (अश्वी) प्रशस्त इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी (रथी) प्रशस्त शरीररथ वाला स्वस्थ (सुरूपः) प्रशस्त स्वरूप वाला शान्तात्मा (गोमान्) प्रशस्त वाणी वाला यथार्थ वक्ता (इत्) अवश्य उक्त गुण वाला हो जाता है (श्वात्रभाजा वयसा सचते) शीघ्रभाक् शीघ्र प्राप्त करने वाले जीवन से 'श्वात्रमिति क्षिप्रनाम' [निरु० ५.३] समवेत होता है (सदाचन्द्रैः-सभामुपयाति) सदा आह्लादक गुणों से सभा को उपगत होता है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरा समागम करने वाला उपासक प्रशस्त इन्द्रियों वाला संयमी, प्रशस्त शरीर वाला, स्वस्थ, प्रशस्त सुरूप वाला शान्तात्मा, प्रशस्त वाणी वाला यथार्थ वक्ता हो जाता है तथा शीघ्र फलभागी जीवन से समस्त कार्य में प्रवेश करता है सदा आह्लादकारी गुणों से सभा में उपगत होता ऊँचा स्थान पाता है॥५॥

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत प्रगतिशील बहुत ज्ञानी)॥

२७८. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥६॥

पदपाठः— **यत् द्यावः इन्द्र ते शतम् शतम् भूमिः उत स्युः न त्वा वज्रिन् सहस्रम् सूर्याः अनु न जातम् अष्ट रोदसीइति ॥ ६ ॥**

अन्वयः—वज्रिन्-इन्द्र यत् ते शतं द्यावः उत शतं भूमीः स्युः सहस्रं सूर्याः त्वा-अनु न रोदसी जातं न-अष्ट ॥

पदार्थः—(वज्रिन्-इन्द्र) हे ओजस्वी 'वज्रो वा ओजः' [श० ८.४.१.२०] ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्) यदि (ते) तेरे सम्मुख (शतं द्यावः) सैकड़ों द्युलोक भी हों (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियाँ हों (सहस्रं सूर्याः) बहुत सूर्य भी हों (त्वा-अनु न) तेरे अनुरूप—तुल्य—गुण कर्म स्वरूप के प्रतिमान नहीं हैं (रोदसी जातं न-अष्ट) "रोदसी रोधसी रोधः कूलं निरुणद्धि स्रोतः" [निरु० ६.१] विश्व के दोनों कटाह सम्पुट उत्तर गोलार्द्ध दक्षिण गोलार्द्ध सीमा प्रान्त भी तुझ प्रसिद्ध को नहीं व्याप सकते हैं।

भावार्थः—हे ओजस्वी परमात्मन्! यदि तेरे सम्मुख सैकड़ों द्युलोक हों और सैकड़ों भूमियाँ—पृथिवी लोक हों तथा बहुत सूर्य भी हों पुनरपि तेरे अनुरूप—गुण कर्म स्वरूप में तुल्य नहीं हो सकते, एक एक की तो क्या कथा, सब मिलकर भी तथा विश्व को थामने वाली दोनों उत्तर गोलार्द्ध दक्षिण गोलार्द्ध सीमाएँ भी तुझ प्रसिद्ध सर्वत्र भीतर बाहर वर्तमान को व्याप नहीं सकती सीमित नहीं कर सकती हैं। तुझ ऐसे अनन्त—आकाश से भी परे वर्त्तमान को "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १.५२.१२] हम समझें ध्यावें ॥ ६ ॥

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में निरन्तर गमनप्रवेश करने वाला) ॥

२७९. **यदिन्द्र प्रागपागु दग्न्यग्वा हूयसे नृभिः। सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **यत् इन्द्र प्राक् अपाक् अप अक् उदक उत् अक् न्यक् नि अक् वा हूयसे नृभिः सिम पुरू नृषूतः नृ सूतः असि आनवे असि प्रशर्द्ध प्र शर्द्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥**

अन्वयः—इन्द्र यत् नृभिः प्राक्-अपाक्-उदक्-न्यक् हूयसे पुरू सिम नृषूतः-असि आनवे तुर्वशे प्रशर्ध-असि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्) 'यदा' जब कि तू (नृभिः) स्वात्मा को ऊपर ले जाने वाले विद्वान् उपासकों द्वारा "नरो वै देवविशः" [जै० १.८९] (प्राक्-अपाक्-उदक्-न्यक्क) पूर्व में, पश्चिम में, ऊँची दिशा में-उत्तर में, वा अथवा नीची दिशा में—दक्षिण में (हूयसे) आमन्त्रित किया जाता है—हृदय में स्मरण किया जाता है—बिठाया जाता है तब तू (पुरू सिम) "पुरुः

पूर्वसवर्णदीर्घश्छान्दस:'' बहुत श्रेष्ठ सर्वप्रशस्य परमात्मन्! ''सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते'' [जैभि.३.११] सुविभक्तेराकारादेशः सुपासुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया [अष्टा० ७.१.३९] (नृषूत:-असि) उन नरों—विद्वान् उपासकों का प्रेरक होता है बन जाता है तथा (आनवे) समन्तात् स्तुति करने वाले के लिये पूर्ण आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये (तुर्वशे प्रशर्ध-असि) शीघ्र ''तुर्वशे क्षिप्रनाम'' [निघं० २.१६] प्रशर्ध-प्रशर्धः ''सुपां सुलुक्.....'' [अष्ट० ७.१.३९] इति सुविभक्तेर्लुक् ''प्रकृष्ट उत्साहक'' शर्धत्-उत्सहते [निरु० ४.१९] या स्वानन्दरस से पूर्ण रसीला बनाने वाला हो जाता है ''शधु उन्दने'' [भ्वादि०]।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू जब विद्वान् उपासकों द्वारा पूर्व में, पश्चिम में, उत्तर में अथवा दक्षिण में सर्वत्र स्थानों में अर्थात् सर्वत्र कहीं भी जहाँ रहें या जावे, आमन्त्रित किया जाता हृदय में स्मरण किया जाता है तो तू बहुत श्रेष्ठ—पूज्यतम तथा उन विद्वानों का प्रेरक बन जाता है तथा सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण करने वाले स्तोता-उपासक के लिये शीघ्र उत्साहक—आत्मबलदाता या अपने आनन्दरस से रसीला बनाने वाला हो जाता है ॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

२८०. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥ ८॥

पदपाठः— कः तम् इन्द्र त्वावसो त्वा वसो आ मर्त्यः दधर्षति श्रद्धा श्रत् धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजम् सिषासति॥ ८॥

अन्वयः—वसो-इन्द्र तं त्वा कः-मर्त्यः-आदधर्षति मघवन् श्रद्धा हि ते वाजी वाजम् पार्थे दिवि॥

पदार्थः—(वसो-इन्द्र) हे सबको बसाने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (तं त्वा) उस तुझको (कः-मर्त्यः-आदधर्षति) कौन मनुष्य अपने अनुकूल बनाता है (मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् (श्रद्धा) 'श्रद्धया' (टा विभक्तेर्लुक्) आन्तरिक सद्भावना से (हि) ही (ते) तेरे लिये जो (वाजी) वाजवान्—सोमवान्—उपासनारस वाला (वाजम्) सोम—उपासनारस को ''सोमो वै वाजः'' [मै० ४.५.४] (पार्थे दिवि) संसार से परे वर्तमान दिव्य धाम—मोक्ष के निमित्त देना चाहता है समर्पण करना चाहता है।

भावार्थः—सबको बसाने वाले परमात्मन्! तुझे कौन मरणधर्मा संसारी मनुष्य अपने अनुकूल बनाता है, हाँ हम जानते हैं कि ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! जो ही उपासनारस वाला उपासक अपने उपासनारस को संसार से परे वर्तमान दिव्यधाम—मोक्ष के निमित्त तेरे लिये श्रद्धा से समर्पित करना चाहता है—समर्पित करता

है ॥ ८ ॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के लिये उपासनारस को धारण करने वाला उपासक)॥ देवता:—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

२८१. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः। हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत्॥ ९ ॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति अपात् अ पात् इयम् पूर्वा आ अगात् पद्वतीभ्य हित्वा शिरः जिह्वया रारपत् चरत् त्रिंशशत् पदानि अक्रमीत्॥ ९ ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी पद्वतीभ्यः पूर्वा इयम्-अपात् अगात् शिरः-हित्वा जिह्वया रारपत् चरत् त्रिंशत् पदानि न्यक्रमीत्॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् और प्रकाशस्वरूप उभयरूप परमात्मन्! (पद्वतीभ्यः) विभागवाली श्रद्धाओं—कामनाओं से—गन्धकामना रसकामना रूपकामना स्पर्शकामना शब्दकामनाओं से ''कणे मनसी श्रद्धाप्रतिधाते'' [अष्टा० १.४.६५] (पूर्वा) प्रथम सत्ता वाली ''प्रज्ञा पूर्वरूपं श्रद्धोत्तररूपम्'' [शा० आ० ७.१८] (इयम्-अपात्) विभागरहित गन्धादिरहित—केवल परमात्मपरायण प्रज्ञा ऋतम्भरा प्रज्ञा (अगात्) उपासक को प्राप्त होती है (शिरः-हित्वा) संसार बन्धन के शिरोरूप राग को पृथक् करके हटाकर (जिह्वया) वाणी से ''जिह्वा वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (रारपत् चरत्) पुनः पुनः तेरा जप करती हुई (त्रिंशत् पदानि) तीसों मुहूर्त ''अत्यन्तसंयोगे द्वितीया'' मानों दिन रात (न्यक्रमीत्) निकाल देती है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! अलग अलग अपने अपने पदों भौतिक विभागों वाली श्रद्धाओं—इच्छाओं से पूर्व सत्ता वाली यह भौतिक विभागरहित परमात्मपरायणा प्रज्ञा उपासक को प्राप्त होती हैं जो संसारबन्धन के शिर—राग को दूर करके हटाकर वाणी से तेरा जप करती हुई तीसों ही मुहूर्त—दिन रात निकाल देती है तू ऐसा प्रेमपात्र कृपा कर प्राप्त हो॥ ९ ॥

ऋषिः—बालखिल्याः-ऋषयः (आत्मबलसीमा में कुशल जन)॥

२८२. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः। आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥ १० ॥

पदपाठः— इन्द्र नेदीयः आ इत् इहि मितमेधाभिः मित मेधाभिः ऊतिभिः आ शन्तम शन्तमाभिः अभिष्टिभिः आ स्वापे सु आपे स्वापिभिः सु आपिभिः॥ १० ॥

अन्वयः—इन्द्र मितमेधाभिः-ऊतिभिः नेदीयः-इत् आ-इहि शन्तम शन्तमाभिः-अभिष्टिभिः-आ स्वापे स्वापिभिः-आ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (मितमेधाभिः-ऊतिभिः) मित—एकत्र स्थित—अविचलित अध्यात्म यज्ञ जिनसे हो रहें हैं ऐसी ''मेधः-यज्ञः'' [निघं० ३.१७] अपनी रक्षाओं के साथ (नेदीयः-इत्) अतिसमीप—हमारे आत्मा में (आ-इहि) आ—प्राप्त हो (शन्तम) हे अत्यन्त कल्याणस्वरूप परमात्मन्! तू (शन्तमाभिः-अभिष्टिभिः-आ) अत्यन्त कल्याणरूप इष्टपूर्तिकारक प्रवृत्तियों से आ—प्राप्त हो (स्वापे) हे अपनेपन को प्राप्त होने वाले बन्धु परमात्मन्! तू (स्वापिभिः-आ) स्व—अपनापन प्राप्त कराने वाली—अपना बनाने वाली भावनाओं के साथ आ—प्राप्त हो।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू एक—तुझ इष्टदेव पर निर्भर अध्यात्मयज्ञ सम्पादन वाली रक्षाओं के साथ अति समीप—आत्मा में ही प्राप्त हो तथा अति कल्याणस्वरूप! तू अत्यन्त कल्याणकारी इष्ट पूर्तिकारक प्रवृत्तियों के साथ आ—प्राप्त हो एवं हे अपनेपन से प्राप्त होने वाले बन्धु परमात्मन्! तू अपनापन कराने वाली—अपनाने वाली भावनाओं के साथ आ—प्राप्त हो॥ १०॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधावाला विद्वान्)॥

२८३. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्॥ १॥

पदपाठः— इतः ऊती वः अजरम् अ जरम् प्रहेतारम् प्र हेतारम् अप्रहितम् अ प्रहितम् आशुम् जेतारम् हेतारम् रथीतमम् अतूर्त्तम् अ तूर्त्तम् तुग्रियावृधम् तुग्रिय वृधम्॥ १॥

अन्वयः—वः ऊती अजरम् प्रहेतारम् अप्रहितम् आशुम् जेतारम्-हेतारम् रथीतमम् अतूर्तम् तुग्रिया-वृधम् इत॥

पदार्थः—(वः) ''वः-यूयम् विभक्तिव्यत्ययः'' तुम उपासको! (ऊती) अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये (अजरम्) जरारहित—सदा एकरस युवा (प्रहेतारम्) प्रेरिता—उन्नत पथ पर ले जाने वाले—(अप्रहितम्) अन्य से अप्रेरित—स्वशक्ति से वर्तमान—(आशुम्) व्यापनशील—(जेतारम्) दुष्टों के दमनशील—(होतारम्-'हेतारम्') वर्धक—'हि वृद्धौ' [स्वादि०] (रथीतमम्) अत्यन्त रथी—जीवों के रमणस्थान—संसार के स्वामी—(अतूर्तम्) अप्रतिहत (तुग्रिया-वृधम्) ''तुज आदाने'' [चुरादि०] ''तुज्यते-आदीयते परमात्मना तुक्''—उपासनारसः ''तुजं राति यया क्रियया सा तुग्री तया वर्धकम्'' आदान करने योग्य उपासनारस देने की

भावना बढ़ाने वाले परमात्मा को (इत) प्राप्त करो।

भावार्थः—हे उपासक जनो! अपनी रक्षा के लिये तुम! एकरस युवा, उन्नत पथ पर प्रेरित करने वाले अन्य से अप्रेरित स्वशक्तिसम्पन्न व्यापनशील दुष्टों पर जयशील जीव कर्मों के ज्ञाता महान् रथ स्वामी—जीवों के रमणस्थान संसार के स्वामी लेने योग्य उपासनारस भेटकों की देने की भावना या प्रवृत्ति से बढ़ाने वाले परमात्मा को प्राप्त होओ॥ १॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले उपासक)॥

२८४. **मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि॥ २॥**

पदपाठः— **मा उ सु त्वा वाघतः च न आरे अस्मत् नि रीरमन् आरात्तात् वा सधमादम् सध मादम् नः आ गहि इह वा सन् उप श्रुधि॥ २॥**

अन्वयः—सु त्वा वाघतः-चन अस्मत् आरे मा-उ निरीरमन् आरात्तात्-वा नः सधस्थम् आ गहि इह सन् वा उपश्रुधि॥

पदार्थः—(सु) हे पूजनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वा) तुझे (वाघतः-चन) तेरी ओर हमें वहन करने वाले—पहुँचाने वाले अध्यात्म प्रवचनकर्ता जन ''वाघतः-वोढारः'' [निरु० ११.१६] (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (मा-उ) निश्चित नहीं—कभी नहीं (निरीरमन्) विरत—विगत—पृथक् करते हैं ''नि निषेधे'' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] अतः (आरात्तात्-वा) दूर से भी समीप से भी ''आरात् शब्दात्स्वार्थे तातिल् प्रत्ययश्छान्दसः'' (नः सधस्थम्) हमारे साथ होने वाले आनन्द स्थान अध्यात्मयज्ञ में (आ गहि) आ—समन्तरूप से प्राप्त हो (इह सन् वा) और यहाँ अध्यात्मयज्ञ में विराजमान हुआ—होकर (उपश्रुधि) प्रार्थना को स्वीकार कर।

भावार्थः—हे पूजनीय परमात्मन्! तेरी ओर ले जाने वाले अध्यात्मवक्ता महानुभाव तुझे हमसे दूर कभी नहीं विरत करते हैं अपितु संयुक्त करते हैं अतः हम उनका सत्सङ्ग और स्वागत-सत्कार करते हैं। हे परमात्मन्! यह हम जानते हैं तू दूर भी है समीप भी है ''तद् दूरे तद्वन्तिके'' [यजु० ४०.५] अतः दूर स्वरूप विभुरूप से भी और समीपस्वरूप अन्तर्यामीरूप से भी मेरे बाहर और भीतर हुआ इस अध्यात्मयज्ञ में प्रार्थना को स्वीकार कर॥ २॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले उपासक)॥

२८५. **सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे। पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः॥ ३॥**

पदपाठः— **सुनोत सोमपाव्ने सोम पाव्ने सोमम् इन्द्राय वज्रिणे पचता पक्तीः अवसे कृणुध्वम् इत् पृणन् इत् पृणते मयः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनोत अवसे पक्तीः पचत कृणुध्वम् इत् पृणते इत् मयः-पृणन् ॥

पदार्थः—(वज्रिणे) ओजस्वी—"वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (सोमपाव्ने) उपासनारस का पान करने वाले—स्वीकार करने वाले—(इन्द्राय) परमात्मा के लिये (सोमं सुनोत) उपासनारस को निष्पन्न करो (अवसे) रक्षा के लिये "अवरक्षणगतिकान्तिप्रीतिसृप्त्यवगमप्रवेश......." [भ्वादि०] (पक्तीः पचत) परिपक्व करने योग्य—साधने योग्य चित्तवृत्तियों को परिपक्व करो, अभ्यास वैराग्य द्वारा साधो—निरुद्ध करो (कृणुध्वम्) पुनः आत्मसमर्पण करो (इत्) इस प्रकार (पृणते) उपासनारस से प्रसन्न करते हुए या उपासनारस प्रदान करते हुए उपासक के लिये (इत्) अवश्य परमात्मा (मयः-पृणन्) सुख देता हुआ सदा वर्तमान रहता है "पृणाति दानकर्मा" [निघं० ३.१०]।

भावार्थः—हे उपासक जनो! उपासनारस पान—स्वीकार करने वाले ओजस्वी परमात्मा के लिये उपासनारस को निष्पन्न करो इस कारण परिपक्व करने योग्य—निरुद्ध करने योग्य चित्तवृत्तियों को अभ्यास वैराग्य के द्वारा साधो—निरुद्ध करो पुनः आत्मसमर्पण करो इस प्रकार उपासनारस देने वाले उपासक के लिये परमात्मा सुख का दान—वरदान देता रहता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—शंयुः (सुखस्वरूप परमात्मा का इच्छुक)॥

२८६. **यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्। सहस्त्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **यः सत्राहा सत्रा हा विचर्षणिः वि चर्षणिः इन्द्रम् तम् हूमहे वयम् सहस्त्रमन्यो सहस्त्र मन्यो तुविनृम्ण सत्पते सत् पते भवाः समत्सु स मत्सु नः वृधे ॥ ४ ॥**

अन्वयः—यः-सत्राहा विचर्षणिः तम् 'त्वाम्'-इन्द्रम् वयम् हूमहे सहस्त्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते समत्सु नः-वृधे भव ॥

पदार्थः—(यः-सत्राहा) जो सत्र—यज्ञ—अध्यात्म में आने वाला "सत्रं यज्ञमध्यात्मयज्ञमाहन्ति—आगच्छति""हन हिंसागत्योः" [अदादि०] 'गत्यर्थेऽत्र हन धातुः' (विचर्षणिः) द्रष्टा अन्तर्यामी होने से उपासक के अभिप्राय को जानने वाला है "विचर्षणिः पश्यतिकर्मसु नामशब्दः" [निघं० ३.११] (तम् 'त्वाम्'-इन्द्रम्) उस तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (वयम्) हम (हूमहे) अध्यात्मयज्ञ में आमन्त्रित करते हैं (सहस्त्रमन्यो) हे बहुत मननीय! या बहुत तेजोमय—अत्यन्त

दीप्तिवाले! "मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मण:" [नि० १०.२९] (तुविनृम्ण) बहुत मोक्षैश्वर्यरूप धन वाले "तुवि बहुनाम" [निघं० ३.१] "अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह" [श० १४.२.२.३०] (सत्पते) सत्पुरुषों उपासकों के पालक परमात्मन्! तू (समत्सु न:-वृधे भव) विरोधी वृत्तियों के साथ हुए संघर्षों में हमारी वृद्धि के लिये हो।

भावार्थ:—जो अध्यात्मयज्ञ में आने वाला द्रष्टा अन्तर्यामीरूप से उपासक के सद्भाव को जानने वाला है उस तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को हम अपने अध्यात्मयज्ञ में आमन्त्रित करते हैं, हे बहुत मनन करने योग्य या बहुत दीप्तिमन् प्रकाशस्वरूप बहुत धन मोक्षैश्वर्य वाले तथा सत्पुरुषों उपासकों के पालक परमात्मन्! तू विरोधी वृत्ति प्रवृत्तियों के संघर्षों में हमारी वृद्धि के लिये हो—सदा रह॥ ४॥

ऋषि:—परुच्छेप: (पर्व पर्व में पदपर्व वाक्य पर्व तथा दिन रात्रि के पर्व पर अपने ज्ञान से परमात्मा का विशेष स्पर्श—आलिङ्गन करने वाला उपासक)॥ देवता:—अश्विनौ 'इन्द्रान्तर्गतौ—इन्द्ररूपौ' देवते (इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के अन्दर वर्तमान ज्योति और आनन्दरस धर्म एवं उन दोनों धर्मों वाला इन्द्र॥

२८७. शचीभिर्नः शचीवसू दिवानक्तं दिशस्यतम्। मा वां रातिरुप दसत्कदा च नास्मद्रातिः कदा च न॥ ५॥

पदपाठ:— शचीभि: न: शचीवसू शची वसूइति दिवानक्तम् दिशस्यतम् मा वाम् राति: उप दसत कदा च न अस्मत् राति: कदा च न॥ ५॥

अन्वय:—शचीवसू शचीभि: न: दिवा नक्तम् दिशस्यतम् वाम् राति: कदाचन मा उपदसत् अस्मद्राति: कदाचन॥

पदार्थ:—(शचीवसू) हे ज्ञानज्योति देने वाली प्रज्ञा से तथा आनन्दरस देने वाले कर्म से हमें बसाने वाले—दोनों रूपों वाले—इन्द्र परमात्मन्! या दोनों धर्मों "शची प्रज्ञानाम" [निघं० ७.९] "शचीकर्मनाम" [निघं० २.१] (शचीभि:) ज्ञानज्योति निरन्तर प्रज्ञानों से तथा आनन्दरसप्रद निरन्तर कर्मों से (न:) हमारे (दिवा नक्तम्) दिन और रात्रि को (दिशस्यतम्) अतिसर्जित करो, ज्ञान ज्योति से और आनन्दरस से सम्पन्न करो, सूर्य जैसे दिन को ज्योति से, चन्द्रमा जैसे रात्रि को रस से सम्पन्न करता है "अत्र लुप्तोपमानोपमावाचकालङ्कार:" 'दिश अतिसर्जने' [अदादि०] "मध्ये स्यप्रत्ययश्छान्दस:" "यद्वा दिशासनामधातु: सम्पादनेऽर्थे कण्ड्वादिगणे छान्दस:" (वाम्) हमारे लिये तुम्हारी (राति:) दान—ज्ञानज्योति का दान और आनन्दरस का दान (कदाचन) कभी (मा) न (उपदसत्) क्षीण हो (अस्मद्राति: कदाचन) हमारा उपासनारस दान तुम्हारे लिये कभी क्षीण न हो।

भावार्थः—हे ज्ञानज्योतिष्प्रद प्रज्ञा वाले तथा आनन्दरसप्रद कर्म वाले उभयरूप परमात्मन्! तुम अपनी उक्त प्रज्ञाओं और कर्मों से हमारे दिन को ज्ञानज्योति से और रात्रि को आनन्दरस से सम्पन्न कर दो, तुम्हारा यह हमारे लिये ज्ञानज्योति का दान और आनन्दरस का दान कभी क्षीण न हो तथा तुम्हारे लिये हमारा उपासनारस भेंटरूप दान कभी क्षीण न हो हम ज्ञानपूर्वक दिन बितावें, जागें और आनन्दपूर्वक रात निकालें सोवें॥ ५॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय इष्टदेव परमात्मा जिसका है ऐसा अनन्य उपासक)॥ देवताः—वरुणरूप (वरने योग्य वरने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

२८८. यदा कदा च मीढुषे स्तोता ज़रेत मर्त्यः। आदिद् वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम्॥ ६॥

पदपाठः— यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः आत् इत् वन्देत वरुणम् विपा गिरा धर्त्तारम् विव्रतानाम् वि व्रतानाम्॥ ६॥

अन्वयः—मर्त्यः स्तोता यदा कदा मीढुषे जरेत आत्-इत् विव्रतानां धर्तारम् वरुणम् गिरा विपा वन्देत॥

पदार्थः—(मर्त्यः) मरणधर्मी जन्ममरण में पड़ा संसारी मनुष्य (स्तोता) परमात्मा का स्तुतिकर्ता हुआ—स्तुतिकर्ता बनकर (यदा कदा) जब कभी भी सुख में हो या दुःख में हो सम्पत्ति में या विपत्ति में (मीढुषे जरेत) सुखशान्तिवर्षक परमात्मा की स्तुति करें "जरते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (आत्-इत्) अनन्तर ही साथ ही (विव्रतानां धर्तारम्) विविधकर्मों—सृष्टि उत्पत्ति आदि तथा जीवों के कर्मफल विधान मोक्षानन्द प्रदान कर्मों के धर्ता—सम्पादन कर्ता—(वरुणम्) वरने योग्य वरने वाले या दुःखाज्ञान निवारक परमात्मा को (गिरा विपा) गरण भजन गुणगान करने वाली वाणी "विपा वाङ्नाम" [निघं० १.११] से (वन्देत) वन्दन करें—अभिनन्दन करें।

भावार्थः—सांसारिक बन्धन में पड़ा जन्ममरण में आने वाला मनुष्य जब कभी सुख में हो या दुःख में हो या सम्पत्ति में हो या विपत्ति में हो सांसारिक सुख तथा मोक्षानन्द की वृष्टि करने वाले परमात्मा की स्तुति किया करें सुखसम्पत्ति में गर्वरहित रहने का शान्तिबल मिलेगा और दुःख दारिद्र्य में सन्तोष का सहारा मिलेगा साथ ही स्तुति के उस नाना प्रकार सृष्टि रचनादि तथा जीवों के कर्मफल मोक्षानन्द प्रदान आदिकर्मा के विधाता का स्पष्ट कथन करने वाला वाणी से वन्दन गुणगान भजन भी उसका करना चाहिए, एकान्त में स्तुति स्तवन और सभा सम्मेलन में भी गुणगान भजन करना चाहिए॥ ६॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः (पवित्र करने वाले परमात्मा में निरन्तर गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २र ३
२८९. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे। यः सम्मिश्लो
२ ३ १ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ ७॥

३ २ २ १ २र १२र १ २र ३ ३ ३
पदपाठः— पाहि गाः अन्धसः मदे इन्द्राय मेध्यातिथे मेधा अतिथे
२ १ २र २ ३ १ २र २ ३ १ २ १ २र
यः सम्मिश्लः सम् मिश्लः हर्योः यः हिरण्ययः इन्द्रः
३ २ ३ १ २
वज्री हिरण्ययः॥ ७॥

अन्वयः—मेध्यातिथे अन्धसः-मदे गाः पाहि यः हर्योः सम्मिशलः यः-इन्द्रः-हिरण्ययः वज्री हिरण्ययः॥

पदार्थः—(मेध्यातिथे) हे पवित्र परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरन्तर गमन करने वाले जीवात्मन्! तू (अन्धसः-मदे) आध्यानीय परमात्मा के सङ्ग से प्राप्त होनेवाले हर्ष—आनन्द के निमित्त (गाः पाहि) अपनी इन्द्रियों की रक्षा कर अनुचित भोगों में न जाने दे "इन्द्रियं वै वीर्यं" [श० ५.४.३.१०] (यः) जो (हर्योः सम्मिशलः) ऋक् और सामों—स्तुति और उपासना के होने पर सम्यक् समागम को प्राप्त होनेवाला "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मै० ३.१०.६] (यः-इन्द्रः-हिरण्ययः) जो इन्द्र परमात्मा ज्योतिर्मय है (वज्री हिरण्ययः) जो ओजस्वी आत्मा बलवाला ज्योतिर्मय है।

भावार्थः—हे पवित्र परमात्मा की प्राप्ति के लिये निरन्तर अतनशील उपासक! उस समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के आनन्द के निमित्त अपनी इन्द्रियों की अन्यथा चेष्टा—अनुचित भोगों से बचा—संयम सदाचार में रख, जो परमात्मा स्तुति और उपासना के होने पर सम्यक् मिलने वाला है जो परमात्मा ज्योतिर्मय है वह परमात्मा सचमुच ओजस्वी—आत्मिक बल से युक्त ज्योतिर्मय है॥ ७॥

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
२९०. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ ८॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ २ ३ २ १ २र ३ १ २
पदपाठः— उभयम् शृणवत् च नः इन्द्रः अर्वाक् इदम् वचः सत्राच्या
३ २ ३ ३ १ २ १ २र १ २र ३ ३ २ २र
सत्रा च्या मघवान् सोमपीतये सोम पीतये धिया शविष्ठः
२ ३
आ गमत्॥ ८॥

अन्वयः—इन्द्रः नः इदम्-उभयं वचः अर्वाक्-शृणवत् मघवा शविष्ठः सत्रा धिया सोम-पीतये आगमत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नः) हमारे (इदम्-उभयं वचः) इस दोनों प्रकार के स्तुतिवचन और उपासना वचन को (अर्वाकृ-शृणवत्) इधर

अन्दर अन्तर्यामीरूप होकर सुनें (मघवा शविष्ठः) प्रशस्त ऐश्वर्यवान् अत्यन्त या सब बलों से युक्त परमात्मा (सत्रा धिया) सत्ययुक्त प्रज्ञा से—हित बुद्धि से (सोम-पीतये) उपासना रस को पान—स्वीकार करने के लिये (आगमत्) आवें।

भावार्थः—परमात्मा हमारे इन दोनों स्तुति वचन और उपासना वचन को इधर अन्दर अन्तर्यामी रूप से सुने—सुनता है और वह ऐश्वर्यवान् अत्यन्त बलवान् या सभी बलों से युक्त हुआ सत्य प्रज्ञा—हित बुद्धि से उपासनारस स्वीकार करने के लिये आवें—आता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से निरन्तर-अतन प्रवेश करने वाला और मेध्य पवित्र परमात्मा में निरन्तर प्रवेशशील उपासक)॥

२९१. महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे। न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥

पदपाठः— महे च न त्वा अद्रिवः अ द्रिवः परा शुल्काय दीयसे न सहस्राय न अयुताय अ युताय वज्रिवः न शताय शतामघ शत मघ ॥ ९ ॥

अन्वयः—अद्रिवः-वज्रिवः शतामघ त्वा शताय शुल्काय न परा दीयसे सहस्राय न अयुतान न महे च न॥

पदार्थः—(अद्रिवः-वज्रिवः शतामघ) हे आनन्द यनवन् ओजस्वी बहुत प्रकार के धनवाले! कोषवाले परमात्मन्! "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (त्वा) "त्वम्" "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे....." [अष्टा० ७.१.३९] तू (शताय शुल्काय) सौ लक्ष्मी के लिये "श्रीर्वै शुल्कः" [जै० ३.२५८] (न परा दीयसे) नहीं त्यागा जाता है (सहस्राय न) सहस्र लक्ष्मी के लिये नहीं त्यागा जाता है (अयुतान न) लाख लक्ष्मी के लिये नहीं त्यागा जाता है (महे च न) लाख से महान् अधिक लक्ष्मी पाने के लिये भी नहीं त्यागा जाता है।

भावार्थः—हे आनन्दघनवन्-आनन्द बरसाने वाले ओज-आत्मबल वाले महैश्वर्यवन् निधिपति परमात्मन्! हम तुझे सौ लक्ष्मी स्वर्ण धन पाने के लिये, सहस्रलक्ष्मी स्वर्ण धन पाने के लिये, लक्ष लक्ष्मी सुवर्ण धन पाने के लिये, भारी लक्ष्मी सुवर्ण धन पाने के लिये त्याग नहीं कर सकते हैं। तेरे से प्राप्त होने वाले आनंन्द, ओज और ऐश्वर्य के सम्मुख सांसारिक भारी से भारी लक्ष्मी धन तुच्छ है ॥ ९ ॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से निरन्तर-अतन प्रवेश करने वाला और मेध्य पवित्र परमात्मा में निरन्तर प्रवेशशील उपासक)॥

२९२. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरु त भ्रातुर भुञ्जतः। माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥

पदपाठः— **वस्यान् इन्द्र असि मे पितुः उत भ्रोतुः अभुञ्जतः अ भुञ्जतः माता च मे छदयथः समा स मा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥**

अन्वयः—इन्द्र मे अभुञ्जतः पितुः उत भ्रातुः वस्यान्-असि वसो माता च समा ये छदयथः वसुत्वनाय राधसे ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् (मे) मेरे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता से (उत) और (भ्रातुः) भ्राता से (वस्यान्-असि) अधिक बसाने वाला पालने वाला तू है (वसो) हे बसाने वाले परमात्मन्! (माता च समा ये छदयथः) माता और तू इष्ट देव परमात्मा समान भाव से मेरा संवरण करते हो—रक्षण करते हो—पालते हो (वसुत्वनाय राधसे) अत्यन्त बसाने वाले "वसु शब्दात् त्वनप्रत्ययोऽतिशयार्थश्छान्दसः" धन प्राप्ति के लिये हमें अपनी शरण में लेता है।

भावार्थः—संसार में पिता और भ्राता सम्भव है पालन न कर सकें, परन्तु परमात्मन्! तू अत्यन्त बसाने वाला है—पालन करने वाला है, माता और परमात्मन्! तुम दोनों समान पालन करने वाले हो माता भी कभी पालन करना नहीं त्यागती, ऐसे परमात्मन्! तू भी पालन करना नहीं त्यागता। माता सांसारिक धन से या स्वशरीर गत दूध से पालन करती है परन्तु बसाने वाले परमात्मन्! तू तो अत्यन्त बसाने वाले आध्यात्मिक धन प्राप्ति के लिये हमें अपनी शरण देता है ॥ १० ॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥

२९३. **इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः। ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥**

पदपाठः— **इमे इन्द्राय सुन्विरे सोमासः दध्याशिरः दधि आशिरः तान् आ मदाय वज्रहस्त वज्र हस्त पीतये हरिभ्याम् याहि ओकः आ ॥ १ ॥**

अन्वयः—वज्रहस्त इमे दध्याशिरः सोमासः इन्द्राय सुन्विरे तान् मदाय पीतये आयाहि हरिभ्याम्-ओकः-आ ॥

पदार्थः—(वज्रहस्त) विश्व का शासन हाथ में रखने वाले परमात्मन्! "वज्रः शासः" [श० ३.८.१.५] (इमे) ये (दध्याशिरः) दधिध्यान के आश्रय—आश्रित "दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानमिति प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२.३४] "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६.८] (सोमासः) सोम-उपासनारस (इन्द्राय) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (सुन्विरे) निष्पन्न किये गये हैं (तान्) उन्हें (मदाय)

प्रीति के अर्थ (पीतये) पान करने-स्वीकार करने के लिये (आयाहि) आ-प्राप्त हो (हरिभ्याम्-ओकः-आ) दुःखाज्ञानापहरणशील तथा सुखाहरणशील ज्योति और आनन्द स्वरूपों से मेरे हृदय—आत्मा के निवास-गृह को आ प्राप्त हो। "ओक-इति निवासनाम" [निरु० ३.३]।

भावार्थः—हे विश्व के शासन को सम्भालने वाले परमात्मन्! ये ध्यान चिन्तन से मिश्रित उपासनारस तुझ ऐश्वर्यवान् के लिये निष्पन्न हैं उन्हें हमारे प्रति प्रीति के निमित्त पान करने-स्वीकार करने के लिये प्राप्त हो, दुःख अज्ञान के अपहरण करने वाले तथा सुख के आहरण करने वाले अपने ज्योति और आनन्दमय स्वरूपों के साथ मेरे निवास स्थान हृदय गृह को प्राप्त हो॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य देव जिसका है ऐसा उपासक)॥

२९४. **इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः। मधोः पपान**
उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः॥ २॥

पदपाठः— **इमे इन्द्र मदाय ते सोमाः चिकित्रे उक्थिनः मधोः पपानः**
उप नः गिरः श्रृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः गिः वनः॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र इमे उक्थिनः सोमाः ते मदाय चिकित्रे गिर्वणः मधोः पपान नः-गिरः उपशृणु स्तोत्राय रास्व॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (इमे) ये (उक्थिनः) प्रशस्ति वाले (सोमाः) उपासनारस (ते मदाय) तेरे प्रीति प्रसाद के लिये (चिकित्रे) जाने गये प्रसिद्ध किये गये हैं "कित ज्ञाने" [भ्वादि० लिटि] "इरयो रे" [अष्टा० ६.४.७६] (गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय (मधोः पपान) इनके मधु-मीठे रस को पान कर-स्वीकार कर (नः-गिरः) हमारी प्रार्थनाओं को (उपशृणु) स्वीकार कर अतः (स्तोत्राय रास्व) आत्मा—उपासक आत्मा के लिये "आत्मा वै स्तोत्रम्" [श० ५.२.२.२] स्वदर्शन या अपना आनन्द प्रदान कर।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! ये प्रशस्ति वाले उपासनारस तेरे प्रीति प्रसाद के लिये प्रसिद्ध किए जाते हैं, तू इनके मधु-मिठास को स्वीकार कर। हे स्तुतियों से सेवनीय परमात्मन्! प्रार्थनाओं को स्वीकार करके स्तोता-आत्मा के लिये अपने दर्शन या आनन्द को प्रदान कर॥ २॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च विश्वामित्रः केचित् (मेधा से निरन्तर गमन प्रवेश करने वाला और पवित्र परमात्मा की ओर जाने वाला उपासक या सबका मित्र उपासक)॥

२९५. **आ त्वा३ऽद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्।**
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम्॥ ३॥

पदपाठः— **आ तु अद्य अ द्य सबर्दुघाम् सबः दुघाम् हुवे गायत्रवेपसम् गायत्र वेपसम् इन्द्रम् धेनुम् सुदुघाम् सु दुघाम् अन्याम् इषम् उरुधाराम् अरंकृतम् अरम् कृतम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्द्र अद्य त्वा सबर्दुघाम् गायत्रवेपसम् उरुधाराम् सुदुघाम् अन्याम्-इषम् अलङ्कृतं धेनुम् आहुवे ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (अद्य) आज-अब (त्वा सबर्दुघाम्) सब कुछ दुहने वाली "रेफस्य स्थानविपर्यासः" यद्वा वर्-वरणीयमात्र सहित दोहन वाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसनीय कर्म प्रवृत्ति वाली "वेपस् कर्मनाम" [निघण्टु २.१] (उरुधाराम्) बहुधारा वाली (सुदुघाम्) सुगमता से दोहने-योग्य (अन्याम्-इषम्) विरली एषणीय—कमनीय (अलङ्कृतं धेनुम्) गुणों से सुभूषित गौ को (आहुवे) आमन्त्रित करता हूँ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! आज—इस जीवन में तुझ सब कुछ दुहने वाली या सबर्—वरणेय सहित अमृत दुहने वाली—प्रशंसनीय कर्मप्रवृत्ति वाली मोक्ष की ओर ले जाने वाली बहुत धाराओं वाली सुगमता से दुहने योग्य विरली एषणीय—कमनीय गुणालङ्कृत गौ को आमन्त्रित करता हूँ—ऐसी गौ मेरे हृदय में सदा वास करे ॥ ३ ॥

ऋषिः—नोधाः (नवन—स्तवन—स्तुति को धारण करने वाला उपासक[१])॥

२९६. **न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः। यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **न त्वा बृहन्तः अद्रयः अ द्रयः वरन्ते इन्द्र वीडवः यत् शिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किः तत् आ मिनाति ते ॥ ४ ॥**

अन्वयः—इन्द्र बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते मावते स्तुवते यत्-वसु शिक्षसि ते न किः आमिनाति ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (बृहन्तः) ऊँचे-ऊँचे या बड़े-बड़े (वीडवः) दृढ़—अचल—अडिग "वीड्वङ्ग दृढाङ्ग" [निरु० २.११] या बलवान् "वीलु बलनाम" [निघं० २.९] "मतुब्लोपश्छान्दसः" (अद्रयः) अदरणीय—न विदारण करने योग्य—न हटने हटाने योग्य सीमाप्रदेश "अद्रयः, अदरणीयाः क्वचित् पाठः" [निरु ९.९] "एष सूर्यो वा अद्रिजाः" [ऐ० ४.२०] या आदारण शस्त्रधारी जन "अद्रिरादृणात्येतेन" [निरु० ४.४] "मतुब्लोपश्छान्दसः" (त्वा)

१. "नोधाः-नवनं स्तुतिं दधाति" [निरु० ४.१६]।

तुझे (न वरन्ते) नहीं रोकते हैं तथा (मावते स्तुवते) मेरे जैसे ''युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्यः'' [वा० अष्टा० ५.१.६१] स्तुति करते हुए के लिये (यत्-वसु शिक्षसि) जो अध्यात्म धन—स्वानन्द धन तू देता है ''शिक्षति दानकर्मा'' [निघं० ३.२०] (ते) प्राप्त हुए तेरे इस धन को (न किः) नहीं कोई (आमिनाति) सर्वथा किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं कर सकता है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! ऊँचे-ऊँचे दृढ़—अचल—अडिग सीमा प्रदेश भी या बड़े-बड़े बलवान् आदारण—चकनाचूर कर देने वाले शस्त्रधारी जन भी तुझे मुझ उपासक तक पहुँचने के लिये नहीं रोक सकते तथा मेरे जैसे स्तुति करने वाले उपासक के लिये जो अध्यात्म धन स्वानन्द तू प्रदान करता है उसे भी कोई नहीं मिटा सकता है॥ ४॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से निरन्तर अतन गमन-प्रवेश करने वाला उपासक)॥

२९७. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥ ५॥

पदपाठः— कः ईम् वेद सुते सचा पिबन्तम् कत् वयः दधे अयम् यः पुरः विभिनत्ति वि भिनत्ति ओजसा मन्दानः शिप्री अन्धसः॥ ५॥

अन्वयः—सुते सचा पिबन्तम् कः-ईं वेद कत्-उ-वयः-दधे यः-अयम् शिप्री अन्धसः-मन्दानः ओजसा पुरः-विभिनत्ति॥

पदार्थः—(सुते सचा पिबन्तम्) उपासक के निष्पन्न उपासनारस होने पर उपासनारस निष्पादक के साथ समकाल ही पीते हुए—स्वीकार करते हुए को (कः-ईं वेद) कौन ही ऐसे जानता है जैसे अन्तरात्मा में विराजमान हो उसका पान करता है—स्वीकार करता है (कत्-उ-वयः-दधे) फलरूप में किसी विलक्षण जीवन—ऊँचे जीवन को—अध्यात्म जीवन को धारण करता है (यः-अयम्) जो यह (शिप्री) विभुगतिमान् (अन्धसः-मन्दानः) आध्यानीय उपासनारस के पान से प्रसाद को प्राप्त हुआ-प्रीति करता हुआ (ओजसा) स्वात्मशक्ति से (पुरः-विभिनत्ति) मानस भूमियों-मन बुद्धि चित्त अहङ्कार ''मन एव पुरः'' [श० १०.३.५.७] गुणस्वरूपों से खोलता है—विकसित करता है।

भावार्थः—उपासक के निष्पन्न उपासनारस को उसके साथ समकाल में ही पान करते हुए—स्वीकार करते हुए परमात्मा को कौन जानता है अर्थात् कोई नहीं केवल उपासक ही जान पाता है ऐसा कहा जाए तो कहा जावे कौन विलक्षण जीवन उसे धारण कर सकता है। वह विभुगतिमान् परमात्मा उपासनारस के पान से प्रसन्न हुआ अपने आत्मबल—आत्मशक्ति से उपासक के मन बुद्धि चित्त

अहङ्कार को खोलता है—विकसित करता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय इष्टदेव वाला उपासक)॥

२९८. यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि। अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय॥ ६ ॥

पदपाठः— यत् इन्द्र शासः अव्रतम् अ व्रतम् च्यावय सदसः परि अस्माकम् अꣳशुम् मघवन् पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम् वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्द्र यत् शासः अव्रतम् सदसः-परिच्यावय मघवन् अस्माकम् पुरुस्पृहम् अंशुम् वसव्ये-अधिबर्हय ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (यत्) जिस कारण (शासः) तू शासक—शिक्षक है मुझे यथावत् आचरण की शिक्षा देने वाला है अपने आन्तरिक सदुपदेश से (अव्रतम्) विहित कर्म सत्य आदि के विरुद्ध अनाचरणीय पापकर्म या पाप सङ्कल्प को (सदसः-परिच्यावय) (मघवन्) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (अस्माकम्) हमारे (पुरुस्पृहम्) बहुत वाञ्छनीय—स्वीकरणीय (अंशुम्) जीवन के लिये कल्याणकर उपासनारस प्राणस्वरूप को "अननाय शम्भवतीति" [निरु० २.५] "प्राण एवांशु" [श० ११.५.९.२] (वसव्ये-अधिबर्हय) मेरे वसने योग्य हृदयस्थान में अधिकाधिक बढ़ा।

भावार्थः—हे परमात्मन्! जबकि तू मेरा शासक है—शिक्षक है फिर मुझे आन्तरिक भाव से उपदेश देकर अज्ञात अनाचरणीय पाप कर्म या अचिन्त्य पापसङ्कल्प को मेरे अन्तःसदन—अन्तःकरण—मन से पृथक् कर दूर रख, हमारे जीवन के लिये बहुत वाञ्छनीय कल्याण कर प्राणस्वरूप उपासनारस को हमारे वसने योग्य हृदय स्थान में अधिकाधिक बढ़ा॥ ६ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय इष्टदेव वाला उपासक)॥
देवताः—बहवो लिङ्गोक्ता देवताः "इन्द्रपरायणाः" इन्द्र ऐश्वर्यवान् के अधीन मन्त्र में कहे हुए स्वरूप)॥

२९९. त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः। पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः॥ ७ ॥

पदपाठः— त्वष्टा नः दैव्यम् वचः पर्जन्यः ब्रह्मणः पतिः पुत्रैः पुत् त्रैः भ्रातृभिः अदितिः अ दितिः नु पातु नः दुष्टरम् दुः तरम् त्रामणम् वचः ॥ ७ ॥

अन्वयः—पुत्रैः-भ्रातृभिः नः-दैव्यं वचः त्वष्टा पर्जन्यः ब्रह्मणस्पतिः अदितिः नु पातु नः-दुष्टरं त्रामणं वचः ॥

पदार्थः—(पुत्रैः-भ्रातृभिः) पुत्रों भ्राताओं के सहित (नः-दैव्यं वचः) हमारे देव के प्रति प्रार्थना वचन को (त्वष्टा) जगत् का घड़ने वाला (पर्जन्यः) तृप्तिकर्ता जनक (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी (अदितिः) समस्त देवों का मातृरूप इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नु पातु) अवश्य पालें सफल करें, यतः (नः-दुष्टरं त्रामणं वचः) हमारा यह प्रार्थनावचन दुनिर्वार—पूरण करने योग्य रक्षा करने वाला है।

भावार्थः—जगन्निर्माता तृप्तिकर्ता जनक ब्रह्माण्ड का स्वामी, देवों मातृरूप परमात्मा पुत्रों भ्राताओं सहित किये गये प्रार्थना वचनों को सफल करें। यह हमारा प्रार्थना वचन दुर्निवार्य-त्राण कारक है ॥ ७ ॥

ऋषिः—बालखिल्याः (बल खिल—दो बलों परमात्मबल और जीवात्मबलों के अन्तर—स्वरूपों के जानने में कुशल जन)॥

३००. **कदा च न स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **कदा च न स्तरीः असि न इन्द्र सश्चसि दाशुषे उपोप उप उप इत् नु मघवन् भूयः इत् नु ते दानम् देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥**

अन्वयः—इन्द्र कदाचन स्तरीः-न-असि दाशुषे सश्चसि मघवन् ते देवस्य दानम् इत्-उ भूयः नु उप-उप पृच्यते ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (कदाचन) कभी भी (स्तरीः-न-असि) वधक नहीं होता है "स्तृणाति वधकर्मा" [निघं० २.१९] 'तत ईप्रत्ययश्छान्दसः कर्तरि' (दाशुषे सश्चसि) आत्मदान या उपासनारस प्रदान करने वाले के लिये गति करता है अपने को पहुँचाता है "सश्चसि गतिकर्मा" [निघं० २.१४] "देहि मे ददामि ते" [यजु० ३.५०] (मघवन्) हे प्रशस्त धन वाले परमात्मन्! (ते देवस्य दानम्) तुझ देव का दान आत्मस्वरूप का प्रदान—ब्रह्मानन्द दान (इत्-उ) अवश्य ही (भूयः) अधिकाधिक (नु) निश्चय (उप-उप पृच्यते) समीप उपपृक्त—उपसंयुक्त होता है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू कभी भी उपासक का वधक नहीं होता है अपितु हितसाधक होता है, आत्मदान आत्मसमर्पण करने वाले या उपासनारस देने वाले के लिये तू भी अपने आपको पहुँचाता है यह तुझ देव का विचित्र दान है जो उपासक के आत्मदान या उपासनारस दान से भी निश्चय अधिक दान है वरदान है जो कि उपासक के अन्दर समीप से समीप उपसंयुक्त हो जाता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः (पवित्र देव की ओर निरन्तर गमनशील)॥

३०१. युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः। अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि॥ ९॥

पदपाठः— युङ्क्ष्व हि वृत्रहन्तम वृत्र हन्तम हरीइति इन्द्र परावतः अर्वाचीनः अर्व अचीनः मघवन् सोमपीतये सोम पीतये उग्रः ऋष्वेभिः आ गहि॥ ९॥

अन्वयः—मघवन् वृत्रहन्तम-इन्द्र परावतः-अर्वाचीनः हि हरी युङ्क्ष्व सोमपीतये उग्रः ऋष्वेभिः-आगहि॥

पदार्थः—(मघवन् वृत्रहन्तम-इन्द्र) हे प्रशस्त धन वाले अत्यन्त पापाज्ञान नाशक परमात्मन्! तू (परावतः-अर्वाचीनः) दूर दूर में वर्तमान विभु होता हुआ ''त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः'' [ऋ० १.५२.४] या मोक्ष-धाम से—''अन्तो वै परावतः'' [ऐ० ५.२] अर्वाक्-इधर हृदयस्थ हुआ (हि) अवश्य (हरी युङ्क्ष्व) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले अपने दया और प्रसाद धर्मों को युक्त होकर (सोमपीतये) उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये (उग्रः) ऊँचे बल वाला होता हुआ (ऋष्वेभिः-आगहि) अपने महान् गतिक्रमों प्रापणधर्मों से आ—आजा ''ऋष्वः-महन्नाम'' [निघं० ३.३] ''ऋषी गतौ'' [तुदादि०] ततः क्वन् प्रत्ययः।

भावार्थः—हे प्रशस्त धन वाले अत्यन्त पापाज्ञानान्धकारनाशक परमात्मन्! तू दूर से दूर में वर्तमान अपने विभुरूप में होने पर भी इधर हृदयस्थ होकर दुःखापहरण करने वाले और सुखाहरण करने वाले अपने दया और प्रसाद धर्मों को मेरे अन्दर युक्त कर उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये ऊँचे बलवाला होता हुआ अपने महान् गतिक्रमों या प्रापण धर्मों में आ॥ ९॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधावाला जन)॥

३०२. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः। स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥ १०॥

पदपाठः— त्वाम् इदा ह्यः नरः अपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः सः इन्द्र स्तोमवाहसः स्तोम वाहसः दूह श्रुधि उप स्वसरम् आ गहि॥ १०॥

अन्वयः—वज्रिन् भूर्णयः-नरः त्वाम् ह्यः इदा अपीप्यन् सः इन्द्र इह स्तोमवाहसः-उपश्रुधि स्वसरम्-आगहि॥

पदार्थः—(वज्रिन्) हे ओजस्वी परमात्मन्! ''वज्रो वा ओजः'' [श०

८.४.१.२०] (भूर्णयः-नरः) भरण—तुझे अपने अन्दर भरने स्थापित करने वाले उपासक जन (त्वाम्) तुझे (ह्यः) गए कल—गत समय में (इदा) और अब (अपीप्यन्) अपना उपासनारस पिलाते रहे—पिलाते हैं (सः) वह (इन्द्र) तू परमात्मन्! (इह) यहाँ फलदान प्रसङ्ग या वरदान प्रसङ्ग में या प्रतिदान प्रसङ्ग में (स्तोमवाहसः-उपश्रुधि) स्तुति को पहुँचाने वाले हम जनों को उपश्रुत कर—उपकृत कर अपना बना, अतः (स्वसरम्-आगहि) हमारे हृदय गृह को आ—प्राप्त हो ''स्वसराणि गृहाणि'' [निघं० ३.४] जिससे उनके अभीष्ट को जानकर हमें उपकृत कर सकें।

भावार्थः—हे ओजस्वी परमात्मन्! तुझे अपने अन्दर भरने स्थापित करने वाले उपासक जन कल—पीछे और अब भी उपासनारस पान कराते रहे और अब भी पान कराते हैं, स्तुति पहुँचाने वाले उपासकों को भी उपकृत कर—करता है—उन हमको कभी उपेक्षित नहीं करता है अतः उपकृत करने के हेतु हमारे हृदय गृह को आ—प्राप्त हो॥ १०॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवताः—उषा 'इन्द्रप्रसक्तोषाः' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध उषा—ज्ञानज्योति)॥

२०३. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥ १॥

पदपाठः— प्रति उ अदर्शि आयती आ यती उच्छन्ती दुहिता दिवः अप उ मही वृणुते चक्षुषा तमः ज्योतिः कृणोति सूनरी सू नरी॥ १॥

अन्वयः—दिवः-दुहिता आयती उच्छन्ती प्रत्यदर्शि-उ मही सूनरी चक्षुषा तमः उ-अपवृणुते ज्योतिः-कृणोति॥

पदार्थः—(दिवः-दुहिता) सूर्य की दुहिता—ज्ञानप्रकाशक परमात्मा को दूहने वाली श्रद्धा प्रज्ञा का उत्कृष्टरूप ज्ञानज्योति ''श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता'' [श० १२.७.३.११] ''प्रज्ञा पूर्वरूपं श्रद्धोत्तररूपम्'' [शां—आ० ३.७, कौ० उ० १.७] (आयती) आती हुई—प्राप्त होती हुई (उच्छन्ती) अज्ञान एवं संसारमोह को हटाती हुई (प्रत्यदर्शि-उ) उपासकों द्वारा प्रतिलक्षित होती है प्रत्यक्ष होती है ''लुप्तोपमावाचकालङ्कारः'' जैसे (मही सूनरी) महत्त्ववाली उषा ''सूनरी उषो नाम'' [निघं० १.८] (चक्षुषा) 'चक्षुषः' 'आकारादेशश्छान्दसः' नेत्र के आगे आने वाले (तमः) अन्धकार को (उ-अपवृणुते) निश्चय हटाती है (ज्योतिः-कृणोति) प्रकाश को सामने करती है।

भावार्थः—ज्ञानप्रकाशक परमात्मा की दूहने वाली उपासक के अन्दर उसके दर्शनामृत को खींच ले आने वाली श्रद्धा जो कि प्रज्ञा से भी ऊँची ज्ञानज्योति उपासक के अन्दर आती हुई अज्ञान एवं सांसारिक मोह को हटाती मिटाती हुई उपासक द्वारा प्रत्यक्ष होती है जैसे महत्त्वपूर्ण प्रातःकालीन उषा—प्रभा नेत्र के आगे आने वाले अन्धकार को नितान्त हटाती है और प्रकाश को सामने कर देती है ॥ १ ॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवताः—'अश्विनौ' इन्द्रसम्बद्धौ (परमात्मा के प्रकाश और आनन्द गुणस्वरूप)॥

३०४. **इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **इमाः उ वाम् दिविष्टयः उस्रा उ स्रा हवन्ते अश्विना अयम् वाम् अह्वे अवसे शचीवसू शची वसूइति विशंविशम् विशम् विशम् हि गच्छथः ॥ २ ॥**

अन्वयः—उस्रा-अश्विना वाम् इमाः-दिविष्टयः हवन्ते वाम् अवसे अयम्-अह्वे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥

पदार्थः—(उस्रा-अश्विना) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मा के बसाने वाले व्यापनशील ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस (वाम्) तुम दोनों को (इमाः-दिविष्टयः) ये दिव्य—अमृत मोक्ष को चाहने वाली प्रजाएँ—उपासक जन (हवन्ते) बुलाते हैं—आकर्षित करते हैं (वाम्) जैसे तुम दोनों को (अवसे) रक्षार्थ (अयम्-अह्वे) यह मैं बुलाता हूँ—आकर्षित करता हूँ वैसे तुम (शचीवसू) प्रज्ञा से वसने वाले (विशं विशं हि गच्छथः) प्रत्येक मनुष्य ही को प्राप्त होते हो।

भावार्थः—हे वसाने वाले परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस धर्मों तुम्हें मोक्ष को चाहने वाले मुमुक्षु उपासक जन अवश्य अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं—आकर्षित करते हैं, सो यह मैं भी अपनी रक्षार्थ तुम्हें आमन्त्रित करता हूँ, वैसे तुम प्रज्ञा से वसने वाले होकर प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते हो प्रज्ञावान् मनुष्य तुम्हें अपने अन्दर अवश्य धारण करता है ॥ २ ॥

देवताः—'अश्विनौ' इन्द्रसम्बद्धौ (परमात्मा के प्रकाश और आनन्द गुणस्वरूप)॥

३०५. **कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः। घ्नता वामश्नया क्षपमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **कु स्थः कः वाम् अश्विना तपानः देवा मर्त्यः घ्नता वाम् अश्नया क्षपमाणः अंशुना इत्थम् उ आत् ऊ अन्यथा अन् यथा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अश्विना देवा कः कुष्ठः-मर्त्यः वां तपानः वाम् अश्नया घ्नता-अंशुना इत्थम्-उ यथा-आघ्नन्-क्षपमाणः इत्थम्-उ॥

पदार्थः—(अश्विना देवा) हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस देवो! (कः कुष्ठः-मर्त्यः) कौन पृथिवीस्थ—प्रथित संसार का मरणशील नश्वर पदार्थ (वां तपानः) तुम्हारा तापक—अभिभूत करने वाला है? कोई नहीं (वाम्) तुम्हारा (अश्नया घ्नता-अंशुना) व्यापने वाले तुम्हें प्राप्त होने वाले उपासनारस से ''हन् हिंसागत्योः'' [अदादि०] 'इत्यत्र गत्यर्थो हन् धातुः' (इत्थम्-उ) (यथा-आघ्नन्-क्षपमाणः) ऐसे ही जैसे अन्न आदि भोजन साधनवान् ऐश्वर्यशाली होता है ''क्षयति-ऐश्वर्यकर्मा'' [निघं० २.२१] (इत्थम्-उ) ऐसे ही ऐश्वर्यशाली होते हैं।

भावार्थः—हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस दिव्य धर्मो! इस प्रथित संसार में मरणधर्मी नश्वर पदार्थ कौन है? अर्थात् कोई नहीं जो तुम्हारा तापक—विरोधी अभिभूत करने वाला हो, अपितु व्यापने वाले तुम्हें प्राप्त होने वाले उपासनारस से तुम ऐसे ऐश्वर्यशाली बन जाते हो जैसे भोजन साधन वाला जन ऐश्वर्यशाली हो जाता है, अतः मेरे उपासनारस से प्रभु के ज्ञानप्रकाश और अमृतानन्द तुम मेरे अन्दर बढ़ते रहो॥ ३॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (कण्वाग्र—ऊँचा मेधावीजन)॥ देवताः—'अश्विनौ' इन्द्रसम्बद्धौ (परमात्मा के प्रकाश और आनन्द गुणस्वरूप)॥

३०६. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु। तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे॥ ४॥

पदपाठः— अयम् वाम् मधुमत्तमः सुतः सोमः दिविष्टिषु तम् अश्विना पिबतम् तिरोअह्न्यम् तिरः अह्न्यम् धत्तम् रत्नानि दाशुषे॥ ४॥

अन्वयः—अश्विना वाम् दिविष्टिषु अयं मधुमत्तमः सोमः सुतः तं तिरः-अह्न्यं पिबतम् दाशुषे रत्नानि धत्तम्॥

पदार्थः—(अश्विना) हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश करने वाले और आनन्दरस देने वाले धर्मों (वाम्) तुम्हारे लिये (दिविष्टिषु) दिव्य अमृतलोक मोक्ष कामनार्थ अध्यात्म प्रसङ्गों में या निमित्तों में (अयं मधुमत्तमः सोमः) यह अत्यन्त मधुमान्—माधुर्ययुक्त उपासनारस (सुतः) निष्पन्न है तैयार है (तं तिरः-अह्न्यं पिबतम्) उस निरन्तर पूर्व दिनों से चले आये अर्थात् दीर्घकाल से परिपक्व या सम्प्रति—अभी 'तिरः सतः.........प्राप्तस्य नाम'' 'तिरस्तीर्णं भवति' [निरु० ३.००] आज ही प्रसिद्ध किये गये निर्दोष निर्मल उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो (दाशुषे) उपासनारस द्वारा अपने को प्रदान—समर्पण करने वाले—उपासक के लिये (रत्नानि धत्तम्) रमणीय—अध्यात्म सुख साधनों को धारण कराओ या दो।

भावार्थः—परमात्मा की ज्ञानप्रकाश तथा आनन्दरस प्रसारक शक्तियो ! तुम्हारे लिये दिव्य अमृतलोक मोक्षकामनार्थ अध्यात्म प्रसङ्गों या निमित्तों में यह अत्यन्त मीठा—श्रद्धा भरा उपासनारस तैयार है उसे निरन्तर पूर्व दिनों से चले आए—दीर्घकाल से परिपक्व हुए या अभी आज ही प्रसिद्ध किए निर्दोष निर्मल सबल को पान करो—स्वीकार करो पुनः उपासनारस प्रदान द्वारा अपना समर्पण करने वाले उपासक के लिए रमणीय अध्यात्म सुख साधनों को धारण कराओ—प्रदान करो ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से निरन्तर गमन परमात्मा में प्रवेश करने वाला और पवित्र परमात्मा में निरन्तर प्रवेश करने वाला उपासक) ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १
३०७. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या । भूर्णिं मृगं
२र ३ १ २र ३ १ २
न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र १ २र १ २र १ २र ३ २ ३ १ २र
पदपाठः— आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन् अहम् ज्या भूर्णिम्
३ २ २ १ २र ३ २ १ २र २ ३
मृगम् न सवनेषु चुक्रुधम् कः ईशानम् न याचिषत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अहं सदा याचन् त्वा भूर्णिम् चुक्रुधम् आ ज्या मृगं न सवनेषु सोमस्य गल्दया कः-ईशानं न याचिषत् ॥

पदार्थः—(अहं सदा याचन्) मैं उपासक सदा याचना करता हुआ (त्वा भूर्णिम्) तुझ भरण पालन करने वाले परमात्मा को "भृञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] "घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णयः" [उणा० ४.५२] 'निप्रत्ययान्तो निपात्यते' (चुक्रधम्) 'क्रोधयेयम्' "क्रुधधातोर्णिजन्ताच्चङि छान्दसं रूपम्" मैं क्रुद्ध करूँ (आ) यह ऐसा करना भर्त्सनीय है मेरा निन्दनीय कर्म है "आ भर्त्सनाश्चर्ययोः" [अव्ययार्थ-निबन्धनम्] (ज्या मृगं न) 'ज्या ज्यया' वाणसहितधनुष डोरी से पीड़ित किए मृग—वन्य पशु को जैसे क्रुद्ध कर देते हैं ऐसी याचना से भरणकर्ता परमात्मा को मैं क्रुद्ध करूँ परन्तु (सवनेषु) अध्यात्म यज्ञावसरों में (सोमस्य गल्दया) उपासनारस के गालन—स्रावण से प्रवाहित प्रेरित करने के द्वारा मैं याचना करता हूँ "गल्दया गालनेन" [निरु० ६.२४] (कः-ईशानं न याचिषत्) कदाचित् क्रुद्ध होने की आशङ्का से कौन स्वामी को याचना नहीं कर सके—कर सकेगा।

भावार्थः—भरणपोषण करने वाले परमात्मा से सदा याचना करके क्रुद्ध करना ही है विना उपासनारस प्रेरित—समर्पित करे, केवल याचना करते रहने से परमात्मा प्रसन्न नहीं होता, किन्तु बाण से ताडित सिंह की भाँति अपने पर उसे क्रुद्ध करना समझना चाहिए, हाँ अध्यात्मयज्ञ प्रसङ्गों में उसे उपासनारस समर्पण करते हुए याचना करें उस स्थिति में क्रुद्ध होने की आशङ्का नहीं, कौन होगा जो याचना न करे अर्थात् अभागा ही होगा ॥ ५ ॥

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में निरन्तर गति प्रवृत्ति वाला उपासक)॥

३०८. **अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति। उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा॥ ६॥**

पदपाठः— **अध्वर्यो द्रावय त्वम् सोमम् इन्द्रः पिपासमति उप उ नूनम् युयुजे वृषणा हरीइति आ च जगाम वृत्रहा वृत्र हा॥ ६॥**

अन्वयः—अध्वर्यो त्वम् सोमं द्रावय इन्द्रः पिपासति उ नूनम् वृषणा हरी युयुजे च वृत्रहा-आजगाम॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्वर—अध्यात्मयज्ञ को प्राप्त होने वाले उपासक! (त्वम्) तू (सोमं द्रावय) उपासनारस को निष्पन्न कर (इन्द्रः पिपासति) परमात्मा उसे पीना चाहता है—स्वीकार करना चाहता है, पुनः (उ नूनम्) हाँ निश्चय (वृषणा) सुखवृष्टि करने वाले (हरी) दुःखापहरण करने और सुखाहरण करने वाले दया और प्रसाद धर्मों को (युयुजे) युक्त करता (च) और (वृत्रहा-आजगाम) पाप मिटाने वाला आता है।

भावार्थः—हे उपासक! तू उपासनारस निष्पादन कर परमात्मा इसे अवश्य पान करेगा—स्वीकार करेगा तभी वह अपने दया और प्रसाद धर्म को उपासक के अन्दर युक्त करेगा और पापनाशक साक्षात् होगा॥ ६॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

३०९. **अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः। पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः॥ ७॥**

पदपाठः— **अभि सतः तत् आ भर इन्द्र ज्यायः कनीयसः पुरूवसुः पुरू वसुः हि मघवन् बभूविथ भरेभरे भरे भरे च हव्यः॥ ७॥**

अन्वयः—ज्यायः-इन्द्र कनीयसः सतः तत् अभि-आभर मघवन् पुरूवसुः-हि च भरे भरे हव्यः-बभूविथ॥

पदार्थः—(ज्यायः-इन्द्र) हे मेरे ज्येष्ठ श्रेष्ठ—बड़े भ्राता परमात्मन्! "स नो बन्धुर्जनिता" [यजु० ३२.१०] (कनीयसः सतः) मुझ छोटे भ्राता सदाचारी होते हुए के (तत्) उस दातव्य मोक्षधन को (अभि-आभर) मेरी ओर आभरित कर—निःसङ्कोच मुझे देदे (मघवन्) हे प्रशंसनीय धनवाले! (पुरूवसुः-हि) तू बहुत धनवाला है ही—धन की कमी तेरे पास नहीं (च) और (भरे भरे हव्यः-बभूविथ) संसार में भी प्रत्येक भरण अवसर पर—जब-जब मैं भरणीय होऊँ

किसी भी प्रकार ह्रास में होऊँ तब तू मेरा देने वाला हो "हव्यः कर्तरि यत्-कृत्यल्युटो बहुलम्" [अष्टा० ३.३.११३]।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरा मेरा भ्रातृसम्बन्ध भी है तू मेरा बड़ा भ्राता है छोटा भ्राता बड़े भ्राता का भरणीय होता है और मैं तो सदाचारी तेरा अनुवर्ती हूँ अतः मुझ छोटे भ्राता के देने योग्य मोक्षधन मेरे अन्दर आभरित कर—मुझे उदारता से दे दे, हे प्रशंसनीय धन देने वाले परमात्मन् तू तो बहुत धन वाला है अतः संसार में भी भरणीय पोषण योग्य ह्रास प्रसङ्ग में तू मुझे देने वाला बना रहे॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

३१०. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्॥ ८॥

पदपाठः— यत् इन्द्र यावतः त्वम् एतावत् अहम् ईशीय स्तोतारम् इत् दधिषे रदावसो रद वसो न पापत्वाय रंꣳसिषम्॥ ८॥

अन्वयः—रदावसो-'रदवसो' इन्द्र यद् यावतः त्वम् अहम्-ईशीय स्तोतारम्-इत् दधिषे पापत्वाय न रंसिषन्॥

पदार्थः—(रदावसो-'रदवसो' इन्द्र) हे धन की खान परमात्मन्! "वसूनां धनानां रदः खनिः" "राजदन्तादिषु परम्" [अष्टा० २.२.३१] "वसुशब्दस्य परनिपातः" "रदति खनतिकर्मा" [निघं० २.२७] 'रद्यते सुवर्णादिधनं यस्माद् स रदः' घञर्थे कविधानम् (यद् यावतः) यदि जितने धन ज्ञान आदि का (त्वम्) स्वामी है (अहम्-ईशीय) मैं स्वामी हो जाऊँ तो (स्तोतारम्-इत्) स्तोता—स्तुति करने वाले के प्रति ही (दधिषे) धर दूँ—दे डालूँ (पापत्वाय) पापपन—पापी जन के लिये (न रंसिषन्) नहीं रमण चाहता—नहीं दूँ।

भावार्थः—हे धन की खान परमात्मन्! जितने धन ऐश्वर्य का तू स्वामी है यदि उतने धन का मैं उपासक भी स्वामी बन जाऊँ तो स्तुति करने वाले को दे डालूँ धन की खान तू है मैं नहीं, यदि मैं भी होता तो माँगता क्यों! अतः तू मुझ स्तोता को अपना धन खुल कर दे। यह स्वार्थ धन प्राप्ति में हेतु भावनात्मक है। अतिशयालङ्कार दिया है, पापी को कभी न देता, तू पापी को न दे, परन्तु अपने उपासक धर्मात्मा को अवश्य दे और मैं दूँगा ही, जब तेरा उपासक इतना उदार है, तो तू भी तो महान् उदार है वस्तुतः तेरा धन तेरे लिये है ही नहीं, तूने तो उपासक के लिये ही रखा हुआ है॥८॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधा वाला)॥

३११. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ ९॥

पदपाठः— **त्वम् इन्द्र प्रतूर्त्तिषु प्र तूर्त्तिषु अभि विश्वाः असि स्पृधः अशस्तिहा अशस्ति हा जनिता वृत्रतूः वृत्र तूः असि त्वम् तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥**

अन्वयः—इन्द्र त्वम् प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि-असि अशस्तिहा जनिता त्वम् तरुष्यतः-तूर्य वृत्रतूः-असि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) हमारे आत्मभाव को हिंसित करने वाले प्रसङ्गों में होने वाला "प्रपूर्वकात्-तुर्वि हिंसार्थः" [भ्वादि०] "अधिकरणे क्तिन्" (विश्वाः स्पृधः) समस्त विरोधी भावनाओं—आसुरी वृत्तियों को (अभि-असि) अभिभूत करता है—तिरस्कृत करता है—विनष्ट कर देता है (अशस्तिहा) अप्रशस्ति—अकीर्तिकर—अनिष्ट का नाशक अपितु (जनिता) शस्ति—कीर्तिकर अभीष्ट का जनयिता उत्पन्नकर्ता एवं (त्वम्) तू (तरुष्यतः-तूर्य) हे हिंसकों को हिंसित करने वाले! "तरुष्यति-हन्तिकर्मा" [निरु० ५.२] (वृत्रतूः-असि) पापों का नाशक है।

भावार्थः—परमात्मा हम उपासकों के आत्मभाव को हिंसित करने वाले प्रसङ्गों में समस्त विरोधी वृत्तियों को उठने नहीं देता तथा अकीर्तिकर अनिष्ट को नष्ट करता और कीर्तिकर अभीष्ट को प्राप्त कराता है पापों को नष्टकर्ता अपितु हमें पीड़ा पहुँचाने वाले का भी नाशक बनता है ॥

ऋषिः—नोधाः (नवन—स्तवन को धारण करने वाला)॥

३१२. **प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि। न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥**

पदपाठः— **प्र यः रिरिक्षे ओजसा दिवः सदोभ्यः परि न त्वा विव्याच रजः इन्द्र पार्थिवम् अति विश्वम् ववक्षिथ ॥ १० ॥**

अन्वयः—यः ओजसा दिवः-सदोभ्यः-परि प्ररिरिक्षे पार्थिवं रजः त्वा न विव्याच विश्वम्-अति ववक्षिथ ॥

पदार्थः—(यः) जो तू इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा! (ओजसा) आत्मिक ओज—स्वगत आत्मस्वरूप बल से (दिवः-सदोभ्यः-परि) द्युमण्डल के प्रदेश सीमाओं से (प्ररिरिक्षे) प्रकर्ष से अर्थात् बहुत अतिरिक्त—पृथक् होकर भी वर्तमान है तथा (पार्थिवं रजः) पृथिवीक्षेत्र का रज—परिसीमित लोक—पिण्ड या धूलभाग (त्वा न विव्याच) तुझे नहीं व्यापता है, अपितु (विश्वम्-अति ववक्षिथ) विश्व का अतिक्रमण कर उसे वहन करता है सम्भालता चलाता है या हमें विश्व से अलग स्वरूप मोक्ष में ले जाना चाहता है।

भावार्थः—परमात्मा सबल स्वात्मस्वरूप से द्युमण्डल के सीमावर्ती प्रदेश को पार किए हुए विराजमान हैं तथा पृथिवीक्षेत्र के सीमावर्ती लोक धूलभाग की व्याप्ति से परे है अपितु समस्त लोकमण्डल या संसार से अलग होकर उसे सम्भालने और चलाने वाला एवं विश्व से परे हमें मोक्ष में ले जाना चाहता है ऐसा एक मात्र परमात्मा है तब हम ऐसे परमात्मा के अनुकूल हों उसकी उपासना करें॥ १०॥

नवम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

३१३. **असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच। बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु॥ १॥**

पदपाठः— **असावि देवम् गोऋजीकम् गो ऋजीकम् अन्धः नि अस्मिन् इन्द्रः जनुषा ईम् उवोच बोधामसि त्वा हर्यश्व हरि अश्व यज्ञैः बोध नः स्तोमम् अन्धसः मदेषु॥ १॥**

अन्वयः—गोऋजीकं देवम्-अन्धः-असावि ईम्-इन्द्रः-अस्मिन् जनुषा नि उवोच हर्यश्व यज्ञैः-त्वा बोधामसि अन्धसः-मदेषु नः-स्तोमं बोध॥

पदार्थः—(गोऋजीकं देवम्-अन्धः-असावि) वाणी से—स्तुति से ऋजुरूप "ऋज् धातोः—ईकक् प्रत्यय औणादिकः" दिव्य आध्यानीय उपासनारस निष्पन्न को (ईम्-इन्द्रः-अस्मिन् जनुषा नि-उवोच) यह परमात्मा यहाँ स्वभावतः या निष्पन्न उपासनारस के साथ ही निरन्तर समवेत होता है "उच समवाये" [दिवादि०] यह हम जानते हैं अतः (हर्यश्व) हे ऋक् और साम—स्तुति और उपासना द्वारा प्राप्ति के साधन वाले परमात्मन्! (यज्ञैः-त्वा बोधामसि) अध्यात्म यज्ञों से तुझे हम अपनी ओर बोधित—सम्बोधित करते हैं, अतः (अन्धसः-मदेषु) आध्यानीय—समन्तात् ध्यान के हर्षों के निमित्तों में (नः-स्तोमं बोध) हमारे स्तुतिवचन को जान-जानकर अपनी कृपा से हमारा कल्याण कर।

भावार्थः—परमात्मन्! हम तेरे लिये स्तुति वाणी से मिश्रित—सहित उपासनारस जब तैयार करते हैं तू इसमें स्वभावतः या इसके तैयार होने के साथ ही समवेत हो संयुक्त होता है स्तवन उपासना से प्राप्त होने वाले परमात्मन् तुझे अध्यात्म यज्ञों से सम्बोधित करते हैं बुलाते हैं हमारे ध्यान प्रसङ्ग के हर्ष आनन्दों के निमित्तों में हमारे द्वारा स्तुतिवचन को जान—हमारा कल्याण करना भी तेरा स्वभाव है॥ १॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

३१४. **योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि। असो यथा नोऽ विता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः॥ २॥**

पदपाठः— **योनिः ते इन्द्र सदने अकारि तम् आ नृभिः पुरुहूत पुरु हूत प्र याहि असः यथा नः अविता वृधः चित् ददः वसूनि ममदः च सोमैः॥ २॥**

अन्वयः—इन्द्र सदने ते योनिः-अकारि पुरुहूत नृभिः-आ प्र याहि यथा नः-अविता वृधः-चित्-असः वसूनि ददः सोमैः-ममदः॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (सदने) हृदयसदन में (ते योनिः-अकारि) तेरा घर—अवकाशरूप स्थान बनाया है "योनिः-गृहम्" [निघं० ३.४] (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार से बुलाने योग्य परमात्मन्! (नृभिः-आ प्र याहि) हम दिव्य प्रजाओं उपासक आत्माओं के साथ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] समन्तरूप से प्राप्त हो—विराजो (यथा नः-अविता वृधः-चित्-असः) जिस प्रकार हमारा रक्षकवर्धक भी हो—बने (वसूनि ददः) धनों को दे (च) और (सोमैः-ममदः) हमारे उपासनारसों से तू हर्षित हो।

भावार्थः—हम उपासक जन अपने हृदय में परमात्मा के लिये अवकाश बनावें जिससे वह हम उपासक आत्माओं के साथ भली प्रकार विराजमान हो सके और विराजकर हमारा रक्षक तथा वृद्धिकर्ता भी हो सके हमारे वसाने योग्य उपयोगी ज्ञान धन भी दे सके यह सब हमारे उपासनारसों से प्रसन्न होकर ही कर सकेगा॥ २॥

ऋषिः—गातुः (परमात्मा का गान करने वाला)॥

३१५. **अदर्दरुत् समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः। महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान् हन्॥ ३॥**

पदपाठः— **अदर्दः उत्सम् उत् सम् असृजः वि खानि त्वम् अर्णवान् बद्बधानान् अरम्णाः महान्तम् इन्द्र पर्वतम् वि यत् वरिति सृजत् धाराः अव यत् दानवान् हन्॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्र त्वम् उत्सम्-अदर्दः खानि वि-असृजः बद्बधानान्-अर्णवान् अरम्णाः यत् महान्तं पर्वतं विवः यत् धाराः-सृजत् दानवान्-अवहन्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वम्) तू (उत्सम्-अदर्दः) उत्सदन ''उत्स उत्सदनात्'' [निरु० १०.९] ''दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्'' [अथर्व० १०.७.३] ऊपर मस्तिष्क स्थान को ''असौ द्युलोक उत्सः'' [जै० १.१२.२१] खोलता है जिसमें से ज्ञान प्रवाह चलते हैं (खानि वि-असृजः) छिद्रों—इन्द्रियों को विसर्जित करता है विकसित करता है जिनमें से बाहर से गन्ध आदि अन्दर प्रविष्ट होते हैं (बद्बधानान्-अर्णवान्) नाडियों में रक्त को बाँधने वाले ''बध बन्धने'' [भ्वादि०] प्राणों को ''प्राणो वा अर्णवः'' [श० ७.५.२.५१] (अरम्णाः) विसर्जित किया—छोड़ा ''रम्णाति विसर्जनकर्मा'' [निरु० १०.९] (यत्) जबकि (महान्तं पर्वतं विवः) महान् महत्त्वपूर्ण पर्व वाले—अङ्गों जोड़ों वाले शरीर को स्पष्ट—व्यक्त किया (यत्) 'यतः' (धाराः-सृजत्) जीवन धाराओं—जीवन शक्तियों को सर्जित किया—छोड़ा (दानवान्-अवहन्) पुनः पुनः जन्म देने वाले कारणों को ''दानवं दानकर्माणम्'' [निरु० १०.९] नष्ट करता है।

भावार्थः—परमात्मा सब मनुष्यों के सामान्यरूप से और उपासकों के विशेषरूप से मूर्धा—मस्तिष्क को खोलता है जिससे ज्ञान प्रवाह चलें, इन्द्रियों को विकसित करता है जिनमें गन्धादि प्रविष्ट होते हैं, नाड़ियों में रक्त को बान्धने वाले प्राणों को छोड़ता है जिनसे रक्तसञ्चार शरीर में होता है, महत्त्वपूर्ण जोड़ों वाले शरीर को व्यक्त बनाता है जीवन धाराओं को भी उसमें छोड़ता है। पुनः पुनः जन्म देने वाले कारणों को भी नष्ट करता है, ऐसा परमात्मा सदा उपासनीय है॥ ३॥

ऋषिः—पृथुर्वैन्यः (वेन—सूर्यसमान कान्तिमान् परमात्मा में प्रथनशील जीवन का प्रसार करने वाला उपासक)॥

३१६. **सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम्। आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः॥ ४॥**

पदपाठः— **सुष्वाणासः इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तः चित् तुविनृम्ण तुवि नृम्ण वाजम् आ नः भर सुवितम् यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः त्वा उताः॥ ४॥**

अन्वयः—इन्द्र सुष्वाणासः त्वा स्तुमसि तुविनृम्ण वाजं सनिष्यन्तः-चित् नः सुवितम्-आभर यस्य कोना तना त्वोता-त्मना-आसह्याम॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (सुष्वाणासः) हम उपासनारस को निष्पन्न करने के हेतु ''षुञ् अभिषवे'' [स्वादि०] ''ततः कानच् प्रत्ययः'' (त्वा स्तुमसि) तेरी स्तुति करते हैं (तुविनृम्ण) हे बहुत धन वाले! (वाजं सनिष्यन्तः-चित्) अमृत अन्न—मोक्षभोग के सेवन करने के हेतु भी ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३] तेरी स्तुति करते हैं (नः सुवितम्-आभर) हमारे लिये आभ्युदयिक

सुख भी आभरित कर (यस्य कोना तना) 'कोनानि तनानि' ''कवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] जिसके गमक उपकरण—उपयोग विस्तारक धन हैं (त्वोता-त्मना-आसह्याम) तुझ से रक्षित हुए आत्मस्वरूप से हम किन्हीं विरोधी व्यवहारों को सदा सहन करते रहें।

भावार्थः—हम उपासनारस निष्पन्न करें इसलिये तथा उस बहुत धन वाले परमात्मा से अमृतभोग प्राप्ति के लिये भी उसकी स्तुति करें। सांसारिक सच्चा सुख भी हमारे अन्दर भरता है उस परमात्मा से उपकारक धनों और साधनों को पाकर विरोधियों को सहन कर सकें॥४॥

ऋषिः—सप्तयुगः (सातों छन्दों युक्त वाणियों से परमात्मा की स्तुति करनेवाला)॥

३१७. **जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्। विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥५॥**

पदपाठः— **जगृह्म ते दक्षिणम् इन्द्र हस्तम् वसुयवः वसुपते वसु पते वसूनाम् विद्म हि त्वा गोपतिम् गो पतिम् शूर गोनाम् अस्मभ्यम् चित्रम् वृषणम् रयिम् दाः॥५॥**

अन्वयः—वसुपते-इन्द्र वसूनां वसूयवः ते दक्षिणं हस्तं जगृह्म शूर त्वा गोनां गोपतिं विद्म हि अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥

पदार्थः—(वसुपते-इन्द्र) हे धनों के स्वामिन् परमात्मन्! (वसूनां वसूयवः) विविध धनों के हम धनकांक्षी (ते दक्षिणं हस्तं जगृह्म) तेरे दक्षिण हाथ को—दान करने वाले शक्तिरूप हाथ को पकड़ते हैं ''दक्षिणो दशतेर्दानकर्मणः'' [निरु० १.७] (शूर) हे विक्रमशील! (त्वा गोनां गोपतिं विद्म हि) तुझ गौओं के स्तुतिकर्ताओं के स्तोतृस्वामी को जानते हैं ''गौः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६] (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हम उपासकों के लिये चायनीय—दर्शनीय—अपने अमृत सुखवर्षक धन को दें।

भावार्थः—उपासक जन परमात्मा में वसाने वाले गुणधनों के इच्छुक हों उन ऐसे वासक गुणधनों के दान करने वाले शक्तिरूप हाथ को पकड़ें तथा स्तुति करने वाले उपासकों के दर्शनामृत सुखवर्षक धन को भी उपासकाधिपति से माँगे॥५॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

३१८. **इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः। शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः॥६॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् नरः नेमधिता नेम धिता हवन्ते यत् पार्याः युनजते धियः ताः शूरः नृषाता नृ साता श्रवसः च कामे आ गोमति व्रजे भज त्वम् नः ॥ ६ ॥**

अन्वयः—नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते तत् ताः-पार्थाः-धियः-युनजते त्वम् शूरः नृषाता च श्रवसः कामः नः-गोमति व्रजे-आभज ॥

पदार्थः—(नरः) देव जन—मुमुक्षु जन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (नेमधिता) शुभ-अशुभ वर्गों की स्थिति—संग्राम प्रवृत्ति में "नेमोऽर्द्धनाम" "त्वो नेम इत्यर्द्धस्य" [निरु० ३.२०] "नेमधिता संग्रामनाम" [निघं० २.१७] (इन्द्रं हवन्ते) परमात्मा को आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं (तत्) 'यतः' (ताः-पार्थाः-धियः-युनजते) उन विरुद्ध—प्रवृत्ति संग्रामों में अशुभ प्रवृत्तियों से पार करने वाली या अशुभ प्रवृत्तियों को परे फेंकने वाली योगक्रियाओं को युक्त करते हैं (त्वम्) तू (शूरः) विक्रमी (नृषाता) देवश्रेणि के मनुष्यों—मुमुक्षुओं का स्वभोग का सम्भागी बनने वाला (च) और (श्रवसः कामः) यशस्वी जन को चाहने वाला "श्रवः-श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९] (नः-गोमति व्रजे-आभज) स्तोता वाले व्रज—"गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] छन्दोमय—मन्त्रभाग में "छन्दांसि वै व्रजो०" [मै० ४.१.१०] समन्तरूप से भागी बना।

भावार्थः—देवजन आगे विभक्त हुए देवासुर संग्राम के अवसर पर परमात्मा को आमन्त्रित करें तब वे असुर वृत्तियों परे फेंक डालने वाली अपनी देववृत्तियों से युक्त होते हैं वह विक्रमी मुक्त आत्माओं को अपने आनन्द का भागी बनाने वाला उन यशस्वी मुक्तात्माओं को चाहता है वह उनके स्तोतृसदन में उन्हें सुख भाक् भी बनाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—गौरीवीतिः शाक्त्यः (ब्रह्मवर्चस्तेज का सम्पादक शक्ति से सम्पन्न जन[१]) ॥

३१९. **वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **वयः सुपर्णाः सु पर्णाः उप सेदुः इन्द्रम् प्रियमेधाः प्रिय मेधाः ऋषयः नाधमानाः अप ध्वान्तम् ऊर्णुहि पूर्धि चक्षुः मुमुग्धि अस्मान् निधया नि धया इव बद्धान् ॥ ७ ॥**

अन्वयः—वयः सुपर्णाः प्रियमेधाः-ऋषयः नाधमानाः इन्द्रम्-उपसेदुः ध्वान्तम्-अप-ऊर्णुहि चक्षुः-पूर्धि अस्मान्-निधया-इव बद्धान् मुमुग्धि ॥

१. "तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतम्" [ऐ० ४.२३]।

पदार्थः—(वयः सुपर्णाः) ऊँची गति वाले पुरुष अर्थात् उपासक सत्पुरुष ''पुरुष- सुपर्णः'' [श० ७.४.२.५] (प्रियमेधाः-ऋषयः) परमात्मा की सङ्गति प्रिय जिनको है ऐसे ''मेधृ सङ्गमे'' [भ्वादि०] ऋषि महानुभाव (नाधमानाः) यह याचना करने के हेतु (इन्द्रम्-उपसेदुः) परमात्मा को ध्यान में प्राप्त हुए—प्राप्त होते हैं (ध्वान्तम्-अप-ऊर्णुहि) कि परमात्मन्! तू अज्ञान अन्धकार को हटा दे (चक्षुः-पूर्धि) अपने ज्ञानप्रकाश से ज्ञाननेत्र को भर दे (अस्मान्-निधया-इव बद्धान् मुमुग्धि) हमें पाशसमूह की भाँति संसारपाश में बन्धे हुओं को अब छोड़ दे।

भावार्थः—प्रगतिशील सत्पुरुष परमात्मा की सङ्गति ही जिन्हें प्रिय है ऐसे ऋषिजन ध्यान में परमात्मा को प्राप्त हो यही याचना किया करते हैं कि परमात्मन्! तू हमारे आज्ञानान्धकार को मिटा अपने ज्ञानप्रकाश से हमारे ज्ञाननेत्र भर दे और पाश में बन्धे जैसे हमें संसार बन्धन से छोड़ अपने मुक्तिसदन में ले ले। परमात्मन्! ऐसे सत्पुरुषों को तू अपनी कृपा से उन्हें मुक्ति प्रदान करता है ॥७॥

ऋषिः—वेनो भार्गवः (भृगु—तेजस्वी गुरु का शिष्य परमात्मसङ्ग की कामना वाला)॥

३२०. **नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्॥८॥**

पदपाठः— **नाके सुपर्णम् सु पर्णम् उप यत् पतन्तम् हृदा वेनन्तः अभ्यचक्षत अभि अचक्षत त्वा हिरण्यपक्षम् हिरण्य पक्षम् वरुणस्य दूतम् यमस्य योनौ शकुनम् भुरण्युम्॥८॥**

अन्वयः—नाके सुपर्णम् उपपतन्तं त्वा हृदा वेनन्तः अभ्यचक्षत हिरण्यपक्षम् वरुणस्य दूतम् यमस्य योनौ भुरण्यं शकुनम्॥

पदार्थः—(नाके) दुःखरहित नितान्त सुखस्थान मोक्षधाम में (सुपर्णम्) सुन्दर पालन धर्म वाले—(उपपतन्तं त्वा) स्वामीभाव से उपस्थित तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (हृदा वेनन्तः) हृदय से चाहते हुए उपासक (अभ्यचक्षत) लक्षित करते हैं (हिरण्यपक्षम्) सुनहरी पक्षवाले पक्षी समान—तेजस्वी—(वरुणस्य दूतम्) वरणीय प्रमुख आनन्द के प्रेरक—(यमस्य योनौ) यमन—नियमन संयम के आश्रय में (भुरण्यं शकुनम्) भ्रमणशील समर्थ पक्षी जैसे को लक्षित करते हैं।

भावार्थः—अत्यन्त सुखमय मोक्ष-धाम में स्वामीभाव से उपस्थित सुन्दर पालन धर्म से युक्त सुनहरी पक्ष वाले समर्थ पक्षी समान भ्रमण—व्यापनशील तुझ परमात्मा को जो कि अत्यन्त वरणीय सुख का प्रेरक और यम—नियम संयम के

आश्रय पर प्राप्त होने वाले को उपासकजन हृदय से अनुभूत करते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—बृहस्पतिर्नकुलो वा (बृहती वाक्-वाणी विद्या का पति ब्रह्मवक्ता या नकुल—परिवार प्रसार से रहित एकाकी आदित्य ब्रह्मचारी) ॥

३२१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ९ ॥

पदपाठः— ब्रह्म जज्ञानम् प्रथमम् पुरस्तात् वि सीमतः सुरुचः सु रुचः वेनः आवरिति सः बुध्न्याः उपमाः उप माः अस्य विष्ठाः वि स्थाः सतः च योनिम् असतः अ सतः च वि वरिति ॥ ९ ॥

अन्वयः—पुरस्तात् प्रथमं ब्रह्म जज्ञानम् वेनः सीमतः सुरुचः वि-आव सः अस्य बुध्न्याः-उपमाः-विष्ठाः सतः-च-असतः-च योनिं विवः ॥

पदार्थः—(पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व (प्रथमं ब्रह्म जज्ञानम्) प्रथित अण्डरूप ब्रह्माण्ड परमात्मा के द्वारा प्रसिद्ध हुआ तो उसमें (वेनः) कान्तिमान् इन्द्र—परमात्मा के "इन्द्र उ वै वेनः" [कौ० ८.५] (सीमतः) सीमा से उनकी अपनी सीमा से—परिधिक्रम से (सुरुचः) पृथिवी चन्द्रादि लोकों को "इमे लोकाः सुरुचः" [श० ७.४.१.१४] (वि-आव) पृथक्-पृथक् व्यक्त किया—रचा (सः) उस परमात्मा ने (अस्य) इस ब्रह्माण्ड की (बुध्न्याः-उपमाः-विष्ठाः) अन्तरिक्ष आकाश में होने वाली दिशाओं को "दिशो वा उपमाः" [श० ७.४.१.१४] विशेष स्थापित किया "व्यष्ठाः-अड्लोपश्छान्दसः" "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि" [अष्टा० ६.४.७५] तथा (सतः-च-असतः-च योनिं विवः) प्राणी की और अप्राणी की योनि—प्राणी योनि और अप्राणी योनि—जड़ योनि को "प्राणो वै सत्" [जै० १.१०२] व्यक्त किया।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के द्वारा सृष्टि से पूर्व प्रथित ब्रह्माण्ड—विश्वगोल—व्यक्त हुआ। उसमें परमात्मा ने सीमाओं में परिधियों में पृथिवी आदि लोकों पिण्डों को व्यक्त किया—रचा, पुनः इस ब्रह्माण्ड की आकाशगत दिशाओं को व्यवस्थित किया। मनुष्य, गौ, घोड़ा आदि प्राणी योनि और आम्र वृक्ष आदि अप्राणी योनि को व्यक्त किया—रचा है। उस ऐसे रचयिता शक्तिशाली परमात्मा को जान उसकी उपासना करनी चाहिए जिसने पृथिवी आदि पिण्डों को सीमा में बान्धा और पृथिवी आदि पिण्डों पर हम जीवात्माओं को योनियों में बान्धा है। बन्धन से छूटने के लिये परमात्मा की उपासना करना साधन है ॥ ९ ॥

ऋषिः—सुहोत्रः (अच्छे अङ्गों वाला संयमी या योगाङ्गों वाला योगी[१])॥

३२२. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय। विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः॥ १०॥

पदपाठः— अपूर्व्या अ पूर्व्या पुरुतमानि अस्मै महे वीराय तवसे तुराय विरप्शिने वि रप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचाꣳसि अस्मै स्थविराय स्थ विराय तक्षुः॥ १०॥

अन्वयः—अस्मै महे वीराय तवसे तुराय अस्मै विरप्शिने स्थविराय अपूर्व्या पुरुतमानि शन्तमानि वचांसि तक्षुः॥

पदार्थः—(अस्मै महे वीराय तवसे तुराय) इस महनीय—पूज्य जीवन-गतिप्रद बलवान् शीघ्रकारी इन्द्र—परमात्मा के लिये, तथा (अस्मै विरप्शिने स्थविराय) इस महान् या विशेष वक्ता 'विरप्शी महन्नाम' [निघं० ३.३] ओजस्वी ज्येष्ठ इन्द्र—परमात्मा के लिये (अपूर्व्या पुरुतमानि शन्तमानि वचांसि तक्षुः) सर्वश्रेष्ठ अधिकाधिक अति मधुर स्तुतिवचन उपासकजन सम्पन्न करते हैं—समर्पित करते हैं।

भावार्थः—उस पूजनीय वीर—गतिप्रद बलवान् शीघ्रकारी तथा महान् या विशेष वक्ता ओजस्वी ज्येष्ठ परमात्मा के लिये सर्वश्रेष्ठ अधिकाधिक अति मधुर स्तुतिवचन उपासकजन समर्पित किया करते हैं अतः हम करते हैं॥ १०॥

दशम खण्ड

ऋषिः—द्युतानः (परमात्मप्रकाश का अपने अन्दर विस्तार करने वाला उपासक)॥ छन्दः—त्रिष्टुम्॥

३२३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः। आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः॥ १॥

पदपाठः— अव द्रप्सः अꣳशुमतीम् अतिष्ठत् ईयानः कृष्णाः दशभिः सहस्रैः अवत् तम् इन्द्रः शच्या धमन्तम् अप स्नीहितिम् नृमणाः नृ मनाः अधत् राः॥ १॥

अन्वयः—द्रप्सः-कृष्णः ईयानः दशभिः सहस्रैः अंशुमतीम् अवातिष्ठत् तं धमन्तम् नृमणाः-इन्द्रःशच्या-आवत् अध स्नीहितिम् अधद्राः॥

पदार्थः—(द्रप्सः-कृष्णः) अल्प—अणुपरिमाण वाला—अणु जीवात्मा

---

१. "अङ्गानि वाव होत्राः" [गो० २.६.५]।

"स्तोको वै द्रप्सः" [गो० २.२.१२] पापभावना वाला हुआ "एतद्वै पाप्मनो रूपं यत् कृष्णम्" [मै० २.५.६] (ईयानः) गति करता हुआ (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र नाडीतन्तुओं से युक्त (अंशुमतीम्) प्राणों वाली नगरी—देहपुरी को "प्राणाः वा अंशवः" [मै० ४.५.५] (अवातिष्ठत्) अवस्थित हुआ—प्राप्त हुआ (तं धमन्तम्) उस अर्चना करते हुए को—परमात्मा की स्तुति करते हुए को "धमति-अर्चतिकर्मा" [निघं० २.१४] (नृमणाः-इन्द्रःशच्या-आवत्) नरों मुमुक्षुजनों में मन—कल्याण चिन्तना वाला "नरो वै देवविशः" [जै० १.८९] ऐश्वर्यवान् परमात्मा प्रज्ञान से उसको सुरक्षित करता है—(अध) अनन्तर इसकी (स्नीहितिम्) वध करने वाली पाप वासना को "स्नेहति वधकर्मा" [निघं० २.१९] ततः क्तिन् प्रत्ययः। (अधद्राः) पृथक् भगाता है—दूर करता "द्राति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] या रोन्धता है, नष्ट करता है।

भावार्थः—अणु—जीवात्मा पापाचरणवश हो सहस्रों नाड़ी तन्तुओं से युक्त प्राणों वाली देहपुरी को भटकता हुआ प्राप्त होता है देह धारण करता रहता है, जब यह परमात्मा की स्तुति करता है तो परमात्मा ज्ञान देकर इसकी रक्षा करता है और इसकी हानिकारक पापवासना को भी भगा देता है या नष्ट कर देता है, कारण कि वह उपासक मुमुक्षुजनों में कल्याण भावना रखने वाला है॥ १॥

ऋषिः—द्युतानः (परमात्मप्रकाश का अपने अन्दर विस्तार करने वाला उपासक)॥

३२४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः। मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि॥ २॥

पदपाठः— वृत्रस्य त्वा श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः अजहुः ये सखायः स खायः मरुद्भिः इन्द्र सख्यम् स ख्यम् ते अस्तु अथ इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः त्वा-अजहुः ये सखायः मरुद्भिः-ते सख्यम्-अस्तु इमाः-विश्वा पृतनाः-जयसि॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वृत्रस्य श्वसथात्) पाप के वधक प्रहार से फटकार से "श्वसति वधकर्मा" [निघं० २.१९] (ईषमाणाः) हिंसित ताड़ित होते हुए "ईष हिंसार्थः" [भ्वादि०] (विश्वे देवाः) साधारण मनुष्य "विश्वे हीदं देवाः स्मो यन्मनुष्याः" [मै० ३.२.२] (त्वा-अजहुः) तुझे त्याग देते हैं (ये सखायः) जो तेरे सखिभूत समान ख्यान थे (मरुद्भिः-ते सख्यम्-अस्तु) मुमुक्षु अध्यात्मयाजीजनों के साथ "देवविशो वै मरुतः" [मै० २.१.९] "मरुतः-ऋत्विङ्नाम" [निघं० ३.१८] तेरी मित्रता हो—होती है (इमाः-विश्वा पृतनाः-जयसि) इनमें वर्तमान सारी संघर्ष करती हुई पापवासनाओं को तू जीत ले, दूर

भगा दे—भगा देता है।

भावार्थः—चेतन देव सर्वज्ञ परमात्मा के सखा चेतन ज्ञानवान् मनुष्य—साधारण जन पाप के प्रहार से बाधित हो परमात्मा को छोड़ बैठते हैं, नास्तिक हो जाते हैं या जो जन समान चेतन ज्ञान वाले होते हुए भी तुझ परमात्मा को त्याग देते हैं अर्थात् नास्तिक हो जाते हैं वे पाप के प्रहार से पीड़ित होते, पाप पर पाप करते हैं और पाप के फल दुःख को भोगते हैं। परन्तु तेरे उपासक आत्मयाजी मुमुक्षुजन हैं वे ही जो तेरी मित्रता में रहते हैं, तू उनकी समस्त विरोधी वासनाओं—भावनाओं को जीत लेता है—नष्ट कर देता है॥ २॥

ऋषिः—बृहदुक्थः (महान् बड़ी वाक्-ओ३म् उपास्य जिसका है)॥

३२५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥ ३॥

पदपाठः— विधुम् वि धुम् दद्राणम् समने सम् अने बहूनाम् युवानम् सन्तम् पलितः जगार देवस्य पश्य काव्यम् महित्वा अद्य अ द्य ममार सः ह्यः सम् आन॥ ३॥

अन्वयः—बहूनां दद्राणम् विधुम् युवानं सन्तम् समने पलितः जगार देवस्य काव्यं पश्य महित्वा अद्य ममार स ह्यः-समानः ह्यः-ममार-अद्य समानः॥

पदार्थः—(बहूनां) अनेक इन्द्रियों के (दद्राणम्) दमनशील (विधुम्) स्वयं विधमानशील—चञ्चल (युवानं सन्तम्) युवा जब तक शरीर है तब तक समानरूप में वर्तमान हुए अन्तःकरण पदार्थ को (समने) रात्रिशयन में (पलितः) ज्ञानी चेतन आत्मा (जगार) निगल लेता है (देवस्य) परमात्मदेव के (काव्यं पश्य) कला शिल्प को देख (महित्वा) उसकी महती शक्ति से (अद्य ममार) आज शयन काल में जो मृत सा हो गया (स ह्यः-समानः) वह कल तो समान स्वरूप में था या (ह्यः-ममार-अद्य समानः) गए कल मरा, आज फिर वैसा कार्य करने में वैसा ही हो गया अथवा जो अन्तःकरण युक्त आत्मा कार्यकरण—समर्थ गत काल में था वह आज मृत हो गया—देह त्याग गया, जो आज मृत हो गया, वह आगे समय में पुनर्देह प्राप्त करके वैसा ही उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार जन्म मरण का शिल्प परमात्मा का विवेचनीय है।

भावार्थः—यह अन्तःकरण इन्द्रियों का नियन्त्रण करने वाला स्वयं चञ्चल, शरीर में इन्द्रियों की अपेक्षा युवा—जरा रहित है। इन्द्रियाँ तो शरीर के रहते हुए भी जीर्ण-क्षीण या नष्ट भी हो जाती हैं, परन्तु यह तो जब तक यह शरीर जीवित है तब तक रहता है, परन्तु रात को सोते समय चेतन आत्मा इसे अपने अन्दर ले लेता है या इन्द्रियों का सञ्चालित करने वाला आत्मा अजर होते हुए को भी महान् चेतन परमात्मा अपने अन्दर ले लेता देह त्यागने पर, यह परमात्मदेव का शिल्प है, कला

है जो अन्तःकरण आज रात्रि में मरा अकिञ्चित्कर हो गया, कल वह अपने रूप में ठीक था और आगे भी आने वाले कल भी फिर वैसा ही हो जाएगा या यह परमात्मा की कला है जो आत्मा आज मर गया, देह को त्याग गया, वह कल तो अच्छा समान था और अगले काल में पुनः देह को प्राप्त कर फिर वैसा ही हो जाता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—द्युतानः (परमात्मप्रकाश का अपने अन्दर प्रसार करने वाला)॥

३२६. त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽ शत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र। गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ ४ ॥

पदपाठः— त्वम् ह त्यत् सप्तभ्यः जायमानः अशत्रुभ्यः अ शत्रुभ्यः अभवः शत्रुः इन्द्र गूढेइति द्यावा पृथिवीइति अनु अविन्दः विभुमद्भ्यः वि भुमद्भ्यः भुवनेभ्यः रणम् धाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—त्वम्-इन्द्रः ह जायमानः त्यत्-सप्तभ्यः-अशत्रुभ्यः शत्रुः-अभवः गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दः विभुमद्भ्यः-भुवनेभ्यः रणं धाः ॥

पदार्थः—(त्वम्-इन्द्रः) तू इन्द्र (ह) निश्चय (जायमानः) प्रसिद्ध होता हुआ (त्यत्-सप्तभ्यः-अशत्रुभ्यः) उन सात शत्रुरहित—सात जो तेरे होता हैं "इन्द्रः सप्तहोत्राः" [तै० २.२.५.८] "दिशः सप्तहोत्राः" [श० ७.४.१.२०] पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर नीचे, मध्य का (शत्रुः-अभवः) शातयिता विलोडनकर्ता है अतः उनमें (गूढे द्यावापृथिवी) गहन सूक्ष्मरूप हुए द्यावापृथिवीमय पिण्ड समूह को (अन्वविन्दः) अन्वेषण कर लिया—खोज लिया पा लिया, उसके अन्दर वर्तमान (विभुमद्भ्यः-भुवनेभ्यः) अन्नभोग वाले "अन्नमिव विभु भूयासम्" [ऐ०आ० ५.१.१] लोकों पिण्डों से "इमे लोका भुवनम्" [काठ० १४१.७] (रणं धाः) हमारे लिये रमणीय भोगों को "रणाय रमणीयाय" [नि० ९.१२६] धारित करता है—देता है।

भावार्थः—पूर्व से प्रसिद्ध हुए परमात्मा ने अजेय सात दिशाओं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे, मध्यवर्ती दिशाओं को विलोडित करके सूक्ष्म द्यावा-पृथिवीमय पिण्डमण्डल को खोज लिया और अन्न भोग वाले लोकों—पिण्डों से मनुष्यों के लिये रमणीय भोग को देता है। उसकी उपासना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥

३२७. मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम्। करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

पदपाठः— **वे अर्द्धः मेडिम् न त्वा वज्रिणम् भृष्टिमन्तम् पुरुधस्मानम् पुरु धस्मानम् वृषभम् स्थिरप्स्नुम् स्थिर प्स्नुम् करोषि अर्यः तरुषीः दुवस्युः इन्द्र द्युक्षम् द्यु क्षम् वृत्रहणम् वृत्र हनम् गृणीषे ॥ ५ ॥**

अन्वयः—इन्द्र मेडिं न भृष्टिमन्तम् पुरुधस्मानम् स्थिरप्स्नुम् वज्रिणम् द्युक्षम् वृत्रहणम् त्वा गृणीषे तरुषीः-अर्यः करोषि अवस्युः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (मेडिं न) माध्यमिक वाक्—विद्युत् के समान ''मेडिः-वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (भृष्टिमन्तम्) पापाभाव के भर्जन शक्ति वाले—(पुरुधस्मानम्) ''पुरुदस्मानम्'' ''दकारस्य धकारश्छान्दसो वर्णव्यत्ययः'' बहुदान बहुत आनन्दामृत प्रदानकर्ता को ''बहुदान इति हैतदाह पुरुदस्म इति'' [श० ४.५.२.१२] (स्थिरप्स्नुम्) एकरसस्वरूप वाले—(वज्रिणम्) ओजस्वी—(द्युक्षम्) ज्ञान भण्डार (वृत्रहणम्) पाप नाशक (त्वा) तुझको (गृणीषे) प्रशंसित करता हूँ स्तुति में लाता हूँ अपितु (तरुषीः-अर्यः) हिंसित करने वाली बाधक प्रवृत्तियों को भी ''तरुष्यति हन्तिकर्मा'' [निरु० ५.२] (करोषि) तिरस्कृत करता है बहिष्कृत करता है (अवस्युः) हमारी रक्षा को चाहता हुआ।

भावार्थः—परमात्मा तू विद्युत् की भाँति तेजस्वी पाप को भस्म करने की शक्ति रखने वाला बहुत आनन्ददाता एकरस—ज्ञानभण्डार अज्ञानान्धकारनाशक तथा हमारी रक्षा चाहने वाला भीतर प्रवृत्तियों को भी बहिष्कृत या तिरस्कृत करता है ऐसे उस तुझ परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला) ॥ छन्दः—त्रिपदा विराट् अनुष्टुप् ॥

३२८. **प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।**
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥

पदपाठः— **प्र वः महे महेवृधे महे वृधे भरध्वम् प्रचेतसे प्र चेतसे प्र सुमतिम् सु मतिम् कृणुध्वम् विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः चर्षणि प्राः ॥ ६ ॥**

अन्वयः—वः महे प्रचेतसे महे वृधे भरध्वम् सुमतिं प्रकृणुध्वम् चर्षणिप्राः पूर्वीः-विशः प्रचर ॥

पदार्थः—वः 'यूयम् विभक्तिव्यत्ययः' हे उपासको! (महे) अपने महान् होने के लिये (प्रचेतसे) प्रकृष्ट ज्ञानवान् सर्वज्ञ एवं प्रकृष्ट चेताने वाले (महे वृधे) महान् वर्धक परमात्मा के लिये (भरध्वम्) उपासनारस समर्पित करो (सुमतिं प्रकृणुध्वम्) शुभ स्तुति करो ''वाग्वै मतिः'' [श० ८.१.२.७] (चर्षणिप्राः)

मनुष्यों के कामपूरक परमात्मा (पूर्वीः–विशः प्रचर) अपनी श्रेष्ठ उपासक प्रजा को अवश्य संरक्षण देता है।

भावार्थः—परमात्मा महान् वर्धक सर्वज्ञ सावधान करने वाला है अपने महान् कल्याण के लिये उपासनारसों से उसे भर दे और उसकी शोभन स्तुति करें तो वह मनुष्यों का पालन करने वाला अपनी श्रेष्ठ उपासक प्रजाओं को अवश्य प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र—सबका मित्र, सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

३२९. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥

पदपाठः— शुनम् हुवेम मघवानम् इन्द्रम् अस्मिन् भरे नृतमम् वाजसातौ वाज सातौ शृण्वन्तम् उग्रम् ऊतये समत्सु स मत्सु घ्नन्तम् वृत्राणि सञ्जितम् सम् जितम् धनानि ॥ ७ ॥

अन्वयः—अस्मिन् वाजसातौ भरे समत्सु वृत्राणि-घ्नन्तम् ऊतये शृण्वन्तम् धनानि सञ्जितम् शुनं मघवानम्-उग्रम्-इन्द्रं हुवेम ॥

पदार्थः—(अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अमृत अन्न भोग की सम्भक्ति वाले भर—आनन्द भण्डार मोक्षधाम की प्राप्ति के निमित्त (समत्सु) सामुख्य संघर्ष स्थलों में (वृत्राणि-घ्नन्तम्) पाप भावों के हननकर्ता—(ऊतये शृण्वन्तम्) रक्षा के लिये प्रार्थना सुनने वाले—(धनानि सञ्जितम्) अनुकूल धनों के सम्यक् जय कराने वाले—"अन्तर्गतणिजर्थः" (शुनं मघवानम्–उग्रम्–इन्द्रं हुवेम) सुखस्वरूप—कल्याण धन वाले तेजस्वी परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—हमारे इस लक्षित अमृत अन्नभोग सम्प्राप्ति वाले आनन्द भण्डार मोक्षधाम के निमित्त सामुख्य प्रसङ्गों में आए पापभावों के हननकर्ता रक्षा के लिए सुनने वाले—अभीष्ट धनों पर अधिकार कराने वाले सुखस्वरूप कल्याणधनवान् तेजस्वी परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

३३०. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ। आ यो
विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ ८ ॥

पदपाठः— उत् उ ब्रह्माणि ऐरत श्रवस्या इन्द्रम् समर्ये स मर्ये महय वसिष्ठ आ यः विश्वानि श्रवसा ततान उपश्रोता उप श्रोता मे ईवतः वचांꣳसि ॥ ८ ॥

अन्वयः—वसिष्ठ समर्ये इन्द्र महय श्रवस्या ब्रह्माणि-उदैरत-उ यः विश्वानि श्रवसा आ ततान सः ईवतः-मे वचांसि-उपश्रोत ॥

पदार्थः—(वसिष्ठ) हे परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले उपासक! (समर्ये) अपने अन्दर उठे शुभाशुभ वृत्तियों के संग्राम—संघर्ष में "समर्ये संग्रामनाम" [निघं० २.१७] (इन्द्र महय) परमात्मा को अर्चित कर—उसकी स्तुति कर (श्रवस्या ब्रह्माणि-उदैरत-उ) 'श्रवस्यया' अवश्य अपने अध्यात्म धन की इच्छा से "श्रवः धनम्" [निघं० २.१०] उपासनाकर्मों को उच्चभाव से अनुष्ठित कर (यः) जो परमात्मा (विश्वानि श्रवसा) समस्त 'श्रवसानि-श्रवस् शब्दान्मतुबर्थीयोऽकारश्छान्दसः' अध्यात्म धन के आश्रयों को (आ ततान) प्रकाशित किया करता है (सः) वह परमात्मा (ईवतः-मे वचांसि-उपश्रोत) मुझ प्राप्त हुए के वचनों को सुनता है या स्वीकार करता है।

भावार्थः—उपासक अपने को सम्बोधित करके कहे कि अरे उपासक! तू अपने अन्दर वृत्तियों के संघर्ष में परमात्मा की अर्चना कर अध्यात्मधन की इच्छा से उपासना कर्मों—अष्टाङ्गयोगाचरणों का अनुष्ठान कर, जो परमात्मा अध्यात्मधन के आश्रयों—मित्रों को प्रकाशित करता है वह प्राप्त हुए मुझ उपासक के प्रार्थनावचनों को स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—गौरिवीतिः (सुन्दर वीत तृप्ति का साधनरस जिसके पास हो वह अध्यात्म रसवान्) ॥

३३१. **चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।**
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥

पदपाठः— **चक्रम् यत् अस्य अप्सु आ निषत्तम् नि सत्तम् उत उ तत् अस्मै मधु इत् चच्छद्यात् पृथिव्याम् अतिषितम् अति सितम् यत् ऊधरिति पयः गोषु अदधाः ओषधीषु ओष धीषु ॥ ९ ॥**

अन्वयः—अस्य यत्-चक्रम् अप्सु-आनिषत्तम् उत-उ अस्मै मधु-इत्-चच्छद्यात् पृथिव्याम् गोषु यत्-ऊधः ओषधीषु पयः ॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमात्मा का (यत्-चक्रम्) जो सृष्टिक्रम चक्र अर्थात् उत्पत्ति और जीवों के कर्मफल प्रदानरूप (अप्सु-आनिषत्तम्) व्याप्त परमाणुओं में समन्तरूप निगूढ़ हो चल रहा है (उत-उ) और भी (अस्मै) इस चक्र के लिये (मधु-इत्-चच्छद्यात्) प्राण को निहित किया है "प्राणो वै मधु" [श० १४.१.३.३०] (पृथिव्याम्) वह पृथिवी पर प्रथनशील सृष्टि में तथा प्रत्येक पार्थिव लोक में छोड़ दिया पुनः उससे (गोषु यत्-ऊधः) गौ आदि पशुओं में ऊधस्य—

मधुररस दूध (ओषधीषु पयः) ओषधियों में रस धारण करता है।

भावार्थः—परमात्मा ने सृष्टिक्रमचक्र परमाणुओं में चलाया उसके लिये प्राण सम्यक् स्थिर किया, वह प्राण प्रथनशील सृष्टि में प्रथनशील लोकमात्र में छोड़ा, पुनः गौ आदि पशुओं में दूध और ओषधियों में अन्नरस मानवों के लिये धारण कराया, परमाणुओं में गतिप्रद विश्वप्राण और जीवों के लिये ओषधियों में जीवनप्राण परमात्मा ने धारण कराया, मानव के निर्वाहार्थ गौ आदि से दूध लेने और ओषधियों से अन्नरस लेने का विधान किया, अध्यात्म प्राण अध्यात्म जीवन धारण करने के लिये उपासक उस ऐसे प्राणदाता की उपासना करे॥ ९॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—अरिष्टनेमिस्ताक्ष्यः (अहिंसित रक्षणपरिधान जीवनप्रद परमात्मा जिसका है ऐसा उपासक)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

३३२. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये ताक्ष्यमिहा हुवेम॥ १॥

पदपाठः— **त्यम् ऊ सु वाजिनम् देवजूतम् देव जूतम् सहोवानम् तरुतारम् रथानाम् अरिष्टनेमिम् अरिष्ट नेमिम् पृतनाजम् आशुम् स्वस्तये सु अस्तये ताक्ष्यम् इह हुवेम॥ १॥**

अन्वयः—त्यम्-उ सु वाजिनम् देवजूतम् सहोवानम् रथानां तरुतारम् अरिष्टनेमिम् पृतनाजम् आशुम् ताक्ष्यम् स्वस्तये-इह हुवेम॥

पदार्थः—(त्यम्-उ) उस ही (सु वाजिनम्) हमारे अमृत अन्नभोग वाले (देवजूतम्) मुमुक्षुओं के प्रीत—प्रेमपात्र (सहोवानम्) सहस्वान्—साहसी बलवान् (रथानां तरुतारम्) गमनशील लोकों के शरीररथों के यथावत् चलगति या कर्मगति के प्रेरक (अरिष्टनेमिम्) किसी भी प्रकार न हिंसित होने वाले प्रगति चक्र वाले (पृतनाजम्) मानवों की विरोधी प्रवृत्तियों पर जय पाने वाले—(आशुम्) व्यापनशील (ताक्ष्यम्) विश्व को गति देने वाले वायुस्वरूप परमात्मा को "वायुर्वै ताक्ष्यः" [कौ० ३०.५] (स्वस्तये-इह हुवेम) कल्याणार्थ इस जीवन में आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—परमात्मा उत्तम अमृतान्न भोग वाला मुमुक्षु का प्रेमपात्र बलवान् पृथिवी आदि पिण्डों तथा शरीरों का चलगति कर्मगति का प्रेरक अबाधित रक्षण शक्तियों वाला विरोधी प्रवृत्ति पर जय पाने वाला है उसको हम अपने हृदय में कल्याणार्थ इस जीवन में आमन्त्रित करते रहें॥ १॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के स्वरूपबल को अपने अन्दर भरण करने वाला)॥

३३३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्। हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः॥ २॥

पदपाठः— **त्रातारम् इन्द्रम् अवितारम् इन्द्रम् हवेहवे हवे हवे सुहवम् सु हवम् शूरम् इन्द्रम् हुवे नु शक्रम् पुरुहूतम् पुरु हूतम् इन्द्रम् इदम् हविः मघवा वेतु इन्द्रः ॥ २ ॥**

अन्वयः—त्रातारम्-इन्द्रम् अवितारम्-इन्द्रम् सुहवम् शूरम्-इन्द्रम् हवे-हवे-हुवे शक्रम् पुरुहूतम् इन्द्रम्-इत् नु-हुवे मघवा-इन्द्रः-हविः-वेतु ॥

पदार्थः—(त्रातारम्-इन्द्रम्) त्राणकर्ता परमात्मा को (अवितारम्-इन्द्रम्) नित्य रक्षक परमात्मा को (सुहवम्) सुगमता से बुलाने योग्य (शूरम्-इन्द्रम्) विक्रमवान् परमात्मा को (हवे-हवे-हुवे) आमन्त्रित करने योग्य प्रत्येक अवसर पर आमन्त्रित करता हूँ (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आहूत करने योग्य (इन्द्रम्-इत्) परमात्मा को अवश्य (नु-हुवे) शीघ्र आमन्त्रित करता हूँ (मघवा-इन्द्रः-हविः-वेतु) ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे मन—मनोभाव को—प्रार्थना को "मनो हविः" [तै० आ० ३.६.१] प्राप्त हो—स्वीकार करे।

भावार्थः—परमात्मा त्राणकर्ता है नित्य रक्षक है सुगमता से बुलाया जाने योग्य है, शूर है अतः उसे प्रत्येक आमन्त्रित करने योग्य अवसर पर बुलाया करूँ, शक्तिमान् बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य को मैं आमन्त्रित किया करूँ। वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा मेरे मनोरूप हविः—प्रार्थना को प्राप्त हो ॥ २ ॥

ऋषिः—वसुक्रो विमदो वा (अध्यात्मधन का सम्पादनकर्ता या विगतमद—विरक्त उपासक)॥

३३४. **यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३, विव्रतानाम्। प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यजामहे इन्द्रम् वज्रदक्षिणम् वज्र दक्षिणम् हरीणाम् रथ्यम् विव्रतानाम् वि व्रतानाम् प्र श्मश्रुभिः दोधुवत् ऊर्ध्वधा भुवत् वि सेनाभिः भयमानः वि राधसा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वज्रदक्षिणम् विव्रतानां हरीणां रथ्यम् इन्द्रम् यजामहे श्मश्रुभिः दोधुवत् ऊर्ध्वधाः सेनाभिः भयमानः राधसा वि भुवत् ॥

पदार्थः—(वज्रदक्षिणम्) "वज्रदक्षी" ओज के प्रेरक "दक्ष गतिवृद्ध्योः" [भ्वादि०] (विव्रतानां हरीणां रथ्यम्) विगतकर्म—विपरीत गतिकर्म वाले प्राणों—इन्द्रियों के "प्रणो वै हरिः" [कौ० १७.१] "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८.१] रथ—शरीररथ के चालक (इन्द्रम्) परमात्मा को (यजामहे) हम यजन करें—अध्यात्मयज्ञ में स्तुत करें (श्मश्रुभिः) शरीर में श्रवण करने वाली अपनी ज्ञान शक्तियों से (दोधुवत्) पाप को कम्पाता हुआ (ऊर्ध्वधाः) हमें ऊपर स्थापित

करने वाला है (सेनाभिः) ''इनेन स्वामिना सह वर्तमानाः शक्तयः'' इन्द्र—परमात्मा के साथ रहने वाली पापनाशक शक्तियों से पापीजन को (भयमानः) डराता हुआ 'अन्तर्गत णिजर्थश्छान्दसः' (राधसा वि) धनैश्वर्य—अर्थसिद्धि से विगत कर (भुवत्) विराजमान हो जाता है।

भावार्थः—ओजः—उत्साहवर्धक तथा विपरीत गति वाले इन्द्रिय घोड़ों के शरीररूप रथ के चालक परमात्मा की हम स्तुति करते हैं। जो अपनी ज्ञानशक्तियों से पापी को कम्पाता हुआ उपासक आत्मा को ऊँचे स्थापित करता है तथा अपनी व्यापन शक्तियों से पापी को डराता हुआ ऐश्वर्य सिद्धि से विगत करके विराजमान होता है॥ ३॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥

३३५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्। हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः॥ ४॥

पदपाठः— सत्राहणम् सत्रा हनम् दाधृषिम् तुम्रम् इन्द्रम् महाम् अपारम् अ पारम् वृषभम् सुवज्रम् हन्ता यः वृत्रम् सनिता उत वाजम् दाता मघानि मघवा सुराधाः सु राधाः॥ ४॥

अन्वयः—सत्राहणम् दाधृषिम् तुम्रम् अपारं वृषम् सुवज्रम् महाम् इन्द्रम् यः वृत्रं हन्ता वाजं सनिता उत सुराधाः मघवा मघानि-दाता॥

पदार्थः—(सत्राहणम्) असुर—पाप के हन्ता ''यत्-देवा असुरान् सत्राजयंस्तत् सत्राजितः सत्राजित्त्वम्'' [जै० २.९२] (दाधृषिम्) अत्यन्त पापधर्षक—(तुम्रम्) पापक्षेप्ता—(अपारं) अनन्त—(वृषम्) सुखवर्षक—(सुवज्रम्) सदा ओजस्वी—(महाम्) महान्—(इन्द्रम्) परमात्मा को स्तुत करें (यः) जो (वृत्रं हन्ता) पाप का हननशीलवाला (वाजं सनिता) अमृतभोग का सेवन करानेवाला (उत) और (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्यवाला (मघवा) मघवान्—अध्यात्मयज्ञ का आश्रय ''यज्ञेन मघवान् भवति'' [तै० ४.४.८.१] (मघानि-दाता) अध्यात्मयज्ञ के सुख वालों का दाता है।

भावार्थः—परमात्मा आसुरी वृत्तियों का नाशक, पापों का घर्षणशील, पाप को दूर फेंकने वाला, अनन्त सुखवर्षक, सदा ओजस्वी, पाप हन्ता, अमृतभोग का सेवन कराने वाला, उत्तम भोग धनों वाला, अध्यात्मयज्ञ का नायक तथा तत्सम्बन्धी फलों का दाता है, उसकी उपासना करनी चाहिए॥ ४॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥

३३६. यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा। क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः॥ ५॥

पदपाठः— **यः नः वमुष्यन् अभिदाति अभि दाति मर्त्तः उगणा उ गणा वा मन्यमानः तुरः वा क्षिधी युधा शवसा वा तम् इन्द्र अभि स्याम वृषमणः वृष मनः त्वोताः त्वा ऊताः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—यः मर्त्तः वनुष्यन् नः-अभिदाति वा उगणाः वा मन्यमानः-तुरः क्षिधी युधा वा शवसा वृषमणः इन्द्र त्वोताः तम् अभीष्याम ॥

पदार्थः—(यः) जो (मर्त्तः) अनात्मा—असत्त्व—मृत का मोह ''अनात्मा हि मर्त्यः'' ''मर्तः स्वार्थे यत्'' [श० २.२.२.८] (वनुष्यन्) हनन करना चाहता हुआ ''वनुष्यति जिघांसति'' [निरु० ५.२] (नः-अभिदाति) हम पर प्रहार करता है (वा) या (उगणाः) ''उद्गणा'' उद्वाक्—उखड़ा वचन किसी का आक्षिप्त वचन—आक्षेप ''गणस्-वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (वा मन्यमानः-तुरः) या अपने अन्दर माना हुआ भ्रमात्मक—मृत्युविषयक विचार ''मन्यमानस्तुरः-तुर इति यमनाम'' [निरु० १२.१६] 'अभिदाति'—प्रहार करता है (क्षिधी युधा) 'क्षिधिना युधा'—क्षय धारण करने वाली गति से ''युध्यति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] (वा) या (शवसा) बल से ''शवः-बलम्'' [निरु० २.९] (वृषमणः) बलिष्ठ मन वाले हुए हम (इन्द्र त्वोताः) हे परमात्मन्! तेरे से रक्षित हुए (तम्) उसे (अभीष्याम) अभिभूत करें—दबा देते हैं।

भावार्थः—हे परमात्मन्! जो अनात्मा असत्त्व पाप हमें मारना चाहता हुआ प्रहार करता है या किसी का शाप—शपथ—आक्षेप या हमारा माना हुआ मृत्यु विचार प्रहार करता है हम बलिष्ठ मन वाले होकर तेरे से रक्षा पाए हुए उसे क्षय धारण गति से या बल से दबा देते हैं ॥५॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥

३३७. **यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते। यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **यम् वृत्रेषु क्षितयः स्पर्द्धमानाः यम् युक्तेषु तुरयन्तः हवन्ते यम् शूरसातौ शूर सातौ यम् अपाम् उपज्मन् उप ज्मन् यम् विप्रासः वि प्रासः वाजयन्ते सः इन्द्रः ॥ ६ ॥**

अन्वयः—वृत्रेषु स्पर्द्धमानाः-क्षितयः यम् हवन्ते युक्तेषु तुरयन्तः शूरसातौ यम् विप्रासः ज्मन्-अपाम्-उप यं वाजयन्ते सः-इन्द्रः ॥

पदार्थः—(वृत्रेषु) विविध पापप्रसङ्गों में (स्पर्द्धमानाः-क्षितयः) उन पापों

के साथ संघर्ष करते हुए मनुष्य "क्षितयो मनुष्याः" [निघं० २.३] (यम्) जिसको (हवन्ते) आमन्त्रित करते हैं (युक्तेषु) युक्त—ठीक—पुण्यों के प्रसङ्गों में (तुरयन्तः) शीघ्रता करते हुए पुण्य जन "तुर-शीघ्रतायाम्" [जुहोत्यादि०] पुकारते हैं—आमन्त्रित करते हैं (शूरसातौ यम्) शूर—पराक्रमी सौभाग्यशालीजनों की लाभ प्राप्ति में जिसको शूर—सौभाग्यशीलजन आमन्त्रित करते हैं—स्मरण करते हैं (विप्रासः) ऋषि जन "एते वै विप्रा यदृषयः" [श० १.४.२.८] (ज्मन्-अपाम्-उप) पृथिवी पर "ज्मा पृथिवीनाम" [निघं० १.१] जलों के समीप "अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः" [मनुस्मृतौ] (यं वाजयन्ते) जिसको अर्चित करते हैं "वाजयति-अर्चति कर्मा" [निघं० ३.१४] (सः-इन्द्रः) वह परमात्मा ही अर्चनीय—उपास्य है।

भावार्थः—हम पाप प्रसङ्गों में पापों से संघर्ष करते हुए परमात्मा को आमन्त्रित करें, उससे बल माँगें, पुण्य कर्मों में शीघ्र आचरित करने के लिये पुण्य जन पर परमात्मा को स्मरण करें, सौभाग्य की प्राप्ति में परमात्मा को सौभाग्यशील आमन्त्रित करें उस परमात्मा को पाने के लिये ऋषिजन पृथिवी पर जलों स्रोतों के समीप उस की अर्चना-स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र सब जिसके मित्र हैं)॥ देवता—इन्द्रपर्वतौ (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उसका पर्ववान् स्थान)॥

३३८. **इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः। वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीः इषः आ वहतम् सुवीराः सु वीराः वीतम् हव्यानि अध्वरेषु देवा वर्धेथाम् गीर्भिः इडया मदन्ता ॥ ७ ॥**

अन्वयः—इन्द्रपर्वता बृहता रथेन सुवीराः वामीः इषः आवहतम् अध्वरेषु हव्यानि वीतम् गीर्भिः इडया मदन्ता देवाः वर्धेथाम्॥

पदार्थः—(इन्द्रपर्वता) "इन्द्रापर्वतौ" हे ऐश्वर्यवन् एवं उत्पादनाश धर्मी संसार स्वामी उभय स्वरूप परमात्मन्! (बृहता रथेन) महान् यज्ञरथ—अध्यात्मयज्ञरूप रथ के द्वारा "यज्ञो वाव देवरथः" [जै० १.१२९-१३०] (सुवीराः) सुपुष्ट (वामीः) वननीय—श्रेष्ठ (इषः) कमनीय उपासनाओं को (आवहतम्) समन्तरूप से प्राप्त करो, (अध्वरेषु) नाना अध्यात्मयज्ञों में (हव्यानि) अध्यात्मयज्ञों में भिन्न-भिन्न भावनाभेटों को (वीतम्) व्याप्त हो—प्राप्त होओ (गीर्भिः) प्रार्थना वचनों से (इडया) श्रद्धा से "श्रद्धा वा इडा" [श० ११.२.७.२०] (मदन्ता) हर्षित होते हुए (देवाः) हे देवो! (वर्धेथाम्) 'वर्धयेथाम्' "अन्तर्गतणिजर्थः"

हमें बढ़ाओ।

भावार्थः—परमात्मा ऐश्वर्यवान् एवं उत्पादकपालकधर्मवान् है वह महान् अध्यात्मयज्ञ के द्वारा सुपुष्ट श्रेष्ठ कमनीय उपासनाओं को भली प्रकार प्राप्त करता है नाना अध्यात्मयज्ञों में भिन्न-भिन्न भावना भेटों को व्याप्त प्राप्त होता है, प्रार्थना वचनों और श्रद्धा से प्रसन्न होते हुए हमें बढ़ाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—रेणुः (सूक्ष्मज्ञ उपासक) ॥

३३९. **इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात्। यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **इन्द्राय गिरः अनिशितसर्गाः अनिशित सर्गाः अपः प्र ऐरयत् सगरस्य स गरस्य बुध्नात् यः अक्षेण इव चक्रियौ शचीभिः विष्वक् वि स्वक् तस्तन्भ पृथिवीम् उत् द्याम् ॥ ८ ॥**

अन्वयः—इन्द्राय अनिशितसर्गाः-गिरः अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात् यः अक्षेण-इव चक्रियौ विष्वक् ॥

पदार्थः—(इन्द्राय) परमात्मा के लिये (अनिशितसर्गाः-गिरः) अविछिन्न क्रम वाली वाणियों—स्तुतियों के लिये (अपः) कर्म को (प्रैरयत्) प्रेरित करता है (सगरस्य बुध्नात्) अन्तरिक्ष के बुध्न-मूल से—पृथिवीपृष्ठ से (यः) जो (अक्षेण-इव चक्रियौ) अक्ष—धुरा से चक्रों को कर्म शक्तियों से (विष्वक्) सब ओर पृथिवी और द्युलोक को स्तम्भित करता है।

भावार्थः—उपासक उस परमात्मा के लिये निरन्तर स्तुतियाँ करता है और सदाचरण कर्म हृदयाकाश के मूल से प्रेरित करता है जो कर्मशक्ति से धुरा से दो पहियों की भाँति द्यावापृथिवी को ठीक सम्भाले हुए है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है) ॥

३४०. **आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः। पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥**

पदपाठः— **आ त्वा सखायः स खायः सख्या स ख्या ववृत्युः तिरः पुरू चित् अर्णवान् जगम्याः पितुः नपातम् आ दधीत वेधाः अस्मिन् क्षये प्रतराम् दीद्यानः ॥ ९ ॥**

अन्वयः—त्वा सखायः सख्या आववृत्युः तिरः-पुरूचित्-अर्णवं जगम्याः पितुः-नपातम्-आदधीत वेधाः अस्मिन्क्षये प्रतरां दीघानः ॥

पदार्थः—(त्वा) हे परमात्मन्! तुझे (सखायः) समान धर्म वाले उपासकजन (सख्या) मित्रभाव से (आववृत्युः) भलीभाँति वरें—वरते हैं (तिरः-पुरूचित्-अर्णवं जगम्याः) तू विस्तृत बहुत ही आनन्दार्णव को स्वतः प्राप्त है (पितुः-नपातम्-आदधीत) पिता जैसे अपने नप्ता—नाति को गोद में लेता—उसमें अपनी सम्पत्ति को सौंपता है उसी भांति मुझ नपात्—नप्ता—नाती को गोद में ले, मुझे अपना आनन्दार्णव धारण करा (वेधाः) हे विधाता (अस्मिन्क्षये) इस मेरे निवासस्थान हृदय में प्रबल प्रकाश करते हुए मुझे अपना। (प्रतरं दीघानः) आप प्रदीप्त होते हुए मेरे हृदय में विराजमान होवें।

भावार्थः—महान् आनन्दसागर परमात्मा को प्राप्त हुए हम उसके सख्य को वरण किए हुए सखा हैं, पिता जैसे नाती को गोद में लेता है ऐसे ही वह हमें गोद में आधान करता है। वह विधाता मेरे हृदय घर में प्रदीप्त होता हुआ—प्रकाश करता हुआ विराजमान रहे ॥ ९ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला)॥

३४१. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्। आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

पदपाठः— कः अद्य अ द्य युङ्क्ते धुरि गाः ऋतस्य शिमीवतः भामिनः दुर्हृणायून् दुः हृणायून् आसन् एषाम् अप्सुवाहः अप्सु वाहः मयोभून् मयः भून् यः एषाम् भृत्याम् ऋणधत् सः जीवात् ॥ १० ॥

अन्वयः—अद्य ऋतस्य धुरि शिमीवतः भामिनः दुर्हृणायून् अप्सुवाहः मयोभून् गाः कः-युङ्क्ते यः एषाम्-आसन् एषाम् भृत्याम् ऋणधत् सः-जीवात् ॥

पदार्थः—(अद्य) इस वर्तमान समय में (ऋतस्य) शरीर रथ की ''शरीरं रथमेव तु'' [कठो० ३.३] (धुरि) धुरा में (शिमीवतः) कर्मप्रवृत्ति वाले ''शिमी कर्म नाम'' [निघं० २.१] (भामिनः) स्वविषय ग्रहण में दीप्ति वाले (दुर्हृणायून्) दुर्धर्षणीय—स्व—वेग वाले—(अप्सुवाहः) रूपादि आप्तव्य विषय को प्राप्त करने वाले (मयोभून्) कल्याण को भावित करने वाले (गाः) इन्द्रिय वृषभों को (कः-युङ्क्ते) प्रजापति परमात्मा युक्त करता है ''प्रजापतिर्वै कः'' [तै० स० १.६.८.५] (यः) जो उपासक (एषाम्-आसन्) इनके मुख में (एषाम्) इनकी (भृत्याम्) भरण क्रिया को—यथावत् धारण क्रिया को—शुभ प्रवृत्ति को (ऋणधत्) परिचरित

करता है—जीवन में लाभ लेता है "ऋणद्धि परिचरणकर्मा" [निघं० ३.५] (सः-जीवात्) वह संसार में वास्तविक जीवन धारण करता है—जीता है।

भावार्थः—शरीररथ की धुरा में कर्मशील विषय दीप्ति वाले दुर्धर्षणीय—कठिनता से वश में आने योग्य रूपादि विषय प्राप्त कराने वाले, सुख दिलाने वाले, इन्द्रिय बैलों को परमात्मा युक्त करता है, परन्तु जो उपासक इनके मुख में उचित शुभ भरण-पोषण देता है वह संसार में वस्तुतः जीता है ॥ १० ॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुतन्त्र मधुपरायण) ॥

छन्दः—अनुष्टुप् ॥

३४२. **गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽ र्चन्त्यर्कमर्किणः ।**
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

पदपाठः— **गायन्ति त्वा गायत्रिणः अर्चन्ति अर्क्कम् अर्क्किणः ब्रह्माणः त्वा शतक्रतो शत क्रतो उत् वंश्शम् इव येमिरे ॥ १ ॥**

अन्वयः—शतक्रतो त्वा गायत्रिणः गायन्ति अर्किणः अर्कम् अर्चन्ति ब्रह्माणः वंशम्-इव ॥

पदार्थः—(शतक्रतो) हे बहुत ज्ञान कर्म वाले सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! (त्वा) तुझे (गायत्रिणः) गायत्र—साम गान वाले गायक उद्गाता जन (गायन्ति) गाते हैं—तेरी उपासना करते हैं (अर्किणः) अर्क—ऋङ्मन्त्र वाले (अर्कम्) तुझ अर्चनीय देव को (अर्चन्ति) पूजित करते हैं—प्रशंसित करते हैं, तेरी स्तुति करते हैं। (ब्रह्माणः) यजुर्वेद के अध्ययनशील तेरी प्रार्थना करते हैं (वंशम्-इव) वंश की भाँति—बाँस की भाँति ऊपर उठाते हैं।

भावार्थः—परमात्मा को सामवेदी साम गान से उसके साक्षात् से प्रशंसित करते हैं, ऋग्वेदीजन पूजनीय तुझ परमात्मा को अर्चित पूजित करते हैं, प्रार्थना में लाते हैं और यजुर्वेदीजन तुझे वंश बाँस की भाँति ऊँचे घोषित करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः (मधुच्छन्दा का पुत्र वा शिष्य जितेन्द्रिय) ॥

३४३. **इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् विश्वाः अवीवृधन् समुद्रव्यचसम् समुद्र व्यचसम् गिरः रथीतमम् रथीनाम् वाजानाम् सत्पतिम् सत् पतिम् पतिम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—विश्वाः-गिरः समुद्रव्यचसम्-इन्द्रम् रथीनां रथीतमम् वाजानां सत्पतिं पतिम् अवीवृधन्॥

पदार्थः—(विश्वाः-गिरः) समस्तवाणियाँ-वेदवाणियाँ तदनुरूप स्तुतियाँ (समुद्रव्यचसम्-इन्द्रम्) अन्तरिक्षसमान व्यापक परमात्मा को "समुद्रमन्तरिक्षनाम" [निघं० १.३] (रथीनां रथीतमम्) रथियों शरीर रथस्वामी जीवात्माओं में भी महान् रथी संसाररथी—(वाजानां सत्पतिं पतिम्) "वाजवताम्" "अकारो मत्वर्थीयः" बलवानों—विद्युत् वायु सूर्य के भी स्वामी को तथा सद्गुण सम्पन्न जीवन्मुक्तों के तथा सदात्मक प्रकृति के भी स्वामी पालक परमात्मा को (अवीवृधन्) निरन्तर बढ़ाती हैं, उपासक में उसका गुण स्वरूप साक्षात् कराती हैं।

भावार्थः—समस्त वेदवाणियाँ उनके अनुरूप उपासक की स्तुतियाँ उपासक के अन्दर उस समुद्र समान व्यापक रमण स्थान शरीर स्वामी जीवात्माओं के भी महान् रमण स्थान संसार स्वामी; विद्युत्, वायु, सूर्य, बल वालों के स्वामी एवं सद्गुण सम्पन्न जीवन्मुक्तों के तथा सदात्मक प्रकृति के स्वामी—पालक परमात्मा को बढ़ाती हैं जैसे जैसे स्तुतियाँ बढ़ती जाती हैं, परमात्मा भी अधिकाधिक साक्षात् होता जाता है॥ २॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गमन करने वाला)॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३४४. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्। शुक्रस्य
३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने॥ ३॥

१ २ ३ ३ २ ३ १ २र १ २र २ ३ १ २र
पदपाठः— इमम् इन्द्र सुतम् पिब ज्येष्ठम् अमर्त्यम् अ मर्त्यम् मदम्
३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ १
शुक्रस्य त्वा अभि अक्षरन् धाराः ऋतस्य सादने॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र इमं ज्येष्ठम् अमर्त्यम् मदम् सुतम् पिब शुक्रस्य धाराः त्वा ऋतस्य सदने—अभ्यक्षरन्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (इमं ज्येष्ठम्) इस श्रेष्ठ (अमर्त्यम्) अनश्वर—अभौतिक (मदम्) हर्ष निमित्त—प्रसाद-निमित्त (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस को (पिब) पान कर—स्वीकार कर (शुक्रस्य) निर्मल—निष्पाप सोम उपासनारस की "शुक्रो निर्मलः सोमः" [श० ३.३.३.६] (धाराः) धाराएँ (त्वा) तुझे लक्ष्य कर (ऋतस्य सदने—अभ्यक्षरन्) इस अपने 'ओ३म्' "ओमित्येदक्षरमृतम्" [जै० उ० ३.६.८.५] परमात्मा के गृह हृदय में निर्झरित होती हैं।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू हमारे अनश्वर श्रेष्ठ हर्षप्रद उपासनारस को अवश्य स्वीकार करता है। उस दीप्त उपासनारस की धाराएँ परमात्मन् तुझे ही लक्ष्य कर तेरे सदन—गृह में निर्झरित हो रही हैं। यह मेरा घर, तेरा घर है, तेरे आने विराजने का घर भी तो यही हृदय है॥ ३॥

ऋषिः—अत्रिः (परमात्मा में निरन्तर प्रवेश शील)॥

३४५. यदिन्द्र चित्र म इ ह नास्ति त्वादातमद्रिवः।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर॥ ४॥

पदपाठः— यत् इन्द्र चित्र मे इह न अस्ति त्वादतम् त्वा दातम् अद्रिवः अ द्रिवः राधः तत् नः विदद्वसो विदत् वसो उभयाहस्ति आ भर॥ ४॥

अन्वयः—अद्रिवः-इन्द्र त्वादातम् यत्-चित्रं राधः इह मे न-अस्ति विदद्वसो तत्-नः उभया हस्ति-आभर॥

पदार्थः—(अद्रिवः-इन्द्र) हे अदनीय भक्षणीय भोगवस्तु के स्वामी अद्रिरत्तेः "अपि वाऽत्तेः स्यात्" [निरु० ४.४] परमात्मन्! (त्वादातम्) तेरे द्वारा देने योग्य (यत्-चित्रं राधः) जो अद्भुत अर्जनीय सर्वश्रेष्ठ धन—मौक्षैश्वर्य (इह) इस संसार में (मे) मेरे लिये (न-अस्ति) नहीं है (विदद्वसो) हे प्राप्तधनवाले! (तत्-नः) उसे हमारे लिये (उभया हस्ति-आभर) दोनों हाथ वाले विधान से इस लोक के धन को भी और परलोक—मोक्षधाम के अमृतधन को भी आभरित कर।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू हमारा भोगने योग्य धन वाला और प्राप्त धन वाला है जो तेरे द्वारा देने योग्य अद्भुत श्रेष्ठ धन—मौक्षैश्वर्य इस लोक यहाँ संसार में नहीं है उस धन को हमें दोनों हाथों वाली कर्मफल विधि से प्रदान कर—करता है जब हम तेरे उपासक बन जाते हैं॥ ४॥

ऋषिः—तिरश्ची: (अन्तर्ध्यान[1] में प्राप्त परमेश्वर जिसने किया)॥

३४६. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥ ५॥

पदपाठः— श्रुधि हवम् तिरश्च्याः तिरः च्याः इन्द्रः यः त्वा सपर्यति सुवीर्यस्य सु वीर्यस्य गोमतः रायः पूर्द्धि महान् असि॥ ५॥

अन्वयः—इन्द्र सुवीर्यस्य गोमतः तिरश्च्याः हवं श्रुधि यः-त्वा सपर्यति रायः-पूर्धि महान्-असि॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (सुवीर्यस्य) सुन्दर प्राणों वाले—"प्राणा वै वीर्यम्" [काठ० १३.७] (गोमतः) प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी—(तिरश्च्याः) अन्तर्ध्यान करने वाले उपासक के "तिरोदधे—अन्तर्दधाति" [निरु० १२.३२] (हवं श्रुधि) आमन्त्रण प्रार्थना वचन को सुन (यः-त्वा सपर्यति) जो तेरी परिचर्या करता है उपासना रस द्वारा "सपर्यति परिचरणकर्मा" [निघं० ३.५] (रायः-

१. "तिरोदधे—अन्तर्दधाति" [निरु० १२.३२]।

पूर्धि) उसे अपने आनन्दैश्वर्य से भर दे (महान्-असि) तू महान् कृपालु है।

भावार्थः—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! अपने अन्दर तेरे ध्यान करने वाले संयत प्राण से मैं संयमी होकर तेरी उपासना करता हूँ। मेरी प्रार्थना को अवश्य सुन। अपने आनन्दैश्वर्य को मेरे में भरपूर कर दे। तू महान् दयालु है अतः अवश्य सुनेगा॥ ५॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला)॥

३४७. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि। आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥ ६॥

पदपाठः— असावि सोमः इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णो आ गहि आ त्वा पृणक्तु इन्द्रियम् रजः सूर्यः न रश्मिभिः॥ ६॥

अन्वयः—शविष्ठ धृष्णो ते सोमः-असावि आगहि त्वा इन्द्रियम् आपृणक्तु रश्मिभिः-सूर्यः-न रजः॥

पदार्थः—(शविष्ठ) अत्यन्त बलवन् (धृष्णो) मेरे अनिष्टों के धर्षण करने वाले परमात्मन्! (ते) तेरे लिये (सोमः-असावि) उपासनारस निकाला गया है (आगहि) तू आ जा (त्वा) तुझे (इन्द्रियम्) सोम हमारा उपासनारस "इन्द्रियः सोमः" [कौ० १०.२] (आपृणक्तु) आसम्पृक्त हो—व्याप्त हो (रश्मिभिः-सूर्यः-न रजः) रश्मियों से सूर्य जैसे जल को सम्पृक्त होता है अपनी ओर आकर्षित करने को "उदकं रज उच्यते" [निरु० ४.१९]।

भावार्थः—हे अतिबलवान्! मेरे अनिष्टों को नष्ट करने वाले परमात्मन्! तू आ। तेरे लिये उपासनारस तैयार किया है। जैसे सूर्य अपनी रश्मियों से जल को सम्पृक्त हो, उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, ऐसा मेरा उपासनारस अपनी धाराओं से आपको अपनी ओर आकर्षित करता है॥ ६॥

ऋषिः—काण्वो नीपातिथिः (मेधावी का पुत्र परमात्मा के निकट पहुँचनेवाला यात्री[1])॥

३४८. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ ७॥

पदपाठः— आ इन्द्र याहि हरिभिः उप कण्वस्य सुष्टुतिम् सु स्तुतिम् दिवः अमुष्य शासतः दिवम् यय दिवावसो दिवा वसो॥ ७॥

अन्वयः—इन्द्र हरिभिः कण्वस्य सुष्टुतिम् उपायाहि दिवावसो अमुष्य दिवः-शासतः दिवं यय॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (हरिभिः) दुःखाज्ञानापहरण करने वाली तथा सुखज्ञानाहरण करने वाली शक्तिधाराओं के साथ "हरयः-हरणा"

---

१. "नि-अप्-नीपः" "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" [अष्टा० ६.३.९५]।

[निरु० ७.२४] (कण्वस्य सुष्टुतिम्) मेधावी वक्ता की शोभन स्तुति को (उपायाहि) उपागत हो—स्वीकार कर (दिवावसो) हे प्रकाशधन वाले! या प्रकाश में वसानेवाले परमात्मन्! (अमुष्य दिवः-शासतः) उस प्रकाशमय अमर लोक मोक्ष का शासन करते हुए के अपने (दिवं यय) प्रकाशमय अमृतधाम को मुझे ले जा—पहुँचा।

भावार्थः—परमात्मन्! तू प्रकाशधन वाला या प्रकाश में वसाने वाला है क्या ही अच्छा हो मुझ मेधावी वक्ता उपासक की सुन्दर हार्दिक स्तुति को स्वीकार कर, उस अपने प्रकाशमय धाम को मुझे ले चले जिसका तू शासन करता है। अवश्य सुन्दर हार्दिक स्तुति का फल यह देगा॥ ७॥

ऋषिः—तिरश्ची (परमात्मा का अन्दर ध्यान करने वाला)॥

३४९. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः। अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः॥ ८॥

पदपाठः— आ त्वा गिरः रथीः इव अस्थुः सुतेषु गिर्वणः गिः वनः अभि त्वा सम् अनूषत गावः वत्सम् न धेनव॥ ८॥

अन्वयः—गिर्वणः त्वा सुतेषु गिरः आस्थुः रथीः-इव त्वा-अभि समनूषत धेनवः-गावः न वत्सम्॥

पदार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुतिवाणियों से वननीय सेवनीय परमात्मन्! (त्वा) तेरे प्रति—तुझे पाकर (सुतेषु) सम्पन्न उपासना प्रसङ्गों (गिरः) स्तुतियाँ (आस्थुः) आश्रित हो जाती हैं (रथीः-इव) जैसे रथवान् गन्तव्य—प्राप्तव्य स्थान को पाकर उसे आश्रित होते हैं (त्वा-अभि समनूषत) तुझे लक्ष्य कर झुकती हैं—आकर्षित होती हैं (धेनवः-गावः न वत्सम्) दूध पिलाने वाली गौएँ जैसे दूध पिलाने के स्नेहवश बछड़े के प्रति झुक जाती हैं—आकर्षित होती हैं।

भावार्थः—हमारी स्तुतियाँ परमात्मा के प्रति ऐसी होनी चाहिए जैसे यात्री अपने गन्तव्य स्थान पर जाकर ही विश्राम पाता है ऐसे परमात्मा में विश्राम पायें, मध्य में विश्राम न करें तथा वे परमात्मा के प्रति ऐसी भावभरी हुई स्तुतियाँ हों जैसे दूधभरी गौएँ स्नेह में भर बछड़े की ओर झुकी जाया करती हैं, उसकी ओर आकर्षित होती जाती हैं॥ ८॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)॥

३५०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना। शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु॥ ९॥

पदपाठः— आ इत उ नु इन्द्रम् स्तुवाम शुद्धम् शुद्धेन साम्ना शुद्धैः उक्थैः वावृध्वाꣳसम् शुद्धैः आशीर्वान् आ शीर्वान् ममत्तु॥ ९॥

अन्वयः—एत-नु-उ शुद्धम्-इन्द्रम् शुद्धेन साम्ना स्तवाम शुद्धैः-उक्थैः वावृध्वांसम् शुद्धैः-आशीर्वान्-ममत्तु ॥

पदार्थः—(एत-नु-उ) हे उपासको! आओ शीघ्र तुम और हम सब अवश्य (शुद्धम्-इन्द्रम्) पापसम्पर्करहित अपितु शुभ गुण वाले परमात्मा की (शुद्धेन साम्ना) निष्पाप अपितु शुभगुणमय शिव साधु गान से ''यच्च वै शिवं शान्तं वाचस्तत् साम'' [जै० ३.५.५२] (स्तवाम) स्तुति करें, तथा (शुद्धैः-उक्थैः) अनृत आदि दोषों से रहित अपितु ऋजु सत्य आदि धर्मयुक्त वाक्—वाणियों से ''वागुक्थम्'' [ष० १.५] (वावृध्वांसम्) बढ़ते-बढ़ाते हुए—प्रसन्न होते करते हुए परमात्मा की स्तुति करें जिससे (शुद्धैः-आशीर्वान्-ममत्तु) वह हमारी शुद्ध—पवित्र आशीः—इच्छाओं प्रार्थनाओं से आशाओं वाला कामनाओं को देने वाला प्रसन्न हो।

भावार्थः—परमात्मा हमारी आशाओं कामनाओं को पूरा करता है परन्तु उस पवित्र की पवित्र, शान्त, शिवरूप, साधुभाव भरे वचन से तथा अनृत आदि दोषरहित आचरणों से स्तुति करेंगे तो वह बढ़ने बढ़ाने वाला होकर हमारी पवित्र प्रार्थनाओं से हमारी कामना पूर्ण करने वाला हुआ प्रसन्नता को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (पूर्ण विद्वान् का पुत्र या शिष्य कल्याणरूप परमात्मा की ओर जाने वाला) ॥

३५१. **यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः। सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १० ॥**

पदपाठः— **यः रयिम् वः रयिं तमः यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः सोमः सुतः सः इन्द्र ते अस्ति स्वधापते स्वधा पते मदः ॥ १० ॥**

अन्वयः—इन्द्र वः यः रयिम् रयिन्तमः यः द्युम्नैः-द्युम्नवत्तमः सोमः-सुतः स्वधापते सः ते मदः-अस्ति ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वः) 'तुभ्यम्' तेरे लिये ''वचनव्यत्ययः'' (यः) जो (रयिम्) ''सुपां सुपो भवन्तीति, आम्स्थाने अम्'' धनों की तुलना से (रयिन्तमः) अत्युत्कृष्ट धन है (यः) जो (द्युम्नैः-द्युम्नवत्तमः) द्योतन यश बलों की तुलना से अत्यन्त द्योतमान यशस्वी (सोमः-सुतः) उपासनारस निष्पन्न किया है (स्वधापते) हे अमृत रस के स्वामिन् ''स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह'' [श० ५.४.३.७] (सः) वह (ते) तेरा (मदः-अस्ति) हर्षकर है।

भावार्थः—निष्पन्न उपासनारस रसीले परमात्मा के प्रति उपहार दिया हुआ धनों की तुलना से अत्यन्त उत्कृष्ट धन भेंट तथा द्योतमान यश प्रशंसा की तुलना से अत्यन्त द्योतमान—यश प्रशंसनीय है वह और भौतिक भेंट नहीं चाहता ॥ १० ॥

अथ चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न को अपने में भरण करने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

३५२. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर। अरङ्गमाय जग्मयेऽ पश्चादध्वने नरः॥ १॥

पदपाठः— प्रति अस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर अर ङ्गमाय अरम् गमाय जग्मये अपश्चादध्वने अपश्चा दध्वने नरः॥ १॥

अन्वयः—अस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे अरङ्गमाय जग्मये अपश्चादध्वने नरः प्रतिभर॥

पदार्थः—(अस्मै) इस—(पिपीषते) पान करने के इच्छुक तथा (विश्वानि विदुषे) सब लोकों के जानने वाला—(अरङ्गमाय) समर्थ—(जग्मये) सर्वत्र व्याप्त (अपश्चादध्वने) अग्र मार्ग वाले (नरः) 'नरे' नेता परमात्मा के लिये (प्रतिभर) अपना सोम—उपासनारस अर्पित कर।

भावार्थः—उपासक के उपासनारस समर्पित करने में इष्टदेव सब लोकों का जानने वाला समर्थ सर्वव्यापक अग्रणेता परमात्मा ही है वह ही उपासक के उपासनारस का प्यासा है॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः शाकपूतो वा (वननीय देववाला या स्वभाव से पवित्र)॥

३५३. आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम्। महान्तं पूर्विनेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः॥ २॥

पदपाठः— आ नः वयोवयःशयम् वयोवयः शयम् महान्तम् गह्वरेष्ठाम् गह्वरे स्थाम् महान्तम् पूर्विनेष्ठाम् पूर्विने स्थाम् उग्रम् वचः अप अवधीः॥ २॥

अन्वयः—नः वयःशयं वयः महान्तम् गह्वरेष्ठाम् पूर्विणेष्ठाम् उग्रम् वचः अप-अवधीः॥

पदार्थः—(नः) हमारे (वयःशयं वयः) प्रत्येक प्राण में शयन करने वाले

प्राणप्रिय "प्राणो वै वयः" [ऐ० १.८] (महान्तम्) महान् (गह्वरेष्ठाम्) सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थान को (पूर्विणेष्ठाम्) पूर्वी सूर्यादि देवों में निष्ठित (उग्रम्) कठोर (वचः) हमारे वचन को (अप–अवधीः) नष्ट कर।

भावार्थः—जो महान् परमात्मा हमारे प्रत्येक प्राण में श्वास में बसता है महान् गहन सूक्ष्मस्वरूप पूर्वी पूर्व सूक्ष्म में निष्ठ है उसकी उपासना करें वह हमारा कठोर वचन नष्ट कर देगा॥ २ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको या परमात्मा से सङ्गम प्रिय जिसको है ऐसा जन)॥

३५४. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम्॥ ३ ॥

पदपाठः— आ त्वा रथम् यथा ऊतये सुम्नोय वर्त्तयामसि
तुविकूर्म्मिम् तुवि कूर्म्मिम् ऋतीषहम् ऋती सहम् इन्द्रम्
शविष्ठ सत्पतिम् सत् पतिम्॥ ३ ॥

अन्वयः—शविष्ठ तुविकूर्मिम् ऋतीषहम् सत्पतिम् त्वा–इन्द्रम् ऊतये सुम्नाय यथारथम् आवर्तयामसि॥

पदार्थः—(शविष्ठ) हे अत्यन्त बलवान्! परमात्मन् (तुविकूर्मिम्) बहुत कर्म शक्ति वाले—"तुवि बहुनाम" [निघं० ३.१] (ऋतीषहम्) ज्ञान कोष भार वहन समर्थ—(सत्पतिम्) सत्ता मात्र के स्वामी (त्वा–इन्द्रम्) तुझ परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (सुम्नाय) सुख के लिए (यथारथम्) रथ की भाँति (आवर्तयामसि) अपने जीवन में पुनः पुनः आवर्तित करते हैं, तेरी शरण लेते हैं।

भावार्थः—बहुत कर्म शक्ति वाले ज्ञानकोष वाले सत्तामात्र के स्वामी परमात्मा का अपनी संसारस्थिति के लिये तथा विशेष सुख मोक्षसुख प्राप्ति के लिए रथ—यान—गाड़ी की भाँति ध्यान स्मरण द्वारा पुनः पुनः जीवन में आवर्तन करना चाहिए॥ ३॥

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—वाणी—स्तुति वाला)॥

३५५. स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे। यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे॥ ४॥

पदपाठः— सः पूर्व्यः महोनाम् वेनः क्रतुभिः आनजे यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धियः आनजे॥ ४॥

अन्वयः—सः महोनां पूर्व्यः वेनः क्रतुभिः यस्य द्वारा मनुः पिता धियः देवेषु आनजे॥

पदार्थः—(सः) वह (महोनां पूर्व्यः) प्रशंसनीयों में सर्वश्रेष्ठ (वेनः) कमनीयों—प्रियों—कमनीय कान्त प्रियों में श्रेष्ठ इन्द्र—परमात्मा (क्रतुभिः) अपने विविध प्रज्ञानों—अध्यात्म लक्षणों से "क्रतु प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] हमारे अन्दर व्यक्त साक्षात् होता है "अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु" [रुधादि०] परन्तु कब (यस्य द्वारा) जिसके द्वारा जहाँ से साक्षात् होता है वे हैं (मनुः) आयु "आयुर्वै मनुः" [कौ० २६.१७] (पिता) प्राण "प्राणो वै पिता" [ऐ० २.३८] (धियः) प्रज्ञान—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार (देवेषु) परमात्मा देव में "बहुवचनमादरार्थं यद्वा" उसके दिव्य गुणों में (आनजे) 'एकवचनं व्यत्ययेन' लग जावें।

भावार्थः—समस्त पूज्यों में सर्वपूज्य, प्रशंसनीय, कमनीयों में कमनीय, प्रियों में श्रेष्ठ, कमनीयकान्त परमात्मा उपासक के अन्दर अपने प्रज्ञानों को प्रदर्शित करता हुआ साक्षात् होता है परन्तु कब जब कि उपासक की आयु अर्थात् परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये हो तथा प्राण भी उसके लिये चलें, जीने मात्र के लिये न चलें, उपासक के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार भी उस परमात्मदेव में लगे रहें उसका मनन, विवेचन, स्मरण, ममत्व परमात्मा के प्रति होता रहे तो निःसन्देह ये सब उसके साक्षात् के द्वार बनकर उसे साक्षात् करा देंगे॥ ४॥

ऋषिः—श्यावाश्वः (प्रगतिशील इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी जन[1])॥

३५६. यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा। पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते॥ ५॥

पदपाठः— यदि वहन्ति आशवः भ्राजमानाः रथेषु आ पिबन्तः मदिरम् मधु तत्र श्रवांꣳसि कृण्वते॥ ५॥

अन्वयः—यदि रथेषु भ्राजमानाः आशवः आवहन्ति तत्र मदिरं मधु पिबन्तः श्रवांसि कृण्वते॥

पदार्थः—(यदि) 'यद्–ङि' 'छान्दसप्रयोगः सप्तम्याम्' जिस समय (रथेषु) गन्ध आदि रमणीय भोगों में (भ्राजमानाः) प्रकाशमान "भ्राजृ दीप्तौ" [भ्वादि०] (आशवः) मरुत—भोग—वासना को मारने वाले त्रिलोकी में व्यापने वाले परमात्मधर्म "वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत् स एषु त्रिषु लोकेषु वर्तते" [श० ८.४.१.९] (आवहन्ति) हमें ले जाते हैं (तत्र) उस समय (मदिरं मधु पिबन्तः) हर्षकारक मधु—मीठे उपासनारस का पान—स्वीकार करते हुए (श्रवांसि कृण्वते) उन गन्धादि भोगों को प्रशस्त—श्रेष्ठ भोगधन कर देते हैं "श्रवः–इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ९.१०]॥

भावार्थः—गन्ध आदि रमणीय भोगों को भोगते हुए परमात्मा के व्यापन धर्म

---

१. "श्यैङ्गतौ" [भ्वादि०]।

उपासक के उपासनारस से युक्त हुए हों तो वे उन भोगों में प्रशस्त सुख करने वाले हो जाते हैं, अतः संसार में उपासकों को केवल भोग की दृष्टि से नहीं किन्तु उनमें परमात्मा के व्यापन कला धर्मों को अनुभव करना चाहिए॥ ५॥

ऋषिः—शंयुः (कल्याणस्वरूप परमात्मा की ओर चलने वाला उपासक)॥

३५७. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्। इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम्॥ ६॥

पदपाठः— त्यम् उ वः अप्रहणम् अ प्रहणम् गृणीषे शवसः पतिम् इन्द्रम् विश्वासाहम् विश्वा साहम् नरम् शचिष्ठम् विश्ववेदसम् विश्व वेदसम्॥ ६॥

अन्वयः—वः त्यम् अप्रहणम् शवसः-पतिम् विश्वासाहम् नरम् शचिष्ठम् विश्ववेदसम् इन्द्रम् उ गृणीषे॥

पदार्थः—(वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम (त्यम्) उस (अप्रहणम्) जिसका कोई प्रहर्ता नहीं या जो उपासक का प्रहर्ता नहीं उस ऐसे—(शवसः-पतिम्) बल के स्वामी (विश्वासाहम्) सबको सहने—सबको दबा देने वाले (नरम्) नेता—(शचिष्ठम्) अति हित वक्ता "शच व्यक्तायां वाचि" [भ्वादि०] (विश्ववेदसम्) सब सुख धन वाले—(इन्द्रम्) परमात्मा की (उ) अवश्य (गृणीषे) 'गृणीत' 'वचनव्यत्ययः' स्तुति करो।

भावार्थः—परमात्मा स्वरूपतः किसी पर प्रहार न करने वाला बलस्वामी समस्त दोषों का तिरस्कारकर्ता नेता अत्यन्त हित वक्ता सर्वधन वाला है उसकी उपासना करनी चाहिए॥ ६॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय देव जिसका है ऐसा उपासक)॥ देवता—दधिक्रावा 'इन्द्रसम्बद्धो दधिक्रावा' (परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाला ध्यान में आने वाला गुण देव)॥

३५८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयूँषि तारिषत्॥ ७॥

पदपाठः— दधिक्राव्णः दधि क्राव्णः अकारिषम् जिष्णोः अश्वस्य वाजिनः सुरभि सु रभि नः मुखा मु खा करत् प्र नः आयूꣳषि तारिषत्॥ ७॥

अन्वयः—जिष्णोः अश्वस्य वाजिनः दधिक्राव्णः अकारिषम् नः मुखा सुरभि करत् नः-आयूंषि प्रतारिषत्॥

पदार्थः—(जिष्णोः) जयशील—(अश्वस्य) व्यापक—(वाजिनः) अमृत

अन्न वाले (दधिक्राव्णः) जगत् को धारण किए हुए परमात्मा के "देवपवित्रं वै दधिक्राः" [ऐ० ६.३६] (अकारिषम्) स्तुति करूँ (नः) हमारे (मुखा) मुख में होने वाले या मुखस्वरूप नासिका जिह्वा आदि ज्ञानेन्द्रियों को (सुरभि) सुगन्ध वाले (करत्) करो (नः-आयूंषि) हमारी आयुओं को (प्रतारिषत्) बढ़ावें।

भावार्थः—पवित्रदेव परमात्मा जो जयशील अमृतयोग का निमित्त व्यापक है वह हमारी इन्द्रियों को सुवासित करने वाला और आयुओं को बढ़ाता है उसकी स्तुति किया करें॥७॥

ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः (मीठी इच्छा वाले या मधुपरायण का पुत्र या शिष्य जितेन्द्रिय या वासना जीत चुका जन)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

३५९. **पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।**
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥८॥

पदपाठः— **पुराम् भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः अमित ओजाः अजायत इन्द्रः विश्वस्य कर्म्मणः धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः पुरु स्तुतः॥८॥**

अन्वयः—इन्द्र पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः विश्वस्य कर्मणः-धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः अजायत॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (पुरां भिन्दुः) उपासकों के देहपुरों—देह बन्धनों को 'मुक्ति देकर' भेदन करने वाला (युवा) सदा समय अजर (कविः) सर्वज्ञ उपदेष्टा (अमितौजाः) अनन्त बल वाला (विश्वस्य कर्मणः-धर्त्ता) जगद्रचन कर्म का धारक (वज्री) शासनवान् शासन "वज्रः शासः" [श० ३.१.८.५] (पुरुष्टुतः) बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य (अजायत) उपासक के हृदय में साक्षात् प्रसिद्ध होता है।

भावार्थः—परमात्मा उपासकों के देहबन्धन का काटने वाला मुक्ति देने वाला, उनका सर्वज्ञ उपदेशक अनन्त आत्मबल वाला संसार का रचनादि कर्म का अधिष्ठाता जीवों का शासक कर्मफल विधाता बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य उनके अन्दर साक्षात् होता है॥८॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—प्रियमेधाः (प्रिय है परमात्मसङ्गति जिसको ऐसा जन)॥

३६०. **प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे।**
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति॥१॥

१२र २ ३ ३ ३ १ २ ३ १२र १२र ३ १ २
पदपाठः— **प्रप्र प्र प्र वः त्रिष्टुभम् त्रि स्तुभम् इषम् वन्दद्वीराय**
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३
वन्दत् वीराय इन्दवे धिया वः मेधसातये मेध सातये
१२र १२र ३ २ ३
पुरन्ध्या पुरम् ध्या आ विवासति॥ १ ॥

अन्वयः—वः वन्दद्वीराय-इन्दवे त्रिष्टुभम्-इषम् प्र प्र मेधसातये वः पुरन्ध्या धिया विवासति॥

पदार्थः—(वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम उपासक जनो! (वन्दद्वीराय-इन्दवे) "वन्दन्तो वीरा यस्य" वन्दना करते हुए वीर जिससे हो जाते हैं ऐसे ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (त्रिष्टुभम्-इषम्) तीन—स्तुतिप्रार्थना उपासनारूप अर्चन वाला "स्तोभति-अर्चति कर्मा" [निघं० ३.१] अभीष्ट को (प्र प्र) पुनः-पुनः प्रस्तुत करो—प्रकृष्टरूप से अर्पित करो जिससे (मेधसातये) अपनी सङ्गति प्राप्ति के लिए "मेधृसङ्गमे" [भ्वादि०] (वः) तुमको (पुरन्ध्या) बहुत कर्मशक्ति वाली—"धीः कर्मनाम" [निघं० ३.९] (धिया) प्रज्ञा से—"धीः प्रज्ञानाम" [निघं० २.१] (विवासति) विशेषरूप से वासित करता है "अन्तर्गतणिजर्थः"।

भावार्थः—उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये स्तुतिप्रार्थना उपासनारूप अर्चन अभीष्ट भेंट अवश्य समर्पित करो जिसकी वन्दना करते हुए जन सब प्रकार वीर हो जाते हैं तथा अपनी सङ्गति की प्राप्ति के लिए तुमको बहुत कर्मशक्ति वाली बुद्धि से विवासित भूषित कर देता है॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
३६१. कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य॥ २॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १२र २ ३ २ ३ १ २ ३
पदपाठः— **कश्यपश्य स्वर्विदः स्वः विदः यौ आहुः सयुजौ स**
१ २र १ २र १ २र १ २र १२र ३ २ ३ २ १२र ३ १ २
युजौ इति ययोः विश्वम् अपि व्रतम् यज्ञम् धीराः निचाय्य
३ १ २र
नि चाय्य॥ २॥

अन्वयः—कश्यपस्य स्वर्विदः यौ सयुजौ इति धीराः-आहुः ययोः विश्वं व्रतं यज्ञम् निचाय्य॥

पदार्थः—(कश्यपस्य) देखने वाले—सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १.८.८] (स्वर्विदः) स्वः-मुक्त के लिए मोक्ष सुख रखने वाले या मोक्ष सुखानुभव कराने वाले परमात्मा के—उसकी प्राप्ति के लिए (यौ सयुजौ) जो दोनों परस्पर साथी साधन दो हरियाँ—ऋक् और साम—स्तुति और उपासना है (इति धीराः-आहुः) ऐसा धीर-ध्यानी जन कहते हैं (ययोः) जिन दोनों में या दोनों के अन्तर्गत—जिनके परिपालनार्थ (विश्वं व्रतं यज्ञम्) समस्त सङ्कल्प और यज्ञ—श्रेष्ठतम कर्म (निचाय्य) निचयन करके सेवन करें।

भावार्थः—परमात्मा सर्वसाक्षी तथा मोक्ष का स्वामी है उसकी दो हरियाँ—ऋक्, साम, स्तुति और उपासना को धीर मुमुक्षुजन प्रशंसित करते हैं इनके परिपालनार्थ सङ्कल्प और श्रेष्ठ कर्म करते हैं इन्हें अपने जीवन में धारण करें॥ २॥

ऋषिः—प्रियमेधाः (प्रिय है परमात्मसङ्गति जिसको ऐसा जन)॥

३६२. अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्णवर्चत॥ ३॥

पदपाठः— अर्च्चत प्र अर्च्चत नरः प्रियमेधासः प्रिय मेधासः अर्च्चत अर्च्चन्तु पुत्रकाः पुत् त्रकाः उत पुरम् इत् धृष्णु अर्च्चत॥ ३॥

अन्वयः—प्रियमेधासः-नरः पुरम्-इत्-धृष्णु अर्चत अर्चत प्र-अर्चत पुत्रकाः-उत अर्चन्तु अर्चत॥

पदार्थः—(प्रियमेधासः-नरः) हे परमात्म सङ्गतिप्रिय नरो, देवपुरुषो, मुमुक्षुओ! "नरो हवै देवविशः" [जै० १.८९] (पुरम्-इत्-धृष्णु) कामपूरक तथा शुभगुणपूरक पापधर्षणशील परमात्मा को (अर्चत) सत्कृत करो स्तुति द्वारा (अर्चत) सत्कृत करो प्रार्थना द्वारा (प्र-अर्चत) प्रकृष्ट सत्कृत करो उपासना द्वारा (पुत्रकाः-उत) तुम्हारे पुत्र भी (अर्चन्तु) सत्कृत करें (अर्चत) इस प्रकार सब मिलकर सत्कृत करो।

भावार्थः—परमात्मा की सङ्गति प्रेमी मुमुक्षुजनो! तुम उस दोष—विनाशक सद्गुण शुभकामनापूरक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना द्वारा अर्चना करो और सपरिवार पुत्रों शिष्यों सहित करो, मुमुक्षुओं का कर्त्तव्य है, अपने सन्तानों शिष्यों के अन्दर भी मुमुक्षु भावना को भरें॥ ३॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण)॥

३६३. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे। शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत् सख्येषु च॥ ४॥

पदपाठः— उक्थम् इन्द्राय शꣳस्यम् वर्द्धनम् पुरुनिष्षिधे पुरु निष्षिधे शक्रः यथा सुतेषु नः रारणत् सख्येषु स ख्येषु च॥ ४॥

अन्वयः—पुरु निःषिधे इन्द्राय वर्धनम्-उक्थं शंस्यम् यथा शक्रः नः सुतेषु च सख्येषु रारणत्॥

पदार्थः—(पुरु निःषिधे) बहुत या अत्यन्त पाप दोष निवारक गुणसाधक (इन्द्राय) परमात्मा के लिए (वर्धनम्-उक्थं शंस्यम्) हमारी वृद्धि के साधनभूत वक्तव्य प्रशंसा योग्य स्तुतिवचन कहना चाहिए (यथा) जिससे कि (शक्रः)

सर्वशक्तिमान् समर्थ परमात्मा (नः) हमारे (सुतेषु) निष्पन्न उपासनारसों में (च) और (सख्येषु) सखिभावों—मित्रभावों में (रारणत्) रमण करें—रुचि करें "रारण रमे" [निरु० ११.३९]।

भावार्थः—परमात्मा अत्यन्त दोषनिवारक एवं अत्यन्त गुणसाधक है उसकी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये स्ववृद्धिकर प्रशंसनीय स्तुतिवचन कहना चाहिये जिससे वह सर्वसमर्थ परमात्मा हमारे उपासनारसों को स्वीकार करने में और हमारे मित्रभावों प्रेमभावों में रमे—रुचि करे—हमें रुचि से अपनावे ॥ ४ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रियमेधा जिसको है ऐसा विद्वान्)॥

३ १२ ३ २ ३१ २ ३ १ २
३६४. विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २र १ २र २
पदपाठः— विश्वानरस्य विश्वा नरस्य वः पतिम् अनानतस्य अन् आनतस्य शवसः एवैः च चर्षणीनाम् ऊती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥
३ १ २र १ २र ३ २ ३ २ ३
१ २र

अन्वयः—विश्वान्-अरस्य अनानतस्य शवसः वः पतिम् चर्षणीनाम्-एवैः च रथानाम्-ऊती हुवे ॥

पदार्थः—(विश्वान्-अरस्य) सब लोकों को प्राप्त सूर्य के "विश्वानरः प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि" [निरु० ७.२१] "विश्वानरस्यादित्यस्य" [निरु० १२.२३] तथा (अनानतस्य शवसः) न—आनत—न नम्र होने वाले बलरूप सृष्टिक्रम के (वः) 'त्वाम्' तुझ (पतिम्) स्वामी इन्द्र—परमात्मा को (चर्षणीनाम्-एवैः) हम मनुष्यों के कामनाओं के लक्ष्य से "एवैः कामैः" [निरु० १२.२३] (च) और (रथानाम्-ऊती) अपने रमण साधनों—इन्द्रियों की रक्षा के लिये (हुवे) आमन्त्रित करता हूँ।

भावार्थः—परमात्मा समस्त पृथिवी चन्द्र आदि लोकों का और महान् सृष्टिक्रम बल का स्वामी है उसको हम कामनापूर्ति के हेतु और अपनी इन्द्रियों की रक्षा के हेतु आमन्त्रित करते रहें ॥ ५ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अध्यात्म योग को अपने में भरण करने वाला जन)॥

२ ३ १ २ ३ १ ३र ३ १ २र ३ १ २ ३ १
३६५. स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः । ऊती स
२र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ ३ २ १२र ३ २ १ २र १२र ३ २ २
पदपाठः— सः घ यः ते दिवः नरः धिया मर्त्तस्य शमतः ऊती सः
३ २ ३ २ ३ २ १ २र २ ३
बृहतः दिवः द्विषः अꣳहः न तरति ॥ ६ ॥

अन्वयः—ते दिवः-नरः-शमतः-अमर्तस्य यः-धिया सघा सः ऊती बृहतः-दिवः द्विषः अंहः-न तरति ॥

पदार्थः—(ते दिवः-नरः-शमतः-अमर्तस्य) तुझ अमृतलोक—मोक्षधाम के नेता शान्ति देते हुए अमर देव का (यः-धिया सघा) ''सघा सखा वर्णव्यत्ययः'' जो ध्यान द्वारा सखा हो जाता है (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा से (बृहतः-दिवः) उस महान् मोक्षधाम के (द्विषः) विरोधी विघ्नों बाधकों को (अंहः-न तरति) संसार के साधारण पाप के समान तर जाता है।

भावार्थः—मोक्षधाम के नायक तथा उपासकों को शान्ति सुख के दाता अमरदेव परमात्मा का जो ध्यानोपासना से सखा—मित्र बन जाता है वह उसकी रक्षा से कृपा से महान् मोक्षधाम के विरोधियों को साधारण विघ्न के समान पार कर जाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—अत्रिः (इस जीवन में ही तृतीय ज्योति परमात्मा का साक्षात्कर्ता)॥

३६६. विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥ ७ ॥

पदपाठः— विभोः वि भोः ते इन्द्र राधसः विभ्वी वि भ्वी रातिः शतक्रतो शत क्रतो अथ नः विश्वचर्षणे विश्व चर्षणे द्युम्नम् सुदत्र सु दत्र मꣳहय ॥ ७ ॥

अन्वयः—शतक्रतो-इन्द्र ते विभोः-राधसः विभ्वी रातिः अथ विश्वचर्षणे सुदत्र नः द्युम्नं मंहय ॥

पदार्थः—(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत कर्मशक्तिमन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते विभोः-राधसः) तेरे विभुधन—महान् धन का (विभ्वी रातिः) महान् दान है (अथ) और ''अथ समुच्चये'' [अव्ययार्थनिबन्धम्] (विश्वचर्षणे सुदत्र) हे सर्वद्रष्टा अच्छे दाता कल्याणदानी ''सुदत्रः कल्याणदानः'' [निरु० ६.१४] (नः) हमारे लिये (द्युम्नं मंहय) द्योतमान धन को प्रदान कर ''मंहतेर्दानकर्मणः'' [निरु० १.७]।

भावार्थः—हे बहुत कर्म प्रवृत्ति वाले—अनन्त कर्मशक्तिमन् परमात्मन्! तेरा धन महान् है तेरे धन से संसार भरा पड़ा है और मोक्षधाम भी तेरे अमर धन से भरा पड़ा है, उस महान् धन का दान भी तू करता है। इस संसार में भी तेरे विविध दान जीवों के प्रति हैं एवं मोक्षधाम में मुमुक्षुओं को महान् आनन्द दान देता है और सर्वद्रष्टा भद्रदानी परमात्मन्! तू हमें कल्याणकारी द्योतमान ज्ञान दान दे, जिससे इस संसार के और मोक्ष के दोनों धनों का उपभोग कर सकें ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अति मेधावी—लोक से ऊपर अध्यात्म में मेधा रखने वाला)॥ देवता—उषाः 'इन्द्रसम्बद्धा' (परमात्मज्योतिः)॥

३६७. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

पदपाठः— वयः चित् ते पतत्रिणः द्विपात् द्वि पात् चतुष्पात् चतुः पात् अर्जुनि उषः प्र आरन् ऋतून् अनु दिवः अन्तेभ्य परि ॥ ८ ॥

अन्वयः—अर्जुनि उषः दिवः-अन्तेभ्यः-परि वयः-चित् पतत्रिणः द्विपात् चतुष्पात् ऋतून्-अनु प्रारन् ॥

पदार्थः—(अर्जुनि) अर्जुन—शुभ्रस्वरूप इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा की "अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः" [श० २.१.२.११] (उषः) दीप्त शक्ति (दिवः-अन्तेभ्यः-परि) आकाश के प्रदेशों से लेकर पृथिवी तक तेरे या तेरे द्वारा (वयः-चित्) अन्नमात्र—अद्यमान वनस्पतिवर्ग "वयः-अन्ननाम" [निघं० २.७] "वयः-अन्नम्" [निरु० ६.४] "अन्नं वै वयः" [श० ८.५.२.६] (पतत्रिणः) सब पक्षी (द्विपात्) मनुष्य "द्विपाद् वै पुरुषः" [ऐ० ४.३] (चतुष्पात्) गौ घोड़े आदि चार पैर वाले (ऋतून्-अनु) ऋतुओं के अनुसार अपने अपने समय के अनुसार (प्रारन्) प्राप्त होते हैं—प्रादुर्भूत होते हैं—प्रकट होते हैं।

भावार्थः—परमात्मा की शुभ्र या दीप्त शक्ति के द्वारा आकाश से पृथिवी तक समस्त गोधूम आदि ओषधि वनस्पतियाँ पक्षी मनुष्य गौ आदि पशु अपनी ऋतु या समय के अनुसार प्रारम्भ सृष्टि में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं। अतः हम इस महती दीप्तशक्ति को अपने अन्दर वसा कर जीवन का विकास करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीर्णतम परमात्म प्राप्ति से—ऊँचा उठा)॥

देवता—विश्वे देवाः 'इन्द्रसम्बद्धाः' (परमात्मा के दिव्य धर्म)॥

३६८. अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः। कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

पदपाठः— अमीइति ये देवाः स्थन स्थ न मध्ये आ रोचने दिवः कत् वः ऋतम् कत् अमृतम् अ मृतम् का प्रत्ना वः आहुतिः आ हुतिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—दिवः-आरोचने मध्ये अमी ये वः-देवाः—स्थन कत्-ह-ऋतम् कत्-अमृतम् का प्रत्ना-आहुतिः ॥

पदार्थः—(दिवः-आरोचने मध्ये) ज्ञानप्रकाशक इन्द्र—परमात्मा के समन्त प्रकाश स्थान के मध्य में (अमी ये वः-देवाः—स्थन) वे जो 'वः यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम विद्वान्‌जन हो (कत्-ह-ऋतम्) क्या ऋत है सत्य है (कत्-अमृतम्) क्या अमृत है (का प्रत्ना-आहुतिः) क्या पुरातनी सदा से चली आई आहुति देने लेने योग्य भेंट है।

भावार्थः—परमात्मा के गुण प्रकाशनार्थ सम्मेलन होने चाहिए उनमें एकत्र विद्वानों में चर्चा चलनी चाहिए। क्या ऋत धर्म है जिससे संसार का नियन्त्रण

परमात्मा कर रहा है जीवात्माओं को भोगफल एवं अभ्युदय देता है और क्या अमृत धर्म है, जिससे मुक्तों के लिए मोक्ष की प्रवृत्ति है—मोक्षानन्द दे रहा है। इन दोनों में अधिनायक परमात्मदेव को मान उसके आदेश का पालन और आराधना करना चाहिए॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)॥ देवता—ऋक्सामे 'इन्द्रसम्बद्धे' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा के ऋक्साम—स्तुति उपासना)॥

३६९. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते। वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः॥ १० ॥

पदपाठः— ऋचम् साम यजामहे याभ्याम् कर्म्माणि कृण्वते वि तेइति सदसि राजतः यज्ञम् देवेषु वक्षतः॥ १० ॥

अन्वयः—ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ते सदसि विराजतः यज्ञं देवेषु वक्षतः॥

पदार्थः—(ऋचं साम यजामहे) परमात्मा की स्तुति और उपासना का हम सेवन करें (याभ्यां कर्माणि कृण्वते) जिनके द्वारा—जिनके सेवन के साथ श्रेष्ठकर्म करते हैं (ते) वे दोनों (सदसि) हमारे हृदयसदन में (विराजतः) विशेषरूप से बने रहें, स्थान जमावें (यज्ञं देवेषु वक्षतः) हमारे अध्यात्म यज्ञ को हमारी समस्त इन्द्रियों में प्रवाहित करें।

भावार्थः—समस्त श्रेष्ठ कर्मों को परमात्मा की स्तुति उपासना से आरम्भ करना चाहिए, हमारे हृदय में स्तुति उपासना घर कर जावें और हमारी इन्द्रियों में अध्यात्मता का सञ्चार कर दें जिससे इन्द्रियाँ असंयम का कार्य न कर सकें॥ १० ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—रेभः (परमात्मा की अर्चना करने वाला[१])॥ छन्दः—जगती॥

३७०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्॥ १ ॥

पदपाठः— विश्वाः पृतनाः अभिभूतरम् अभि भूतरम् नरः सजूः स जूः ततक्षुः इन्द्रम् जजनुः च राजसे क्रत्वे वरे स्थेमनि आमुरीम् आ मुरीम् उत उग्रम् ओजिष्ठम् तरसम् तरस्विनम्॥ १ ॥

---

१. ''रेभति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

अन्वयः—नरः सजूः इन्द्रं विश्वाः पृतनाः-अभिभूतरम् ततक्षुः च राजसे जजनुः क्रत्वे वरे स्थेमनि आमुरीम् उत उग्रम्-ओजिष्ठम् तरसं तरस्विनम् ॥

पदार्थः—(नरः) मुमुक्षुजन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (सजूः) सजोषण—समानभावना से युक्त हो "सजूः-सजोषणः" [निरु० ९.१२] (इन्द्रं विश्वाः पृतनाः-अभिभूतरम्) परमात्मा को अपनी समस्त विरोधी प्रतिकूल प्रवृत्तियों पर "पृतनां द्विषन्तं भ्रातृव्य....." [जै० २.९१] अत्यन्त अभिभव करने वाला (ततक्षुः) करा—निश्चित करा "ततक्षुः-चक्रुः" [निरु० ६.२७] (च) और (राजसे जजनुः) स्वयं भी उन पर अधिकार पाने को "राजति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २.२१] सुन्दर प्रादुर्भूत किया—साक्षात् किया (क्रत्वे) अध्यात्मकर्म के लिये (वरे स्थेमनि) वरते हैं जहाँ रहें उस ऐसे हृदयस्थान में (आमुरीम्) वासना को समन्तरूप से मारने वाले—(उत) और (उग्रम्-ओजिष्ठम्) तेजस्वी भारी ओजवाले (तरसं तरस्विनम्) बलस्वरूप बलवान् को धारण करते हैं।

भावार्थः—स्तोता जन अपने समस्त विरोधी भावों को दबा देने वाले परमात्मा को ही निश्चित करते हैं तथा स्वयं अपने में उनपर अधिकार करने को उसे अन्दर साक्षात् करते हैं, अध्यात्म कर्म करने के लिए, वरण करने के लिए हृदय स्थान में उस वासनाओं के समन्त रूप से मार देने वाले बड़े तेजस्वी ओजस्वी बलरूप बलवान् परमात्मा को उपासित करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—सुवेदः शैलूषिः (अच्छा ज्ञाता शील-समाधि में वसने वाले का शिष्य[1])॥

३७१. **श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद् दस्युं नर्यं विवेरपः। उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः॥ २ ॥**

पदपाठः— **श्रत् ते दधामि प्रथमाय मन्यवे अहन् यत् दस्युम् नर्यम् विवेः अपः उभेइति यत् त्वा रोदसीइति धावताम् अनु भ्यसात् ते शुष्मात् पृथिवी चित् अद्रिवः अ द्रिवः ॥ २ ॥**

अन्वयः—अद्रिवः ते प्रथमाय मन्यवे श्रत्-दधामि यत्-नर्यं दस्युम्-अहन् अपः-विवेः यत् उभे रोदसी त्वा-अनु भ्यसात् धावताम् पृथिवी चित्-ते शुष्मात् ॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मन्! (ते प्रथमाय मन्यवे) तेरे श्रेष्ठ तेज के लिए "मन्युर्मन्यतेदीर्प्तिकर्मणः" [निरु० १०.३०] (श्रत्-दधामि) श्रद्धा करता हूँ—स्वागत करता हूँ (यत्-नर्यं दस्युम्-अहन्) जो नर—देवजन मुमुक्षुजन

---

१. "शील समाधौ" [भ्वादि०]।

के दस्यु उपक्षीण—करने वाले विरोधी विचार को मारता है (अप:-विवे:) मोक्षयोग्य कर्म को विस्तृत करता है "अप: कर्मनाम" [निघं० २.१] (यत्) 'यत:' क्योंकि (उभे रोदसी) दो द्यावापृथिवी—द्युलोक और पृथिवीलोक (त्वा-अनु) तेरे अनुशासन में या अनुसार (भ्यसात्) भय से (धावताम्) अपनी अपनी गति करते हैं (पृथिवी चित्-ते शुष्मात्) प्रथनशील अन्तरिक्ष भी तेरे बल—शासन में प्रथित हो रहा है "पृथिवी-अन्तरिक्षनाम" [निघं० १.३] "शुष्मं बलम्" [निघं० २.९]।

भावार्थ:—परमात्मन्! तू बड़ा दयालु है जो अपने मुमुक्षु उपासक के विरोधी रुकावट करने वाले विचार को नष्ट करता है दस्यु की तो बात क्या ये द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्षलोक भी तेरे शासन बल भय में अपनी गतिविधि और स्थिति में वर्तमान हैं अत: तेरे इस दीप्त तेज शासन पर मैं श्रद्धा करता हूँ॥ २॥

ऋषि:—वामदेव: वननीय—उपासनीय देव जिसका है ऐसा उपासक)॥

३७२. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्
भूरतिथिर्जनानाम्। स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्त्तनीरनु
वावृत एक इत्॥ ३॥

पदपाठ:— समेत सम् एत विश्वा: ओजसा पतिम् दिव: य: एक:
इत् भू: अतिथि: जनानाम् स: पूर्व्य: नूतनम् आजिगीषन्
आ जिगीषन् तम् वर्त्तनी: अनु वावृते एक: इत्॥ ३॥

अन्वय:—विश्वा: दिव:-पतिम् ओजसा समेत य:-एक:-इत् जनानाम्-अतिथि:-भू: स: पूर्व्य: नूतनम् आजिगीषन्तम् एक:-इत् वर्तनी:-अनुवावृते॥

पदार्थ:—(विश्वा:) समस्त मानव प्रजाओ! (दिव:-पतिम्) मोक्षधाम के स्वामी को (ओजसा समेत) अपने पूर्ण बल से सम्प्राप्त होओ (य:-एक:-इत्) जो अकेला ही (जनानाम्-अतिथि:-भू:) जन्यमान मनुष्यों के अन्दर अन्तर्यामीरूप से विराजने वाला है (स:) वह (पूर्व्य:) उनकी उत्पत्ति या शरीर में आने से पूर्व पुरातन—पूर्व से ही वर्तमान हुआ (नूतनम्) नवीन—पश्चात् शरीर में आने वाले (आजिगीषन्तम्) शरीर को अभिभूत—स्वाधीन करने के इच्छुक जीवात्मा को "जि-अभिभवे" [भ्वादि०] (एक:-इत्) अकेला ही (वर्तनी:-अनुवावृत्ते) कर्मानुसार गतियों के पीछे "वर्तते गतिकर्मा" [निघं० २.४] घुमाता है।

भावार्थ:—परमात्मा में प्रवेश करने वाले उपासक मोक्षधाम के स्वामी परमात्मा को अपने आत्मिकबल से प्राप्त होते हैं जो कि अकेला ही जन्यमान वस्तुओं में अन्तर्यामीरूप से विराजमान स्वामी सनातन है शरीर पर अधिकार जमाने के इच्छुक इसके स्वामी जीवात्मा को कर्मानुसार गतियों में घुमाता है॥ ३॥

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः (प्राणविद्यावेत्ता—प्राणायामाभ्यासियों में श्रेष्ठ उपासक)॥

३७३. **इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः॥ ४॥**

पदपाठः— **इमे ते इन्द्र ते वयम् पुरुष्टुत पुरु स्तुत ये त्वा आरभ्य आ रभ्य चरामसि प्रभूवसो प्रभू वसो न हि त्वत् अन्यः अन् यः गिर्वणः गिः वनः गिरः सघत् क्षोणीः इव प्रति तत् हर्य नः वचः॥ ४॥**

अन्वयः—प्रभूवसो पुरुष्टुत-इन्द्र इमे ये वयं ते त्वा-आरभ्य चरामसि गिर्वणः त्वत्-अन्यः गिरः न हि सघत् क्षोणिः-इव नः-तत्-वचः-प्रतिहर्य॥

पदार्थः—(प्रभूवसो) हे बहुत धन वाले (पुरुष्टुत-इन्द्र) बहुत प्रकार से स्तुत्य परमात्मन्! (इमे) ये वे (ये वयं ते) जो हम तेरे उपासक (त्वा-आरभ्य चरामसि) तुझे आरम्भ कर—तेरा आश्रय लेकर जीवनयात्रा करते हैं (गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय—सेवनीय परमात्मन्! (त्वत्-अन्यः) तुझसे भिन्न (गिरः) हमारी प्रार्थनाओं को (न हि सघत्) नहीं व्याप्त होता है—"षघ अत्र व्याप्त्यर्थश्छान्दसः" (क्षोणिः-इव नः-तत्-वचः-प्रतिहर्य) पृथिवी के समान हमारे उस प्रार्थनावचन को चाह—स्वीकार कर, "क्षोणिः पृथिवीनाम" [निघं० १.१] "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६]।

भावार्थः—हे बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य और बहुत धन वाले परमात्मन्! ये हम तेरे उपासक तुझे अपना आश्रय बनाकर जीवनयात्रा करते हैं हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य तुझसे भिन्न कोई नहीं जो हमारी प्रार्थनाओं को प्राप्त हो सके, उन पर ध्यान दे सके, तू हमारे वचनों को पृथिवी की भाँति चाहता है जैसे पृथिवी अपने आश्रित पदार्थों को त्यागती नहीं है, निमित्त से अलग हुओं को अपना आश्रय देती है, ऐसे तू भी अपने आश्रित हम उपासकों को नहीं त्यागता है॥ ४॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)॥

३७४. **चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत। वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥ ५॥**

पदपाठः— **चर्षणिधृतम् चर्षणी धृतम् मघवानम् उक्थम् इन्द्रम् गिरः बृहतीः अभि अनूषत वावृधानम् पुरुहूतम् पुरु हूतम् सुवृक्तिभिः सु वृक्तिभिः अमर्त्यम् अ मर्त्यम् जरमाणम् दिवेदिवे दिवे दिवे॥ ५॥**

अन्वयः—बृहतीः-गिरः चर्षणीधृतम् मघवानम् उक्थ्यम् वावृधानम् पुरुहूतम् अमर्त्यम् जरमाणम् इन्द्रम् सुवृक्तिभिः दिवे-दिवे अभ्यनूषत ॥

पदार्थः—(बृहतीः-गिरः) हे हमारी बड़ी बड़ी पुकार वाली वाणियो! तुम (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारण करने वाले संरक्षक "चर्षणीधृतः-मनुष्यधृत" [निरु० १२.४०] (मघवानम्) प्रशस्त धन वाले—(उक्थ्यम्) प्रशंसनीय—"उक्थ्यं वक्तव्यप्रशंसम्" [निरु० ११.२१] (वावृधानम्) हमें बढ़ाने वाले—"वावृधानः-वर्धयमानाः" [निरु० १०.२६] (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से—बहुत नामों गुणकर्मों से आमन्त्रित करने योग्य (अमर्त्यम्) मरणधर्मरहित—अजर अमर—(जरमाणम्) स्तुति किए जाते हुए—"जरते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] 'कर्तरि कर्मप्रत्ययः' (इन्द्रम्) परमात्मा को (सुवृक्तिभिः) सम्यक् दोषवर्जित स्तुतियों से "सुवृक्तिभिः-सुप्रवृक्ताभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः" [निरु० २.२४] (दिवे-दिवे) दिनदिन—प्रतिदिन (अभ्यनूषत) निरन्तर स्तुति करो।

भावार्थः—हे मेरी बड़ी-बड़ी पुकार वाणियो उक्तियो! तुम मनुष्यों के धारक प्रशस्त धन वाले प्रशंसनीय बढ़ाने वाले बहुत प्रकार से आमन्त्रण के योग्य अमर हमारे द्वारा स्तुत करने योग्य परमात्मा की प्रतिदिन दोषरहित भावनाओं से बार-बार स्तुति करो ॥ ५ ॥

ऋषिः—कृष्ण आङ्गिरस (प्राणविद्या में सम्पन्न परमात्मा के प्रति आकर्षित जन)॥

३७५. **अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत। परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **अच्छ वः इन्द्रम् मतयः स्वर्युवः सध्रीचीः स ध्रीचिः विश्वाः उशतीः अनूषत परि स्वजन्त जनयः यथा पतिम् मर्यम् न शुन्ध्युम् मघवानम् ऊतये ॥ ६ ॥**

अन्वयः—स्वर्युवः मतयः वः विश्वाः सध्रीचीः इन्द्रम्-उशतीः अच्छा-अनूषत जनयः-यथा पतिं परिष्वजन्त मर्यं न शुन्ध्युं मघवानम् ऊतये ॥

पदार्थः—(स्वर्युवः) मोक्ष सुख चाहती हुई (मतयः) हे परमात्मा की उपासक प्रजाओ! "प्रजा वै मतयः" [तै० आ० ५.६.८] (वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम (विश्वाः) सब (सध्रीचीः) सहभाव को प्राप्त हुई (इन्द्रम्-उशतीः) परमात्मा को चाहती हुई (अच्छा-अनूषत) निरन्तर परमात्मा की स्तुति करो। (जनयः-यथा पतिं परिष्वजन्त) स्त्रियाँ जैसे पति को आलिङ्गित करती हैं, ऐसे परमात्मा को आलिङ्गित करो (मर्यं न शुन्ध्युं मघवानम्) अथवा जैसे पवित्र धनैश्वर्य वाले राजा जन को याचक लोग प्राप्त होते हैं (ऊतये) रक्षा के लिये ऐसे पास आओ।

भावार्थः—मोक्षसुख को चाहते हुए सब उपासकजन सहभाव वाले हुए परमात्मा की कामना करते हुए निरन्तर उसकी स्तुति करें, जैसे स्त्रियाँ अपने पति को आलिङ्गित करती हैं ऐसे उसे आलिङ्गित करें या जैसे पवित्र ऐश्वर्यवान् राजा के प्रजाजन अपनी रक्षा के लिए प्राप्त होते हैं॥ ३॥

ऋषिः—सव्यः (मोक्षैश्वर्य का अधिकारी)॥

३७६. **अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्। यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत॥ ७॥**

पदपाठः— **अभि त्वम् मेषम् पुरुहूतम् पुरु हूतम् ऋग्मियम् इन्द्रम् गीर्भिः मदत वस्वः अर्णवम् यस्य द्यावः न विचरन्ति वि चरन्ति मानुषम् भुजे मꣳहिष्ठम् अभि विप्रम् वि प्रम् अर्च्चत॥ ७॥**

अन्वयः—त्यं मेषम् पुरुहूतम् वस्वः-अर्णवम् इन्द्रम् गीर्भिः अभिमदत यस्य द्यावः-न मानुषं विचरन्ति भुजे मंहिष्ठं विप्रम्-अभि-अर्चत॥

पदार्थः—(त्यं मेषम्) उस सुख के सिञ्चन करने वाले—"मिषु सेचने" [भ्वादि०] (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य—(ऋग्मियम्) स्तुतियों से तुलित करने योग्य—ऋचाओं—स्तुतियों से अर्चनीय—(वस्वः-अर्णवम्) भोगधन के सागर—(इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतिवचनों से (अभिमदत) हर्षित करो (यस्य) जिसकी व्याप्तियाँ या कर्मशक्तियाँ (द्यावः-न) द्योतमान किरणों के समान (मानुषं विचरन्ति) मनुष्य हितकारी पृथिवी पर "मानुष.........मनुष्यहितः" [निरु० १३ (१४) ।३७।(५०)] प्राप्त हो रही हैं (भुजे) अपने पालनार्थ (मंहिष्ठं विप्रम्-अभि-अर्चत) पूजनीय विशेष तृप्ति करने वाले परमात्मा को—अर्चित करो।

भावार्थः—परमात्मा भारी सुख का सीञ्चने वाला है। बहुत प्रकार से आमन्त्रणीय स्तुतियों से तुलित करने योग्य, जानने योग्य धनैश्वर्य का सागर है। उस ऐसे इष्टदेव को स्तुतियों द्वारा अनुकूल बनाना चाहिए, उसकी व्याप्तियाँ या कर्मशक्तियाँ सूर्यकिरणों के समान मनुष्य के हितार्थ पृथिवी पर भी फैल रही हैं, उस ऐसे इष्टदेव की अर्चना करना हमारा कर्त्तव्य है॥ ७॥

ऋषिः—सव्यः (मोक्षैश्वर्य का अधिकारी)॥

३७७. **त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते। अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥ ८॥**

पदपाठः— **त्वम् सु मेषम् महय स्वर्विदम् स्वः विदम् शतम् यस्य सुभुवः सु भुवः साकम् ईरते अत्यम् न वाजम् हवनस्यदम् हवन स्यदम् रथम् आ इन्द्रम् ववृत्याम् अवसे सुवृक्तिभिः सु वृक्तिभिः ॥ ८ ॥**

अन्वयः—त्वं सुमेषं स्वर्विदम् सुमहय यस्य शतं सुभुवः साकम्-ईरते रथं हवनस्यदम् वाजम्-अत्यं न इन्द्रम् अवसे सुवृक्तिभिः आववृत्याम् ॥

पदार्थः—(त्वं सुमेषं स्वर्विदम्) उस उत्तम सुखसिञ्चन करने वाले तथा मोक्ष सुख प्राप्त कराने वाले परमात्मा को (सुमहय) उत्तमरूप से अर्चित कर ''महयति-अर्चति कर्मा'' [निघं० ३.१४] (यस्य) जिसकी (शतं सुभुवः) सैकड़ों सुभूतियाँ—कल्याण-विभूतियाँ उपासक के अन्दर (साकम्-ईरते) एक साथ प्राप्त होती हैं (रथं हवनस्यदम्) रथ के प्रति आमन्त्रण पर चल पड़ने वाले (वाजम्-अत्यं न) बलवान् घोड़े के समान (इन्द्रम्) परमात्मा को (अवसे) तृप्ति के लिए ''अवरक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्ति.......'' [भ्वादि०] (सुवृक्तिभिः) सुप्रवृत्तियों—सत्स्तुतियों द्वारा (आववृत्याम्) पुनः पुनः आवर्तित करूँ—सेवन करूँ।

भावार्थः—परमात्मा सुखसेचक मोक्षानन्द का स्वामी उसे प्राप्त कराने वाला है। उपासक के अन्दर जिसकी कल्याणविभूतियाँ एक साथ सञ्चार करने लगती हैं। रथ के प्रति आमन्त्रण पर चल पड़ने वाले बलवान् घोड़े के समान ईश्वर को उत्तम आचरणों स्तुतियों के द्वारा अपनी तृप्ति के लिए अपने जीवन में पुनः पुनः धारण करूँ ॥ ८ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अमृतान्न का अपने में भरण करने वाला) ॥

३७८. **घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥**

पदपाठः— **घृतवतीइति भुवनानाम् अभिश्रिया अभि श्रिया उर्वीइति पृथ्वीइति मधुदुघे मधु दुघेइति सुपेशसा सु पेशसा द्यावा पृथिवीइति वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते वि स्कभितेइति अजरे अ जरेइति भूरिरेतसा भूरि रेतसा ॥ ९ ॥**

अन्वयः—वरुणस्य धर्मणा द्यावापृथिवी विष्कभिते घृतवती भुवनानाम्-अभिश्रिया उर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा अजरे भूरिरेतसा ॥

पदार्थः—(वरुणस्य) वरने योग्य एवं वरने वाले—इन्द्र परमात्मा के ''इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः'' [गो० २.१.२२] (धर्मणा) धारण बल से वर्तमान

(द्यावापृथिवी विष्कभिते) विश्व का उपरि भाग प्रकाशात्मक और नीचे का भाग प्रकाश्यरूप दोनों शिल्परूप विरुद्धभाव से दृढ़ किए हैं जो कि (घृतवती) तेजधर्म वाले और रेतधर्म वाले हैं ''तेजो वै घृतम्'' [मै० १.६.८] ''रेतो वै घृतम्'' [काठ० २६.७] (भुवनानाम्-अभिश्रिया) समान भूतों जड़ जङ्गमों का आश्रय है ''भुवनं विचष्टे भूतान्यभिविपश्यति'' [निरु० १०.४६] (उर्वी पृथ्वी) महती फैली हुई हैं (मधुदुघे) जल और अन्न को दोहने वाली ''मधु-उदकनाम'' [निघं० १.१२] ''अन्नं वै भद्रं मधु'' [तै० १.३.३.६] (सुपेशसा) सुन्दररूप वाले सुनहरे और हरियावल आदि युक्त ''पेशो हिरण्यनाम'' [निघं० १.२] ''पेशो रूपनाम'' [निघं० ३.७] (अजरे) जब तक सृष्टि तब तक स्थिर रहने वाले (भूरिरेतसा) बहुत अग्नितत्त्व वाले और सोमधर्म वाले ''रेतो वा अग्निः'' [मै० ३.२.१] ''रेतो वै सोमः'' [श० १.९.२.९]।

भावार्थः—परमात्मा के धारणबल से विश्व का उपरिभाग द्युमण्डल और नीचे का भाग भूमण्डल कार्यरूप शिल्परूप प्रदेश परमात्मा ने जड़ जङ्गम के आश्रयभूत महान् प्रसारयुक्त आकाश में दृढ़ स्थापित किए हैं, जिनमें से ऊपर नीचे के क्रम से एक ऊपर का भाग द्युमण्डल तेजधर्म वाला, नीचे का रेतधर्म वाला क्रमशः जल और अन्न को दोहने वाले, द्युमण्डल जल को नीचे प्रेरित करता है, पृथिवी मण्डल अन्न—अदनीय वस्तु को प्रेरित करता है, सुन्दररूप वाले द्युमण्डल सुनहरी बनाता है भूमण्डल हरे आदि नाना रूपों में सजाता है, दोनों सृष्टि के पूर्ण समय तक रहने वाले तथा क्रमशः अत्यन्त अग्निस्वरूप और सोमस्वरूप हैं। अतः उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जिसके ये दोनों उपयोगी कार्य या शिल्प हैं॥ ९॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला)॥

छन्दः—महापंक्तिः॥

३७९. **उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्। देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ १०॥**

पदपाठः— **उभेइति यत् इन्द्र रोदसीइति आपप्राथ आ पप्राथ उषाः इव महान्तम् त्वा महीनाम् सम्राजम् सम् राजम् चर्षणीनाम् देवी जनित्री अजीजनत् भद्रा जनित्री अजीजनत्॥ १०॥**

अन्वयः—इन्द्र यद् उभे रोदसी आपप्राथ उषाः-इव त्वा महीनां महान्तम् भद्रा देवी जनित्री चर्षणीनां सम्राजम् अजीजनत् जनित्री-अजीजनत्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यद्) जब तू (उभे रोदसी) ऊपर नीचे के दोनों द्युमण्डल और भूमण्डल को (आपप्राथ) अपनी उषा—ज्योति से पूरण करता है भरता है तब ऐसा लगता है (उषाः-इव) तेरी ज्योति 'इव' 'अत्र पदपूरणः' ''परोक्षप्रिया इव हि देवाः'' [गो० १.२.२१] ''इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः'' [निरु० १.११] (त्वा महीनां महान्तम्) तुझ महान् से महान् को (भद्रा देवी) यह कल्याणकारिणी देवी (जनित्री) प्रकाश करने वाली बनी हुई (चर्षणीनां सम्राजम्) मनुष्यों में सम्यक् राजमान को (अजीजनत्) प्रादुर्भूत कर रही है प्रदर्शित कर रही है (जनित्री-अजीजनत्) हाँ, प्रादुर्भूत करने वाली प्रादुर्भूत कर रही है—प्रदर्शित कर रही है।

भावार्थः—परमात्मन्! जब तू अपनी ज्योति से ऊपर नीचे के दोनों द्युमण्डल और भूमण्डल को भरपूर कर देता है तो वह कल्याणकारिणी देवी मनुष्यों के अन्दर महान् से महान् सम्राट्—संसार में सम्यक् राजमानरूप में तुझे प्रकट—प्रदर्शित करने वाली प्रदर्शित कर देती है अतः हम उपासक विश्व में व्याप्त तेरी ज्योति को अनुभव करें॥ १०॥

ऋषिः—कुत्सः (परमात्मा की स्तुति करने वाला[1])॥ छन्दः—जगती॥

३८०. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना। अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि॥ ११॥

पदपाठः— प्र मन्दिने पितुमत् अर्चत वचः यः कृष्णगर्भाः कृष्ण गर्भाः निरहन् निः अहन् ऋजिश्वना अवस्यवः वृषणम् वज्रदक्षिणम् वज्र दक्षिणम् मरुत्वन्तम् सख्याय स ख्याय हवेमहि॥ ११॥

अन्वयः—मन्दिने पितुमत्-वचः प्रार्चत यः ऋजिश्वना कृष्णगर्भाः निरहन् वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तम् सख्याय अवस्यवः हुवेमहि॥

पदार्थः—(मन्दिने) स्तुति करने योग्य परमात्मा के लिए ''मन्दी मन्दतेः स्तुतिकर्मणः'' [निरु० ४.२४] (पितुमत्-वचः) प्यायन—प्रसन्नता कारक वचन ''पितुः प्यायतेर्वा'' [निघं० ९.२४] (प्रार्चत) प्रार्चित करो—भेंट समर्पित करो (यः) जो परमात्मा (ऋजिश्वना) सरलगति शक्ति से (कृष्णगर्भाः) पाप जिनके गर्भ में—अन्दर है—पापगर्भित वृत्तियों वासनाओं को (निरहन्) निर्हत कर देता है (वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तम्) उस सुखवर्षक ओज के प्रेरक प्राणवान् सबमें

१. ''कुत्सः कर्ता स्तोमानान्'' [निरु० ३.११]।

प्राणप्रद परमात्मा को (सख्याय) मित्रभाव के लिए (अवस्यवः) हम रक्षा चाहने वाले (हुवेमहि) आमन्त्रित करें।

भावार्थः—परमात्मा हमारी पापगर्भित वृत्तियों को अपने सरल स्वभाव से नष्ट कर देता है यदि हम उस स्तुति करने योग्य के लिए प्रसन्नताकारक स्तुतिवचन अर्पित करें। उस ऐसे सुखवर्षक ओज के प्रसारक प्राणसञ्चारक परमात्मदेव को मित्रता के लिए हम अपनी रक्षा चाहने वाले उपासक नित्य निरन्तर हृदय में आमन्त्रित करते रहें॥ ११॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—नारदः (नरद—सद्भाव का रदन न करने वाले का शिष्य या नारा—नर सम्बन्धी जीवन विज्ञान दाता)॥ छन्दः—उष्णिक्।

३८१. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः॥ १॥

पदपाठः— इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुम् पुनीषे उक्थ्यम् विदे वृधस्य दक्षस्य महान् हि सः॥ १॥

अन्वयः—इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुम् उक्थ्यं पुनीषे वृधस्य दक्षस्य विदे सः-महान् हि॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (सुतेषु सोमेषु) निष्पन्न हुए विविध उपासनारसों में—उपासनारसों के प्रस्तुत किए जाने पर (क्रतुम्) सङ्कल्प करने वाले कर्त्तव्यपरायण उपासक को "स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः" [श० ४.१.४.१] (उक्थ्यं पुनीषे) प्रशंसनीय पवित्र निर्मल बनाता है—समर्थ बनाता है (वृधस्य दक्षस्य) वर्धक आत्मबल के (विदे) प्राप्त होने के लिए मैं तेरी शरण में हूँ (सः-महान् हि) वह तू महान् ही है।

भावार्थः—परमात्मा की विविध उपासनाओं के करने पर परमात्मा कामना प्राप्ति योग्य उपासक को सिद्ध कर देता है। वृद्धिकारक अध्यात्मबल प्राप्त करने के लिए वह महान् शरण्य है॥ १॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (प्रशस्त इन्द्रियों की सूक्त प्रशंसन वाला, व्यापने वाले प्रशस्त मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को सूक्त शिवसङ्कल्प बनाने वाला)॥

३८२. तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ २॥

पदपाठः— तम् उ अभि प्र गायत पुरुहूतम् पुरु हूतम् पुरुष्टुतम् पुरु स्तुतम् इन्द्रम् गीर्भिः तविषम् आ विवासत॥ २॥

अन्वयः—तम् पुरुहूतम् पुरुष्टुत इन्द्रम् उ अभि प्र गायत तविषं गीर्भिः-आविवासत ॥

पदार्थः—(तम्) उस (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य (पुरुष्टुत) बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य—(इन्द्रम्) परमात्मा को (उ) अवश्य (अभि प्र गायत) अभिलक्षित कर—गाओ (तविषं गीर्भिः-आविवासत) महान् परमात्मा को ''तविषः-महन्नाम'' [निघं० ३.३] स्तुति वाणियों से अपने अन्दर परिचरित करो—बिठाओ।

भावार्थः—उपासको! यदि तुम गाओ तो बहुत प्रकार से आमन्त्रण करने योग्य एवं बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य परमात्मा का ही गाना गाओ। अन्य का गाना तुम्हारे लिये अभीष्ट नहीं और वाणियों से प्रशंसा भी करो तो अपने अन्दर करो। उसी महान् परमात्मा का प्रशंसन और धारण ध्यान करो अन्य का नहीं॥ २॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (प्रशस्त इन्द्रियों की सूक्त प्रशंसन वाला, व्यापने वाले प्रशस्त मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को सूक्त शिवसङ्कल्प बनाने वाला)॥

३८३. **तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।**
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ ३॥

पदपाठः— **तम् ते मदम् गृणीमसि वृषणम् पृक्षु सासहिम् उ लोककृत्नुम् लोक कृत्नुम् अद्रिवः अ द्रिवः हरिश्रियम् हरि श्रियम्॥ ३॥**

अन्वयः—अद्रिवः ते पृक्षु सासहिम् वृषणम् लोककृत्नुम् हरिश्रियम् मदम् गृणीमसि॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मदेव! (ते) तेरे (पृक्षु सासहिम्) हमें प्राप्त विरोधी सम्पर्कों में दुर्वृत्तियों को दबाने वाले—तथा (वृषणम्) सुखवर्षक (लोककृत्नुम्) हमारे जीवन संसार को करने बनाने वाले (हरिश्रियम्) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले ऋक्साम—स्तुति उपासना पर आश्रित 'ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी' [मै० ३-१०-६] (मदम्) अर्चनीय स्वरूप को ''मदति—अर्चति-कर्मा'' [निघं० ३.१४] (गृणीमसि) स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं।

भावार्थः—हे ओजस्वी परमात्मन्! विरोधी सम्पर्कों दुर्वृत्तियों को दबाने वाले तथापि सुखवर्षक मेरे जीवन संसार को बनाने वाले दुःखापहारी सुखाहरण करने वाले स्तुति उपासना के आश्रित तेरे अर्चनीय स्वरूप को प्रशंसित करते हैं स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं॥ ३॥

ऋषिः—पर्वतः (पर्ववान् अभ्युदय और अपवर्ग पर्व वाले परमात्मा को अपने लिये प्रीतिमान् बनाने वाला उपासना साधन वाला)॥

३८४. **यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।**
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः॥ ४॥

पदपाठः— **यत् सोमम् इन्द्र विष्णवि यत् वा घ त्रिते आप्त्ये यत् वा मरुत्सु मन्दसे सम् इन्दुभिः॥ ४॥**

अन्वयः—इन्द्र यत् सोमम् विष्णवि यत्-वा घ आप्त्ये त्रिते यत्-वा मरुत्सु मन्दसे इन्दुभिः-सम्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्) कि जो (सोमम्) सोमरस (विष्णवि) यज्ञ अध्यात्मसम्मेलन में सम्पन्न किया जाता है (यत्-वा घ) या जो भी सोम (आप्त्ये त्रिते) प्राप्तव्य तीर्णतम लोक त्रिसंख्यामित—मोक्ष में (यत्-वा) और जो भी (मरुत्सु) जीवन्मुक्त आत्माओं में ''विशो वै मरुतो देवविशः'' [श० २.५.१.१२] (मन्दसे) तू चाहता है ''मदि स्तुतिमोदस्वप्नकान्तिः'' [भ्वादि०] (इन्दुभिः-सम्) उन मेरे सभी सोमों उपासनारसों से सङ्गत हो।

भावार्थः—हे परमात्मन्! तू अपने लिये अध्यात्म सम्मेलन में गानरूप सोम को प्राप्तव्य तीर्णतम सबसे ऊँचे तृतीयधाम मोक्ष में रहने वाले जीवन्मुक्तों में वर्तमान उपासनारस को चाहता है मेरे में वर्तमान इन सभी सोमों—उपासनारसों के साथ सङ्गत हो अर्थात् मुझे तीनों प्रकार के सोमों—उपासनारसों के समर्पित करने वाला बना दे। मैं अध्यात्म सम्मेलन में भी गान रस तुझे दूँ, मोक्षधाम में भी अपना रस पूर्ण समर्पण करूँ, और जीवन्मुक्तों की श्रेणी में आकर भी तेरी उपासना में अनन्य बनूँ॥ ४॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (विशेष-संस्कृत इन्द्रिय घोड़े रखने में सम्पन्न—समर्थ और सबके प्रति समान मनोभाव वाला उपासक)॥

३८५. **एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।**
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः॥ ५॥

पदपाठः— **आ इत् उ मधोः मदिन्तरम् सिञ्च अध्वर्यो अन्धसः एव हिं वीरः स्तवते सदावृधः सदा वृधः॥ ५॥**

अन्वयः—अध्वर्यो मधोः-अन्धसः मदिन्तरम् इत्-उ-आसिञ्च एव हि सदावृधः-वीरः स्तवते॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्यात्म यज्ञ को प्राप्त एवं अपीडक उपासक! तू (मधोः-अन्धसः) मधुर आध्यानीय उपासनारस के द्वारा ''तृतीयार्थे पञ्चमी

छान्दसी'' (मदिन्तरम्) अत्यन्त प्रसन्न होने वाले—इन्द्र परमात्मा को ''तरत् स मन्दी धावति'' [ऋ० ९.५.८.१] (इत्–उ–आसिञ्च) अवश्य ही समन्त पूर्ण रूप से सींच (एव हि) ऐसे ही (सदावृधः–वीरः) वह सदा बढ़ाने वाला प्रेरक परमात्मा (स्तवते) स्तुत किया जाता है।

भावार्थः—अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक परमात्मा को अपने मधुर श्रद्धा अनुराग भरे ध्यानोपासनारस से सींचा करें ऐसे ही उसे उन्नत करने वाले प्रगति देने वाले परमात्मा की स्तुति की जाया करती है ॥ ५ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (विशेष-संस्कृत इन्द्रिय घोड़े रखने में सम्पन्न—समर्थ और सबके प्रति समान मनोभाव वाला उपासक)॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
३८६. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु।
१ २र ३ २
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

२ १ २र १ २र ३ १ २र ३ २ १ २र २
पदपाठः— आ इन्दुम् इन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यम् मधु प्र
१ २र ३ २
राधांश्सि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्द्राय इन्दुम्–आसिञ्चत सोम्यं मधु पिबाति महित्वना राधांसि प्रचोदयते॥

पदार्थः—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (इन्दुम्–आसिञ्चत) उपासको! रसीले सोम—उपासनारस को सींचो—प्रसारित करो ''सोमो वा इन्दुः'' [श० २.२.३.२३] (सोम्यं मधु पिबाति) वह सोम के मधु को पीवे या पीता है (महित्वना) अपने महत्त्व से (राधांसि) उपासकों के लिए सिद्ध धनों को (प्रचोदयते) प्रेरित करता है।

भावार्थः—परमात्मा को अपने उपासनारस से भर दो, वह उन्हें पान करता है—स्वीकार करता है और वह सिद्ध धनों को प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (विशेष-संस्कृत इन्द्रिय घोड़े रखने में सम्पन्न—समर्थ और सबके प्रति समान मनोभाव वाला उपासक)॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
३८७. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
३ १ २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥

२ ३ ३ २ १ २र १ २र १ २र २ ३ १ २र
पदपाठः— आ इत उ नु इन्द्रम् स्तवाम सखायः स खायः स्तोम्यम्
१२र ३ २ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २र
नरम् कृष्टीः यः विश्वाः अभ्यस्ति अभि अस्ति एकः
२
इत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—सखायः आ–इत–उ नु स्तोम्यं नरम्–इन्द्रम् स्तवाम यः एकः–इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक मित्रो! (आ-इत-उ) आओ अवश्य आओ! (नु) शीघ्र (स्तोम्यं नरम्-इन्द्रम्) स्तुत करने योग्य नेता परमात्मा को (स्तवाम) स्तुत करें (यः) जो परमात्मा (एकः-इत्) एक ही—अकेला (विश्वाः कृष्टीः) सब कर्म—करने वाली प्रजाओं—मनुष्यों को "कृष्टय इति मनुष्यनाम कर्मवन्तो भवन्ति" [निरु० १०.२२] (अभ्यस्ति) कर्मफल प्रदान करने के लिए अभिभूत करता है—स्वाधीन करता है।

भावार्थः—स्तुति योग्य अपने नेता परमात्मा की स्तुति हम किया करें वह कर्म करने वाले कर्मयोनि मनुष्यों का अकेला स्वामी कर्मफल दाता है उससे भिन्न की स्तुति न करें, स्तुति करना भी शुभकर्म है इस शुभकर्म का फल शुभ देगा ही॥७॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक—जीवन्मुक्त मेधा वाला उपासक)॥

३८८. **इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥८॥**

पदपाठः— **इन्द्राय साम गायत विप्राय वि प्राय बृहते बृहते ब्रह्मकृते ब्रह्म कृते विपश्चिते विपः चिते पनस्यवे॥८॥**

अन्वयः—बृहते विप्राय ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यते इन्द्राय बृहत् साम गायत॥

पदार्थः—(बृहते) महान्—(विप्राय) विशेष तृप्ति कर—(ब्रह्मकृते) ब्रह्मकृत—ब्रह्माण्ड के रचयिता—(विपश्चिते) पूर्ण विद्वान् वेदरचक सर्वज्ञ—(पनस्यते) स्वस्तुति को चाहने वाले—मनुष्य द्वारा स्तुति करने योग्य—(इन्द्राय) परमात्मा के लिए (बृहत् साम गायत) बृहत्स्वर वाले उपासना भाव को प्रकट करो।

भावार्थः—महान् विविध तृप्तिकारक ब्रह्माण्ड के रचक वेदस्वामी वेदज्ञान दाता, स्तुति के योग्य परमात्मा का ऊँचे स्वर से ऊँचा गान करना चाहिए॥८॥

ऋषिः—गौतमः (परमात्मा में अत्यधिक गति रखने वाला)॥

३८९. **य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥९॥**

पदपाठः— **यः एकः इत् विदयते वि दयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ईशानः अप्रतिष्कुतः अ प्रतिष्कुतः इन्द्रः अङ्ग॥९॥**

अन्वयः—यः-एकः-इत् दाशुषे मर्ताय वसु विदयते अङ्ग ईशानः-इन्द्रः अप्रतिष्कुतः॥

पदार्थः—(यः-एकः-इत्) जो एक ही—उस जैसा अन्य नहीं, कि (दाशुषे

मर्ताय) आत्मीयत्व के देने वाले—स्वात्मसमर्पण करने वाले जन—उपासक के लिए (वसु विदयते) धन को विशिष्टरूप से देता है या कर्मानुसार विभाग करता है (अङ्ग) हे प्रियजन वह (ईशानः-इन्द्रः) स्वामी परमात्मा (अप्रतिष्कुतः) उल्लङ्घनीय या प्रतिहिंसित या प्रतिस्खलित या प्रतीकार्य नहीं है। "अप्रतिष्कुतोऽप्रतिष्कृतोऽ-प्रतिस्खलितो वा" [निरु० ६.१६]।

भावार्थः—केवल परमात्मा ही ऐसा उदार है जो आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिए—अलौकिक धन अपने अन्दर वसाने वाले विशिष्ट धन को विशेषरूप से देता है या विभक्त कर छाँट कर देता है और वह जगत् का स्वामी दृष्टि से ओझल करने योग्य या प्रतीकार करने योग्य नहीं॥ ९॥

ऋषिः—विश्वमनाः (सबमें मन रखने वाला उदार—एकपक्ष वाला नहीं—समदर्शी जन)॥

३९०. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे॥ १०॥

पदपाठः— सखायः स खायः आ शिषामहे ब्रह्म इन्द्राय वज्रिणे स्तुषे उ सु वः नृतमाय धृष्णवे॥ १०॥

अन्वयः—सखायः वः वज्रिणे धृष्णवे नृतमाय इन्द्राय ब्रह्म-आशिषामहे ऊ षु स्तुषे॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक बन्धुओ! (वः) 'यूयम्' तुम और हम (वज्रिणे) ओजस्वी—(धृष्णवे) पापविचारधर्षणशील—(नृतमाय) ऊँचे नेता—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (ब्रह्म-आशिषामहे) ब्रह्म—मन समर्पित करते हैं "मनो ब्रह्मेति व्यजानात्" [तै० आ० ९.४.१०] अतः हम (ऊ षु) अवश्य (स्तुषे) उसे स्तुत करते हैं।

भावार्थः—परमात्मा के उपासको! उस ओजस्वी परमात्मदेव को सदा—अपना मन समर्पण करते रहें। वह हमारा सच्चा नेता, विरोधी पापभाव का धर्षणशील है॥ १०॥

इति चतुर्थः प्रपाठकः समाप्तः॥

पञ्चम प्रपाठक

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट वाणी—स्तुति वाला उपासक)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

३९१. गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते॥ १॥

पदपाठः— गृणे तत् इन्द्र ते शवः उपमाम् उप माम् देवतातये यत् हꣳसि वृत्रम् ओजसा शचीपते शची पते॥ १॥

अन्वयः—शचीपते-इन्द्र तत्-शवः गृणे देवतातये ते-उपमाम् यत्-वृत्रम् ओजसा हंसि॥

पदार्थः—(शचीपते-इन्द्र) हे सर्वकर्मसमर्थ परमात्मन्! ''शची कर्मनाम'' [निघं० २.१] (तत्-शवः) तेरे उस प्रसिद्ध धन—अध्यात्म धन मोक्षैश्वर्य को ''शवः-धन नाम'' [निघं० २.१०] (गृणे) प्रशंसित करता हूँ (देवतातये) जो जीवन्मुक्त के लिये ''सर्वदेवात् तातिल्'' [अष्टा० ४.४.१४२] (ते-उपमाम्) तेरे समीप में ''उपमे-अन्तिक नाम'' [निघं० २.१६] रखता है तथा (यत्-वृत्रम्) जो पापबन्धन को (ओजसा) बल से (हंसि) तू नष्ट करता है।

भावार्थः—हे सर्वकर्मसमर्थ परमात्मन्! तू महान् न्यायकारी और दाता है कि तू यथायोग्य कर्मफल का प्रदान करता है। मैं तेरे उस मोक्षैश्वर्य अध्यात्मधन की प्रशंसा करता हूँ जिसे तू जीवन्मुक्त या मुक्तात्मा के लिए अपने पास रखता है तथा उसके पापबन्धन को भी नष्ट करता है॥ १॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अमृतान्न को अपने अन्दर भरण करने वाला उपासक)॥

३९२. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन्।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥ २॥

पदपाठः— यस्य त्यत् शम्बरम् शम् बरम् मदे दिवोदासाय दिवः दासाय रन्धयन् अयम् सः सोमः इन्द्र ते सुतः पिब॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र यस्य मदे दिवः-दासाय त्यत्-शम्बरम् रन्धयन् सः-अयं सोमः-ते सुतः पिब॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यस्य मदे) जिस सोम—उपासनारस के तृप्तियोग—प्रसन्नताप्रसङ्ग निमित्त "मद तृप्तियोगे" [चुरादि०] (दिवः-दासाय) अमृतधाम मोक्ष के दर्शक उपासक के लिए "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] (त्यत्-शम्बरम्) उस 'शम्-आवरक' अर्थात् कल्याण के प्रतिबन्धक—पापबन्धन को (रन्धयन्) नष्ट करने के हेतु "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" [अष्टा० ३.२.१२६] (सः-अयं सोमः-ते सुतः पिब) वह यह जो उपासनारस निष्पन्न किया है इसे तू पान कर—स्वीकार कर—करता है।

भावार्थः—उपासनारस से तृप्त—प्रसन्न होकर परमात्मा मोक्षामृताकांक्षी—मोक्षधाम के दर्शक उपासक के लिए मोक्षानन्द के प्रतिरोधक पापबन्धन को नष्ट करने के लिए उपासक द्वारा निष्पन्न किए उपासनारस को स्वीकार किया करता है॥ २॥

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला जन)॥

३९३. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः॥ ३॥

पदपाठः— आ इन्द्र नः गधि प्रिय सत्राजित् सत्रा जित् अगोह्य अ गोह्य गिरिः न विश्वतः पृथुः पतिः दिवः॥ ३॥

अन्वयः—प्रिय सत्राजित् अगोह्य इन्द्र गिरिः-न विश्वतः पृथुः दिवः-पतिः नः-आ-गधि॥

पदार्थः—(प्रिय) हे प्यारे (सत्राजित्) तुरन्त एक साथ जयकर्ता "सत्रा सहार्थे" (अगोह्य) न छिपाने या न लुप्त करने योग्य (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (गिरिः-न) ऊँचे पर्वत के समान महान् है—ऊँचे स्थित होने वाला है (विश्वतः पृथुः) सबसे महान् है "पृथु महान्तम्" [निरु० १२.२४] (दिवः-पतिः) अमृत मोक्ष का स्वामी है (नः-आ-गधि) हमें आ मिल—हमें प्राप्त हो "गध्यति मिश्रीभावकर्मा" [निरु० ५.१५]।

भावार्थः—उपासक के प्रतिबन्धक को तुरन्त जीतने, नष्ट करने वाले सदा प्रकाशमान—उपासक से न छिपने वाले—साक्षात् होने वाले प्यारे परमात्मन्! तू ऊँचे पर्वत के समान महान् मोक्षधाम का स्वामी है, अतः हमें मिल—प्राप्त हो—यह आकांक्षा है॥ ३॥

ऋषिः—पर्वतः (पर्ववान्—परमात्मा के प्रति अपने को प्रीतिमान् बनाने वाला)॥

३९४. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति।
येना हंसि न्या३त्रिणं तमीमहे॥ ४॥

पदपाठः—यः इन्द्र सोमपातमः सोम पातमः मदः शविष्ठ चेतति येन हꣳसि नि अत्रिणम् तम् ईमहे ॥ ४ ॥

अन्वयः—शविष्ठ-इन्द्र यः सोमपातमः मदः येन अत्रिणम् निहंसि तम्-ईमहे ॥

पदार्थः—(शविष्ठ-इन्द्र) बलवन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यः) जो (सोमपातमः) उपासनारस को अत्यन्त पीने वाले (मदः) हर्ष भाव चेता रहा है (येन) जिसके द्वारा (अत्रिणम्) पाप को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३.१] (निहंसि) गुप्तरूप से नाश करता है (तम्-ईमहे) उस तुझ परमात्मा को मैं चाहता हूँ "ईमहे याच्वाकर्मसु" [निघं० २.१९]।

भावार्थः—ऐ बलवन् परमात्मन्! जो तेरा अत्यन्त सोमपान करने वाला तर्पणीय मद है—जिससे तू पाप को चेताता है, पाप को नष्ट करता है—ऐसे उस तेरे बल को चाहता हूँ ॥ ४ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में परमात्मा को बिठाने वाला)॥
देवता—आदित्यः "इन्द्रसम्बद्ध आदित्यः" (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध आदित्य)॥

३९५. तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥ ५ ॥

पदपाठः— तुचे तुनाय तत् सु नः द्राघीयः आयुः जीवसे आदित्यासः समहसः स महसः कृणोतन कृणोत न ॥ ५ ॥

अन्वयः—सुमहसः-आदित्यासः नः तुचे तुनाय तत् सु द्राघीयः-आयुः जीवसे कृणोतन ॥

पदार्थः—(सुमहसः-आदित्यासः) हे सुमहान् परमात्मशक्तिप्रवाहो! (नः) हमें (तुचे) अपत्य—पुत्र के लिये "तुक्-अपत्यनाम" [निघं० २.२] (तुनाय) पौत्र के लिये (तत् सु) वह अच्छे (द्राघीयः-आयुः) अतिदीर्घ आयु को (जीवसे) जीवन के लिये (कृणोतन) सम्पादित करो।

भावार्थः—परमात्मा के ऐश्वर्यप्रवाह से सुमहान् हुए उपासक के जीने के लिये अतिदीर्घ आयु पुत्र और पौत्र देते हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—विश्वमनाः (सबमें मन रखने वाला—निष्पक्ष उदारमना उपासक)॥

३९६. वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

पदपाठः— **वेत्थ हि निर्ऋतीनाम् निः ऋतीनाम् वज्रहस्त वज्र हस्त परिवृजम् परि वृजम् अहरहः अहः अहः शुन्ध्युः परिपदाम् परि पदाम् इव ॥ ६ ॥**

अन्वयः—वज्रहस्त निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ हि अहः-अहः शुन्ध्युः-परिपदाम्-इव ॥

पदार्थः—(वज्रहस्त) हे ओजोरूप हाथ वाले! (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ हि) तू अवश्य ही उपासक की कृच्छ्र आपत्तियों—आन्तरिक बाधाओं कामक्रोध आदि प्रवृत्तियों के परिवर्जन—त्यागसाधन या पृथक्करण स्थान को जानता है (अहः-अहः) दिनदिन—प्रतिदिन (शुन्ध्युः-परिपदाम्-इव) जैसे आदित्य—सूर्य "शुन्ध्युरादित्यो भवति शोधनात्" [निरु० ४.१६] परिपदों—सूर्य के परिपद प्रत्येक प्रकाशचरण साथ भागने वाले अनिष्टकारी तत्त्वों की भाँति।

भावार्थः—सूर्य से प्रतिदिन उसके उदय के साथ भागने वाले अनिष्ट भागते जाते हैं ऐसे ही उपासक की कृच्छ्र आपत्तियों का परिवर्जन उपासक को छोड़कर भाग जाता है। ओजस्वी हाथों—शक्ति वाले से प्रहृत होकर अतः उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला) ॥ देवता—आदित्याः "इन्द्रसम्बद्धाः" (परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाले अध्यात्म तेज प्रवाह) ॥

३९७. **अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम्।**
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ ७ ॥

पदपाठः— **अप अमीवाम् अप स्त्रिधम् अप सेधत दुर्मतिम् दुः मतिम् आदित्यासः आ दित्यासः युयोतन युयोत न नः अꣳहसः ॥ ७ ॥**

अन्वयः—आदित्यासः अमीवाम्-अपसेधत स्त्रिधम्-अप दुर्मतिम्-अप नः-अहंस-युयोतन ॥

पदार्थः—(आदित्यासः) हे परमात्मतेज तरङ्गो! तुम (अमीवाम्-अपसेधत) मुझ उपासक के अन्दर से रोग को दूर कर दो (स्त्रिधम्-अप) शोषण करने वाले शोक को "स्त्रिव गतिशोषणयोः" [दिवा०] 'ततो धक् प्रत्यय औणादिकः' (दुर्मतिम्-अप) दुर्मन्तव्य अन्यथा विचार को दूर करो (नः-अहंस-युयोतन) हमें पाप से पृथक् कर दो।

भावार्थः—उपासक के अन्दर परमात्मा के तेज तरङ्ग उसके अन्दर से रोग को शोक को दुर्विचार को दूर भगा देते हैं तथा उपासकों के पापकृत्यों को पृथक्

कर देते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ छन्दः—त्रिपदा अनुष्टुप्॥

३९८. **पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।**
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

पदपाठः— **पिब सोमम् इन्द्र मन्दतु त्वा यम् ते सुषाव हर्यश्व हरि अश्व अद्रिः अ द्रिः सोतुः बाहुभ्याम् सुयतः सु यतः न अर्वा ॥ ८ ॥**

अन्वयः—हर्यश्व-इन्द्र सोमं पिब यम्-अद्रिः ते सुषाव सोतुः-बाहुभ्याम् सुयतः-न-अर्वा ॥

पदार्थः—(हर्यश्व-इन्द्र) दुःखापहरण सुखाहरण हैं व्यापनधर्म दया और प्रसाद जिसके ऐसे हे परमात्मन्! (सोमं पिब) उपासनारस का पान कर—स्वीकृत कर (यम्-अद्रिः) जिसको आदर करने वाला प्रशंसाकर्ता—स्तोता उपासक ने "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] (ते सुषाव) तेरे लिए अभिषुत किया है, सम्पादित किया है यह सोम—उपासनारस (सोतुः-बाहुभ्याम्) रसनिष्पादक—उपासनारस सम्पादित करने वाले के स्नेह और अनुराग से "तस्मादयं बाहुमेद्यतोऽनुमेद्यति" [जै० २.४०७] (सुयतः-न-अर्वा) सुव्यवस्थित—सुसिद्ध घोड़े के समान है।

भावार्थः—हे दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले दया और प्रसादरूप व्यापन धर्मी वाले परमात्मन्! तू उपासनारस का पान करता है स्वीकार करता है जिसे तेरा आदर करने वाला प्रशंसक स्तुतिकर्ता उपासक तेरे लिए तैयार करता है जो कि उपासक के स्नेह और अनुराग द्वारा सुसिद्ध घोड़े के समान आकर्षक है ॥ ८ ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर अच्छा भरने वाला)॥ छन्दः—ककुप्॥

३९९. **अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।**
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

पदपाठः— **अभ्रातृव्यः अ भ्रातृव्यः अना त्वम् अनापिः अन् आपिः इन्द्र जनुषा सनात् असि युधा इत् आपित्वम् इच्छसे ॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्द्र त्वम् अभ्रातृव्यः अना अनापिः जनुषा-सनात्-असि युधा-इत्-आपित्वम्-इच्छसे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वम्) तू (अभ्रातृव्यः) शत्रु-रहित (अना) नेता से रहित (अनापिः) माता-पिता आदि सम्बन्धी से रहित (जनुषा-सनात्-असि) जन्म से—जन्मदृष्टि से तू नित्य है अर्थात् जन्मधारण से भी रहित—नित्य है (युधा-इत्-आपित्वम्-इच्छसे) अपनी ओर गति करने वाले के साथ ही—उपासक के साथ ही "युध्यति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] बन्धुत्व को चाहता है।

भावार्थः—परमात्मा का कोई शत्रु नहीं, वह किसीसे शत्रुता नहीं रखता, उसका नेता नहीं स्वयंकार्यविधाता है, न उसका कोई सम्बन्धी है, जन्म से—जन्म का साथी हो ऐसा कहा जावे तो वह नित्य है शाश्वत है जन्म नहीं लेता हाँ, उसकी ओर गति करने वाले उपासक के साथ सम्बन्ध चाहता है उसे अपनाता है॥ १॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली-भाँति भरण धारण करने से सम्पन्न)॥

४००. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये॥ २॥

पदपाठः— यः नः इदमिदम् इदम् इदम् पुरा प्र वस्यः आनिनाय आ निनाय तम् उ वः स्तुषे सखायः स खायः इन्द्रम् ऊतये॥ २॥

अन्वयः—यः नः वः पुरा इदम्-इदं-वस्यः प्र-आनिनाय तम्-इदम्-उ ऊतये सखायः स्तुषे॥

पदार्थः—(यः) जो (नः) हमारे लिए (वः) तुम्हारे लिये (पुरा) पुरातन—सनातन काल से (इदम्-इदं-वस्यः) इस इस—एक दूसरे से भिन्न-भिन्न वसु—वसने योग्य शरीर और भोग्य वस्तु (प्र-आनिनाय) प्राप्त कराता है (तम्-इदम्-उ) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अवश्य (ऊतये) रक्षा कृपा के लिये (सखायः) हे सहयोगियो! (स्तुषे) 'स्तुवीमहि' स्तुति करो।

भावार्थः—हे सहयोगी जनो! जो परमात्मा तुम और हम उपासकों के लिये पुराकाल से यह यह एक दूसरे से भिन्न-भिन्न पुनः पुनः विशिष्ट वसने योग्य शरीर और भोग्य वस्तु प्राप्त कराता है हम सब रक्षा कृपा के लिये उसकी स्तुति करें॥ २॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली-भाँति भरण धारण करने से सम्पन्न)॥ देवता मरुतः ''इन्द्रसम्बद्धा मरुतः'' (परमात्म सम्बन्धीज्ञान वैराग्य रश्मियाँ जो बन्धनकारण पापवासनाओं को मारने वाले हैं)॥

**४०१. आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः।
दृढा चिद्यमयिष्णवः॥ ३॥**

पदपाठः— आ गन्त मा रिषण्यत प्रस्थावानः प्र स्थावानः मा अप स्थात समन्यवः स मन्यवः दृढा चित् यमयिष्णवः॥ ३॥

अन्वयः—आ गन्त प्रस्थावानः-मा रिषण्यत समन्यवः-मा अपस्थात दृढा-चित्-यमयिष्णवः॥

पदार्थः—(आ गन्त) हे परमात्मज्ञानवैराग्य रश्मियो! तुम मेरे अन्दर आओ (प्रस्थावानः-मा रिषण्यत) तुम प्रस्थान करते हुए मुझे हिंसित मत करो—आकर मेरे अन्दर बैठ जाना—बैठकर प्रस्थान न करना यदि हिंसित करना हो, तो केवल पापवासनाओं को हिंसित कर देना (समन्यवः-मा अपस्थात्) मेरी पापवासनाओं से सक्रोध हो मेरे अन्दर से पृथक् न होओ, (दृढा-चित्-यमयिष्णवः) तुम तो कठिन पापों को भी यमन करने का शील रखने वाले हो।

भावार्थः—उपासक के अन्दर जब परमात्मा की ज्ञानवैराग्यधाराएँ आ जाती हैं, फिर उसे निकल कर पीड़ित नहीं करती हैं कदाचित् उपासक के अन्दर पापवासना हो भी उससे क्रोधित होकर पृथक् नहीं होती अपितु पृथक् होने का प्रसङ्ग ही क्या वह तो कठिन पापसंस्कारों पर भी अधिकार कर दूर भगा देती हैं॥ ३॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली-भाँति भरण धारण करने से सम्पन्न)॥

**४०२. आ याह्य यमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते।
सोमं सोमपते पिब॥ ४॥**

पदपाठः— आ याहि अयम् इन्दवे अश्वपते अश्व पते गोपते गो पते उर्वरापते उर्वरा पते सोमम् सोमपते सोम पते पिब॥ ४॥

अन्वयः—अश्वपते गोपते उर्वरापते सोमपते इन्दवे-आयाहि सोमं पिब-अयम्॥

पदार्थः—(अश्वपते) हे मेरे व्यापनशील मन के पालक (गोपते) मेरी इन्द्रियों के पालक (उर्वरापते) मेरी बहुत अरों—गतिक्रमों वाली देहशकटी के पालक (सोमपते) मेरे सौम्यभाव उपासनारस के पालक (इन्दवे-आयाहि) इस आर्द्र स्नेह भरे उपासनारस के लिये (सोमं पिब-अयम्) उपासनारस का पान कर—स्वीकार कर यह जो तेरे लिये निष्पन्न किया॥

भावार्थः—परमात्मन्! तू मेरे मन का रक्षक है उसे स्थिर एवं पवित्र कर—रख, तू इन्द्रियों का रक्षक है। इन्हें संयम में रख, तू बहुत गति वाली देह—गाडी का रक्षक है इसे अच्छे मार्ग में चला, तू सोम्यभावों उपासनारसों का रक्षक है, उन्हें निरन्तर बनाए रख। तू आर्द्र स्नेह भरे उपासनारस के लिए आ—उपासनारस का पान कर—स्वीकार कर यह तैय्यार है—यह समर्पित है॥४॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली-भाँति भरण धारण करने से सम्पन्न)॥

४०३. **त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। संस्थे जनस्य गोमतः॥५॥**

पदपाठः— **त्वया ह स्वित् युजा वयम् प्रति श्वसन्तम् वृषभ ब्रुवीमहि सꣳस्थे सम् स्थे जनस्य गोमतः॥५॥**

अन्वयः—वृषभ त्वया युजा स्वित्-ह श्वसन्तं प्रति ब्रुवीमहि गोमतः-जनस्य संस्थे॥

पदार्थः—(वृषभ) हे सुखवर्षक परमात्मन्! (त्वया युजा स्वित्-ह) निश्चित तुझ से युक्त होने वाले के साथ ही (श्वसन्तं प्रति ब्रुवीमहि) श्वास लेते हुए जैसे प्रबल पाप का प्रतिवाद करते हैं (गोमतः-जनस्य संस्थे) स्तुति वाणी वाले जन के संस्थान—ध्यान में बैठकर।

भावार्थः—स्तुति करने वाले उपासक के ध्यानासन पर बैठ ध्यान जमाकर तेरे से योग कर प्रबल पाप का भी प्रतिवाद प्रतीकार कर सकते हैं, अतः परमात्मा का ध्यान करना चाहिए॥५॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली-भाँति भरण धारण करने से सम्पन्न)॥ देवता—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धाः' (परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाली पापवासनाओं को मारने वाली ज्ञान ज्योति प्रवाह)॥

४०४. **गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः। रिहते ककुभो मिथः॥६॥**

पदपाठः—गावः चित् घ समन्यवः स मन्यवः सजात्येन स जात्येन मरुतः सबन्धवः स बन्धवः रिहते ककुभः मिथः ॥ ६ ॥

अन्वयः—मरुतः गावः-चित् समन्यवः सबन्धवः सजात्येन ककुभः-मिथः-रिहते ॥

पदार्थः—(मरुतः) परमात्मज्योतिप्रवाह को (गावः-चित्) स्तुति वाणियाँ सारी (समन्यवः) समान आकांक्षा वाली (सबन्धवः) समान एक परमात्मा की ओर (सजात्येन) समान गुणत्व से (ककुभः-मिथः-रिहते) दिशाएँ जैसे परस्पर एक दूसरे को मानो सङ्गत होती हैं।

भावार्थः—परमात्मा को या परमात्मा की ज्ञान ज्योतियों को चाहती हुई स्तुति—वाणियाँ समान गुण वाली होकर समान परमात्मा को या उसकी ज्योतियों को केन्द्र मानकर गति करती हुई परस्पर दिशाओं के समान समागम करने वाली होनी चाहिएँ ॥ ६ ॥

ऋषिः—नृमेधः (जीवन्मुक्त मेधा वाला) ॥

४०५. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

पदपाठः— त्वम् नः इन्द्र आ भर ओजः नृम्णम् शतक्रतो शत क्रतो विचर्षणे वि चर्षणे आ वीरम् पृतनासहम् पृतना सहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र त्वम् नः ओजः नृम्णम् आभर पृतनासहं वीरम्-आ ॥

पदार्थः—(शतक्रतो) बहुत कर्मशक्ति वाले और (विचर्षणे) सर्वज्ञ (इन्द्र) परमात्मन्! (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये—हमारे अन्दर (ओजः) आध्यात्मिक बल और (नृम्णम्) यशः—संयम सदाचार का यश (आभर) आभरित करता है (पृतनासहं वीरम्-आ) हमसे विरोध करने वाली बाधक वृत्तियों को सहने वाले प्राण को भी आभरित करें "प्राणा वै वीराः" [श० १२.८.१.२२]।

भावार्थः—हे अनन्त कर्मशक्ति वाले सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! तू हमारे अन्दर आत्मिक बल और संयम सदाचार का यश भरपूर कर दे तथा विरोधी बाधक वृत्तियों को सहने वाले प्राण को भी भरपूर कर दे, मैं उपासना द्वारा तेरी शरण में आया हूँ ॥ ७ ॥

ऋषिः—नृमेधः (जीवनमुक्त मेधा वाला)॥

४०६. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे। उदेव ग्मन्त उदभिः॥ ८॥

पदपाठः— अध हि इन्द्र गिर्वणः गिः वनः उप त्वा कामे ईमहे ससृग्महे उदा इव ग्मन्तः उदभिः॥ ८॥

अन्वयः—गिर्वणः-इन्द्र अध हि कामे त्वा-ईमहे उपससृग्महे उदा-इव उदभिः-ग्मन्ते॥

पदार्थः—(गिर्वणः-इन्द्र) स्तुतियों से वननीय सम्भजनीय परमात्मन्! (अध हि) अब तो (कामे) कामना पूर्ति के निमित्त (त्वा-ईमहे) तुझे चाहते हैं "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघं० ३.१९] कि (उपससृग्महे) तुझ से उपसृष्ट हो जावें—वासित हो जावें, (उदा-इव) "उदानि" जल जैसे (उदभिः-ग्मन्ते) जलों से मिल जाते हैं।

भावार्थः—हे स्तुतियों से सेवनीय परमात्मन्! कामनापूर्ति के निमित्त तुझे चाहते हैं। तुझे चाहने से सब कुछ कामना पूरी हो जावेगी, अतः तुझे चाहते हैं। तुझे उपसृष्ट होकर तुझ से मेल करें, जलप्रवाह जैसे जलप्रवाहों से मिलते हैं॥ ८॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरित करने वाला उपासक)॥

४०७. सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे। अभि त्वामिन्द्र नोनुमः॥ ९॥

पदपाठः— सीदन्तः ते वयः यथा गोश्रीते गो श्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे अभि त्वाम् इन्द्र नोनुमः॥ ९॥

अन्वयः—गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे सीदन्तः-ते वयः-यथा इन्द्र त्वाम्-नोनुमः॥

पदार्थः—(गोश्रीते) स्तुतिवाणियों से पके (मधौ) मधुर—(मदिरे) हर्षकर—(विवक्षणे) विशिष्ट वक्षणा आनन्दधारा जहाँ ऐसे उपासनास्थान में (सीदन्तः-ते वयः-यथा) बैठते हुए वे मधुमक्खियाँ जैसे, ऐसे हम बैठते हुए (इन्द्र) हे परमात्मन्! (त्वाम्-नोनुमः) तुझे पुनः पुनः नमस्कार करते हैं।

भावार्थः—स्तुतियों से पके मधुर आनन्दकर विशिष्ट उपासनाधारा वाले उपासना सदन में मधुमक्खियों की भाँति बैठते हुए तुझ परमात्मा को पुनः पुनः प्रणाम करते हैं॥ ९॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरित करने वाला उपासक)॥

४०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽ-वस्यवः।
वज्रिञ्चित्रं हवामहे॥ १०॥

पदपाठः— वयम् उ त्वाम् अपूर्व्य अ पूर्व्य स्थूरम् न कत् चित्
भरन्तः अवस्यवः वज्रिन् चित्रम् हवामहे॥ १०॥

अन्वयः—अपूर्व्य वज्रिन् कत्-चित्-स्थूरं न भरन्तः वयम्-अवस्यवः त्वां चित्रं हवामहे॥

पदार्थः—(अपूर्व्य वज्रिन्) पूर्व—पुरातनकाल में होने वाले श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ ओजस्विन् परमात्मन्! (कत्-चित्-स्थूरं न भरन्तः) किसी कुठले को यवादि अन्न से जैसे भरते हैं "तत् स्थूरू यवाचितम् स्थूरि भवति क्षेमस्य रूपम्" [जै० २.२०३] वैसे उपासना से भरते हुए (वयम्-अवस्यवः) हम रक्षा चाहने वाले (त्वां चित्रं हवामहे) तुझ चयनीय दर्शनीय को आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—जैसे संसार में समय पर प्राणरक्षा चाहते हुए अथवा समय पर अन्न पाने के लिये यव आदि अन्न से किसी कुठले को भरते हैं, वैसे दर्शनीय सर्वश्रेष्ठ ओजस्वी परमात्मा को हम रक्षा चाहने वाले उपासक उपासना से भरते हुए अवसर पर रक्षा करने वाले को आमन्त्रित करते हैं, वह अवश्य रक्षा करेगा॥ १०॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

४०९. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः। या इन्द्रेण
सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु
स्वराज्यम्॥ १॥

पदपाठः— स्वादोः इत्था विषुवतः वि सुवतः मधोः पिबन्ति गौर्यः
याः इन्द्रेण सयावरीः स यावरीः वृष्णा मदन्ति शोभथा
वस्वीः अनु स्वराज्यम् स्व राज्यम्॥ १॥

अन्वयः—इत्था गौर्यः स्वादोः विषूवतः मधोः पिबन्ति वृष्णा-इन्द्रेण याः सयावरीः मन्दन्ति स्वराज्यम्-अनु वस्वीः शोभथाः॥

पदार्थः—(इत्था) यह सत्य है "इत्था सत्यनाम" [निघं० ३.१०] (गौर्यः) हमारी वाणियाँ (स्वादोः) स्वाद वाले—(विषूवतः) विशेष सवन निष्पादन वाले—(मधोः) मधुर ओ३म् नाम का (पिबन्ति) जब पान करती हैं मानो (वृष्णा-

इद्रेण) सुखवर्षक परमात्मा के साथ (याः सयावरीः) जो समानगति वाली हो (मन्दन्ति) हर्ष को प्राप्त होती हैं (स्वराज्यम्-अनु) स्वराज्य—आत्मा के स्वराज्य के अनुरूप (वस्वीः) वसने वाली हुई (शोभथाः) शोभा को प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—यह सत्य है वाणियाँ जब निरन्तर स्वाद वाले विशेष निष्पन्न किए मधुर ओ३म जप का पान करती हैं तो उस सुखवर्षक परमात्मा के साथ समानगति वाली हो हर्षित होती हैं और तब आत्मा के स्वराज्य के अनुसार वसने वाली शोभा युक्त होती हैं॥ १॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥

४१०. **इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम्। शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥ २॥**

पदपाठः— **इत्था हि सोमः इत् मदः ब्रह्म चकार वर्द्धनम् शविष्ठ वज्रिन् ओजसा पृथिव्याः निः शशाः अहिम् अर्चन् अनु स्वराज्यम् स्व राज्यम्॥ २॥**

अन्वयः—इत्था हि सोमः-मदः-इत् वर्धनं ब्रह्म चकार शविष्ठ वज्रिन् ओजसा पृथिव्याः अहिं निः शशा स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्॥

पदार्थः—(इत्था हि) यह सत्य ही है (सोमः-मदः-इत्) उपासनारस हर्षकर या तृप्तिकर सिद्ध हो जाता है तो वह (वर्धनं ब्रह्म चकार) वृद्धिकारक ज्ञान को करता है (शविष्ठ वज्रिन्) हे अत्यन्त बलवन् ओजस्वी परमात्मन्! तू (ओजसा) ओजोरूप आत्मबल से (पृथिव्याः) पृथिवी के विकार—पार्थिव शरीर से ''पृथिवीं शरीरम्'' [काठ० ११.८] ''यच्छरीरं पुरुषस्य सा पृथिवी'' [ऐ० आ० २.३.३] (अहिं निः शशा) आहन्ता—पाप को निकाल भगा (स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) आत्मस्वराज्य को लक्ष्य कर तेरी अर्चना करता हुआ प्रार्थना करता हूँ।

भावार्थः—यह सत्य है कि जब मेरा उपासनारस पूर्ण विकसित हो जावेगा तो वह वृद्धिकर ज्ञान कर देगा और अत्यन्त बलवान् ओजस्वी परमात्मा भी अपने ओज से आत्मबल से मेरे शरीर के घातक पापदोष को निकाल भगा देगा, मुझे स्वराज्य के अनुरूप परमात्मा की अर्चना करते रहना चाहिए॥ २॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥

४११. **इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥ ३॥**

पदपाठः— **इन्द्रः मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा वृत्र हा नृभिः तम् इत् महत्सु आजिषु ऊतिम् अर्भे हवामहे सः वाजेषु प्र नः अविषत्॥ ३॥**

अन्वयः—नृभिः मदाय शवसे इन्द्रः वावृधे तम्-इत्-ऊतिम् महत्सु-आजिषु अर्भे हवामहे सः वाजेषु नः प्र-अविषत्॥

पदार्थः—(नृभिः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (मदाय) आत्मतृप्ति के लिये "मद तृप्तियोगे" [चुरादि०] (शवसे) आत्मबल के लिये "शवस्-बलनाम" [निघं० २.९] (इन्द्रः) परमात्मा (वावृधे) उपासना द्वारा स्वात्मा में बढ़ाया जाता है—अधिकाधिक साक्षात् किया जाता है "कर्मणि कर्तृप्रत्ययो व्यत्येन" (तम्-इत्-ऊतिम्) निश्चय उस रक्षक परमात्मा को (महत्सु-आजिषु) बड़े काम क्रोधादि शत्रुओं संघर्षों में "आजौ संग्रामनाम" [निघं० २.१७] (अर्भे) वासनामात्र दोषसंघर्ष में "अर्भके अवृद्धे" [निरु० ४.१५] (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं (सः) वह (वाजेषु) समस्तबल वाले प्रसङ्गों में (नः) हमें (प्र-अविषत्) प्रबल रखें।

भावार्थः—मुमुक्षुजनों द्वारा अपनी तृप्ति आत्मबल प्राप्ति के लिये उपासना से परमात्मा साक्षात् किया जाता है, उस रक्षक देव को कामक्रोधादि के संघर्षों में और गुप्त वासनासंघर्ष में आमन्त्रित करते हैं स्मरण करते हैं वह अन्य समस्त बलप्रसङ्गों में उनकी प्रबल रक्षा करता है॥ ३॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥

४१२. **इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्। यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥ ४॥**

पदपाठः— **इन्द्र तुभ्यम् इत् अद्रिवः अ द्रिवः अनुत्तम् अ नुत्तम् वज्रिन् वीर्यम् यत् ह त्यम् मायिनम् मृगम् तव त्यत् मायया अवधीः अर्च्चन् अनु स्वराज्यम् स्व राज्यम्॥ ४॥**

अन्वयः—अद्रिवः-वज्रिन् इन्द्र तुभ्यम्-इत् अनुत्तं वीर्यम् यत्-ह तं मायिनं मृगम् मायया-अवधीः त्यत् तव स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्॥

पदार्थः—(अद्रिवः-वज्रिन्) हे आदरणीय ओजस्वी! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (तुभ्यम्-इत्) तेरे लिये—तेरा ही (अनुत्तं वीर्यम्) न ह्रसित होने वाला बल है (यत्-ह) जो कि (तं मायिनं मृगम्) उस माया—प्रकृति वाले—प्राकृतिक घातक बन्धनरूप विषयमृग को "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" [श्वेता०] (मायया-अवधीः) प्रज्ञा से मार दिया—मार देता है (त्यत् तव) वह तेरा ही बल है

(स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) स्वराज्य आत्मराज्य को लक्ष्य कर तेरी अर्चना करता हुआ मैं उपासना करता हूँ।

भावार्थः—हे आदरणीय ओजस्वी परमात्मन्! तेरा बल न दबने वाला अचूक है जिससे मायिक प्राकृतिक मन मानस विषयकाम को तूने मार दिया—मार देता है—दिव्य बना दिया है अतः मैं आत्मराज्य को लक्ष्य कर तेरी उपासना करता हूँ॥४॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥

४१३. **प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते। इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽ र्चन्ननु स्वराज्यम्॥ ५॥**

पदपाठः— **प्र इहि अभि इहि धृष्णुहि न ते वज्रः नि यꣳसते इन्द्र नृम्णम् हि ते शवः हनः वृत्रम् जयाः अपः अर्च्चन् अनु स्वराज्यम् स्व राज्यम्॥ ५॥**

अन्वयः—इन्द्र प्रेहि अभीहि धृष्णुहि ते वज्रः न नियंसते ते शवः-नृम्णं हि वृत्रं हनः अपः-जय स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन्! तू (प्रेहि) मेरे अन्दर प्राप्त हो (अभीहि) मेरे अभिमुख हो—मुझे स्वीकार कर (धृष्णुहि) मुझे अध्यात्म में दृढ़ कर (ते वज्रः) तेरा ओज—आत्मतेज ''वज्रो वा ओजः'' [श० ८.४.१.२०] (न नियंसते) नियमित—सीमित नहीं हैं (ते शवः-नृम्णं हि) तेरा बल देवजनों मुमुक्षुओं के प्रति झुका हुआ—हितसाधक है, किन्तु (वृत्रं हनः) पापभाव को नष्ट करता है ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ११.१.५.७] (अपः-जय) उसके कर्म पर अधिकार (स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) स्वराज्य—स्वातन्त्र्य को लक्ष्य करके अर्चना करता हुआ उपासना करता हूँ।

भावार्थः—परमात्मा उपासक के अन्दर प्राप्त होता है और उसे स्वीकार करता है उसका ओज—आत्मिक तेज असीम है। उसका बल उपासक के लिये हितसाधता है पापभाव को नष्ट करता है, कर्म पर अधिकार कर यथावत् फल सुखरूप या दुःखरूप देता है। उपासक उसकी अर्चना करता हुआ स्वात्मराज्य को पाता है॥५॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)॥

४१४. **यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्। युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥ ६॥**

पदपाठः— **यत् उदीरते उत् ईरते आजयः धृष्णवे धीयते धनम्**
युङ्क्ष्व मदच्युता मद च्युता हरीइति कम् हनः कम्
वसौ दधः अस्मान् इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यद्–आजयः–उदीरते धृष्णवे धनं धीयते मदच्युता हरी युंक्ष्व कं हनः कं वसौ दधः इन्द्र–अस्मान् वसौ दधः ॥

पदार्थः—(यद्–आजयः–उदीरते) जब देवासुरवृत्तियों के संग्राम संघर्ष मानव के अन्दर उठते हैं उभरते हैं (धृष्णवे धनं धीयते) तब हे परमात्मन्! तेरी ओर से दृढ़—स्थिरचित्त उपासक के लिये प्रसादकर गुण "धनं कस्माद् धिनोतीति सतः" [निरु० ३.१०] धारण कराया जाता है (मदच्युता हरी युंक्ष्व) पापमद को च्युत करने वाले दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता तेरे दया और प्रसाद धर्मों को मुझ उपासक में युक्त कर (कं हनः कं वसौ दधः) किसी को—नास्तिक को नष्ट करता है और किसी को—आस्तिक उपासक को निजवास—निजशरण में धारण करता है अतः (इन्द्र–अस्मान् वसौ दधः) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! हम उपासकों को अपने वास—शरण में धारण कर—करता है।

भावार्थः—उपासक के अन्दर जब देव असुर वृत्तियों के संग्राम होने लगते हैं तब परमात्मा उस स्थिरचित्त वाले उपासक के लिये तृप्तिकर ज्ञान एवं शरणधन धारण कराता है तथा उसके दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता अपने दया और प्रसाद धर्मों को युक्त कर पापमद को नष्ट करता है, नास्तिक को नष्ट करता है। आस्तिक उपासक को समर्थ कर अपनी शरण में लेता है, अतः परमात्मन्! तू हम उपासकों को अपनी शरण में ले ॥ ६ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्) ॥

४१५. **अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो**
विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥

पदपाठः— **अक्षन् अमीमदन्त हि अव प्रियाः अधूषत अस्तोषत**
स्वभानवः स्व भानवः विप्राः वि प्राः नविष्ठया मती
योज नु इन्द्र ते हरीइति ॥ ७ ॥

अन्वयः—इन्द्र ते हरी योज प्रियाः अक्षन् अमीमदन्त हि–अव–अधूषत विप्राः स्वभानवः नविष्ठया मती अस्तोषत ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (ते हरी) तेरे दुःखापहरण और सुखाहरण धर्मों को (योज) तू युक्त करता है, तब (प्रियाः) उपासक तेरे प्रिय हैं (अक्षन्) तेरे अमृतभोग को भोगते हैं (अमीमदन्त) अतीव लाभ करते हैं (हि–अव–अधूषत)

अपने सब दुःखों को छोड़ देते हैं (विप्राः) वे मेधावी जन (स्वभानवः) स्वज्ञान से दीप्त हुए समस्त दुःखों को छोड़ते हुए (नविष्ठया मती) अत्यन्त नवीन शुद्ध स्तुति से (अस्तोषत) तेरी स्तुति करते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तू अपने दया और प्रसाद धर्मों को जब उपासकों के अन्दर युक्त कर देता है तो वे अमृतभोग में तृप्त हुए समस्त दुःखों से छुटे हुए तेरी नवीन—प्रिय स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्) ॥

४१६. **उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथाइव। कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **उप उ सु शृणुहि गिरः मघवन् मा अतथाः इव कदा नः सुनृतावतः सु नृतावतः करः इत् अर्थयासे इत् योज नु इन्द्र ते हरीइति ॥ ८ ॥**

अन्वयः—मघवन् गिरः उ सु उप शृणुहि अतथा-इव मा कदा नः सुनृतावतः करः इत् अर्थयासे-इत् इन्द्र ते हरी नु योज ॥

पदार्थः—(मघवन्) हे ऐश्वर्यरूप मोक्षधनवन्! तू (गिरः) स्तुति प्रार्थनाओं को (उ) अवश्य (सु) भली प्रकार (उप शृणुहि) स्वीकार कर (अतथा-इव मा) अन्यथारूप—उपेक्षा से नहीं (कदा नः) कब हमें (सुनृतावतः करः) अच्छी स्तुति वाले—सफल स्तुति वाले करता है (इत्) इतनी (अर्थयासे-इत्) प्रार्थना स्वीकार करता है ही (इन्द्र ते हरी नु योज) अतः परमात्मन्! अपने दया और प्रसाद धर्म मेरे अन्दर युक्त कर दे।

भावार्थः—मोक्षैश्वर्यवान् परमात्मा हमारी स्तुतियों को स्वीकार करता है उनकी उपेक्षा नहीं करता है अपितु वास्तविकता से, परन्तु सफलस्तुति वाले हमें कब बना देगा? कभी तो बनाएगा, वह दुःखापहरणकर्ता और सुखाहरणकर्ता अपने दया और प्रसाद धर्मों को हमारे अन्दर युक्त कर देगा, तब सब सुन्दर हो जावेगा ॥ ८ ॥

ऋषिः—त्रितः (परमात्मा में तीर्णतम—अत्यन्त प्रवेशशील उपासक) ॥
देवता—विश्वेदेवाः—"इन्द्रसम्बद्धाः" (परमात्मा के दिव्यगुण सृष्टिरथचक) ॥

४१७. **चन्द्रमा अप्स्वा३ऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥**

पदपाठः— चन्द्रमाः चन्द्र माः अप्सु अन्तः आ सुपर्णः सु पर्णः धावते दिवि न वः हिरण्यनेमयः हिरण्य नेमयः पदम् विन्दति विद्युतः वि द्युतः वित्तम् मे अस्य रोदसीइति॥ ९॥

अन्वयः—चन्द्रमाः अप्सु-अन्तः सुपर्णः दिवि आधावते वः हिरण्यनेमयः विद्युतः अस्य पदं न विन्दन्ति ये रोदसी वित्तम्॥

पदार्थः—(चन्द्रमाः) मेरा आह्लादक इन्द्र—परमात्मा ''अथ यस्स प्रजानां जनाय ताः....अप्स्वन्तः, चन्द्रमा हैव सः'' [जै० ३.३५.५१] ''चन्द्रमा एव धाता च विधाता च'' [गो० २.१.१०] (अप्सु-अन्तः) मेरे प्राणों के अन्दर रमा हुआ वसा हुआ है ''आपो वै प्राणाः'' [श० ३.८.२.४] (सुपर्णः) और वह सुपालक धर्म वाला पुरु ''पुरुषः सुपर्णः'' [श० ७.४.२.५] (दिवि) मेरे मस्तिष्क में ''अथ यत्कपालमासीत् सा द्यौरभवत्'' [श० ६.१.२.३] (आधावते) समन्तरूप से प्राप्त है ''धावति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] (वः) 'ते' वे 'पुरुषव्यत्ययः' (हिरण्यनेमयः) सुनहरी नेमि वाले (विद्युतः) विशेष द्योतमान समस्त सूर्य आदि (अस्य) इस परमात्मा के (पदं न विन्दन्ति) स्वरूप को नहीं पा सकते हैं (ये रोदसी वित्तम्) मेरे लिए द्युलोक पृथिवीलोक प्राप्त हैं अर्थात् दोनों लोकों के शरीर के ऊपर नीचे वाले अङ्ग तथा उनके सुख जीवनरस और ज्ञान ज्योति सुखैश्वर्य भोग प्राप्त हैं।

भावार्थः—मेरा आह्लादक प्रजापति परमात्मा मेरे प्राणों के अन्दर रम गया, बस गया है और सुखपालक परमात्मा मेरे मस्तिष्क में भी समा गया है सुनहरी नेमिवाले विशेष द्योतमान—प्रकाशमान सूर्य आदि उसके स्वरूप के सम्मुख फीके हैं। मुझे द्युलोक, पृथिवी लोक प्राप्त हो गए—ये दोनों भाग, शरीर के उपरि अङ्ग मस्तिष्क और निम्न अङ्ग प्राण संस्थान प्राप्त हो गए, स्वाधीन हो गए। इनके सुख ज्ञान ज्योति और जीवनरस प्राप्त हो गए॥ ९॥

ऋषिः—अवस्युः (परमात्मप्राप्ति का इच्छुक)॥ देवता—अश्विनौ (ऐश्वर्यवान् परमात्मसम्बन्धी ज्योति और रस शक्ति दया और प्रसाद)॥

४१८. **प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्। स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ १०॥**

पदपाठः— प्रति प्रियतमम् रथम् वृषणम् वसुवाहनम् वसु वाहनम् स्तोता वाम् अश्विनौ ऋषिः स्तोमेभिः भूषति प्रति माध्वीइति मम श्रुतम् हवम्॥ १०॥

अन्वयः—वाम्-अश्विनौ प्रियतमम् वृषणम् वसुवाहनम् रथम् प्रति स्तोता-ऋषिः स्तोमेभिः प्रतिभूषति माध्वी मम हवं श्रुतम्॥

पदार्थः—(वाम्-अश्विनौ) परमात्मा के उन दोनों—जीवन ज्योति और जीवनरस देने वाले दया और प्रसाद व्यापन धर्मो! (प्रियतमम्) अतिप्रिय—(वृषणम्) सुखवर्षक (वसुवाहनम्) मोक्षैश्वर्य के वहन करने वाले—(रथम्) शरीर रथ के (प्रति) प्रति वर्तमान हुए तुम दोनों को (स्तोता-ऋषिः) प्रशंसित करने वाला ऋषि (स्तोमेभिः) प्रशंसित वचनों से (प्रतिभूषति) उत्तम गुण युक्त करता है (माध्वी मम हवं श्रुतम्) हे जीवन मधु के रस सम्पादन करने वाले मेरी पुंकार को सुनो।

भावार्थः—परमात्मा से सम्बद्ध जीवनज्योति और जीवनरस के देने वाले दया और प्रसाद व्यापन धर्मो! तुम दोनों अति प्रिय सुखवर्षक मोक्षैश्वर्य के वाहन शरीररथ के प्रति वहन करने वालों की उपासक विद्वान् प्रशंसा करता है। तुम मेरे भाव को स्वीकार करो॥ १०॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—वसुश्रुतः (सबमें वसने वाले परमात्मा का श्रवण जिसने किया)॥
देवता—अग्निः (प्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

४१९. **आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर॥ १॥**

पदपाठः— **आ ते अग्ने इधीमहि द्युमन्तम् देव अजरम् अ जरम् यत् ह स्या ते पनीयसी समित् सम् इत् दीदयति द्यवि इषम् स्तोतृभ्यः आ भर॥ १॥**

अन्वयः—अग्ने देव ते द्युमन्तम् अजरम् आ-इधीमहि ते यत्-ह स्या पनीयसी समित् द्यवि दीदयति इषम् स्तोतृभ्यः-आभर॥

पदार्थः—(अग्ने देव) परमात्मदेव! (ते) 'त्वाम्' तुझ (द्युमन्तम्) प्रकाशमान (अजरम्) अजर—जरारहित को (आ-इधीमहि) अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं (ते) तेरी (यत्-ह) जो ही (स्या पनीयसी समित्) वह अत्यन्त प्रशंसनीय दीप्ति (द्यवि दीदयति) द्युमण्डल में—अमृत मोक्षधाम में प्रदीप्त हो रही है ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] उस मोक्षधाम का (इषम्) अमृतभोग (स्तोतृभ्यः-आभर) उपासकों के लिए आभरित कर—यहाँ इस लोक में मेरे हृदय में भर दे।

भावार्थः—अजर प्रकाशमान परमात्मदेव को अपने हृदय में ध्यान द्वारा प्रकाशित करना चाहिए जो उसकी प्रशंसनीय दीप्ति या ज्योति मोक्षधाम में प्रदीप्त हो रही है, सो वहाँ अमृतभोग को स्तोता उपासकों के लिए इस लोक में—इस जीवन में आभरित कर देता है, यह उसकी महती कृपा है॥ १॥

ऋषिः—विमदः (परमात्मा में विशेष हर्ष को प्राप्त उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

४२०. आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे। शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे॥ २॥

पदपाठः— आ अग्निम् न स्ववृक्तिभिः स्व वृक्तिभिः होतारम् त्वा वृणीमहे शीरम् पावकशोचिषम् पावक शोचिषम् वि वः मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषम् स्तीर्ण बर्हिषम् विवक्षसे॥ २॥

अन्वयः—अग्निं न त्वा होतारं स्ववृक्तिभिः आ वृणीमहे शीरम् पावकशोचिषम् यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषम् विमदे विवक्षसे॥

पदार्थः—(अग्निं न त्वा होतारं) परमात्मन्! अग्नि के समान तुझ होता को—मेरे उपासनारस के आदाता—स्वीकारकर्ता को (स्ववृक्तिभिः) अपने दोषवर्जनप्रवृत्तियों द्वारा (आ वृणीमहे) समन्तरूप से वरते हैं (शीरम्) सर्वत्र शयनशील—व्यापक (पावकशोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (यज्ञेषु) अध्यात्म यज्ञों में (स्तीर्णबर्हिषम्) विस्तृतप्रजा—प्रजायमान प्राणि वनस्पति जिससे हैं ऐसे को "बर्हिः प्रजाः" [जै० १.८६] (विमदे) विशेष आनन्द के निमित्त (विवक्षसे) महत्त्व युक्त प्रशंसित करते हैं।

भावार्थः—अपने को दोषों से रहित कर सद्वृत्तियों से अग्नि के समान परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं और व्यापक पवित्र दीप्ति वाले को अध्यात्मयज्ञों में विस्तृत प्रजाओं—प्राणी वनस्पतियों वाले को विशेष आनन्द के निमित्त महत्त्व युक्त प्रशंसित करते हैं॥ २॥

ऋषिः—सत्यश्रवाः (सत्यस्वरूप परमात्मा ही जिसका धन है)॥ देवता—उषाः (परमात्मा की व्याप्त दीप्ति-ज्योति)॥

४२१. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती। यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥ ३॥

पदपाठः— महे नः अद्य अ द्य बोधय उषः राये दिवित्मती यथा चित् नः अबोधयः सत्यश्रवसि सत्य श्रवसि वाय्ये सुजाते सु जाते अश्वसूनृते अश्व सुनृते॥ ३॥

अन्वयः—उषः नः अद्य महे राये दिवित्मती बोधय यथाचित् नः अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥

पदार्थः—(उषः) हे अन्तरात्मा में प्रकाशित परमात्मज्योति! तू (नः) हमें (अद्य) इस जन्म में (महे राये) महान् मोक्षैश्वर्य के लिये (दिवित्मती) 'दिवि-एति-दिवित् तद्वती' मोक्षधाम में जाने वाली, ले जाने वाली, प्रवृत्ति वाली दीप्ति—ज्योति को (बोधय) बोधित कर (यथाचित्) जिस ही प्रकार (नः) हमें (अबोधयः) बोधित कर चुकी पूर्व—पुरातन जन्म—पूर्वकल्प में पूर्व मुक्ति समय में, वैसे अब भी बोधित कर (सत्यश्रवसि) सत्यस्वरूप परमात्मा को सुनाने वाली (वाय्ये) ''वार्य्य रेफलोपश्छान्दसः'' अवश्य वरणीय (सुजाते) सुप्रसिद्ध—(अश्वसूनृते) व्यापक परमेश्वर की वाणी जिसमें है ऐसी परमात्मदीप्ति।

भावार्थः—हे मुक्त उपासक के अन्दर भासित हुई परमात्मज्योति! तू सत्यस्वरूप परमात्मा को सुनाने वाली—दर्शाने वाली वरण करने योग्य सुप्रसिद्ध व्यापक परमात्मा की वाणी जिसमें है ऐसी मोक्षधाम में गति प्रवृत्ति रखने वाली होकर मोक्षैश्वर्य के लिए हमें बोधित कर। जिस ही प्रकार—जैसे ही हमें पूर्व—पुरातन जन्म में पूर्व मोक्षार्थ बोधित कर चुकी है, सो इस जन्म में भी बोधित कर पुनः मोक्ष पाने के लिए॥ ३॥

ऋषिः—विमदः (परमात्मा में विशेष हर्ष को प्राप्त उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा[1])॥

४२२. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्। अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे॥ ४॥

पदपाठः— भद्रम् नः अपि वातय मनः दक्षम् उत क्रतुम् अथ ते सख्ये स ख्ये अन्धसः वि वः मदे रण गावः न यवसे विवक्षसे॥ ४॥

अन्वयः—नः मनः दक्षम् उत क्रतुम् भद्रम्-अपि वातय अथ ते-अन्धसः सख्ये मदे विवः रण-गावः-न यवसे विवक्षसे॥

पदार्थः—सोम परमात्मन्! (नः) हमारे (मनः) मन को (दक्षम्) आत्मबल को ''दक्षो बलम्'' [निघं० २.९] (उत) 'अपि'—और (क्रतुम्) प्रज्ञा को ''क्रतुः प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९] (भद्रम्-अपि वातय) भद्र—भद्ररूप में अवश्य चला ''अपि निश्चये'' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (अथ) हाँ (ते-अन्धसः सख्ये) तुझ आध्यानीय—समन्त ध्यातव्य सोम परमात्मा के सखिभाव—मित्रभाव में तथा (मदे) हर्ष में (विवः) विकसित होऊँ—हर्षाऊँ (रण-गावः-न यवसे) जैसे घास के लिये गौव्वें रमण करतीं—प्रसन्न होती हैं ऐसे (विवक्षसे) महत्त्व को प्राप्त होता है।

भावार्थः—हे शान्तरूप परमात्मन्! तू महत्त्व को पा रहा है, अतः तू हमारे

---

१. ''सोमो वै देवानां जनिता'' [जै० ३.१७४]।

मनोबल—आत्मबल को और प्रज्ञा को निश्चित भद्र—कल्याणरूप कर दें तुझ ध्यान में आने योग्य के मित्रभाव में और हर्ष में हम विकसित हों, गौव्वें जैसे घास के लिए हर्षित होती हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥

४२३. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः । श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— क्रत्वा महान् अनुष्वधम् अनु स्वधम् भीमः आ वावृते शवः श्रिये ऋष्वः उपाकयोः नि शिप्रौ हरिवान् दधे हस्तयोः वज्रम् आयसम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—महान्-भीमः-शवः क्रत्वा अनुष्वधम् आवावृत्ते ऋष्वः शिप्री हरिवान् उपाकयोः-हस्तयोः श्रियः-निदधे आयसं वज्रम् ॥

पदार्थः—(महान्-भीमः-शवः) महान् भयंकर बलवान् होता हुआ परमात्मा (क्रत्वा) प्रज्ञा एवं कर्म द्वारा ''क्रतुः प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९] ''क्रतुः कर्मनाम'' [निघं० २.१] (अनुष्वधम्) स्वधा—उपासनारस के अनुसार ''स्वधायै त्वा रसाय त्वेत्येवैतदाह'' [श० ५.४.३.७] (आवावृते) उपासक के प्रति समन्तरूप से वर्ता करता है (ऋष्वः शिप्री हरिवान्) वह महान् शुभस्वरूप एवं व्यापक परमात्मा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता दया और प्रसाद धर्मों वाला (उपाकयोः-हस्तयोः) उपक्रान्त—उपगत प्राण अपानों में (श्रियः-निदधे) विविध शोभाओं को निहित करता है और (आयसं वज्रम्) सुनहरी ओज—तेज ''वज्रो वा ओजः'' [श० ८.४.१.२] ओज को धारण कराता है ''अयस् हिरण्यनाम'' [निघं० १.२]।

भावार्थः—परमात्मा बड़ा भयंकर होता हुआ भी उपासक के प्रति उपासनारस के समर्पण से प्रज्ञा और कर्म द्वारा प्राप्त होता है। उसके समीप रहने से प्राण अपान शोभा और ओज को धारण कराता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला) ॥

४२४. स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् । यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्रा चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥

पदपाठः— सः घ तम् वृषणम् रथम् अधि तिष्ठाति गोविदम् गो विदम् यः पात्रम् हारियोजनम् हारि योजनम् पूर्णम् इन्द्र चिकेतति योज नु इन्द्र ते हरीइति ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्द्र सः घ तं वृषणं गोविदम् रथम् अधितिष्ठाति यः हारियोजनं पात्रम् पूर्णं चिकेतति ते हरी नु योज॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (सः) वह तेरा उपासक आत्मा (घ) हाँ (तं वृषणं गोविदम् रथम्) उस सुखवर्षक स्तुतिवाणियों से प्राप्त होने वाले रथ—रमण स्थान मोक्ष रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठना चाहता है ''लिङर्थे लेट्'' [अष्टा० ३.४.७] अब इस शरीर रथ पर नहीं (यः) जो उपासक (हारियोजनं पात्रम्) तेरे दया प्रसाद रूप दुःखापहरण और सुखाहरण करने वाले जिसमें निरन्तर तेरे द्वारा युक्त किए हुए हैं ऐसे नितान्त पालक रक्षक (पूर्णं चिकेतति) पूर्णरूप से जानता है कि बस कल्याण स्थान यही है, अतः (ते हरी) तेरे दया और प्रसाद को (नु योज) मुझ उपासक में शीघ्र युक्त कर।

भावार्थः—जीवन्मुक्त उपासक इस शरीररथ में रहना नहीं चाहता, किन्तु वह तो उस स्तुतियों द्वारा प्राप्त हुए सुख-शान्ति-वर्षक मोक्ष रमणस्थान रथ में बैठना चाहता है जिसमें परमात्मा के दुःखापहरण सुखाहरण धर्म दया और प्रसाद युक्त रहते हैं। ऐसे नितान्त पालक रक्षक रूपी रथ पर स्थित होना चाहता है, जिसे वह पूर्णरूप से अपने कल्याण का कारण जानता है। अतः शीघ्र ही उन दया और प्रसाद को मुझ उपासक में युक्त कर॥ ६॥

ऋषिः—वसुश्रुतः (वसाने वाले अनन्त परमात्मा का श्रवण जिसने कर लिया)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥

४२५. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ७॥

पदपाठः— अग्निम् तम् मन्ये यः वसुः अस्तम् यम् यन्ति धेनवः अस्तम् अर्वन्तः आशवः अस्तम् नित्यासः वाजिनः इषम् स्तोतृभ्यः आ भर॥ ७॥

अन्वयः—यः-वसु तम्-अग्निम् मन्ये यम्-अस्तं धेनवः-यन्ति अस्तम्-अर्वन्तः-आशवः अस्तं नित्यासः-वाजिनः स्तोतृभ्यः इषम्-आभर॥

पदार्थः—(यः-वसु) जो सबको वसाने वाला है (तम्-अग्निम्) उस अग्रणायक को (मन्ये) अर्चित करूँ—उसकी अर्चना करूँ ''मन्यतेर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] (यम्-अस्तं धेनवः-यन्ति) जिसे अस्त—गृह—आश्रय ''अस्तं गृहनाम'' [निघं० ३.४] हमारी स्तुतिवाणियाँ प्राप्त होती हैं (अस्तम्-अर्वन्तः-आशवः) जिस घर—आश्रय को हमारे जप ध्यान करते हुए प्राप्त होते हैं ''वायुर्वा आशुवृत्'' [श० ८.४.१.९] (अस्तं नित्यासः-वाजिनः) उस घर—आश्रय को

नित्य—शरीर में निरन्तर बल वाले वेग वाले मेरे मन बुद्धि चित्त अहङ्कार प्राप्त होते हैं (स्तोतृभ्यः) ऐसे वाणियों प्राणों और मन आदि अन्तःकरणों द्वारा स्तुति करने वालों के लिये (इषम्-आभर) एषणीय सुख को आभरित कर।

भावार्थः—मैं अपने अन्दर वसने वाले उस अग्रणायक परमात्मा की अर्चना करूँ—करता रहूँ जिसे मेरी वाणियाँ 'स्तुति द्वारा' अपना आश्रय बनाती हैं। मेरे चलते हुए प्राण 'प्राणायाम द्वारा' अपना आश्रय बनाते हैं। जिसे मेरे निरन्तर वेगवान् मन आदि 'मनन चिन्तन आदि द्वारा' अपना आश्रय बनाते हैं। इन तीनों साधनों द्वारा स्तुति करने वाले हम उपासकों के लिये परमात्मा एषणीय अपना शान्त सुख आभरित करता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—अहोमुक्—वामदेव्यः (पाप से छुटा हुआ निष्पाप वननीय सेवनीय देव का उपासक)॥ देवता—विश्वे देवाः (समस्त दिव्य गुण वाले प्रमुख देव)॥ छन्दः—उपरिष्टाद् बृहती ॥

४२६. न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्। सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥

पदपाठः— न तम् अꣳहः न दुरितम् दुः इतम् देवासः अष्ट मर्त्यम् सजोषसः स जोषसः यम् अर्यमा मित्रः मि त्रः नयति वरुणः अति द्विषः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यम् सजोषसः अर्यमा मित्रः वरुणः द्विषःअति नयति तं मर्त्यम् अंहस् दुरितम् न-अष्ट ॥

पदार्थः—(यम्) जिसको (सजोषसः) समान भाव से सेवित उपासित (अर्यमा) नियन्ता (मित्रः) प्रेरक स्नेही (वरुणः) त्राणकर्ता परमात्मा (द्विषः-अति) काम क्रोधादि शत्रुओं को अतिक्रमण कर (नयति) ले जाता है (तं मर्त्यम्) उस मनुष्य को (अंहस्) पाप (दुरितम्) दुःख (न-अष्ट) नहीं प्राप्त होता है।

भावार्थः—नियन्ता प्रेरक स्नेही त्राणकर्ता परमात्मा जिसे सेवित करता है अपनी शरण में ले लेता है, उस मनुष्य को पाप और पापकर्म का फल नहीं प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

नवम खण्ड

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करनेवाले जप और स्वाध्यायकर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ॥

४२७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

१ २र २ ३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
पदपाठः— **परि प्र धन्व इन्द्राय सोम स्वादुः मित्राय मि त्राय पूष्णे**
१ २र
भगाय॥ १ ॥

अन्वयः—सोम इन्द्राय स्वादुः परिप्रधन्व मित्राय पूष्णे भगाय॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्त उपासनारस! (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (स्वादुः) स्वादरूप में (परिप्रधन्व) समन्तरूप से प्रगति कर "धन्वति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] तथा (मित्राय) मित्रभूत परमात्मा के लिए (पूष्णे) पोषणकर्ता परमात्मा के लिए (भगाय) धनभाजक के लिए प्रगति कर।

भावार्थः—मेरा उपासनारस ऐश्वर्यवान् तथा मित्रभूत पोषणकर्ता परमात्मा के लिए तथा भग ऐश्वर्य विभाजक परमात्मा के लिये बहुत प्रक्षरित हो॥ १ ॥

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले जप और स्वाध्यायकर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)॥
छन्दः—त्रिपदा अनुष्टुप्, पिपीलिकामध्या॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४२८. **पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।**
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे॥ २ ॥

१ २र ३ २ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २र ३ १ २
पदपाठः— **परि उ सु प्र धन्व वाजसातये वाज सातये परि वृत्राणि**
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३
सक्षणिः स क्षणिः द्विषः तरध्यै ऋणयाः ऋण याः नः
३
ईरसे॥ २ ॥

अन्वयः—वाजसातये उ सु परिप्रधन्व सक्षणिः वृत्राणि परि द्विषः-तरध्यै ऋणयाः-नः-ईरसे॥

पदार्थः—हे मेरे उपासनारस तू (वाजसातये) अमृत—अन्नभोग—प्राप्ति के लिये (उ सु) अवश्य सुन्दररूप में (परिप्रधन्व) परिपूर्ण प्रगति कर (सक्षणिः) तू सहनशील हुआ (वृत्राणि परि) पापभावों को परे कर (द्विषः-तरध्यै) द्वेषभावनाओं-विरोधी विचारों के पार करने को (ऋणयाः-नः-ईरसे) ऋणभार ले जाने, वहन करने, चुकाने वाला तू हमें प्रेरित करता है।

भावार्थः—उपासनारस अमृतभोग प्राप्ति के लिये भली-भाँति प्रगति करता है शान्तरूप सहनशील समस्त पापभावों को परे करता है द्वेष प्रवृत्तियों को तरने, पार करने के लिए ऊपर भाररूप ऋण अन्यों के द्वारा उपकारों को चुकानेवाला बन, हमें प्रेरित करता है॥ २ ॥

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले जप और स्वाध्यायकर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)॥
छन्दः—द्विपदा पंक्ति॥

४२९. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥ ३ ॥

पदपाठः— पवस्व सोम महान् समुद्रः सम् उद्रः पिता देवानाम् विश्वा अभि धाम॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम महान्-समुद्रः देवानां पिता विश्वा धाम अभि पवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे मेरे उपासनारस! तू (महान्-समुद्रः) महान् समुन्दनशील हुआ (देवानां पिता) मेरी इन्द्रियों का पालक-अन्यथा विषयों में जाने से बचाने वाला (विश्वा धामअभि) मेरे समस्त जीवनकेन्द्रों के प्रति (पवस्व) चालू रह।

भावार्थः—उपासनारस महान् तरावट करने वाला हो। समस्त इन्द्रियों को अन्यथा चेष्टा से बचाने वाला समस्त जीवनकेन्द्रों में पहुँचकर जीवन और शान्ति देने वाला है॥ ३ ॥

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले जप और स्वाध्यायकर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)॥

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

४३०. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय॥ ४ ॥

पदपाठः— पवस्व सोम महे दक्षाय अश्वः न निक्तः वाजी धनाय॥ ४ ॥

अन्वयः—सोम महे दक्षाय पवस्व अश्वः-न निक्तः-वाजी धनाय॥

पदार्थः—(सोम) हे मेरे उपासनारस! तू (महे दक्षाय पवस्व) महान् बल— आत्मबल के लिये चालू हो—प्रवाहित रह (अश्वः-न) जैसे घोड़ा (निक्तः-वाजी) स्वरूप में सधा हुआ बलवान् हुआ (धनाय) धनप्राप्ति के लिए होता है इसी भांति अमृत धन प्राप्ति के लिए सोम—उपासनारस हो।

भावार्थः—उपासनारस सधे हुए घोड़े के समान बलवान् हो, प्रवाहित रहे, अमृत धन प्राप्त करने के लिए॥ ४ ॥

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले जप और स्वाध्यायकर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)॥

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

४३१. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय॥ ५ ॥

पदपाठः— इन्दुः पविष्ट चारुः मदाय अपाम् उपस्थे उप स्थे कविः भगाय॥ ५ ॥

अन्वयः—इन्दुः अपाम्-उपस्थे चारुः कविः मदाय भगाय पविष्ट ॥

पदार्थः—(इन्दुः) आर्द्र—स्नेहपूर्ण उपासनारस (अपाम्-उपस्थे) जलों के उपस्थान—तट पर (चारुः) सुन्दर प्रिय (कविः) क्रान्त—चलता हुआ (मदाय) हर्ष के लिए (भगाय) परमात्मा के भगस्वरूप के लिये (पविष्ट) चलता रहे।

भावार्थः—जलप्रवाहों के तट पर उपासनारस सुन्दर एवं चलता हुआ हर्ष—प्राप्ति तथा परमात्मा के ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले जप और स्वाध्यायकर्ता) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस) ॥ छन्दः—द्विपदा अनुष्टुप् पिपीलिकामध्या ॥

४३२. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये। वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

पदपाठः— अनु हि त्वा सुतम् सोम मदामसि महे समर्यराज्ये समर्य राज्ये वाजान् अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

अन्वयः—सोम त्वा-सुतम्-अनु हि सम्मदामसि महे-अर्यराज्ये पवमान वाजान् अभि प्रगाहसे ॥

पदार्थः—(सोम) हे उपासनारस! (त्वा-सुतम्-अनु हि) तेरे निष्पन्न सेवन के साथ ही (सम्मदामसि) हम सम्यक् तृप्त होते हैं (महे-अर्यराज्ये) बड़े स्वामी परमात्मा के राज्य में—मोक्ष में (पवमान) हे पवित्रकारक! (वाजान्) अपने हर्ष बलों को (अभि) लक्षित कर (प्रगाहसे) प्रगति कर रहा है।

भावार्थः—हे उपासनारस तुझ निष्पन्न के साथ हम सम्यक् तृप्त हों और महान् परम राज्य के निमित्त मोक्षार्थ प्रगति करें ॥ ६ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला) ॥ देवता—मरुतः (वासनामारक परमात्मा के व्याप्त गुण धर्म) ॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ॥

४३३. क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥

पदपाठः— के ईम् व्यक्ताः वि अक्ताः नरः सनीडाः स नीडाः रुद्रस्य मर्याः अथ स्वश्वाः सु अश्वाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—रुद्रस्य मर्य्याः अथ स्वश्वाः सनीडाः व्यक्ताः नरः के-ईम् ॥

पदार्थः—(रुद्रस्य) विश्व में पूर्ण पुरुष परमात्मा के "रुद्रो वै पुरुषः" [जै० ३।११३] (मर्य्याः) मनुष्य हितकारी (अथ) तथा (स्वश्वाः) सुष्ठु संयत इन्द्रिय

घोड़े जिनसे हो जाते हैं ऐसे (सनीडाः) समानस्थान वाले (व्यक्ताः) भासित—भासमान (नरः) नायक सञ्चालक (के-ईम्) कौन ही हैं ? सुखप्रद हैं।

भावार्थः—परमात्मा के व्यापन धर्म मनुष्यों के हितकर बन्धन वासनाओं को मारने वाले इन्द्रियों में संयमशक्ति देने वाले परस्पर एकाङ्ग एकक्रम में रहने वाले चलने वाले मोक्ष की ओर ले जाने वाले विश्व में या अन्तःकरण में भासमान कुछ या सुख देने वाले व्यापन-धर्म हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है) ॥ देवता—अग्निः (प्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—पदपंक्तिः ॥

४३४. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥

पदपाठः— अग्ने तम् अद्य अ द्य अश्वम् न स्तोमैः क्रतुम् न भद्रम् हृदिस्पृशम् हृदि स्पृशम् ऋध्याम ते ओहैः ॥ ८ ॥

अन्वयः—अग्ने अद्य तम् अश्वं न हृदिस्पृशम् क्रतुं न भद्रम् ओहैः-स्तोमैः ते-ऋध्याम ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (अद्य) आज शीघ्र ही—अभी (तम्) उस प्रसिद्ध तुझ—(अश्वं न) घोड़े की भाँति संसारवहनकर्ता—(हृदिस्पृशम्) हृदयङ्गम को (क्रतुं न भद्रम्) तथा यज्ञ के समान कल्याणकर भजनीय को "यज्ञः-क्रतुः" [मै० १.४.१४] (ओहैः-स्तोमैः) समन्तरूप से ऊहने वाले—स्मरणीय स्तुतिसमूहों से (ते-ऋध्याम) हम तेरे उपासक अपने अन्दर साधें—धारण करें।

भावार्थः—घोड़े के समान संसारवहनकर्ता और यज्ञ के समान कल्याणकारी भजनीय हृदयङ्गम परमात्मा को स्मरणीय स्तुति मन्त्रों से अपने हृदय में साधें, धारण करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है) ॥ देवता—वाजिनः (परमात्मा के अमृतान्न वाले धर्म) ॥ छन्दः—पुर उष्णिक् ॥

४३५. आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः सवम्। स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

पदपाठः— आविः आ विः मर्याः आ वाजम् वाजिनः अग्मन् देवस्य सवितुः सवम् स्वर्गान् स्वः गान् अर्वन्तः जयत ॥ ९ ॥

अन्वयः—मर्य्याः वाजिनः वाजम्-आविः-आग्मन् अर्वन्तः देवस्य सवितुः सवं स्वर्गम् जयत ॥

पदार्थः—(मर्य्याः) मनुष्यों के हितसाधक (वाजिनः) अमृत अन्न—मोक्षानन्द वाले जीवन्मुक्त "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (वाजम्-आविः-आग्मन्) अमृत अन्न—मोक्षानन्द को साक्षात् प्राप्त हो जाते हैं (अर्वन्तः) हे 'अर्' ज्ञान वाले उपासको! तुम भी (देवस्य सवितुः) उस उत्पादक परमदेव परमात्मा के (सवं स्वर्गम्) ऐश्वर्य सुख को (जयत) प्राप्त करो।

भावार्थः—मनुष्यहित साधक अमृत मोक्षानन्द के अधिकारी जीवन्मुक्त आत्माएँ अमृतभोग को साक्षात् प्राप्त हो जाया करते हैं, अतः ज्ञानवान् उपासको! तुम भी उत्पादक परमात्मा के ऐश्वर्यसुख को प्राप्त करो ॥ ९ ॥

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वरज्ञान में कुशल वक्ता जन)॥ देवताः—पावमानः सोमः (चालू उपासनारस)॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

४३६. पवस्य सोम द्युम्नि सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥ १० ॥

पदपाठः— पवस्व सोम द्युम्नी सुधारः सु धारः महान् अवीनाम् अनु पूर्व्यः ॥ १० ॥

अन्वयः—सोम महान् द्युम्नी अवीनाम्-अनुपूर्व्यः सुधारः-पवस्व ॥

पदार्थः—(सोम) हे उपासनारस! तू (महान् द्युम्नी) महान् यशस्वी "द्युम्नी यशस्वी" "द्युम्नं द्योतते यशो वा" [निरु० ५.५] (अवीनाम्-अनुपूर्व्यः) रक्षक भूमियों के क्रम से (सुधारः-पवस्व) अच्छी धारारूप में प्रवाहित हो।

भावार्थः—महान् उपासनारस हमारी भूमियों के अनुसार यश वाला उत्तम धाराओं वाला होकर प्रवाहित हो ॥ १० ॥

दशम खण्ड

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वर ज्ञान में कुशल वक्ता जन)॥ देवताः—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

४३७. विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे॥ १ ॥

पदपाठः— विश्वतोदावन् विश्वतः दावन् विश्वतः नः आ भर यम् त्वा शविष्ठम् ईमहे ॥ १ ॥

अन्वयः—विश्वतः-दावन् नः विश्वतः आभर यम् त्वा शविष्ठम्-ईमहे ॥

पदार्थः—(विश्वतः-दावन्) हे सब ओर से देने वाले परमात्मन्! (नः) हमारे लिये (विश्वतः) सब ओर से (आभर) आभरित कर—भरपूर दे (यम्) जिस अभीष्ट को (त्वा शविष्ठम्-ईमहे) तुझ अत्यन्त धनवान् से "शवः-धननाम" [निघं० २.१०] हम माँगते हैं "ईमहे याञ्चाकर्म" [निघं० ३.१९] ॥

भावार्थः—परमात्मन्! तू बड़ा धनवान् और सब ओर से देने वाला है सब

ओर से हमारे लिए अभीष्ट को भरपूर दे जिसे हम तुझसे माँगते हैं॥ १॥

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वर ज्ञान में कुशल वक्ता जन)॥ देवताः—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

४३८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे॥ २॥

३ २ ३ २ २ ३ १ २ १ २र १ २र ३ २ ३ २

पदपाठः— एषः ब्रह्मा यः ऋत्वियः इन्द्रः नाम श्रुतः गृणे॥ २॥

अन्वयः—एषः-ब्रह्मा यः-ऋत्वियः-इन्द्रः-नाम श्रुतः गृणे॥

पदार्थः—(एषः-ब्रह्मा) यह ब्रह्मा—अध्यात्मयज्ञ का ब्रह्मा है (यः-ऋत्वियः-इन्द्रः-नाम) जो ऋतु—समय समय पर उपासनीय इन्द्र नाम (श्रुतः) प्रसिद्ध है (गृणे) उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थः—मैं इन्द्र नाम से प्रसिद्ध परमात्मा की स्तुति करता हूँ वह मेरे अध्यात्मयज्ञ का ब्रह्मा समय पर काम आने वाला है॥ २॥

ऋषिः—त्रसदस्युः (निज उद्वेग—अशान्ति का क्षीण करने वाला उपासक)॥ देवताः—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

४३९. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ॥ ३॥

३ १ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २र २ ३ २

पदपाठः— ब्रह्माणः इन्द्रम् महयन्तः अर्कैः अवर्द्धयन् अहये हं तवै
उ॥ ३॥

अन्वयः—ब्रह्माणः इन्द्रम् महयन्तः अर्कैः अवर्धयन् अहिं हन्तवैः-उ॥

पदार्थः—(ब्रह्माणः) ब्रह्मविद्या में कुशल विद्वान् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (महयन्तः) पूजन करने के हेतु (अर्कैः) अर्चनमन्त्रों से (अवर्धयन्) बढ़ाता है अपने अन्दर प्रवृद्ध करता है (अहिं हन्तवैः-उ) पापभाव को हनन करने के लिए।

भावार्थः—ब्रह्म को जानने वाले जन ऐश्वर्यवान् परमात्मा की अर्चना करने के हेतु हम अर्चनामन्त्रों से अपने अन्दर बढ़ बढ़कर साक्षात् करने वाले हैं, अपने अन्दर पाप का हनन करने के लिये नहीं॥ ३॥

ऋषिः—त्रसदस्युः (निज उद्वेग—अशान्ति का क्षीण करने वाला उपासक)॥ देवताः—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

४४०. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्॥ ४॥

१ २र ३ १ २र १ २र ३ १ २र १ २र ३ ३

पदपाठः— अनवः ते रथम् अश्वाय तक्षुः त्वष्टा वज्रम् पुरुहूत पुरु
३ ३ १ २
हूत द्युमन्तम्॥ ४॥

अन्वयः—पुरुहूत अनवः ते-अश्वाय रथं तक्षुः त्वष्टा द्युमन्तं वज्रम्॥

पदार्थः—(पुरुहूत) हे बहुत आमन्त्रण करने योग्य परमात्मन्! (अनवः) जीवन—दीर्घ जीवन धारण करने वाले उपासक जन ''अनवः-मनुष्यनाम'' [निघं० २.३] (ते-अश्वाय) तुझ व्यापनशील एवं प्रापणशील परमात्मा के लिये (रथं तक्षुः) रमणस्थान हृदय को श्रद्धा से सम्पन्न करते हैं तथा (त्वष्टा) शीघ्र प्राप्त होने वाले जीवन्मुक्त ने ''त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ताः'' [निरु० ८.१४] (द्युमन्तं वज्रम्) 'ततक्ष' तुझे अपना प्रकाशमान रथ—रमणस्थान बना लिया ''वज्रो वै रथः'' [तै० सं० ५.४.११.२] ॥

भावार्थः—हे बहुत आमन्त्रणीय परमात्मन्! आश्चर्य है दीर्घ जीवन धारण करने वाले उपासक जन तुझ व्यापनशील एवं प्रापणशील के लिए अपने हृदय को रमण स्थान श्रद्धा से सम्पन्न करते हैं और शीघ्र प्राप्तिशील जीवन्मुक्त तुझे अपना प्रकाशमान रथ—रमण स्थान बनाया करता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—त्रसदस्युः (निज उद्वेग—अशान्ति को क्षीण करने वाला उपासक)॥
देवताः—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

४४१. शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— शम् पदम् मघम् रयीषिणे न कामम् अव्रतः अ व्रतः हिनोति न स्पृशत् रयिम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—रयीषिणे शं पदं मघम् अव्रतः कामं न हिनोति रयिं न स्पृशत् ॥

पदार्थः—(रयीषिणे) उपासना द्वारा वैश्वानर—परमात्मा को चाहने वाले या प्राप्त होने वाले के लिए ''एष वै रयिर्वैश्वानरः'' [श० १०.६.१.५] (शं पदं मघम्) कल्याणकर पद और कल्याणकर धन—मोक्ष सुख है ''मघं धननाम'' [निघं० २.१०] (अव्रतः) व्रतहीन—सत्यसङ्कल्पहीन जन (कामं न हिनोति) अभीष्ट परमात्मा को नहीं प्राप्त करता है ''हिन्वन्ति-आप्नुवन्ति'' [निरु० १.२०] (रयिं न स्पृशत्) उस परमात्मा को वह छू भी नहीं सकता है।

भावार्थः—उपासना द्वारा परमात्मा को चाहने वाले या प्राप्त होने वाले के लिये शान्त कल्याणकर मोक्षपद और कल्याणकर मोक्षधन हैं। किन्तु सत्यसङ्कल्प आदि से रहित के लिये कभी नहीं हैं, वह तो स्पर्श भी नहीं कर सकता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—त्रसदस्युः (निज उद्वेग—अशान्ति का क्षीण करने वाला उपासक)॥
देवताः—विश्वे देवाः (सब दिव्यगुण वाले देव)॥

४४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥

पदपाठः—सदा गावः शुचयः विश्वधायसः विश्व धायसः सदा देवाः अरेपसः अ रेपसः ॥ ६ ॥

अन्वयः—गावः सदा शुचयः विश्व-धायसः-देवाः अरेपसः ॥

पदार्थः—(गावः) परमात्मा के प्रति स्तुतिवाणियाँ (सदा शुचयः) सदा पवित्र—पापसङ्कल्प और दम्भ से रहित हों (विश्व-धायसः-देवाः) सबको धारण करने वाले मुमुक्षुजन (अरेपसः) पापरहित हों।

भावार्थः—परमात्मा की स्तुतियाँ किसी का अहित करने वाली न हों दम्भ से भी रहित हों, मुमुक्षुजन सबके हितधारक और निष्पाप होते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)॥ देवता—उषाः (परमात्मज्योतिः)॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
४४३. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ ७ ॥

२ ३ १ २र ३ २ १ २र ३ ३ २ २
पदपाठः—आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्त्तनिम् यत्
१ २र
ऊधभिः ॥ ७ ॥

अन्वयः—वनसा सह आयाहि गावः-वर्तनिं सचन्ते यत् ऊधभिः ॥

पदार्थः—(वनसा सह) कान्ततेज के साथ (आयाहि) हे परमात्म-ज्योति आ—प्राप्त हो (गावः-वर्तनिं सचन्ते) हमारी स्तुतियाँ अब अध्यात्म मार्ग के लक्ष्य को समवेत करती हैं (यत्) जबकि (ऊधभिः) अनेक दिन रात्रियों के साथ "ऊधः-रात्रिनाम" [निघं० १.७] या रात्रि समान स्नेह भावनाओं के साथ।

भावार्थः—परमात्म-ज्योति कमनीय तेज के साथ उपासक के हृदय में आती है। अनेक दिन यात्रियों के सेवन द्वारा या जब हम उपासकों की स्तुतियाँ अध्यात्म मार्ग के लक्ष्य को प्राप्त होती हैं, रात्रि समान स्नेह भावनाओं से संयुक्त होती हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)॥ देवताः—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
४४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

१२र ३ २ ३ २ १२र ३ १ २ १ २र ३ २ ३ १ २ ३
पदपाठः— उप प्रक्षे प्र क्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिम् धीमहे ते
३
इन्द्र ॥ ८ ॥

अन्वयः—इन्द्र मधुमति प्रक्षे उपक्षियन्तः रयिं पुष्येम ते धीमहे ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् (मधुमति प्रक्षे) मधुर प्रक्षरण प्रास्रवण—स्तुतिवाणियों के अन्त स्थान मोक्षधाम में "एष उ ह वै वाचोऽन्तो यत् प्रक्षः प्रास्रवणः-यत्रो ह वै वाचोऽन्तः" [जै० २.२८८] (उपक्षियन्तः) निवास करते

हुए (रयिं पुष्येम) मोक्षधन—मोक्षसुख को पुष्ट करें और (ते धीमहे) तेरा ध्यान करें।

भावार्थः—हे परमात्मन्! स्तुतियों के आधार तेरे मधुर प्रास्रवण करने में हम निवास करते हुए मोक्षधन—भोग को अपने अन्दर पुष्ट करें, सम्भाले, प्राप्त कर लें, अतः तेरा ध्यान करते हैं॥८॥

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)॥

४४५. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः॥९॥

पदपाठः— अर्च्चन्ति अँम् मरुतः स्वँ॑ः सु अँ॑ः आ स्तोभति श्रुतः युवा सः इन्द्रः॥९॥

अन्वयः—स्वर्काः-मरुतः अर्कम्-अर्चन्ति सः श्रुतः-युवाः-इन्द्रः आस्तोभति॥

पदार्थः—(स्वर्काः-मरुतः) शोभन मन्त्र—मन वाले या स्तोम—स्तुति समूह वाले "अर्को मन्त्रो भवति" [निरु० ५.४] "अर्कैरर्चनीयैः स्तोमैः" [निरु० ६.२३] दिव्य विद्वान् मुमुक्षुजन या अध्यात्मयाजी जन "मरुतो देवविश" [श० २.५.१.१३] (अर्कम्-अर्चन्ति) अर्चनीय परमात्मदेव को अर्चित करते हैं "अर्को देवो भवति" [निरु० ५.४] (सः श्रुतः-युवाः-इन्द्रः) वह प्रसिद्ध सदायुवा—अजर परमात्मा (आस्तोभति) इनको स्तोभित करता है, अपने साथ संयुक्त करता है।

भावार्थः—शोभन मनन वाले, शोभन स्तुतिसमूह वाले या मुमुक्षुजन या आत्मयाजीजन परमात्मा की अर्चना करते हैं, वह प्रसिद्ध अजर परमात्मा भी उन्हें आलिङ्गित करता है॥९॥

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)॥

४४६. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते॥१०॥

पदपाठः— प्र वः इन्द्राय वृत्रहन्तमाय वृत्र हन्तमाय विप्राय वि प्राय गाथम् गायत यम् जुजोषते॥१०॥

अन्वयः—वः वृत्रहन्तमाय विप्राय इन्द्राय गाथं प्रगायत यं जुजोषते॥

पदार्थः—(वः) 'यूयम्-विभक्तिव्यत्ययः' हे मरुतो—मुमुक्षुजनो! तुम (वृत्रहन्तमाय) अत्यन्त पापनाशक—(विप्राय) प्रजापति—प्रजापालक—

"प्रजापतिर्वै विप्रः" [श० ६.१.१.१६] (इन्द्राय) परमात्मा के लिये (गाथं प्रगायत) गान करने योग्य भजन कीर्तन स्तवन को भली प्रकार गाओ (यं जुजोषते) जिसको वह प्रसन्न—पसन्द करता है।

भावार्थः—मुमुक्षुजनों आत्मयाजी लोगों को अत्यन्त पापनाशक प्रजापालक परमात्मा के लिये गाने योग्य भजन कीर्तन स्तवन इस प्रकार करना चाहिए, जिससे वह परमात्मा प्रसन्न होता है॥ १०॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)॥ देवताः—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा गायत्री॥

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
४४७. अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्‌न सुमद्रथः॥ १॥

१ २र ३ २ १ २र ३ २ ३ २ २ ३ १ २
पदपाठः— अचेति अग्निः चिकितिः हव्यवाट् हव्य वाट् न सुमद्रथः
३ २ ३
सुमत् रथः॥ १॥

अन्वयः—चिकितिः हव्याड्-न समुद्रथः अग्निः अचेति॥

पदार्थः—(चिकितिः) ज्ञानवान् (हव्याड्-न) हव्य वहन करने वाली भौतिक अग्नि की भान्ति (समुद्रथः) स्वयं रथरूप—अपने में रममाण करने वाला "सुमत् स्वयमित्यर्थः" [निरु० ६.२२] (अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (अचेति) उपासकों के हृदय में चेतता है—साक्षात् होता है।

भावार्थः—ज्ञानवान् सर्वज्ञ स्वयं में रमण करने वाला प्रकाशस्वरूप परमात्मा हव्यवहनकर्ता भौतिक अग्नि की भाँति उपासकों के हृदय में साक्षात् होता है॥ १॥

ऋषिः—बन्धुः (परमात्मा के स्नेह में बन्धने वाला)॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
४४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः॥ २॥

१ २र २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३
पदपाठः— अग्ने त्वम् नः अन्तमः उत त्राता शिवः भुवः
३ ३३ २
वरूथ्यः॥ २॥

अन्वयः—अग्ने त्वं नः अन्तमः उत त्राता शिवः वरूथ्यः भुवः॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं नः) तू हमारा (अन्तमः) अन्तिकतम—अत्यन्त समीपी "अन्तमानाम्-अन्तिकतमानाम्" [निघं० २.१६] (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) कल्याणकर (वरूथ्यः) हृदयगृहवासी "वरूथं गृहनाम" [निघं० ३.४] (भुवः) हो जाता है।

भावार्थः—प्रकाशस्वरूप परमात्मा हमारा अत्यन्त समीपी अन्तर्यामी रक्षक कल्याणकर एवं हृदयगृहवासी है। उसकी उपासना करनी चाहिए॥ २॥

ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च (परमात्मा के स्नेह में बन्धा अच्छा बन्धा, विशेष गाढ बँधा हुआ उपासक)॥ छन्दः—पञ्चदशाक्षरा गायत्री॥

४४९. भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम्॥ ३॥

पदपाठः— भगः न चित्रः अग्निः महोनाम् दधाति रत्नम्॥ ३॥

अन्वयः—अग्निः भगः-न चित्रः महोनां रत्नं दधाति॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (भगः-न चित्रः) सूर्य के समान चित्र—चायनीय—दर्शनीय—आत्मा में साक्षात् होने योग्य है "भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता" [ऋ० ७.४१.२] (महोनां रत्नं दधाति) महनीय—प्रशंसनीय जनों—मुमुक्षुओं के लिये रमणीय अध्यात्म सुखों को धारण करता है।

भावार्थः—परमात्मा मुमुक्षुजनों के हृदय में सूर्य समान साक्षात् दर्शनीय होकर रमणीय सुखों को धारण करता है॥ ३॥

ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च (परमात्मा के स्नेह में बन्धा अच्छा बन्धा, विशेष गाढ बँधा हुआ उपासक)॥

४५०. विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम्॥ ४॥

पदपाठः— विश्वस्य प्र स्तोभ पुरः वा सन् यदि वा इह नूनम्॥ ४॥

अन्वयः—विश्वस्य प्रस्तोभ पुरः-वा यदि वा नूनम्-इह सन्॥

पदार्थः—(विश्वस्य प्रस्तोभ) हे विश्व के स्तम्भक—सम्भालने वाले परमात्मन्! "ष्टुभु स्तम्भने" [भ्वादि०] "प्र पूर्वकात् ष्टुभधातोः-अच् प्रत्ययः कर्तरि" (पुरः-वा) तू विश्व—जगत् से पूर्व भी था 'वा समुच्चयार्थे' (यदि वा नूनम्-इह सन्) 'यदि च' यद्यपि इस जगत् में निश्चिय वर्तमान है।

भावार्थः—हे विश्व के स्तम्भक—सम्भालने वाले परमात्मन्! जबकि वर्तमान जगत् में तू निश्चित स्थिर है—अमर है तो इस जगत् से पूर्व भी तो तू था, तू नित्य निरन्तर अजर अमर है॥ ४॥

ऋषिः—संवर्तः (अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों के मेल से सेवन करने वाला उपासक)॥ देवताः—उषाः (परमात्मज्योतिः)॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

४५१. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता॥ ५॥

पदपाठः— उषाः अप स्वसुः तमः सम् वर्त्तयति वर्त्तनिम् सुजातता सु जातता॥ ५॥

अन्वयः—उषाः स्वसुः तमः-अपवर्तयति सुजातता वर्तनिं संवर्तयति॥

पदार्थः—(उषाः) कमनीय परमात्मज्योति "उषाः-वष्टेः कान्तिकर्मणः"

[निरु० १२।७] (स्वसुः) सुगमतया आत्माओं को भोगों में भोग बन्धनों में फेंकने वाली प्रकृति के "स्वसा-सु असा स्वेषु सीदतीति वा" [निरु० ११.३२] (तमः-अपवर्तयति) अन्धकार—जड़भाव—मृत्युभाव को "तमो मृत्युः" [काठ० १०.६] दूर कर देती है—नष्ट कर देती है, पुनः उपासक आत्मा के अन्दर (सुजातता) सुजाततया—सुप्रसिद्धरूपता से (वर्तनिं संवर्तयति) अपने ज्योतिःस्वरूप की तरङ्ग को सञ्चालित कर देती है।

भावार्थः—परमात्मज्योति उपासक मुमुक्षुओं के अन्दर से भोगों या भोग-बन्धन में फेंकने वाली प्रकृति के मृत्युरूप जड़भाव को नष्ट कर देती है और उनके अन्दर स्वप्रकाशतरङ्ग को सञ्चालित कर देती है॥५॥

ऋषिः—भौवन आप्त्यः (विश्वविज्ञान में सम्पन्न स्वयं आप्त जन)॥ देवताः—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
४५२. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥६॥

३ २ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ ३ २
पदपाठः— इमा नु कम् भुवना सीषधेम इन्द्रः च विश्वे च देवाः॥६॥

अन्वयः—इमा भुवना इन्द्रः-च च विश्वे देवाः नु कं सीषधेम॥

पदार्थः—(इमा भुवना) इन वर्तमान भोग्यवस्तुओं को "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम्" [यजु० ३४.४] (इन्द्रः-च) हम उपासक और परमात्मा (च) तथा (विश्वे देवाः) सारे प्राण—इन्द्रियाँ "प्राणा वै विश्वे देवाः" [तै० सं० ५.२.२.१] (नु कं सीषधेम) शीघ्र "नु क्षिप्रे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] सुखरूप साधें।

भावार्थः—हम परमात्मा के उपासक हो जावें तो इन वर्तमान भोग्यवस्तुओं को परमात्मा हमारे लिये सुख बना देता है, हम उपासक भी उन्हें सुखरूप में बनाने में समर्थ हो जाते हैं, हमारी इन्द्रियाँ भी संयम से सेवन कर सच्चा सुख ले सकती हैं॥६॥

ऋषिः—कवष ऐलूषः (उदक—जल को बान्धने वाला पृथिवी पर वास कराने—वसाने वाला शरीर के जीवनरस और प्राणों पर अधिकार कर देहपुरी में वसने वाला उपासक जन)॥

२ ३२ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
४५३. वि स्त्रुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः॥७॥

२ ३ १ २ १ २र ३ २ १ २र २ ३ ३ १ २
पदपाठः— वि स्त्रुतयः यथा पथः इन्द्र त्वत् यन्तु रातयः॥७॥

अन्वयः—इन्द्र यथा विस्त्रुतयः त्वत् रातयः यन्तु॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यथा) जैसे (विस्त्रुतयः) विविध

स्रवण करने वाली नदियाँ अपने अपने मार्ग से पृथिवी को सींचती हैं, ऐसे ही (त्वत्) तुझसे (रातयः) तेरी दानधाराएँ हमें (यन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थः—परमात्मन्! इसमें सन्देह नहीं जब हम तेरे उपासक बन जाते हैं तो हम उपासकों की ओर तेरी दानधाराएँ ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे मार्ग से बहती हुई विविध जलधाराएँ पृथिवी पर प्राप्त होती हैं॥७॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने लिए भरण करने वाला उपासक)॥

४५४. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥८॥

पदपाठः— अया वाजम् देवहितम् देव हितम् सनेम मदेम शतहिमाः शत हिमाः सुवीराः सु वीराः॥८॥

अन्वयः—अया देवहितं वाजं सनेम सुवीराः शतहिमाः-मदेम॥

पदार्थः—(अया) इस स्तुति से (देवहितं वाजं सनेम) मुमुक्षुजनों के हितकर अमृतान्नभोग को हम सेवन करें "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (सुवीराः शतहिमाः-मदेम) अच्छे प्राणों वाले "प्राणा वै दश वीराः" [श० १२.८.१.३२] सौ हेमन्त ऋतु तक हर्षित रहें।

भावार्थः—श्रद्धापूर्वक परमात्मा की स्तुति द्वारा मुमुक्षुओं के हितकर अमृतभोग को सेवन करें और सौ वर्षों तक अच्छे पुष्ट प्राणों वाले होते हुए हर्षित रहें॥८॥

ऋषिः—आत्रेयः (तीनों तापों से पृथक् परमानन्द का सेवन करने वाला)॥ देवता—विश्वे देवाः॥

४५५. ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र॥९॥

पदपाठः— ऊर्जा मित्रः मि त्रः वरुणः पिन्वत इडाः पीवरीम् इषम् कृणुहि नः इन्द्र॥९॥

अन्वयः—इन्द्र मित्रः वरुण ऊर्जा इडाः पिन्वत नः पीवरीम्-इषं कृणुहि॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (मित्रः) स्नेहीरूप (वरुण) वरने वाला होता हुआ तीनों रूपों वाले (ऊर्जा) अपने आर्द्र आनन्दरस से (इडाः) संसार के सुखभोगों को "इडा वा इदं सर्वम्" [मै० ४.२.२] (पिन्वत) सींचो (नः) हमारे लिये (पीवरीम्-इषं कृणुहि) पुष्ट—पुष्कल एषणीय मोक्षसुख को कर—प्रदान कर।

भावार्थः—स्नेह करने वाला, वरने वाला, ऐश्वर्य वाला परमात्मा संसार के

सब भोगसुखों को अपने आर्द्र आनन्दरस से सींच दे परिपूर्ण कर दे और पुष्कल इच्छित मोक्षसुख से भी हमें सम्पन्न कर दे॥ ९ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥

४५६. इन्द्रो विश्वस्य राजति॥ १०॥

पदपाठः— इन्द्रः विश्वस्य राजति॥ १०॥

अन्वयः—इन्द्रः विश्वस्य राजति॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (विश्वस्य) सब संसार और मोक्ष पर स्वामित्व करता है।

भावार्थः—संसार के ऐन्द्रियिक भोगों में सुख और मोक्ष में परमानन्द को भरने वाला परमात्मा दोनों भोग और अपवर्ग का स्वामी है उसकी उपासना करनी चाहिए॥ १०॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः॥

४५७. त्रिकद्रूकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिब-द्विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥ १॥

पदपाठः— त्रिकद्रुकेषु त्रि कद्रुकेषु महिषः यवाशिरम् यव आशिरम् तुविशुष्मः तुवि शुष्मः त्रिम्पत् सोमम् अपिबत् विष्णुना सुतम् यथावशम् यथा वशम् सः ईम् ममाद महि कर्म्म कर्त्तवे महान् उरुम् स एनम् सश्चत् देवः देवम् सत्यः इन्दुः सत्यम् इन्द्रम्॥ १॥

अन्वयः—त्रिकद्रुकेषु महिषः तुविशुष्मः विष्णुना यथावशं सुतम् यवाशिरम् सोमम् अपिबत् तृम्पत् सः-ईम् महि कर्म कर्त्तवे ममाद स 'सः' सत्यः-इन्दुः-देवः महाम्-उरुम् एनं सत्यम्-इन्द्रं देवम् सश्चत्॥

पदार्थः—(त्रिकद्रुकेषु) तीनों—परम मध्यम अवम पृथिवियों में "इयं पृथिवी वै कद्रूः" [तै० सं० ६.१.६.१] "परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत" [ऋ० १.१०८.१०] लोकत्रय में—त्रिलोकी में (महिषः) महान् इन्द्र परमात्मा "महिषो महन्नाम" [निघं० ३.३] (तुविशुष्मः) बहुत बलवान् "तुवि बहुनाम"

[निघं० ३.१] "शुष्मं बलनाम" [निघं० २.९] (विष्णुना यथावशं सुतम्) ओज से—आत्मभाव से यथाश्रद्ध—श्रद्धानुसार निष्पादित "ओजो विष्णुः" [काठ० २१.१] (यवाशिरम्) पाप द्वेष प्रवृत्ति को पृथक् करने वाली भावनाओं से युक्त "यव यवयास्य दुघा द्वेषांसि" [तै० आ० ६.९.२] "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६.८] (सोमम्) उपासनारस को (अपिबत्) पान करता है—स्वीकार करता है (तृम्पत्) तृप्त होता है—कृपा करता है "तृप तृप्तौ" (सः-ईम्) वह परमात्मा (महि कर्म कर्त्तवे) अभीष्ट कर्म—कृपा या सुखप्रदान कर्म करने के लिये "इषित कर्म क्रियते" [तै० सं० ६.४.६२] (ममाद) प्रसन्न हो जाता है (सः) वह (सत्यः-इन्दुः-देवः) सच्चा या नित्य इन्दुमान्—सोमवान्—उपासनारस वाला "मतुब्लोपश्छान्दसः" देवस्वरूप में आया मुमुक्षु—जीवन्मुक्त बना उपासक (महाम्-उरुम्) महान् अनन्त (एनं सत्यम्-इन्द्रं देवम्) इस सत्यस्वरूप या नित्य ऐश्वर्यवान् परमात्मदेव को (सश्चत्) प्राप्त हो जाता है—समागम करता है "सश्चति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

भावार्थः—लोकत्रय या त्रिलोकी में विराजमान महान् तथा बलवानों से भी बलवान् परमात्मा उपासक के आत्मभाव से निष्पन्न, श्रद्धापूर्वक पापद्वेषविनाशनभावनायुक्त उपासनारस को स्वीकार करता और कृपा एवं सुखप्रदानकर्म करने को प्रसन्न हो जाता है तब यह उपासनारस का समर्पणकर्ता सत्यदेव—मुमुक्षु जीवन्मुक्त बनकर—उस महान् अनन्त नित्य परमात्मदेव को प्राप्त होता है, समागम करता है ॥ १ ॥

ऋषिः—गौराङ्गिरसः (अग्निविद्या में कुशल परमात्म स्तोता[1])॥ देवता—सूर्यः (ज्योतिः प्रेरक परमात्मा)॥ छन्दः—अतिजगती ॥

४५८. **अयं सहस्त्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म। ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अयम् सहस्त्रम् आनवः दृशः कवीनाम् मतिः ज्योतिः विधर्म्म वि धर्म्म ब्रध्नः समीचीः सम् ईचीः उषसः सम् ऐरयत् अरेपसः अ रेपसः सचेतसः स चेतसः स्वसरे मन्युमन्तः चिताः गोः ॥ २ ॥**

अन्वयः—अयम् सहस्त्रमानवः-दृशः कवीनां मतिः ज्योतिः विधर्म ब्रध्नः समीचीः अरेपसः सचेतसः उषसः समैरयत् स्वसरे मन्युमन्तः चिताः-गोः 'गाः'॥

---

१. "अङ्गिरा उ ह्यग्निः" [श० १.४.१.२५]। "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।

पदार्थः—(अयम्) यह सर्वत्र सरणशील प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सहस्रमानवः-दृशः) सर्वमानव मननशील मानने वाले जन जिसके हैं ऐसा "सर्वं वै सहस्रम्" [कौ० ११.७] दर्शनीय (कवीनां मतिः) मेधावी ऋषियों का भी मननीय माननीय ऋषि अन्तर्यामी "कविः मतिः-मेधाविनाम" [निघं० ३.१५] (ज्योतिः-विधर्म) ज्योतिःस्वरूप है धर्म का विधानकर्ता है "विधर्म भवति धर्मस्य विधृत्यै" [तां० १५.५.३१] (ब्रध्नः) महान् देव "ब्रध्नः-महन्नाम" [निघं० ३.३] (समीचीः) सम्यक् प्राप्त होने वाली—(अरेपसः) निर्दोष—(सचेतसः) सर्वविधान करने वाली—(उषसः) अज्ञानदग्ध करने वाली ज्ञानरश्मियों को (समैरयत्) वेद द्वारा प्रेरित करता है, तथा (स्वसरे) हृदयगृह में (मन्युमन्तः-चिताः-गोः 'गाः') कान्ति वाली ज्ञानरश्मियों को प्रेरित करता है।

भावार्थः—परमात्मा सब मननशील मानने वाले जनों का दर्शनीय, मेधावी ऋषियों का भी मननीय परमर्षि अन्तर्यामी यथार्थ नियम विधाता उपासनीय है, वह सम्यक् प्राप्त होने वाली निर्दोष सचेत करने वाली ज्ञानरश्मियों को वेद द्वारा उपासक के हृदय में प्रेरित करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—परुच्छेपः (परु—पर्व—अवसर पर परमात्मा का स्पर्श—अनुभव करने वाला उसकी स्तुतिकथन प्रवचन में भी पर्व बनाने वाला)॥ देवताः—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥

४५९. **एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ इन्द्र याहि उप नः परावतः न अयम् अच्छ विदथानि इव सत्पतिः सत् पतिः अस्ता राजा इव सत्पतिः सत् पतिः हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेषु आ पुत्रासः पुत् त्रासः न पितरम् वाजसातये वाज सातये मंहिष्ठम् वाजसातये वाज सातये ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्द्र परावतः-न नः-उप-आयाहि अयं सत्पतिः विदथानि-इव-अच्छा सत्पतिः-राजा-इव अस्ता त्वा-आहवामहे सुतेषु प्रयस्वन्तः पुत्रासः-न पितर वाजसातये महिष्ठं वाजसातये ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (परावतः-न) दूरदेश से जैसे आना होता है ऐसे (नः-उप-आयाहि) हमारे पास आ—प्राप्त हो (अयं सत्पतिः)

यह सज्जनों का पालक विद्वान् "सत्पतिः–अग्निः सतां पतिः" [श० ८.६.३.२०] (विदथानि–इव–अच्छा) लाभों—उपहारों को प्राप्त करने जैसे आता है "विदथानि वेदनानि" [निरु० ६.७] "अच्छाभेराप्तुम्" [निरु० ५.२८] या (सत्पतिः–राजा–इव) सज्जनों के पालक राजा की भाँति (अस्ता) घर को—राजप्रासाद को "अस्तं गृहनाम" [निघं० ३.४] 'आकारादेशश्छान्दसः' (त्वा–आहवामहे) तुझे आमन्त्रित करते हैं (सुतेषु प्रयस्वन्तः) उपासनारस निष्पन्न होने पर उपासनारसरूप अन्न भेंट वाले हम उपासक (पुत्रासः–न पितरः वाजसातये) पुत्र जैसे अन्न भोजन प्राप्ति के लिये पिता को पुकारते हैं ऐसे (महिष्ठं वाजसातये) हम तुझ अत्यन्तदानी को अमृत अन्न मोक्षानन्द भोग की प्राप्ति के लिये बुलाते हैं।

भावार्थः—परमात्मा दूरदेश से जैसे आता हो ऐसे हमारे पास आता है—हमें प्राप्त होता है, हम से उपासनारस भेंट लेने के लिये, जैसे अग्रणेता विद्वान् हमसे उपहार प्राप्त करने आता है या सज्जनपालक राजा अपने राजप्रासाद को प्राप्त होता है, ऐसे वह हमारे हृदय को प्राप्त होता है, जबकि हम निष्पन्न उपासनारस होने पर उन उपासनारस वाले होकर उसे आमन्त्रि करते हैं या जैसे पुत्र अन्न प्राप्ति के लिये पिता को पुकारते हैं वैसे हम भी अमृत अन्नभोग—मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिये महान् दानी को पुकारते हैं ॥ ३॥

ऋषिः—रेभाः (स्तुतिकर्ता[1])॥ छन्दः—अतिजगती॥

४६०. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥ ४॥

पदपाठः— तम् इन्द्रम् जोहवीमि मघवानम् उग्रम् सत्रा दधानम् अप्रतिष्कुतम् अ प्रतिष्कुतम् श्रवांसि भूरि मंहिष्ठः गीर्भिः आ च यज्ञियः ववर्त्त राये नः विश्वा सुपथा सु पथा कृणोतु वज्री॥ ४॥

अन्वयः—तम् मघवानम् उग्रम् सत्रा–भूरि श्रवांसि दधानम् अप्रतिष्कुतम् इन्द्रम् जोहवीमि च मंहिष्ठः यज्ञियः गीर्भिः राये आवर्तते वज्री नः विश्वा सुपथा कृणोतु॥

पदार्थः—(तम्) उस (मघवानम्) ऐश्वर्य वाले—(उग्रम्) ओजस्वी—(सत्रा भूरि श्रवांसि दधानम्) सच्चे—स्थिर बहुत यशकार्यों को धारण करने कराने वाले "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९] (अप्रतिष्कुतम्) अप्रतिस्खलित—न हिंसित

१. "रेभः स्तोतृनाम्" [निघं० ३.१६]।

होने वाले, न प्रतीकार करने योग्य (इन्द्रम्) परमात्मा को (जोहवीमि) पुनः पुनः आमन्त्रित करता हूँ। (च) और जो (मंहिष्ठः) ज्येष्ठ श्रेष्ठ (यज्ञियः) सङ्गमनीय (गीर्भिः) स्तुतियों से (राये) मोक्षैश्वर्य के लिये (आवर्तते) हमारी ओर प्रवृत्त होता है (वज्री) वह ओजस्वी (नः) हमारे लिये (विश्वा सुपथा कृणोतु) सब अच्छे मार्ग वाले आचरण कर दे।

भावार्थः—हम उस मोक्षैश्वर्य वाले प्रतापी स्थायी बहुत यशस्कर कार्यों को धारण करने वाले, न दबने वाले न प्रतीकार करने योग्य परमात्मा को पुनः पुनः आमन्त्रित करते रहें तथा जो ज्येष्ठ श्रेष्ठ समागम करने, हेतु स्तुतियों से मोक्षैश्वर्य के लिये हमारी ओर प्रवृत्त होता है, वह ओजस्वी परमात्मा हमारे लिये सब अच्छे मार्ग वाले आचरण कर दे॥ ४॥

ऋषिः—परुच्छेपः (अवसर अवसर पर परमात्मा का स्पर्श—अनुभव करने वाला तथा स्तुतिवचन में पर्व बनाने वाला उपासक)॥ देवताः—विश्वे देवाः (विशेष गुण वाले परमात्मस्वरूप) छन्दः—अत्यष्टिः॥

४६१. **अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्द्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे। अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः॥ ५॥**

पदपाठः— **अस्तु श्रौषट् पुरः अग्निम् धिया दधे आ नु त्यत् शर्द्धः दिव्यम् वृणीमहे इन्द्रवायू इन्द्र वायूइति वृणीमहे यत् ह क्राणा विवस्वते वि वस्वते नाभा सन्दाय सम् दाय नव्यसे अध प्र नूनम् उप यन्ति धीतयः देवान् अच्छ न धीतयः॥ ५॥**

अन्वयः—पुरः-अग्निं धिया दधे नु त्यत्-दिव्यं शर्द्धः-आवृणीमहे इन्द्रवायू वृणीमहे यत् उ विवस्वते क्राणा नाभा सन्दाय अध नव्यसे नूनम् धीतयः प्रयन्ति धीतयः-देवान्-अच्छ-न-उपयन्ति श्रौषट्-अस्तु॥

पदार्थः—(पुरः-अग्निं धिया दधे) सब से पूर्व मैं अग्रणायक परमात्मा को धारणा बुद्धि से धारण करूँ—करता हूँ (नु त्यत्-दिव्यं शर्द्धः-आवृणीमहे) शीघ्र सदा दिव्य बल को "शर्धः-बलनाम" [निघं० २.३] अपने अन्दर समा लें (इन्द्रवायू वृणीमहे) ऐश्वर्यवान् एवं गतिप्रद—जीवनप्रद परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें (यत्-उ) जिससे कि परमात्मा में (विवस्वते) विशेषरूप से वसने वाले मनुष्य के लिये "विवस्वतः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (क्राणा) उपकार

करने वाले (नाभा सन्दाय) हमारे आत्मा के अन्दर "मध्यं वै नाभिर्मध्यमभयम्" [श० १.२.२.२३] उस अपने बल को देकर—समर्पण कर (अध) अनन्तर (नव्यसे) अत्यन्त नवीन अध्यात्म जीवन प्राप्ति के लिये (नूनम्) निश्चय "नूनं निश्चये" [अव्ययार्थ निबन्धनम्] (धीतयः) कर्मप्रवृत्तियाँ ध्यान क्रियाएँ "धीतिभिः कर्मभिः" [निरु० २.२४] (प्रयन्ति) प्राप्त होती हैं (धीतयः-देवान्-अच्छ-न-उपयन्ति) वे ध्यान क्रियाएँ अग्नि, इन्द्र, वायु नाम वाले परमात्मरूपों को प्राप्त करने के लिए जैसे उनको पहुँचती हैं (श्रौषट्-अस्तु) बस हमारी ध्यान क्रियाओं का श्रुति सहन—सुनाई हो—हो जाती है।

भावार्थः—हम प्रथम अग्नि—अग्रणायक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को बुद्धि से—निदिध्यासन रीति से धारण करें—अध्यात्मबल अपने अन्दर समाविष्ट करें, फिर इन्द्र—ऐश्वर्यवान् एवं वायु—जीवनप्रद परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें, जो परमात्मा विशेषरूप से वसने वाले मनुष्य के लिये उपकार करने वाला है, वह आत्मा के अन्दर बल सम्यक् प्रदान करे, जिससे अत्यन्त नवीन आध्यात्मिक जीवन के लिये निश्चय ही ध्यान क्रियाएँ प्राप्त होती हैं, चालू होती हैं, वे अग्नि, इन्द्र, वायु, देवधर्मों को प्राप्त होते हैं, बस इस प्रकार हमारी ध्यान क्रियाओं की सुनाई हो जाती है ॥ ५ ॥

ऋषिः—एवया मरुत् ('एवं गमनशीलं याति प्राप्नोतीति एवया मरुत्' गमनशील को प्राप्त होने वाला—अति प्रगतिशील वासनाओं को मार देने वाला उपासक) ॥ देवताः—मरुतः (अज्ञान वासनाओं को मारने वाले परमात्मगुण) ॥ छन्दः—अतिजगती ॥

४६२. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्। प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥

पदपाठः— प्र वः महे मतयः यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजाः गिरि जाः एवयामरुत् एवया मरुत् प्र शर्द्धाय प्र यज्यवे सुखादये सु खादये तवसे भन्ददिष्टये भन्दत् इष्टये धुनिव्रताय धुनि व्रताय शवसे ॥ ६ ॥

अन्वयः—मरुत्वते एवयामरुत् प्रशर्द्धाय प्रयज्यवे सुखादये भन्ददिष्टये महे शवसे विष्णवे वः गिरिजाः मतयः प्रयन्तु ॥

पदार्थः—(मरुत्वते) अज्ञानवासनामारक गुण वाले—(एवयामरुत्) गतिशीलता से अज्ञानवासनामारक—"सुपां सुलुक्...." [अष्टा० ७.३.३०] चतुर्थ्या लुक् (प्रशर्द्धाय) प्रकृष्ट महान्—(प्रयज्यवे) प्रकृष्ट सृष्टियज्ञ करने वाले—

(सुखादये) सुष्ठुखाद—महान् भोजन वाले—(भन्ददिष्टये) अर्चना इष्टि जिसकी है ऐसे—"भदन्ते-अर्चनाकर्मा" [निघं० ३.१४] (महे शवसे) महान् प्रभावक—(विष्णवे) व्यापक परमात्मा के लिये (वः) हमारी 'पुरुषव्यत्ययः' (गिरिजाः) वाणी में होने वाली (मतयः) स्तुतियाँ (प्रयन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थः—अज्ञान वासनाओं को मार देने वाले गुणों व्याप्तियों वाले प्रकृष्ट महान् समष्टि के याजक सुभोग प्रदाता बलवान् अर्चना ही इष्टि है जिसकी ऐसे महान् व्यापक परमात्मा के लिये पापनाशनार्थ हमारी निरन्तर स्तुतियाँ प्राप्त होती रहें ॥ ६ ॥

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः (पापों में न झुकने वाला अवसर पर ज्ञानस्पर्श में अत्यन्त समर्थ)॥ देवताः—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥

४६३. **अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **अया रुचा हरिण्या पुनानः विश्वा द्वेषाᳲसि तरति सयुग्वभिः स युग्वभिः सूरः न सयुग्वभिः स युग्वभिः धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानः अरुषः हरिः विश्वा यत् रूपा परियासि परि यासि ऋक्व भिः सप्तास्येभिः सप्त आस्येभिः ऋक्वभिः ॥ ७ ॥**

अन्वयः—अनया रुचा हरिण्या पुनानः विश्वा द्वेषांसि सयुग्भिः तरति सूरः-न सयुग्भिः पृष्ठस्य धारा रोचते अरुषः-हरिः यत्-विश्वा रूपा-ऋक्वभिः परियासि सप्तास्येभिः-ऋक्वभिः ॥

पदार्थः—(अनया रुचा) इस रुचिर—(हरिण्या) आहरण करने वाली—हृदय में ले आने वाली स्तुति से (पुनानः) आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा "पवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (विश्वा द्वेषांसि) उपासक की सारी द्वेष भावनाओं को (सयुग्भिः) साथ युक्त शक्तियों से (तरति) तर जाता है—नष्ट करता है (सूरः-न सयुग्भिः) जैसे सूर्य अपनी रश्मियों से अन्धकार को संसार से हटाता है—नष्ट करता है (पृष्ठस्य धारा रोचते) तब परमात्मा से स्पृष्ट—स्पर्श—सम्पर्क को प्राप्त हुए "पृष्ठं स्पृशतेः" [निरु० ४.३] हृदयस्थ उपासक आत्मा की "आत्मा वै पृष्ठानि" [कौ० २५.१२] चेतनाशक्ति प्रकाशमान हो जाती है (अरुषः-

हरिः) प्रकाशमान दुःखापहरणकर्ता परमात्मा (यत्-विश्वा रूपा-ऋक्वभिः) यतः स्तुतियों से उपासक आत्मा के सब रूपों—रुचियों को "रूपं रोचतेः" [निरु० ३.१३] या निरूपणीय भावनाओं, आशाओं, कामनाओं को (परियासि) परिप्राप्त होता है—परिपूर्ण करता है (सप्तास्येभिः-ऋक्वभिः) जैसे ज्योतियों वाली "ज्योतिस्तदृक्" [जै० १.७६] सात आस्य—मुख—जिह्वा—ज्वालारूप किरणों से सब वस्तुओं को 'परिप्राप्त होता है।'

भावार्थः—हृदय में ले जाने वाली स्तुति से आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा उपासक की सारी द्वेषभावनाओं को अपनी व्यापिनी दिव्य शक्तियों से नष्ट कर देता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से संसार के अन्धकार को नष्ट कर देता है, परमात्मा से सम्पर्क—समागम को प्राप्त हुए उपासक आत्मा की चेतनशक्ति प्रकाशमान हो जाती है। प्रकाशमान परमात्मा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता स्तुतियों द्वारा उपासक की रुचिकर भावना कामनाओं आशाओं को परिप्राप्त होता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब वस्तुओं को परिप्राप्त होता है॥७॥

ऋषिः—नकुलः (सांसारिक कुल—वंश विकास में न पड़ा अपितु आत्मविकास का इच्छुक संयमी उपासक)॥ देवता—सविता (उत्पादक प्रेरक परमात्मा)॥ छन्दः—अति शक्वरी॥

४६४. **अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥८॥**

पदपाठः— **अभि त्यम् देवम् सवितारम् ओण्योः कविक्रतुम् कवि क्रतुम् अर्चामि सत्यसवम् सत्य सवम् रत्नधाम् रत्न धाम् अभि प्रियम् मतिम् ऊर्ध्वा यस्य अमतिः भाः अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिः हिरण्य पाणिः अमिमीत सुक्रतुः सु क्रतुः कृपा स्वा३ऽरिति॥८॥**

अन्वयः—ओण्योः सवितारम् अभि-अर्चामि त्यम् कविक्रतुम् सत्यसवम् रत्नधाम् प्रियम् मतिम् (अभि अर्चामि) यस्य अमतिः ऊर्ध्वा भाः आदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिः सुक्रतुः कृपा स्वः अमिमीत॥

पदार्थः—(ओण्योः) द्युलोक पृथिवीलोक के "ओण्यौ द्यावापृथिवी नाम" [निघं० ३०.३०] (सवितारम्) उत्पादक परमात्मा को (अभि-अर्चामि) श्रद्धा से अभिगत—प्राप्त होकर अर्चित करता हूँ तथा (त्यम्) उस—(कविक्रतुम्) क्रान्तप्रज्ञ—सर्वज्ञान समर्थ प्रज्ञावान् (सत्यसवम्) यथार्थ ऐश्वर्य वाले—सच्चे शासनकर्ता—(रत्नधाम्) रमणीय पदार्थों के धारक—(प्रियम्) अभीष्टदेव—

(मतिम्) मननशक्तिमान् परमात्मा को (अभि अर्चासि) अभ्यर्चित करता हूँ (यस्य) जिसकी (अमतिः) आत्ममयी स्वाधारमति ''अमतिरमामयी मतिरात्ममयी'' [निरु० ६.१२] (ऊर्ध्वा) ऊँची (भाः) ज्योतिरूप (आदिद्युतत्) दीप्त हो रही है, अतः उसके (सवीमनि) प्रसव—प्रशासन में सब जगत् प्रवर्तमान है, वह (हिरण्यपाणिः) सौवर्णहस्त दिव्य हाथों वाला—दिव्यग्रहणशक्ति वाला (सुक्रतुः) सुकर्मा—कुशलकर्मकर्ता (कृपा) स्वसामर्थ्य से (स्वः) सुखमय—मोक्षधाम को (अमिमीत) निर्माण करता है—सम्पन्न करता है।

भावार्थः—परमात्मा द्युलोक पृथिवीलोक का उत्पादक क्रान्तप्रज्ञ सर्वज्ञान समर्थ यथार्थ शासनकर्ता रमणीय पदार्थों का धारक अभीष्ट देव मननशक्ति-सम्पन्न है तथा उसकी स्वाधार मति ज्योतिमयी ऊँची है, दीप्त हो रही है, उसके शासन में सब जगत् प्रवर्तमान है, वह दिव्य ग्रहणशक्तिमान् कुशलकर्मकर्ता स्वसामर्थ्य से सुखमय मोक्षधाम को सम्पन्न करता है। उस परमात्मा का मैं रुचि से अर्चन करता हूँ॥ ८॥

ऋषिः—परुच्छेपः (परु—पर्व—अवसर अवसर पर परमात्मा का स्पर्श—अनुभव करने वाला, स्तुति कथन में भी पर्व बनाने वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः॥

४६५. **अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः॥ ९॥**

पदपाठः— **अग्निम् होतारम् मन्ये दास्वन्तम् वसोः सूनुम् सहसः जातवेदसम् जात वेदसम् विप्रम् वि प्रम् न जातवेदसम् जात वेदसम् यः ऊद्ध्वया स्वध्वरः सु अध्वरः देवः देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिम् वि भ्राष्टिम् अनु शुक्रशोचिषः शुक्र शोचिषः आजुह्वानस्य आ जुह्वानस्य सर्प्पिषः॥ ९॥**

अन्वयः—होतारं दास्वन्तम्-अग्निं मन्ये वसोः सहसः सुनुम् जातवेदसम् विप्रं न जातवेदसम् यः स्वध्वरः-देवः ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिम्-अनु शुक्रशोचिषः आजुह्वानस्य सर्पिषः॥

पदार्थः—(होतारं दास्वन्तम्-अग्निं मन्ये) आदान—ग्रहण स्वीकार करने वाले दान करने वाले अग्रणेता परमात्मा को मैं अर्चित करूँ—अर्चना में लाऊँ

"मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (वसोः सहसः सुनुम्) अध्यात्मयज्ञ के "यज्ञो वै वसुः" [श० १.७.१.२] साहस को उत्पन्न करने वाले (जातवेदसम्) सब उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को अर्चित करूँ। (विप्रं न जातवेदसम्) जात विद्या—कृतविद्या मेधावी की भाँति—जैसे कृतविद्या विद्वान् सत्कार योग्य होता है ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा तो महान् सत्कारणीय है। (यः) जो (स्वध्वरः-देवः) उत्तम अध्यात्मात्म यज्ञ का इष्टदेव (ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा) ऊँची सब दिव्यगुणों से युक्त सामर्थ्य से (घृतस्य विभ्राष्टिम्-अनु) अध्यात्म याजक के तेज की दीप्ति के अनुसार (शुक्रशोचिषः) शुभ तेज वाले समन्तरूप से (आजुह्वानस्य) स्वीकार करने वाले परमात्मा के (सर्पिषः) सर्पणशील आनन्द की प्राप्ति होती है।

मुझे स्वीकार करने वाले दाता अध्यात्मयज्ञ के साहस को उत्पन्न करने वाले उत्पन्नमात्र के ज्ञाता अग्रणेता परमात्मा की मैं अर्चना करता हूँ जो सत्करणीय कृतविद्या मेधावी के समान है। अपितु जो उत्तम अध्यात्मयज्ञ के इष्टदेव हैं उसकी ऊँची दिव्यगुण वाली सामर्थ्य से उपासक के अध्यात्मयज्ञ को तेज की दीप्ति के अनुरूप—अनुसार शुभ तेज वाले तथा समन्तरूप स्वीकार करने वाले परमात्मा के सर्पणशील आनन्द की प्राप्ति उपासक में होती है॥ ९॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अति शक्वरी॥

४६६. **तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्। यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः। भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम्॥ १०॥**

पदपाठः— **तव त्यत् नर्यम् नृतो अपः इन्द्र प्रथमम् पूर्व्यम् दिवि प्रवाच्यम् प्र वाच्यम् कृतम् यः देवस्य शवसा प्रारिणाः प्र अरिणाः असु रिणन् अपः भुवः विश्वम् अभि अदेवम् अ देवम् ओजसा विदेत् ऊर्ज्जम् शतक्रतुः शत क्रतुः विदेत् इषम्॥ १०॥**

अन्वयः—इन्द्र तव नृतः त्यत्-नर्यम्-अपः प्रथमं पूर्व्यम् प्रवाच्यं कृतम् यः देवस्य शवसा असु प्रारिणाः अपः-रिणन् विश्वम्-अदेवम्-ओजसा-अभिभुवः शतक्रतुः ऊर्जं विदेत् इषं विदेत्॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (तव नृतः) तुझ नेता को "नृ नये" [भ्वादि० क्रयादि०] 'छान्दसं ह्रस्वं मत्त्वा क्विपि तुक् षष्ठ्याम्' (त्यत्-नर्यम्-अपः) वह देवजन के हितकर कर्म (प्रथमं पूर्व्यम्) प्रथित पुरातन है जो दिवि "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९३.३] अमृत मोक्षधाम में देवजनों को अधिकार

दिया है (प्रवाच्यं कृतम्) यह प्रशंसनीय किया है (यः) 'यस्त्वम्' जो तू (देवस्य) देवजन को (शवसा) अपने बल से (असु) प्राण को (प्रारिणाः) प्रकृष्टरूप में चलाता है (अपः-रिणन्) अध्यात्मकर्म कराता हुआ (विश्वम्-अदेवम्-ओजसा-अभिभुवः) समस्त अदेवभाव को बल से दबा दिया (शतक्रतुः) तुझ असंख्य ज्ञानकर्मवान् परमात्मा ने (ऊर्जं विदेत्) बल प्राप्त करा दिया (इषं विदेत्) कमनीय अभीष्ट अमृत मोक्ष प्राप्त करा दिया।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तुझ नेता का वह देवजनहितकर कर्म प्रसिद्ध पुरातन अमृत मोक्षधाम में देवजनों को अधिकार दिया जाना प्रशंसनीय है, जो तू देवजन के प्राण अपने बल से प्रकृष्टरूप में चलाता है। अध्यात्मकर्म कराता हुआ सारे अदेवभाव को बल से दबा देता है। असंख्य कर्मों वाला परमात्मा अध्यात्मबल प्राप्त करा देता और उपासक में कमनीय अभीष्ट अमृत मोक्ष दिलाता है॥ १०॥

सामवेद का ऐन्द्र पर्व या काण्ड समाप्त

पवमान पर्व, काण्ड

पञ्चम अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं अपितु मोक्षधाम को चाहने वाला उपासक जन)॥ देवताः—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

४६७. **उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रं शर्म महि श्रवः॥ १॥**

पदपाठः— **उच्चा उत् चा ते जातम् अन्धसः दिवि सत् भूमि आ ददे उग्रम् शर्म्म महि श्रवः॥ १॥**

अन्वयः—ते-अन्धसः जातम् उच्चा दिवि सत् भूमि-आददे उग्रं शर्म महि श्रवः॥

पदार्थः—(ते-अन्धसः) तुझ आध्यानीय—उपासनीय पवमान सोम—आनन्दधारा में आते हुए शान्त परमात्मा का (जातम्) प्रसिद्धरूप (उच्चा) ऊँचा—उत्कृष्ट है, जो (दिवि सत्) अमृत मोक्षधाम में होते हुए को ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] (भूमि-आददे) भूमि—पृथिवी पर जन्मा हुआ पार्थिव शरीर में आया हुआ ''ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति'' [निरु० २.५] ''सुपां सुलुक्.....'' [अष्टा० ७.३.३९] 'सप्तम्याश्च लुक्' में शरीरबन्धन से मुक्त हो मोक्षधाम में पहुँच कर ग्रहण करता हूँ प्राप्त कर लेता हूँ (उग्रं शर्म महि श्रवः) जो कि उच्च सुख बहुत प्रशंसनीय है।

भावार्थः—मोक्ष में परमात्मा का ऊँचा स्वरूप साक्षात् होने वाला है। उसकी आकांक्षा उपासक में होनी चाहिए, उपासक की प्रवृत्ति या रुचि पृथिवीलोक के भोगों में नहीं रहती वह तो ऊँचे सुख और प्रशंसनीय दर्शनामृत की चाह रखता है॥ १॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण शान्त परमात्मा)॥

४६८. **स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥ २॥**

पदपाठः— **स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया इन्द्राय पातवे सुतः॥ २॥**

अन्वयः—सोम सुतः स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व इन्द्राय पातवे ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (सुतः) ध्यान द्वारा निष्पन्न किया—ध्याया हुआ (स्वादिष्ठया) अति स्वाद वाली—(मदिष्ठया) अति हर्ष देने वाली—(धारया) धारणा से (पवस्व) प्राप्त हो (इन्द्राय पातवे) उपासक आत्मा के पान—आनन्द धारण करने के लिये।

भावार्थः—उपासक के पान—अन्दर धारण करने के लिये ध्यान द्वारा निष्पन्न या ध्याया हुआ परमात्मा अतिस्वाद वाली अतिहर्ष वाली धारणा से प्राप्त होता है॥ २ ॥

ऋषिः—भृगुर्वारुणिः (वरणव्यवहार कुशल तेजस्वी उपासक)॥

४६९. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः। विश्वा दधान ओजसा॥ ३ ॥

पदपाठः— वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः विश्वा दधानः ओजसा॥ ३ ॥

अन्वयः—वृषा मत्सरः मरुत्वते च धारया पवस्व ओजसा विश्वा दधानः ॥

पदार्थः—(वृषा मत्सरः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू आनन्दवर्षक और हर्षालु हुआ (मरुत्वते च) प्राण वाले उपासक के लिये "प्राणो वै मरुतः" [ऐ० ३.१६] (धारया पवस्व) धारणा से प्राप्त हो (ओजसा विश्वा दधानः) अपने ओज से, प्रताप से सब दिव्यगुणों और सुखों को धारण कराता हुआ आ।

भावार्थः—आनन्द और हर्ष की वृष्टि करने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा प्राणवान् उपासक के लिये आनन्दधारा में आता है तथा उपासक के अन्दर अपने प्रताप से आनन्दित कर देता है॥ ३ ॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु अमृतरूप मोक्षधाम का चाहने वाला उपासक)॥

४७०. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा॥ ४ ॥

पदपाठः— यः ते मदः वरेण्यः तेन पवस्व अन्धसा देवावीः देव अवीः अघशꣳसहा अघशꣳस हा॥ ४ ॥

अन्वयः—ते यः-वरेण्यः-मदः देवावीः अघशंसहा तेन-अन्धसा पवस्व ॥

पदार्थः—(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरा (यः-वरेण्यः-मदः) जो हर्ष—आनन्दोल्लास वरणीय—धारण करने योग्य (देवावीः) देवधर्मों का

रक्षक है और (अघशंसहा) पाप प्रशंसक विचारों का नाशक है (तेन–अन्धसा) उस आध्यानीय—चिन्तनीय—पुनः पुनः निदिध्यासन में लाने योग्य के द्वारा (पवस्व) हमारे हृदय में प्रवाहित हो—प्राप्त हो।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे सङ्ग से जो वरणीय हर्षोल्लास प्राप्त हो वह देवधर्मों दिव्यगुणों का रक्षक वर्धक है तथा पाप प्रशंसक विचारों का नाशक है, उस ऐसे तुझको पुनः पुनः ध्यान में लावें॥४॥

ऋषिः—त्रितः (तीन को लेकर उपासना करने वाला उपासक)॥

४७१. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्॥५॥

पदपाठः— तिस्रः वाचः उत् ईरते गावः मिमन्ति धेनवः हरिः एति कनिक्रदत्॥५॥

अन्वयः—तिस्रः–वाचः उदीरते धेनवः–गावः–मिमन्ति कनिक्रदत् हरिः–एति॥

पदार्थः—(तिस्रः–वाचः) तीन वाणियाँ 'अ, उ, म्' 'ओ३म्' में वर्तमान जब (उदीरते) उच्चरित होती हैं (धेनवः–गावः–मिमन्ति) दूध देने वाली गौओं की भाँति मीठी बोली बोलती हैं (कनिक्रदत् हरिः–एति) कल्याण करता हुआ मधुर ध्वनि करता हुआ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है "भद्रः सोमः पवमानां वृषा हरिः" [काठ०]।

भावार्थः—उपासक के द्वारा 'अ, उ, म्' 'ओ३म्' तीन मात्रासमूह या तीनों मात्राएँ उच्चरित हुई दुधारु गौओं के रूप में शब्द करती हैं तो कल्याणकर शान्त परमात्मा मधुर ध्वनि करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है॥५॥

ऋषिः—कश्यपः (शासन में आने योग्य मन से शान्तस्वरूप परमात्मा के आनन्दरस का पानकर्ता उपासक)॥

४७२. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। अर्कस्य योनिमासदम्॥६॥

पदपाठः— इन्द्राय इन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः अर्कस्य योनिम् आसदम् आ सदम्॥६॥

अन्वयः—इन्दो मधुमत्तमः मरुत्वते–इन्द्राय पवस्व अर्कस्य योनिम् आसदम्॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आर्द्रभाव—कृपाभाव से पूर्ण सोम—आनन्दस्वरूप

परमात्मन्! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुमान्—अत्यन्त मधुर आनन्द से पूर्ण हुआ (मरुत्वते-इन्द्राय पवस्व) प्राण वाले आत्मा—उपासक के लिये प्राप्त हो, जो कि (अर्कस्य योनिम्) अर्चन—स्तवन के गृह—स्तुतिसदन में "अर्कैरर्चनीयैः स्तोमैः" [निरु० ६.२३] "योनिः-गृहम्" [निघं० ३.४] (आसदम्) समन्तरूप से बैठने को।

भावार्थः—आर्द्ररसपूर्ण अत्यन्त मधुर एवं आनन्दस्वरूप परमात्मन्! तू मुझ प्राणधारी आत्मा के लिये आनन्दधारारूप में प्राप्त हो, जो मैं अर्चनगृह—स्तुतिसदन—हृदय में बैठा हुआ तेरा अर्चन स्तवन कर रहा हूँ कारण कि मैं प्राणधारी हूँ। प्राण स्थान हृदय में ही तेरा स्तवन कर सकता हूँ। परमात्मन् तू तो अनन्त है, मैं एकदेशी हूँ। परन्तु तू मेरे हृदयदेश में भी तो है, अतः मेरे अन्दर अन्तर्यामिरूप से प्राप्त होकर मेरे स्तवन को स्वीकार कर॥ ६॥

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित—साक्षात् परमात्माग्नि वाला[1] उपासक)॥

४७३. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः। श्येनो न योनिमासदत्॥ ७॥

पदपाठः— असावि अꣳशुः मदाय अप्सु दक्षः गिरिष्ठाः गिरि स्थाः श्येनः न योनिम् आ असदत्॥ ७॥

अन्वयः—अंशुः अप्सु दक्षः गिरिष्ठाः असावि श्येनः-न योनिम्-आसदत्॥

पदार्थः—(अंशुः) सोम—प्रजापति परमात्मा जो अध्यात्मयाजी के लिये शम्—कल्याणकारी होता है "प्रजापतिर्वा एष यदंशुः" [श० ४.६.१.१] "अंशुः-अननाय शं भवतीति" [निरु० २.५] (अप्सु दक्षः) प्राणों में प्रगतिप्रद "आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] (गिरिष्ठाः) स्तुति के साधन सामगान में स्थित—स्तुतिगान से साक्षात् होने वाला "तेन गारेण साम्ना गरान् गीर्णानपाघ्नत त एवेमे गिरयोऽभवन्" [जै० १.२२३] (असावि) हृदय में प्रकट किया। वह आनन्दधारा में आने वाला परमात्मा (श्येनः-न योनिम्-आसदत्) प्रशंसनीय गति वाले घोड़े के समान—"श्येनः शंसनीयं गच्छति" [निरु० २.२४] "श्येनः-अश्वः" [निघं० १.१४] अपने गृह में प्राप्त हो जाता है—हृदयसदन में प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—जीवन को शान्ति देने वाला प्रजा स्वामी सोम उत्पादक परमात्मा आनन्दप्रद प्राणों में प्रगतिप्रद स्तुति में स्थित स्तुतियों से साक्षात् किया हुआ सुन्दर गति वाले घोड़े की भाँति हृदयसदन में आ बैठता है—आ जाता है॥ ७॥

---

१. "जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा" [निरु० ७.३५]।

ऋषिः—दृढच्युत आगस्त्यः (पाप के त्याग करने वालों में कुशल कठिन पापियों को च्युत करने वाला उपासक)॥

४७४. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे। मरुद्भ्यो वायवे मदः॥ ८॥

पदपाठः— पवस्व दक्षसाधनः दक्ष साधनः देवेभ्यः पीतये हरे मरुद्भ्यः वायवे मदः॥ ८॥

अन्वयः—हरे दक्षसाधनः मदः देवेभ्यः मरुद्भ्यः वा आयवे पीतये पवस्व॥

पदार्थः—(हरे) हे दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम परमात्मन्! तू (दक्षसाधनः) स्वबल साधन वाला है, तुझे अन्य किसी के बल की अपेक्षा नहीं, ऐसा होता हुआ (मदः) हर्षकर हो (देवेभ्यः) जीवन्मुक्तों के लिये (मरुद्भ्यः) मुमुक्षु उपासकों के लिये "मरुतो देवविशः" [श० २.५.१.१२] (वा) और (आयवे) साधारण उपासक जन के लिये "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २.३] (पीतये) तृप्ति हो इसलिये (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त हो।

भावार्थः—दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता स्वबल साधन वाला हर्षप्रद परमात्मा जीवन्मुक्तों मुमुक्षुओं साधारण उपासकजनों के लिये आनन्दधारा में प्राप्त होता है॥ ८॥

ऋषिः—कश्यपोऽसितः, देवलो वा (कश्यप—पश्यक सर्वज्ञ परमात्मा से प्रकाशित कृष्ण अन्तःकरण वाला देवधर्म को लेने वाला उपासक)॥

४७५. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्। मदेषु सर्वधा असि॥ ९॥

पदपाठः— परि स्वानः गिरिष्ठाः गिरि स्थाः पवित्रे सोमः अक्षरत् मदेषु सर्वधाः सर्व धाः असि॥ ९॥

अन्वयः—गिरिष्ठाः स्वानः सोमः पवित्रे परि-अक्षरत् मदेषु सर्वधा-असि॥

पदार्थः—(गिरिष्ठाः) वाणी—स्तुति में स्थित (स्वानः) निष्पादित (सोमः) उत्पादक प्रेरक परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (परि-अक्षरत्) सब ओर से झरता है (मदेषु) अर्चना करने योग्यों में "मदति-अर्चनाकर्मा" [निघं० ३.१४] (सर्वधा-असि) सबका धारक है—सब अर्चनीय दिव्यगुणों को धारण करने वाला है।

भावार्थः—उत्पादक प्रेरक परमात्मा पवित्र अन्तःकरण में सब ओर आनन्दधारारूप से झरता है, अर्चनाओं में सबके गुणों का धारक-सर्वश्रेष्ठ गुण वाला है॥ ९॥

ऋषिः—कश्यपोऽसितः, देवलोवा (कश्यप—पश्यक सर्वज्ञ परमात्मा से प्रकाशित कृष्ण अन्तःकरण वाला देवधर्म को लेने वाला उपासक)॥

४७६. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। स्वानैर्याति कविक्रतुः॥ १०॥

पदपाठः— परि प्रिया दिवः कविः वेयांꣳसि नप्त्योः हितः स्वानैः याति कविक्रतुः कवि क्रतुः॥ १०॥

अन्वयः—कविः कविक्रतुः नप्तयोः-हित दिवः प्रिया वयांसि स्वानैः परियाति॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (कविक्रतुः) मेधावी उपासकों में क्रियाशील (नप्त्योः-हित) द्यावापृथिवीमय विश्व में या द्युलोक से पृथिवीलोक तक में ''नप्त्यौ द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०] निहित—व्याप्त या वर्तमान उत्पादक प्रेरक शान्त रसरूप परमात्मा (दिवः) अमृतधाम—मोक्षधाम के (प्रिया वयांसि) प्रिय पक्षियो! मोक्ष की उड़ान भरने वाले पक्षियो या पक्षियों के समान (स्वानैः) 'स्वनान्' 'विभक्ति व्यत्ययः' अपने अन्दर निष्पन्न करने वाले उपासकों को (परियाति) परिप्राप्त होता है।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ परमात्मा मेधावी उपासकों को क्रियाशील करने वाला, द्युलोक से पृथिवीलोक तक समस्त विश्व में व्यापक वर्तमान है। अमृतधाम मोक्ष की ओर उड़ान भरने के लिए पक्षी बन या पक्षी के समान हृदय में साक्षात् करने वाले उपासक को परिप्राप्त होता है॥ १०॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला उपासक)॥

४७७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्। सुता विदथे अक्रमुः॥ १॥

पदपाठः— प्र सोमासः मदच्युतः मद च्युतः श्रवसे नः मघोनाम् सुताः विदथे अक्रमुः॥ १॥

अन्वयः—मदच्युतः सुताः सोमासः नः-मघोनाम् श्रवशे विदथे प्राक्रमुः॥

पदार्थः—(मदच्युतः) हर्ष चुवाने—वर्षाने वाला (सुताः) उपासित (सोमासः) शान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (नः-मघोनाम्) हम अध्यात्मयज्ञ वाले उपासकों के ''यज्ञेन मघवान् भवति'' [तै० सं० ४.४.८.१] (श्रवसे) श्रवणीय

यश के लिये जीवन्मुक्तप्रसिद्ध के लिये "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९] (विदथे प्राक्रमुः) आनन्दानुभव स्थान—मोक्ष—में प्राप्त कराते हैं।

भावार्थः—उपासित हुआ—ध्याया हुआ आनन्दवर्षक परमात्मा हम अध्यात्मयज्ञ करने वाले उपासकों के श्रवणीय यश प्रसिद्धि को मुक्त हो आनन्दानुभव स्थान मोक्ष में प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

ऋषिः—त्रितः (मेधा से तीर्णतम)॥

४७८. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः। वनानि महिषाइव॥ २ ॥

पदपाठः— प्र सोमासः विपश्चितः विपः चितः अपः नयन्त ऊर्म्मयः वनानि महिषाः इव ॥ २ ॥

अन्वयः—विपश्चितः सोमासः अपः-ऊर्मयः प्र-नयन्त महिषाः-वनानि-इव॥

पदार्थः—(विपश्चितः सोमासः) सर्वज्ञशान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा (अपः-ऊर्मयः प्र-नयन्त) 'अपः-अपाम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' जलों की लहरें बहने वाली वस्तुओं को तट की ओर जैसे ले जाती हैं 'लुप्तोमावाचकालङ्कारः' ऐसे हम उपासकों को अपने मोक्षधाम की ओर ले जाता है (महिषाः-वनानि-इव) अथवा महान् अग्नि पिण्ड "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३.३] "अग्निर्वै महिषः" [श० ७.३.१.२३] जलों को जैसे ऊपर ले जाता है, भापरूप सूक्ष्म बनाकर "वनम्-उदकनाम" [निघं० १.१२] ऐसे उपासकों को अमृतरूप बनाकर मोक्ष में ले जाता है।

भावार्थः—सर्वज्ञ परमात्मा उपासकों को अपने अमृतधाम की ओर ले जाता है जैसे जल नदियों की तरङ्गें वस्तुओं को तट की ओर पहुँचाती हैं या जैसे अग्निपिण्ड सूर्य जलों को सूक्ष्मकर उन्नत करता है ऐसे परमात्मा उपासकों को अमृत बना उन्नत करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु मोक्ष का इच्छुक उपासक)॥

४७९. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि॥ ३ ॥

पदपाठः— पवस्व इन्दो वृषा सुतः कृधी नः यशसः जने विश्वाः अप द्विषः जहि ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्दो वृषा सुतः नः जने यशसः कृधि विश्वाः-द्विषः अपजहि॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आर्द्र—रसीले परमात्मन्! तू (वृषा) सुखवर्षक (सुतः) हृदय में साक्षात् हुआ (नः) हमें (जने) इस मानव जन्म में (यशसः कृधि) यशस्वी—जीवन्मुक्त कर दे—बना दे (विश्वाः-द्विषः) सारी द्वेषभावनाओं को—मोक्ष के विरोधी विचारों को (अपजहि) पृथक् कर दे।

भावार्थः—हे रसीले परमात्मन्! तू सुखवर्षक हृदय में साक्षात् हुआ इस मानव जन्म में हमें यशस्वी मोक्षभागी बना दे विरोधी भावनाओं को दूर कर दे॥ ३॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक)॥

४८०. **वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वर्दृशम्॥ ४॥**

पदपाठः— **वृषा हि असि भानुना द्युमन्तम् त्वा हवामहे पवमान स्वर्दृशम् स्वः दृशम्॥ ४॥**

अन्वयः—पवमान वृषा हि-असि भानुना द्युमन्तम् त्वा स्वर्दृशम् हवामहे॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (वृषा हि-असि) सुखवर्षक ही है (भानुना द्युमन्तम्) तेज से तेजस्वी—(त्वा स्वर्दृशम्) तुझ नितान्त सुखदर्शक को (हवामहे) बुलाते हैं।

भावार्थः—हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू नितान्त सुखों की वर्षा करने वाला है। अपने तेज से तेजस्वी सुखदर्शक तुझ को हम आमन्त्रित करते हैं॥ ४॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा[1]—सावधान उपासक)॥

४८१. **इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः। सृजदश्वं रथीरिव॥ ५॥**

पदपाठः— **इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कविनाम् मतिः सृजत् अश्वम् रथीः इव॥ ५॥**

अन्वयः—चेतनः प्रियः कवीनां मतिः इन्दुः रथीः-इव-अश्वम् असृजत्॥

पदार्थः—(चेतनः) चेताने वाला (प्रियः) स्नेही (कवीनां मतिः) मेधावी उपासकों का स्तुत्य (इन्दुः) परमात्मा (रथीः-इव-अश्वम्) रथ स्वामी जैसे घोड़े को (असृजत्) अच्छा बनाता है—साधता है, ऐसे मुझ उपासक को अच्छा बना

---

१. "कश्यपः पश्यको भवति" [तै० आ० १.८.८]।

या उपासना मार्ग पर चला।

भावार्थः—चेताने वाला, स्नेही, मेधावी उपासकों का स्तुति योग्य परमात्मा उपासक को जैसे रथ स्वामी घोड़े को साधता है, चलाता है, ऐसे साधता—सिद्ध बनाता, उपासना मार्ग पर चलाता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा—सावधान उपासक) ॥

४८२. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥

पदपाठः— असृक्षत प्र वाजिनः गव्या सोमासः अश्वया शुक्रासः वीरया आशवः ॥ ६ ॥

अन्वयः—वाजिनः शुक्रासः आशवः सोमासः गव्या वीरया प्रासृक्षत ॥

पदार्थः—(वाजिनः) बलवान्—(शुक्रासः) शुभ्र—(आशवः) व्यापक—व्यापने वाले—(सोमासः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' (गव्या) हमारी इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा से "अश्वो वै बृहद् वयः" [श० ३.२.६.१५] (वीरया) प्राणों की इच्छा से "प्राणा वै दशवीराः" [श० १२.८.१.२२] (प्रासृक्षत) हमें प्राप्त हो "सृक्ष गतौ" [भ्वादि०]।

भावार्थः—हे बलवान् शुभ्र विभु आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू हमारी इन्द्रियों की साधने की इच्छा, से हमारी बड़ी अवस्था को सम्पन्न करने की इच्छा से, हमारे प्राणों के साधने की इच्छा से, मुझ उपासक को प्राप्त हो ॥ ६ ॥

ऋषिः—निध्रुविः काश्यपः (ज्ञानी आचार्य का शिष्य परमात्मा में निरन्तर ध्रुव—स्थिर रहने वाला उपासक) ॥

४८३. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥

पदपाठः— पवस्व देवः आयुषक् आयु सक् इन्द्रम् गच्छतु ते मदः वायुम् आ रोह धर्म्मणा ॥ ७ ॥

अन्वयः—देव पवस्व ते मदः इन्द्रम् आयुषक्-गच्छतु धर्मणा वायुम्-आरोह ॥

पदार्थः—(देव) हे आनन्दधारा में आने वाले शान्त परमात्मन्! तू (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त होता रहे (ते मदः) तेरा हर्षप्रद स्वरूप (इन्द्रम्) जीवात्मा को (आयुषक्-गच्छतु) आनुषक् 'वर्णव्यत्ययः' निरन्तर या अनुषक्त अनुकूल होकर

या आयु का साथी बनकर प्राप्त हो (धर्मणा) अपने व्यापन धर्म से (वायुम्-आरोह) उपासक के आयु को प्राप्त कर "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २.४.३]।

भावार्थः—परमात्मदेव! तू आनन्दधारा में बहता हुआ आ। तेरा हर्षप्रद स्वरूप उपासक आत्मा को निरन्तर या अनुकूलरूप में या जीवन का साथी बनकर अपने व्यापन धर्म से उसके आयु को आगे बढ़ा।

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु मोक्ष का इच्छुक)॥

४८४. **पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम्। ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥ ८॥**

पदपाठः— **पवमानः अजीजनत् दिवः चित्रम् न तन्यतुम् ज्योतिः वैश्वानरम् वैश्व नरम् बृहत्॥ ८॥**

अन्वयः—पवमानः बृहत्-वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत् दिवः चित्रं तन्यतुं न॥

पदार्थः—(पवमानः) आनन्दधारा में आते हुए शान्त परमात्मा ने (बृहत्-वैश्वानरं ज्योतिः) उपासक के अन्दर उसके महान् वैश्वानर आत्म-ज्योति को "आत्मा वैश्वानरः" [तै० स० ५.६.६.३] (अजीजनत्) प्रत्यक्ष कराया (दिवः) आकाश मण्डल के (चित्रं तन्यतुं न) अद्भुत वाणी का विस्तार करने वाली विद्युत् की भाँति को "तन्यतुस्तनित्री वाचः" [निरु० १२.३१]।

भावार्थः—आनन्दधारा में आता हुआ शान्त परमात्मा उपासक के अन्दर उसकी आत्मज्योति को साक्षात् कराता है उसे अपने आत्मा का प्रत्यक्ष कराता है जैसे योगदर्शन में कहा है "तत श्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" [योग० १.२९] मेघमण्डल की विचित्र विद्युत् ज्योति के समान॥ ८॥

ऋषिः—असितः काश्यपः (ज्ञानवान् से प्रकाशित अन्तःकरण वाला उपासक)॥

४८५. **परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा। मधो अर्षन्ति धारया॥ ९॥**

पदपाठः— **परि स्वानासः इन्दवः मदाय बर्हणा गिरा मधो अर्षन्ति धारया॥ ९॥**

अन्वयः—स्वानासः-इन्दवः बर्हणा गिरा मदाय मधोः-परि-अर्षन्ति॥

पदार्थः—(स्वानासः-इन्दवः) साक्षात् निष्पन्न हुआ शान्त परमात्मा (बर्हणा

गिरा) महती स्तुति से (मदाय) हर्ष के लिए (मधोः-परि-अर्षति) मधुरूप धारा से परिप्राप्त होत है। योगाभ्यास द्वारा साक्षात् किए आनन्दधारा से शान्त परमात्मा बड़ी स्तुति से हर्ष के लिए उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—असितः काश्यपः (ज्ञानवान् से प्रकाशित अन्तःकरण वाला उपासक)॥

४८६. परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः। कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम्॥ १०॥

पदपाठः— परि प्र असिष्यदत् कविः सिन्धोः ऊर्म्मौ अधि श्रितः कारुम् बिभ्रत् पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम्॥ १०॥

अन्वयः—कारुं पुरुस्पृहं बिभ्रत् कविः सिन्धोः ऊर्मौ-अधिश्रितः परि-प्रासिष्यदत्॥

पदार्थः—(कारुं पुरुस्पृहं विभ्रत्) बहुत इच्छुक स्तोता को "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] पुष्ट करने के हेतु (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वत्र सोम शान्त परमात्मा (सिन्धोः) स्यन्दमान हृदय के (ऊर्मौ-अधिश्रितः) तरङ्ग पर आश्रित हुआ उपासना द्वारा (परि-प्रासिष्यदत्) मानो उपासक के अन्दर नस नस में फैल रहा है।

भावार्थः—सर्वत्र सोम परमात्मा उपासक को पुष्ट करने के हेतु उसके निरन्तर स्यन्दनशील हृदय की लहर पर—गति पर उपासना द्वारा आश्रित हुआ मानो समस्त शरीर में बह रहा है, व्याप रहा है—नस नस में फैल रहा है ॥ १० ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं दिव्—अमृत धाम मोक्ष को चाहने वाला)॥

४८७. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्। इन्दुं देवा अयासिषुः॥ १॥

पदपाठः— उप उ सु जातम् अप्तुरम् गोभिः भङ्गम् परिष्कृतम् परि कृतम् इन्दुम् देवाः अयासिषुः॥ १॥

अन्वयः—गोभिः सुजातम्-अप्तुरम् भङ्गम् परिष्कृतम् इन्दुम् देवाः-उ-उपायासिषुः॥

पदार्थः—(गोभिः) स्तुतियों से (सुजातम्-अप्तुरम्) सम्यक् साक्षात् व्याप्तिमान् "अप्तुरमिति ह्यस्या आप्त्याः श्रेयांसम्" [जै० १.९०] (भङ्गम्) पापभञ्जक (परिष्कृतम्) आत्मा के परिष्कार करने वाले (इन्दुम्) आर्द्र आनन्दरस

भरे परमात्मा को (देवा:-उ-उपायासिषु:) मुमुक्षु उपासक प्राप्त होते हैं।

भावार्थ:—मुमुक्षु उपासकजन स्तुतियों द्वारा पापनाशक तथा आत्मा का परिष्कार—अध्यात्म संस्कार करने वाले व्याप्तिमान् आनन्दरस भरे परमात्मा को हृदय में सम्यक् साक्षात् करते हैं ॥ १ ॥

ऋषि:—बृहन्मति: (महती स्तुति वाला उपासक)॥

४८८. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणि:। शुम्भन्ति विप्रं धीतिभि: ॥ २ ॥

पदपाठ:— पुनान: अक्रमीत् अभि विश्वा: मृध: विचर्षणि: वि चर्षणि: शुम्भन्ति विप्रम् वि प्रम् धीतिभि: ॥ २ ॥

अन्वय:—विचर्षणि: पुनान: विश्वा:-मृध: अभि-अक्रमीत् धीतिभि: विप्रं शुम्भन्ति ॥

पदार्थ:—(विचर्षणि:) द्रष्टा—सर्वद्रष्टा "विचर्षणि: पश्यतिकर्मसु" [निघं० ३.१२] (पुनान:) उपासक को पवित्र करता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (विश्वा:-मृध:) समस्त पापभावनाओं को "पाप्मा वै मृध:" [श० ६.३.३.८] (अभि-अक्रमीत्) दबा देता है, नष्ट कर देता है (धीतिभि:) ध्यान क्रियाओं से (विप्रं शुम्भन्ति) विशेष कामनापूरक परमात्मा को पूजते हैं।

भावार्थ:—उपासक को पवित्र करता हुआ सर्वद्रष्टा परमात्मा उपासक की समस्त पाप भावनाओं को दूर करता है, उस कामनापूरक परमात्मा को उपासक ध्यान क्रियाओं से पूजते हैं ॥ २ ॥

ऋषि:—जमदग्नि: (प्रज्वलित—प्रकाशित—प्रत्यक्ष कर लिया परमात्मा अग्नि जिसने ऐसा उपासक)॥

४८९. आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रिय:। इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

पदपाठ:— आविशन् आ विशन् कलशम् सुत: विश्वा: अर्षन् अभि श्रिय: इन्दु: इन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

अन्वय:—सुत: इन्दु: कलशम्-आविशन् विश्वा: श्रिय: इन्द्राय अभि-अर्षति धीयते ॥

पदार्थ:—(सुत:) अभिनिष्पन्न हुआ (इन्दु:) आर्द्र—आनन्दरसभरा शान्तस्वरूप परमात्मा (कलशम्-आविशन्) हृदयकलश को उपासक के हृदय को प्राप्त हुआ (विश्वा: श्रिय:) सारी सम्पदाओं को (इन्द्राय) उपासक आत्मा के

लिये (अभि-अर्षति) प्रेरित करता है (धीयते) जबकि उपासक के द्वारा वह ध्याया जाता है।

भावार्थः—उपासना द्वारा निष्पन्न शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय में जब ध्याया जाता है तो वह समस्त अध्यात्म सम्पदाओं को प्रेरित करता हुआ उपासक को साक्षात् प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—प्रभूवसुः (प्रधान शक्तियों में वसने वाला ज्ञान करने में समर्थ उपासक)॥

४९०. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः। कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

पदपाठः— असर्जि रथ्यः यथा पवित्रे चम्वोः सुतः कार्ष्मन् वाजी नि अक्रमीत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यथा रथ्यः असर्जि चम्वोः कार्ष्मन् पवित्रे सुतः वाजी-नि-अक्रमीत् ॥

पदार्थः—(यथा रथ्यः) जैसे रथ में जोड़ने योग्य घोड़ा (असर्जि) साधा जाता है वैसे (चम्वोः) ज्ञान और कर्म में या वैराग्य और अभ्यास में सिद्ध हुआ परमात्मा (कार्ष्मन् पवित्रे सुतः) आकर्षण स्थान हृदय में साक्षात् वह (वाजी-नि-अक्रमीत्) अमृत अन्न भोग वाला परमात्मा प्राप्त होता है।

भावार्थः—जैसे रथ में जोड़ने योग्य घोड़ा उपयुक्त साधनों से साधा जाता है ऐसे अमृत अन्न भोग वाला परमात्मा ज्ञान और कर्म में या वैराग्य और अभ्यास में सिद्ध हुआ आकर्षण स्थान हृदय में साक्षात् प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः (सङ्गमनीय परमात्मा में गमन करने वाला उपासक)॥

४९१. प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः। घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— प्र यत् गावः न भूर्णयः त्वेषाः अयासः अक्रमुः घ्नन्तः कृष्णाम् अप त्वचम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—कृष्णां त्वचम् अपघ्नन्तः अयासः यत् प्र-अक्रमुः भूर्णयः-त्वेषाः-गावः-न ॥

पदार्थः—(कृष्णां त्वचम्) पापवासना को "पाप्मा वै कृष्णा त्वक्" [जै० ३.६०] (अपघ्नन्तः) नष्ट करते हुए (अयासः) सोम परमात्मा की आनन्द धाराएँ (यत् प्र-अक्रमुः) जब उपासक को प्रक्रान्त करती हैं—प्राप्त होती हैं (भूर्णयः-

त्वेषाः-गावः-न) भरण-पोषण करने वाली दीप्तियाँ—सूर्यरश्मियाँ जैसे अन्धकार को नष्ट करती हुई आती हैं।

भावार्थः—पापवासनाओं को नष्ट करती हुईं परमात्मा की आनन्द धाराएँ उपासक को प्राप्त होती हैं। जैसे पुष्टि करने वाली सूर्य-किरणें अन्धकार को नष्ट करती हुई आती हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त ध्रुव स्थिर रहने वाला उपासक) ॥

४९२. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः। नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

पदपाठः— अपघ्नन् अप घ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् क्रतु वित् सोम मत्सरः नुदस्व अदेवयुम् अ देवयुम् जनम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—सोम क्रतुवित् मत्सरः मृधः घ्नन् पवसे अदेवयुं जनम् आनुदस्व ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (क्रतुवित्) प्रज्ञा प्राप्त कराने वाला (मत्सरः) हर्षकर बना हुआ (मृधः) पापभावनाओं को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६.३.३.८] (घ्नन्) नष्ट करता हुआ (पवसे) आनन्द धारारूप में प्राप्त होता है (अदेवयुं जनम्) देवयु—इष्टदेव—परमात्मा को चाहने वाला नहीं, ऐसे नास्तिक जन को (आनुदस्व) दूर कर।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू प्रज्ञा प्राप्त कराने वाला, हर्ष लाने वाला, पापभावनाओं को नष्ट करता हुआ प्राप्त होता है और नास्तिक जीवन से हमको दूर रखता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त ध्रुव स्थिर रहने वाला उपासक) ॥

४९३. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः। हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

पदपाठः— अया पवस्व धारया यया सूर्यम् अरोचयः हिन्वानः मानुषीः अपः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हिन्वानः यथा धारया सूर्यम्-अरोचयः अया मानुषीः-अपः पवस्व ॥

पदार्थः—(हिन्वानः) सोम—परमात्मन्! जगत् को प्रेरणा देता हुआ तू (यथा धारया) जिस शक्ति से (सूर्यम्-अरोचयः) सूर्य को प्रकाशित करता है—चमकाता है (अया) इस-उस धारा—शक्ति से (मानुषीः-अपः) मनुष्यों के अन्दर वर्तमान प्राणों को, इन्द्रियों को—"आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] "इन्द्रियं वा आपः"

[काठ० ३२.२] (पवस्व) प्राप्त हो।

भावार्थः—जगत् को प्रेरणा देता हुआ परमात्मा जिस अपनी व्याप्त धारा या शक्ति से सूर्य को प्रकाशित करता है उससे मनुष्य-सम्बन्धी प्राणों इन्द्रियों और रसरक्त को प्रगति देने के हेतु प्राप्त हो॥७॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं किन्तु मोक्षधाम का इच्छुक)॥

४९४. स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे। वव्रिवांसं महीरपः॥८॥

पदपाठः— सः पवस्व यः आविथ इन्द्रम् वृत्राय हन्तवे वव्रिवाꣳसम् महीः अपः॥८॥

अन्वयः—सः-पवस्व यः वृत्राय हन्तवे इन्द्रम्-आविथ महीः-अपः-वव्रिवांसम्॥

पदार्थः—(सः-पवस्व) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! वह तू अपनी शक्तिधारारूप में प्राप्त हो (यः) जो तू (वृत्राय हन्तवे) पाप के हननार्थ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (इन्द्रम्-आविथ) जीवात्मा की रक्षा करता है! (महीः-अपः-वव्रिवांसम्) महती—अनेक महत्त्वपूर्ण व्यापन प्रवृत्तियों को रोकने वाले पापभाव को मारने के लिये प्राप्त हो।

भावार्थः—सोमरूप परमात्मन्! तू अपनी शक्तिधारा में प्राप्त हो जिससे तू जीवात्मा की रक्षा करता है। महती श्रेष्ठ व्यापन प्रवृत्तियों को रोकने वाले पापभाव के हननार्थ प्राप्त हो॥८॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं किन्तु मोक्षधाम का इच्छुक)॥

४९५. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव॥९॥

पदपाठः— परि स्रव यः ते इन्दो मदेषु आ अवाहन् अव अहन् नवतीः नव॥९॥

अन्वयः—इन्द्रो अया वीती परिस्रव मदेषु यः-ते नवतीः-नव अवाहन्॥

पदार्थः—(इन्द्रो) हे आर्द्र आनन्दरसधारा वाले परमात्मन्! तू (अया वीती) इस व्याप्ति से (परिस्रव) सब ओर स्रवित हो कि (मदेषु) हर्षों में (यः-ते) जो तेरा हर्ष समन्तरूप से प्रसिद्ध है वह (नवतीः-नव) गति प्रवृत्तियाँ "नवते गतिकर्मा" [निघं० २१.१४] नौ—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पाँच ज्ञानेन्द्रियों में होने वाली हैं, उन्हें (अवाहन्) निरुद्ध कर देता है—उपासक को मुमुक्षु बना देता है।

ऐसा तू प्राप्त हो।

भावार्थः—आनन्दरस भरे परमात्मन्! तू इस व्याप्ति से ऐसे सब ओर से प्राप्त हो समस्त हर्षों—आनन्दों में तेरा हर्ष आनन्द प्रसिद्ध है वह उपासक की नेत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार चार अन्तःकरणों की नौ गति प्रवृत्तियों को दबा दे—निरुद्ध कर दे—उपासक योगी से अलग कर जीवन्मुक्त बना दे॥ ९॥

ऋषिः—उक्थ्यः (वाक्—स्तुति करने में कुशल प्रशस्त उपासक[1])॥

४९६. **परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा। स्वानो अर्ष पवित्र आ॥ १०॥**

पदपाठः— **परिद्युक्षम् द्यु क्षम् सनत् रयिम् भरत् वाजम् नः अन्धसा स्वानः अर्ष पवित्रे आ॥ १०॥**

अन्वयः—अन्धसा स्वानः नः द्युक्षं रयिम् परि सनत् वाजम् भरत् पवित्रे आ-अर्ष॥

पदार्थः—(अन्धसा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू आध्यान से—समन्त ध्यानोपसना द्वारा (स्वानः) निष्पन्न हुआ (नः) हमारे लिये (द्युक्षं रयिम्) दिव्—द्युलोक—मोक्षधाम ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] अमृतस्वरूप धन को (परि) सर्वतो भाव से (सनत्) देता हुआ ''षणु दाने'' [तनादि०] 'शतृप्रत्ययान्तं सुलुकि रूपं छान्दसम्' (वाजम्) बल—आत्मबल को (भरत्) सर्वभाव से भरता हुआ (पवित्रे) प्राणापान स्थान हृदय में ''प्राणापानौ पवित्रे'' [तै० ३.३.४.४] (आ-अर्ष) समन्तरूप से प्राप्त हो।

भावार्थः—हे मेरे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू पूरे ध्यानोपासन द्वारा साक्षात् हुआ हमारे लिये मोक्षधामरूप अमृतधन को सर्वभाव से देता हुआ और उसके उपभोगार्थ आत्मबल को पूर्णरूप से भरता हुआ प्राण अपान के स्थान हृदय में समन्तरूप से प्राप्त हो॥ १०॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—मेध्यातिथिः (सङ्गमनीय परमात्मा में निरन्तर गतिशील प्रवेशशील उपासक)॥

४९७. **अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण दिद्युते॥ १॥**

---

१. ''उक्थ्यः प्रशस्यः'' [निघं० ३.८]।

पदपाठः— **अचिक्रदत् वृषा हरिः महान् मित्रः मि त्रः न दर्शतः सम् सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥**

अन्वयः—महान् वृषा हरिः मित्रः-न दर्शतः अचिक्रदत् सूर्येण सन्दिद्युते ॥

पदार्थः—(महान् वृषा हरिः) महान् कामवर्षक तथा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम शान्तस्वरूप परमात्मा (मित्रः-न दर्शतः) मित्र के समान दर्शनीय (अचिक्रदत्) बुलाता है—सम्भाषण करता है ''क्रदि आह्वाने रोदने च'' [भ्वादि०] 'अह्वाने नमाभावश्छान्दसः' (सूर्येण सन्दिद्युते) सूर्य के समान 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' सम्यक् प्रकाशित होता है ''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्'' [यजु० ३१.१८]।

भावार्थः—महान् कामनापूरक दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता शान्तस्वरूप मित्र की भाँति दर्शनीय परमात्मा को आमन्त्रित करता हूँ, जो सूर्य के समान प्रकाशमान है ॥ १ ॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक) ॥

४९८. **आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे। पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **आ ते दक्षम् मयोभुवम् मयः भुवम् वह्निम् अद्य अ द्य वृणीमहे पान्तम् आ पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—ते मयोभुवम् वह्निम् पुरुस्पृहम् आ पान्तम् दक्षम् अद्य आवृणीमहे ॥

पदार्थः—(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे (मयोभुवम्) सुख को भावित करने वाले—(वह्निम्) जीवनवाहक—(पुरुस्पृहम्) बहुत चाहने योग्य—(आ) और ''एतस्मिन्नेवार्थे 'समुच्चयार्थे' आ—इत्याकारः'' [निरु० १.५] (पान्तम्) रक्षा करने वाले—(दक्षम्) बल को (अद्य) इस जीवन में (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं—समन्तरूप से वरते हैं—अपनाते हैं।

भावार्थः—परमात्मन्! तेरे सुखोद्भावक जीवनवाहक बहुत कमनीय और रक्षक बल को इसी जीवन में समन्तरूप से भरते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—उचथ्यः (परमात्मा में समवेत होने वाला) ॥

४९९. **अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अध्वर्यो अद्रिभिः अ द्रिभिः सुतम् सोमम् पवित्रे आ नय पुनाही इन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमम् पवित्रे आनय इन्द्राय पातवे पुनाहि॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्यात्म यज्ञ के याजक! तू (अद्रिभिः सुतं सोमम्) श्लोककर्ता—स्तुति करने वालों के द्वारा "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] "श्लोकः—वाङ्नाम" [निघं० १.११] निष्पादित—भावित शान्त परमात्मा को (पवित्रे) प्राणापान स्थान हृदय में (आनय) ले आ—बिठा (इन्द्राय पातवे) वहाँ विराजमान हो आत्मा के पानार्थ (पुनाहि) तू अपने अन्दर प्रवाहित कर।

भावार्थः—हे अध्यात्म यज्ञ के याजक प्रेरक महानुभाव तू स्तुतिकर्ता विद्वानों द्वारा निष्पादित—भावित शान्त परमात्मा को हृदय में बिठा वहाँ उपासक आत्मा को पान कराने के लिये प्रवाहित कर॥ ३॥

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए परमात्मा—परमात्मा के अनुसार चलने वाला आस्तिक जन)॥

५००. तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत् स मन्दी धावति॥ ४॥

पदपाठः— तरत् सः मन्दी धावति धारा सुतस्य अन्धसः तरत् सः मन्दी धावति॥ ४॥

अन्वयः—धारा सुतस्य अन्धसः सः-मन्दी तरत् धावति तरत् सः-मन्दी धावति॥

पदार्थः—(धारा सुतस्य) स्तुतिवाणी द्वारा स्तुत हुए (अन्धसः) आध्यानीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा का (सः-मन्दी) वह स्तुतिकर्ता (तरत्) पाप को तरता है (धावति) ऊर्ध्वगति को जाता है—प्राप्त होता है (तरत् सः-मन्दी धावति) निश्चय वह स्तुतिकर्ता ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है "तरति स पापं सर्वं मन्दी य स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वांगतिम्" [निरु० १३.६]।

भावार्थः—समन्तरूप से ध्यान करने योग्य सोमरूप शान्त परमात्मा की स्तुति स्तुतिकर्ता पाप को तरता हुआ ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है निश्चित्त पाप को तर जाता है ऊँची गति को प्राप्त होता है॥ ४॥

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त स्थिर रहने वाला उपासक)॥

५०१. आ पवस्व सहस्त्रिणं रयिं सोम सुवीर्य्यम्। अस्मे श्रवांसि धारय॥ ५॥

पदपाठः— आ पवस्व सहस्त्रिणम् रयिम् सोम सुवीर्यम् सु वीर्यम् अस्मेइति श्रवांꣳसि धारया॥ ५॥

अन्वयः—सोम सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम् आपवस्व अस्मे श्रवांसि धारय॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम्) परमपुरुषार्थ या परम स्थान या परमपद जिसके आश्रय में हो ऐसे "परमं सहस्रम्" [तां० १६.९.२] शोभन आत्मबल वाले मोक्षधन को (आपवस्व) समन्तरूप से प्रसारित कर—प्रदान कर (अस्मे) हमारे में (श्रवांसि धारय) इहलोक सिद्धि के लिये सब श्रवणीय यशस्वी—यशस्कर भोग और साधन धारण करा।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरी शरण में आने पर, तेरा उपासक बन जाने पर तू परमपद वाले शोभनबल एवं आत्मबल वाले मोक्षरूप अमृतधन को देता है और संसार में भी यशस्कर भोग एवं साधन प्रदान करता है॥५॥

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त स्थिर रहने वाला उपासक)॥

५०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः। रुचे जनन्त सूर्यम्॥६॥

पदपाठः— अनु प्रत्नासः आयवः पदम् नवीयः अक्रमुः रुचे जनन्त सूर्यम्॥६॥

अन्वयः—प्रत्नासः-आयवः रुचे सूर्यं जनन्त नवीयः पदम् अनु-अक्रमुः॥

पदार्थः—(प्रत्नासः-आयवः) देव—जीवन्मुक्त जन "देवा वै प्रत्नम्" [काठ० ७.४] "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २.३] (रुचे) अमृतत्व के लिये "अमृतत्वं वै रुक्" [श० ९.४.२.१४] (सूर्यं जनन्त) सरणशील आनन्दधारा में प्रवहणशील सोम शान्त परमात्मा को अपने अन्दर जब साक्षात् करते हैं तब (नवीयः पदम्) अत्यन्त स्तुत्य पद मोक्ष को (अनु-अक्रमुः) अनुगत होते हैं—प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—देवजन—जीवन्मुक्त श्रेणी के महानुभाव अमृतत्व की प्राप्ति के लिये आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम—शान्त परमात्मा को साक्षात् करते ही अत्यन्त स्तुत्य मोक्षपद को प्राप्त होते हैं॥६॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक)॥

५०३. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्। सीदन् योनौ वनेष्वा॥७॥

पदपाठः— अर्ष सोम द्युमत्तमः अभि द्रोणानि रोरुवत् सीदन् योनौ वनेषु आ॥७॥

अन्वयः—सोम द्युमत्तमः वनेषु रोरुवत् द्रोणानि-अभि-अर्ष योनौ-आसीदन्॥

पदार्थः—(सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (द्युमत्तमः) अत्यन्त द्योतनवान्—दीप्तिमान् हुआ "द्युमान् द्योतनवान्" [निरु० ६.१९] (वनेषु रोरुवत्) वननीय सम्भजनीय विषयों के निमित्त उत्तम उपदेश करने के हेतु (द्रोणानि-अभि-अर्ष) द्रोणकलशों—मूर्धा के अवकाशों को "मूर्धा द्रोणकलशाः" [मै० ४.५.९] प्राप्त हो (योनौ-आसीदन्) हृदय घर में विराजमान हो "योनिः-गृहनाम" [निघं० ३.४]।

भावार्थः—हे आनन्दधारा में आने वाले शान्त प्यारे परमात्मन्! तू अत्यन्त द्योतमान हुआ वननीय मधुर बातों के निमित्त, उत्तम उपदेश देने के हेतु, मस्तिष्कावकाशों में प्राप्त हो और हृदयगृह में स्थिररूप से विराजमान हो ॥ ७ ॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा—परमात्मज्ञानी उपासक)॥

५०४. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः। वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

पदपाठः— वृषा सोम द्युमान् असि वृषा देव वृषव्रतः वृष व्रतः वृषा धर्म्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

अन्वयः—सोम वृषा द्युमान् असि देव वृषा वृषव्रतः वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वृषा द्युमान्) कामनावर्षक वीर्यवान् सामर्थ्यवान् है "द्युमत्तमेति वीर्यवत्तमेत्येतत्" [श० ६.२.१.३२] (असि) है (देव) हे दिव्यगुण परमात्मन्! तू (वृषा वृषव्रतः) सुखवर्षक धर्मव्रत—धर्म्यकर्म—यथार्थ कर्म वाला है (वृषा धर्माणि दध्रिषे) स्वयं धर्मस्वरूप होता हुआ धर्मों—नियमों को धारण करता है।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू कामनावर्षक सामर्थ्यवान् है। हे दिव्यगुण वाले परमात्मन्! तू सुखवर्षक धर्मव्रत—धर्म-कर्म वाला स्वयं धर्मरूप हुआ धर्मों नियमों को धारण करता है उन्हें चलाता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा—परमात्मज्ञानी उपासक)॥

५०५. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥

पदपाठः— इषे पवस्व धारया मृज्यमानः मनीषिभिः इन्दो रुचा अभि गाः इहि ॥ ९ ॥

अन्वयः—इन्दो मनीषिभिः मृज्यमानः इषे धारया पवस्व रुचा गाः-अभि इहि ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आर्द्र भाव वाले रसीले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! (मनीषिभिः) स्तुति उपासना करने वाले मेधावीजनों द्वारा "मनीषा मनस ईषया स्तुत्या प्रज्ञया वा" [निरु० ९.१०] "मनीषी मेधावी"—[निघं० ३.१५] (मृज्यमानः) प्राप्त होने में योग्य होता हुआ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (इषे धारया पवस्व) इष्ट—परमसुख प्राप्ति के लिये ध्यानधारा द्वारा प्राप्त हो (रुचा) अमृत से (गाः-अभि) स्तुतियों वाणियों को लक्ष्य कर उनके साथ (इहि) प्राप्त हो।

भावार्थः—हे आर्द्र रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा प्राप्त होने योग्य हमें इष्ट सुख प्राप्ति के लिये ध्यानधारणा से प्राप्त हो तथा अमृत धर्म से स्तुतियों के अनुरूप प्राप्त हों॥ ९॥

ऋषिः—असितः काश्यपः (द्रष्टा—ज्ञानी से सम्बद्ध अज्ञानमुक्त उपासक)॥

५०६. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः। अव्या वारेभिरस्मयुः॥ १०॥

पदपाठः— मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः अव्याः वारेभिः अस्मयुः॥ १०॥

अन्वयः—सोम वृषा देवयुः अस्मयुः मन्द्रया धारया पवस्व वारेभिः-अव्याः॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वृषा) सुखवर्षक (देवयुः) पूर्ववर्ती जीवन्मुक्तों को चाहने वाला, तथा (अस्मयुः) इस समय के हम उपासकों को चाहने वाला (मन्द्रया धारया पवस्व) आनन्दकर धारा से प्राप्त हो (वारेभिः-अव्याः) पापवासना वारण करने वाले गुण-धर्म-कर्मों के द्वारा हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—सुखवर्षक सोमरूप शान्त परमात्मा पुरातन जीवन्मुक्तों को चाहता हुआ तथा नूतन हम उपासकों को चाहता हुआ आनन्दप्रद धारा से प्राप्त हो और पापवासना निवारक गुण-धर्म-कर्मों के द्वारा हमारी रक्षा कर॥ १०॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी अध्यात्मवक्ता)॥

५०७. अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः। मन्दान इद् वृषायसे॥ ११॥

पदपाठः— अया सोम सुकृत्यया सु कृत्यया महान् सन् अभि अवर्द्धथाः मन्दानः इत् वृषायसे॥ ११॥

अन्वयः—सोम महान् सन् अया सुकृत्यया अभ्यवर्धथाः मन्दानः इत् वृषायसे॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (महान् सन्) महान् होता हुआ (अया सुकृत्यया) इस उपासना से (अभ्यवर्धथाः) हमें बढ़ा (मन्दानः) स्तूयमान—अर्च्यमान हुआ "मदि स्तुतिं......" [भ्वादि०] "मन्दते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययः' (इत्) ही (वृषायसे) सुखवर्षक मेघ के समान हो जाता है।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! क्या कहना तू महान् होता हुआ हमारी इस स्तुति उपासना से हमें बढ़ाता है, हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ ही सुखवर्षक बन जाता है, धन्य हो आपकी आर्द्रता उदारता को॥ ११ ॥

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित प्रसिद्ध ज्ञानाग्नि वाला)॥

५०८. अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति। हिन्वान आप्यं बृहत्॥ १२॥

पदपाठः— अयम् विचर्षणिः वि चर्षणिः हितः पवमानः सः चेतति हिन्वानः आप्यम् बृहत्॥ १२॥

अन्वयः—अयं विचर्षणिः पवमानः हितः आप्यं बृहत् हिन्वानः सः चेतति॥

पदार्थः—(अयं विचर्षणिः पवमानः) यह द्रष्टा—सर्वद्रष्टा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला सोमरूप शान्त परमात्मा (हितः) अन्तर्हित हुआ (आप्यं बृहत्) प्राप्त करने योग्य अध्यात्मबल को "ओजो वै वीर्यं बृहत्" [काठक० ३७.८] (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (सः) वह (चेतति) 'चेतयति-अन्तर्गतणिजर्थः' चेताता है।

भावार्थः—यह सर्वद्रष्टा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा सबके अन्दर वर्तमान हुआ प्राप्त करने योग्य अध्यात्मबल से प्रेरित करता हुआ चेताता है—सावधान करता है॥ १२॥

ऋषिः—अयास्यः (यास्य—प्रयत्नसाध्यभोग-प्रवृत्तिरहित वैराग्यवान् उपासक)॥

५०९. प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि। अभि देवाँ अयास्यः॥ १३॥

पदपाठः— प्र नः इन्दो महे तु नः ऊर्म्मिम् न बिभ्रत् अर्षसि अभि देवान् अयास्यः॥ १३॥

अन्वयः—इन्दो नः महे तुने ऊर्मिं न बिभ्रत् देवान्-अभि अयास्यः प्र-अर्षसि॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आर्द्र रसीले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (नः) हमारे (महे) महान्—(तुने) समृद्धि के लिये "तु वृद्धौ" [अदादि०] 'ततो नुक् छान्दसः-उणादिर्वा बाहुलकात्' (ऊर्मिं न) तरङ्ग समान आनन्दधारा को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (देवान्-अभि) जीवन्मुक्तों की ओर (अयास्यः) आयास न रखता हुआ—स्वभावतः (प्र-अर्षसि) प्राप्त होता है।

भावार्थः—आर्द्र—रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरा क्या कहना? तू तो हमारे महान् वैभव के लिये अपनी आनन्दधारा को तरङ्ग समान धारण करते हुए देवों—जीवन्मुक्तों की ओर अनायास ले जा रहा है, पहुँचा रहा है—जीवन्मुक्त बना रहा है, यह तेरी महती कृपा है॥ १३॥

ऋषि—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं किन्तु मोक्षधाम का इच्छुक उपासक)॥

५१०. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥ १४॥

पदपाठः— अपघ्नन् अप घ्नन् पवते मृधः अप सोमः अराव्णः अ राव्णः गच्छन् इन्द्रस्य निष्कृतम् निः कृतम्॥ १४॥

अन्वयः—सोमः मृधः-अपघ्नन् अराव्णः-(अपघ्नन्) इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते॥

पदार्थः—(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मृधः-अपघ्नन्) पापभावनाओं को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६.३.३.८] मारता हुआ (अराव्णः-अपघ्नन्) असद् भावनाओं को "अरावाणो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति" [तां० ६.१०.७] नष्ट करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्) जीवात्मा—उपासक आत्मा के संस्कृत शुद्धस्वरूप को "यद्वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १.१.४] प्राप्त कराता हुआ (पवते) आनन्दधारा में आता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा पापभावनाओं को मारता हुआ तथा असद् विचारों को नष्ट करता हुआ उपासक आत्मा के शुद्धस्वरूप को प्राप्त कराता हुआ आनन्दधारा में आता है॥ १४॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं। अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥ छन्दः—बृहती॥

५११. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः॥ १॥

पदपाठः— **पुनानः सोम धारया अपः वसानः अर्षसि आ रत्नधाः रत्न धाः योनिम् ऋतस्य सीदसि उत्सः उत् सः देवः हिरण्ययः ॥ १ ॥**

अन्वयः—सोम पुनानः धारया अपः-वसानः अर्षसि रत्नधा ऋतस्य योनिम्-आसीदसि हिरण्ययः-उत्सः-देवः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (पुनानः) मुझको शोधता हुआ—पवित्र करता हुआ, तथा (धारया) ध्यान धारणा से (अपः-वसानः) मेरे प्राणों को "आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] आच्छादित—आवृत करता हुआ—रक्षित करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (रत्नधा) रमणीय भोगों का धारण करने वाला (ऋतस्य योनिम्-आसीदसि) अध्यात्मयज्ञ में "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श० १.३.४.१६] आ विराजता है (हिरण्यय:-उत्सः-देवः) तू ही सुनहरा अमृतकूप, देव अमृतधाम मोक्षधाम है "असौ वै द्युलोक उत्सो देवः" [जै० १.१२१] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू मुझ उपासक को पवित्र करता हुआ तथा मेरे प्राणों को ध्यानधारणा से सुरक्षित करता हुआ प्राप्त होता है। तू रमणीय भोगों को धारण करने वाला मेरे अध्यात्मयज्ञ में विराजमान होता है। तू ही मोक्षधाम या सुनहरी अमृत कूप है ॥ १ ॥

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं। अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥

५१२. **परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः। दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **परि इतः सिञ्चत सुतम् सोमः यः उत्तमम् हविः दधन्वान् यः नर्यः अप्सु अन्तः आ सुषाव सोमम् अद्रिभिः अ द्रिभिः ॥ २ ॥**

अन्वयः—यः सोमः-उत्तमं हविः सुतम् इतः परिषिञ्चत अद्रिभिः अप्सु-अन्तरा सोमं सुषाव दधन्वान् यः-नर्यः ॥

पदार्थः—(यः सोमः-उत्तमं हविः) जो शान्तस्वरूप परमात्मा अध्यात्मयज्ञ का उत्कृष्ट हवि है या उपासक के आत्मा का आत्मा है या प्राण समान आधार है "आत्मा वै हविः" [काठ० ८.५] "प्राणो हविः" [मै० १.९.१] (सुतम्) हृदय में इसे निष्पन्न साक्षात् किया करे (इतः) हृदय से (परिषिञ्चत) जीवन में सर्वत्र सींचो—आत्मसात् करो (अद्रिभिः) आदरणीय योगाभ्यासों के द्वारा "अद्रय

आदरणीयाः'' [निरु० ९.६] (अप्सु-अन्तरा) प्राणों के अन्दर (सोमं सुषाव) शान्तस्वरूप परमात्मा को निष्पन्न करता हूँ, साक्षात् करता हूँ (दधन्वान्) उसे परमात्मा अपने अन्दर धारण करता है (यः-नर्यः) जो नर—श्रेष्ठजन का हितकर है।

भावार्थः—जो शान्तस्वरूप परमात्मा अध्यात्मयज्ञ का उत्कृष्ट हवि या उपासक के आत्मा का आत्मा या प्राण है उसे हृदय में साक्षात् कर हृदय से जीवन में सर्वत्र आत्मसात् करो, आदरणीय सत्कार से सेवनीय योगाभ्यासों के द्वारा प्राणों के अन्दर शान्तस्वरूप परमात्मा को जो साक्षात् करता है, उसे परमात्मा अपने अन्दर धारण करता है जो कि ऐसे श्रेष्ठ नर का हितकर है॥ २॥

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥

५१३. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया। जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे॥ ३॥

पदपाठः— आ सोम स्वानः अद्रिभिः अ द्रिभिः तिरः वाराणि अव्यया जनः न पुरि चम्वोः विशत् हरि सदः वनेषु दध्रिषे॥ ३॥

अन्वयः—अद्रिभिः अव्यया वाराणि तिरः सोमः स्वानः हरिः चम्वोः आविशत् जनः-न पुरि वनेषु सदः-दध्रिषे॥

पदार्थः—(अद्रिभिः) आदरणीय—सत्करणीय—सत्कार सेवित ''तपसा, ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया सेवितः सत्कारवान् भवति'' [योग० १.१४ व्यासः] योगाभ्यासों के द्वारा (अव्यया वाराणि तिरः) अनिवार्य दोषवारण साधनों—यम नियम को मध्य में सेवित कर के (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (स्वानः) निष्पन्न—साक्षात् करणीय है, जो कि (हरिः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (चम्वोः) द्यावापृथिवीमय द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त जगत् में ''चम्वौ द्यावापृथिवीनाम्'' [निघं० ३.३०] (आविशत्) समन्तरूप से प्रविष्ट है (जनः-न पुरि) जैसे जन जायमान प्राणी देहपुरी में आविष्ट होता है। वह तू (वनेषु सदः-दध्रिषे) वननीय मर्म स्थान में विशेषतः हृदयसदन को धारता है।

भावार्थः—आदर सत्कार से तप ब्रह्मचर्य विद्या श्रद्धा से किए योगाभ्यासों के द्वारा और अनिवार्य दोषनिवारक अहिंसा आदि व्रतों को मध्य में करके शान्तस्वरूप परमात्मा निष्पन्न—साक्षात् किया हुआ जो कि दुःखापहर्ता सुखाहर्ता द्यावापृथिवीमय—द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त समस्त जगत् में ऐसे आविष्ट हो रहा है जैसे जन्यमान जीवात्मा देहपुरी में आविष्ट होता है। वह वननीय मर्म स्थलों हृदय आदि को अपना सदन बना रहा है॥ ३॥

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं, अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥

५१४. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥ ४॥

पदपाठः— प्र सोम देववीतये देव वीतये सिन्धुः न पिप्ये अर्णसा अंशोः पयसा मदिरः न जागृविः अच्छ कोशम् मधुश्चुतम् मधु श्चुतम्॥ ४॥

अन्वयः—सोम देववीतये सिन्धुः-न-अर्णसा प्रपिप्ये अंशोः पयसा मदिरः-न जागृविः मधुश्चुतं कोशम्॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (देववीतये) मुमुक्षुजनों की तृप्ति के लिये आनन्द से पूर्ण है (सिन्धुः-न-अर्णसा प्रपिप्ये) जैसे सिन्धु जल से पूर्ण होता है (अंशोः पयसा) तुझ सोम—शान्त रसीले परमात्मा के आनन्दरस से "रसो वै पयः" [श० ४.४.४.८] (मदिरः-न जागृविः) उपासक आनन्दवान् तथा सचेत सावधान विकासवान् हो जाता है (मधुश्चुतं कोशम्) तू मधु चुवाने वाले हृदयकोश को अभिप्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! वाह रे तू मुमुक्षुजनों की तृप्ति के लिये आनन्दप्रपूर्ण है जैसे नद—महाजलाशय जल से भरा हुआ प्रपूर्ण होता है। तुझ सोमस्वरूप के रस से उपासक आनन्दवान् और सावधान प्रज्ञानवान् हो जाता है और उसके तू मधु चुआने वाले हृदयकोश को प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं, अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥

५१५. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥ ५॥

पदपाठः— सोमः उ स्वानः सोतृभिः अधि स्नुभिः अवीनाम् अश्वया इव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥ ५॥

अन्वयः—उ सोमः सोतृभिः अवीनां स्नुभिः स्वानः अश्वया-इव हरिता धारया अधियाति मन्द्रया धारया याति॥

पदार्थः—(उ) हाँ (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (सोतृभिः) अध्यात्मसवन करने वालों से (अवीनां स्नुभिः) चित्तरक्षण करने वाली योगस्थलियों के "इथं

पृथिवी वा अविरियं हीमाः सर्वाः प्रजा अवति'' [श० ६.१.२.२३] प्रवाहों के द्वारा (स्वानः) सम्पादित हुआ—साक्षात् हुआ (अश्वया-इव हरिता) अश्वगति जैसी गति से दुःखापहरण सुखाहरण वाली—(धारया) ध्यान धारणा से (अधियाति) अधिगत होता है—आत्मा में भावित होता (मन्द्रया धारया याति) स्तुतिरूप ध्यानधारणा से प्राप्त होता है।

भावार्थः—हाँ शान्तस्वरूप परमात्मा आध्यात्मिक सवन यज्ञ करने वालों से रक्षण करने वाली योगस्थलियों के प्रवाहों द्वारा साक्षात् हुआ अश्वगति जैसी गति से दुःखापहरण सुखाहरण करने वाली स्तुति ध्यानधारणा से अधिगत आत्मा में भावित होता है—प्राप्त होता है॥ ५॥

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं अर्थ पीछे आ चुके हैं)॥

५१६. **तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे। पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि॥ ६॥**

पदपाठः— **तव अहम् सोम रारण सख्ये स ख्ये इन्दो दिवेदिवे दिवे दिवे पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति माम् अव परिधीन् परि धीन् अति तान् इहि॥ ६॥**

अन्वयः—इन्दो सोम अहम् तव सख्ये दिवे दिवे रारण बभ्रो माम्-अव पुरूणि निचरन्ति तान् परि धीन्-अति-इहि॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आर्द्र—रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (अहम्) मैं (तव सख्ये) तेरे सखापन—तेरी मित्रता में (दिवे दिवे रारण) दिनों दिन रमण करता हूँ ''नाहमिन्द्राणि रारणनाहमिन्द्राणि रमे'' [निरु० ११.३९] (ब्रभ्रो) हे शुभ्र—निर्मल सोम परमात्मदेव!''बभ्रुर्भवति ब्रह्मणो रूपम्'' [मै० २.५.७] ''सोमो वै बभ्रुः'' [श० ७.२.४.२६] (माम्-अव) मुझे अवमानित कर के—मुझे दबाने वाले (पुरूणि निचरन्ति) बहुतेरे विघ्नकारी काम-क्रोध आदि दुर्वृत्त छिपे पड़े हैं (तान् परि धीन्-अति-इहि) उन्हें परिधिमुक्त न होने देने वाले, बन्धन में रखने वाले घेरे को अतिक्रान्त करा—पार करा या नष्ट कर।

भावार्थः—हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरी मित्रता में दिनों दिन रमण करता रहूँ, हे शुभ्र निर्मल—दोषरहित परमात्मन्! मेरा अवमान करने वाले, मुझे दबाने वाले बहुत विघ्नरूप कामक्रोध आदि दुर्वृत् छिपे पड़े हैं, उनके घरों को मुक्त न होने देने वाले बन्धनरूपों को दूर कर दे या नष्ट कर दे॥ ६॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

५१७. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि। रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि॥ ७॥

पदपाठः— मृज्यमानः सुहस्त्य सु हस्त्य समुद्रे सम् उद्रे वाचम् इन्वसि रयिम् पिशङ्गम् बहुलम् पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम् पवमान अभि अर्षसि॥ ७॥

अन्वयः—सुहस्त्य पवमान समुद्रे मृज्यमानः वाचम्-इन्वसि पिशङ्गं पुरुस्पृहं बहुलं रयिम् अभ्यर्षसि॥

पदार्थः—(सुहस्त्य) 'दीर्घाकारश्छान्दसः' सु—शोभन हस्त्य—हस्तकर्म करने—संसार-रचनकर्म करने में कौशल जिसका है ऐसे (पवमान) आनन्दधारा में आते हुए परमात्मन्! तू (समुद्रे) हृदयाकाश में (मृज्यमानः) प्राप्त होता हुआ ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] (वाचम्-इन्वसि) हमारी स्तुति प्रार्थना को व्याप्त होता है—स्वीकार करता है ''इन्वति व्याप्तिकर्मा'' [निघं० २.१८] (पिशङ्गं पुरुस्पृहं बहुलं रयिम्) सुनहरे अतिकमनीय बहुत आनन्दैश्वर्य को (अभ्यर्षसि) अभिप्राप्त करता है।

भावार्थः—हे जगद्रचनरूप शिल्प कुशल तथा आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन्! तू हृदय में प्राप्त होता हुआ हमारी स्तुति-प्रार्थना को स्वीकार करता है, स्वीकार करने के उपलक्ष्य में हमें दिव्य अतिकमनीय बहुत आनन्दैश्वर्य को सम्यक् प्राप्त कराता है॥ ७॥

ऋषिः—विश्वामित्रः॥

५१८. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः॥ ८॥

पदपाठः— अभि सोमासः आयवः पवन्ते मद्यम् मदम् समुद्रस्य सम् उद्रस्य अधि विष्टपे मनीषिणः मत्सरासः मदच्युतः मद च्युतः॥ ८॥

अन्वयः—आयवः मनीषिणः मत्सरासः मदच्युतः सोमासः समुद्रस्य-अधिविष्टपे मद्यं मदम् पवन्ते॥

पदार्थः—(आयवः) प्राप्त होने वाला (मनीषिणः) अन्तर्यामी (मत्सरासः) आनन्दरूप (मदच्युतः) हर्ष चुआने—आनन्द वर्षाने वाला (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' (समुद्रस्य-अधिविष्टपे) प्राणों और रक्त को सम्यक् शरीर में फेंकने वाले हृदय के विष्टप—गुहा ब्रह्म स्थान में ''विष्टप

एव......यस्मिन्नेतद् ब्रह्म'' [जै० १.१४३] (मद्यं मदम्) हर्षकर आनन्द कर (पवन्ते) 'पवते' प्रवाहित करता है।

भावार्थः—प्राप्त होने वाला अन्तर्यामी आनन्दरूप आनन्द वर्षाने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय के गुहारूप—गह्वर स्थान में हर्षाने योग्य आनन्द को प्रवाहित करता है॥ ८॥

ऋषिः—काश्यपः॥

५१९. पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः। त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः॥ ९॥

पदपाठः— पुनानः सोम जागृविः अव्याः वारैः परि प्रियः त्वम् विप्रः वि प्रः अभवः अङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञम् मिमिक्ष नः॥ ९॥

अन्वयः—अङ्गिरस्तम सोम त्वम् पुनानः प्रियः वारैः परि-अव्याः विप्रः-अभवः नः यज्ञम् मध्वा मिमिक्ष॥

पदार्थः—(अङ्गिरस्तम सोम) हे प्राणतम—अतीवप्राणस्वरूप ''प्राणो वा अङ्गिराः'' [श० ६.१.२.२८] शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (पुनानः) हमें पवित्र करने वाला (प्रियः) स्नेही (वारैः) रक्षण कर्मों से (परि-अव्याः) हमारी सब ओर से रक्षा कर, तथा (विप्रः-अभवः) विशेष कामनापूरक हो (नः) हमारे (यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ को (मध्वा मिमिक्ष) अपने मधुर रस से सींचने की इच्छा कर—सींच।

भावार्थः—अतिप्राणरूप शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू हमें पवित्र करने वाला स्नेही रक्षण कर्मों से सब ओर से हमारी रक्षा कर तथा विशेष कामनापूरक हो, हमारे अध्यात्मयज्ञ को अपने मधुर रस से सींचता रह॥ ९॥

ऋषिः—जमदग्निः॥

५२०. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः। सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः॥ १०॥

पदपाठः— इन्द्राय पवते मदः सोमः मरुत्वते सुतः सहस्रधारः सहस्र धारः अति अव्यम् अर्षति तम् इ मृजन्ति आयवः॥ १०॥

अन्वयः—सुतः-मदः-सहस्रधारः सोमः मरुत्वते-इन्द्राय पवते अव्यम्-अत्यर्षति ईम् तम् आयवः-मृजन्ति॥

पदार्थः—(सुतः-मदः-सहस्रधारः सोमः) हृदय में निष्पन्न—साक्षात्कृत असंख्य धारा वाला—बहुत स्तुतिवाणी वाला हर्षकर शान्तस्वरूप परमात्मा (मरुत्वते-

इन्द्राय) प्राणशक्तिसम्पन्न उपासक आत्मा के लिये (पवते) गति करता है (अव्यम्-अत्यर्षति) रक्षणीय योगभूमि को प्राप्त होता है (ईम्) हाँ (तम्) उसे (आयवः-मृजन्ति) पुनः मनुष्य "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २.३] प्राप्त करते हैं "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

भावार्थः—निष्पन्न—हृदय में साक्षात् हुआ बहुत स्तुति वाला शान्तस्वरूप परमात्मा प्राणवान्—प्राणशक्तिमान् उपासक के लिये गति करता है—बहता है रक्षणीय योगभूमि को प्राप्त होता है, हाँ उसे फिर मनुष्य प्राप्त करते हैं॥ १०॥

ऋषिः—वसिष्ठः॥

५२१. पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या। त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः॥ ११॥

पदपाठः— पवस्व वाजसातमः वाज सातमः अभि विश्वानि वार्या त्वम् समुद्रः सम् उद्रः प्रथमे विधर्मन् वि धर्म्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः॥ ११॥

अन्वयः—सोम त्वं समुद्रः देवेभ्यः प्रथमे विर्धमन् मत्सरः वाजसातमः विश्वानि वार्या अभि॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वं समुद्रः) तू आनन्द का सागर है—प्रेरक है तथा (देवेभ्यः) मुमुक्षुओं के लिये (प्रथमे विर्धमन्) प्रथम धर्म की विधृति में देवधर्म की विशेष प्राप्ति के निमित्त "विधर्म भवति धर्मस्य विधृत्यै" [तां० १५.५.२१] (मत्सरः) हर्षकर, तथा (वाजसातमः) अमृत अन्नभोग—मोक्ष में प्रापणीय आनन्द का अत्यन्त दाता (विश्वानि वार्या) समस्त वारण करने योग्यों को (अभि) अभिभव अभिभूत कर।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू आनन्द का प्रेरक है, मुमुक्षुओं के लिये प्रमुख धर्म देवधर्म की विशेषधृति में आनन्दप्रद और अमृतभोग का अत्यन्त दाता है समस्त हटाने योग्य को अभिभूत करने—दबाने वाला एवं आनन्द का समुद्र है॥ ११॥

ऋषिः—वसिष्ठः॥

५२२. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया। मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च॥ १२॥

पदपाठः— पवमानाः असृक्षत पवित्रम् अति धारया मरुत्वन्तः मत्सराः इन्द्रियाः हयाः मेधाम् अभि प्रयाꣳसि च॥ १२॥

अन्वयः—मरुत्वन्तः मत्सराः पवमानाः धारया पवित्रम् अति-असृक्षत हयाः-इन्द्रियाः मेधाम् प्रयांसि ॥

पदार्थः—(मरुत्वन्तः) मुमुक्षुजन वाला—मुमुक्षुजनों का अधिक प्रिय "सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्" (मत्सराः) हर्षप्रद (पवमानाः) आनन्दरूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा (धारया) ध्यान धारण द्वारा (पवित्रम्) पवित्र प्राणाधार हृदय को (अति-असृक्षत) अत्यन्त सृष्ट करता है, पुनः, (हयाः-इन्द्रियाः) इन्द्र—आत्मा के जुष्ट आत्मा के द्वारा सेवन किए जाने योग्य हय—घोड़े हैं उन्हें तथा (मेधाम्) उत्तम बुद्धि को (प्रयांसि) विविध अन्नों—दिव्यभोगों को अभिसृष्ट करता सुखद बनाता है।

भावार्थः—मुमुक्षुजनों का अधिक प्रिय हर्षकर आनन्दरूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा ध्यान धारणा द्वारा प्राणाधार पवित्र हृदय को अत्यन्त सृष्ट करता है। पुनः इन्द्र—आत्मा के जुष्ट आत्मा के द्वारा सेवन किए जाने योग्य हय—घोड़े हैं, उन्हें तथा मेधा—उत्तम बुद्धि और विशेष अन्नों—दिव्यभोगों को अभिसृष्ट करता सुखद बनाता है, जब तक संसार में हैं ॥ १२ ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—उशनाः (मुक्ति पाने की कामना करने वाला) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
५२३. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही
२ ३ १ २
रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

२ २ ३ १ २र १ २र २ ३ १ २र ३ २ ३ २
पदपाठः— प्र तु द्रव परि कोशम् नि सीद नृभिः पुनानः अभि
१ २र ३ १ २र २ ३ ३ १ २ ३ १ २ १ २र
वाजम् अर्ष अश्वम् न त्वा वाजिनम् मर्जयन्तः अच्छ
३ २ ३ १ २ ३
बर्हिः रशनाभिः नयन्ति ॥ १ ॥

अन्वयः—तु अव्ययार्थ-निबन्धनम् प्रद्रव कोशं परिनिषीद नृभिः पुनानः वाजम्-अभ्यर्ष वाजिनम्-अश्वं त्वा मर्जयन्तः रशनाभिः बर्हिः-अच्छ नयन्ति ॥

पदार्थः—(तु) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! अवश्य "तु अवधारणे" (अव्ययार्थ-निबन्धनम्) (प्रद्रव) मेरी ओर आनन्दधारा में प्रद्रवित हो—बहता हुआ आ (कोशं परिनिषीद) मेरे अन्तःकोष्ठरूप हृदय में परिपूर्ण होकर विराजमान हो जा—बैठ जा (नृभिः पुनानः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] ध्यान द्वारा प्राप्त करने योग्य होता हुआ 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः' (वाजम्-अभ्यर्ष) अमृत अन्न—अमृत भोग को "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] प्रेरित कर (वाजिनम्-अश्वं त्वा मर्जयन्तः) अति बलवान् घोड़े के समान तुझको स्तुतियों से अपनी ओर प्रेरित करते हुए "मर्जयन्त गमयन्त"

[निरु० १२.४३] (रशनाभिः) तेरी व्याप्त आनन्दधाराओं से "अशेरश च युच्" [उणा० २.७६] या अपनी व्यापने वाली उपासन क्रियारूप अङ्गुलियों अङ्गुलि सङ्केतों से "रशनाः-अङ्गुलिनाम" [निघं० २.५] या उपासना शक्तियों से "ऊर्ग् वै रशना" [तै० ६.६.४.५] (बर्हिः-अच्छ नयन्ति) हृदयाकाश की ओर "बर्हिः-अन्तरिक्षम्" [निघं० १.३] लेते हैं।

भावार्थः—हाँ, अवश्य हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! मेरी ओर आनन्दधारारूप में प्रद्रवित हो, वह मेरे हृदयकोश में परिनिष्ठित हो उसे परिपूर्ण कर विराज, मुमुक्षुजनों द्वारा प्राप्त होने वाला तू अमृत भोग को प्रेरित कर अतिबलवान् घोड़े के समान तुझको स्तुतियों से अपनी ओर प्रेरित करते हुए तेरी व्याप्त धाराओं से या उपासन क्रियारूप अङ्गुलियों अङ्गुलि सङ्केतों से या उपासनाशक्तियों से हृदय आकाश की ओर लेते हैं॥ १ ॥

ऋषिः—वृषगणो वासिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले से सम्बद्ध सुखवर्षक स्तुति वाला[1])॥

५२४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥ २ ॥

पदपाठः— प्र काव्यम् उशना इव ब्रुवाणः देवः देवानाम् जनिमा विवक्ति महिव्रतः महि व्रतः शुचिबन्धुः शुचि बन्धुः पावकः पदा वराहः अभि एति रेभन्॥ २ ॥

अन्वयः—उशना-इव देवः काव्यं प्रब्रुवाणः देवानां जनिमा विवक्ति महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः वराहः-रेभन् पदा-अभ्येति॥

पदार्थः—(उशना-इव देवः) उपासकों की कल्याण-कामना करने वाला सोमरूप शान्त परमात्मदेव "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १.११] (काव्यं प्रब्रुवाणः) वेदरूप काव्य या कलास्वरूप गुण का प्रवचन करता हुआ (देवानां जनिमा विवक्ति) दिव्य पदार्थों की उत्पत्ति आदि को या जीवन्मुक्त बनने के साधनों को खोलकर वर्णन करता है, वह (महिव्रतः) महाकर्मशक्ति वाला (शुचिबन्धुः) पवित्रजन का बन्धु (पावकः) स्वयं पवित्र और अन्य को पवित्र करने वाला (वराहः-रेभन् पदा-अभ्येति) वह अमृत आहार कराने वाला "वराहो.....वराहारः" [निरु० ५.४] कल्याण प्रवचन करता हुआ स्वरूप से अभिगत होता है।

---

१. "गणा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

भावार्थः—उपासकों की कल्याण-कामना करने वाला सोमरूप शान्त परमात्मा अपने ज्ञानगुणमयरूप और कलामयस्वरूप का प्रवचन करता हुआ उपासक के सम्मुख आता है तथा दिव्य पदार्थों की उत्पत्ति आदि को एवं मोक्षाधिकारी या जीवन्मुक्त बनने के साधनों को खोलकर वर्णन करता है, वह ऐसा महती कर्मशक्ति वाला पवित्रजन का बन्धु—अपने साथ बान्धने वाला स्वयं पवित्र उपासक को पवित्र करने वाला अपना अमृत आहारभोग देने वाला कल्याण का उपदेश देता हुआ अपने स्वरूप से अभिगत सम्यक् प्राप्त होता है—उपासक के अन्दर अपना स्वरूप साक्षात् कराता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्ति से सम्पन्न काम आदि को नष्ट करने वाला उपासक)॥

५२५. **तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **तिस्रः वाचः ईरयति प्र वह्निः ऋतस्य धीतिम् ब्रह्मणः मनीषाम् गावः यन्ति गोपतिम् गो पतिम् पृच्छमानाः सोमम् यन्ति मतयः वावशानाः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वह्निः तिस्रः-वाचः प्र-ईरयति ऋतस्य धीतिम् ब्रह्मणः-मनीषाम् गावः-गोपतिं पृच्छमानाः-यन्ति ॥

पदार्थः—(वह्निः) अध्यात्मयज्ञ का वहनकर्ता उपासक (तिस्रः-वाचः) तीन वाणियाँ—'अ, उ, म्' को (प्र-ईरयति) जपरूप में प्रेरित करता है (ऋतस्य) उस अध्यात्मयज्ञ की (धीतिम्) धारणा क्रिया को (ब्रह्मणः-मनीषाम्) ब्रह्म—परमात्मा की स्तुति को प्रेरित करता है (गावः-गोपतिं पृच्छमानाः-यन्ति) जैसे गौएँ गोस्वामी गोओं के पालक को अर्चित करती हुईं "पृच्छति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] उसे प्राप्त होती हैं, ऐसे (मतयः-वावशानाः सोमं यन्ति) स्तुतियाँ भी "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] बोलती हुई सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—अध्यात्मयज्ञ का कर्ता उपासक 'अ-उ-म्' ओ३म् की तीन वाणियों को प्रेरित करता है—जप करता है और साथ उस अध्यात्मयज्ञ की धारणा क्रिया ब्रह्म की स्तुति को भी प्रेरित करता है—अर्थभावन को प्रेरित करता है, इस प्रकार ओम् का जप और उसका अर्थभावन करता है। एवं तीनों 'अ, उ, म्' वाणियाँ शान्तस्वरूप परमात्मा को ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे गौएँ गोस्वामी को प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

५२६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता॥ ४॥

पदपाठः— अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः देवेभिः सम् अपृक्त रसम् सुतः पवित्रम् परि एति रेभन् मिता इव सद्म पशुमन्ति होता॥ ४॥

अन्वयः—अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः-देवः देवेभिः रसं समपृक्त सुतः पवित्र रेमन् पर्येति होता पशुमन्ति-मिता सद्म-इव॥

पदार्थः—(अस्य) इस शान्तस्वरूप परमात्मा के (प्रेषा हेमना) प्रेरक तेजोधर्म से—उपासक के अन्दर वर्तमान होने से (पूयमानः-देवः) यह साक्षात् किया जाता हुआ सोमदेव—शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभिः) इन्द्रियों के साथ "यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा 'इन्द्रियाणि' असन् वशे" [तै० आ० ३.१३.२] (रसं समपृक्त) अपने आनन्दरस को सम्पृक्त कर देता है (सुतः पवित्रं रेभन् पर्येति) वह निष्पन्न साक्षात् हुआ हृदयपात्र में परिपूर्ण हो जाता, भर जाता है (होता) तब अध्यात्मयज्ञ का होता उपासक (पशुमन्ति-मिता सद्म-इव) गौ आदि पशुओं वाले 'मिता-मितानि'—पूर्ण—दुग्ध-घृत कामनापूर्ण 'सद्म-सद्मानि' घरों को जैसे गोस्वामी प्राप्त होते हैं, ऐसे अपने इन्द्रियों वाले शरीर घर को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—उपासक के अन्दर जब शान्तस्वरूप परमात्मा की प्रेरणात्मक तेजोमय झलक आती है तो उसके द्वारा शान्तस्वरूप परमात्मदेव साक्षात् हो जाता है और उपासक की इन्द्रियों तक में भी भोग की प्रवृत्ति ही नहीं होती, किन्तु उसके स्थान पर अपने अमृत आनन्दरस की धारा भी सम्यक् प्रवाहित कर देता है और उपासक के हृदयपात्र को तो अपने आनन्दरस से परिपूर्ण कर ही देता है। तब उपासक ऐसा अनुभव करता है, जैसे गोस्वामी या पशुस्वामी अपने प्रशस्य गौ आदि वाले घर और कामपूरक—दुग्ध-घृत भरे पात्र प्राप्त किये होता है ऐसे अपने आनन्दरस भरी इन्द्रियों वाले देह घर को पाता है॥ ४॥

ऋषिः—प्रर्तदनः (पापाज्ञाननाशक)॥

५२७. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥ ५॥

पदपाठः—सोमः पवते जनिता मतीनाम् जनिता दिवः जनिता पृथिव्याः जनिता अग्नेः जनिता सूर्यस्य जनिता इन्द्रस्य जनिता उत विष्णोः॥ ५॥

अन्वयः—सोमः पवते मतीनां जनिता दिवः-जनिता पृथिव्याः-जनिता अग्नेः-जनिता सूर्यस्य जनिता इन्द्रस्य जनिता उत विष्णोः-जनिता ॥

पदार्थः—(सोमः पवते) शान्तस्वरूप परमात्मा आनन्दधारारूप में उपासकों को प्राप्त होता है, वह (मतीनां जनिता) उपासकों के अन्दर मतियों—बुद्धियों का जनयिता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु (दिवः-जनिता) द्युलोक का जनयिता है (पृथिव्याः-जनिता) पृथिवीलोक का भी जनयिता (अग्नेः-जनिता) अग्नि का भी जनयिता (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का जनयिता (इन्द्रस्य जनिता) विद्युत् का जनयिता है (उत) और (विष्णोः-जनिता) व्यापक आकाश वायुसहित का जनयिता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा उपासकों में मतियों बुद्धियों को उपासना द्वारा, उत्पन्न करता ही है परन्तु समस्त जड़ देवों द्युलोक, पृथिवीलोक, अग्नि, सूर्य, विद्युत्, आकाश, वायु को भी उत्पन्न करता है ॥५॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

५२८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

पदपाठः— अभि त्रिपृष्ठम् त्रि पृष्ठम् वृषणम् वयोधाम् वयः धाम् अङ्गोषिणम् अवावशन्त वाणीः वना वसानः वरुणः न सिन्धुः वि रत्नधाः रत्न धाः दयते वार्याणि ॥६॥

अन्वयः—वाणीः त्रिपृष्ठम् वृषणम् वयोधाम् अङ्गोषिणाम् अभि-अवावशन्त वना वसानः वरुणः-न सिन्धुः रत्नधा वार्याणि विदयते ॥

पदार्थः—(वाणीः) 'वाण्यः' स्तुति-प्रार्थना-उपासनारूप वाणियाँ (त्रिपृष्ठम्) तीन पृष्ठ स्पर्श स्थानों वाले—वाक्-मन-आत्मा जिसके स्पर्श करने वाले हैं। वाक् इन्द्रिय से स्तुति, मन से प्रार्थना, आत्मा से उपासना होने से वह त्रिपृष्ठ है "पृष्ठं स्पृशतेः" [निरु० ४.३] (वृषणम्) आनन्दवर्षक (वयोधाम्) अमृत प्राणधारण कराने वाले—"प्राणो वै वयः" [ऐ० १.२८] (अङ्गोषिणाम्) अङ्ग-अङ्ग में वसने वाले—नस-नसवासी—'अङ्गे वसतीति-वस धातोः इनिः' "परमे कित् बाहुलकात् इनिः प्रत्ययः कित्" [उणा० ४.१०] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अभि-अवावशन्त) पुनः पुनः चाहती हैं "वश कान्तौ" [अदादि०] (वना वसानः) जलों को आच्छादित किए हुए—घेरे हुए (वरुणः-न सिन्धुः) स्यन्दनशील वरुणालय—समुद्र के समान वरुण—वरुणालयः अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः "अर्श आदिभ्योऽच्" [अष्टा० ५.२.१२७] (रत्नधा) रत्नों—रमणीय भोगों का दाता

सोम शान्तस्वरूप परमात्मा "रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम्" [निरु० ७.१६] (वार्याणि) वरणीय अमृतधन भोगों को (विदयते) उपासकों के लिये विशेषरूप से देता है "विदयते-इति दानकर्मा" [निरु० ४.१७]।

भावार्थः—स्तुति-प्रार्थना-उपासना ये तीनों तीन पृष्ठ वाले—तीन स्पर्श स्थान वाले—जिनसे परमात्मा को स्पर्श किया जावे ऐसे वाक् इन्द्रिय, मन और आत्मा हैं, वाक् इन्द्रिय से स्तुति, मन से प्रार्थना, आत्मा से उपासना होती है। सो ये वाक्—इन्द्रिय, मन और आत्मा तीनों परमात्मा का स्पर्श करने वाले—आराधन स्थान आधार हैं, ऐसे तीन पृष्ठ आधार वाले आनन्दवर्षक तथा अमर जीवन धारण कराने वाले एवं अङ्ग-अङ्ग में नस-नस में वसने वाले अन्तर्यामी सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को ये स्तुति-प्रार्थना-उपासना पुनः पुनः चाहती हैं। अतः उसकी पुनः पुनः स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए, वह तो जैसे स्यन्दनशील सागर जलों को आच्छादित करता हुआ अपने अन्दर सम्भाले हुए रत्नों का देने वाला है, ऐसे परमात्मा दयासागर दयास्नेहरूप जल से भरा रमणीय भोगों का देने वाला है॥ ६॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्तिसम्पन्न काम आदि को अत्यन्त नष्ट करने वाला उपासक)॥

५२९. **अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः।**
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥ ७॥

पदपाठः— **अक्रान् समुद्रः सम् उद्रः प्रथमे विधर्म्मन् वि धर्म्मन् जनयन् प्रजाः प्र जाः भुवनस्य गोपाः गो पाः वृषा पवित्रे अधि सानौ अव्ये बृहत् सोमः वावृधे स्वानः अद्रिः अ द्रिः॥ ७॥**

अन्वयः—भुवनस्य गोपाः समुद्रः प्रजाः-जनयन् प्रथमे विधर्मन् अक्रान् वृषा सानः बृहत्सोमः अद्रिः अव्ये पवित्रे-अधि स्वानः वावृधे॥

पदार्थः—(भुवनस्य गोपाः) विश्व का रक्षक (समुद्रः) सम्यक् प्रसिद्ध सोम शान्तस्वरूप परमात्मा "समुद्रोऽवगतः सोमः" [तै० सं० ४.४२.९] (प्रजाः-जनयन्) प्रजन्यमान मनुष्य आदियों को उत्पन्न करता हुआ या करने को (प्रथमे विधर्मन्) प्रथित—विस्तृत—विविध आकार वाले जगत् में (अक्रान्) व्याप रहा है। वह (वृषा) सुखवर्षक (सानः) सम्भजनीय (बृहत्सोमः) महान् सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अद्रिः) आदरणीय तथा वेदज्ञान का आविष्कर्ता "अद्रय अदरणीयाः" [निरु० ९.९] "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] (अव्ये पवित्रे-अधि) जीवन के रक्षण स्थान प्राण और रक्त को प्रवाहित करने वाले हृदय के

अन्दर "पवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (स्वानः) निष्पन्न किया हुआ (वावृधे) उपासक को बढ़ा-चढ़ा अनुभव होता है।

भावार्थः—विश्व का रक्षक मनुष्यादि को उत्पन्न करता हुआ या करने वाला सम्यक् प्रसिद्ध सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्रथित—विस्तृत विविध आकार वाले जगत् में व्याप रहा है, वह सुखवर्षक सम्भाजी महान् सोम्य शान्तस्वरूप परमात्मा आदरणीय तथा वेदज्ञान प्रदाता परमात्मा रक्षणीय हृदय—प्राण रक्त प्रेरक स्थान के अन्दर निष्पन्न—साक्षात् किया हुआ उपासक को बढ़ा-चढ़ा अनुभव होता है॥७॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी विद्वान्)॥

५३०. **कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः।**
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः॥८॥

पदपाठः— **कनिक्रन्ति हरिः आ सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः नृभिः यतः कृणुते निर्णिजम् निः निजम् गाम् अतः मतिम् जनयत स्वधाभिः स्व धाभिः॥८॥**

अन्वयः—वनस्य जठरे पुनानः-हरिः आसृज्यमानः पुनानः हरिः कनिक्रन्ति नृभिः यतः निर्णिजं कृणुते अतः गां मतिं स्वधाभिः-जनयत॥

पदार्थः—(वनस्य जठरे पुनानः-हरिः) 'वनति सम्भजतीति वनः' सम्भजन करने वाले उपासक के मध्य—अन्दर "मध्यं वै जठरम्" [श० ७.१.१.२२] (आसृज्यमानः) समन्तरूप से साक्षात् किया जाता हुआ (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ (हरिः) दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा (कनिक्रन्ति) उपासक को उपदेश देता है (नृभिः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (यतः) अभ्यस्त—अभ्यास में लाया हुआ (निर्णिजं कृणुते) यह अपने को शुद्धस्वरूप में 'आविष्कृणुते' प्रकट करता है (अतः) इसलिये हे मुमुक्षुजनो! तुम (गां मतिं स्वधाभिः-जनयत) स्वध्यान धारणाओं से या स्वधारण शक्तियों से या आत्मभावनाओं से स्तुतिवाणी को उसके प्रति सम्पन्न करो।

भावार्थः—सम्भक्ति करने वाले उपासक के अन्दर परमात्मा समन्तरूप से साक्षात् किया जाता हुआ उपासक को पवित्र करता है तथा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता हो उपासक को उपदेश करता है, मुमुक्षुजनों द्वारा अभ्यास में लाया हुआ अपने शुद्धस्वरूप को आविष्कृत करता है, अतः मुमुक्षुजन स्वधारण शक्तियों—आत्मभावनाओं से उसके लिये स्तुति—उपासना समर्पित करें॥८॥

ऋषिः—उशना: (परमात्मा की कामना करने वाला उपासक)॥

५३१. **एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥ ९॥**

पदपाठः— **एषः स्यः ते मधुमान् इन्द्र सोमः वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षारिति सहस्रदाः सहस्र दाः शतदाः शत दाः भूरिदावा भूरि दावा शश्वत्तमम् बर्हिः आ वाजी अस्थात्॥ ९॥**

अन्वयः—इन्द्र ते वृष्णः एषः-स्यः वृषा मधुमान् सोमः पवित्रे परि-अक्षाः सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा वाजी शश्वत्तमं बर्हिः-अस्थात्॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे उपासक आत्मन्! (ते वृष्णः) तुझ ज्ञानशक्तिवर्षक का (एषः-स्यः) यह वह (वृषा) ज्ञानवर्षक (मधुमान् सोमः) मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा (पवित्रे परि-अक्षाः) हृदय में परिरक्षित है—परिप्राप्त है (सहस्रदाः) सहस्रगुणफलदायक (शतदाः) उससे भी अधिक—लक्षगुण फलदायक (भूरिदावा) एवं लक्ष से भी अधिक कोटिगुणफलदायक—अपरिमित्गुणफलदायक है, वह (वाजी शश्वत्तमं बर्हिः-अस्थात्) अमृत भोग वाला धनी सदा एकरस रहने वाले नित्य अमृतधाम मोक्षधाम में "द्यौर्बर्हिः" [श० १२.८.२.२६] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] केवल स्वसत्ता से विराजमान है।

भावार्थः—हे उपासक आत्मा तू शरीर में स्वचेतनाबल या स्वज्ञान का वर्षक है, परन्तु तेरा भी आत्मज्ञानवर्षक या आत्मबलवर्षक वह मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा है, जो उपासना द्वारा हृदय में परिक्षरित होता है। वह उपासना का फल सहस्रगुणित लक्षगुणित कोटिगुणित अपितु अपरिमितगुणितरूप में प्रदान करता है। वह अमृतभोगों का स्वामी एकरस नित्य रहने वाले मोक्षधाम या केवल स्वरूप में रहता है॥ ९॥

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों को नष्ट करने वाला उपासक)॥

५३२. **पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये। अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सरः इन्द्रपानः॥ १०॥**

पदपाठः— **पवस्व सोम मधुमान् ऋतावा अपः वसानः अधि सानौ अव्ये अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमः मत्सरः इन्द्रपानः इन्द्र पानः॥ १०॥**

अन्वयः—सोम मधुमान् ऋतावा अपः-वसानः अव्ये-अधि सानः पवस्व मदिन्तमः मत्सरः इन्द्रपानः घृतवन्ति द्रोणानि-अवरोह॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (मधुमान्) मधुररसवाला (ऋतावा) अमृतवाला "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०] (अपः-वसानः) प्राणों को आच्छादित करता हुआ—सुरक्षित रखता हुआ "आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] (अव्ये-अधि) रक्षणीय हृदय मर्मस्थान में (सानः) सम्भजनीय होता हुआ (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त हो (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षकारी (मत्सरः) हर्षभरा (इन्द्रपानः) उपासक आत्मा के पान करने योग्य हुआ (घृतवन्ति) तेज वाले तेजस्वी "तेजो वै घृतम्" [मै० १.६.८] (द्रोणानि-अवरोह) प्राणों को—प्राणों की ओर अवरोहण कर "प्राणा वै द्रोणकलशः" [मै० ४.५.९]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू मधुमय—अमृत स्वामी प्राणों को सुरक्षित रखता हुआ रक्षणीय हृदय मर्मस्थान में सम्भजनीय हुआ आनन्दधारा में प्राप्त हो अपितु अत्यन्त आनन्दप्रद हर्षभरा हुआ उपासक आत्मा के पान करने योग्य हो और तेजस्वी जीवन वाले प्राणों में अवतरित हो रहा है॥ १०॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों को नष्ट करने वाला उपासक)॥

५३३. प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना। भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते॥ १॥

पदपाठः— **प्र सेनानीः सेना नीः शूरः अग्ने रथानाम् गव्यन् एति हर्षते अस्य सेना भद्रान् कृण्वम् इन्द्रहवान् इन्द्र हवान् सखिभ्यः स खिभ्यः आ सोमः वस्त्रा रभसानि दत्ते॥ १॥**

अन्वयः—शूरः सेनानीः रथानाम् गव्यन् अग्रे प्र-एति अस्य सेना हर्षते सोमः इन्द्रहवान् भद्रान् कृण्वन् सखिभ्यः रभसानि वस्त्रा आ दत्ते॥

पदार्थः—(शूरः) प्रगतिशील "शूरः शवतेर्गतिकर्मणः" [निरु० ४.१३] (सेनानीः) इन्द्रियगण—सेना का नेता प्रेरक मन (रथानाम्) शरीररथों के (गव्यन्) गौओं—इन्द्रियों को स्वानुकूल चाहता हुआ चलाता हुआ (अग्रे प्र-एति) आगे प्रबल होकर चलता है पुनः (अस्य सेना हर्षते) इसकी इन्द्रियगण सेना अलीक हो जाती है—विषय प्रवृत्ति को त्याग देती है "हृषु अलीके" [भ्वादि०] तभी (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्रहवान्) मन के आह्वानों—भावों को "यन्मनः स इन्द्रः" [गो० २.४.११] (भद्रान्) कल्याणरूप (कृण्वन्) करने—बनाने के हेतु (सखिभ्यः)

मित्ररूप जीवन्मुक्त उपासकों के लिये मोक्ष में (रभसानि वस्त्रा) महान् विशाल "रभसः-महन्नाम" [निघं० ३.३] वस्त्रतुल्य आच्छादनों—रक्षणों को (आ) समन्तरूप से (दत्ते) देता है।

भावार्थः—जब शरीररथ के इन्द्रिय घोड़ों का नेता मन उन्हें स्ववश चलाता है तो वे अलीक हो जाती हैं, अपनी अपनी विषयव्यसन प्रवृत्ति को त्याग देती हैं। तब शान्तस्वरूप परमात्मा मन के भावों को कल्याणरूप में सफल करता हुआ मित्ररूप मुमुक्षु उपासकों या जीवन्मुक्तों के लिये मोक्ष में वस्त्रतुल्य विशाल आच्छादनों—रक्षणों को समन्तरूप से देता है ॥ १ ॥

ऋषिः—शाक्त्यः पराशरः (शक्तिसम्पन्न कामक्रोध आदि को नष्ट करने वाला उपासक)॥

५३४. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम्।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥

पदपाठः— प्र ते धाराः मधुमतीः असृग्रन् वारम् यत् पूतः अत्येषि अति एषि अव्यम् पवमान पवसे धाम गोनाम् जनयन् सूर्यम् अपिन्वः अर्कैः ॥ २ ॥

अन्वयः—पवमान ते मधुमतीः-धाराः प्र-असृग्रन् यत् पूतः अव्ये वारम्-अत्येषि गोनां धाम पवसे सूर्यं जनयन् अर्कैः-अपिन्वः ॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते) तेरी (मधुमतीः-धाराः) मधु वाली आनन्दधाराएँ (प्र-असृग्रन्) छूट रही हैं (यत्) जबकि (पूतः) अध्येषित—ध्यान से प्रेरित हुआ "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघं० ३.२१] (अव्ये वारम्-अत्येषि) पार्थिव "इयं पृथिवी वा अविरियं हीमाः सर्वाः प्रजा अवति" [श० ६.१.२.३३] वारण साधन शरीर को लाङ्घ जाता है—अन्दर आत्मा में चला जाता है तब (गोनां धाम पवसे) स्तुति करने वाले उपासकों के "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] अङ्ग—प्रत्येक अङ्ग को "अङ्गानि वै धामानि" [काश० ४.३.४.११] तू आनन्दरूप में पहुँच जाता है (सूर्यं जनयन्) तेज को उत्पन्न करने के हेतु "तेजः सूर्यः" [मै० २.२.८] (अर्कैः-अपिन्वः) प्राणों के द्वारा—प्राणों में "प्राणो वा अर्कः" [श० १०.४.१.२३) सींच—अपना अमृतरस सींचता है।

भावार्थः—हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्त परमात्मन्! तेरी मधुमय आनन्दधाराएँ छूट रही हैं, बह रही हैं, जबकि तू ध्यान से प्रेरित हुआ पार्थिवावरण शरीर को लाङ्घ जाता है, अन्दर आत्मा में पहुँच जाता है तब स्तुति करनें वाले

उपासकों के अङ्ग–अङ्ग में प्रति तू आनन्दरूप में पहुँच जाता है और तेज को उत्पन्न करने के लिये प्राणों में अपना अमृतरस सींचता है ॥ २ ॥

ऋषिः—इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले से सम्बद्ध विद्युत् जैसी कान्ति वाला)॥

५३५. **प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय। स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्र गायत अभि अर्चाम देवान् सोमम् हिनोत महते धनाय स्वादुः पवताम् अति वारम् अव्यम् आ सीदतु कलशम् देवः इन्दुः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—देवान् महते धनाय सोमम् प्रगायत अभ्यर्चाम हिनोत स्वादुः-इन्दुः-देवः अव्यं वारम्-अति पवताम् कलशं सीदतु ॥

पदार्थः—(देवान्) हे मुमुक्षुजनो! ''सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने शस्'' (महते धनाय) महान् धन—मोक्षैश्वर्य प्राप्ति के लिये (सोमम्) शान्तस्वरूप परमात्मा को (प्रगायत) प्रकृष्टरूप से गाओ—स्तुति में लाओ (अभ्यर्चाम) उसे भली प्रकार अर्चित करो—उपासना में लाओ 'अत्र पुरुषव्यत्ययः' (हिनोत) प्रार्थित करो—प्रार्थना में लाओ। (स्वादुः-इन्दुः-देवः) मधुर स्वाद वाला रसभरा आर्द्र—शान्त परमात्मदेव (अव्यं वारम्-अति) पार्थिव आवरक शरीर को अतिक्रमण करके (पवताम्) प्राप्त हो (कलशं सीदतु) कला—अङ्ग–अङ्ग जिसके आश्रय में रहते हैं उसमें विराजमान हो जावे।

भावार्थः—मुमुक्षुजनो! मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिये शान्त परमात्मा की स्तुति–प्रार्थना–उपासना करो, इससे वह मधुर स्वाद वाला रसीला परमात्मदेव पार्थिवदेह को लाङ्घकर अन्दर आत्मा में विराजमान हो जाता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥

५३६. **प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत्। इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **प्र हिन्वानः जनिता रोदस्योः रथः न वाजम् सनिषन् अयासीत् इन्द्रम् गच्छन् आयुधा सꣳशिशानः सम् शिशानः विश्वा वसु हस्तयोः आदधानः आ दधानः ॥ ४ ॥**

अन्वयः—प्रहिन्वानः रोदस्योः-जनिता वाजं सनिषन् रथः-न-अयासीत् इन्द्रं गच्छन् आयुधा संशिशानः विश्वावसु हस्तयोः-आदधानः ॥

पदार्थः—(प्रहिन्वानः) उपासक द्वारा प्रार्थना में आया हुआ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (रोदस्योः-जनिता) द्यावापृथिवीमय जगत् का उत्पादक (वाजं सनिषन्) उपासक के लिये अमृत अन्नभोग को देने की इच्छा के हेतु (रथः-न-अयासीत्) रथ की भाँति चलता-सा आता है (इन्द्रं गच्छन्) उपासक आत्मा के प्रति प्राप्त होता है (आयुधा संशिशानः) उपासक के योगाभ्यासरूप आयुधों—शस्त्रों को जिनसे काम आदि का शमन होता है उन्हें तीक्ष्ण करता हुआ (विश्वावसु) समस्त वसाने वाले साधनों को (हस्तयोः-आदधानः) मानो हँसाने-हर्षाने वाले दया और प्रसादरूप हाथों में लेकर प्राप्त होता है।

भावार्थः—द्युलोक से पृथिवीलोक तक समस्त जगत् का उत्पादक शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक द्वारा प्रार्थित हुआ उसे अमृत अन्नभोग देने की इच्छा के हेतु, उससे भरे रथ की भाँति उपासक को प्राप्त होता है, काम-क्रोध नाशक उसके योगाभ्यास शस्त्रों को तीक्ष्ण करता हुआ तथा समस्त वसाने वाले साधनों को अपने दया और प्रसादरूप हाथों में लेकर प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मृडीकः (परमात्मा की स्तुति से पूजा करने वाला[1]) ॥

५३७.
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
१ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव
१ २
इन्दुम् ॥ ५ ॥

पदपाठः—
१ २र १ २र १ २र १ २र १ १ २र १ २र ३ २
तक्षत् यदी मनसः वेनतः वाक् ज्येष्ठस्य धर्म्मन् द्युक्षोः
३ २ १ २र ३ ३ ३ १ २र २ ३ २
द्यु क्षोः अनीके आत् ईम् आयन् वरम् आ वावशानाः
१ २र १ २र ३ १ २ १ २र १ २र
जुष्टम् पतिम् कलशे गावः इन्दुम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—यदी 'यद्-इ' वेनतः-मनसः ज्येष्ठस्य द्युक्षोः धर्मन्-अनीके वाक् तक्षत् आत् ईम् वरम् जुष्टम् पतिम् इन्दुम् आवावशानाः गावः कलशे आयन् ॥

पदार्थः—(यदी 'यद्-ई') जब ही (वेनतः-मनसः) कामना करते हुए ''वेनति कान्तिकर्मा'' [निघं० २.६] मनस्वी—ध्यानीजन—''मतुबर्थप्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः'' (ज्येष्ठस्य) श्रेष्ठ—(द्युक्षोः) परमात्मप्रकाश में रहने वाले के (धर्मन्-अनीके) स्तुति धारक मुख में वर्तमान (वाक्) जपरूप वाणी (तक्षत्) शान्त परमात्मा का संवरण करती है—अपनाती है ''तक्ष त्वचने'' [भ्वादि०] (आत्) अनन्तर (ईम्) इस (वरम्) वरणीय—(जुष्टम्) सेवनीय—(पतिम्) पालक—(इन्दुम्) आर्द्र—रसीले परमात्मा को (आवावशानाः) बहुत चाहते हुए

(गाव:) स्तोता जन "गौ: स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] (कलशे) कलशयन स्थान हृदय में (आयन्) समन्तरूप से प्राप्त होता है "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्" [अष्टा० १.२.५८]।

भावार्थ:—जब ही परमात्मा की कामना करते हुए परमात्मप्रकाश में रहने वाले श्रेष्ठ—पवित्र सद्गुणसम्पन्न मननशील ध्यानीजन के मुख में जपरूप वाणी परमात्मा का संवरण करती है—अपनाती है तुरन्त ही उस वरणीय पालक रसीले परमात्मा का अत्यधिक कामना करने वाले स्तोता उसे अपने हृदय में प्राप्त करते हैं॥५॥

ऋषि:—नोधा: (नवन—स्तवन को धारण करने वाला उपासक)॥

५३८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी॥ ६॥

पदपाठः— साकमुक्षः साकम् उक्षः मर्जयन्त स्वसारः दश धीरस्य धीतयः धनुत्रीः हरिः परि अद्रवत् जाः सूर्यस्य सु ऊर्यस्य द्रोणम् ननक्षे अत्यः न वाजी॥ ६॥

अन्वयः—धीरस्य धनुत्रीः धीतयः साकम्-उक्षः दश स्वसारः मर्जयन्त हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत् अत्यः-न वाजी द्रोणं ननक्षे॥

पदार्थ:—(धीरस्य) ध्यानवान्—ध्यानी की "धीरा:प्रज्ञानवन्तो ध्यानवन्त:" [निरु० ४.९] (धनुत्री:) प्रेरित करने वाली "धन्वति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] "धवि गत्यर्थ:" [भ्वादि०] 'छान्दसं रूपं तृजन्तम्' (धीतय:) प्रज्ञाएँ "ऋतस्य धीति:.....ऋतस्य प्रज्ञा" [निरु० १०.४०] अथवा ध्यानयोग क्रियाएँ "धीतिभि:-कर्मभि:" [निरु० ११.१६] (साकम्-उक्ष:) एक साथ सींचने वाली—ध्यान में तृप्त करने वाली (दश स्वसार:) ध्यानी को परमात्मा में सु—सम्यक् फेंकने वाली दश इन्द्रियों सम्बन्धी संयत प्रज्ञाएँ या क्रियाएँ "स्वसा-सु-असा" [निरु० ११.३३] (मर्जयन्त) धीर—ध्यानवान् को परमात्मा में पहुँचाती हैं "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२.४३] (हरि: सूर्यस्य जा: पर्यद्रवत्) दु:खापहर्ता सुखाहर्ता शान्त परमात्मा अपनी ओर सरणशील योगी की उद्भूत भावनाओं के प्रति "सोऽर्य: सोऽर्य इत्यायन्-सोऽर्य ह वै नामैष तं सूर्य इति परोक्षमाचक्षते" [जै० ३.३५७] परिद्रवित हो जाता है, पुन: (अत्य:-न वाजी द्रोणं ननक्षे) निरन्तर गमनशील घोड़े की भाँति हृदयसदन में प्राप्त हो जाता है घोड़ा जैसे अन्त में तबेले में आ जाता है।

भावार्थ:—ध्यानवान् योगी की प्रेरिका प्रज्ञाएँ एवं ध्यान क्रियाएँ एक साथ उसे तृप्त करती हुईं परमात्मा की ओर प्रेरित करती हुईं तथा दशों इन्द्रियों की संयत

प्रज्ञाएँ या क्रियाएँ भी परमात्मा की ओर ले जाती हैं, पुनः दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा की सरणशील उपासक आत्मा की उद्भूत भावनाओं के प्रति पूर्ण द्रवित हो जाता है। अन्ततः वह निरन्तर गमनशील घोड़े की भाँति हृदयसदन में ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे घोड़ा अपने तबेले में सहज स्वभाव से पहुँच जाता है॥ ६॥

ऋषिः—घौरः कण्वः (स्तुति भाषण कुशल मेधावी)॥

५३९. अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः। अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म॥ ७॥

पदपाठः— अधि यत् अस्मिन् वाजिनी इव शुभः स्पर्द्धन्ते धियः सूरे न विशः अपः वृणानः पवते कवीयान् व्रजम् न पशुवर्द्धनाय पशु वर्द्धनाय मन्म॥ ७॥

अन्वयः—यत् अस्मिन्-अधि धियः स्पर्द्धन्ते वाजिनि-इव शुभः सूरे न विशः कवीयान्-अपः-वसानः पवते व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म॥

पदार्थः—(यत्) 'वाक्यारम्भे' कि (अस्मिन्-अधि) इस सोम—शान्त परमात्मा में अधिष्ठित हुई (धियः) उपासक की ध्यान-वृत्तियाँ "धीरसीत्याह यद्धि मनसा ध्यायति" [तै० सं० ६.१.७.४५] "धीराः-ध्यानवन्तः" [निरु० ४.९] (स्पर्द्धन्ते) सृङ्घृष्ट होती हैं—होड़ करती हैं (वाजिनि-इव शुभः) घोड़े पर जैसे शोभाएँ—भूषाएँ अधिक भूषित करती हैं, (सूरे न विशः) अथवा सूर्य उदय होने पर जैसे मनुष्य आदि प्रजाएँ कि मैं अधिक आगे बढ़ूँ—मैं अच्छा कर्म करूँ "सजूः सूर्य एतशेनेति सूर्यमेव पृणाति" [मै० ३.४.४] अपने अपने कार्य की दौड़ में स्पर्द्धा करती हैं (कवीयान्-अपः-वसानः पवते) मेधावी उपासकों को चाहने वाला परमात्मा प्राणों को आच्छादित करता हुआ आनन्दधारा में पहुँचाता है (व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म) जैसे पशुसदन के प्रति पशुवृद्धि के लिये पशुपालक का मन रहता है "मे धायि मन्म मे मनोऽध्यायि" [निरु० ६.२२]।

भावार्थः—जबकि इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा में अधिष्ठित उपासक की ध्यानवृत्तियाँ स्पर्द्धा करती हैं, बढ़-बढ़कर प्रभाव करती हैं जैसे घोड़े के ऊपर भाँति-भाँति की भूषाएँ—सजावटें उसे अधिकाधिक सजाती हैं या जैसे सूर्य के उदय होने पर मनुष्य आदि प्रजाएँ मैं आगे बढ़कर कार्य करूँ, उपासक को चाहने वाला परमात्मा प्राणों को सुरक्षित रखता हुआ आनन्दधारा में उपासक को प्राप्त होता है पशुसदन के प्रति जैसे पशुपालक का मन पशुधन की वृद्धि के लिये चला जाता है॥ ७॥

ऋषिः—वासिष्ठो मन्युः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले से सम्बद्ध परमात्मा की अर्चना—स्तुति करने वाला[1])॥

५४०. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥

पदपाठः— इन्दुः वाजी पवते गोन्योघाः गो न्योघाः इन्द्रे सोमः सहः इन्वन् मदाय हन्ति रक्षः बाधते परि अरातिम् अ रातिम् वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥

अन्वयः—वृजनस्य राजा वाजी इन्दुः सोमः इन्द्रे मदाय सहः-इन्वन् गोन्योघाः पवते वरिवः-कृण्वन् रक्षः-हन्ति अरातिं परिबाधते॥

पदार्थः—(वृजनस्य राजा) बल—बलवान् का स्वामी या बलवानों में राजमान—प्रसिद्ध "वृजनं बलम्" [निघं० २.९] (वाजी) वाजवान्—अमृत अन्नभोग प्रदाता "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (इन्दुः) रसीला (सोमः) शान्त परमात्मा (इन्द्रे) उपासक आत्मा के निमित्त (मदाय) हर्ष—आनन्द प्राप्ति के लिये (सहः-इन्वन्) आत्मबल को प्रेरित करता हुआ (गोन्योघाः) 'गाः स्तुतीः-निधाय-ओघः 'स' प्रवाहो यस्य सः' स्तुतियाँ निर्धारित कर प्रवाह बहाव जिसका है वह ऐसा (पवते) आनन्दधारा में प्राप्त होता है (वरिवः-कृण्वन्) वररूप धन—स्वरूप दर्शन मोक्षैश्वर्य प्रसाद को प्रदान करने के हेतु (रक्षः-हन्ति) जिससे रक्षा करनी चाहिए ऐसे क्रोध को नष्ट करता है (अरातिं परिबाधते) न देने वाले अपितु उसके विपरीत लेने वाले—आत्म तेजबल का शोषण करने वाले मोह-शोक को तिरस्कृत करता है अलग करता है।

भावार्थः—सब प्रकार के बलों का स्वामी रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा अपने ऊपासक के निमित्त आनन्द प्राप्त कराने के लिये उसमें आत्मसात् करने को सहनशक्ति—आत्मबल प्रेरित करता हुआ स्तुतियों को लक्ष्य कर अपने आनन्दप्रवाह को बहाने वाला आनन्दधारा में प्राप्त होता है और वररूप में स्वरूप दर्शन मोक्षैश्वर्य आत्मप्रसाद को प्रदान करता है, काम क्रोध आदि पाप को नष्ट कर जीवन के शोषक दोष को दूर करता है॥ ८॥

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता उपासक[2])॥

५४१. अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व। ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्॥ ९ ॥

---

१. "मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
२. "कुत्स ऋषि भंवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३.११]।

पदपाठः— **अया पवा पवस्व एना वसूनि माꣳश्चत्वे इन्दो सरसि प्र धन्व ब्रध्नः चित् यस्य वातः न जूतिम् पुरुमेधाः पुरु मेधाः चित् तकवे नरम् धात्॥ ९॥**

अन्वयः—इन्दो अया पवा एना वसूनि पवस्व मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व ब्रध्नः-चित् पुरुषमेधाः-चित् यस्य जूतिम् वातः-न नरम् तकवे धात्॥

पदार्थः—(इन्दो) हे रसीले शान्त परमात्मन्! तू (अया पवा) इस बहने वाली धारा से (एना वसूनि पवस्व) इन अध्यात्मधनों को प्रवाहित कर, अतः (मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व) मननीय याचनीय प्रापणीय सरोवर में पहुँचा (ब्रध्नः-चित्) तू महान् भी "ब्रध्नो महन्नाम" [निघं० ३.३] (पुरुषमेधाः-चित्) अत्यन्त सङ्गमनीय भी है (यस्य) जिस—आपकी (जूतिम्) गति को (वातः-न) 'वातस्य' वात की गति के समान गति को (नरम्) और तुझ नेता परमात्मा को (तकवे) आत्मगति—मोक्षप्राप्ति के लिये "तकति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (धात्) उपासक आत्मा धारण करता है।

भावार्थः—हे रसीले शान्त परमात्मन्! तू इस बहने वाली आनन्दधारा से इन सभी अध्यात्मधनों को प्रवाहित कर, माननीय और प्रापणीय स्वरूप सरोवर में उपासक को पहुँचा, तू महान् भी है अत्यन्त सङ्गमनीय भी है, तेरी गति जो प्रबल वायु की गति के समान है उसे तथा मुझ नेता शान्त परमात्मा को आत्मगति—मोक्षप्राप्ति के लिये उपासक धारण करता है॥ ९॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्तिसम्पन्न अत्यन्त पापनाशक उपासक)॥

५४२. **महत् तत् सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्। अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥ १०॥**

पदपाठः— **महत् तत् सोमः महिषः चकार अपाम् यत् गर्भः अवृणीत देवान् अदधात् इन्द्रे पवमानः ओजः अजनयत् सूर्ये ज्योतिः इन्दुः॥ १०॥**

अन्वयः—महिषः सोम तत्-महत्-चकार यत्-अपां गर्भः देवान्-अवृणीत पवमानः इन्द्रे-ओजः-अदधात् इन्दुः सूर्ये ज्योतिः-अजनयत्॥

पदार्थः—(महिषः सोम) महान् "महिषो महन्नाम" [निघं० ३.३] शान्तस्वरूप परमात्मा ने (तत्-महत्-चकार) उस महत्त्वपूर्ण कर्म को किया है (यत्-अपां गर्भः) जो व्यापनशील परमाणुओं का गर्भ—हिरण्यगर्भ या गर्भरूप समष्टि जंगत् है—उसे व्यक्त किया (देवान्-अवृणीत) आरम्भसृष्टि के आदि

देवों—अग्नि आदि साङ्कल्पिक वैदिक ऋषियों को वेदज्ञान प्रदान कर वरा—अपनाया (पवमानः) उस आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा ने (इन्द्रे-ओजः-अदधात्) उपासक आत्मा के अन्दर आत्मबल—आत्मानुभूतिरूप ज्ञान को धरा—स्थापित किया (इन्दुः) शान्त दीप्तिमान् परमात्मा ने (सूर्ये ज्योतिः-अजनयत्) सूर्यपिण्ड में ज्योति को उत्पन्न किया।

भावार्थः—महान् शान्तस्वरूप अनन्त परमात्मा ने वह यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया कि व्यापनशील परमाणुओं में हिरण्यगर्भ समष्टि जगत् जो अव्यक्त था उसे व्यक्त किया, पुनः आदि सृष्टि के अग्नि आदि वैदिक ऋषियों को वेदज्ञान का प्रकाश देकर अपनाया, आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा ने उपासक आत्मा के अन्दर आत्मबल—स्वात्मानुभूति को जागृत किया तथा सूर्यपिण्ड में ज्योति को उत्पन्न किया है ॥ १० ॥

ऋषिः—कश्यपः (परमात्मदर्शी उपासक[1]) ॥

५४३. १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं
१ २ ३ १ २
सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥

पदपाठः— १ २र १ २र १ २र १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
असर्जि वक्वा रथ्ये यथा आजौ धिया मनोता प्रथमा
३ २ १ २र १ २र १ २र १ २र १ ३र ३ १ २ १ २र
मनीषा दश स्वसारः अधि सानौ अव्ये मृजन्ति वह्निम्
१ २र १ २र
सदनेषु अच्छ ॥ ११ ॥

अन्वयः—यथा रथ्ये-आजौ वक्वा असर्जि धिया प्रथमा मनोता मनीषा दश स्वसारः अव्ये सानोः-अधि वह्निम् सदनेषु अच्छ मृजन्ति ॥

पदार्थः—(यथा) जिस विधि से—यथाविधि (रथ्ये-आजौ) रमणीय सुखविषयक महान् पद में "परमं वा एतन्महो यदाजिः" [जै० २.४०५] (वक्वा) कल्याणवक्ता परमात्मा (असर्जि) ध्यानी उपासक द्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है, सो (धिया) ध्यान क्रिया से प्रेरित (प्रथमा मनोता) श्रेष्ठ वाक् स्तुति "वाग्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि" [ऐ० २.१०] तथा (मनीषा) प्रज्ञा "मनीषया प्रज्ञया" [निरु० ९.१०] और (दश स्वसारः) दश इन्द्रियों सम्बन्धी सु—असा—भली प्रकार परमात्मा की ओर फेंकने—प्रेरित करने वाली संयत वृत्तियाँ (अव्ये सानोः-अधि) योगभूमि के ऊँचे पद पर (वह्निम्) उपासकों के वहनकर्ता—मोक्ष में ले जाने वाले परमात्मा को (सदनेषु) हृदय-प्रदेशों में (अच्छ मृजन्ति) सम्यक् प्राप्त कराती हैं "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२.४३]।

---

१. "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १.८.८]।

भावार्थः—जिससे कि रमणीय सुखविषयक महान् पद—मोक्ष के निमित्त कल्याणवक्ता परमात्मा ध्यानी उपासकों द्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है, सो ध्यान क्रिया से प्रेरित स्तुति, प्रज्ञा और दशों इन्द्रियों की संयत वृत्तियाँ उस योगभूमि के ऊँचे पद पर उपासकों के वहनकर्ता—मोक्ष में ले जाने परमात्मा को हृदय-प्रदेशों में सम्यक् प्राप्त कराती हैं॥ ११ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)॥

५४४. अपामिवेदूर्मयस्तर्त्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम्॥ १२ ॥

पदपाठः— अपाम् इव इत् ऊर्म्मयः तर्त्तुराणाः प्र मनीषाः ईरते सोमम् अच्छ नमस्यन्तीः उप च यन्ति सम् च आ च विशन्ति उशतीः उशन्तम्॥ १२ ॥

अन्वयः—अपां तर्तुराणाः-ऊमर्यः-इव-इत् मनीषाः सोमम्-अच्छ प्र-ईरते च नमस्यन्तीः-उपयन्ति उशन्तीः-उशन्तम् संविशन्ति च आविशन्ति च॥

पदार्थः—(अपां तर्तुराणाः-ऊमर्यः-इव-इत्) जल स्रोतों की शीघ्र लहराती—फरकती हुई तरङ्गों की भाँति ही (मनीषाः) उपासक की प्रज्ञाएँ—ध्यान वृत्तियाँ (सोमम्-अच्छ) प्राप्तव्य शान्तस्वरूप परमात्मा की ओर (प्र-ईरते) उपासक को प्रेरित करती हैं, पुनः (च) और वे (नमस्यन्तीः-उपयन्ति) नमती हुई परमात्मा को प्राप्त होती हैं (उशन्तीः-उशन्तम्) चाहती हुई चाहते हुए को—में (संविशन्ति) संवेश करती हैं (च) और (आविशन्ति च) आविष्ट होती भी हैं।

भावार्थः—जल स्रोतों की शीघ्र फरकती हुई तरङ्गों की भाँति उपासक की ध्यान वृत्तियाँ उपासक को परमात्मा की ओर प्रेरित करती हैं जो परमात्मा की ओर नमती हुईं उस चाहते हुए परमात्मा को चाहती हुईं उस तक पहुँचती हैं और उस में स्थायी आश्रय भी ले लेती हैं॥ १२ ॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी उपासक)॥

छन्दः—१-६ अनुष्टुप्॥

५४५. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे। अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम्॥ १ ॥

पदपाठः— **पुरोजिती पुरः जितीः वः अन्धसः सुताय मादयित्नवे अप श्वानम् श्नथिष्टन श्नथिष्ट न सखायः स खायः दीर्घजिह्व्यम् दीर्घ जिह्व्यम् ॥ १ ॥**

अन्वयः—सखायः वः पुरोजिती अन्धसः मादयित्नवे सुताय दीर्घजिह्व्यम् श्वानम् अपश्नथिष्टन ॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक मित्रो! (वः) 'यूयम् विभक्ति व्यत्ययः' तुम (पुरोजिती) पुरः—संघर्ष संग्राम से पूर्व ही जिति—जय—अधिकार जिसका है उस प्रथम से सर्वस्वामी "सुपां सुलुक्–पूर्वसवर्णाच्छे....." [अष्टा ७.१.३९] (अन्धसः) आध्यानीय शान्त परमात्मा के (मादयित्नवे सुताय) हर्षजनक निष्पन्न—साक्षात्कार करने योग्य के लिये (दीर्घजिह्व्यम्) आयु—जीना ही रस—भोग लक्ष्य जिसका है ऐसे—"आयुर्वै दीर्घम्" [तां० १३.११.१२] 'जिह्व्या ग्राह्यो जिह्व्यो रसो रसभोगः' (श्वानम्) कुत्ते के समान को 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' (अपश्नथिष्टन) नष्ट करो "श्नथतिः–वधकर्मा" [निघं० २.१९] "जहि श्वयातुम्" [ऋ० ७.१०४.१२२]।

भावार्थः—उपासक जनो! तुम प्रथम से ही संघर्ष संग्राम की अपेक्षा न करते हुए सबके स्वामी सर्ववशी समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के आनन्दकारी साक्षात्कार के लिये अपने अन्दर से जीने मात्र को भोग बनाने वाले कुत्ते सदृश काम भाव को नष्ट करो ॥ १ ॥

ऋषिः—ययातिर्नाहुषः (जीवन्मुक्त होने में जीवनयात्री उपासक)॥

५४६. **अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति। पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अयम् पूषा रयिः भगः सोमः पुनानः अर्षति पतिः विश्वस्य भूमनः वि अख्यत् रोदसीइति उभेइति ॥ २ ॥**

पदार्थः—(अयं सोमः) यह शान्त परमात्मा (उभे रोदसी व्यख्यत्) द्युलोक और पृथिवीलोक की ऊपर नीचे की सीमाओं को प्रसिद्ध करता है (विश्वस्य भूमनः पतिः) उनमें होने वाले जगत् का स्वामी है, तथा (पूषा) पोषक—पालक (रयिः) रयिमान्—धनवान्—भोगरूप धनदाता 'मतुब्लोपश्छान्दसः' (भगः) भजनीय—आश्रयणीय (पुनानः–अर्षसि) आत्मा को निर्मल करता हुआ आता है।

भावार्थः—यह शान्त परमात्मा विश्व के द्युलोक पृथिवीलोकरूप सीमाओं को प्रसिद्ध करता है। उनमें रहने वाले जगत् का स्वामी है तथा सबका पोषक यथा योग्य रक्षक है। वह मोक्षधन का दाता है, आश्रयणीय और पवित्रकर्ता है ॥ २ ॥

ऋषिः—ययातिर्नाहुषः (जीवन्मुक्त होने में जीवनयात्री उपासक)॥

५४७. **सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः। पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **सुतासः मधुमत्तमाः सोमाः इन्द्राय मन्दिनः पवित्रवन्तः अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वः मदाः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सुतासः मधुमत्तमाः मन्दिनः सोमासः इन्द्राय पवित्रवन्तः अक्षरन् वः मदाः देवान् गच्छन्तु ॥

पदार्थः—(सुतासः) 'अत्र मन्त्रयोर्बहुवचनमादरार्थम्' निष्पादित—साक्षात् किया (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मीठा (मन्दिनः) हर्षभरा (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (पवित्रवन्तः) हृदयस्थ प्राणापान वाला "प्राणापानौ पवित्रे" [तै० सं० ३.२.४.४] (अक्षरन्) आनन्दधारारूप में प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार (वः) तेरे (मदाः) हर्षप्रवाह (देवान् गच्छन्तु) इन्द्रियों को प्राप्त हों।

भावार्थः—साक्षात् किया हुआ अत्यन्त मधुर हर्षभरा शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक आत्मा के लिये हृदयस्थ प्राणापान वाला आनन्दधारा में प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार परमात्मन्! तेरा हर्षप्रवाह इन्द्रियों को भी प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—मनुः संवरणः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने में कुशल मननशील)॥

५४८. **सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः। मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **सोमाः पवन्ते इन्दवः अस्मभ्यम् गातुवित्तमाः गातु वित्तमाः मित्रा मि त्राः स्वानाः अरेपसः अ रेपसः स्वाध्यः सु आध्यः स्वर्विदः स्वः विदः ॥ ४ ॥**

अन्वयः—गातुवित्तमाः अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः मित्रः इन्दवः सोमाः अस्मभ्यम् पवन्ते ॥

पदार्थः—(गातुवित्तमाः) गमन—ज्ञान को अत्यन्त प्राप्त कराने वाला "गातुं यज्ञाय गमनं यज्ञाय" [निरु० ४.२१] "पूर्वेषामपि गुरुः......." [योग० १.२६] (अरेपसः) अनवद्यवचन वाला यथार्थ वक्ता "रेपः—अवद्यं वचः" [उणा० ४.१९०] (स्वाध्यः) सम्यक् समन्तरूप से ध्यान करने योग्य (स्वर्विदः) सुख—मोक्षसुख को प्राप्त कराने वाला (मित्रः) प्रेरक स्नेही (इन्दवः) अध्यात्मरसभरा

(सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पवन्ते) आनन्दधारा में प्राप्त होता है।

भावार्थः—अत्यन्त ज्ञान प्राप्त कराने वाला, अयुक्तवचनरहित, यथार्थ वक्ता, सम्यक् सर्वथा ध्यान करने योग्य, मोक्षसुख का प्रापक, प्रेरक, स्नेही, अध्यात्मरसभरा परमात्मा हमारे लिये आनन्दधारा में प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—अम्बरीषऋजिश्वनावृषी (अध्यात्मान्न ग्राहक और ऋजुधर्मवान्—उपासक)॥

५४९. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्। इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्॥ ५ ॥

पदपाठः— अभि नः वाजसातमम् वाज सातमम् रयिम् अर्ष शतस्पृहम् शत स्पृहम् इन्दो सहस्रभर्णसम् सहस्र भर्णसम् तुविद्युम्नम् तुवि द्युम्नम् विभासहम् विभा सहम्॥ ५ ॥

अन्वयः—इन्दो नः वाजसातमम् शतस्पृहम् सहस्रभर्णसम् तुविद्युम्नम् विभासहम् रयिम् अभि-अर्ष॥

पदार्थः—(इन्दो) हे अध्यात्मरसभरे परमात्मन्! तू (नः) हमारे प्रति (वाजसातमम्) अत्यन्तबलसम्भाजक—(शतस्पृहम्) बहुत स्पृहणीय—(सहस्रभर्णसम्) बहुत भरणकर्ता—(तुविद्युम्नम्) बहुत यशस्कर—(विभासहम्) बड़े-बड़े प्रकाश के प्रसहनकर्ता—अकिञ्चित् करने वाले—(रयिम्) मोक्षैश्वर्य को (अभि-अर्ष) प्रेरित कर।

भावार्थः—हे अध्यात्मरस बरसाने वाले परमात्मन्! तू हमारे और अत्यन्त बलसम्भाजक बहुत भरणकर्ता बहुत यशस्कर बड़े प्रकाशक को भी सहने—स्वाधीन रखने वाले मोक्षैश्वर्य को प्रेरित कर॥ ५ ॥

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपावृषी (ज्ञानी गुरु से सम्बद्ध स्तुति प्रेरित करने वाले दो परमात्मोपासक)॥

५५०. अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः॥ ६ ॥

पदपाठः— अभि नवन्ते अद्रुहः अ द्रुहः प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम् वत्सम् न पूर्वे आयुनि जातम् रिहन्ति मातरः॥ ६ ॥

अन्वयः—मातरः जातं वत्सं न पूर्वे-आयुनि रिहन्ति इन्द्रस्य प्रियं काम्यम् अद्रुहः अभिनवन्त ॥

पदार्थः—(मातरः) माताएँ (जातं वत्सं न) उत्पन्न पुत्र को जैसे (पूर्वे-आयुनि) 'पूर्वे' पूर्वस्मिन् 'सर्वनामसंज्ञाभावश्छान्दसः' प्रथम आयु में—बाल्यकाल में ''छन्दसीणः'' [उणा० १.२] 'इणप्रत्ययात्—उकारान्तः—आयुशब्दः' (रिहन्ति) 'लिहन्ति' चूमती हैं या स्नेह स्वागत करती हैं ''रिहति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] ऐसे (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी आत्मा के (प्रियं काम्यम्) प्यारे कमनीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अद्रुहः) उससे द्रोह न करने वाले अपितु स्नेह करने वाले उपासकजन (अभिनवन्त) उसकी ओर अभिगमन करते हैं आकर्षित होते हैं ''नवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

भावार्थः—माताएँ जैसे उत्पन्न पुत्र को बाल्यकाल में चूमती हैं या स्नेह स्वागत करती हैं, वैसे ही आत्मा के प्रिय कमनीय परमात्मा को स्नेह करने वाले उपासकजन उसकी ओर आकर्षित होते हैं, उसे आलिङ्गन करते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपावृषी (ज्ञानी गुरु से सम्बद्ध स्तुति प्रेरित करने वाले दो परमात्मोपासक)॥ छन्दः—बृहती ॥

५५१. **आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम्। शुक्रा वियन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **आ हर्यताय धृष्णवे धनुः तन्वन्ति पौंस्यम् शुक्राः वि यन्ति असुराय अ सुराय निर्णिजे निः निजे विपाम् अग्रे महियुवः ॥ ७ ॥**

अन्वयः—विपाम्-अग्रे शुक्राः महीयुवः धृष्णवे हर्यताय पौंस्यं धनुः-आतन्वन्ति असुराय निर्णिजे वियन्ति ॥

पदार्थः—(विपाम्-अग्रे) मेधावी जनों के ''विपो मेधाविनः'' [निघं० ३.१५] आगे रहने वाले, (शुक्राः) शुद्ध—निष्पाप (महीयुवः) महती मोक्षपदवी के चाहने वाले मुमुक्षुजन (धृष्णवे) पापभाव को धर्षि करने वाले—(हर्यताय) कमनीय परमात्मा के लिये—उसके आनन्द प्राप्त करने के लिये (पौंस्यं धनुः-आतन्वन्ति) पौरुष—बलयुक्त ''पौंस्यं बलम्'' [निघं० २.९] प्रणव—'ओ३म्' नाम धनुष को समन्तरूप से तानते हैं ''प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्'' [मुण्ड० २.२.४] (असुराय निर्णिजे) प्राणदाता शुद्धस्वरूप में लाने वाले शान्त परमात्मा के लिये (वियन्ति) विशेष याचना और प्रार्थना करते हैं ''यन्ति याचनाकर्मा'' [निरु० ३.१९]।

भावार्थः—मोक्षपदवी के इच्छुक मुमुक्षु उपासकजन पापभावों को मिटाने

वाले कमनीय शान्त परमात्मा की प्राप्ति के लिए—उसके आनन्दरस पाने के लिए प्रणव—ओ३म् नामक बलवान् बलिष्ठ धनुष—ओ३म् जप को समन्तरूप से तानते हैं अर्थभावन के साथ "तज्जपस्तदर्थभावनम्" [योग० १।२८] प्राणप्रद निजशुद्धस्वरूप में लानेवाले परमात्मा के लिए विशेष प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—ऋजिश्वाम्बरीषावृषी (ऋजुगामी इन्द्रिय घोड़ों वाला और हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

५५२. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥

पदपाठः— परि त्यम् हर्यतम् हरिम् बभ्रुम् पुनन्ति वारेण यः देवान् विश्वान् इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥

अन्वयः—त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुम् वारेण पुनन्ति यः मदेन सह विश्वान् देवान् इत् परिगच्छति ॥

पदार्थः—(त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुम्) उस कमनीय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्त परमात्मा को "सोमो वै बभ्रुः" [श० ७.२.४.२६] (वारेण पुनन्ति) वारण करने के साधन मन से संस्कृत करते हैं (यः) जो कि (मदेन सह) अपने हर्ष—आनन्द के साथ (विश्वान् देवान्) सब इन्द्रियों को (इत्) ही (परिगच्छति) परिप्राप्त होता है।

भावार्थः—उपासकजन उस कामना योग्य दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता शान्तस्वरूप परमात्मा को वरणसाधन—मन से संस्कृत करते—निश्चय कर अपनाते हैं, जो समस्त इन्द्रियों को अपने आनन्द से परिप्राप्त होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—प्रजापतिर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध निज इन्द्रियों का पालक रक्षक संयमी उपासक) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ।

५५३. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥

पदपाठः— प्र सुन्वानाय अन्धसः मर्त्तः न वष्ट तत् वचः अप श्वानम् अराधसम् अ राधसम् हत मखम् न भृगवः ॥ ९ ॥

अन्वयः—अन्धसः प्रसुन्वानाय तद्वचः मर्त्तः न वष्ट अराधसं श्वानम्-अपहत मखं न भृगवः ॥

पदार्थः—(अन्धसः) आध्यानीय—आराधनीय शान्तस्वरूप परमात्मा को (प्रसुन्वानाय) प्रसिद्ध करने—साक्षात् करने वाले मुमुक्षु का "षष्ठ्यर्थे चतुर्थी

वक्तव्या" (तद्वचः) परमात्मविषयक वचन (मर्त्तः) जो मनुष्य (न वष्ट) "अवष्ट-छन्दस्यमाङ्योगेऽपि-अडभावः" नहीं चाहता है अपितु निन्दक नास्तिक नास्तिकभाव से अनादर करता है (अराधसं श्वानम्-अपहत) उस राधना—उपासना न करने वाले अपितु कृतघ्न या कुत्ते के समान कामभाव को नष्ट करो (मखं न भृगवः) ज्ञानाग्नि से जाज्वल्यमान आत्मा जिनका हो ऐसे ज्ञानीजन "भृगुर्भृज्यमानो न देहे" [निरु० ३.१७] मख—ज्ञानरहित गतिकर्म "मख गत्यर्थः" [भ्वादि०] को जैसे दूर करते हैं, ऐसे करें।

भावार्थः—आध्यानीय—आराधनीय शान्त परमात्मा का साक्षात् करने वाले मुमुक्षु उपासक के परमात्मसम्बन्धी उपदेश को जो नहीं सुनना चाहता है, अपितु विरोध करता है, उस ऐसे नास्तिक एवं कामी या कामभाव को कुत्ते के समान अलग कर दें। जैसे ज्ञानीजन ज्ञानहीन कर्म को अपने से अलग कर देते हैं॥ ९ ॥

नवम खण्ड

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी ज्ञानी उपासक)॥ छन्दः—जगती॥

५५४. **अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते। आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः॥ १ ॥**

पदपाठः— **अभि प्रियाणि पवते चनोहितः चनः हितः नामानि यह्वः अधि येषु वर्द्धते आ सूर्यस्य बृहतः बृहन् अधि रथम् विष्वञ्चम् वि स्वञ्चम् अरुहत् विचक्षणः वि चक्षणः॥ १ ॥**

अन्वयः—चनः-हितः प्रियाणि नामानि-अभि पवते येषु यह्वः-अधिवर्धते बृहन् विचक्षणः बृहतः सूर्यस्य विश्वञ्चं रथम् आरुहत्॥

पदार्थः—(चनः-हितः) अन्नों—भोज्यपदार्थों में नितान्त हितकर या नितान्त हितकर भोगने योग्य स्वादुपदार्थ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा आध्यात्मिक अन्न है "चन इत्यन्ननाम" [निरु० ६.१५] (प्रियाणि नामानि-अभि पवते) जो अपने ओ३म्, भू आदि प्रिय नामों को लक्ष्य बना उपासक की ओर आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है "नामानि नामयन्ति-इदमपीतरन्नामैतस्मादेवाभिसन्नामात्" [निरु० ४.२७] नाम पदार्थ के स्वरूप को नमाते जनाने वाले होते हैं (येषु यह्वः-अधिवर्धते) जिन नामों में महागुण वाला परमात्मा "यह्वः-महन्नाम" [निघं० ३.३] उपासना द्वारा प्रवृद्ध होता है—साक्षात् होता है (बृहन् विचक्षणः) विशेष साक्षात् करने वाला जीवन्मुक्त महान् उपासक (बृहतः सूर्यस्य) महान् प्रकाशमान एवं सरणीय प्राप्तव्य परमात्मा के (विश्वञ्चं रथम्) सर्वत्र वर्तमान आनन्दरसधाम को "तं वा

एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते'' [गो० १.२.११] ''रथो.....रसते वा'' [निरु० ९.११] (आरुहत्) आरोहण करता है—अधिष्ठित होता है।

भावार्थः—उपासक का हितकर सेवनीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा है, वह आध्यात्मिक अन्न होने से नितान्त हितकर है, भौतिक अन्न तो हितकर और अहितकर भी होता है, किन्तु आध्यात्मिक अन्न परमात्मा तो अमृत है। यह अपने स्वरूप को उपासक के प्रति नमाने वाले—साक्षात् कराने वाले ओ३म्, भू आदि नामों द्वारा उपासक को आनन्दधारा में प्राप्त होता है, जिन नामों में महागुणवान् परमात्मा का स्वरूप वर्तमान है उनके अनुसार साक्षात् होता है। वह महान् प्रकाशमान प्राप्त करने योग्य परमात्मा महान् विशेष द्रष्टा जीवन्मुक्त द्वारा यथार्थ साक्षात् होता है सर्वगत आनन्दरसधाम में अधिष्ठित है॥ १॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी ज्ञानी उपासक)॥

५५५. **अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद् देवेषु हरयः। वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः॥ २॥**

पदपाठः— **अचोदसः अ चोदसः नः धन्वन्तु इन्दवः प्र स्वानासः बृहत् देवेषु हरयः वि चित् अश्नानाः इषयः अरातयः अ रातयः अर्यः नः सन्तु सनिषन्तु नः धियः॥ २॥**

अन्वयः—हरयः-इन्दवः अचोदसः स्वानासः नः बृहद्देवेषु प्र धन्वन्तु चित् नः अश्नानाः इषयः अरातयः अर्यः विसन्तु नः धियः सनिषन्तु॥

पदार्थः—(हरयः-इन्दवः) 'बहुवचनमादरार्थम्' दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता आनन्दरसभरा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अचोदसः) स्वेच्छा से प्रेरित कृपालु हुआ (स्वानासः) निष्पन्न—साक्षात् हुआ (नः) हम मुमुक्षुओं को (बृहद्देवेषु) महान् देवों—जीवन्मुक्तों में (प्र धन्वन्तु) पहुँचावे—जीवन्मुक्त बनावे (चित्) अपितु (नः) हमारे (अश्नानाः) भोगने वाले (इषयः) एषणाएँ—इच्छाभाव (अरातयः) सुख न देने वाले अपितु दुःख देने वाले (अर्यः) अरि—शत्रुरूप (विसन्तु) विगत हो जावें—पृथक् हो जावें (नः) हमें (धियः) ध्यान प्रज्ञाएँ (सनिषन्तु) सम्भजती रहें—सम्यक् निरन्तर प्राप्त होती रहें।

भावार्थः—दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरसभरा स्वेच्छा से प्रेरित कृपालु परमात्मा साक्षात् हुआ हम मुमुक्षु उपासकों को ऊँचे देवों—जीवन्मुक्तों में पहुँचा दे—जीवन्मुक्त बना दे, अपितु हमारे भोगने वाले एषणाएँ—दुःख देने वाले इच्छाभाव एवं दुःख देने वाले शत्रुजन पृथक् हो जावें, और हमें ध्यान प्रज्ञाएँ सम्यक् भजती रहें निरन्तर चलती रहें॥ २॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी ज्ञानी उपासक)॥

५५६. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः। अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः॥ ३॥

पदपाठः— एषः प्र कोशे मधुमान् अचिक्रदत् इन्द्रस्य वज्रः वपुषः वपुष्टमः अभि ऋतस्य सुदुघाः सु दुघाः घृतश्चुतः घृत श्चुतः वाश्राः अर्षन्ति पयसा च धेनवः॥ ३॥

अन्वयः—एषः मधुमान् कोशे प्र-अचिक्रदत् इन्द्रस्य वज्रः वपुषः-वपुष्टमः ऋतस्य सुदुघः घृतश्चुतः अभि-अर्षन्ति पयसा च वाश्राः-धेनवः॥

पदार्थः—(एषः) यह (मधुमान्) मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा (कोशे) हृदयकोष्ठ में (प्र-अचिक्रदत्) प्रकृष्टकथन—आन्तरिक प्रवचन करता है (इन्द्रस्य) उपासक आत्मा का (वज्रः) पाप से वर्जन कराने वाला ओज है "वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः" [निरु० ३.११] "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (वपुषः-वपुष्टमः) बीज बोने वाले उत्पादक आत्मा का भी प्रशस्त बीज बोनेवाला उत्पादक है (ऋतस्य) उस अमृतस्वरूप परमात्मा की "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०] (सुदुघः) सुदोहन योग्य (घृतश्चुतः) तेज चुआने वाली आनन्दधाराएँ (अभि-अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं (पयसा च वाश्राः-धेनवः) 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' जैसे दुधारी गौवें रँभाती हुई, शब्द करती हुई दूध देने के कारण से प्राप्त हो रही हों।

भावार्थः—यह मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा हृदयकोष्ठ में प्रवचन करता हुआ प्राप्त होता है, उपासक को पाप से बचाने वाला ओज अध्यात्मबलप्रद और पिता का भी पिता परमपिता है। इस अमृतस्वरूप की अच्छी दोहने वाली अमृतधाराएँ तेज को झिराती हुई प्राप्त होती हैं। जैसे दूध देने के कारण रम्भाती हुई गौवें प्राप्त हुआ करती हैं॥ ३॥

ऋषिः—ऋषिगणः (ऋषियों में ऊँचा, गणना में आने वाला)॥

५५७. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा॥ ४॥

पदपाठः— प्र उ अयासीत् इन्दुः इन्द्रस्य निष्कृतम् निः कृतम् सखा स खा सख्युः स ख्युः न प्र मिनाति सङ्गिरम् सम् गिरम् मर्यः इव युवतिभिः सम् अर्षति सोमः कलशे शतयामना शत यामना पथा॥ ४॥

अन्वयः—इन्दुः सोमः सखा इन्द्रस्य सख्युः निष्कृतम् उ प्र-अयासीत् सङ्गिरं न प्रमिनाति कलशे शतयामना पथा समर्षति मर्यः-इव युवतिभिः ॥

पदार्थः—(इन्दुः सोमः) रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा (सखा) समानख्यान—समानधर्मी मित्र (इन्द्रस्य सख्युः) समानधर्मी मित्र उपासक आत्मा के (निष्कृतम्) संस्कृत—वासनारहित अन्तःकरण को "निर्-इत्येष समुइत्येतस्य स्थाने" [निरु० १२.८] "यद् वै निष्कृतं तत्संस्कृतम्" [ऐ० आ० १.१.४] (उ) अवश्य (प्र-अयासीत्) प्राप्त होता है (सङ्गिरं न प्रमिनाति) सङ्ग वाले स्थान—हृदय को नष्ट नहीं करता है किन्तु (कलशे) उस कलकल शब्द शयन वाले स्थान में (शतयामना पथा समर्षति) बहुत गतिक्रम वाले मार्ग से प्राप्त होता है (मर्यः-इव युवतिभिः) जैसे गृहस्थजन सहयोगिनी महिलाओं से गृहस्थाश्रम में प्रसिद्ध होता है।

भावार्थः—रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा आत्मा का समानधर्मी मित्र आत्मा के शुद्ध अन्तःकरण में अवश्य प्राप्त होता है। वह सङ्ग वाले स्थान—हृदय को नष्ट नहीं करता है, अपितु उस कलकल शब्दशयन स्थान हृदय में बहुत गतिक्रम वाले मार्ग—योगाभ्यास से प्राप्त होता है जैसे गृहस्थजन साथ रहने वाली महिलाओं—पत्नी, बहिन, पुत्रियों के साथ गृहस्थाश्रम में प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी—अतीन्द्रिय परमात्मदर्शी उपासक)॥

५५८. **धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यः रसः दक्षः देवानाम् अनुमाद्यः अनु माद्यः नृभिः हरिः सृजानः अत्यः न सत्वभिः वृथा पाजांꣳसि कृणुषे नदीषु आ ॥ ५ ॥**

अन्वयः—हरिः दिवः-धर्ता कृत्व्यः रसः देवानां दक्षः नृभिः अनुमाद्यः सत्त्वभिःसृजानः अत्यः-न वृथा पाजांसि कृणुषे नदीषु-आपवते ॥

पदार्थः—(हरिः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (दिवः-धर्ता) अमृतधाम मोक्ष का धारक "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] (कृत्व्यः) उपासना द्वारा साक्षात् कर्त्तव्य (रसः) उपासकों का रसरूप (देवानां दक्षः) मुमुक्षुओं का प्राण है "प्राणो वै दक्षः" [जै० ३.६२] (नृभिः) जीवन्मुक्तों द्वारा "नरो वै देवविशः" [जै० १.८९] (अनुमाद्यः) अनुमोदनीय—अनुहर्षित करने योग्य (सत्त्वभिः-सृजानः) आस्तिकजनों द्वारा हृदय में संसृष्ट किया—उपासित किया हुआ (अत्यः-न वृथा पाजांसि कृणुषे) निरन्तर गतिशील घोड़े के समान स्वभावतः बलकारी कार्य भली-भाँति करता है "अत्योऽश्वः" [निघं०

१.१४] (नदीषु-आपवते) स्तुति शब्द करने वाली प्रजाओं में "पुरुषो वाव नदः" [ऐ० १.३.५]

भावार्थः—दुःखापहर्ता सुखाहर्ता, अमृतधाम का धारक परमात्मा, उपासना द्वारा साक्षात्करणीय, रसरूप, प्राणस्वरूप जीवन्मुक्तों द्वारा अनुकर्षणीय, आस्तिकजनों द्वारा हृदय में संसृष्ट किया हुआ, निरन्तर गतिशील घोड़े के समान स्वभावतः बलकारी कार्य करता है स्तुति द्वारा शब्द करने वाली मानव प्रजाओं में प्राप्त होता है ॥५॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी—अतीन्द्रिय परमात्मदर्शी उपासक)॥

५५९. **वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्या विशन्मनीषिभिः॥ ६॥**

पदपाठः— **वृषा मतीनाम् पवते विचक्षणः वि चक्षणः सोमः अह्नाम् अ ह्नाम् प्रतरीता प्र तरीता उषसाम् दिवः प्राणा प्र आना सिन्धूनाम् कलशान् अचिक्रदत् इन्द्रस्य हार्दि आविशन् आ विशन् मनीषिभिः॥ ६॥**

अन्वयः—विचक्षणः सोमः मतीनां वृषा अह्नाम्-उषसां दिवः प्रतरीता पवते सिन्धूनाम् प्राणा इन्द्रस्य कलशान्-अचिक्रदत् मनीषिभिः हृदि-आविशन्॥

पदार्थः—(विचक्षणः सोमः) सर्वद्रष्टा शान्तस्वरूप परमात्मा (मतीनां वृषा) अर्चना करने वाले उपासकों का "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] सुखवर्षक (अह्नाम्-उषसां दिवः प्रतरीता) दिनों उषावेलाओं सूर्य का "सोऽसौ द्युलोकः सोऽसावादित्यः" [ऐ० आ० १.४.३] प्रवर्धयिता प्रवर्तयिता (पवते) प्राप्त होता है (सिन्धूनाम्) शरीर में स्यन्दमान—बहती हुई "सिन्धूनां स्यन्दमानानाम्" [निरु० १०.६] या स्रवण करती हुई—स्रवित होती हुई "सिन्धुः स्रवणात्" [निरु० ४.२७] शरीर को बान्धने वाली नाड़ियों का "तद्यदेतदिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० उ० १.९.२.९] (प्राणा) प्राण 'सुस्थाने-आकारादेशश्छान्दसः' प्रकृष्ट जीवनरसप्रदाता परमात्मा (इन्द्रस्य कलशान्-अचिक्रदत्) आत्मा के कलकल शब्द शयन नाड़ीसङ्गमों को रचनार्थ प्राप्त होता है (मनीषिभिः) 'मनीषिणाम् विभक्तिव्यत्ययः' ब्रह्मज्ञानियों के (हृदि-आविशन्) हृदयस्थान में आविष्ट हो जाता है।

भावार्थः—सर्वद्रष्टा शान्तस्वरूप परमात्मा स्तुतिकर्ता उपासकों का कामवर्षक—कामनापूरक है। जीवन की प्रभातवेलाओं दिनों सूर्यदर्शन को प्रवृद्ध करने वाला है शरीर में बढ़ने चलने वाले शरीर को बान्धने वाली प्राणनाड़ियों का

प्राणस्वरूप जीवनप्रद है, आत्मा के अधीन कलकल शब्द वाले नाड़ी सङ्गमों को प्राप्त हुआ मनस्वी ऋषियों के हृदय में सदा साक्षात् रहता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—रेणुर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध सूक्ष्मज्ञानवान्) ॥

५६०. **त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि। चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **त्रिः अस्मै सप्त धेनवः दुदुह्रिरे सत्याम् आशिरम् आ शिरम् परमे व्योमनि वि ओमनि चत्वारि अन्या अन् या भुवनानि निर्णिजे निः निजे चारूणि चक्रे यत् ऋतैः अवर्द्धत ॥ ७ ॥**

अन्वयः—परमे व्योमन् अस्मै सप्त धेनवः त्रिः सत्याम्-आशिरम् दुदुह्रिरे चत्वारि चारूणि-अन्या भुवनानि निर्णिजे चक्रे यत् ऋतैः-अवर्धत ॥

पदार्थः—(परमे व्योमन्) श्रेष्ठ हृदय अवकाश में प्राप्त होने के निमित्त (अस्मै) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (सप्त धेनवः) सात गायत्री आदि छन्दोमयी वाणियां "धेनुः-वाक्" [निघं० १ ।११] (त्रिः) स्तुति प्रार्थना उपासना तीन में आवृत हुई (सत्याम्-आशिरम्) सत्य आश्रयरूप चिति—आत्मशक्ति को (दुदुहिरे) दुहती हैं—समर्पित करती हैं (चत्वारि चारूणि-अन्या भुवनानि) चार ज्ञान साधन—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार सुन्दरज्ञान साधन अननीय मानव जीवन के उपयोगी इच्छादि भावनापूर्ण अन्तःकरणों को (निर्णिजे) शुद्ध करने—निर्दोष—सगुण करने के लिये (चक्रे) बनाता है (यत्) यतः (ऋतैः अवर्धत) इस प्रकार सदाचरणों से बढ़ता है—साक्षात् होता है।

भावार्थः—सत्त्वगुणपूर्ण हृदयावकाश में प्राप्ति के निमित्त शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये सात गायत्री आदि छन्दोमयी वाणियाँ स्तुति-प्रार्थना-उपासनाक्रमों में आई हुई चित्ति शक्ति—आत्मा को समर्पित करती हैं तथा चार ज्ञान साधन मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, जीवनोपयोगी इच्छादि भावनापूर्ण अन्तःकरण को शुद्ध करता है—उपासक के अन्दर साक्षात् होता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—वेनो भार्गवः (आत्मीयतेजोयुक्त तेजस्वी से सम्बद्ध परमात्मसङ्गति का इच्छुक उपासक) ॥

५६१. **इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्त्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह। मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **इन्द्राय सोम सुषुतः सु सुतः परि स्रव अप अमीवा भवतु रक्षसा सह मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः द्रविणस्वन्तः इह सन्तु इन्दवः ॥ ८ ॥**

अन्वयः—सोम इन्द्राय सुषुतः परि स्रव रक्षमा सह-अमीवा-अपभवतु ते रसस्य द्वयाविनः मा मत्सत इह-इन्दवः-द्रविणस्वन्तः सन्तु ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (इन्द्राय) आत्मा के लिये (सुषुतः) सुनिष्पन्न—साक्षात् होकर (परि स्रव) आनन्दरूप में स्रवित हो (रक्षसा सह-अमीवा-अपभवतु) मोहशोक मानव दोष के सहित रोगी करने वाला कामवासना आदि मानसरोग दूर हो (ते रसस्य) तेरे अध्यात्मरस के अंश का (द्वयाविनः) 'मायाविनः' दो वृत्ति वाले—अन्दर कुछ, बाहिर कुछ, दो रूपों वाले, छलीजन (मा मत्सत) नहीं आनन्द ले सकते, अतः द्विधा न रखें—मायावी छली न बनें (इह-इन्दवः-द्रविणस्वन्तः सन्तु) इस जीवन में रसीला शान्त परमात्मा अध्यात्मबल वाला अध्यात्मबलप्रद हो।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासक आत्मा के लिये साक्षात् होकर आनन्दरूप में स्रवित हो, मोह-शोक आदि मानसदोष के सहित रोगी बनाने वाले कामवासना आदि मानस रोग दूर हों, तेरे अध्यात्मरस का अंश भी अन्दर कुछ, बाहिर कुछ, द्विधावृत्ति वाले मायावी छलीजन आनन्द नहीं ले सकते, अतः हम निश्छल निरन्तर साक्षात् करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—वसु भारद्वाजः (अमृत अन्नभोग का अधिकारी परमात्मा में वसा हुआ)॥

५६२. **असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥**

पदपाठः— **असावि सोमः अरुषः वृषा हरिः राजा इव दस्मः अभि गाः अचिक्रदत् पुनानः वारम् अति एषि अव्ययम् श्येनः न योनिम् घृतवन्तम् आ असदत् ॥ ९ ॥**

अन्वयः—सोमः अरुषः असावि वृषा हरिः राजा-इव दस्मः गाः-अभि-अचिक्रदत् पुनानः-अव्ययं वारम्-अत्येषि श्येनः-न घृतवन्तं योनिम्-आसदत् ॥

पदार्थः—(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अरुषः) आरोचमानरूप में "अरुषीरारोचमानात्" [निरु० १२.८] (असावि) साक्षात् हुआ (वृषा हरिः) कामनावर्षक, दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (राजा-इव दस्मः) राजा के समान दर्शनीय

''दश दर्शने'' [चुरादि०] (गा:-अभि-अचिक्रदत्) स्तुतियों को लक्ष्यकर—स्तुतियों के अनुसार प्रवचन करता है (पुनानः-अव्ययं वारम्-अत्येषि) स्तुतियों द्वारा प्रेरित हुआ आत्मा के रक्षणरूप आवरक शरीर को पार कर—लाङ्घकर अन्दर आत्मा में प्राप्त होता है (श्येनः-न घृतवन्तं योनिम्-आसदत्) प्रशंसनीय गतिवाले भासपक्षी (बाज) की भाँति तेजोयुक्त—आत्मा वाले—आत्मगृह हृदय को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा आरोचमान कामनावर्षक दुःखापहर्ता सुखाहर्ता के रूप में साक्षात् होता है, राजा की भाँति दर्शनीय है, स्तुतियों के अनुसार प्रवचन करता है स्तुतियों द्वारा प्रेरित हुआ ही शरीर आवरक को लाङ्घकर अन्दर आत्मा में प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रशंसनीय गति वाले भासपक्षी (बाज) के समान आत्मा से युक्त हृदय प्रदेश को प्राप्त होता है॥ ९॥

ऋषिः—वत्सप्रीः (मन को परमात्मा के प्रेम से पूरित करने वाला[1] उपासक)॥

५६३. **प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः। बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे॥ १०॥**

पदपाठः— **प्र देवम् अच्छ मधुमन्तः इन्दवः असिष्यदन्त गावः आ न धेनवः बर्हिषदः बर्हि सदः वचनावन्तः ऊधभिः परिस्रुतम् परि स्रुतम् उस्रियाः उ स्रियाः निर्णिजम् निः निजम् धिरे॥ १०॥**

अन्वयः—मधुमन्तः-इन्दवः देवम्-अच्छा प्र-आ-असिष्यन्दत धेनवः-गावः-न बर्हिषदः-वचनवन्तः उस्रियाः-ऊधभिः परिस्रुतं निर्णिजं धिरे॥

पदार्थः—(मधुमन्तः-इन्दवः) मधुर रसीला आनन्दस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (देवम्-अच्छा) इन्द्रियदेवों के अधिराज इन्द्र—आत्मा को लक्ष्य कर ''इन्द्रो वै देवानामधिराजः'' [मै० २.२.११] या मन को लक्ष्य कर ''मनो देवः'' [गो० १.२.१०] (प्र-आ-असिष्यन्दत) प्रकृष्ट एवं समन्तपूर्णरूप से स्रवित होता है (धेनवः-गावः-न) दुधारी गौओं की भाँति, जैसे गौएँ बछड़े को लक्ष्य कर दूधरूप स्वरस स्रवित करती हैं और जबकि (बर्हिषदः-वचनवन्तः) हृदयावकाश में प्राप्त हो प्रवचन करते हुए होते हैं, तब (उस्रियाः-ऊधभिः) गौएँ जैसे ''उस्रिया गोनाम'' [निघं० २.११] दुग्धाधार स्थलों से (परिस्रुतं निर्णिजं धिरे) धारारूप में निकले शुद्ध दूध को धारण करते हैं वह भी ऐसे शुद्ध आनन्दरस

---

१. ''मन एव वत्सः'' [श० ११.३.१.१]।

को धारण करता है।

भावार्थः—मधुर रसीला आनन्दस्वरूप परमात्मा मन या आत्मा को लक्ष्य कर प्रबल और समन्त पूर्णरूप से स्रवित होता है, हृदयाकाश में विराजमान हो, प्रवचन प्रपूर्ण हुआ प्रवचनामृत प्रदान करता है। दुधारु गौओं की भाँति, जैसे गौओं के गोष्ठ—गोसदन में बछड़े के प्रति निर्मल दूध को दुग्धस्थलों से गौएँ स्रवित करती हैं॥ १०॥

ऋषिः—अत्रिः (इस जन्म में ही तृतीयधाम को प्राप्त होने वाला[1] या परमात्मा में निरन्तर गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥

५६४. **अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥ ११॥**

पदपाठः— **अञ्जते वि अञ्जते सम् अञ्जते क्रतुम् रिहन्ति मध्वा अभि अञ्जते सिन्धोः उच्छ्वासे उत् श्वासे पतयन्तम् उक्षणम् हिरण्यपावाः हिरण्य पावाः पशुम् अप्सु गृभ्णते॥ ११॥**

अन्वयः—हिरण्यपावाः क्रतुम् अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते मध्वा-अभ्यञ्जते रिहन्ति सिन्धोः उच्छ्वासे पतन्तम् उक्षणम् पशुम् अप्सु गृभ्णते॥

पदार्थः—(हिरण्यपावाः) आत्मभाव से पहुँचने—प्राप्त करने वाले उपासकजन "आत्मा हरितं हिरण्यम्" [काठ० १०.४] (क्रतुम्) 'मतुब्लोपश्छान्दसः' प्रशस्तकर्म प्रज्ञान वाले तथा प्रशस्तयज्ञ—अध्यात्मयज्ञ के आधार सोम—शान्त परमात्मा को (अञ्जते) मन में निश्चित करते हैं, मनन करते हैं (व्यञ्जते) निदिध्यासित करते हैं (समञ्जते) साक्षात् करते हैं (मध्वा-अभ्यञ्जते) आत्मसमर्पण से अभिमुख करते हैं "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [जै० १.२२४] पुनः (रिहन्ति) आत्मभाव से उसे अर्चित करते हैं "रिहति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (सिन्धोः) स्यन्दनशील प्राणवान् हृदय के "प्राणो वै सिन्धुः" [कौ० १६.२] 'मतुब्लोपश्छान्दसः' (उच्छ्वासे) उच्छ्वासस्थान—अवकाश में (पतन्तम्) प्राप्त होते हुए—"पतति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (उक्षणम्) अमृतरस सींचने वाले—(पशुम्) सर्वद्रष्टा परमात्मा को (अप्सु गृभ्णते) श्रद्धाभावों में "आपः श्रद्धा" [काठ० ३१.३] ग्रहण करते हैं।

भावार्थः—आत्मभाव से पहुँचने वाले उपासकजन प्रशस्तकर्म प्रज्ञान के

---

१. "अत्रैब तृतीयमृच्छत०" [निरु० ३.१७]।

भण्डार एवं अध्यात्मयज्ञ के आधार शान्त परमात्मा का मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार करते हैं तथा आत्मसमर्पण से उसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं। स्वात्मा से सम्पृक्त कर उसका अमृतरस लेते हैं। हृदय को सींचने वाले को आत्मभावों से ग्रहण करते हैं॥ ११॥

ऋषिः—पवित्र आङ्गिरसः (प्राणविद्यासम्पन्न निष्पाप उपासक)॥

५६५. **पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत॥ १२॥**

पदपाठः— **पवित्रम् ते विततम् वि ततम् ब्रह्मणः पते प्रभुः प्र भुः गात्राणि परि एषि विश्वतः अतप्ततनूः न तत् आमः अश्नुते शृतासः इत् वहन्तः सम् तत् आशत॥ १२॥**

अन्वयः—ब्रह्मणस्पते ते पवित्रम् विततम् प्रभुः गात्राणि सवर्तः पर्येषि अतप्ततनूः आमः तत्-न-अश्नुते शृतासः-इत्-वहन्तः तत् समाशत॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे अमृत आनन्द के स्वामिन्! परमात्मन्! "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० ३०१.८.१.१०] (ते) तेरा (पवित्रम्) पवित्र करने वाला आनन्दरस "येन देवा पवित्रेणात्मानं पुनते सदा तेन सहस्रधारेण पवमान पुनातु मा" [काठ० सं० ९६.२] (विततम्) उपासक के अन्दर फैल रहा है (प्रभुः) प्रभावकारी हुआ (गात्राणि सवर्तः पर्येषि) उपासक के अङ्गों में सब ओर प्राप्त हो रहा है (अतप्ततनूः) असंयत देह वाला (आमः) कच्चा—मानसरोगी (तत्-न-अश्नुते) उस अमृत आनन्दरस को प्राप्त नहीं कर सकता है (शृतासः-इत्-वहन्तः) पके हुए संयमीजन ही वहन करते हुए (तत् समाशत) उसे सम्यक् भोगते हैं।

भावार्थः—हे अमृतानन्दरस के स्वामिन् परमात्मदेव! तेरा पवित्र—निर्दोष करने वाला अमृतानन्दरस उपासक के अन्दर फैलता है, इस प्रकार तू प्रभावकारी होकर उपासक के अन्दर मन आदि अङ्गों में परिप्राप्त हो रहा है, असंयमी मानसरोगी कच्चाजन तेरे अमृतानन्दरस को नहीं प्राप्त कर सकता है, किन्तु पके संयमीजन ही वहन करते हुए सम्यक् भोग सकते हैं॥ १२॥

दशम खण्ड

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)॥ छन्दः—उष्णिक्

५६६. **इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् अच्छः सुताः इमे वृषणम् यन्तु ह रयः श्रुष्टे जातासः इन्दवः स्वर्विदः स्वः विदः ॥ १ ॥**

अन्वयः—इमे सुताः हरयः श्रुष्टे जातासः स्वर्विदः-इन्दवः वृषणम्-इन्द्रम्-अच्छ यन्तु ॥

पदार्थः—(इमे) यह (सुताः) निष्पन्न—साक्षात् हुआ (हरयः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (श्रुष्टे जातासः स्वर्विदः-इन्दवः) आशु—शीघ्र व्याप्ति के निमित्त ''श्रुष्टी....आशु अष्टी'' [निरु० ६.१३] आर्द्ररसभरा मोक्षानुभव कराने वाला रसीला सोम—परमात्मा (वृषणम्-इन्द्रम्-अच्छ यन्तु) स्तुतिवर्षक आत्मा की ओर प्राप्त हो।

भावार्थः—यह साक्षात् हुआ दुःखापहर्ता सुखाहर्ता मोक्षानुभव कराने वाला रसीला परमात्मा स्तुति बरसाने वाले उपासक आत्मा की ओर भली-भाँति शीघ्र प्राप्त होता है ॥ १ ॥

ऋषिः—चक्षुर्मानवः (मनु—मननशील होने में समर्थदृष्टिमान् उपासक)॥

५६७. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्त्रव। द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम्॥ २ ॥

पदपाठः— **प्र धन्व सोम जागृविः इन्द्राय इन्दो परि स्त्रव द्युमन्तम् शुष्मम् आ भर स्वर्विदम् स्वः विदम्॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्दो सोम प्रधन्व जागृविः इन्द्राय परिस्त्रव स्वर्विदम् द्युमन्तम् शुष्मम्-आभर ॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (प्रधन्व) प्राप्त हो (जागृविः) जगाने वाला—सचेत करने वाला—बुद्धि-विकास कराने वाला है। (इन्द्राय) आत्मा के लिये (परिस्त्रव) अमृतरूप में परिस्त्रवित हो (स्वर्विदम्) मोक्ष प्राप्त कराने वाले (द्युमन्तम्) तेजस्वी (शुष्मम्-आभर) बल को ''शुष्मं बलनाम'' [निघं० २.९] हमारे अन्दर आभरित कर।

भावार्थः—हे आनन्दरसभरे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू प्राप्त हो तथा सचेत करने वाला उपासक आत्मा के लिये अमृतरूप में स्त्रवित हो। मोक्ष प्राप्त कराने वाले तेजस्वीबल को हमारे अन्दर पूर्णरूप से भर दे॥ २ ॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—आत्मतृप्तिमान् और नार—नरविषयक ज्ञान देने वाला)॥

५६८. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत। शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये॥ ३ ॥

पदपाठः— सखायः स खायः आ नि सीदत पुनानाय प्र गायत शिशुम् न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥

अन्वयः—सखायः आनिषीदत पुनानाय प्रगायत श्रिये शिशुं न यज्ञैः परिभूषत ॥

पदार्थः—(सखायः) हे समानख्यान—समानधर्मी उपासकजनो! (आनिषीदत) समन्तरूप से सुखासन पर बैठो (पुनानाय) जीवन को शुद्ध करने वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (प्रगायत) प्रकृष्टगान स्तवन करो (श्रिये) अपने कल्याण के लिये "श्रीर्वै भद्रम्" [जै० ३.१७२] (शिशुं न यज्ञैः परिभूषत) शंसनीय लघुबालक के समान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को "शिशुः शंसनीयो भवति" [निरु० १०.३९] अध्यात्मयज्ञों—सङ्गतिकरणों से सब ओर भूषित—सम्मानित करो।

भावार्थः—हे समानधर्मी उपासकजनो! समन्तरूप से सुखासन पर बैठो। उस पवित्र करने वाले परमात्मा के लिये अपने कल्याण के लिये अच्छा स्तवन करो। प्रशंसनीय बालक के समान सङ्गतिकरणों से परिभूषित करो॥ ३॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—आत्मतृप्तिमान् और नार—नरविषयक ज्ञान देने वाला)॥

५६९. **तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत। शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥ ४॥**

पदपाठः— तम् वः सखायः स खायः मदाय पुनानम् अभि गायत शिशुम् न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः॥ ४॥

अन्वयः—सखायः वः-मदाय तं पुनानम् अभिगायत शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥

पदार्थः—(सखायः) हे समानख्यान समानधर्मी उपासको! (वः-मदाय) तुम्हारे—अपने हर्ष—आनन्द के लिये (तं पुनानम्) उस निर्मल करने वाले को (अभिगायत) लक्ष्यकर गाओ (शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त) बालक को जैसे अदनीय भोजनों से स्वाद कराते हैं ऐसे "हव्यमदनम्" [निरु० ११.३३] "हु दानादनयोः" [जुहो०] 'अदनार्थेऽत्र' (गूर्तिभिः) अर्चनाओं से—स्तुतियों से अर्चित करो—स्वाद दिलाओ "गृणाति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] "गृशब्दे" [क्र्यादि०] 'ततः स्त्रियां क्तिन्' "उदौष्ठ्यपूर्वस्य, बहुलं छन्दसि" [अष्टा० ७.१.१०३] 'उत् छान्दसः'।

भावार्थः—हे समानधर्मी उपासकजनो! अपने आनन्द प्राप्ति के हेतु उस पवित्र करने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा के प्रति गुणगान गाओ और उसे स्तुतियों

द्वारा अर्चित करो जैसे अनेक भोजन पदार्थों से बालक को स्वाद दिलाते हैं ऐसे उस परमेश्वर को अपनी ओर आकर्षित करो ॥ ४ ॥

ऋषिः—त्रितः (तीन प्रकार से परमात्मा की स्तुति करने वाला उपासक) ॥

५७०. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्। विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

पदपाठः— प्राणा प्र आना शिशुः महीनाम् हिन्वन् ऋतस्य दीधीतिम् विश्वा परि प्रिया भुवत् अध द्विता ॥ ५ ॥

अन्वयः—महीनां शिशुः प्राणा ऋतस्य दीधितिं हिन्वानः विश्वा प्रिया-अध द्विता परिभुवत् ॥

पदार्थः—(महीनां शिशुः प्राणा) स्तुतियों का "मही वाङ् नाम" [निघं० १.११] शंसनीय या शिशु समान प्राणारूप सोम "प्राणो वै सोमः" [श० ७.३.१.४५] 'आकारादेशश्छान्दसः' (ऋतस्य दीधितिं हिन्वानः) अमृत—मोक्ष की "ऋतममृतम्" [जै० २.१६०] दीप्त झलक को प्रेरित करने के हेतु (विश्वा प्रिया-अध द्विता) सभी प्रिय समानख्यान चेतन अध—अनन्तर अप्रिय—असमानख्यान जड़ इस प्रकार दो विभागों को या सारे प्रिय—सुखों और अप्रिय—दुःखों को (परिभुवत्) अधिकृत करता है।

भावार्थः—स्तुतियों के द्वारा शंसनीय शिशु समान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा अमृतरूप मोक्ष की दीप्ति झलक को प्रेरित करने के लिये सब चेतनों और जड़ों को कर्मफलरूप सुखों और दुःखों पर अधिकार किए हुए है अतः उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ५ ॥

ऋषिः—मनुराप्सवः ? आप्तवः (देह में व्याप्त परमात्मा का मनन करने वाला) ॥

५७१. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा। आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥

पदपाठः— पवस्व देववीतये देववीतये इन्दो धाराभिः ओजसा आ कलशम् मधुमान् सोम नः सदः ॥ ६ ॥

अन्वयः—इन्दो सोम ओजसा धाराभिः देववीतये पवस्व मधुमान् नः कलशम्-आसदः ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसयुक्त (सोम) शान्त परमात्मन्! तू (ओजसा) वेगबल के साथ (धाराभिः) आनन्दधाराओं से (देववीतये) मुमुक्षु के आत्मपान

के लिये (पवस्व) बह चल (मधुमान्) मधुरता वाला तू (नः) हमारे (कलशम्-आसदः) कलकल शब्द के शयन स्थान हृदय में विराजमान हो।

भावार्थः—हे आनन्दरसवन् शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू वेग के साथ अपनी आनन्दधाराओं द्वारा मुमुक्षुजनार्थ अमरपान के लिये "वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्य-सनखादनेषु" [अदादि०] 'सामर्थ्यात् पानार्थे' बह चलता है। तू मधुररूप हमारे हृदय घर में प्राप्त होता रह॥ ६॥

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)॥

५७२. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥ ७॥

पदपाठः— सोमः पुनानः ऊर्म्मिणा अव्यम् वारम् वि धावति अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥ ७॥

अन्वयः—पुनानः सोमः ऊर्मिणा अव्यं वारम् वि धावति वाचः-अग्रे पवमानः कनिक्रदत्॥

पदार्थः—(पुनानः सोमः) अध्येष्यमाण—मनन निदिध्यासन में आया हुआ "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघं० ३.२१] शान्तस्वरूप परमात्मा (ऊर्मिणा) विभुगति तरङ्ग से (अव्यं वारम्) रक्षणीय तथा वरण करने—स्वीकार करने योग्य आत्मा को (वि धावति) विशेषरूप से साक्षात्—प्राप्त होता है (वाचः-अग्रे) स्तुति के आगे आगे—स्तुति के साथ (पवमानः कनिक्रदत्) आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा अत्यन्त संवाद करता है।

भावार्थः—आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा मनन, निदिध्यासन में आता हुआ स्तुति के साथ ही विभुगति तरङ्ग से विशेषरूप से संवाद करता हुआ अपने रक्षणीय स्थल आत्मा को प्राप्त होता है॥ ७॥

ऋषिः—द्वितः (दो भावनाओं से स्तुति करने वाला)॥

५७३. प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते। भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥ ८॥

पदपाठः— प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वचः उच्यते भृतिम् न भर मतिभिः जुजोषते॥ ८॥

अन्वयः—पुनानाय वेधसे वच उच्यते मतिभिः प्रजुजोषते सोमाय भृतिं न भर॥

पदार्थः—(पुनानाय) अध्येष्यमाण—विवेचन में आते हुए—(वेधसे)

विधाता—''वेधसे विधात्रे'' [निरु० १३.३०, अथवा १४.४२] (वच उच्यते) स्तुति की जाती है। (मतिभिः) स्तुतियों द्वारा ''वाग्वै मतिः'' [श० ८.१.२.७] ''मन्यते-अर्चतिकर्मा'' [निघं० २.६] (प्रजुजोषते सोमाय) अत्यन्त परितृप्त करते हुए उपासक के लिये ''जुष परितर्पणे-इत्यर्थे'' [चुरादि०] (भृतिं न भर) स्तुतियों के प्रतीकार भृतिरूप—अध्यात्मपुष्टि को जीवन में भर दे।

भावार्थः—मनन चिन्तन करते हुए विधाता शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये प्रार्थना करनी चाहिए कि वह स्तुतियों के प्रतीकार में अध्यात्म पुष्टि जीवन में भर दे ॥ ८ ॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—अत्यन्त तृप्तिमान् और नरविषयक ज्ञानदाता)॥

५७४. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव। शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय॥ ९ ॥

पदपाठः— गोमत् नः इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष सु दक्ष धनिव शुचिम् च वर्णम् अधि गोषु धारय॥ ९ ॥

अन्वयः—सुदक्ष-इन्दो सुतः नः गोमत् अश्ववत् धनिव गोषु शुचिं वर्णम् धारय॥

पदार्थः—(सुदक्ष-इन्दो) हे शोभन बल वाले आनन्दरसभरे परमात्मन्! तू (सुतः) साक्षात् हुआ (नः) हमारी ओर (गोमत्) अपने ज्ञान वाले—ज्ञानस्वरूप को (अश्ववत्) व्यापन वाले—व्यापन धर्म को 'अत्रोभयत्र धात्वर्थ एवेष्यते' (धनिव) प्रेरित कर तथा (गोषु) स्तुतियों में (शुचिं वर्णम्) प्रकाशमान वरणीय आनन्दरूप को (धारय) धारण करा।

भावार्थः—प्रशस्त बलवान् आनन्दरसभरे परमात्मन्! तू साक्षात् हुआ अपने ज्ञानस्वरूप और व्यापनधर्म को हमारी ओर प्रेरित कर तथा हमारी स्तुतियों में अपने प्रकाशमान वरणीय आनन्द को भी वररूप में धारण करा, हमारी स्तुतियाँ रिक्त न जावें—रिक्त जाती नहीं किन्तु आनन्दवर लेकर अवश्य आती हैं॥ ९ ॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—अत्यन्त तृप्तिमान् और नरविषयक ज्ञानदाता)॥

५७५. अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत। गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि॥ १० ॥

पदपाठः— अस्मभ्यम् त्वा वसुविदम् वसु विदम् अभि वाणीः अनूषत गोभिः ते वर्णम् अभि वासयामसि॥ १० ॥

अन्वयः—अस्मभ्यम् त्वा वसुविदम् वाणीः-अनूषत गोभिः-ते वर्णम् अभिवासयामसि॥

पदार्थः—(अस्मभ्यम्) हमारे लिये (त्वा वसुविदम्) तुझ अध्यात्मधन प्राप्त कराने वाले परमात्मा को (वाणीः-अनूषत) वाणियाँ स्तुति करती हैं—प्रशंसित करती हैं "णु स्तुतौ" [अदादि०] (गोभिः-ते वर्णम्) वाणियों—स्तुतियों द्वारा तेरे वरणीयस्वरूप को (अभिवासयामसि) हम घेरते हैं।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ अध्यात्मधन के प्राप्त कराने वाले को हमारी वाणियाँ स्तुत करती हैं—प्रशंसित करती हैं। हम भी तेरे वरणीय स्वरूप—आनन्दरूप को स्तुतियों द्वारा घेरते हैं—अपनाते हैं॥ १०॥

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी)॥

५७६. **पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या। अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः॥ ११॥**

पदपाठः— **पवते हर्यतः हरिः अति ह्वरांऽसि रंऽह्या अभि अर्ष स्तोतृभ्यः वीरवत् यशः॥ ११॥**

अन्वयः—हर्यतः-हरिः रंह्या ह्वरांसि अति-पवते स्तोतृभ्यः वीरवत्-यशः-अभ्यर्ष॥

पदार्थः—(हर्यतः-हरिः) कमनीय! "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६] "हर्य गतिकान्तयोः" [भ्वादि०] दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (रंह्या) वेगरूप गति से "रंहिर्नगतिर्न" [निरु० १०.२९] (ह्वरांसि) कुटिलवृत्तों—पापभावों को "ह्वृ कौटिल्ये" [भ्वादि०] (अति-पवते) अतिक्रान्त करता है—बाहिर निकालता है (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिये (वीरवत्-यशः-अभ्यर्ष) स्वात्मवीर्यवान् "स ह वाव वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० २.२८२] यश को प्रेरित कर।

भावार्थः—कमनीय प्रिय दुःखनाशक सुखप्रापक शान्तस्वरूप परमात्मा तीव्रगति से कुटिलवृत्तों पाप सङ्कल्पों को दूर करता है और उपासकों के लिये आत्मिक वीर्य वाले यश को प्रेरित करता है॥ ११॥

ऋषिः—द्वित आप्तयः (सर्वत्र आप्त परमात्मा दो प्रकारों या दो प्रयोजनों—आनन्द और ज्ञान या भोग और अपवर्ग को लक्ष्य कर स्तुति करने वाला)॥

५७७. **परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति। अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत॥ १२॥**

पदपाठः— **परि कोशम् मधुश्चुतम् मधु श्चुतम् सोमः पुनानः अर्षति अभि वाणीः ऋषीणाम् सप्त नूषत॥ १२॥**

अन्वयः—पुनानः मधुश्चुतं कोशम् परि-अर्षति ऋषीणां सप्त वाणीः अभि-अनूषत॥

पदार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः) अध्येष्यमाण—मनन निदिध्यासन में आता हुआ (मधुश्चुतं कोशम्) ब्रह्मानन्दरूप मधु के क्षरणस्थान हृदयकोष्ठ को (परि-अर्षति) परिप्राप्त होता है, जिसको (ऋषीणां सप्त वाणीः) मन्त्र दृष्टियों के सात गायत्री आदि छन्दों से युक्त वाणियाँ (अभि-अनूषत) स्तुति करती हैं।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा मनन निदिध्यासन में आया हुआ ब्रह्मानन्दरस के स्रवणस्थान हृदय कोष्ठ में प्राप्त होता है जिसको मन्त्र दृष्टियों के गायत्री आदि सात छन्दों से युक्त वाणियाँ प्रशंसित करती हैं॥ १२॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—गौरिवीतिः (ब्रह्मवर्चस्वी उपासक[1])॥ छन्दः—१-४ ककुप्॥

५७८. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः॥ १॥

पदपाठः— पवस्व मधुमत्तमः इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमः क्रतु वित्तमः मदः महि द्युक्षतमः द्यु क्षतमः मदः॥ १॥

अन्वयः—सोम मधुमत्तमः क्रतुवित्तमः मदः महि द्युक्षतमः मदः इन्द्राय पवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरतायुक्त हुआ (क्रतुवित्तमः) अत्यन्त कर्मज्ञाता (मदः) हर्षाने वाला (महि) महान् (द्युक्षतमः) अत्यन्त दीप्ति स्थान वाला (मदः) आनन्दमय हुआ (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (पवस्व) मनन निदिध्यासन में आ।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासक आत्मा के लिये अत्यन्त मधुरता वाला अत्यन्त कर्मज्ञाता हर्षाने वाला अत्यन्त प्रकाश भूमि वाला महान् आनन्दप्रद हुआ निदिध्यासन में आ—साक्षात् हो जा॥ १॥

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊँचे सदन—मोक्षधाम वाला मोक्षार्थी)॥

५७९. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्। वि कोशं मध्यमं युव॥ २॥

पदपाठः— अभि द्युम्नम् बृहत् यशः इषः पते दिदीहि देव देवयुम् वि कोशम् मध्यमम् युव॥ २॥

अन्वयः—इषस्पते देव बृहत्-द्युम्नं यशः देवयुवम्-अभि दिदीहि मध्यमं कोशम् वियुव॥

---

१. ''तेजो वै ब्रह्म वर्चसंगौरिवीतम्'' (ऐ० ४.२)।

पदार्थः—(इषस्पते देव) हे इच्छा कामना के पालक—कामनापूरक शान्तस्वरूप परमात्मदेव! तू (बृहत्-द्युम्नं यशः) ऊँचे—अनश्वर धन को "द्युम्नं धननाम" [निघं० २.१०] और ऊँचे—अनश्वर अन्न—अमृत अन्न मोक्षभोग को "यशः-अन्ननाम" [निघं०.......] (देवयुवम्-अभि) तुझ देव की ओर चलने वाले के प्रति (दिदीहि) उपहार देदे—प्रसादरूप में देदे "दाञ् दाने" [जुहो०] 'छान्दसं रूपम्' (मध्यमं कोशम्) भीतर वाले कोष्ठ अर्थात् शरीर और आत्मा के मध्य में वर्तमान अन्तःकरण या मन को (वियुव) विकसित कर—खोल।

भावार्थः—हे कामनापूरक परमात्मन्! तेरी ओर चलने वाले के प्रति तू अनश्वरधन—मौक्षैश्वर्य और अमृतभोग मोक्षानन्द प्रदान करता है तथा उसके मन को विकसित कर देता है॥ २॥

ऋषिः—ऋजिश्वा (सत्य सरल जीवनयात्रा का पथिक उपासक)॥

५८०. **आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥ ३॥**

पदपाठः— **आ सोत परि सिञ्चत अश्वम् न स्तोमम् अप्तुरम् रजस्तुरम् वनप्रक्षम् वन प्रक्षम् उदप्रुतम् उद प्रुतम्॥ ३॥**

अन्वयः—स्तोमम् अप्तुरम् रजस्तुरम् वनप्रक्षम् उदप्रुतम् अश्वम् न आसोत परिषिञ्चत॥

पदार्थः—(स्तोमम्) स्तुतियोग्य—उपासनीय (अप्तुरम्) प्राणों को प्रेरित करने वाले—"आपो वै प्राणाः" [श० ३.८.२.४] (रजस्तुरम्) ज्ञानज्योतिप्रेरक "ज्योती रज उच्यते" [निरु० ४.१९] (वनप्रक्षम्) वननीय मोक्ष का सम्पर्क कराने वाले—(उदप्रुतम्) आर्द्र आनन्दरस के प्रेरक—"प्रु गतौ" [भ्वादि०] (अश्वम्) व्यापक—(न) सम्प्रति "न सम्प्रत्यर्थे" [निरु० ६.८] परमात्मा को (आसोत) हृदय में आभासित करो (परिषिञ्चत) आत्मा में श्रद्धा से आभरित करो।

भावार्थः—उपासकजनो! तुम स्तुति करने योग्य प्राणप्रेरक बलप्रद ज्ञानज्योतिप्रसारक मोक्ष से सम्पर्क कराने वाले आनन्दरसप्रवाहक व्यापक परमात्मा को हृदय में साक्षात् करो और श्रद्धा से धारण करो॥ ३॥

ऋषिः—कृतयशा अङ्गिरसः (प्राणविद्या में निष्पन्न यशस्वी उपासक)॥

५८१. **एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्। विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥ ४॥**

पदपाठः— **एतम् उ त्यम् मदच्युतम् मद च्युतम् सहस्रधारम् सहस्र धारम् वृषभम् दिवोदुहम् दिवः दुहम् विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—एतं त्यम्-उ मदच्युतम् सहस्रधारम् वृषभम् दिवः-दुहम् विश्वा वसूनि बिभ्रत् ॥

पदार्थः—(एतं त्यम्-उ) इस उस ही (मदच्युतम्) हर्षप्रेरक—(सहस्रधारम्) बहुत स्तुतिवाणी वाले—"धारा वाङ् नाम" [निघं० १.११] (वृषभम्) कामनावर्षक—(दिवः-दुहम्) मोक्षामृत के दुहने वाले तथा (विश्वा वसूनि बिभ्रत्) सब बसाने के साधनों को धारण करने वाले परमात्मा को श्रद्धा से हृदय में साक्षात् करें और धारण करें।

भावार्थः—अहो इस उस ही हर्षप्रेरक स्तुति योग्य कामनावर्षक मोक्षामृत के दुहने वाले तथा सब वाससाधनों के धारक परमात्मा को हम श्रद्धा से हृदय में साक्षात् करें और धारण करें॥ ४ ॥

ऋषिः—ऋणञ्चयः क्वचित्—ऋणवः (तीनों ऋण चुकाने वाला या ऋणों को वारित करने वाला अनृणी कृतकृत्य उपासक[1])॥ छन्दः—यवमध्या गायत्री ॥

५८२. **स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्। सोमो यः सुक्षितीनाम्॥ ५ ॥**

पदपाठः— **सः सुन्वे यः वसूनाम् यः रायाम् आनेता आ नेता यः इडानाम् सोमः यः सुक्षितीनाम् सु क्षितीनाम्॥ ५ ॥**

अन्वयः—यः-वसूनाम् यः-रायाम् यः-इडानाम् यः सुक्षितीनाम् आनेता सः सोमः ॥

पदार्थः—(यः-वसूनाम्) जो वाससाधनों का (यः-रायाम्) जो रमणीय भोगों का (यः-इडानाम्) जो वाणियों का (यः सुक्षितीनाम्) जो सुन्दर आत्मभूमियों का (आनेता) समन्तरूप से प्राप्त कराने वाला है (सः सोमः) वह शान्तरूप परमात्मा साक्षात् किया जाता है।

भावार्थः—शान्तरूप परमात्मा हमारे समस्त वाससाधन शरीर इन्द्रियों रमणीय भोगों उत्तम वाणियों और ऊँची आत्मभूमियों को प्राप्त कराने वाला है, उसका साक्षात् करना चाहिए॥ ५ ॥

---

१. "चि नाशनेऽर्थेऽत्र। चयसे-चातमामसि" (निरु० ४.२५)।

ऋषिः—शक्तिर्वासिष्ठः (उपासक से अत्यन्त सम्बद्ध ज्ञान में समर्थ)॥
छन्दः—ककुप्॥

५८३. त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयन्॥ ६॥

पदपाठः— त्वम् हि अङ्ग दैव्य पवमान जनि मानि द्युमत्तमः अमृतत्वाय अ मृतत्वाय घोषयन्॥ ६॥

अन्वयः—अङ्ग पवमान त्वं हि द्युमत्तमः दैव्यं जनिमानि अमृतत्वाय घोषयन्॥

पदार्थः—(अङ्ग पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले प्रिय परमात्मन्! (त्वं हि) तू ही (द्युमत्तमः) अत्यन्त द्युतिमान् हुआ (दैव्यं जनिमानि) ''दैव्यानि'' एकवचन व्यत्ययेन दैव्यजनों मुमुक्षुओं को (अमृतत्वाय घोषयन्) मोक्ष को घोषित करने के हेतु समन्तरूप से नेता बन।

भावार्थः—आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अत्यन्त द्युतिमान्—दीप्तिमान् हुआ मुमुक्षुजनों को अमृतत्व प्राप्ति की घोषणा करते हुए समन्तरूप से नेता बना है॥ ६॥

ऋषिः—उरुराङ्गिरसः (प्राणविद्यासम्पन्न महान् आयुष्मान्)॥
छन्दः—प्रगाथः॥

५८४. एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः। क्रीडन्नूर्मिरपामिव॥ ७॥

पदपाठः— एषः स्यः धारया सुतः अव्याः वारेभिः पवते मदिन्तमः क्रीडन् ऊर्मिः अपाम् इव॥ ७॥

अन्वयः—एषः-स्यः मन्दितमः सुतः अव्याः पवते अपाम् क्रीडन्-ऊर्मिः-इव॥

पदार्थः—(एषः-स्यः) यह वह (मन्दितमः) अत्यन्त स्तुति योग्य शान्तस्वरूप परमात्मा (सुतः) निष्पन्न—साक्षात् किया (अव्याः) अवि—रक्षणकारिणी अध्यात्मभूमि के सूक्ष्म तत्त्वों के द्वारा (पवते) आनन्दधारा में प्रवाहित हो रहा है (अपाम् क्रीडन्-ऊर्मिः-इव) जल स्रोतों की तरङ्ग के समान खेलता हुआ-सा।

भावार्थः—यह वह अत्यन्त स्तुति योग्य शान्तस्वरूप परमात्मा साक्षात् हुआ रक्षण करने वाली योगभूमि के सूक्ष्म तत्त्वों द्वारा आनन्दधारा में जल तरङ्गों में खेलता-सा प्रवाहित होता है॥ ७॥

ऋषिः—ऋजिश्वा (ऋजु या सत्यमार्ग में चलने वाला उपासक)॥

छन्दः—प्रगाथः।

५८५. य उस्त्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज।
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज॥ ८॥

पदपाठः— यः उस्त्रियाः उ स्त्रियाः अपि याः अन्तः अश्मनिः निः गाः अकृन्तत् ओजसा अभि व्रजम् तत्निषे गव्यम् अश्व्यम् वर्म्मी इव धृष्णो आ रुज ॐ वर्म्मीव धृष्णवारुज॥ ८॥

अन्वयः—यः उस्त्रियाः अपि याः अश्मनि-अन्तः ओजसा गाः निः-अकृन्तत् धृष्णो गव्यम्-अश्व्यं व्रजम्-अभितत्निषे वर्मी-इव-आरुज ओ३म्॥

पदार्थः—(यः) जो सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (उस्त्रियाः) रश्मियों में—प्रकाशधाराओं में ''उस्रा रश्मिनाम'' [निघं० १.५] 'इयाच् छन्दसि' (अपि याः) 'अप्याः' अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली द्रवधाराओं में ''आपोऽन्तरिक्षनाम'' [निघं० १.३] (अश्मनि-अन्तः) स्थिर पृथिवी स्थलियों में ''स्थिरो वा अश्मा'' [श० ९.१.२.५] (ओजसा) आत्म प्रभाव से (गाः) गतिविधियों को (निः-अकृन्तत्) निष्पादित करता है—प्रकट करता है (धृष्णो) हे धर्षणशील (गव्यम्-अश्व्यं व्रजम्-अभितत्निषे) हमारे इन्द्रिय सम्बन्धी तथा व्यापन गति वाले मन सम्बन्धी व्रज—गति स्थान को विकसित करता है (वर्मी-इव-आरुज) विपरीत इन्द्रियवृत्ति को और विपरीत मनोवृत्ति को कवची—कवचधारी भी भाँति नष्ट कर दे (ओ३म्) हे ओ३म् इष्टदेव सोम—शान्तस्वरूप धर्षणशील परमात्मन्! तू विपरीत इन्द्रियवृत्ति और विपरीत मनोवृत्ति को नष्ट कर दे, द्विरुक्ति प्रकरण समाप्ति के लिये।

भावार्थः—जो शान्तस्वरूप परमात्मा सूर्यरश्मिसम्बन्धी प्रकाशधाराओं में अन्तरिक्ष सम्बन्धी द्रवणशील तत्त्वों में और पृथिवी सम्बन्धी धृतिस्तरों में अपनी गतिविधियों को प्रदर्शित करता है एवं वह तू परमात्मन्! हमारे इन्द्रियविषयक गति स्थान मनोविषयक विचार संस्थान को विपरीत भोग और विपरीत सङ्कल्प विकसित और उत्कृष्ट कर से हे धर्षणशील परमात्मन्! कवचधारी रक्षक की भाँति अपने बल से नष्ट कर दे। हे ओ३म् सोम परमात्मन्! तू अवश्य विपरीत भोग और विपरीत सङ्कल्प से हमारी रक्षा कर। हमें अपनी शरण दे, अवश्य हमारा रक्षक बन॥ ८॥

पवमान पर्व, काण्ड समाप्त

आरण्य पर्व, काण्ड

षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक[1])॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) छन्दः—बृहती॥

५८६. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः। यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र पप्राः॥ १॥

पदपाठः— इन्द्र ज्येष्ठं नः आ भर ओजिष्ठम् पुपुरि श्रवः यत् दिधृक्षेम वज्रहस्त वज्र हस्त रोदसीइति आ उभेइति सुशिप्र सु शिप्र पप्राः॥ १॥

अन्वयः—वज्रहस्त-इन्द्र नः ज्येष्ठम् ओजिष्ठम् श्रवः आभर यत् दिधृक्षेम सुशिप्र उभे रोदसी पप्राः॥

पदार्थः—(वज्रहस्त-इन्द्र) हे ओजरूप हस्त वाले—पापहननसाधन वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (नः) हमारे लिये (ज्येष्ठम्) सर्वमहान् (ओजिष्ठम्) अत्यन्त आत्मबलयुक्त—ऊँचे आध्यात्मिक (श्रवः) अन्न—आनन्दभोग को (आभर) आभरित कर—प्रदान कर (यत्) जिसे (दिधृक्षेम) हम धारण करना चाहते हैं (सुशिप्र) हे व्यापन गति वाले तू (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को (पप्राः) अपनी व्यापकता से पूर्ण किए हुए—भरे हुए है, अतः हमारे अन्दर अपना आनन्दभोग भर दे।

भावार्थः—हे ओजरूप पापहननसाधन वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू हमारे लिये सर्वमहान्—सर्वोत्तम अत्यन्त ओजपूर्ण तृप्तिकारक आनन्दभोग को प्रदान कर जिसे हम धारण करना चाहते हैं। हे सुन्दर व्यापनगति वाले तू ऊपर नीचे के दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को अपनी व्यापकता से पूर्ण कर रहा है—भरता है, अतः हमारे अन्दर भी श्रेष्ठ आनन्दभोग को भर दे॥ १॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

५८७. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य। ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक्॥ २॥

---

१. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १.१९३]।

पदपाठः— **इन्द्रः राजा जगतः चर्षणीनाम् अधि क्षमा विश्वरूपम्**
विश्व रूपम् यत् अस्य ततः ददाति दाशुषे वसूनि चोदत्
राधः उपस्तुतम् उप स्तुतम् चित् अर्वाक् ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्रः जगतः चर्षणीनाम् राजा यत्-विश्वरूपम्-अधिक्षमा अस्य ततः दाशुषे वसूनि-ददाति उपस्तुतं राधः-चित् अर्वाक् चोदत् ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमात्मा (जगतः) जङ्गम—पशु-पक्षी सरीसृपका भोगदाता (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का कर्मफल विधाता मोक्ष प्रदाता "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघं० २.३] (राजा) स्वामी है (यत्-विश्वरूपम्-अधिक्षमा) जो भी सब रूप वाली वस्तु पृथिवी पर हैं (अस्य) इस परमात्मा की हैं (ततः) पुनः (दाशुषे) दाता के लिये (वसूनि-ददाति) धनों को देता है (उपस्तुतं राधः-चित्) प्रार्थित धन को भी (अर्वाक् चोदत्) प्रार्थी की ओर प्रेरित करता है।

भावार्थः—परमात्मा पशु-पक्ष्यादि साधारण प्राणियों को भोग देनेवाला मनुष्यों का कर्म विधाता और मोक्ष प्रदाता राजा है स्वामी है जो भी विस्तृत सृष्टि में है सब उसका ही है अपना स्वामी बना लेने पर प्रार्थी द्वारा प्रार्थित धन का प्रदान करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

५८८. **यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः। इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यस्य इदम् आरजः आ रजः युजः तुजे जने वनम्**
स्वा३रिति इन्द्रस्य रन्त्यम् बृहत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यस्य रजोयुजः-इन्द्रस्य इदं वनं स्वः तुजे जने बृहत्-रन्त्यम् ॥

पदार्थः—(यस्य रजोयुजः-इन्द्रस्य) जिस ज्योतिर्मय "ज्योती रज उच्यते" [निरु० ४.१९] ऐश्वर्यवान् परमात्मा का (इदं वनं स्वः) यह सांसारिक सुख (तुजे जने) दाता—आत्मसमर्पणकर्ता के लिये है, उसके लिये (बृहत्-रन्त्यम्) महान् रमणीय मोक्षानन्द भी है।

भावार्थः—जो मनुष्य अपना समर्पण ज्योतिःस्वरूप ऐश्वर्यवान् परमात्मा के प्रति कर देता है उस जैसे समर्पणकर्ता के लिये सांसारिक भोग-सुख भी है और महान् रमणीय मोक्षानन्द भी है ॥ ३ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुक) ॥ देवता—वरुणः (वरने योग्य और वरने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—चतुष्पदा गायत्री ॥

५८९. **उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।**
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥

पदपाठः— **उत् उत्तमम् वरुण पाशम् अस्मत् अव अधमम् वि मध्यमम् श्रथाय अथ आदित्य आ दित्य व्रते वयम् तव अनागसः अन् आगसः अदितये अ दितये स्याम ॥ ४ ॥**

अन्वयः—वरुण अस्मत् उत्तमं पाशम्-उच्छ्रथय मध्यमं विश्रथय अधमम्-अव अथ वयम् अनागसः आदित्य तव व्रते अदितये स्याम ॥

पदार्थः—(वरुण) हे वरने योग्य और वरने वाले परमात्मन्! तू (अस्मत्) हमसे (उत्तमं पाशम्-उच्छ्रथय) प्रमुख कठिन पाश अविवेककृत कारणशरीररूप लोहबन्धन को उखाड़ दे—तोड़ दे (मध्यमं विश्रथय) मध्यम पाश—वासनाकृत सूक्ष्म शरीररूप आवरणबन्धन को विच्छिन्न कर दे—चीर दे—फाड़ दे (अधमम्-अव) निकृष्ट पाश—भोगकृत स्थूलशरीररूप ग्रन्थिबन्धन को ढीला कर दे—खोल दे (अथ) अनन्तर—फिर (वयम्) हम (अनागसः) पापरहित हुए (आदित्य) हे अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के स्वामिन्! (तव व्रते) तेरे वरण—उपासना में (अदितये स्याम) अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के लिये योग्य हो जावें।

भावार्थः—निष्पाप होकर परमात्मा के सद्व्रत ध्यानोपासन में वर्तमान रहने पर उपासक के तीनों बन्धन कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर, स्थूल शरीर को परमात्मा दूर कर देता है। पुनः उपासक आत्मा अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी और हर्षालु) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा) ॥ छन्दः—चतुष्पदा गायत्री ॥

५९०. **त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **त्वया वयम् पवमानेन सोम भरे कृतम् वि चिनुयाम शश्वत् तत् नः मित्रः मि त्रः वरुणः मामहन्ताम् अदितिः अ दितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—सोम वयम् त्वया पवमानेन भरे शश्वत्-कृतम् विचिनुयाम नः-तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (वयम्) हम (त्वया पवमानेन) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के साथ—सहाय्य से (भरे) इस धारण किए जीवन में (शश्वत्-कृतम्) सत् कर्म—श्रेष्ठ कर्म को "धीराणां शश्वताम्" [अथर्व० २०.१२८.४] (विचिनुयाम) विशेषरूप से अन्दर धारण करें—आचरित करें (नः-

तत्) हमारे उस सत् कर्म को तेरे रचे (मित्रः) सूर्य स्वप्रकाश द्वारा (वरुणः) मेघ वृष्टि द्वारा (अदितिः) अग्नि ''अदितिरप्यग्निरुच्यते'' [निरु० ४.२३] ताप द्वारा (सिन्धुः) स्यन्दनशील—बहने वाले जल अन्न द्वारा (पृथिवी) भूमि वास द्वारा (उत) अपि—और (द्यौः) द्युलोक नक्षत्रदर्शन—ग्रह विज्ञान द्वारा (मामहन्ताम्) प्रवृद्ध करें। अथवा तू स्वयं (मित्रः) प्रेरणा करने वाला (वरुणः) वरने वाला (अदितिः) अदीन शक्तिमान् (सिन्धुः) व्यापनशील (पृथिवी) प्रथित आधाररूप (उत) और (द्यौः) प्रकाशस्वरूप हुआ (मामहन्ताम्) बढ़ावें।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के साथ हम अपने इस धारण किए शरीर में श्रेष्ठ कर्म धारण करते रहें, तू भी मित्र आदि स्वरूपों में वर्तमान हुआ उसे बढ़ाता रह एवं तेरे रचे मित्र—सूर्य आदि भी उसे बढ़ाते रहें॥५॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)॥ देवता—विश्वेदेवाः (प्राण[1])॥ छन्दः—एकपदा गायत्री॥

५९१. इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम्॥ ६॥

पदपाठः— इमम् वृषणम् कृणुत एकम् इत् माम्॥ ६॥

अन्वयः—इमं माम् उत वृषणम्-एकम्-इत् कृणुत॥

पदार्थः—हे विश्वेदेवो—प्राणो! (इमं माम्) इस मुझे (उत) अपि—हाँ! (वृषणम्-एकम्-इत् कृणुत) सुखवर्षक केवल स्वस्वरूप में अवश्य कर दो।

भावार्थः—हे मेरे प्राणो! सुखों की प्राप्ति के लिये मैं पराधीन होकर न रहूँ और न ऐसे इन्द्रिय सुख का व्यसन रहे जो मेरे केवल स्वरूप से पृथक् कर दे, अपितु वे सुख मेरे चेतन स्वरूप के दास रहें, मैं उनका दास न बनूँ, हाँ वास्तविक स्वस्वरूप में आकर जो परमात्मा का आनन्द है, उसे ही उसके आधार पर अपने अन्दर सींचता रहूँ ''परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते'' [छान्दो० ८.१२.३]॥६॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं, मोक्ष को चाहने वाला उपासक)॥ देवता—विश्वेदेवाः (प्राण)॥ छन्दः—गायत्री॥

५९२. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित् परिस्रव॥ ७॥

पदपाठः— सः नः इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित् वरिवः वित् परि स्रव॥ ७॥

---

१. ''प्राणा वै विश्वेदेवाः'' [श० १४.२.२.३७]।

अन्वयः—सः वरिवोवित् मरुद्भयः वरुणाय यज्यवे इन्द्राय परिस्रव॥

पदार्थः—(सः) वह तू (वरिवोवित्) अत्यन्त अभीष्टरूप अमृतधन मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने वाले "वरिवः-धननाम" [निघं० २.१०] शान्तस्वरूप परमात्मन्! (मरुद्भयः) 'मरुताम्'-"षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" प्राणों के "प्राणो वै मरुतः" [ऐ० ३.१६] (वरुणाय) शरीरधारणसमय वरने वाले—(यज्यवे) उनका यजन करने वाले—अध्यात्मयज्ञ में लगाने वाले—अपवर्ग प्राप्ति में दान करने वाले—(इन्द्राय) आत्मा के लिये (परिस्रव) पूर्णरूप में या मेरे सब ओर आनन्दधारा में प्राप्त हो।

भावार्थः—वह शान्तस्वरूप परमात्मा अमृतधन—मोक्षैश्वर्य का अत्यन्त प्राप्त कराने वाला तथा शरीरधारणार्थ प्राणों के वरने वाले अध्यात्मयज्ञ में उन्हें यजन करने वाले आत्मा के लिये पूर्णरूप से या सब ओर आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है॥ ७॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं, मोक्ष को चाहने वाला उपासक)॥
देवता—विश्वेदेवाः (प्राण)॥ छन्दः—गायत्री॥

५९३. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे॥ ८॥

पदपाठः— एना विश्वानि अर्यः आ द्युम्नानि मानुषाणाम् सिषासन्तः वनामहे॥ ८॥

अन्वयः—मानुषाणाम् एना विश्वानि द्युम्नानि सिषासन्तः अर्यः वनामहे॥

पदार्थः—(मानुषाणाम्) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! मननशील जनों के (एना विश्वानि द्युम्नानि) इन सब प्रकार वाले शोभनयश अन्नधनों को (सिषासन्तः) सेवन करते हुए हम (अर्यः) 'अर्यम् विभक्तिव्यत्ययः' तुझ स्वामी को "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३.१.१०३] (वनामहे) चाहते हैं "वनु याचने" [तनादि०]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! मनुष्यों के हितकर सभी प्रशंसनीय यश बलधनों को हम उपासक सेवन करते हुए तुझ स्वामी को माँगते हैं—चाहते हैं। ऊँची सांसारिक सम्पत्ति प्राप्त करने के अनन्तर परमात्मा का सङ्ग और उसके आनन्द की भी याचना करते हैं॥ ८॥

ऋषिः—आत्मा (आत्मानुभूति वाला उपासक)॥ देवता—अन्नम् (सब भूतों का आत्मा—परमात्मा[1])॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

५९४. अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम। यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥ ९॥

---

१. "अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा" [गो० २.१.२]।

पदपाठः— **अहम् अस्मि प्रथमजाः प्रथम जाः ऋतस्य पूर्वम् देवेभ्यः अमृतस्य अ मृतस्य नाम यः मा ददाति सः इत् एव मा अवत् अहम् अन्नम् अन्नम् अदन्तम् अद्मि ॥ ९ ॥**

अन्वयः—ऋतस्य प्रथमजाः देवेभ्यः अमृतस्य पूर्वं नाम अहम्-अस्मि यः मा ददाति सः-इत्-एवम्-आवत् अहम्-अन्नम् अन्नम्-अदन्तम्-अद्मि ॥

पदार्थः—(ऋतस्य) वेदज्ञान का "ब्रह्म वा ऋतम्" [श० ४.१.४.१०] (प्रथमजाः) 'प्रथमः सन् जनयिता' प्रथम होता हुआ जनयिता—आविष्कर्ता—प्रकाशक (देवेभ्यः) उत्कृष्ट विद्वानों के लिये (अमृतस्य) मोक्षसुख का (पूर्वं नाम) शाश्वत नमाने वाले "नाम सन्नामयति" [निरु० ४.२७] (अहम्-अस्मि) मैं परमात्मा हूँ (यः) जो (मा ददाति) 'मह्यम्-डेस्थानेऽम् प्रत्ययश्छान्दसः' मेरे लिये अपने को देता है—समर्पित करता है (सः-इत्-एवम्-आवत्) वह ही हाँ मुझे आलिङ्गित करता है "अवरक्षण.....आलिङ्गन.....वृद्धिषु" [भ्वादि०] (अहम्-अन्नम्) कारण कि मैं उसका अन्न हूँ—अन्नरूप आत्मा—आधार हूँ "अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा" [गो० २.१.३] (अन्नम्-अदन्तम्-अद्मि) अन्नरूप तुझ खाते हुए को मैं खाता हूँ, अपने अन्दर ग्रहण करता हूँ—स्वीकार करता हूँ "अत्ता चराचरग्रहणात्" [वेदान्त दर्शनम्] कारण कि वह मुझे अपनाता है, मैं उसे अपनाता हूँ।

भावार्थः—वेदज्ञान का प्रथम से प्रकाशक तथा जीवन्मुक्तों के लिये अमृत मोक्षानन्द को शाश्वतिक नमाने वाला—प्राप्त कराने वाला मैं परमात्मा हूँ, जो मुझे अपना समर्पण करता है, वह ही मेरा आलिङ्गन करता है, उसका मैं अन्नरूप आत्मा आधार हूँ, अन्नरूप मुझे खाते हुए को मैं खाता हूँ, अपने अन्दर स्वीकार करता हूँ—अपनाता हूँ ॥ ९ ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

५९५. **त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च। परुष्णीषु रुशत् पयः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वम् एतत् अधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च परुष्णीषु रुशत् पयः ॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्द्र त्वम् कृष्णासु रोहिणीषु परुष्णीषु एतत् रुशत् पयः अधारयः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वम्) तू (कृष्णासु) कृष्ण रङ्ग

वाली रसवाहिनी नाड़ियों में (रोहिणीषु) रक्तवाहिनी नाड़ियों में (परुष्णीषु) ज्ञानवाहिनी नाड़ियों में (एतत्) यह (रुशत्) ज्वलित—रोचमान "रुशत्....रोचमान" "रुशत् वर्णनाम रोचतेर्ज्वलितिकर्मण:" [निरु० ६.१४] (पय:) प्राण को "प्राण: पय:" [श० ६.५.४.१५] (अधारय:) धारण करा।

भावार्थ:—ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे शरीर की रसवाहिनी नाड़ियों में रक्तवाहिनी नाड़ियों में तथा ज्ञानवाहिनी नाड़ियों में इस अध्यात्म-प्रेरक रोचमान प्राण को धारण करा, अध्यात्म-विरोधी रस, रक्त और ज्ञान का वहन करने वाला न हो, किन्तु रोचमान प्राण उनमें कार्य करता रहे ॥ १ ॥

ऋषि:—पवित्र: (कामक्रोध आदि को दूर कर निर्मल हुआ उपासक)॥ देवता—पवमान: सोम: (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्द:—जगती ॥

५९६. **अरूरुचदुषस: पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयु:।मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस: पितरो गर्भमादधु: ॥ २ ॥**

पदपाठ:— **अरूरुचत् उषस: पृश्नि: अग्रिय: उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयु: मायाविन: ममिरे अस्य मायया नृचक्षस: नृ चक्षस: पितर: गर्भम् आ दधु: ॥ २ ॥**

अन्वय:—भुवनेषु वाजयु: पृश्नि: अग्रिय:-उक्षा मिमेति उषस:-अरूरुचत् अस्य मायया मायाविन:-ममिरे नृचक्षस: पितर: गर्भम्-आदधु: ॥

पदार्थ:—(भुवनेषु वाजयु:) अध्यात्मयज्ञों में उपासकों के वाज—अमृत अन्न को चाहने वाला "छन्दसि परेच्छायामपि क्यच्" (पृश्नि:) अपनी आनन्दधाराओं से उपासकों को स्पर्श करने वाला शान्त परमात्मा "पृश्नि:.....संस्प्रष्टा" [निरु० २.१४] "स्पृशेर्नि:" [उणा० ४.५२] (अग्रिय:-उक्षा) श्रेष्ठ कामनावर्षक (मिमेति) प्राप्त होता है "मी गतौ" [चुरादि०] "बहुलं छन्दसि श्लु:" [अष्टा० २.४.७६] (उषस:-अरूरुचत्) उपासकों में ज्ञान-ज्योतियों को चमकाता है (अस्य मायया) इसकी प्रज्ञा से—सर्वज्ञता से (मायाविन:-ममिरे) उपासक प्रज्ञा वाले बन जाते हैं (नृचक्षस: पितर:) नरों—शिष्य आदि को ज्ञानदृष्टि देने वाले गुरुजन "ये वै विद्वांसस्ते नृचक्षस:" [काठ० २१.१] तथा पुत्रों के पालन करने वाले वंश के पिता आदि (गर्भम्-आदधु:) स्तुति योग्य परमात्मा को अन्दर आधान करते हैं "गर्भो गृणात्यर्थे" [निरु० १०.२३]।

भावार्थ:—शान्तस्वरूप परमात्मा अपनी आनन्दधाराओं से अध्यात्मयज्ञों में उपासकों के लिये अमृतभोग का चाहने वाला श्रेष्ठ कामना-वर्षकरूप में प्राप्त

होता है, तथा उपासकों के अन्दर ज्ञानज्योतियों को चमकाता है, अपनी सर्वज्ञता से उपासकों को प्रज्ञा वाले बनाता है, ऐसे स्तुतियोग्य परमात्मा को विद्वान् गुरुजन और पितृजन अन्दर धारण की परम्परा शिष्यों पुत्रों में चलाते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (सर्वमित्र आचार्य से सम्बद्ध मधुर इच्छा वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्रः इत् हर्योः सचा सम्मिश्लः सम् मिश्लः आ वचोयुजा वचः युजा इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्रः वचोयुजा हर्योः सचा-आमिश्लः इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वचोयुजा हर्योः) अपने वचन—आदेश या प्रार्थना से युक्त होने वाले दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता दोनों ज्योति और स्नेह या कृपा और प्रसाद का (सचा-आमिश्लः) समन्तरूप से उपासक में मेल कराने वाला है तथा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वज्री हिरण्ययः) ओजस्वी ''वज्रो वा ओजः'' [श० ८.४.१.२०] और सुशोभन है।

भावार्थः—परमात्मा के आदेश से या उपासक की प्रार्थना से युक्त होने वाले ज्योति और स्नेह या कृपा और प्रसाद का साथ सम्यक् मिश्रण करने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा है और वह अपने रूप में ओजस्वी तथा सुशोभन है, उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (सर्वमित्र आचार्य से सम्बद्ध मधुर इच्छा वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

पदपाठः— इन्द्र वाजेषु नः अव सहस्रप्रधनेषु सहस्र प्रधनेषु च उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्द्र उग्रः उग्रेभिः-ऊतिभिः वाजेषु च सहस्र-प्रधनेषु नः-अव ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (उग्रः) तेजस्वी हुआ (उग्रेभिः-ऊतिभिः) अपनी तेजस्वी रक्षाविधियों के द्वारा (वाजेषु) इन्द्रिय विषयरूप साधारण संघर्ष प्रसङ्गों में (च) और (सहस्र-प्रधनेषु) बहुत बार होने वाले कामादि सम्बन्धी मानस संग्रामों में (नः-अव) हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—निश्चय तेजस्वी परमात्मा अपनी तेजस्वी रक्षाविधियों के द्वारा

भोग संघर्षों में और सहस्र बार सताने वाले कामादि सम्बन्धी मानस संग्रामों में हमारी रक्षा किया करता है, अतः उसकी उपसना करनी चाहिए॥ ४॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥
देवता—विश्वेदेवाः (समस्त दिव्यगुण वाला परमात्मा तथा मोक्षधाम[1])॥
छन्दः—त्रिष्टुप्॥

५९९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः॥ ५॥

पदपाठः— प्रथः च यस्य सप्रथः स प्रथः च नाम आनुष्टुभस्य आनु स्तुभस्य हविषः हविः यत् धातुः द्युतानात् सवितुः च विष्णोः रथन्तरम् रथम् तरम् आ जभार वसिष्ठः॥ ५॥

अन्वयः—आनुष्टुभस्य धातुः सवितुः विष्णोः यत्-हविषः-हविः रथन्तरम् द्युतानात् वसिष्ठः आजहार यस्य प्रथः-च सप्रथः-च नाम॥

पदार्थः—(आनुष्टुभस्य) अनुष्टुभ्—अनुक्रम से किए अर्चन सत्वन द्वारा सिद्ध होने वाले—''स्तोभति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१] (धातुः) विधाता—(सवितुः) प्रेरक—(विष्णोः) व्यापक परमात्मा का (यत्-हविषः-हविः) जोकि 'हविषाम्' हवियों का हवि—अनेक उपहारों में उपहार (रथन्तरम्) अत्यन्त रमणीय या अत्यन्त रसरूप अमृतानन्द है ''रसतमं ह वै तद् रेथन्तरमित्याचक्षते परोक्षम्'' [श० ९.१.२.३६] (द्युतानात्) प्रकाशमय मोक्षधाम से ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] (वसिष्ठः) परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक ''ये वै ब्राह्मणाः शुश्रुवांसो वसिष्ठाः'' [जै० २.२४२] (आजहार) ले आता है (यस्य) जिस वसिष्ठ उपासक आत्मा का (प्रथः-च सप्रथः-च नाम) प्रथ—प्रख्यात गुण—ज्ञान—वैराग्य ''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्'' [योग० १.१६ व्यासः] और सप्रथ—प्रख्यात सहकारी कर्म—यत्न—अभ्यास ''तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः'' [योग० १.१३] नमाने वाला साधन है।

भावार्थः—निरन्तर उपासना स्तुति से सिद्ध—अनुभूत—अनुकूल होने वाले विधाता कर्मफलप्रदाता प्रेरक विभु परमात्मा का जो उपहारों में श्रेष्ठ उपहार अत्यन्त रमणीय अतीव रसरूप अमृत आनन्द है उसे मोक्षधाम से परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक ज्ञानमय वैराग्य और योगरूप अभ्यास के द्वारा अपने अन्दर ले आता है, ये दोनों उपासक की ओर नमाने के साधन हैं॥ ५॥

---

१. ''स्वगं एव लोको विश्वेदेवाः'' [जै० १.३३५]।

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी और परमात्मा की उपासना में तृप्त)॥
देवता—वायुः (अध्यात्म जीवनदाता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६००. नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुन्वतो गृहम्॥ ६॥

पदपाठः— नियुत्वान् नि युत्वान् वायो आ गहि अयम् शुक्रः अयामि ते गन्ता असि सुन्वतः गृहम्॥ ६॥

अन्वयः—वायो नियुत्वान् आगहि ते शुक्रः-अयामि सुन्वतः-गृहं गन्तासि॥

पदार्थः—(वायो) हे अध्यात्म जीवनप्रद परमात्मन्! तू (नियुत्वान्) मुमुक्षुजनों का आधार तथा सर्वेश्वर होता हुआ "वायुर्देवानां विशां नेता नियुतो देवानां विशः" [काठ० १२.१३] "नियुत्वान्-ईश्वरनाम" [निघं० २.१२] (आगहि) आ—प्राप्त हो (ते) तेरे लिये (शुक्रः-अयामि) निर्मल उपासनारस "शुक्रः-निर्मलः सोमः" [श० ३.३.३.६] "वायवायाहि दर्शत इमे सोमा अरं कृताः" [ऋ० १.२.१] 'इति यथा' मेरे द्वारा नियत है—समर्पित है (सुन्वतः-गृहं गन्तासि) उपासनारस के निष्पादन करने वाले उपासक के हृदयसदन को प्राप्त होता है।

भावार्थः—हे अध्यात्मजीवनप्रद परमात्मन्! तू सर्वेश्वर मुमुक्षुजनों का आधार होता हुआ मेरे हृदयसदन में आ जा, तेरे लिये उपासनारस समर्पित है, तुझे निश्चय आना होगा॥ ६॥

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधावृषी (मुमुक्षु मेधावी और बहुत मेधा वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६०१. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय। तत्पृथिवीमप्रथय-स्तदस्तभ्ना उतो दिवम्॥ ७॥

पदपाठः— यत् जायथाः अपूर्व्य अ पूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय वृत्र हत्याय तत् पृथिवीम् अप्रथयः तत् अस्तभ्नाः उत उ दिवम्॥ ७॥

अन्वयः—अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय यद् अजायथाः तद् पृथिवीम् अप्रथय उत-उ तद् दिवम् अस्तभ्नाः॥

पदार्थः—(अपूर्व्य मघवन्) पूर्ववर्ती माता पिता तथा कारण से रहित शाश्वतिक प्रशस्तज्ञानधन वाले परमात्मन्! (वृत्रहत्याय) आत्मस्वरूप को आवृत करने वाले अज्ञान पाप को नष्ट करने केलिये (यद्) जब (अजायथाः) उपासक के अन्दर साक्षात् होता है (तद्) तब (पृथिवीम्) उपासक की पार्थिव देह को (अप्रथय) प्रख्यात करता है तेजस्वी बनाता है (उत-उ) और (तद्) तभी (दिवम्) द्योतमान

अमृतधाम—मोक्षधाम को भी तू (अस्तभ्नाः) सुरक्षित रखता है ''द्यौरपराजिताऽमृतेन विष्टा'' [तै० सं० ४.४.५.२] ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३]।

भावार्थः—इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा का कोई पूर्ववर्ती वंश्य नहीं और न उपादान कारण है। वह तो शाश्वत तथा प्रशस्त ज्ञानधन वाला है, अज्ञान पाप को नष्ट करने के लिये उपासक के अन्दर साक्षात् हो जाता है। भोगाश्रय पार्थिवदेह को तेजस्वी कर देता है और अपवर्गाश्रय अमृतधाम मोक्षधाम को भी सुरक्षित कर देता है॥ ७॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय परमात्मदेव वाला)॥ देवता—प्रजापतिः (समस्त प्राणिप्रजा का रक्षक विशेषतः उपासक प्रजा का पालक)॥

छन्दः—अनुष्टुप्॥

६०२. **मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः। परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु॥ १॥**

पदपाठः— **मयि वर्च्चः अथ उ यशः अथ उ यज्ञस्य यत् पयः परमेष्ठी परमे स्थी प्रजापतिः प्रजा पतिः दिवि द्याम् इव दृꣳहतु॥ १॥**

अन्वयः—मयि वर्चः अथ-उ यशः अथ-उ यज्ञस्य यत् पयः परमेष्ठी प्रजापतिः दिवि द्याम्-इव दृंहतु॥

पदार्थः—(मयि) मेरे में (वर्चः) आत्मबल (अथ-उ) और (यशः) मानस उत्कर्ष (अथ-उ) और (यज्ञस्य यत् पयः) श्रेष्ठकर्म 'यज्ञः-प्रथमास्थाने षष्ठी छान्दसी' जो इन्द्रिय संयम है उसको (परमेष्ठी प्रजापतिः) परम मोक्षधाम में स्थित मुक्त प्रजा का पालक स्वामी परमात्मा (दिवि द्याम्-इव दृंहतु) द्युमण्डल में ज्योति की भाँति स्थिर करे ''दिवि ते बृहद् भा इत्याह सुवर्ग एवास्मै लोके ज्योतिर्दधाति'' [तै० सं० ३.४.३.६]।

भावार्थः—मेरे में आत्मबल, मेरे में मानस उत्कर्ष—पवित्रभाव, मेरे में ऐन्द्रियिक संयम को, मोक्षधाम का अधिष्ठाता, मुक्तात्माओं का रक्षक, स्वामी परमात्मा स्थिर करे। जैसे उसने द्युमण्डल में ज्योति को स्थिर किया है जिससे मैं अपने आत्मा, मन और इन्द्रियों को परिष्कृत कर उस परमात्मा और मोक्षधाम को प्राप्त कर सकूँ॥ १॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के प्रति अत्यन्त गतिशील उपासक)॥ देवता—पवमानः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६०३. **सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व॥ २॥**

पदपाठः— **सम् ते पयाꣳसि सम् उ यन्तु वाजाः सम् वृष्ण्यानि अभिमातिषाहः अभिमाति साहः आप्यायमानः आ प्यायमानः अमृताय अ मृताय सोम दिवि श्रवाꣳसि उत्तमानि धिष्व॥ २ ॥**

अन्वयः—सोम ते-अभिमातिषाहः पयांसि-अमृताय संयन्तु वाजाः सम्-उ वृष्ण्यानि सम् दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते-अभिमातिषाहः) तुझ पापभावनाओं काम आदि को सहने दबाने—नष्ट करने वाले के "पाप्मा वा अभिमातिः" [काठ० १३.२] (पयांसि-अमृताय संयन्तु) ज्ञानमय तेज—तेजोरूपधाराएँ "एतत् सोमस्य तेजः-यत् पयः" [तै० सं० २.५.२.७] अमृत—अमर हुए जीवन्मुक्त के लिये सम्प्राप्त हो (वाजाः सम्-उ) अमृत अन्न—अनश्वरभोग अवश्य सम्प्राप्त हों (वृष्ण्यानि सम्) रेतःसामर्थ्य भी सम्प्राप्त हों "सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाह इति संरेतांसि पाप्मसह इत्येतत्" [श० ७.३.१.४६] तथा (दिवि) मोक्षधाम में (उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) उत्कृष्ट श्रवः-प्रशंसनीय यश—यशस्वी प्रवृत्तियों को धारण करा।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ काम आदि पापभावनाओं के दबाने नष्ट करने वाले के ज्ञानमय तेजप्रवाह अमरयश को प्राप्त हुए मुक्त जीवन्मुक्त को सम्प्राप्त हों—होते हैं। अमृतभोग तथा मोक्षधाम में ऊँची यशस्वी प्रवृत्तियाँ भी धारण करा—करता है॥ २ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के प्रति अत्यन्त गतिशील उपासक)॥
देवता—पवमानः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥
छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६०४. **त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।**
त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥ ३ ॥

पदपाठः— **त्वम् इमाः ओषधीः ओष धीः सोम विश्वाः त्वम् अपः अजनयः त्वम् गाः त्वम् आ अतनोः उरु अन्तरिक्षम् त्वम् ज्योतिषा वि तमः ववर्थ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम त्वम् इमाः-विश्वाः-ओषधीः-अजनयः त्वम्-अपः त्वं गाः त्वम्-उरु-अन्तरिक्षम्-आतनोः त्वं ज्योतिषा तमः-वि ववर्थ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (इमाः-विश्वाः-ओषधीः-अजनयः) इन समस्त ओषधियों—तापनाशक द्रव्यों को उत्पन्न करता है

(त्वम्-अपः) तू शान्तिकारक जलों को उत्पन्न करता है (त्वं गाः) तू निर्वाह के साधन गौ आदि पशुओं तथा निवास के आश्रय पृथिवी प्रदेशों को उत्पन्न करता है (त्वम्-उरु-अन्तरिक्षम्-आतनोः) तू अवकाशप्रद महान् खुले आकाश को समन्तरूप से तानता है (त्वं ज्योतिषा तमः-वि ववर्थ) तू ज्योति से अज्ञान तथा अन्धकार को अलग करता है, हटाता है।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू बड़ा महान् उपकारक है अपनी हम प्रजाओं के ताप भूख हरने के लिये ओषधियों को—शान्तिकारक जलों को जीवननिर्वाहक गौओं निवासाश्रय के लिये भू-प्रदेशों को अवकाशदानार्थ खुले आकाश को उत्पन्न करता है तथा अज्ञान अन्धकार के निवारणार्थ ज्योति को प्रकट करता है, सचमुच तू सर्वथा उपासनीय स्तुति योग्य है ॥ ३ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः (सर्वमित्र उदार महात्मा से सम्बद्ध मधुर इच्छा वाला)॥ देवता—अग्निः (स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६०५. अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ४॥

पदपाठः— अग्निम् ईडे पुरोहितम् पुरः हितम् यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम् होतारम् रत्नधातमम् रत्न धातमम्॥ ४॥

अन्वयः—यज्ञस्य पुरोहितम् देवम् ऋत्विजम् होतारम् रत्नधातमम् अग्निम् ईडे॥

पदार्थः—(यज्ञस्य) महिमारूप सृष्टियज्ञ के "यज्ञो वै महिमा" [श० ६.३.१.१८] "एतावानस्य महिमा" [ऋ० १०.९०.३] (पुरोहितम्) पूर्व से वर्तमान हुए अपने अन्दर धारणकर्ता—(देवम्) प्रकाशक तथा भोग मोक्षप्रदाता—(ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में जड़ जङ्गम रचयिता—(होतारम्) होमने वाले यजमानरूप—(रत्नधातमम्) रमणीय पदार्थों के अत्यन्त धारक—(अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा को (ईडे) स्तुत करूँ—स्तुति में लाऊँ।

भावार्थः—परमात्मा इस सृष्टियज्ञ का अकेला ही पुरोहित भी है सृष्टि से पूर्व वर्तमान होते हुए इसे धारण कर रहा है। वही देव भी है, भोग और मोक्ष को देता है, उपासक की उपासनारूप हवि को लेता है। ऋत्विक् भी है, ऋतु ऋतु में अणुओं का परस्पर योग कर रचयिता है। होता यजमान भी है, परिणाम या रूपान्तर करता है। रत्नधातम—यज्ञमण्डप भी है, सब रमणीय वस्तुओं का आश्रय है और अग्नि भी वही है, इसे आगे परिवर्तन करने वाला वही है, उस ऐसे गुणों वाले की स्तुति मैं करता रहूँ॥ ४॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥ देवता—अग्निः (स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६०६. ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन्। ता जानती रभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः॥ ५॥

पदपाठः— ते अमन्वत प्रथमम् नाम गोनाम् त्रिः सप्त परमम् नाम जानन् ताः जानतीः अभि अनूषतः क्षा आविः आ विः भुवन् अरुणीः यशसा गावः॥ ५॥

अन्वयः—ते गोनां प्रथमं नाम मन्वत परमं नाम त्रिः सप्त जानन् जानतीः ता-क्षाः अभ्यनूषत गावः यशसा अरुणीः-आविः-भुवन्॥

पदार्थः—(ते) हे अग्ने ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तेरे (गोनां प्रथमं नाम) वेदवाणियों में कहे प्रमुख नाम 'ओ३म्' को (मन्वत) मानती हैं (परमं नाम त्रिः सप्त) 'परे भवं परमम्' मुख्य नाम के परे—अन्त में द्वितीय कोटि का "अन्तो वै परमम्" [ऐ० ५.२१] गौणिक और कार्मिक नाम इक्कीस छन्दों गायत्री आदि छन्दोयुक्त मन्त्रों में सविता, विष्णु आदि नाम भी (जानन्) जानती हैं (जानतीः) जानती हुईं (ता-क्षाः) वे तेरे आश्रय में—तेरे में ही निवास करने वाली मनुष्य प्रजाएँ (अभ्यनूषत) तेरी भली प्रकार स्तुति करती हैं इस प्रकार वे (गावः) स्तुति करने वाली मनुष्य प्रजाएँ "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] (यशसा) यश से (अरुणीः-आविः-भुवन्) तेजस्वी प्रसिद्ध हो गईं—हो जाती हैं।

भावार्थः—हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! वेदवाणियों में कहे तेरे प्रमुख नाम 'ओ३म्' के पश्चात् द्वितीय कोटि में आने वाले गायत्री आदि इक्कीस छन्दों वाले मन्त्रों में कहे सविता आदि गौणिक और कार्मिक नामों को जानती हुईं तेरे आश्रय में निवास करती हुईं मनुष्य प्रजाएँ तेरी स्तुति करती हैं तो यशोमय जीवन में प्रसिद्ध हो जाती हैं॥ ५॥

ऋषिः—गृत्समदः (स्तुतिकर्ता हर्षालु उपासक)॥ देवता—अग्निः (स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६०७. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति। तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः॥ ६॥

पदपाठः— सम् अन्याः अन् याः यन्ति उप यन्ति अन्याः अन् याः समानम् सम् आनम् उर्वम् नद्यः पृणन्ति तम् उ शुचिम् शुचयः दीदिवांꣳसम् अपाम् नपातम् उप यन्ति आपः॥ ६॥

अन्वयः—समानम्-ऊर्वम् नद्यः पृणन्ति नद्यः-स्पृणन्ति अन्याः-उपयन्ति शुचयः-आपः तम्-उ शुचिं दीदिवांसम् अपान्नपातम् उपयन्ति ॥

पदार्थः—(समानम्-ऊर्वम्) समान—एक ही नदियों के आश्रयरूप आच्छादन या वरण करने वाले महानद समुद्र को "ऊर्वी उर्व्यः-नदीनाम" [निघं० १.१३] "उर्वी-ऊर्णोति वृणोतेरित्यौपमन्यवः" [निरु० २.२७] 'छान्दसं रूपम्' (नद्यः पृणन्ति) नदियाँ तृप्त करना चाहती हैं—भरना चाहती हैं 'अन्तर्गत सन्नर्थः' अथवा (नद्यः-स्पृणन्ति) नदियाँ समुद्र की ओर चलती हैं, जाती हैं "स्पृ प्रीतिचलनयोः" [स्वादि०] 'विकरण व्यत्ययेन श्ना' परन्तु उनमें (अन्याः-उपयन्ति) सब नहीं विरली नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार (शुचयः-आपः) पवित्र—पापरहित एवं ज्ञानवैराग्य से प्रकाशमान आध्यात्मिक आप्तमनुष्य "आपोऽक्षिति या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मम्" [कौ० ७.४] "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०] (तम्-उ) उस ही (शुचिं दीदिवांसम्) पवित्र—पापसम्पर्करहित सर्वज्ञ अत्यन्त प्रकाशमान—(अपान्नपातम्) आप्तजनों को न गिराने वाले परमात्मा को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—जैसे अपने वरने वाले समानरूप समुद्र को नदियाँ भरना या प्राप्त होना चाहती हैं, परन्तु विरली नदियाँ समुद्र तक पहुँचती हैं, ऐसे ही पवित्र निष्पाप ज्ञानवैराग्य से प्रकाशमान आध्यात्मिक आप्त मनुष्य इस अपने इष्टदेव पवित्र निष्पाप सर्वज्ञ अत्यन्त प्रकाशमान आप्त मुमुक्षुओं को अपनाने वाले परमात्मा को प्राप्त करते हैं॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)॥ देवता—रात्रिः (सुखदात्री परमात्मा की छाया शरण)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६०८. **आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति। अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **आ प्र आ अगात् भद्रा युवतिः अह्नः अ ह्नः केतून् सम् ईर्त्सति अभूत् भद्रा निवेशनी नि वेशनी विश्वस्य जगतः रात्री ॥ ७ ॥**

अन्वयः—रात्री भद्रा युवतिः अह्नः केतून् समीर्त्सति भद्रा विश्वस्य जगतः निवेशनी-अभूत् ॥

पदार्थः—(रात्री) उपासकों को रमण कराने वाली या आनन्द देने वाली परमात्मा की श्री—आश्रयरूपा छाया, रक्षा "यस्यच्छायाऽमृतम्" [ऋ० १०.१२१.२] "रात्रिरेव श्रीः" [श० १०.२.६.१६] "क्षेमो रात्रिः" [श० १३.१.४.३] (भद्रा) कल्याणरूपा—कल्याणकारिणी (युवतिः) दुःखबन्धन से अलग करने और मोक्षानन्द से मिलाने वाली (अह्नः केतून्) अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले ज्ञानानन्द का

उपहार देने वाले प्रेरक परमात्मा के "अहरेव सविता" [गो० १.१.३३] प्रज्ञानों—बोधप्रेरणाओं या झाँकियों को "केतुः प्रज्ञानम्" [निघं० ३.९] (समीर्त्सति) समृद्ध करती है (भद्रा) वह कल्याणरूपा (विश्वस्य जगतः) समस्त उपासक या मनुष्यमात्र की (निवेशनी-अभूत्) अपने में निवेश—पूर्ण आश्रय देने वाली है।

भावार्थः—उपासकों को रमण कराने वाली या आनन्द देने वाली परमात्मा की श्री—आश्रयरूपा छाया रक्षा कल्याणकारी दुःखबन्धन से अलग करने और सुख मोक्षानन्द से मिलाने वाली अज्ञानान्धकार को नष्ट करने, ज्ञानानन्द का उपहार देनेवाले प्रेरक परमात्मा के प्रज्ञानों—बोध सङ्केतों को या झाँकियों को समृद्धि करती है। परमात्मा की ओर गति करने वाले मनुष्यमात्र का आश्रय देने वाली है॥७॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न का धारणकर्ता उपासक)॥ देवता—अग्निर्वैश्वानरः (विश्वनायक परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

६०९. **प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे। वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये॥८॥**

पदपाठः— प्रक्षस्य प्र क्षस्य वृष्णः अरुषस्य नू महः प्र नः वचः विदथा जातवेदसे जात वेदसे वैश्वानराय वैश्व नराय मतिः नव्यसे शुचिः सोमः इव पवते चारुः अग्नये॥८॥

अन्वयः—प्रक्षस्य वृष्णः अरुणस्य जातवेदसे नव्यसे वैश्वानराय-अग्नये नु महः-वचः मतिः शुचिः-चारुः सोमः इव पवते॥

पदार्थः—(प्रक्षस्य) 'प्रक्षाय' सम्पृक्त करने वाले व्यापक—(वृष्णः) 'वृष्णे' कामनावर्षक—(अरुणस्य) अरुणाय तेजस्वी—"चतुर्थ्यर्थे षष्ठी बहुलम्" [अष्टा० २.३.६२] (जातवेदसे नव्यसे वैश्वानराय-अग्नये) सब जानने वाले सबके उत्पादक विश्वनायक अत्यन्त स्तुति योग्य प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये (नु) शीघ्र (महः-वचः) पूजा करने वाले वचन (मतिः) स्तुति "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० २.६] और (शुचिः-चारुः सोमः) पवित्र सुन्दर या चरणशील उपासनारस (इव) "इवोऽपि दृश्यते" [निरु० १.११] वेदनस्थानों—हृदयों में (पवते) प्राप्त होता है उसे स्वीकार करे।

भावार्थः—सबको सम्पृक्त करने वाले व्यापक कामनावर्षक तेजस्वी सबके ज्ञाता सबके उत्पादक विश्वनायक अत्यन्त स्तुतियोग्य प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये हमारा पूजन आदरवचन प्रार्थना-स्तुति और पवित्र सुन्दर उपासनारस हृदयों में शीघ्र प्रवृत्त होता है उसे परमात्मा स्वीकार करे॥८॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्नभोग को अपने में भरने वाला उपासक)॥
देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६१०. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म। मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम॥ ९॥

पदपाठः— विश्वे देवाः मम शृण्वन्तु यज्ञम् उभेइति रोदसीइति अपाम् नपात् च मन्म मा वः वचांꣳसि परिचक्ष्याणि परि चक्ष्याणि वोचम् सुम्नेषु इत् वः अन्तमाः मदेम॥ ९॥

अन्वयः—विश्वे देवाः मम यज्ञम् उभे रोदसी च अपान्नपात् मन्म शृण्वन्तु वः परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचम् सुम्नेषु-इत् वः-अन्तमाः-मदेम॥

पदार्थः—(विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् वेदप्रवक्ता ऋषिजन ''विश्वे देवाः सूक्तवाचः'' [तै० सं० ३.३.२.१-२] (मम) मेरे (यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ को अनुमोदित करें—उसमें सहयोग देकर बढ़ावें (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी ''रोदसी द्यावावृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०] मेरे पिता और माता ''द्यौर्मे पिता माता पृथिवी महीयम्'' [ऋ० १.१६४.३३] भी अनुमोदन दें—पुष्ट करें। अथवा विश्वेदेव—इन्द्रियाँ ''प्राणा वै विश्वेदेवाः'' [तै० सं० ५.२.२.११] ''प्राणा इन्द्रियाणि'' [काठ० ८.१] और द्यावापृथिवी—प्राणोदान ''द्यावीपृथिवी प्राणोदानौ'' [श० ४.३.१.२२] (च) और (अपान्नपात्) आप्त उपासकों को न गिराने वाला—रक्षा करने वाला अपनाने वाला परमात्मा मेरे (मन्म) मननीय स्तुतिवचन ''मन्मभिः-मननीयैः स्तोमैः'' [निरु० १०.६] (शृण्वन्तु) सुनें—स्वीकार करें (वः) तुम्हारे लिये (परिचक्ष्याणि वचांसि) निन्दनीय वचनों को (मा वोचम्) मैं न बोलूँ—प्रतिकूल न आचरूँ (सुम्नेषु-इत्) तुमसे होने वाले सुखों के निमित्त (वः-अन्तमाः-मदेम) तुम्हारे समीप में रहकर हर्षित हों।

भावार्थः—हे सब मुमुक्षु ऋषियो! मेरे अध्यात्मयज्ञ को अनुमोदित करो पुष्ट करो बढ़ाओ, माता पिताओ एवं प्राणोदानो तुम भी बढ़ाओ, आप्त जीवन्मुक्तों का रक्षक अपनाने वाला परमात्मा मननीय स्तुतिवचन को सुने, स्वीकार करे मैं तुम्हारे लिये निन्दनीय वचन न बोलूँ—प्रतिकूल न आचरूँ। सुखों के निमित्त तुम्हारे समीप में हर्षित होवें॥ ९॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—लिङ्गोक्ताः (मन्त्र में कहे हुए दिव्य नाम)॥ छन्दः—महापंक्तिः॥

६११. यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती। यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्। यशस्व्या३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम्॥ १०॥

पदपाठः— **यशः मा द्यावा पृथिवीइति यशः मा इन्द्रबृहस्पती इन्द्र बृहस्पतीइति यशः भगस्य विन्दतु यशः मा प्रति मुच्यताम् यशस्वी अस्याः सꣳसदः सम् सदः अहम् प्रवदिता प्र वदिता स्याम्॥ १०॥**

अन्वयः—द्यावापृथिवी मा यशः इन्द्राबृहस्पती मा यशः भगस्य यशः-विन्दतु यशः-मा प्रति मुच्यताम् अस्याः संसदः अहं यशस्वी प्रबदिता स्याम्॥

पदार्थः—(द्यावापृथिवी) पिता माता "द्यौर्मे पिता माता पृथिवी महीयम्" [ऋ० १.१६४.३३] (मा यशः) मुझे यश प्राप्ति के कारण हो—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति के कारण बनें "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२.३] (इन्द्राबृहस्पती) शिष्य और गुरु (मा यशः) मुझे यश प्राप्ति के कारण हों—अन्ततः परमात्मा की प्राप्ति के कारण बनें (भगस्य यशः-विन्दतु) ऐश्वर्य का यश प्राप्ति हो—अन्ततः ऐश्वर्य भी परमात्मा को प्राप्त करावे (यशः-मा प्रति मुच्यताम्) यश मुझे ग्रहण करे—यशोरूप परमात्मा मुझे स्वीकार करे "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चः" [पार० २.२.११] (अस्याः संसदः) इस मानवसमाज का (अहं यशस्वी प्रवदिता स्याम्) मैं यशस्वी प्रवक्ता—अन्ततः यशोरूप परमात्मा का प्रवक्ता होऊँ।

भावार्थः—पिता माता की सेवा में आज्ञापालन में मैं यशस्वी बनूँ अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति करूँ, शिष्य और गुरु से ऐसे वर्तूं जिससे मैं यशोभाक् बनूँ—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति में सहायक बनूँ, ऐश्वर्य का यश पाऊँ—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति का साधन बनूँ, यश मुझे अपनावे, अपयश का कार्य न कर पाऊँ। अन्ततः यशोरूप परमात्मा मुझे प्राप्त हो, मानवसमाज का यशस्वी हित वक्ता बनूँ। अन्ततः यशोरूप परमात्मा का कुशल प्रवक्ता बनूँ॥ १०॥

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः (प्राणविद्या में सम्पन्न बहुविध ज्ञानज्योति वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६१२. **इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।**
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥ ११॥

पदपाठः— इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम् यानि चकार प्रथमानि वज्री अहन् अहिम् अनु अपः ततर्द प्र वक्षणाः अभिनत् पर्वतानाम्॥ ११॥

अन्वयः—इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम् वज्री यानि प्रथमानि चकार अहिम्-अहन् अपः-अनुततर्द पर्वतानां वक्षणाः प्राभिनत्॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (नु) शीघ्र शीघ्र—बार बार

(वीर्याणि प्रवोचम्) वीरकर्मों को—स्वाधार बलों—पराक्रमों को प्रशंसित करता हूँ (वज्री) वह वज्रवान् उपासक को बन्धन से वर्जित करने वाले—छुड़ाने वाले "वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः" [निरु० ३.१२] ओजस्वी "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (यानि प्रथमानि चकार) जिन प्रमुख पराक्रमों को करता है, जैसे (अहिम्-अहन्) समन्तरूप से सबके मारक मृत्युरूप सर्प को मारता है "अहिः निर्ह्रसितोपसर्ग आहन्तीति" [निरु० २.१७] (अपः-अनुततर्द) बन्धन के कारणभूत कामनाओं—कामवासनाओं को "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४.१५] नष्ट कर देता है (पर्वतानां वक्षणाः प्राभिनत्) पर्व—तृप्तिकारक ज्ञानज्योतियों वाले वेदों के "पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा" [निरु० १.२०] "पर्ववती भास्वती" [निरु० ९.२५] "पर्वतः पर्ववान्" [निरु० १.२०] "तप् पर्वमरुद्भ्याम्" [अष्टा० ५.२.१२२ वा०] ज्ञानामृत स्रोतों—झरनों को खोलता है।

भावार्थः—सर्वैश्वर्यवान् परमात्मा के वीरकर्मों—स्वाधार पराक्रमों की शीघ्र शीघ्र—बार बार प्रशंसा करता हूँ जो ओजस्वी उपासकों को बन्धन से छुड़ाने वाला भारी पराक्रमों को करता है, सबके मारक मृत्युरूप सर्प को कामवासना को भी नष्ट करता है एवं तृप्तिकारक ज्ञानज्योतियों से पूर्ण वेदों के ज्ञानामृत स्रोतों—झरनों को बहाता है॥ ११॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र उदार उपासक)॥ देवता—सर्वात्मा-अग्निः (सबका आत्मस्वरूप अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६१३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्॥ १२॥

पदपाठः— अग्निः अस्मि जन्मना जातवेदाः जात वेदाः घृतम् मे चक्षुः अमृतम् अ मृतम् मे आसन् त्रिधातुः त्रि धातुः अर्कः रजसः विमानः वि मानः अजस्रम् अ जस्रम् ज्योतिः हविः अस्मि सर्वम्॥ १२॥

अन्वयः—अग्निः जन्मना जातवेदाः-अस्मि मे चक्षुः-घृतम् मे-आसन्-अमृतम् त्रिधातुः-अर्कः रजसः-विमानः अजस्रं ज्योतिः सर्वं हविः-अस्मि॥

पदार्थः—(अग्निः) मैं विश्व का अग्रणेता शासक परमात्मा (जन्मना जातवेदाः-अस्मि) जन्म से क्या कहूँ किन्तु जन्मे हुओं को जानने वाला हूँ अर्थात् मेरा जन्म नहीं मैं तो जन्मे हुओं का ज्ञाता हूँ—जन्मरहित शाश्वत सर्वज्ञ हूँ (मे चक्षुः-घृतम) मेरा नेत्र गोलकरूप नहीं अपितु तेज है "तेजो वै घृतम" [मै० १.६.८] जिसमें मैं नेत्र वालों को नेत्र देता हूँ (मे-आसन्-अमृतम्) मेरे मुख में

अमृत है—अमृत ही मुख है (त्रिधातुः-अर्कः) तीनों लोकों पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकों का धारणकर्ता "स प्रजापतिः-इमान् त्रीन् लोकाँस्त्रेधाऽदुहत् तत् त्रिधातोस्त्रिधातुत्वम्" [तै० सं० २.३.६.१] अर्चनीय देव हूँ। (रजसः-विमानः) लोकमात्र का पृथक् पृथक् गति देने वाला—सञ्चालक हूँ। (अजस्रं ज्योतिः) अनश्वर ज्योति—सब ज्योतियों का ज्योति—अमर ज्योति (सर्वं हविः-अस्मि) ओ३म् नामक हवि—ग्रहण करने योग्य—अपने अन्दर धारण करने योग्य हूँ "ओमिति ब्रह्म, ओमितीदं सर्वम्" [तै० आ० ७.८.१]।

पदार्थः—मैं विश्व का अग्रणेता शासक परमात्मा जन्म से कौन हूँ क्या कहूँ! किन्तु जन्मे हुओं को जानने वाला हूँ जन्मरहित शाश्वतिक हूँ। मेरी आँख तेज है, जिस तेज को आँखों वालों की आँख में देता हूँ। मेरा मुख अमृत है या मेरे मुख में अमृतवचन है। तीनों पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोकों का धारणकर्ता अर्चनीय देव हूँ। लोकमात्र को पृथक् पृथक् गति देने वाला हूँ। अनश्वर ज्योति—ज्योतियों का ज्योति ओ३म् नाम अपने अन्दर धारण करने योग्य उपास्य हूँ॥ १२॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र उदार उपासक)॥

६१४. पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्य्यस्य। पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः॥ १३॥

पदपाठः—पाति अग्निः विपः अग्रम् पदम् वेः पाति यह्वः चरणम् सूर्यस्य पाति नाभा सप्तशीर्षाणम् सप्त शीर्षाणम् अग्निः पाति देवानाम् उपमादम् उप मादम् ऋष्वः॥ १३॥

अन्वयः—विपः-अग्निः वेः-अग्र पदं पाति यह्वः सूर्यस्य चरणं पाति नाभा सप्तशीर्षाणं पाति ऋष्वः देवानाम्-उपमादम्॥

पदार्थः—(विपः-अग्निः) विपश्चित्—सर्वज्ञ अग्रणायक परमात्मा "विपः-मेधावी" [निघं० ३.१५] (वेः-अग्रं पदं पाति) गतिशील निरन्तर अतनशील आत्मा के अगले पद—जन्मान्तर देह की रक्षा करता है कर्मानुसार सुरक्षित रखता है (यह्वः) महान् अग्रणेता परमात्मा "यह्वः-महन्नाम" [निघं० ३.३] (सूर्यस्य चरणं पाति) विद्यासूर्य विद्वान् सब इन्द्रियों के स्वामी वशीकर्ता जीवन्मुक्त आत्मा के "तं सर्वाणि भूतानि सोऽर्य सोऽर्य इत्ययन् तत्सोऽर्यस्य सोऽर्यत्वं सोऽर्यो नामैष तं सूर्य इति परोक्षमाचक्षते" [जै० ३.३.५७] "सूर्य आत्मा" [तै० सं० १.४.४३.१] सेवन करने योग्य मोक्ष की रक्षा वाला है (नाभा) नाभि—प्राणों को बान्धने वाला अग्रणेता परमात्मा "नाभिर्वै प्राणान् दाधार" [काठ० ३७.१६] (सप्तशीर्षाणं पाति) सात ऊपरी प्राण वाले आत्मा की रक्षा करता है "प्राणो वै शिरः" [जै० १.२.६८] (ऋष्वः) सबको प्राप्त महान् परमात्मा (देवानाम्-उपमादम्) समस्त उपासक विद्वानों के अभ्युदयरूप सांसारिक हर्षकारी सुख की भी रक्षा करता है।

भावार्थः—सर्वज्ञ अग्रणेता परमात्मा एक देह से दूसरे देह में जाने वाले आत्मा के अगले जन्म की रक्षा करता है—उसे नियत करता है। वह प्राणों को बान्धने वाला सात ऊपर प्राणों—दो आँखों दो कानों दो नासिकछिद्रों एक मुख से उचित कार्य लेने वाले संयमी की रक्षा करता है, सच्चा सुख प्राप्त कराता है, जीवन्मुक्त की रक्षा करता है॥ १३॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

६१५. **भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि।**
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः॥ १॥

पदपाठः— **भ्राजन्ति अग्ने समिधान सम् इधान दीदिवः जिह्वा चरति अन्तः आसनि सः त्वम् नः अग्ने पयसा वसुवित् वसु वित् रयिम् वर्च्चः दृशे दाः॥ १॥**

अन्वयः—समिधान दीदिवः-अग्ने भ्राजन्ती जिह्वा आसनि-अन्तः-चरति सः-त्वम् वसुविद्-अग्ने दृशे नः रयिं वर्चः पयसा अदाः॥

पदार्थः—(समिधान दीदिवः-अग्ने) हे सम्यक् प्रकाशमान अन्यों को प्रकाशित करने वाले अग्रणायक परमात्मन्! (भ्राजन्ती जिह्वा) तेरे गुणों का प्रकाश करती हुई वाक्—वाणी "जिह्वा वाङ्नाम" [निघं० १.११] (आसनि-अन्तः-चरति) मुख के अन्दर प्राप्त है (सः-त्वम्) वह तू (वसुविद्-अग्ने) हे धन प्राप्त कराने वाले परमात्मन्! (दृशे) अपने दर्शनार्थ (नः) हमारे लिये (रयिं वर्चः पयसा) पुष्टि—स्वास्थ्य "पुष्टं वै रयिः" [श० २.३.४.१३] ब्रह्मवर्चस को प्राणशक्ति के साथ "प्राणः पयः" [श० ६.५.४.१५] (अदाः) प्रदान कर।

भावार्थः—हे स्वयं प्रकाशमान अन्यों को प्रकाशित करने वाले अग्रणायक परमात्मन्! तेरे गुणों का प्रकाश करती हुई वाणी मेरे मुख के अन्दर प्राप्त है। यह तेरी स्तुति करती रहती है, इस प्रतीकार में तू अपने दर्शनार्थ हमारे लिये पुष्टि स्वास्थ्य प्राणशक्ति और ब्रह्मवर्चस प्रदान कर॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

६१६. **वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः। वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः॥ २॥**

पदपाठः— **वसन्तः इत् नु रन्त्यः ग्रीष्मः इत् नु रन्त्यः वर्षाणि अनु शरदः हेमन्तः शिशिरः इत् नु रन्त्यः॥ २॥**

अन्वयः—वसन्तः-इत्-नु रन्त्यः ग्रीष्मः-इत्-नु रन्त्यः वर्षाणि-अनु शरदः हेमन्तः शिशिरः-इत्-नु रन्त्यः ॥

पदार्थः—(वसन्तः-इत्-नु रन्त्यः) हे प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन्! मेरा प्राण "प्राण एव वसन्तः" [जै० २.५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो प्राणायामादि द्वारा (गीष्मः-इत्-नु रन्त्यः) मेरी वाक्—वाणी "वाग्ग्रीष्मः" [जै० २.५०] हाँ शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो स्तुति द्वारा (वर्षाणि-अनु) साथ ही मेरी आँख "चक्षुर्वषाः" [जै० २.५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे दर्शन की उत्सुकता द्वारा तेरे रचे जगत् में तेरी कला को देख देखकर तेरे पाठ पढ़-पढ़कर (शरदः) मेरा श्रोत्र—कान "श्रोत्रं शरदः" [जै० २.५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे सम्बन्ध में श्रवण द्वारा (हेमन्तः) मेरा मन "मनो हेमन्तः" [जै० २.५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे मनन चिन्तन द्वारा (शिशिरः-इत्-नु रन्त्यः) मेरा प्रतिष्ठान नाभि के नीचे का अङ्ग "शिशिरं प्रतिष्ठानम्" [मै० ४.९.१८] शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो, आसन सदाचरण द्वारा।

भावार्थः—परमात्मन्! मेरा प्राण प्राणायाम द्वारा, मेरा मन मनन द्वारा, मेरा कान तेरे श्रवण द्वारा, मेरी आँख तेरे दर्शन एवं वस्तु वस्तु में तेरी छवि देखे, तेरे पाठ पढ़ मेरी वाणी तेरी स्तुति गुणगान कर मेरा नाभि का अधोभाग आसन एवं सदाचरण द्वारा तेरे में सदा बार बार समर्पण करने योग्य रहे ॥ २ ॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे "आपः-नाराः" अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)॥ देवता—पुरुषः (सृष्टिपुर में बसा हुआ पूर्णपुरुष परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६१७. **सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **सहस्रशीर्षाः सहस्र शीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र अक्षः सहस्रपात् सहस्र पात् सः भूमिम् सर्वतः वृत्वा अति अतिष्ठत् दशाङ्गुलम् दश अङ्गुलम्॥ ३ ॥**

अन्वयः—सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः सः भूमिं सर्वतः-वृत्वा दशाङ्गुलम्-अत्यतिष्ठत्॥

पदार्थः—(सहस्रशीर्षा) असंख्यात "सहस्रं बहुनाम" [निघं० ३.१] शिरों वाला अनन्तज्ञानशक्तिमान् (सहस्राक्षः) असंख्यात नेत्रों वाला—अनन्तदर्शनशक्तिमान् (सहस्रपात्) असंख्य पादों वाला—अनन्तगतिशक्तिमान् (पुरुषः) सृष्टि में पूर्ण पुरुष परमात्मा है (सः) वह (भूमिं सर्वतः-वृत्वा) भुवन—जगत् को सब ओर से

घेरकर—व्याप्त होकर (दशाङ्गुलम्-अत्यतिष्ठत्) दशाङ्गुल परिमाण वाले—दश अङ्गुलि सङ्केतों से गिने जाने वाले पञ्चस्थूल भूत पञ्च सूक्ष्मभूतरूप जगत् को या दशाङ्गुलिसम्पुट—दोनों हाथों की मुट्ठी में वश किए ब्रह्माण्डगोल को अतिक्रमण कर उससे भी बाहिर अनन्तरूप से रहता है "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १.५२.१२] परमात्मन्! तू आकाश के भी पार है "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।

भावार्थः—समस्त जगत् का रचयिता परमपुरुष परमात्मा इस जगत् के अन्दर पूर्ण हुआ अनन्तज्ञान शक्तिमान्, अनन्तदर्शन शक्तिमान् अनन्तगति शक्तिमान् है, जगत् के सब पदार्थ उसके ज्ञान में हैं। सब जीवों के कर्मों को जानता है। सब उसकी दृष्टि में हैं। सबको गति देता है। समस्त जगत् में व्याप्त है। सब जगत् उसके सम्मुख सीमित है कारण कि उससे बाहिर भी अनन्त है। उसकी शरण परमकल्याणप्रद है ॥ ३ ॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे "आपः-नाराः" अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)॥ देवता—पुरुषः (सृष्टिपुर में बसा हुआ पूर्णपुरुष परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६१८. **त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **त्रिपात् त्रि पात ऊर्ध्वः उत् ऐत् पुरुषः पादः अस्य इह अभवत् पुनरिति तथा विष्वङ् वि स्वङ् वि अक्रामत् अशनानशने अशन अनशनेइति अभि ॥ ४ ॥**

अन्वयः—त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः-उदैत् अस्य पादः-इह-पुनः-अभवत् तथा अशनाशने-अभि विष्वङ्व्यक्रामत्॥

पदार्थः—(त्रिपात् पुरुषः) तीन पाद—तीन गुणा या तीन अमृतानन्दरूपों वाला परम पुरुष (ऊर्ध्वः-उदैत्) नश्वर जगद्रूप से ऊपर उठा हुआ है (अस्य पादः-इह-पुनः-अभवत्) इसका पाद मात्र जगद्रूप यहाँ नीचे पुनः पुनः होता है (तथा) इस रूप में वह (अशनाशने-अभि) भोगने वाले जङ्गम—चेतन और न भोगने वाले जड़ को लक्ष्य कर (विष्वङ् व्यक्रामत्) उत्पादन धारण नियन्त्रण कर्मफल प्रदान आदि विविध शक्तियों से सुगमतया प्राप्त होने वाला परमात्मा अपने विक्रम में रखता है।

भावार्थः—पूर्ण पुरुष परमात्मा की विराजमानता दो स्थानों में है एक तो स्थान जगत् है, जो बार बार उत्पन्न हुआ करता है जिसमें भोगने वाले जङ्गम और न भोगने वाले जड़ उत्पन्न होते रहते हैं, इन्हें परमात्मा अपनी विविध शक्तियों से स्ववश किए हुए है, दूसरा स्थान जगत् से पृथक् अमृतानन्दरूप मोक्ष है, मुमुक्षु

उपासक आत्मा उसमें मोक्षानन्द प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे ''आपः-नाराः'' अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)॥ देवता—पुरुषः (सृष्टिपुर में बसा हुआ पूर्णपुरुष परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६१९. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥

पदपाठः— पुरुषः एव इदम् सर्वम् यत् भूतम् यत् च भाव्यम् पादः अस्य सर्वा भूतानि त्रिपात् त्रि पात् अस्य अमृतम् अ मृतम् दिवि ॥ ५ ॥

अन्वयः—पुरुषे-एव इदं सर्वम् यत्-भूतं यत्-च भाव्यम् सर्वा भूतानि-अस्य पादः अस्य त्रिपात् अमृतं दिवि ॥

पदार्थः—(पुरुषे-एव) पूर्ण पुरुष परमात्मा के अन्दर ही (इदं सर्वम्) यह सब जगत् है (यत्-भूतं यत्-च भाव्यम्) जो उत्पन्न हुआ, जो उत्पन्न होने वाला है, अतः (सर्वा भूतानि-अस्य पादः) सारी उत्पन्न वस्तुएँ और जो उत्पन्न होने वाली हैं इस पूर्ण पुरुष परमात्मा का पादमात्र है—एक देश या एक अंश मात्र है (अस्य त्रिपात्) इसका तीन पाद जो भूत भविष्य से परे न उत्पन्न होने वाला अभौतिक (अमृतं दिवि) मृतरहित—स्थिर द्योतनात्मक मोक्षधाम में है।

भावार्थः—पूर्ण पुरुष परमात्मा में जो यह उत्पन्न हुआ या उत्पन्न होने वाला जगत् है जिसके अन्दर सब ही जड़ जङ्गम हैं, परमात्मा का एक पाद—एक देश में वर्तमान होने से एक अंश मात्र है, परन्तु इसका पादत्रय—तीन पाद वाला स्वरूप अमृतानन्द इस भौतिक जगत् से परे है अभौतिक द्योतनात्मक स्वस्वरूप में या मोक्षधाम में है ॥ ५ ॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे ''आपः-नाराः'' अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)॥ देवता—पुरुषः (सृष्टिपुर में बसा हुआ पूर्णपुरुष परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६२०. तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥

पदपाठः— तावान् अस्य महिमा ततः ज्यायान् च पुरुषः उत अमृतत्वस्य अ मृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति अति रोहति ॥ ६ ॥

अन्वयः—तावान्-अस्य महिमा च ततः-ज्यायान् पुरुषः उत अमृतत्वस्य-ईशानः यत्-अन्नेन-अतिरोहति॥

पदार्थः—(तावान्-अस्य महिमा) उतना एक पाद मात्र उत्पन्न और उत्पन्न होने वाला भौतिक जगत् यह सब पूर्ण पुरुष परमात्मा की महिमा—स्थूल दृष्टि से परिचय कराने वाली है (च) और (ततः-ज्यायान् पूरुषः) उससे अधिक महान् पूर्ण पुरुष परमात्मा है (उत) और वह (अमृतत्वस्य-ईशानः) त्रिपादरूप अमृतस्वरूप का ईश है—स्वामी है (यत्-अन्नेन-अतिरोहति) जोकि कर्मफल भोग से—भोग का लक्ष्य बना जगत् में आकर अतिरोहण करता है—मोक्ष की ओर जाता है उस जीववर्ग का भी स्वामी है।

भावार्थः—जितना भी भौतिक जगत् है, जो उत्पन्न हुआ या होने वाला है, वह सब पूर्ण पुरुष परमात्मा की महिमा मात्र है। पुरुष परमात्मा तो इससे महान् है। वह अमृतत्व का स्वामी है और जो कर्मफल भोग के लक्ष्य से आकर पुनः मोक्ष की ओर भी अतिरोहण करता है, उस जीववर्ग का भी स्वामी है, उसे ऐसे पुरुष की शरण लेना कल्याणकर है॥ ६॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे ''आपः-नाराः'' अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)॥ देवता—स्त्रष्टा॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६२१. **ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ७॥**

पदपाठः— **ततः विराट् वि राट् अजायत विराजः वि राजः अधि पूरुषः सः जातः अति अरिच्यत पश्चात् भूमिम् अथ ऊ (ऊ) पुरः॥ ७॥**

अन्वयः—ततः-विराट्-अजायत विराजः-अधि पूरुषः पश्चात् सः-जातः भूमिम्-अथ पुरः-अति-अरिच्यत॥

पदार्थः—(ततः-विराट्-अजायत) उस पूर्ण पुरुष परमात्मा से विराट्—विविध पदार्थों से राजमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ (विराजः-अधि पूरुषः) विराट्—ब्रह्माण्ड के ऊपर उसका अधिनायक पूर्ण पुरुष परमात्मा है (पश्चात् सः-जातः) पश्चात् उस उत्पन्न हुए विराट्—ब्रह्माण्ड ने परमात्मा के अधिष्ठातृत्व में (भूमिम्-अथ पुरः-अति-अरिच्यत) उत्पत्ति स्थान—लोकमात्र को इसके अनन्तर पुरों—जीव शरीरों को अतिशय से विरचित किया—बाहिर निकाला—प्रकट किया॥

भावार्थः—पूर्ण पुरुष परमात्मा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न कर इसका अधिष्ठाता बना, फिर ब्रह्माण्ड का विस्तार भूमि आदि भिन्न-भिन्न लोकों में हुआ, उन पर भिन्न-भिन्न प्राणिदेह—जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज हुए, जिनमें जीवात्मा बन्धे हैं। उस उत्पन्नकर्ता परमात्मा को मान और जानकर उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करके बन्धन से छूट मोक्ष और ब्रह्मानन्द को पाता है॥ ७॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—द्यावापृथिवी (अमृत प्राण उदान[1])॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६२२. मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम्। द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः॥ ८॥

पदपाठः— मन्ये वाम् द्यावापृथिवी द्यावा पृथिवीइति सुभोजसौ सु भोजसौ येइति अप्रथेथाम् अमितम् अ मितम् अभि योजनम् द्यावापृथिवी द्यावा पृथिवीइति भवतम् स्योनेइति तेइति नः मुञ्चतम् अꣳहसः॥ ८॥

अन्वयः—सुभोजसौ द्यावापृथिवी वाम् मन्ये ये अमितं योजनम्-अभि-अप्रथेथाम् द्यावापृथिवी स्योने भवतम् ते अंहसः-मुञ्चतम्॥

पदार्थः—(सुभोजसौ द्यावापृथिवी) हे मेरे उत्तम पालन करने वाले प्राण और उदान ''द्यावापृथिवी प्राणोदानौ'' [श० ४.३.१.२२] (वाम्) तुम दोनों को (मन्ये) चाहता हूँ ''मन्यते कान्तिकर्मा'' [निघं० २.६] (ये अमितं योजनम्-अभि-अप्रथेथाम्) जो तुम दोनों अपरिमित योजन मुझे जहाँ युक्त होना हो ऐसे योजनीय मोक्षधाम को सम्मुख प्रसिद्ध करो (द्यावापृथिवी स्योने भवतम्) तुम दोनों प्राण और उदान सुखदायक होओ (ते) वे तुम दोनों (अंहसः-मुञ्चतम्) आत्मघात पाप बन्धन से छुड़ाओ ''पाप्मा वा अंहः'' [तै० २.२.७.४] ''अंहः......हन्तेः'' [निरु० ४.२५]।

भावार्थः—हे मेरे जीवन के साथियो उत्तम पालन करने वाले प्राण और उदान! तुम जन्म से साथ हो, मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम संसार में सुखदायक बनो तथा मुझे पाप बन्धन से छुड़ाओ और असीम योग मेल के स्थान मोक्ष को मेरे लिये प्रसिद्ध करो। जीवन को चलाओ—अध्यात्मक्षेत्र में प्रेरित करो। परमात्मा की उपासना में लगो लगाओ॥ ८॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६२३. हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी। तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः॥ ९॥

पदपाठः— हरी ते इन्द्र श्मश्रूणि उत उ ते हरितौ हरीइति तम् त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासः वनर्गवः॥ ९॥

१. ''द्यावापृथिवी प्राणोदानौ'' [श० ४.३.१.२२]।

अन्वयः—इन्द्र ते श्मश्रूणि हरी ते हरी हरितौ तं त्वा वनर्गवः कवयः पुरुषासः स्तुवन्ति ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते) तेरे दिए हुए (श्मश्रूणि) 'श्मश्रुणी–वचनव्यत्ययः' शरीर में—हृदय में "श्म शरीरम्" [निरु० ३.५] "शरीरं हृदयम्" [तै० ३.१०.८.७] श्रित—प्राप्त हुए "श्मश्रु श्मनि श्रितम्" [निरु० ३.५] (हरी) रोगापहरण करने और स्वास्थ्याहरण करने वाले प्राण और उदान दोनों "प्राणो वै हरिः" [कौ० १७.९] (ते) तेरे (हरी हरितौ) अज्ञानान्धकारापहरण करने आनन्दाहरण करने वाले दिव्यस्वरूपों को "हरितेन हिरण्यमयेन" [मै० ४.२.१] ज्योतिःस्वरूप और शान्तस्वरूप "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २.२४] "ज्योतिस्तद्यदृक्" [जै० १.७६] "यद्ध वै शिवं शान्तं....तत् साम" [जै० ३.५२] इनको (तं त्वा) और उस तुझको (वनर्गवः) तुझ वननीय सम्भजनीय परमात्मा की ओर जाने वाले विरक्त "वनर्गू वनगामिनौ" [निरु० ३.१४] (कवयः पुरुषासः) विद्वान् जन "ये विद्वांसस्ते कवयः" [ऐ० २.२] (स्तुवन्ति) स्तुत—प्रशंसित करते हैं।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरे दिए हुए तेरे रचे हुए शरीर में—हृदय में प्राप्त रोगापहर्ता स्वास्थ्याहर्ता अज्ञाननाशक और आनन्दप्रापक दिव्य प्राण और उदान को साधने वाले विरक्त जन तेरी स्तुति प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—आत्मा (स्वात्मा और परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६२४. यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत। सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ॥ १० ॥

पदपाठः— यत् वर्च्चः हिरण्यस्य यत् वा वर्च्चः गवाम् उत सत्यस्य ब्रह्मणः वर्च्चः तेन मा सम् सृजामसि ॥ १० ॥

अन्वयः—हिरण्यस्य यत्-वर्चः यत्-वा गवाम्-उत सत्यस्य ब्रह्मणः-वर्चः तेन मा संसृजामसि ॥

पदार्थः—(हिरण्यस्य यत्-वर्चः) सोने का जो तेज—सौन्दर्यरूप है "हिरण्यं हिरण्यनाम" [निघं० १.३] "ह्रियते जनाज्जनम्" [निरु० २.१०] "सुवर्णे यद् वर्चो मयि" [शां० १२.१] (यत्-वा) और जो (गवाम्-उत) सूर्यकिरणों का वर्च—तेज चमकरूप है "सूर्यस्य वर्चसा वर्चस्वी भूयासम्" [काठ० ५.५] तथा वेदवाणियों का वर्च—तेज—ज्ञानरूप है "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १.११] "गोषु यद्वर्चो मयि" [शांखा० १२.१] (सत्यस्य ब्रह्मणः-वर्चः) सत्यस्वरूप परमात्मा का जो वर्च—तेज ब्रह्मानन्दरूप है (तेन मा संसृजामसि) उससे मैं अपने को संसृष्ट करूँ—संस्कृत करूँ, सुभूषित करूँ "अस्मदो द्वयोश्च" [अष्टा० २.२.५९]

'धूयेक वचने बहुवचनम्'।

भावार्थः—सोने के तेज—सौन्दर्य, सूर्यकिरणों के तेज—प्रकाश, वेदवचनों के तेज—ज्ञान, सत्यस्वरूप परमात्मा के तेज—ब्रह्मानन्द से मैं उपासक अपने को संस्कृत एवं सुभूषित करूँ। मेरे शरीर में, मेरे मस्तिष्क में, मेरे मन में, मेरे आत्मा में क्रमशः स्वास्थ्य सौन्दर्य, प्रकाश, ज्ञान, ब्रह्मानन्द प्राप्त हो॥ १०॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् और परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६२५. सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्। क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सुहना कृधी नः॥ ११॥

पदपाठः— **सहः तत् नः इन्द्र दद्धि ओजः इशे हि अस्य महतः विरप्शिन् वि रप्शिन् क्रतुम् न नृम्णम् स्थविरम् स्थ विरम् च वाजम् वृत्रेषु शत्रून् सुहना सु हना कृधि नः॥ ११॥**

अन्वयः—विरप्शिन्-इन्द्र नः तत् सहः ओजः दद्धि अस्य महतः ईशे हि क्रतुं न स्थविरं नृम्णं वाजं च वृत्रेषु नः सुहना शत्रून् कृधि॥

पदार्थः—(विरप्शिन्-इन्द्र) हे महान् ऐश्वर्य वाले परमात्मन्! "विरप्शी महन्नाम" [निघं० ३.३] (नः) हमें (तत् सहः) उस बल—बाह्यबल को (ओजः) आत्मबल को (दद्धि) दे—प्रदान कर (अस्य महतः) तू इस महान् संसार का (ईशे हि) स्वामित्व—शासन करता है ही, सो बल और ओज रखता हुआ ही संसार पर शासन करता है, हम शरीर और मन पर शासन कर सकें (क्रतुं न स्थविरं नृम्णं वाजं च) प्रज्ञा दे "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] तथा प्रज्ञा के समान स्थिर धन—मोक्षैश्वर्य को दे "नृम्णं धननाम" [निघं० २.१०] और स्थिर अन्न—अमृतभोग—ब्रह्मानन्द को भी दे "अमृतोऽन्नं वाजः" [जै० २.१९३] एवं (वृत्रेषु) काम-क्रोध आदि पाप भावों के निमित्त "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (नः सुहना शत्रून् कृधि) हमें सहने वाले और शमन करने वाले कर दे—बना दे "शत्रुः शमयिता" [निरु० २.१७]।

भावार्थः—हे महान् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू हमें बाह्यबल और आत्मबल दे जिसके द्वारा तू विस्तृत संसार पर शासन करता है। हम संसार पर नहीं, शरीर और मन पर शासन कर सकें, तथा प्रज्ञा भी दे। प्रज्ञा के समान स्थिरधन—मोक्षैश्वर्य और ब्रह्मानन्द भी दे, काम-क्रोध आदि पाप भावों के निमित्त हमें सहन करने वाले संयमी और शमन करने वाले बना दे॥ १॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—गौः 'गावः' (स्तुतियाँ)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६२६. सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः। उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त॥ १२॥

पदपाठः— सहर्षभाः सह ऋषभाः सहवत्साः सह वत्साः उदेत उत् एत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः द्व्यूध्नीः द्वि ऊध्नीः उरुः पृथुः अयम् वः अस्तु लोकः इमाः आपः सुप्रपाणाः सु प्रपाणाः इह स्त॥ १२॥

अन्वयः—सहर्षभाः सहवत्साः द्व्यूध्नीः विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः अयं यः उरुः पृथुः-लोकः-अस्तु इह इमाः सुप्रपाणाः-आपः-स्त॥

पदार्थः—(सहर्षभाः) हे स्तुतिवाणियो! तुम ऋषभरूप आत्मा के साथ "इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय" [मै० ३.११.९] (सहवत्साः) मनरूप बच्चे के सहित "मन एव वत्सः" [श० ११.३.१.१] (द्व्यूध्नीः) ऐहिक सुख पारलौकिक मोक्षानन्द फल देने वाली (विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः) सारी कमनीय वस्तुओं को धारण करती हुई विराजमान रह (अयं यः) यह जो (उरुः पृथुः-लोकः-अस्तु) महान्—विस्तृत—विशाल मोक्षधाम है (इह) इस मोक्षधाम में (इमाः सुप्रपाणाः-आपः-स्त) यह प्रसिद्ध भरपूर पान करने के योग्य व्यापक प्रजापति परमात्मा है "आपो वै प्रजापतिः" [श० ८.२.३.१३] 'स्त-सन्ति' "इति छान्दसं रूपं वचनव्यत्ययो विसर्गलोपश्च च"।

भावार्थः—हे स्तुतिवाणियो! तुम आत्मा के साथ तथा मन के भी साथ दोनों लोकों में फल देने वाली, संसार में भी सच्चा सुख और मोक्ष में भी शान्त आनन्द प्राप्त कराने वाली तुम हो तुम बढ़ती रहो। अन्ततः तुम्हारे लिये महान् विस्तृत मोक्षधाम है, जहाँ भली-भाँति पान करने योग्य प्रजापति परमात्मा है जिसकी प्यास तुम्हें लगी हुई है, जिसे पान करना तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य है॥ १२॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—शतं वैखानसः-ऋषयः (बहुत सारे अमृत आनन्द का विशेष खनन—खोज करने वाले उपासक जन[1])॥ देवता—अग्निः पवमानः (प्रेरणा देने वाले अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६२७. अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ १॥

१. "विखननाद् वैखानसः" [निरु० ३.१७]।

पदपाठः— **अग्ने आयूंꣳषि पवसे आ सुव ऊर्जम् इषम् च नः आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ १॥**

अन्वयः—अग्ने आयूंसि पवसे ऊर्जम्-इषं च नः-आसुवः दुच्छुनाम् आरे बाधस्व॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन्! (आयूंषि पवसे) प्राणों को ''यो वै प्राणः स आयुः'' [श० ५.२.४.१०] प्रेरित कर ''लिङर्थे लेट्'' [अष्टा० ३.४.७] (ऊर्जम्-इषं च नः-आसुवः) अतः रसात्मक सूक्ष्मभोग को मोक्षरूप आयु का फल और स्थूल अन्नभोग तथा संसार में भौतिक प्राणों का फल अन्न हमारे लिये प्रादुर्भूत कर (दुच्छुनाम्) पाप प्रवृत्ति को ''यः पापं कामयते स वै दुच्छुना'' [जै० १.९३] (आरे बाधस्व) दूर भगा ''आरे दूरनाम'' [निघं० ३.२६]।

भावार्थः—हे अग्रणायक परमात्मन्! तू हमारे प्राणों को आगे आगे प्रेरित कर, भौतिकता से बढ़ते बढ़ते मोक्षधाम में, अमृतरूप धारण करें इस जगत् में स्थूल अन्नभोग को प्राप्त कराते हुए पुनः मोक्ष में अमृतरस को भी तो प्राप्त करा। इस लोक की उस दुष्प्रवृत्ति को दूर भगा॥ १॥

ऋषिः—विभ्राट् सौर्यः (सूर्य समान अध्यात्म तेज वाला योगी)॥ देवता—सूर्यः[१] (उपासकों को अध्यात्म प्रकाशदाता परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

६२८. **विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति॥ २॥**

पदपाठः— **विभ्राट् वि भ्राट् बृहत् पिबतु सोम्यम् मधु आयुः दधत् यज्ञपती यज्ञ पती अविह्रुतम् अवि ह्रुतम् वातजूतः वात जूतः यः अभिरक्षति अभि रक्षति त्मना प्रजाः प्र जाः पिपर्त्ति बहुधा वि राजति॥ २॥**

अन्वयः—यज्ञपतौ अविह्रुतम्-आयुः-दधत् विभ्राट् बृहत् सोम्यं मधु पिबतु यः-वातजूतः त्मना प्रजाः-अभिरक्षति पिपर्ति बहुधा विराजति॥

पदार्थः—(यज्ञपतौ) अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक के निमित्त (अविह्रुतम्-आयुः-दधत्) अविकलित—सरल जीवन को धारण कराने के हेतु (विभ्राट्) विशेष प्रकाशमान सब प्रकाशमानों में प्रकाशमान परमात्मा (बृहत् सोम्यं मधु) भारी उपासनारस वाला मधुपानक (पिबतु) पान करे—स्वीकार करे—करता है (यः-वातजूतः) जो मन से प्रेरित प्रार्थित ''वातो वा मनो वेति'' [श० ५.१.४.८]

---

१. खण्ड के अन्त तक।

(त्मना) आत्मभाव से—स्नेह से (प्रजा:-अभिरक्षति) उपासक प्रजाओं पर दया करता है (पिपर्ति) उनका पालन करता है (बहुधा विराजति) बहुत प्रकार से उनके अन्दर प्रकाशमान होता है।

भावार्थ:—अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक को सरल जीवन को धारण करने के हेतु विशेष प्रकाशमान अध्यात्मप्रकाशदाता परमात्मा उपासकों द्वारा आत्मभाव से समर्पित मधुर उपासनारस को दया कर स्वीकार करता है तथा उनका पालन करता एवं उनको साक्षात् होता है॥ २॥

ऋषि:—कुत्स: (स्तुतियों का कर्ता उपासक[1])॥ छन्द:—त्रिष्टुप्॥

६२९. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च॥ ३॥

पदपाठ:— चित्रम् देवानाम् उत् अगात् अनीकम् चक्षु: मित्रस्य मि
त्रस्य वरुणस्य अग्ने: आ अप्रा द्यावा पृथिवीइति
अन्तरिक्षम् सूर्य्य: आत्मा जगत: तस्थुष: च॥ ३॥

अन्वय:—जगत:-च-तस्थुष:-आत्मा सूर्य: देवानां चित्रम्-अनीकम् मित्रस्य वरुणस्य-अग्ने:-चक्षु: उदगात् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्-आप्रा:॥

पदार्थ:—(जगत:-च-तस्थुष:-आत्मा) जङ्गम—चर चेतन का और स्थावर का—जड़ का आत्मा—विश्व का आत्मा परमात्मा (सूर्य:) ज्ञानप्रकाशस्वरूप—ज्ञान सूर्य (देवानां चित्रम्-अनीकम्) मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का अद्भुत श्रेष्ठ प्राण "अन प्राणने" [अदादि०] "तत:-ईकन् प्रत्यय:" [उणा० ४.१७] (मित्रस्य वरुणस्य-अग्ने:-चक्षु:) मेरे प्राण का "प्राणो वै मित्र:" [तै० सं० ५.३.४.२] अपान का "अपानो वरुण:" [तै० सं० ५.३.४.२] और वाक्—वाणी का "अग्निर्वैवाक्" [जै० २.५४] प्रख्यापक—प्रकाशक (उदगात्) अहो मुझ उपासक—ध्यानी के अन्दर साक्षात् हो—हो गया (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्-आप्रा:) मेरे ऊपर के अङ्ग मूर्धा को, नीचे के अङ्ग कटि को और हृदयावकाश को ज्ञान जीवनगति प्रवृत्तियों से भर दिया है "भूमि: प्रमाऽन्तरिक्षमुदरं दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" [अथर्व० १०.७.३]।

भावार्थ:—चर अचर—जङ्गम जड़ का आत्मा परमात्मा स्वत: ज्ञानप्रकाश-स्वरूप ज्ञानसूर्य मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का अद्भुत श्रेष्ठ मुख्य प्राण तथा श्वास उच्छ्वास और वाणी का प्रकाशक उपासक के अन्दर साक्षात् होता है। पुन: मूर्धा हृदय और कटि को अपनी ज्ञान जींवनगति शक्तियों से भर देता है॥ ३॥

---

१. "कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३.१२]।

ऋषिः—सार्पराज्ञी (वाक्शक्तिसम्पन्न व्यक्ति[1])॥ छन्दः—गायत्री[2] ॥

६३०. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

पदपाठः— आ अयम् गौः पृश्निः अक्रमीत् असदत् मातरम् पुरः पितरम् च प्रयन् प्र यन् स्वाऽ३रिति ॥ ४ ॥

अन्वयः—अयम् गौः पृश्निः आ-अक्रमीत् पुरः-मातरं पितरं च-आसदत् प्रयन् स्वः ॥

पदार्थः—(अयम्) यह (गौः) स्तोता—उपासक "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] (पृश्निः) परमात्मज्योति का स्पर्श करने वाला—प्राप्त करने वाला उपासक आत्मा "पृश्निः संस्पृष्टा भासम्" [निरु० २.१४] (आ-अक्रमीत्) संसार में आया—आता है (पुरः-मातरं पितरं च-आसदत्) प्रथम माता और पिता को प्राप्त होता है पुनः (प्रयन्) प्रगति करता हुआ (स्वः) मोक्षधाम को पहुँचाता है।

भावार्थः—यह स्तुतिकर्ता उपासक परमात्मज्योति को स्पर्श करने वाले प्राप्त करने वाला आत्मा—जीवात्मा संसार में अवतरण करता है प्रथम माता पिता को प्राप्त होता है, पिता को बीजभाव से माता का गर्भधारण से पुनः उत्पन्न होकर जीवन में प्रगति करता हुआ—उन्नति करता हुआ नितान्त सुख स्थान मोक्षधाम को प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—सार्पराज्ञी (वाक्शक्तिसम्पन्न व्यक्ति)॥ छन्दः—गायत्री ॥

६३१. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— अन्तरिति चरति रोचना अस्य प्राणात् प्र आनात् अपानती अप अनती वि अख्यत् महिषः दिवम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—महिषः-रोचना अस्य अन्तः चरति प्राणात्-अपानती दिवं व्यख्यत् ॥

पदार्थः—(महिषः-रोचना) महान् "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३.३] 'रोचनः, आकारादेशश्छान्दसः' रोचमान—प्रकाशमान (अस्य) इस जगत् के (अन्तः) अन्दर (चरति) प्राप्त हो रहा है (प्राणात्-अपानती) द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त "द्यावावृथिवी प्राणापानौ" [श० ४.३.२.१२२] (दिवं व्यख्यत्) मोक्षधाम को प्रकाशित करता है।

---

१. "वाग्वै सर्पराज्ञी" [कौ० २७.४]।

२. खण्ड के अन्त तक।

भावार्थः—महान् प्रकाशमान परमात्मा इस जगत् के अन्दर द्युलोक से लेकर पृथिवी तक प्राप्त हो रहा है और मोक्षधाम को स्वप्रकाश से प्रकाशित कर रहा है॥५॥

ऋषिः—सार्पराज्ञी (वाक्शक्तिसम्पन्न व्यक्ति)॥

६३२. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः॥६॥

पदपाठः— त्रिंशत् धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते प्रति वस्तोः अह द्युभिः॥६॥

अन्वयः—पतङ्गाय प्रति वस्तोः-वाक्-धीयते अह द्युभिः त्रिंशत्-धाम विराजति॥

पदार्थः—(पतङ्गाय) मुझ आत्मा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के लिये (प्रति वस्तोः-वाक्-धीयते) प्रतिदिन मेरे द्वारा स्तुति आधान की जाती है—समर्पित की जाती है (अह) क्या ही अच्छा है ''अह पूजायाम्'' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (द्युभिः) अपनी ज्योतियों से मेरे अन्दर (त्रिंशत्-धाम) तीसों घड़ी (विराजति) विशेष भासित रहता है ''राजृ दीप्तौ''।

भावार्थः—आत्मा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के लिये मुझ उपासक द्वारा प्रतिदिन स्तुति समर्पित की जाती है यह अच्छा है, वह परमात्मा भी अपनी ज्योतियों से तीसों घड़ी—दिन-रात मुझ उपासक के अन्दर विशेष भासित रहता है, मेरी स्तुति रिक्त नहीं जाती और वह भी दया न्याय नहीं त्यागता है॥६॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः[1] (मेधावी से सम्बद्ध अति मेधावी)॥

६३३. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे॥७॥

पदपाठः— अप त्ये तायवः यथा नक्षत्रा यन्ति अक्तुभिः सूराय विश्वचक्षसे विश्व चक्षसे॥७॥

अन्वयः—यथा सूराय अक्तुभिः-नक्षत्रा अपयन्ति विश्वचक्षसे त्ये तायवः॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (सूराय) सूर्य के आगमन को लक्ष्य कर—सूर्य के उदय हो जाने पर ''सजूः सूराः......सूर्यमेव प्रीणाति'' [मै० ३.४.४] (अक्तुभिः-नक्षत्रा) रात्रियों के सहित बुध, शुक्र आदि ग्रह तारे (अपयन्ति) दूर हो जाते हैं, हट जाते हैं, ऐसे ही (विश्वचक्षसे) विश्वद्रष्टा परमात्मा को लक्ष्य कर उपासक

---

१. खण्ड के अन्त तक।

(त्ये तायवः) वे चोर भाव अन्दर कुछ बाहर कुछ तथा छिपे काम आदि दोष ''तायुः स्तेननाम'' [निघं० ३.२४] दूर हो हट जाते हैं ''अत्र वाक्योपमालङ्कारः''।

भावार्थः—जैसे सूर्य के आगमन पर रातें और तारे चले जाते हैं ऐसे ही सर्वद्रष्टा सर्वदर्शक परमात्मा के आने पर मन में कुछ बाहर कुछ भाव तथा काम आदि गुप्तदोष चले जाते हैं ॥७॥

६३४. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥

पदपाठः— अदृश्रन् अस्य केतवः वि रश्मयः जनान् अनु भ्राजन्तः अग्नयः यथा ॥ ८ ॥

अन्वयः—अस्य केतवः रश्मयः जनान्-अनु अदृश्रन् यथा भ्राजन्तः-अग्नयः ॥

पदार्थः—(अस्य केतवः) इस सूर्यरूप परमात्मा के केतु सुझाने वाले सङ्केतित करने वाले (रश्मयः) सर्वत्र व्याप्त गुण (जनान्-अनु) उपासक एवं मननशीलजनों के प्रति (अदृश्रन्) दिखाई पड़ते हैं (यथा भ्राजन्तः-अग्नयः) जैसे जाज्वल्यमान अग्नियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

भावार्थः—अहो इस सरणशील—व्यापनशील प्रकाशमान परमात्मा की ज्ञापक गुण रश्मियाँ उपासक एवं मननशीलजनों के प्रति दिखलाई पड़ रही हैं जैसे जाज्वल्यमान अग्नि की ज्वालाएँ साक्षात् दिखलाई पड़ रही होती हैं ॥८॥

६३५. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥

पदपाठः— तरणिः विश्वदर्शतः विश्व दर्शतः ज्योतिष्कृत् ज्योतिः कृत् असि सूर्य विश्वम् आ भासि रोचनम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—सूर्य तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत्-असि विश्वं रोचनम्-आभासि ॥

पदार्थः—(सूर्य) हे सर्वत्र सरणशील व्यापनशील परमात्मन्! तू (तरणिः) मुमुक्षुओं को दुःखसागर से तारने वाला है (विश्वदर्शतः) सबका दर्शनीय (ज्योतिष्कृत्-असि) ज्ञानज्योति का करने वाला—देने वाला है (विश्वं रोचनम्-आभासि) समस्त प्रकाश वाले को तू ही प्रकाशित करता है—प्रकाश देता है।

भावार्थः—सर्वत्र व्यापनशील परमात्मा मुमुक्षु उपासकों को दुःखसागर से तारने वाला, सबके दर्शन योग्य, अन्तःकरण में ज्ञानज्योति करने वाला समस्त प्रकाश वाले पदार्थों का प्रकाशदाता है उसकी उपासना से ज्ञानप्रकाश तथा अमृत

आनन्द को प्राप्त करना चाहिए॥ ९ ॥

६३६. **प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे॥ १० ॥**

पदपाठः— **प्रत्यङ्प्रति अङ्देवानाम् विशः प्रत्यङ्प्रति अङ्उत् एषि मानुषान् प्रत्यङ्प्रति अङ्विश्वम् स्वः दृशे॥ १० ॥**

अन्वयः—स्वः-दृशे देवानां विशः प्रत्यङ्-उदेषि मानुषात् प्रत्यङ् विश्वं प्रत्यङ्॥

पदार्थः—(स्वः-दृशे) सुखदर्शन के लिये (देवानां विशः प्रत्यङ्-उदेषि) देवों—जीवन्मुक्तों की श्रेणी में आने वाले नियमित जीवनयात्रा करने वाले—परमात्मा में अपने को नियुक्त करने वाले मनुष्यों के सम्मुख परमात्मन्! तू उत्साह से जाता है "नियुतो देवानां विशः" [काठ० २.१३] "विशः-मनुष्याः" [निघं० २.३] "नियुतो नियमनाद्वा नियोजनाद्वा" [निरु० ५.२७] (मानुषात् प्रत्यङ्) मनुष्य श्रेणी के उपासकों के सम्मुख भी उत्साह से आता है (विश्वं प्रत्यङ्) सब दर्शक वर्ग के सम्मुख भी उत्साह से आता है।

भावार्थः—हे व्यापनशील परमात्मन्! तू महान् उदार है तू जीवन्मुक्तों के सम्मुख सुख दर्शन कराने उत्साह से आता है, उपासक मनुष्यों के सम्मुख भी सुख दर्शन कराने उत्साह से आता है, तथा सब ही जनवर्ग के सम्मुख भी सुखदर्शन कराने उत्साह से आता है, तेरे यहाँ भेद नहीं यथायोग्य यथापात्र अपना सुखदर्शन तू देता ही है। जितना तेरे दर्शन का उत्सुक तेरी ओर प्रवृत्त होने में कोई यत्नशील होगा उतना सुखदर्शक तेरा कर लिया करता है॥ १० ॥

६३७. **येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥ ११ ॥**

पदपाठः— **येन पावक चक्षसा भुरण्यन्तम् जनान् अनु त्वम् वरुण पश्यसि॥ ११ ॥**

अन्वयः—पावक वरुण त्वम् येन चक्षसा जनान्-अनु भुरण्यन्तं पश्यसि॥

पदार्थः—(पावक वरुण त्वम्) हे पवित्रकारक वरने योग्य वरने वाले परमात्मन्! तू (येन चक्षसा) जिस उपकार दृष्टि से (जनान्-अनु भुरण्यन्तं पश्यसि) जन्यमान प्राणियों के भरण करते हुए जगत् को देखता है, उससे हम उपासकों को भी देख—देखता है।

भावार्थः—पवित्र करने वाला, वरने योग्य, वरने वाला, व्यापनशील परमात्मा जन्यमान प्राणियों का भरण करते हुए जगत् को जिस उपकार या कृपादृष्टि से

देखता है, भोगप्रदानार्थ वैसे ही हम उपासकों के हेतु, अमृत सुखार्थ अपवर्ग को भी देख—देखता है ॥ ११ ॥

६३८. **उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥ १२॥**

पदपाठः— **उत् द्याम् एषि रजः पृथु अहा अ हा मिमानः अक्तुभिः पश्यन् जन्मानि सूर्य॥ १२॥**

अन्वयः—सूर्य द्याम् रजः पृथु अक्तुभिः-अहा मिमानः जन्मानि पश्यन् उदेषि॥

पदार्थः—(सूर्य) हे सरणशील—व्यापनशील परमात्मन्! तू (द्याम्) द्युलोक को (रजः) अन्तरिक्ष को "रजसः.....अन्तरिक्षलोकस्य" [निरु० १२.७] (पृथु) ठोस—पृथिवीपिण्ड को (अक्तुभिः-अहा) रात्रियों के साथ दिनों को—रात्रि-दिनों को (मिमानः) निर्माण करता हुआ (जन्मानि पश्यन्) हम जन्म पाने वालों को दृष्टि में रखने के हेतु (उदेषि) उत्साह से प्राप्त हो।

भावार्थः—व्यापनशील परमात्मा द्युलोक अन्तरिक्षलोक पृथिवीलोक—तीनों लोकों को तथा दिन-रातों को निर्माण करता हुआ हम जन्म पाने वालों पर कृपादृष्टि रखता हुआ उत्साह से प्राप्त होता है या हम जन्म पाने वालों पर कृपादृष्टि रखने के हेतु इन सबका निर्माण करता है जिससे हम भोग अपवर्ग पासकें अतः हमें उसकी उपासना करनी चाहिए॥ १२॥

६३९. **अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः॥ १३॥**

पदपाठः— **अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरः रथस्य नप्त्यः ताभिः याति स्वयुक्तिभिः स्व युक्तिभिः॥ १३॥**

अन्वयः—सूरः सप्त शुन्ध्युवः रथस्य नप्त्यः अयुक्त ताभिः स्वयुक्तिभिः॥

पदार्थः—(सूरः) प्रेरक परमात्मा (सप्त) समवेत हुए "रूप समवाये" [भ्वादि०] (शुन्ध्युवः) प्राण 'आपः-प्राणाः' "आपोऽपि शुन्ध्युव उच्यन्ते" [निरु० ४.१६] "प्राणा वा आपः" [तां० ९.९.४] (रथस्य नप्त्यः) शरीररथ के न गिराने वाले सम्भालने वालों को (अयुक्त) नियुक्त किए हैं (ताभिः स्वयुक्तिभिः) उन स्वयुक्त किए जाने वाले प्राणों—प्राण प्रबन्धों से प्राप्त है॥ १३॥

६४०. **सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण॥ १४॥**

पदपाठः— **सप्त त्वा हरितः रथे वहन्ति देव सूर्य शोचिष्केशम् शोचिः केशम् विचक्षण वि चक्षण ॥ १४ ॥**

अन्वयः—विचक्षण सूर्य सप्त हरितः रथे त्वा शोचिष्केशं वहन्ति ॥

पदार्थः—(विचक्षण सूर्य) हे सर्वद्रष्टा सरणशील—व्यापनशील परमात्मन्! (सप्त हरितः) उक्त समवेत होने वाले तुझे ले आने वाले प्राण (रथे) मेरे शरीररथ में—हृदयसदन में (त्वा शोचिष्केशं वहन्ति) तुझ दीप्त ज्ञान रश्मि वाले को ले आते हैं ''केशा रश्मयः'' [निरु० १२.२६]।

भावार्थः—हे सर्वद्रष्टा व्यापनशील परमात्मन्! ये समवेत हुए प्राण तुझे ले आने वाले मेरे शरीररथ में हृदयसदन में तुझ ज्ञानरश्मियों से दीप्त उपास्यदेव को ले आते हैं जोकि तूने देहरथ में जोड़े हैं। जब तक देहरथ है, तब तक तो तुझे मुझ तक ले आते हैं और जब शरीर से अलग होते हैं, तब मुझे तुझ तक ले जाते हैं ॥ १४ ॥

अथमहानाम्न्यार्चिकः

ऋषिः—प्रजापतिः[1] (इन्द्रियों का स्वामी उपासक)॥ देवता—त्रैलोक्यात्मेन्द्रः[2] (त्रिलोकी का आत्मा—विश्वात्मा ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

६४१. **विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः। शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥**

पदपाठः— **विदाः मघवन् विदा गातुम् अनु शꣳसिषः दिशः शिक्ष शचीनाम् पते पूर्वीणाम् पुरूवसो पुरु वसो ॥ १ ॥**

अन्वयः—मघवन् विदाः गातुं विदाः दिशः-अनुशंसिषः पूर्वीणां शचीनां पते पुरूवसो शिक्ष ॥

पदार्थः—(मघवन्) हे मोक्षैश्वर्य वाले परमात्मन्! (विदाः) तू सब कुछ जानता है, अतः (गातुं विदाः) जीवन के मार्ग या गन्तव्य को प्राप्त करा (दिशः-अनुशंसिषः) आगे बढ़ने की दिशाओं को सुझा (पूर्वीणां शचीनां पते) शाश्वतिक प्रज्ञाओं—विद्याओं के स्वामिन् (पुरूवसो) बहुत ज्ञान धन वाले परमात्मन्! (शिक्ष) उन शाश्वतिक प्रज्ञाओं को, विद्याओं को, ज्ञानधनों को मुझे प्रदान कर ''शिक्षति दानकर्मा'' [निघं० ३.२०]।

भावार्थः—परमात्मा सर्वज्ञ है वेदत्रयी—समस्त शाश्वतिक विद्या का स्वामी है, मानव को जीवनयात्रा के मार्ग और गन्तव्य की दिशाएँ भी सुझाता है विशेषतः

---

१. समस्तस्य महानाम्न्यार्चिकस्य। २. समस्तस्य महानाम्न्यार्चिकस्य।

उपासक का महान् पथप्रदर्शक बनता है ॥ १ ॥

६४२. **आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा३ऽन्नांशुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **आभिः त्वम् अभिष्टिभिः स्वः न अंशुः प्रचेतन प्र चेतन प्र चेतय इन्द्र द्युम्नाय नः इषे ॥ २ ॥**

अन्वयः—प्रचेतन इन्द्र त्वम् आभिः-अभिष्टिभिः स्वः-न-अंशुः नः द्युम्नाय इषे प्रचेतय ॥

पदार्थः—(प्रचेतन इन्द्र) हे सचेत करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! (त्वम्) तू (आभिः-अभिष्टिभिः) इन हमारी प्रार्थनाओं से (स्वः-न-अंशुः) सुखमय—मोक्षधाम के समान तथा व्यापक होता हुआ तू (नः) हमारे (द्युम्नाय) यशोरूप स्वस्वरूप प्राप्ति के लिये "द्युम्नं द्योततेर्यशो वा" [निरु० ५.५] "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२.३] एवं (इषे) लौकिक अन्नादि इष्ट सिद्धि के लिये भी (प्रचेतय) चेता—बोधित कर—करता है।

भावार्थः—चेताने वाला मोक्षधाम के समान महान् परमात्मा हमारी प्रार्थनाओं से हमें चेताता है आध्यात्मिक यश परमात्मरूप स्वस्वरूप दर्शनार्थ तथा सांसारिक अन्न आदि इष्ट सिद्धि के लिये भी चेताता है—बोध देता है ॥ २ ॥

६४३. **एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **एव हि शक्रः राये वाजाय वज्रिवः शविष्ठ वज्रिन् ऋञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन् ऋञ्जसे आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥**

अन्वयः—एव हि शक्र (उ) राये वज्रिवः वाजाय शविष्ठ वज्रिन्-ऋञ्जसे आयाहि पिब मत्स्व ॥

पदार्थः—(एव हि) ऐसे ही (शक्र-उ) हे नितान्त सुख देने में शक्त—समर्थ परमात्मन्! (राये) मोक्षैश्वर्य के लिये (वज्रिवः) हे ओजस्वी! "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (वाजाय) अमृत अन्नभोग के लिये "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (शविष्ठ वज्रिन्-ऋञ्जसे) हे अत्यन्त बलवन्! ओजस्वी परमात्मन्! तू हमें समर्थ बनाता है (आयाहि) आजा (पिब) उपासनारस का पानकर—स्वीकार कर (मत्स्व) हम पर प्रसन्न हो।

भावार्थः—ऐसे ही सुखप्रदान में समर्थ परमात्मन्! तू मोक्षैश्वर्य के देने को समर्थ है तथा हे ओजस्वी परमात्मन्! तू अमृत भोग देने के लिये बलवन् परमात्मन्!

तू हमें समर्थ बनाता है। हे प्रशंसनीय देव! तू हमारे हृदय में आ। उपासनारस का पानकर—स्वीकार कर, हमें सब प्रकार समृद्ध कर॥ ३॥

६४४. विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥ ४॥

पदपाठः— विदाः राये सुवीर्यम् सु वीर्यम् भुवः वाजानाम् पतिः वशान् अनु मꣳहिष्ठ वज्रिन् ऋञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥ ४॥

अन्वयः—राये सुवीर्यं विदाः वाजानां पतिः वशान्-अनुभुवः मंहिष्ठ वाजिन्-ऋञ्जसे यः शूराणां शविष्ठ॥

पदार्थः—(राये सुवीर्य विदाः) मोक्षैश्वर्य के लिये संयत वीर्य प्राप्त करा (वाजानां पतिः) बलों के स्वामिन् (वशान्-अनुभुवः) अपने वशों में उन्हें अनुभावित कर (मंहिष्ठ वाजिन्-ऋञ्जसे) हे प्रशंसनीय बलवन्! तू हमें समर्थ कर (यः) जो तू (शूराणां शविष्ठ) शूरवीरों में—प्रख्यातों में अत्यन्त बलवान् है।

भावार्थः—परमात्मा मोक्षैश्वर्य प्राप्त करने के संयम वाला वीर्य देता है। वह समस्त बलों का स्वामी है, उन्हें अपने वश किए हुए है। वह प्रशंसनीय महान् है, हमें समर्थ बनाता है। वह शूरवीरों में प्रख्यात महान् है। उसकी शरण लेनी, उसकी उपासना करनी चाहिए॥ ४॥

६४५. यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः। चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि॥ ५॥

पदपाठः— यः मꣳहिष्ठः मघोनाम् अꣳशुः न शोचिः चिकित्वः अभि नः नय इन्द्रः विदे तम् उ स्तुहि॥ ५॥

अन्वयः—मघोनां मंहिष्ठः-यः अंशुः-न शोचिः चिकित्वः नः-अभि नय इन्द्रः-विदे तम्-उ स्तुहि॥

पदार्थः—(मघोनां मंहिष्ठः-यः) धनवानों में अत्यन्त दानी जो परमात्मा है (अंशुः-न शोचिः) अंशुमान्—रश्मि वाले सूर्य के समान प्रकाशमान है (चिकित्वः) वह तू ज्ञानवन् परमात्मन् (नः-अभि नय) हमें ले चल (इन्द्रः-विदे) ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमें ज्ञान दे—देता है अतः (तम्-उ स्तुहि) हे मन! तू उसकी स्तुति कर।

भावार्थः—धन वालों में अत्यन्त दानदाता परमात्मा ही है, जो भोग भी देता है, भोग के साधन भी देता है—सूर्य समान तेजस्वी या प्रकाशमान है। योगी के अन्दर उसका ही प्रकाश होता है। वह ज्ञानवान् हुआ हमें ले जाता है। "अग्ने नय" इस प्रकार हमें ले जाता है। उस ऐसे परमात्मा की रे मन स्तुति कर॥ ५॥

६४६. **ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्। स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्॥ ६॥**

पदपाठः— **ईशे हि शक्रः तम् ऊतये हवामहे जेतारम् अपराजितम् अ पराजितम् सः नः स्वर्षत् अति द्विषः क्रतुः छन्दः ऋतम् बृहत्॥ ६॥**

अन्वयः—शक्रः ईशे हि ते जेतारम्-अपराजितम् ऊतये हवामहे स्व-नः-द्विषः अति स्वर्ष क्रतुः-छन्दः-ऋतं बृहत्॥

पदार्थः—(शक्रः) शक्तिमान् परमात्मा (ईशे हि) नितान्त स्वामित्व करता है—शासन करता है (ते जेतारम्-अपराजितम्) उस पराजित न होने वाले विजयशील को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) हम आमन्त्रित करते रहें उपसना द्वारा (स्व-नः-द्विषः) वह हमारी द्वेषभावनाओं को (अति स्वर्ष) बुरे प्रकार नष्ट करे ''स्वृ उपतापार्थः'' (भ्वादि) 'लिङर्थ लेट्' (क्रतुः-छन्दः-ऋतं बृहत्) कर्म, रक्षण, ''छन्दांसि छादनात्'' [निरु० ७.१२] ज्ञान बढ़े।

भावार्थः—शक्तिमान् परमात्मा हम पर स्वामित्व करे, स्वामीरूप में विराजमान रहे। आत्मरक्षा के लिये कभी न हारने वाले सदा विजयशील को आमन्त्रित करते रहें। वह हमारी द्वेषभावनाओं को सर्वथा मिटा दे। हमारी कर्मशीलता, रक्षण शक्ति, ज्ञान प्रवृत्ति को बढ़ाता रहे॥ ६॥

६४७. **इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्। स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः॥ ७॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् धनस्य सातये हवामहे जेतारम् अपराजितम् अ पराजितम् सः नः स्वर्षत् अति द्विषः सः नः स्वर्षत् अति द्विषः॥ ७॥**

अन्वयः—धनस्य सातये अपराजितं जेतारम्-इन्द्रम् हवामहे सः-नः द्विषः-अति स्वर्दत् सः-नः स्वर्दत्-अति द्विषः॥

पदार्थः—(धनस्य सातये) मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (अपराजितं जेतारम्-इन्द्रम्) पराजय से रहित सदा विजयशील ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं (सः-नः द्विषः-अति स्वर्षत्) वह हमारी द्वेषभावनाओं को अति दूर कर दे (सः-नः स्वर्षत्-अति द्विषः) वह द्वेषभावना से हमें अति दूर करे—करता है।

भावार्थः—अपराजित जेता ऐश्वर्यवान् परमात्मा को मोक्षैश्वर्य प्राप्ति के लिये आमन्त्रित करते हैं जोकि हमारे से द्वेषभावना को हटा दे तथा हमें द्वेषभावना से हटा दे॥ ७॥

६४८. पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽ शुर्मदाय। सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते। वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे॥ ८॥

पदपाठः— पूर्वस्य यत् ते अद्रिवः अ द्रिवः अंशुः मदाय सुम्ने आ धेहि नः वसो पूर्त्तिः शविष्ठ शस्यते वशी हि शक्रः नूनम् तम् नव्यम् सन्न्यसे॥ ८॥

अन्वयः—अद्रिवः ते पूर्वस्य यत् अंशुः मदाय नः सुम्ने-आधेहि वसो शविष्ठ पूर्त्तिः शस्यते नूनम् वशी शक्रः तत्-नव्यं संन्यसे॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मन्! (ते पूर्वस्य) तुझ सनातन का (यत्) जो (अंशुः) ध्यान तरंग —स्वरूप झाँकी (मदाय) हर्ष प्राप्ति के लिये है (नः सुम्ने-आधेहि) हमारे सुख के निमित्त "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३.६] आधान कर—भली-भाँति समाविष्ट कर (वसो शविष्ठ) हे वसाने वाले अत्यन्त बलवन्! तू (पूर्त्तिः शस्यते) कामनापूरण करने वाला प्रशंसित किया जाता है (नूनम्) निश्चय ही तू (वशी शक्रः) विश्व को वशकर्ता समर्थ है (तत्-नव्यं संन्यसे) तिससे तुझ स्तुति योग्य को हृदय में संस्थापित करता हूँ।

भावार्थः—ओजस्वी परमात्मा सनातन अनादि है, ध्यानोपासन द्वारा उसकी दर्शन झाँकी उपासक के हर्ष का निमित्त है, उसके सुखार्थ परमात्मा उसके अन्दर आधान करता है, वसाने वाले महाबलवान् कामनापूरक की स्तुति करनी चाहिए। उस सब के वश करने वाले स्तुत्यदेव को हृदय में संस्थापित करना चाहिए॥ ८॥

६४९. प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै। शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः॥ ९॥

पदपाठः— प्रभो प्र भो जनस्य वृत्रहन् वृत्र हन् सम् अर्येषु ब्रवावहै शूरः यः गोषु गच्छति सखा स खा सुशेवः सु शेवः अद्वयुः अ द्वयुः॥ ९॥

अन्वयः—जनस्य-अर्येषु वृत्रहन् प्रभो सम्ब्रवामहै यः शूरः सखा सुशेवः अद्वयुः गोषु गच्छति॥

पदार्थः—(जनस्य-अर्येषु) जनवर्ग के स्वामियों राजाओं शासकों में "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३.१.१०३] (वृत्रहन् प्रभो) हे पापनाशक! "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] प्रभु तू ही अर्य—राजा—शासक है सर्वथा स्वामिधर्म और पापविनाशन प्रवृत्ति तुझ में ही है, अतः (सम्ब्रवामहै) तेरी स्तुति करते हैं

(यः) जो (शूरः) पराक्रमी (सखा) मित्र (सुशेवः) सुन्दर सुखदाता (अद्वयुः) अद्वितीय—अकेला (गोषु गच्छति) पृथिवी आदि लोकों में "इमे वै लोका गौः" [श० ६.१.२.३४] विभुगति से प्राप्त होता है।

भावार्थः—मनुष्यवर्ग के राजाओं—शासकों में पापनाशक प्रभु तेरा जैसा नहीं है। तू उन शासकों के भी पापों को अपने कृपा एवं दण्ड से नष्ट करता है, तू मित्र और यथार्थ सुखदाता है। पराक्रमी अद्वितीय अकेला समस्त पृथिवी आदि लोकों में विभुगति से प्राप्त हो शासन करता है। तेरी स्तुति हम करते रहें॥ ९ ॥

६५०. एवाह्योऽ३ऽ३ऽ३व। एवा ह्यग्ने। एवा हीन्द्र। एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः। ओं एवा हि देवाः॥ १०॥

पदपाठः— एव हि एव एव हि अग्ने एव हि इन्द्र एव हि पूषन् एव हि देवाः ओम् एवाहिदेवाः॥ १०॥

अन्वयः—एव हि-एव एवं हि-अग्ने एव हि-इन्द्र एव हि पूषन् एव हि देवाः॥

पदार्थः—(एव हि-एव) हे परमात्मन्! ऐसे ही कहे गुणों वाला है (एवं हि-अग्ने) ऐसे ही अग्नि नाम से अग्रणेता परमात्मन् तू ही है (एव हि-इन्द्र) ऐसा ही ऐश्वर्य वाला इन्द्र नाम से तू है (एव हि पूषन्) ऐसा ही पुष्टिकर्ता पूषा नाम से परमात्मन् तू है (एव हि देवाः) ऐसे ही दिव्यगुणों से युक्त तू भिन्न-भिन्न देव नामों से कहा परमात्मन् तू ही है।

भावार्थः—हे परमात्मन्! इन मन्त्रों में उपासकों की वाणी में संसार में तेरा ही कीर्तन है, कहीं पूर्ण पुरुष नाम से तेरी पूर्णता स्मरण है, कहीं अग्नि नाम से अग्रणिरूप में तेरा स्तवन है। कहीं इन्द्र नाम से तेरे ऐश्वर्यवान् रूप का प्रशंसन है, कहीं पूषा नाम से पोषणकर्ता के रूप में तेरा यशोगान है, कहीं बहुवचन में समस्त देवधर्मों वाला मानकर तेरी स्तुति है, इस प्रकार समस्त दिव्यगुणों वाले तुझ परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं, करते रहें॥ १०॥

महानाम्न्यार्चिक एवं पूर्वार्चिक सामवेद आध्यात्मिक मुनिभाष्य। स्वामी ब्रह्ममुनि कृत सामवेद पूर्वार्चिक भाष्य समाप्त।

ओ३म्

सामवेद

अध्यात्मिक मुनिभाष्य

उत्तरार्चिक

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—काश्यपोऽसितो देवलो वा (द्रष्टा-सूक्ष्मदर्शी से सम्बद्ध कामादि बन्धन से रहित या इष्टदेव परमात्मा को अपने अन्दर लेने वाला उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६५१. **उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते॥ १॥**

पदपाठः— **उप अस्मै गायत नरः पवमानाय इन्दवे अभि देवान् इयक्षते॥ १॥**

अन्वयः—नरः अस्मै देवान्-अभि-इयक्षते इन्दवे पवमानाय उपगायत॥

पदार्थः—(नरः) हे मुमुक्षु जनो! "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] तुम (अस्मै) इस—इष्ट देव—(देवान्-अभि-इयक्षते) देवों—दिव्य सुखों को जीवन में सङ्गत कराना चाहते हुए—हितैषी (इन्दवे) रसीले (पवमानाय) शान्त धारा में प्राप्त होते हुए परमात्मा के लिए (उपगायत) उपगान करो—आत्मभाव से स्तवन—उपासना करो।

भावार्थः—समस्त सुखों के मूल तथा उनको जीवन में समाविष्ट कराने वाले

रसीले शान्तधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा की उपयुक्त स्तुति उपासना मुमुक्षु जनों को करना चाहिये ॥ १ ॥

६५२. अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥

पदपाठः— अभि ते मधुना पयः अथर्वाणः अशिश्रयुः देवम् देवाय देवयु ॥ २ ॥

अन्वयः—ते मधुना अथर्वाणः देवयुः-देवं पयः देवाय अभिशिश्रयुः ॥

पदार्थः—(ते) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तेरे (मधुना) आनन्द रस के साथ "अन्तो वै रसानां मधु" [जै० १.१२४] (अथर्वाणः) अचल—स्थिर मननशील योगी जन (देवयुः-देवं पयः) तुझ देव को चाहने वाले दिव्य प्राण—अमरतत्त्व आत्मभाव को "प्राणः पयः" [श० ६.५.४.१५] (देवाय) तुझ परमात्मदेव की प्राप्ति के लिये (अभिशिश्रयुः) मिला देते—नितान्त अर्पित कर देते हैं। तभी तेरा साक्षात् करते हैं।

भावार्थः—स्थिर मन वाले योगी ध्यानी उपासक अपने दिव्य आत्मभाव को जो परमात्मदेव को चाहता है परमात्मदेव की प्राप्ति के लिए समस्त आनन्दों के आनन्द अन्तिम आनन्द में ध्यान द्वारा मिला देते हैं तो अपने आत्मा में उसका साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

६५३. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

पदपाठः— सः नः पवस्व शम् गवे शम् जनाय शम् अर्वते शम् राजन् ओषधीभ्यः ओष धीभ्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः-राजन् नः गवे शम् जनाय शम् अर्वते शम् ओषधिभ्यः शम्॥

पदार्थः—(सः-राजन्) वह तू हे पवमान सोम-धारारूप में प्राप्त होते हुए शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान परमात्मन्! (नः) हम उपासकों के (गवे शम्) ज्ञानेन्द्रिय मात्र के लिए कल्याणकारी होता है—असंयम में प्रवृत्त न होने से (जनाय शम्) जननेन्द्रिय के लिए कल्याणरूप होता है—व्यभिचार में प्रवृत्त न होने से (अर्वते शम्) प्रेरण धर्मवान् मन के लिए "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०.३१] कल्याणरूप हों (ओषधिभ्यः शम्) ऊर्जा—जीवनरस रक्त प्राणों के लिये कल्याणरूप हो "ऊर्वाओषधयः" [मै० ३.६.७]।

भावार्थः—उपासक द्वारा परमात्मा की आराधना करने पर उसके ज्ञानेन्द्रियों में शान्ति-असंयमरहितता, जननेन्द्रिय में शान्ति-व्यभिचार की अप्रवृत्ति, मन में

शान्ति-चाञ्चल्यरहितता, और रस रक्त प्राणों में शान्ति-रोगदोष उद्वेगरहितता हो ज़ाती है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपो मारीचः (वासना अज्ञान को मार देने वाले से सन्बद्ध परमात्मद्रष्टा[1] उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

६५४. दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

पदपाठः— दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या परि स्तोभन्त्या कृपा सोमाः शुक्राः गवाशिरः गो आशिरः ॥ १ ॥

अन्वयः—दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा सोमाः गवाशिरः शुक्राः ॥

पदार्थः—'सोमाः बहुवचनमादरार्थं देवतापदम्' (दविद्युतत्या) देदीप्यमान—(रुचा) कान्ति—(परिष्टोभन्त्या) सर्वविध गुणगीति "स्तोभति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३.१] (कृपा) स्तुतिरूप अध्यात्मशक्ति से (सोमाः) आनन्दधारा में प्राप्त शान्तस्वरूप परमात्मा (गवाशिरः) ज्ञानेन्द्रियों में आश्रित होता हुआ—(शुक्राः) आत्मा में प्रकाशित होता है।

भावार्थः—सर्वविध गुणगीति वाली स्तुतिरूप शक्ति के द्वारा परमात्मा उपासक के अन्दर देदीप्यमान—कान्ति से ज्ञानेन्द्रियों में सङ्गत होता हुआ शुभ्ररूप में साक्षात् होता है ॥ १ ॥

६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्। सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥

पदपाठः— हिन्वानः हेतृभिः हितः आ वाजम् वाजी अक्रमीत् सीदन्तः वनुषः यथा ॥ २ ॥

अन्वयः—वाजी हेतृभिः-हितः वाजं हिन्वानः-अक्रमीत् यथा वनुषः सीदन्तः ॥

पदार्थः—(वाजी) अमृत अन्नभोग वाला सोम शान्त परमात्मा "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] तद्वान् (हेतृभिः-हितः) स्तुति प्रेरक उपासकों द्वारा धारित उपासित हुआ (वाजं हिन्वानः-अक्रमीत्) अमृतान्नभोग को प्रेरित करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है (यथा वनुषः सीदन्तः) जैसे चाहने वाले हितैषी अपने शिष्यों को गुरुजन प्राप्त होते हुए उपदेश देते हैं।

---

१. "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्व पश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १.८]।

भावार्थः—स्तुतिकर्ता उपासकों द्वारा धारा हुआ उपासित किया हुआ अमृतभोग वाला परमात्मा अमृतभोग को प्रेरित करता हुआ उपासक को ऐसे प्राप्त होता है जैसे गुरुजन शिष्यों को प्राप्त होते हुए उपदेश देते हैं ॥ २ ॥

६५६. **ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे। पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥**

पदपाठः— ऋधक् सोम स्वस्तये सु अस्तये सञ्जग्मानः सम् जग्मानः दिवा कवे पवस्व सूर्यः दृशे ॥ ३ ॥

अन्वयः—कवे सोम स्वस्तये दिवा सञ्जग्मानः सूर्यः दृशे ऋधक् पवस्व ॥

पदार्थः—(कवे सोम) हे क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (स्वस्तये) मेरे सु-अस्तित्व-कल्याण के लिये (दिवा सञ्जग्मानः) स्वप्रकाश से सङ्गत करता हुआ (सूर्यः) की भाँति 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' (दृशे) निजदर्शनार्थ (ऋधक् पवस्व) समीप—साक्षात् "ऋधक् सामीप्ये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] प्राप्त हो।

भावार्थः—उपासना द्वारा सर्वज्ञ परमात्मा उपासक के कल्याणार्थ अपने प्रकाश से सङ्गत करता हुआ सूर्य के समान साक्षात् प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—वैखानसः (अध्यात्म ज्ञान का विशेष खनन करने वाले उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री॥

६५७. **पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत। अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥**

पदपाठः— पवमानस्य ते कवे वाजिन् सर्गाः असृक्षत अर्वन्तः न श्रवस्यवः ॥ १ ॥

अन्वयः—कवे वाजिन् ते पवमानस्य सर्गाः-असृक्षत अर्वन्तः-न श्रवस्यवः ॥

पदार्थः—(कवे वाजिन्) हे सर्वज्ञ वक्ता तथा अमृतभोग वाले सोम परमात्मन्! "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (ते पवमानस्य) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए के (सर्गाः-असृक्षत) अमृत आनन्दप्रवाह उपासकों के अन्दर निरन्तर प्रवाहित होने लगते हैं "सृज धातोः क्सश्छान्दसः" (अर्वन्तः-न श्रवस्यवः) प्रशंसनीय प्रगतिशील प्रशस्त गन्तव्य स्थान को चाहते हुए उस पर पहुँचने वाले घोड़ों की भाँति "श्रवस्युः श्रवणीयम्" [निरु० ११.५०] "श्रव इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ९.१०]।

भावार्थः—सर्वज्ञ अमृतानन्दभोगप्रद परमात्मन्! तुझ आनन्दप्रवाहों से प्राप्त होने वाले के आनन्द प्रवाह प्रवाहित होते हुए ऐसे मुझ उपासक को प्राप्त होते हैं जैसे प्रगतिशील प्रशंसनीय घोड़े छुटे हुए प्रशंसनीय प्राप्तव्य स्थान को चाहते हुए उसे प्राप्त करते हैं॥ १॥

६५८. अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशन्त धीतयः॥ २॥

पदपाठः— अच्छाकोशम्मधुश्चुतम् असृग्रम् वारे अव्यये अवावशन्त धीतयः॥ २॥

अन्वयः—अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशम् धीतयः-अवावशन्त अच्छा-असृग्रन्॥

पदार्थः—(अव्यये वारे) अनश्वर वरणीय परमात्मा में वर्तमान (मधुश्चुतं कोशम्) मधु चुवाने वाले कोश को (धीतयः-अवावशन्त) धारणाध्यान प्रज्ञा वाले उपासक नितान्त चाहते हैं अतः वे (अच्छा-असृग्रन्) अपने अभिमुख खोलते हैं प्रवाहित करते हैं प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—अविनाशी वरणीय परमात्मा के अन्दर वर्तमान मधुर आनन्दभरे कोश—थैले को धारणाध्यान प्रज्ञा वाले उपासक नितान्त चाहते हैं अतः वे उसे अपनी ओर खोल लेते हैं—प्रवाहित कर लेते हैं—प्राप्त कर लेते हैं॥ २॥

६५९. अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा॥ ३॥

पदपाठः— अच्छ समुद्रम् सम् उद्रम् इन्दवः अस्तम् गावः न धेनवः अग्मन् ऋतस्य योनिम् आ॥ ३॥

अन्वयः—इन्दवः ऋतस्य योनिम् समुद्रम् अच्छा-आ-अग्मन् धेनवः-गावः-अस्तम्॥

पदार्थः—(इन्दवः) आर्द्रभावना वाले उपासक आत्माएँ "इन्दुरात्मा" [निरु० १३.३२ वा १४.१९] (ऋतस्य योनिम्) अमृत के गृह—भण्डार "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०] (समुद्रम्) पूर्ण पुरुष परमात्मा को "पुरुषो वै समुद्रः" [जै० ३.६ या ७.५] (अच्छा-आ-अग्मन्) सम्यक् समन्तरूप से प्राप्त होते हैं (धेनवः-गावः-अस्तं न) जैसे दूध से भरी गौएँ स्वाश्रयरूप घर को सीधे प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—दुधारू गौएँ जैसे अपने आश्रयस्थान को प्राप्त होती हैं ऐसे ही आर्द्रभाव से भरे श्रद्धापूर्ण उपासक आत्माएँ अमृतसदन पूर्ण पुरुष परमात्मा को सम्यक् समन्तरूप से प्राप्त होते हैं॥ ३॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः (स्तुतिवाणी में कुशल अमृतभोग धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६६०. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ १॥

पदपाठः— अग्ने। आ। याहि। वीतये। गृणानः। हव्यदातये। (हव्य दातये)। नि। होता। सत्सि। बर्हिषि॥ १॥

अन्वयः—अग्ने हव्यदातये गृणानः वीतये आ याहि होता बर्हिषि नि सत्सि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (हव्यदातये गृणानः) हमें अपनी भेंट देने के लिए हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ प्रतीकाररूप में (वीतये आ याहि) अपनी प्राप्ति के लिए आ जा (होता बर्हिषि नि सत्सि) तू हृदयासन पर होता की भाँति नितरां प्राप्त हो—निरन्तर रमण कर।

भावार्थः—परमात्मा के प्रति स्वात्मसमर्पण करने से परमात्मा की स्तुति की जाती है तो वह अपने साक्षात् दर्शन के लिए आता है और हृदय में विराजमान हो जाता है जैसे होता यज्ञासन पर बैठ जाता है॥ १॥

६६१. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥ २॥

पदपाठः— तम् त्वा समिद्भिः सम् इद्भिः अङ्गिरः घृतेन वर्द्धयामसि बृहत् शोच यविष्ठ्य॥ २॥

अन्वयः—अङ्गिरः-यविष्ठ्य तं त्वा समद्भिः-घृतेन वर्धयामसि बृहत्-शोच॥

पदार्थः—(अङ्गिरः-यविष्ठ्य) हे अङ्गों को प्रेरित करने वाले अत्यन्त मिलाने वालों में श्रेष्ठ परमात्मन्! (तं त्वा) उस तुझ को (समद्भिः-घृतेन वर्धयामसि) प्राणों से प्राणायामों—इन्द्रियों के सद्व्यवहारों से "प्राणा वै समिधः" [ऐ० २.४] और आत्मतेज से बढ़ाते हैं (बृहत्-शोच) तू हमारे अन्दर बहुत प्रकाशित हो।

भावार्थः—अङ्गों को प्रेरित करनेवाला मेल करनेवालों में सबसे अधिक मिलनसार परमात्मा को प्राणपण से प्राणायामों इन्द्रिय संयमों और स्वकीय आत्मभाव से अपने अंदर बढ़ावें तो वह हमारे अंदर बहुत प्रकाशमानरूप में साक्षात् होता है॥ २॥

६६२. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम्॥ ३ ॥

पदपाठः— सः नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छ देव विवाससि बृहत् अग्ने सुवीर्यम् सु वीर्यम्॥ ३ ॥

अन्वयः—सः-अग्ने देव नः पृथु बृहत् सुवीर्यं श्रवाय्यम् अच्छा विवाससि॥

पदार्थः—(सः-अग्ने देव) वह तू ज्ञानप्रकाशक परमात्मदेव! (नः) हमारे लिए (पृथु बृहत् सुवीर्यं श्रवाय्यम्) महान् "पृथु महान्" [निरु० १२.२६] ज्येष्ठ श्रेष्ठ "ज्येष्ठं वै बृहत्" [ऐ० ८.२] सुनने योग्य प्रशंसनीय शोभनबल—अध्यात्म या दिव्य आयु मोक्ष आयु "आयुर्वीर्यंहिरण्यम्" [मै० १.७.५] को (अच्छा विवाससि) सम्यक् सम्पादित करता है "विवासतिः परिचर्यायाम्" [निरु० ११.१३]।

भावार्थः—परमात्मा हम उपासकों के लिए महान् श्रेष्ठ परम्परा से प्रसिद्ध दिव्य आयु मोक्ष को सम्यक् सम्पादित करता है॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा भार्गवः (गाथा वाक् वेदवाक्[1] वेदविद्या में निष्णात सर्वमित्र उपासक या साक्षात् परमात्माग्नि वाला आत्मतेज से पूर्ण उपासक)॥ देवता—मित्रावरुणौ (सत्कर्म में प्रेरक तथा अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा)॥

छन्दः—गायत्री॥

६६३. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू॥ १ ॥

पदपाठः— आ नः मित्रा मि त्रा वरुणा घृतैः गव्यूतिम् गो यूतिम् उक्षतम् मध्वा रजांसि सुक्रतु सु क्रतुइति॥ १ ॥

अन्वयः—सुक्रतू मित्रावरुणौ नः गव्यूतिम् घृतैः आ-उक्षतम् मध्वा रजांसि॥

पदार्थः—(सुक्रतू) हे शोभन कर्म वाले—(मित्रावरुणौ) प्राण समान तू संसार में सत्कर्मार्थ प्रेरित करने वाला पुनः अपान के समान मोक्ष में अपनी ओर वरने वाला हुआ "प्राणापनौ मित्रावरुणौ" [तां० ६.१०.५][2] (नः) हमारी (गव्यूतिम्) स्तुतिप्रवहणभूमि—हृदयगुहा को (घृतैः) अपने तेजोमय दर्शन स्नेहादि से (आ-उक्षतम्) सींच दे (मध्वा रजांसि) अपने मीठे सुख भोग फलों से हमारी रञ्जनीय इन्द्रियों को भी सींच—तृप्त कर दे।

---

१. "गाथा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

२. सवंत्र द्विवचनं परमात्मनो द्विधर्मत्वप्रदर्शनार्थम्।

भावार्थः—हे सुकर्मा परमात्मन्! तू संसार में सत्कर्मकरणार्थ प्रेरक पुनः मोक्षार्थ अपनी ओर लेने वाला होता हुआ हमारी स्तुति-स्थली को अपने दर्शन स्नेहादि से भर देता है तथा संसार में भी मधुर कर्म-फल भोग से हमारी रञ्जनीय इन्द्रियों को भी तृप्त कर देता है जिनमें पुनः भटकने अशान्त होने का अवसर नहीं रहता॥ १ ॥

६६४. उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः। द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता॥ २ ॥

पदपाठः— उरुशꣳसा उरु शꣳसा नमोवृधा नमः वृधा मह्ना दक्षस्य राजथः द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता शुचि व्रता॥ २ ॥

अन्वयः—उरुशंसा नमोवृधा मह्ना शुचिव्रता द्राघिष्ठाभिः दक्षस्य राजथः॥

पदार्थः—(उरुशंसा) हे अति प्रशंसनीय (नमोवृधा) स्तुतियों द्वारा मुक्त उपासक को बढ़ाने वाले (मह्ना) महान् (शुचिव्रता) पवित्र कर्म करने वाले मित्रावरुणस्वरूप परमात्मन् (द्राघिष्ठाभिः) तू दीर्घ काल की स्तुतियों द्वारा (दक्षस्य राजथः) मेरे आत्मस्वरूप को प्रकाशित कर रहा है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू अति प्रशंसनीय है पवित्रकारी महती पूर्व से चली आई स्तुतियों से मुझ उपासक के आत्मबल पर अधिकार किये रक्षा कर रहा है॥ १ ॥

६६५. गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्। पातं सोममृतावृधा॥ ३ ॥

पदपाठः— गृणाना जमदग्निना जमत् अग्निना योनौ ऋतस्य सीदतम् पातम् सोमम् ऋतावृधा ऋत वृधा॥ ३ ॥

अन्वयः—जमदग्निना गृणाना ऋतस्य योनौ सीदतम् ऋतावृधा सोमं पातम्॥

पदार्थः—(जमदग्निना गृणाना) हे सत्कर्म में प्रेरक और अपनी ओर मोक्षार्थ लेने वाले परमात्मन्! तू प्राप्त वैराग्य वाले उपासक द्वारा स्तुत किया हुआ (ऋतस्य योनौ सीदतम्) अध्यात्मयज्ञ के सदन हृदय में विराजमान हो "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श० १.३.४.१६] (ऋतावृधा) हे अध्यात्मयज्ञ के बढ़ाने वाले परमात्मन्! (सोमं पातम्) उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

भावार्थः—सत्कर्म में प्रेरित करने वाला और मोक्षार्थ अपनी ओर आकर्षित करने वाला परमात्मा साक्षात् होता हुआ उपासक द्वारा स्तुत किया हुआ अध्यात्मयज्ञ के सदन-हृदय में विराजता है और उपासनारस भी स्वीकार करता है॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में—हृदयाकाश में या शब्द में—स्तुति वचन में गति जिसकी है ऐसा विद्वान् ''बिठमन्तरिक्षम्'' [निरु० ६.३०] ''बिट् शब्दे'' [भ्वा०] ''पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः'')॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६६६. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥ १॥

पदपाठः— आ याहि सुषुम ते हि इन्द्र सोमम् पिब इमम् आ इदम् बर्हिः सदः मम॥ १॥

अन्वयः—इन्द्र आ याहि ते सोमं सुषुम हि इमं पिब मम–इदं बर्हिः आ सदः॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! तू (आ याहि) आ जा (ते) तेरे लिए (सोमं सुषुम हि) हम उपासनारस को सम्पादन करते हैं (इमं पिब) इसे पान कर—स्वीकार कर (मम–इदं बर्हिः) मेरे इस हृदयाकाश में ''बर्हिः–अन्तरिक्षनाम'' [निघं० १.३] (आ सदः) आ बैठ।

भावार्थः—परमात्मा के लिए उपासनारस तैयार करना उसे स्वीकार कराने का आग्रह करना, अपने हृदयकाश में समन्तरूप से बिठाना चाहिये॥ १॥

६६७. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २॥

पदपाठः— आ त्वा ब्रह्मयुजा ब्रह्म युजा हरीइति वहताम् इन्द्र केशिना उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र त्वा ब्रह्मयुजा केशिना हरी आवहताम् नः–ब्रह्माणि उपशृणु॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! (त्वा) तुझे (ब्रह्मयुजा केशिना हरी) तुझ ब्रह्म से युक्त होने वाले ज्ञानरश्मि वाले—ज्ञानपूर्वक प्रवर्तमान ''रश्मयः केशाः'' [तै० सं० ७.५.२५.१] स्तुति और उपासना ''ऋक्सामे वै हरी'' [श० ४.४.३.६] (आवहताम्) मेरे अन्दर आमन्त्रित करें (नः–ब्रह्माणि) हमारे मनोभावों और कामनाओं को ''मनो वै सम्राट् परमब्रह्म'' [श० १४.६.१७.१२] ''मनो ब्रह्मेत्युपासीत'' [उपनिषद्] ''मनो ब्रह्मेति व्यजानात्'' [तै० आ० ९.४.१] (उपशृणु) स्वीकार कर।

भावार्थः—परमात्मा को युक्त होने वाली स्तुति उपासना ज्ञानपूर्वक करने से परमात्मा का साक्षात् कराती है तभी परमात्मा हमारे मनोभावों को स्वीकार करता है॥ २॥

६६८. **ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे॥ ३॥**

पदपाठः— **ब्रह्माणः त्वा युजा वयम् सोमपाम् सोम पाम् इन्द्र सोमिनः सुतावन्तः हवामहे॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्र वयम् सोमिनः सुतावन्तः ब्रह्माणः युजा त्वा सोमपां हवामहे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! (वयम्) हम (सोमिनः) उपासना-रस को समर्पित करने वाले (सुतावन्तः) उपासनारस तैयार कर चुके हुए (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञान में समर्थ मनस्वी उपासक (युजा) योग—समाधियोग के द्वारा (त्वा सोमपां हवामहे) तुझ सोमपान करने वाले को अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—जब हम मनस्वीजन उपासनारस परमात्मा के समर्पणार्थ सम्पन्न कर समर्पण करना चाहें तब योगसमाधि का अनुष्ठान करें तो परमात्मा को अपने अन्दर साक्षात् कर सकते हैं॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र या सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)॥

देवता—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

छन्दः—गायत्री॥

६६९. **इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति आ गतम् सुतम् गीर्भि नभः वरेण्यम् अस्य पातम् धिया इषिता॥ १॥**

अन्वयः—इन्द्राग्नी धिया गीर्भिः-इषिता वरेण्यं-नभः आगतम् अस्य सुतं पातम्॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवान् प्राणस्वरूप और प्रकाशमान उदानस्वरूप परमात्मन्! तू (धिया गीर्भिः-इषिता) ध्यान से और स्तुतियों से लक्षित हुए (वरेण्यं-नभः) वरने योग्य हृदयाकाश को (आगतम्) आ—प्राप्त हो (अस्य सुतं पातम्) इस हृदय के निष्पन्न उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् तथा प्रकाशस्वरूप परमात्मा ध्यान से और स्तुतियों से लक्षित हुआ हृदयाकाश को प्राप्त होता है और वहाँ निष्पन्न उपासनारस को स्वीकार करता है॥ १॥

६७०. **इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः। अया पातमिमं सुतम्॥ २॥**

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति जरितुः सचा यज्ञः जिगाति चेतनः अया पातम् इमम् सुतम्॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी जरितुः चेतनः-यज्ञः सचा जिगाति अया-इमं सुतं पातम्॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशमान उदान रूप परमात्मन्! (जरितुः) मुझ स्तुतिकर्ता का "जरिता स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६] (चेतनः-यज्ञः) जड़ यज्ञ—द्रव्य यज्ञ—होम यज्ञ नहीं अपितु चेतन यज्ञ—चेतन आत्मा में होने वाला आत्मभावनार्पण (सचा जिगाति) तेरे साथ चलता है "सचा सहेत्यर्थः" [निरु० ५.५] "जिगाति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (अया-इमं सुतं पातम्) इस मेरी स्तुति से निष्पन्न आर्द्रभाव भरे उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशमान उदानरूप परमात्मन्! मुझ स्तुतिकर्ता का स्वात्मभाव भरा आत्मसमर्पण यज्ञ निरन्तर चलता रहता है यह जड़यज्ञ बाहिरी द्रव्ययज्ञ जैसा अस्थिर नहीं होता है तथा स्तोता को निरन्तर चेताता रहता है स्तुतिकर्ता की स्तुति से निःसृत उपासनारस को तू स्वीकार करता है॥ २ ॥

६७१. **इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे। ता सोमस्येह तृम्पताम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— इन्द्रम् अग्निम् कविच्छदा कवि छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ता सोमस्य इह तृम्पताम्॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्रम्-अग्निम् कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ता इह सोमस्य तृम्पताम्॥

पदार्थः—(इन्द्रम्-अग्निम्) ऐश्वर्यवान् प्राणरूप एवं प्रकाशवान् उदानरूप परमात्मा को (कविच्छदा) जो मेधावी ऋषिजनों का रक्षक है ऐसे को (यज्ञस्य जूत्या वृणे) अध्यात्मयज्ञ की प्रीति "जूतिः प्रीतिर्वा" [निरु० १०.२९] के कारण वरता हूँ अपने में धारण करता हूँ (ता) उन दोनों रूप वाले परमात्मा को (इह) इस जीवन में (सोमस्य तृम्पताम्) उपासनारस को स्वीकार कर मुझे तृप्त कर।

भावार्थः—स्तुतिकर्ता ऋषिजनों के रक्षक ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशवान् उदानरूप परमात्मा को अध्यात्मयज्ञ रचाने की प्रीति श्रद्धा से स्वीकार करता हूँ वह इस जीवन में उपासनारस स्वीकार कर मुझे तृप्त करे॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आङ्गिरसोऽमहीयुः (प्राणविद्यानिष्णात मोक्ष का इच्छुक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

६७२. **उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रं शर्म महि श्रवः॥ १ ॥**

पदपाठः— **उच्चा उत् चा ते जातम् अन्धसः दिवि सत् भूमि आ ददे उग्रम् शर्म्म महि श्रवः॥ १॥**

अन्वयः—ते-अन्धसः जातम् उच्चा दिवि सत् भूमि-आददे उग्रं शर्म महि श्रवः॥

पदार्थः—(ते-अन्धसः) तुझ आध्यानीय—उपासनीय पवमान सोम—आनन्दधारा में आते हुए शान्त परमात्मा का (जातम्) प्रसिद्धरूप (उच्चा) ऊँचा—उत्कृष्ट है, जो (दिवि सत्) अमृत मोक्षधाम में होते हुए को ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] (भूमि-आददे) भूमि—पृथिवी पर जन्मा हुआ पार्थिव शरीर में आया हुआ ''ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति'' [निरु० २.५] ''सुपां सुलुक्...'' [अष्टा० ७.३.३९१] 'सप्तम्याश्च लुक्' मैं शरीरबन्धन से मुक्त हो मोक्षधाम में पहुँचकर ग्रहण करता हूँ प्राप्त कर लेता हूँ (उग्रं शर्म महि श्रवः) जोकि उच्च सुख बहुत प्रशंसनीय है।

भावार्थः—मोक्ष में परमात्मा का ऊँचा स्वरूप साक्षात् होनेवाला है उसकी आकांक्षा उपासक में होनी चाहिए, उपासक की प्रवृत्ति या रुचि पृथिवीलोक के भोगों में नहीं रहती वह तो ऊँचे सुख और प्रशंसनीय दर्शनामृत की चाह रखता है॥ १॥

६७३. **स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित् परि स्रव॥ २॥**

पदपाठः— **सः नः इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित् वरिवः वित् परि स्रव॥ २॥**

अन्वयः—सः वरिवोवित् मरुद्भ्यः वरुणाय यज्यवे इन्द्राय परिस्रव॥

पदार्थः—(सः) वह तू (वरिवोवित्) अत्यन्त अभीष्टरूप अमृतधन मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने वाले ''वरिवः-धननाम'' [निघं० २.१०] शान्तस्वरूप परमात्मन्! (मरुद्भ्यः) 'मरुताम्'-''षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि'' प्राणों के ''प्राणो वै मरुतः'' [ऐ० ३.१६] (वरुणाय) शरीरधारण समय वरने वाले—(यज्यवे) उनका यजन करने वाले—अध्यात्मयज्ञ में लगाने वाले—अपवर्ग प्राप्ति में दान करने वाले—(इन्द्राय) आत्मा के लिये (परिस्रव) पूर्णरूप में या मेरे सब ओर आनन्दधारा में प्राप्त हो।

भावार्थः—वह शान्तस्वरूप परमात्मा अमृतधन—मोक्षैश्वर्य का अत्यन्त प्राप्त कराने वाला तथा शरीर धारणार्थ प्राणों के वरने वाले अध्यात्मयज्ञ में उन्हें यजन करने वाले आत्मा के लिये पूर्णरूप से या सब ओर आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है॥ २॥

६७४. **एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे॥ ३॥**

पदपाठः— **एना विश्वानि अर्यः आ द्युम्नानि मानुषाणाम्**
सिषासन्तः वनामहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—मानुषाणाम् एना विश्वानि द्युम्नानि सिषासन्तः अर्यः वनामहे ॥

पदार्थः—(मानुषाणाम्) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! मननशील जनों के (एना विश्वानि द्युम्नानि) इन सब प्रकार वाले शोभनयश अन्न-धनों को (सिषासन्तः) सेवन करते हुए हम (अर्यः) 'अर्यम् विभक्तिव्यत्ययः' तुझ स्वामी को ''अर्यः स्वामि-वैश्ययोः'' [अष्टा० ३.१.१०३] (वनामहे) चाहते हैं ''वनु याचने'' [तनादि०]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! मनुष्यों के हितकर सभी प्रशंसनीय यश बलधनों को हम उपासक सेवन करते हुए तुझ स्वामी को माँगते हैं—चाहते हैं, ऊँची सांसारिक सम्पत्ति प्राप्त करने के अनन्तर परमात्मा का सङ्ग और उसके आनन्द की भी याचना करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं मोक्ष को चाहने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती (प्रगाथः)॥

६७५. **पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा**
योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥

पदपाठः— **पुनानः सोम धारया अपः वसानः अर्षसि आ रत्नधाः**
रत्न धाः योनिम् ऋतस्य सीदसि उत्सः उत् सः देवः
हिरण्ययः ॥ १ ॥

अन्वयः—सोम पुनानः धारया अपः-वसानः अर्षसि रत्नधा ऋतस्य योनिम्-आसीदसि हिरण्ययः-उत्सः-देवः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (पुनानः) मुझको शोधता हुआ—पवित्र करता हुआ, तथा (धारया) ध्यान धारणा से (अपः-वसानः) मेरे प्राणों को ''आपो वै प्राणाः'' [श० ३.८.२.४] आच्छादित—आवृत करता हुआ—रक्षित करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (रत्नधा) रमणीय भोगों का धारण करने वाला (ऋतस्य योनिम्-आसीदसि) अध्यात्मयज्ञ में ''यज्ञो वा ऋतस्य योनिः'' [श० १.३.४.१६] आविराजता है (हिरण्ययः-उत्सः-देवः) तू ही सुनहरा अमृतकूप, देव अमृतधाम मोक्षधाम है ''असौ वै द्युलोक उत्सो देवः'' [जै० १.१२१] ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू मुझ उपासक को पवित्र करता हुआ तथा मेरे प्राणों को ध्यानधारणा से सुरक्षित करता हुआ प्राप्त होता है। तू रमणीय भोगों को धारण करने वाला मेरे अध्यात्मयज्ञ में विराजमान होता है तू ही मोक्षधाम या सुनहरी अमृत कूप है ॥ १ ॥

६७६. दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्। आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः॥ २॥

पदपाठः— दुहानः ऊधः दिव्यम् मधु प्रियम् प्रत्नम् सधस्थम् सध स्थम् आ असदत् आपृच्छ्यम् आ पृच्छ्यम् धरुणम् वाजी अर्षसि नृभिः धौतः विचक्षणः वि चक्षणः॥ २॥

अन्वयः—नृभिः-धौतः-विचक्षणः दुहानः मधु प्रियं प्रत्नम्-आपृच्छ्यं धरुणं सधस्थं दिव्यम्-ऊधः-आसदत् वाजी-अर्षसि॥

पदार्थः—(नृभिः-धौतः-विचक्षणः) मुमुक्षजनों द्वारा परिष्कृत उपासक ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.२३] (दुहानः) जब हे सोमरूप शान्त आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन्! तुझे दुहने वाला अपने अन्दर आकर्षित करने वाला उपासक (मधु प्रियं प्रत्नम्-आपृच्छ्यं धरुणं सधस्थं दिव्यम्-ऊधः-आसदत्) तुझ मीठे प्रिय शाश्वत जिज्ञास्य सर्वाधार साथ रहने वाले हृदयस्थ दिव्य-अलौकिक आनन्दरसपूर्ण को दोहनार्थ प्राप्त होता है, तो (वाजी-अर्षसि) तू अमृत अन्न भोग वाला उपासक को प्राप्त होता है ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।

भावार्थः—उत्तम जनों से शिक्षित उपासक जब तुझ शान्तस्वरूप मधुर प्रिय शाश्वत—स्थायी जानने योग्य सर्वाधार साथ रहने वाले परमात्मा को अपने अन्दर प्राप्त करना चाहता हुआ तेरी ओर आता है तो तू भी अवश्य प्राप्त होता है॥ २॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काव्य उशनाः (मेधावी से सम्बद्ध मोक्षकांक्षी)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

६७७. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति॥ १॥

पदपाठः— प्र तु द्रव परि कोशम् नि सीद नृभिः पुनानः अभि वाजम् अर्ष अश्वम् न त्वा वाजिनम् मर्जयन्तः अच्छ बर्हिः रशनाभिः नयन्ति॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२३)

६७८. स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः। पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥ २॥

पदपाठः— स्वायुधः सु आयुधः पवते देवः इन्दुः अशस्तिहा अशस्ति हा वृजना रक्षमाणः पिता देवानाम् जनिता सुदक्षः सु दक्षः विष्टम्भः वि स्तम्भः दिवः धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्दुः-देवः स्वायुधः अशस्तिहा वृजना रक्षमाणः देवानां जनिता पिता सुदक्षः दिवः-विष्टम्भः पृथिव्याः-धरुणः पवते ॥

पदार्थः—(इन्दुः-देवः) आनन्दरसभरा शान्त परमात्मदेव (स्वायुधः) स्वशक्तिरूप आयुध वाला विरोधी के ताड़न करने को स्वशक्तिरूप अस्त्र वाला (अशस्तिहा) पापनाशक "पाप्मा वा अशस्तिः" [श० ६.३.२.७] (वृजना रक्षमाणः) समस्त बलों को रखता हुआ "वृजनं बलनाम" [निघं० २.९] (देवानां जनिता पिता) दिव्यगुण पदार्थों का उत्पादक और रक्षक (सुदक्षः) सुन्दर प्राणप्रेरक "प्राणो वै दक्षः" [श० ४.१.४.१] (दिवः-विष्टम्भः) द्युलोक का सम्भालने वाला (पृथिव्याः-धरुणः) पृथिवीलोक का धारक (पवते) आत्मा में प्राप्त होता है।

भावार्थः—आनन्दरस का भरा परमात्मा जो महान् द्युलोक का सम्भालने वाला और पृथिवी को धारण करने वाला है अपितु समस्त दिव्यगुण पदार्थों का जनक और रक्षक है जिससे सब में सम्यक् प्राणसञ्चार होता है वह पापविनाशक बलों का रक्षक उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

६७९. ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन। स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम्॥ ३ ॥

पदपाठः— ऋषिः विप्रः वि प्रः पुरएता पुरः एता जनानाम् ऋभुः ऋ भुः धीरः उशना काव्येन सः चित् विवेद निहितम् नि हितम् यत् आसाम् अपीच्यम् गुह्यम् नाम गोनाम्॥ ३ ॥

अन्वयः—जनानां पुरः-एता ऋषिः-विप्रः धीरः काव्येन-उशनाः-ऋभुः सः-चित् गोनां गुह्यं नाम विवेद यत्-आसाम्-अपीच्यं निहितम्॥

पदार्थः—(जनानां पुरः-एता) जनों को आगे ले जाने वाला (ऋषिः-विप्रः) सर्वद्रष्टा विशेष प्राप्त (धीरः) धारणकर्ता (काव्येन-उशनाः-ऋभुः) कौशल से कमनीय प्रकाशमान सोम शान्तस्वरूप परमात्मा है (सः-चित्) वह ही (गोनां गुह्यं नाम) वेदवाणियों के गुप्त रहस्य को (विवेद) खोलकर जनाता है (यत्-

आसाम्–अपीच्यं निहितम्) जोकि इनमें अपचित—सार "अपीच्यम्—अपचितम्" [निरु० ४.२५] रखा है।

भावार्थः—मनुष्यों को आगे उन्नति की ओर ले जाने वाला सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी अन्तर्यामी विशेषरूप से प्राप्त सब का धारणकर्ता जगद्रचनाकौशल से कमनीय प्रकाशमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा है वही वेदवाणियों—वेदवचनों के गहन रहस्य को जनाता है विशेष उपासकजनों को जो उनमें साररूप में रखा हुआ है॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यर्च

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

६८०. **अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ १॥**

पदपाठः— **अभि त्वा शूर नोनुमः अ दुग्धाः इव धेनवः ईशानम् अस्य जगतः स्वर्दृशम् स्वः दृशम् ईशानम् इन्द्र तस्थुषः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३३)

६८१. **न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥ २॥**

पदपाठः— **न त्वावान् अन्यः अन् यः दिव्यः न पार्थिवः न जातः न जनिष्यते अश्वायन्तः मघवन् इन्द्र वाजिनः गव्यन्तः त्वा हवामहे॥ २॥**

अन्वयः—मघवन्–इन्द्र त्वावान् अन्यः–न दिव्यः–न पार्थिवः न जातः–न जनिष्यते अश्वायन्तः–गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे॥

पदार्थः—(मघवन्–इन्द्र) हे मोक्षैश्वर्यवान् परमात्मन्! (त्वावान्) तेरे जैसा शरण्यदेव (अन्यः–न दिव्यः–न पार्थिवः) कोई न द्युलोक वाला न पृथिवीलोक वाला (न जातः–न जनिष्यते) न उत्पन्न हुआ न उत्पन्न होवेगा यह निश्चय है (अश्वायन्तः–गव्यन्तः) हम सदन्तःकरण चाहते हुए संयत इन्द्रिय चाहने वाले होते हुए (वाजिनः) अमृतान्नभोग के भागी (त्वा हवामहे) तुझे आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—मानव का शरण्यदेव वास्तव में केवल परमात्मा ही है कोई अन्य न द्युलोक का पदार्थ, न कोई पृथिवीलोक का पदार्थ हो सकता है। उसके आश्रय

से हम उत्तम अन्तःकरण वाले संयत पवित्र इन्द्रियों वाले होते हुए अमृतभोग मोक्ष के भागी हो सकते हैं, उसका अपने अन्दर आमन्त्रण करना चाहिये ॥ २ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मा की उपासना करने वाला) ॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

६८२. **कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥**

पदपाठः— **कया नः चित्रः आ भुवत् ऊती सदावृधः सदा वृधः सखा स खा कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६९)

६८३. **कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥**

पदपाठः— **कः त्वा सत्यः मदानाम् मंहिष्ठः मत्सत् अन्धसः दृढा चित् आरुजे आ रुजे वसु ॥ २ ॥**

अन्वयः—अन्धसः मदानाम् कः सत्यः मंहिष्ठः त्वा मत्सत् दृढा चित्-वसु-आरुजे ॥

पदार्थः—(अन्धसः) अध्यात्म यज्ञ के "यज्ञो वा अन्धः" [जै० १.११६] (मदानाम्) हर्ष वाले—हर्ष प्राप्ति योग्यों में "अत्र मत्वर्थीयोऽकारश्छान्दसः" (कः) कोई भाग्यशाली (सत्यः) सत्पुरुष (मंहिष्ठः) अतीव महनीय प्रशंसनीय उपासक (त्वा मत्सत्) तुझ इन्द्र परमात्मा को तृप्त करता है—सन्तुष्ट करता है "मदी तृप्तियोगे" [चुरादि०] तथा (दृढा चित्-वसु-आरुजे) दृढ़ भी वसुओं के मध्य में वसे बाधकों को समन्तरूप से भङ्ग करने को समर्थ होता है।

भावार्थः—अध्यात्मयज्ञ के आनन्द प्राप्त करने वाले अधिकारियों में विरला प्रशंसनीय उपासक सच्चा जन परमात्मा को स्वोपासन कर्म से सन्तुष्ट करता है तथा बड़े बसे हुए बाधकों को भङ्ग—नष्ट करता है ॥ २ ॥

६८४. **अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अभि सु नः सखीनाम् स खीनाम् अविता जरितॄणाम् शतम् भवासि ऊतये ॥ ३ ॥**

अन्वयः—नः-जरितॄणाम् सखीनाम् अविता ऊतये शतम्-अभि सुभवासि ॥

पदार्थः—(नः-जरितॄणाम् सखीनाम् अविता) हे इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! तू हम स्तुतिकर्ता उपासक मित्रों का रक्षक है अतः उनकी (ऊतये) रक्षा के लिए (शतम्-अभि) आयु के प्रति—जब तक आयु है—आयुपर्यन्त "यच्छतमायुष्टत्" [जै० २.४७] 'अभ्यासुम्' प्राप्त करने को (सुभवासि) सुगम हो जा।

भावार्थः—सबका रक्षक परमात्मा अपने मित्ररूप स्तुतिकर्ता जनों की ओर आयु भर झुका हुआ या प्राप्त होने को उद्यत रहता है उनकी रक्षा के लिये, परमात्मा की स्तुति करने वाले उसके मित्र हो जाते हैं वह उनकी आयु भर रक्षा करता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—नोधाः (स्तुतिधारक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥
छन्दः—बृहती ॥

६८५. **तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥**

पदपाठः— **तम् वः दस्मम् ऋतीषहम् ऋती सहम् वसोः मन्दानम् अन्धसः अभि वत्सम् न स्वसरेषु धेनवः इन्द्रम् गीर्भिः नवामहे ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३६)

६८६. **द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्। क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **द्युक्षम् द्यु क्षम् सुदानुम् सु दानुम् तविषिभिः आवृतम् आ वृतम् गिरिम् न पुरुभोजसम् पुरु भोजसम् क्षुमन्तम् वाजम् शतिनम् सहस्रिणम् मक्षु गोमन्तम् ईमहे ॥ २ ॥**

अन्वयः—तविषीभिः-आवृतम् गिरिं न पुरुभोजसम् सुदानुम् द्युक्षम् क्षुमन्तम् गोमन्तम् वाजम् शतिनं सहस्रिणम् मक्षु-ईमहे ॥

पदार्थः—(तविषीभिः-आवृतम्) नाना बल प्रवृत्तियों से परिपूर्ण (गिरिं न) पर्वत के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालक (सुदानुम्) सुखदान करने वाले (द्युक्षम्) प्रकाश में निवास कराने वाले (क्षुमन्तम्) प्रकाशवान् (गोमन्तम्) ज्ञानवान् सर्वज्ञानप्रद सर्वज्ञ (वाजम्) अमृत अन्नभोग वाले 'मकारोऽत्र मत्वर्थीयः' (शतिनं सहस्रिणम्) सतगुणित सहस्रगुणित्त वर के देने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (मक्षु-ईमहे) शीघ्र—बार बार प्रार्थित करते हैं "ईमहे याञ्चाम" [निघं० ३.१९]।

भावार्थः—हमें उस नाना शक्तियों से युक्त बहु प्रकार से पालनकर्ता सुखदान करनेवाले प्रकाशमय मोक्षधाम में निवास करानेवाले स्वयं प्रकाशस्वरूप ज्ञानवान् सर्वज्ञ अमृतानन्दभोग के स्वामी अपनी स्तुति प्रार्थना उपासना का भेंट के शतगुणित सहस्र-

गुणित फल वररूप में देनेवाले परमात्मा की शीघ्र, पुनः, निरंतर प्रार्थना करनी चाहिये ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—कलिः प्रगाथः (प्रकृष्ट वाणी वाला वक्ता) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—बृहती ॥

६८७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये। बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥

पदपाठः— तरोभिः वः विदद्वसुम् विदत् वसुम् इन्द्रम् सबाधः स बाधः ऊतये बृहत् गायन्तः सुतसोमे सुत सोमे अध्वरे हुवे भरम् न कारिणम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३७)

६८८. न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः। य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

पदपाठः— न यम् दुध्राः वरन्ते न स्थिराः मुरः मदेषु शिप्रम् अन्धसः यः आदृत्य आ दृत्य शशमानाय सुन्वते दाता जरित्रे उक्थ्यम् ॥ २ ॥

अन्वयः—अन्धसः-मदे यं सुशिप्रम्-इन्द्रम् दुध्राः-न वरन्ते न स्थिराः-मुरः यः शशमानाय सुन्वते जरित्रे आदृत्य-उक्थ्यं दात ॥

पदार्थः—(अन्धसः-मदे) आध्यानीय उपासनीय के आनन्दप्रदान के निमित्त उपासकार्थ (यं सुशिप्रम्-इन्द्रम्) जिस सुगतिमान् विभुगतिमान् परमात्मा को (दुध्राः-न वरन्ते) दुर्धारणा वाले जन नहीं प्राप्त करते हैं (न स्थिराः-मुरः) निष्कर्म ढीठ अविचारशील नहीं प्राप्त करते हैं (यः) जो (शशमानाय सुन्वते जरित्रे) शंसमान—प्रशंसा करते हुए उपासनारस निष्पादन करते हुए स्तोता के लिए (आदृत्य-उक्थ्यं दात) आदर—स्नेह कर के प्रशस्य स्व आनन्द को प्रदान करता है।

भावार्थः—उपासनीय परमात्मा के आनन्दरस प्राप्त करने के लिए उस विभु परमात्मा को दुष्ट विचार वाले ढीठ या विचारशून्य जन प्राप्त नहीं कर सकते हाँ वह परमात्मा प्रशंसा करने वाले उपासनारस निष्पादक स्तोता उपासक के लिए स्नेह स्वागत से अपना प्रशंसनीय आनन्द प्रदान करता है ॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड—प्रथम तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

६८९. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

पदपाठः— **स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८७)

६९०. **रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **रक्षोहा रक्षः हा विश्वचर्षणिः विश्व चर्षणिः अभि योनिम् अयोहते अयः हते द्रोणे सधस्थम् सध स्थम् आ असदत् ॥ २ ॥**

अन्वयः—रक्षोहा विश्वचर्षणिः अयोहते द्रोणे सधस्थं योनिम्-अभि-आसदत् ॥

पदार्थः—(रक्षोहा) पापवासना का नाशक (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (अयोहते) हिरण्य 'अयः-हिरण्यनाम' [निघं० १.२] ज्योति से संहत—आत्मज्योतिसम्प्रेरित (द्रोणे) हृदयकोष्ठ को 'द्वितीयार्थे सप्तमी' (सधस्थं योनिम्-अभि-आसदत्) जो आत्मज्योति और सर्वद्रष्टा परमात्मा का समान स्थान गृह है उसे अभिप्राप्त होता है।

भावार्थः—सर्वद्रष्टा पापनाशक परमात्मा उपासना द्वारा आत्मा और परमात्मा के समान स्थान आत्मा से सम्प्रेरित हृदयकोष्ठ को सम्यक् प्राप्त होता है ॥ २ ॥

६९१. **वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **वरिवोधातमः वरिवः धातमः भुवः मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः वृत्र हन्तमः पर्षि राधः मघोनाम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वृत्रहन्तम् वरिवः-धातमः मंहिष्ठः मघोनाम् राधः पर्षि ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्तम्) हे अत्यन्त पापनाशक परमात्मन्! तू (वरिवः-धातमः) धन का अत्यन्त धारक ''वरिवः-धननाम'' [निघं० २.१०] साथ ही (मंहिष्ठः) अत्यन्त दाता भी है (मघोनाम्) धन वालों को तू ही (राधः पर्षि) धन पूरता है।

भावार्थः—पापाज्ञान का नाशक परमात्मा महान् धन का धारक होता हुआ अतीव दानकर्ता भी है, जितने भी धनवान् हैं उनको वही धन से भरपूर करता है। परमात्मन्! तेरे जैसा कोई दानी नहीं दानियों को भी तू ही दानार्थ धन देता है तेरी उपासना से कोई निर्धन नहीं रह सकता ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—गौरिवीतिः (ब्रह्मवर्चस् तेज का सम्पादक[1]) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—ककुप् ॥

१. ''तेजो व ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतम्'' [ऐ० ४.२]।

६९२. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः॥ १॥

पदपाठः— पवस्वमधुमत्तमः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७८)

छन्दः—बृहती॥

६९३. यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः। स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः॥ २॥

पदपाठः— यस्य ते पीत्वा वृषभः वृषायते अस्य पीत्वा स्वर्विदः स्वः विदः सः सुप्रकेतः सु प्रकेतः अभि अक्रमीत् इषः अच्छ वाजम् न एतशः॥ २॥

अन्वयः—यस्य ते पीत्वा वृषभः-वृषायते अस्य स्वर्विदः पीत्वा सः-सुप्रकेतः इषः-अभ्यक्रमीत् वाजं न-एतशः-अच्छा॥

पदार्थः—(यस्य ते) जिस तुझ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के आनन्दरस का (पीत्वा) उपासना द्वारा पान करके (वृषभः-वृषायते) वृषभ की भाँति उपासक आत्मा वृषसमान पुष्ट प्रफुलित हर्षित हो जाता है तथा (अस्य स्वर्विदः पीत्वा) इस तुझ सुख को प्राप्त कराने वाले का आनन्दरस पान करके (सः-सुप्रकेतः) वह उपासक सम्यक् ज्ञानमय बनकर होकर (इषः-अभ्यक्रमीत्) अपनी एषणाओं—वासनाओं को स्वाधीन करता है—जीत लेता है—(वाजं न-एतशः-अच्छा) जैसे घोड़ा संग्राम को सामने होकर स्वाधीन करता है।

भावार्थः—उपासकजन परमात्मा के आनन्दरस का पान कर वृषभ समान पुष्ट बलवान् बन जाता है और उस स्वर्गीय सुखस्वरूप परमात्मा का आनन्दरस पान कर उपासक आत्मा सम्यक् ज्ञानमय प्रसिद्ध हो अपनी वासनाओं को स्वाधीन करता है जैसे बलवान् घोड़ा संग्राम को सीधा स्वाधीन करता है॥ २॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

६९४. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः॥ १॥

पदपाठः— इन्द्रमच्छसुताइमे॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६६)

६९५. **अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः। सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अयम् भराय सानसिः इन्द्राय पवते सुतः सोमः जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥**

अन्वयः—अयं सानसिः सुतः सोमः इन्द्राय भराय पवते जैत्रस्य यथाविदे चेतति ॥

पदार्थः—(अयं सानसिः सुतः सोमः) यह सम्भजनीय साक्षात् किया शान्त परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थी' (भराय) भरण पोषण के लिए (पवते) आनन्दधारा रूप में प्राप्त होता है, पुनः (जैत्रस्य) इन्द्रिय जयशील के (यथाविदे) यथार्थवेतृत्त्व—यथार्थ ज्ञान के लिए (चेतति) उसे चेताता है।

भावार्थः—सम्भजनीय साक्षात् किया हुआ परमात्मा उपासक आत्मा के भरण पोषण के लिए आनन्दधारा में बहता-सा आता है। पुनः इन्द्रिय मन पर जय पाने वाले उपासक के यथार्थ—ज्ञानार्थ उसे सावधान करता है ॥ २ ॥

६९६. **अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम्। वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अस्य इत् इन्द्रः मदेषु आ ग्राभम् गृभ्णाति सानसिम् वज्रम् च वृषणम् भरत् सम् अप्सुजित् अप्सु जित् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्द्रः अस्य-इत् ग्राभं सानसिम्-आगृभ्णाति मदेषु समप्सुजित् वृषणं वज्रं भरत् ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) उपासक आत्मा (अस्य-इत्) इस आनन्दधारा में साक्षात् परमात्मा के ही (ग्राभं सानसिम्-आगृभ्णाति) ग्रहण करने योग्य एकांश भजनीय स्वरूप ठीक ग्रहण कर पाता है (मदेषु) अपने समस्त तृप्ति प्रसङ्गों में (समप्सुजित्) सम्यक् व्याप्त प्रवृत्तियों में विजय पाने वाला (वृषणं वज्रं भरत्) आनन्दवर्षक ओज को धारण करता है "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]।

भावार्थः—उपासक आत्मा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा को विभुरूप में नहीं किन्तु यावत् शक्य स्वरूप को ही सेवन करता है, इतने मात्र से वह अपनी ओर प्राप्त होने वाली समस्त प्रवृत्तियों को जीत लेता है तथा आनन्दवर्षक ओज को भी प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

६९७. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे। अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम्॥ १ ॥

पदपाठः— पुरोजितीवोअन्धसः॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४५)

छन्दः—गायत्री।

६९८. यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः॥ २ ॥

पदपाठः— यः धारया पावकया परिप्रस्यन्दते परि प्रस्यन्दते सुतः इन्दुः अश्वः न कृत्वाः॥ २ ॥

अन्वयः—यः-इन्द्रः सुतः पावकया धारया परिप्रस्यन्दते अश्वः-न कृत्व्यः॥

पदार्थः—(यः-इन्द्रः) जो आर्द्र आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (सुतः) निष्पादित—उपासित हुआ (पावकया धारया) पवित्र करने—दोष पाप दुःख निवारण करने वाली ज्ञानधारा से (परिप्रस्यन्दते) सर्वतोभाव से प्राप्त होता है (अश्वः-न कृत्व्यः) कर्म—गतिकर्म कुशल घोड़े की भाँति "कृत्वी कर्मनाम" [निघं० २.१]।

भावार्थः—जैसे सर्वतोभाव से मार्ग व्यापनशील घोड़ा पूर्णरूप से मार्ग को व्यापता है ऐसे उपासना द्वारा साक्षात्कृत परमात्मा उपासक आत्मा को निर्मल करने वाली ज्ञानधारा से सर्वतोभाव से प्राप्त होता है॥ २ ॥

६९९. तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया। यज्ञाय सन्त्वद्रयः॥ ३ ॥

पदपाठः— तम् दुरोषम् अभि नरः सोमम् विश्वाच्या धिया यज्ञाय सन्तु अद्रयः अ द्रयः॥ ३ ॥

अन्वयः—अद्रयः-नरः विश्वाच्या धिया तं दुरोषं सोमम् यज्ञाय अभि सन्तु॥

पदार्थः—(अद्रयः-नरः) विघ्न बाधाओं से दीर्ण—क्षीण न होने वाले मुमुक्षु उपासक "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (विश्वाच्या धिया) सर्वात्मना प्राप्ति शक्तिमयी उपासना क्रिया से "धीः कर्मनाम" [निघं० २.१] (तं दुरोषं सोमम्) उस ओष—दाह को ध्वंस करने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा को (यज्ञाय) अध्यात्मयज्ञ सम्पादन के लिए (अभि सन्तु) स्वाश्रय करते हैं—स्वात्मा में धारण करते हैं।

भावार्थः—मुमुक्षु उपासक सर्वात्म प्राप्ति कराने वाली उपासना क्रिया से अध्यात्मयज्ञ चलाने के लिए उस दाह ताप के नाशक परमात्मा को स्वात्मा में धारण करते हैं॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—भार्गवः कविः (अध्यात्मज्ञान से देदीप्यमान मेधावी)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

७००. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते। आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः॥ १॥

पदपाठः— अभिप्रियाणिपवतेचनोहितः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५४)

७०१. ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः। दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः॥ २॥

पदपाठः— ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियम् वक्ता पतिः धियः अस्याः अदाभ्यः अ दाभ्यः दधाति पुत्रः पुत् त्रः पित्रोः अपीच्यम् नाम तृतीयम् अधिरोचनम् दिवः॥ २॥

अन्वयः—ऋतस्य जिह्वा मधुप्रियं पवते अस्या धियः-वक्ता-अदाभ्यः पतिः पित्रोः पुत्रः दिवः-अधि रोचनं तृतीयम् अपीच्यं नाम दधाति॥

पदार्थः—(ऋतस्य जिह्वा) अमृतस्वरूप सोम शान्त परमात्मा की वाक्—स्तुति ''ऋतममृतमित्याह'' [जै० २.१६०] (मधुप्रियं पवते) मधु है प्रिय जिसको ऐसे उपासक को पवित्र कर देती है (अस्या धियः-वक्ता-अदाभ्यः पतिः) इस स्तुतिरूप धी का प्रज्ञा प्रवचनकर्ता अदभनीय पति है—अधिकारी है (पित्रोः पुत्रः) द्यावापृथिवी लोकद्वय का त्राणकर्ता (दिवः-अधि रोचनं तृतीयम्) प्रकाशमय मोक्ष में रुचिकर तृतीय अमृत नाम ओ३म् सोम (अपीच्यं नाम दधाति) अन्तर्हित ''अपीच्यम्-अन्तर्हितनाम'' [निघं० ३.२५] नाम को धारण करता है।

भावार्थः—अमृतस्वरूप शान्त परमात्मा की स्तुति परमात्मसम्बन्धी मधुर इसको चाहने वाले को उपासक को पवित्र कर देती है, इस स्तुतिरूप प्रज्ञा का प्रवचनकर्ता अहिंसनीय अधिकारी हो जाता है द्यावापृथिवी का त्राणकर्ता मोक्ष में रुचिकर अमृतनाम ओ३म् अन्तर्हित को धारण करता है॥ ३॥

७०२. अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये। अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि॥ ३॥

पदपाठः— अव द्युतानः कलशान् अचिक्रदत् नृभिः येमानः कोशे आ हिरण्यये अभि ऋतस्य दोहनाः अनूषत अधि त्रिपृष्ठः त्रि पृष्ठः उषसः वि राजसि॥ ३॥

अन्वयः—द्युतानः नृभिः-हिरण्यये कोशे-आयेमानः कलशान्—अभिक्रदत् ऋतस्य दोहना अनूषत उषसः-अधि त्रिपृष्ठे विराजसि॥

पदार्थः—(द्युतानः) द्योतमान स्वात्मरूप से प्रकाशमान सोम शान्तस्वरूप परमात्मा (नृभिः-हिरण्यये कोशे-आयेमानः) सुनहरे कोश—हृदयकोश में आकर्षित किया जाता हुआ (कलशान्-अभिक्रदत्) समस्त ज्ञानाशयों में प्रवचन करता है (ऋतस्य दोहना) सोमरूप अमृत के दोहने वाले मुमुक्षु जब (अनूषत) उसकी स्तुति करते हैं तब परमात्मा (उषसः-अधि त्रिपृष्ठे विराजसि) परमात्मन्! तू ज्ञानप्रकाश तरङ्ग में होने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना के स्तर में विशेषरूप से प्रकाशमान होता है।

भावार्थः—स्वरूप से प्रकाशमान परमात्मा जब मुमुक्षुओं द्वारा दिव्य हृदयकोश में आकर्षित किया जाता है ध्याया जाता है तो वह समस्त ज्ञानविषयों को सुझाता है, पुनः उस अमृतरूप परमात्मा को दोहने वाले मुमुक्षु उपासक जब उसकी स्तुति करते हैं तो हे परमात्मन्! तू ज्ञानप्रकाशधारा में होने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना स्तर में विशेषरूप से प्रकाशित होता है साक्षात् होता है॥ ३॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—तृणपाणिः शंयुः (तुच्छ भेंट आत्मसमर्पी परमात्मा का इच्छुक उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

७०३. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥ १॥

पदपाठः— यज्ञायज्ञावोअग्नये॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३५)

७०४. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये। भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम्॥ २॥

पदपाठः— **ऊर्जः नपातम् सः हिन अयम् अस्मयुः दाशेम हव्यदातये हव्य दातये भुवत् वाजेषु अविता भुवत् वृधे उत त्राता तनूनाम्॥ २॥**

अन्वयः—ऊर्जः-नपातम् सः-हिना-अयम्-अस्मयुः हव्यदातये दाशेम वाजेषु-अविता भुवत् उत तनूनां वृधे त्राता भुवत्॥

पदार्थः—(ऊर्जः-नपातम्) हमारे आत्मस्वरूप को न गिराने वाले अग्नि ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को "ऊर्ग्वै स्वं यावद्वै पुरुषस्य स्वं भवति" [श० ५.३.५.१२] उपासित करें (सः-हिना-अयम्-अस्मयुः) वह सचमुच यह हमें चाहने वाला अपनाने वाला है (हव्यदातये दाशेम) हम अपनी उपासनाहवि को देने के लिए अपने को समर्पित करते हैं (वाजेषु-अविता भुवत्) वह अमृत अन्नभोगों के निमित्त रक्षक है (उत) और (तनूनां वृधे त्राता भुवत्) उपासक आत्माओं के वर्धन—उत्कर्ष के लिए "आत्मा वै तनूः" [श० ६.७.२.६] रक्षक होता है।

भावार्थः—हम अपने आत्मस्वरूप को न गिराने वाले अपितु उन्नत करने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना करें। वह भी यथार्थरूप से हमें अपनाने वाला है, अतः उपासनारूप भेंट अर्पित करने के लिए हम अपने को उसकी ओर प्रेरित करें। वह हमारे अमृतभोगों के हेतु रक्षक बनता है और वह सदा उपासक आत्माओं की वृद्धि उन्नति के लिए रक्षक होता है॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न को धारण करने वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७०५. **एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ १॥**

पदपाठः— **एह्यूषुब्रवाणिते॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ७)

७०६. **यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्र योनिं कृणवसे॥ २॥**

पदपाठः— **यत्र क्व च ते मनः दक्षम् दधसे उत्तरम् तत्र योनिम् कृणवसे॥ २॥**

अन्वयः—यत्र क्व च ते मनः उत्तरं दक्षं दधसे तत्र योनिं कृणवसे॥

पदार्थः—(यत्र क्व च) जिस भी उपासक में (ते) तेरे लिए (मनः) मनोभाव—मनन—आस्तिकता है वहाँ तू (उत्तरं दक्षं दधसे) अपना उत्तम वरने

योग्य स्वरूप धारण करता है—स्थापित करता है और (तत्र) वहाँ (योनिं कृणवसे) अपना निवास स्थान बनाता है।

भावार्थः—परमात्मन्! जिस उपासक के अन्दर तेरे प्रति मनोभाव आस्तिकता है वहाँ तू अपना दर्शन-ज्ञान कराता है और वहाँ अपना निवास बनाता है॥ २॥

७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां पते। अथा दुवो वनवसे॥ ३॥

पदपाठः— न हि ते पूर्त्तम् अक्षिपत् अक्षि पत् भुवत् नेमानाम् पते अथ दुवः वनवसे॥ ३॥

अन्वयः—नेमानां पते ते-अक्षिपत् पूर्त्तं न हि भुवत् अथ दुवः-वनवसे॥

पदार्थः—(नेमानां पते) हे नमने वाले उपासकों के रक्षक परमात्मन्! (ते-अक्षिपत् पूर्त्तं न हि भुवत्) उनके लिए तेरा इन्द्रिय-शक्तियों का गिराने वाला उन्हें समाप्त करने वाला तेज या ताप प्राप्त नहीं होता है (अथ दुवः-वनवसे) और तू उनके सेवा उपासना को स्वीकार करता है 'वनवसे' द्विविकरणप्रयोगश्छान्दसः।

भावार्थः—उपासकों का पालन करने वाला परमात्मा है उनकी इन्द्रिय-शक्तियों को परमात्मा तेज ताप नहीं देता भौतिक अग्नि की भाँति तथा वह उनकी उपासना को स्वीकार करता है॥ ३॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के आनन्द को अपने अन्दर भरने में कुशल)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वज्रिञ्चित्रं हवामहे॥ १॥

पदपाठः— वयमुत्वामपूर्व्य॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४०८)

छन्दः—बृहती॥

७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्। त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २॥

पदपाठः— उप त्वा कर्मन् ऊतये सः नः युवा उग्रः चक्राम यः धृषत् त्वाम् इत् हि अवितारम् ववृमहे सखायः स खायः इन्द्र सानसिम्॥ २॥

अन्वयः—कर्मन् ऊतये त्वा-उप सः-यः-युवा-उग्रः-धृषत्-नः-चक्राम इन्द्र

त्वां सानसिम्–अवितारम्–इत्–हि सखायः–ववृमहे ॥

पदार्थः—(कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (ऊतये) रक्षा के लिए (त्वा–उप) तेरी हम उपासना करते हैं (सः–यः–युवा–उग्रः–धृषत्–नः–चक्राम) वह जोकि युवा—सदा युवा पूर्ण समर्थ प्रतापी पाप प्रताड़क होता हुआ हमें उत्साही तेजस्वी करता है, अतः (इन्द्र त्वां सानसिम्–अवितारम्–इत्–हि) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन्! तुझ सम्भजनीय रक्षक को ही निश्चय (सखायः–ववृमहे) हम तेरे सखा—उपासकजन वरते हैं—अपनाते हैं।

भावार्थः—प्रत्येक कर्म में सदा समर्थ पापनाशक सम्भजनीय परमात्मा की उपासना करनी चाहिये॥ २॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—ककुप्॥

७१०. **अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे। उदेव ग्मन्त उदभिः॥ १॥**

पदपाठः— अधाहीद्रगिर्वणः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४०६)

छन्दः—उष्णिक्॥

७११. **वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे॥ २॥**

पदपाठः— वाः न त्वा यव्याभिः वर्द्धन्ति शूर ब्रह्माणि वावृध्वांꣳसम् चित् अद्रिवः अ द्रिवः दिवेदिवे दिवे दिवे॥ २॥

अन्वयः—शूर–अद्रिवः त्वा ब्रह्माणि यव्याभिः–वाः–न वर्धन्ति दिवे दिवे वावृध्वांसं चित्॥

पदार्थः—(शूर–अद्रिवः) हे पूर्ण समर्थ आनन्द मेघवन् परमात्मन्! (त्वा) तुझे (ब्रह्माणि) हमारे स्तवन—स्तुतिवचन (यव्याभिः–वाः–न वर्धन्ति) नदियों से—नदियों के जल "यव्याः–नद्यः" [निघं० १.१३] जैसे महान् जलाशय को बढ़ाते हैं—भरते हैं ऐसे (दिवे दिवे) दिन दिन—प्रतिदिन (वावृध्वांसं चित्) बढ़ते हुए जैसे को भरते हैं।

भावार्थः—हे आनन्द मेघ वाले समर्थ परमात्मन्! तुझे उपासकजन अपने स्तुतिवचनों से ऐसे भरते जाते हैं जैसे नदियाँ अपने जलों से महान् जलाशय को

भर दिया करती हैं इसलिए कि तुझ से अमृतानन्दरस पाने के लिए ॥ २ ॥

छन्दः—उष्णिक् ॥

७१२. **युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।**
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥

पदपाठः— **युञ्जन्ति हरीइति इषिरस्य गाथया उरौ रथे उरुयुगे उरु युगे वचोयुजा वचः युजा इन्द्रवाहा इन्द्र वाहा स्वर्विदा स्वः विदा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इषिरस्य हरी गाथया वचोयुजा इन्द्रवाहा स्वर्विदा उरुयुगे–उरौ रथे युञ्जन्ति ॥

पदार्थः—(इषिरस्य) प्रेरक परमात्मा के (हरी) दुःखापहरण सुखाहरणसाधनभूत ऋक् साम वाणी से स्तवन और मन से उपासक को ''ऋक्सामे वै हरी'' [श० ४.४.३.६] ''यद्वै शिवं शान्तं वाचस्तत् साम'' [जै० ३.५२] (गाथया) वेदवाक्—मन्त्र से ''गाथा वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (वचोयुजा) प्रार्थनावचन से जो युक्त है (इन्द्रवाहा) परमात्मा को ले आने वाले (स्वर्विदा) मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं उन स्तवन उपासन को (उरुयुगे–उरौ रथे) महान् योगभूमि वाले महान् रसरूप ध्यानयज्ञ में ''तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते'' [गो० १.२.२१] (युञ्जन्ति) उपासकजन युक्त प्रयुक्त करते हैं।

भावार्थः—वेदमन्त्रानुरूप प्रार्थना प्रयुक्त प्रेरक परमात्मा की स्तुति उपासना करो जोकि परमात्मा के आमन्त्रित करने वाले मोक्ष प्राप्त कराने वाले महान् उपाय महान् योगभूमि वाले रसरूप ध्यान में उपासक प्रयुक्त करते हैं हमें करना चाहिये ॥ ३ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष—भाग जिसने ऐसा उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

७१३. **पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १॥**

पदपाठः— **पान्तमावोअन्धसः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५५)

छन्दः—गायत्री॥

७१४. **पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ सनश्रुतम्। इन्द्र इति ब्रवीतन॥ २॥**

पदपाठः— **पुरुहूतम् पुरुष्टुतम् गाथान्यम् सनश्रुतम् सन श्रुतम् इन्द्रः इति ब्रवीतन ब्रवीत न॥ २॥**

अन्वयः—पुरुहूतं पुरुष्टुतम् गाथान्यम् सनश्रुतम् इन्द्रः–इति ब्रवीतन॥

पदार्थः—(पुरुहूतं पुरुष्टुतम्) बहुत आस्तिकों के द्वारा आमन्त्रणीय तथा बहुत आस्तिकों द्वारा स्तुत्य (गाथान्यम्) गाने वाली ऋचाओं से गाने योग्य (सनश्रुतम्) भजन स्तुति वाले को (इन्द्रः–इति ब्रवीतन) ऐश्वर्यवान् परमात्मा कहो—जानो।

भावार्थः—बहुत आस्तिक जनों के आमन्त्रणीय बहुत आस्तिकजनों के स्तुतियोग्य वेदमन्त्रों से गाने–जानने योग्य भजन स्तुति सुनने वाले को इन्द्र परमात्मा कहो—जानो॥ २॥

छन्दः—गायत्री॥

७१५. **इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत्॥ ३॥**

पदपाठः— **इन्द्रः इत् नः महोनाम् दाता वाजानाम् नृतुः महान् अभिज्ञु अभि ज्ञु आ यमत्॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्रः-इत् नः महोनां वाजानां दाता महान्-अभिज्ञु नृतुः-आ यमत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः-इत्) इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही (नः) हमारे लिए (महोनां वाजानां दाता) बहुमूल्य—महत्त्वपूर्ण अमृतभोगों का प्रदानकर्ता है तथा (महान्-अभिज्ञु नृतुः-आ यमत्) महान् कृपालु नेता हुआ हम पर शासन करता है।

भावार्थः—परमात्मा हमारे लिए महनीय महत्त्वपूर्ण अमृतभोगों का देने वाला और महान् कृपालु नेता हुआ शासन करता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७१६. **प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने॥ १॥**

पदपाठः— **प्रवइन्द्रायमादनम्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५६)

७१७. **शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे॥ २॥**

पदपाठः— **शꣳस इत् उक्थम् सुदानवे सु दानवे उत द्युक्षम् द्यु क्षम् यथा नरः चकृम सत्यराधसे सत्य राधसे॥ २॥**

अन्वयः—नरः यथा सुदानवे उत सत्यराधसे उक्थं शंसेत् चकृम॥

पदार्थः—(नरः) मुमुक्षुजन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (यथा) जिस प्रकार (सुदानवे) उत्तम दान करने वाले (उत) और (सत्यराधसे) सत्य—स्थायी मोक्षैश्वर्य वाले—अनश्वर धन वाले परमात्मा के लिए (उक्थं शंसेत्) वक्तव्य प्रशंसावचन—स्तवन बोलता है (चकृम) हम भी वैसा ही आचरण करें।

भावार्थः—मुमुक्षुजन जैसे श्रेष्ठ दानदाता स्थिर मोक्षैश्वर्य वाले परमात्मा की स्तुति किया करता है वैसा हम उपासकों को भी करना चाहिये॥ २॥

७१८. **त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो। त्वं हिरण्ययुर्वसो॥ ३॥**

पदपाठः— **त्वम् नः इन्द्र वाजयुः त्वम् गव्युः शतक्रतो शत क्रतो त्वम् हिरण्ययुः वसो ॥ ३ ॥**

अन्वयः—शतक्रतो-इन्द्र त्वम् नः वाजयुः त्वम् गव्युः वसो त्वम् हिरण्ययुः ॥

पदार्थः—(शतक्रतो-इन्द्र) हे अनन्त ज्ञानकर्म वाले परमात्मन्! (त्वम्) तू (नः) हमारे लिए (वाजयुः) अमृत अन्न—मोक्ष को चाहने वाला हो "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] 'छन्दसि परेच्छायामपि क्यच्' (त्वम्) तू (गव्युः) सरस्वती—ज्ञानशक्ति का चाहने वाला हो "सरस्वती हि गौः" [श० १४.२.७] (वसो) हे हमें वसाने वाले (त्वम्) तू (हिरण्ययुः) आयु—दीर्घ जीवन का चाहने वाला है "आयुर्वैहिरण्यम्" [काठ० ११.८]।

भावार्थः—परमात्मा उपासकों का आयुष्काम विद्याकाम और मोक्षकाम है वह अनन्त ज्ञान कर्म वाला और वसाने वाला है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधा वा (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला या प्रिय है अध्यात्मयज्ञ जिसको)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

७१९. **वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥**

पदपाठः— **वयमुत्वातदिदर्थाः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५७)

७२०. **न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥**

पदपाठः— **न घ ईम् अन्यत् अन् यत् आ पपन वज्रिन् अपसः नविष्टौ तव इत् उ स्तोमैः चिकेत ॥ २ ॥**

अन्वयः—वज्रिन् अपसः नविष्टौ अन्यत्-न घ-ईम्-आपपन तव-इत्-उ स्तोमैः चिकेत ॥

पदार्थः—(वज्रिन्) हे ओजस्वी तेजस्वी परमात्मन्! "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (अपसः) तुझ व्यापक कर्मशक्तिमान् की (नविष्टौ) स्तुतियज्ञ में "णु स्तुतौ" [अदादि०] (अन्यत्-न घ-ईम्-आपपन) अन्य की स्तुति कभी नहीं करता हूँ (तव-इत्-उ) तुझे ही (स्तोमैः) समस्त स्तुतिवचनों में 'विभक्तिव्यत्ययः' (चिकेत) इष्टदेव जानता—मानता हूँ।

भावार्थः—परमात्मा के स्तुतियाग में किसी अन्य की स्तुति नहीं करनी चाहिये, परमात्मा के स्थान पर न कोई जड़ और न चेतन स्तुति योग्य है किन्तु समस्त स्तुति प्रसङ्गों में परमात्मा को ही इष्टदेव मानना चाहिये ॥ २ ॥

७२१. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥

पदपाठः— इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम् न स्वप्नाय स्पृहयन्ति यन्ति प्रमादम् प्र मादम् अतन्द्राः अ तन्द्राः ॥ ३ ॥

अन्वयः—देवाः सुन्वन्तम्-इच्छन्ति स्वप्नाय न स्पृहयन्ति अतन्द्राः प्रमादं यन्ति ॥

पदार्थः—(देवाः) इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थं यद्वा स्तोतव्यदेवस्यानेकगुणप्रदर्शनपरम्' (सुन्वन्तम्-इच्छंन्ति) उपासनारस निष्पादक को चाहता है—अपनाता है (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) असावधान—नास्तिक को नहीं स्नेह करता है (अतन्द्राः प्रमादं यन्ति) सावधान उपासनारस निष्पादक आस्तिकजन प्रकृष्ट हर्ष—ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—उपासनारस निष्पादक उपासक को परमात्मा स्नेह करता है असावधान नास्तिक को नहीं, सावधान आस्तिकजन ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

७२२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

पदपाठः— इन्द्रायमद्वनेसुतम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५८)

७२३. यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

पदपाठः— यस्मिन् विश्वाः अधि श्रियः रणन्ति सप्त सꣳसदः सं सदः इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

अन्वयः—यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि सप्त संसदः रणन्ति इन्द्रं-सुते हवामहे ॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा में (विश्वाः श्रियः) समस्त ऐश्वर्यशक्तियाँ या प्रकृतियाँ सूक्ष्म सत्तायें जगन्निर्माण धारणार्थ (अधि) अधिष्ठित हैं—वर्तमान हैं तथा (सप्त संसदः) सात छन्दोमय स्तोम—मन्त्र—ज्ञानधारायें या सप्त—समवेत होने वाले चेतन आत्माएँ "संसदां संसत्त्वं यदेते स्तोमाश्च छन्दांसि च मध्यतः संसन्नाः" [जै० २.३५०] (रणन्ति) रमण करते हैं "रण्याः-रमणीयाः" [निरु० ६.३३] (इन्द्रं-सुते हवामहे) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को उपासनारस के निमित्त आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा में सारी ऐश्वर्य-शक्तियाँ या सूक्ष्म प्रकृति सत्तायें अधिष्ठित हैं जिस में सात गायत्री आदि छन्दोमय मन्त्र ज्ञानधारायें या उसमें समवेत होने वाली चेतन सत्तायें हैं उस परमात्मा को उपासना-समय आमन्त्रित करना चाहिये अन्य को नहीं॥ २॥

७२४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः॥ ३॥

पदपाठः— त्रिकद्रुकेषु त्रि कद्रुकेषु चेतनम् देवासः यज्ञम् अत्नत तम इत् वर्द्धन्तु नः गिरः॥ ३॥

अन्वयः—देवासः त्रिकद्रुकेषु चेतनं यज्ञम् अत्नत तम् इत् नः-गिरः वर्धन्तु॥

पदार्थः—(देवासः) मुमुक्षुजन (त्रिकद्रुकेषु) तीन योगभूमियों—धारणाध्यान समाधियों में "पृथिवी वै कद्रूः" [श० ३.१.२.२] "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" [योग० ३.१-३] (चेतनं यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ योगाभ्यास को (अत्नत) तानते हैं—सम्पादन करते हैं (तम् इत्) उसे अवश्य (नः-गिरः) हमारी स्तुतियाँ (वर्धन्तु) बढ़ावें—बढ़ाती हैं।

भावार्थः—मुमुक्षुजन अध्यात्मयज्ञ को धारणाध्यान समाधि रूप तीन योगभूमियों में विस्तृत करते हैं, अतः हमें अध्यात्मयज्ञ करना चाहिये उसे हमारी स्तुतियाँ उन्नत करें, हम स्तुतियों में ओ३म् परमात्मा को धारणाध्यान समाधि का अवलम्बन बनावें "तज्जपस्तदर्थभावनम्" [योग० १.२८] को घटावें॥ ३॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में स्थिर स्तुतिकर्ता)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७२५. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब॥ १॥

पदपाठः— **अयन्तइन्द्रसोमः॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५९)

७२६. **शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे॥ २ ॥**

पदपाठः— **शाचिगो शाचि गो शाचिपूजन शाचि पूजन अयम् रणाय ते सुतः आखण्डल प्र हूयसे॥ २ ॥**

अन्वयः—शाचिगो शाचिपूजन अयं सुतः ते रणाय आखण्डल प्र हूयसे॥

पदार्थः—(शाचिगो) हे प्रज्ञा में—प्रज्ञानुरूप गौ—वेदवाक् जिसकी ऐसे प्रज्ञानुरूप—प्रज्ञावृद्धिकर हे वेदवाक् के स्वामी! "शचीति प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" [वैशे० ६.१.१] शची—प्रज्ञा में सम्पन्न 'सम्पन्नार्थे छान्दस इञ् प्रत्ययः' (शाचिपूजन) प्रज्ञानुरूप पूजन उपासन जिसका होता है न कि अन्धविश्वास से ऐसे परमात्मन्! (अयं सुतः) यह उपासनारस (ते रणाय) तेरे रमण के लिए—तेरा रमण हमारे अन्दर हो इसलिए (आखण्डल प्र हूयसे) हे पापदोषों को छिन्न-भिन्न करने वाले "आखण्डल आखण्डयितः" [निरु० ३.१०] तू प्रकृष्ट रूप से निमन्त्रित किया जाता है।

भावार्थः—प्रज्ञानुरूप वेदज्ञान वाला तथा प्रज्ञानुरूप उपासना वाला परमात्मा है उसमें रमण कराने के लिए उपासनारस तैयार करना चाहिये, वह पापदोषों का सदा निवारक है॥ २ ॥

७२७. **यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः। न्यस्मिन् दध्र आ मनः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यः ते शृङ्गवृषः शृङ्ग वृषः नपात् प्रणपात् प्र नपात् कुण्डपाय्यः कुण्ड पाय्यः नि अस्मिन् दध्रे आ मनः॥ ३ ॥**

अन्वयः—ते शृङ्गवृषः नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः अस्मिन् मनः-नि-आ दध्रे॥

पदार्थः—(ते शृङ्गवृषः) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तुझ अज्ञानान्धकारनाशक ज्ञानप्रकाशवर्षक का "शृङ्गाणि ज्वलतो नाम" [निघं० १.१७] (नपात्) न गिराने वाला अपितु धारण करने वाला तथा (प्रणपात्) आत्मा को भी प्रकृष्टरूप से न गिराने वाला उत्कर्षकर्ता (कुण्डपाय्यः) कुण्ड से जैसे पान करने योग्य भरपूर आनन्दरस पान करना होता है वह जो अध्यात्मयज्ञ है "क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ" [अष्टा० ३.१.१३०] (अस्मिन्) इस—उस में (मनः-नि-आ दध्रे) उपासकजन

अपने मन को नियम से निरन्तर रखते हैं—समर्पित करते हैं।

भावार्थः—अध्यात्मयज्ञ जोकि अज्ञानान्धकारनाशक ज्ञानप्रकाश सुख वर्षाने वाले परमात्मा का न गिराने—साक्षात् कराने वाला आत्मा का भी उत्कर्ष कराने वाला है उसमें उपासकजन अपना मन निरन्तर लगाया करते हैं॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काण्वः कुसीदी (मेधावी से सम्बद्ध योगभूमि पर आरूढ़ उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७२८. **आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन॥ १॥**

पदपाठः— **आतूनइन्द्रक्षुमन्तम्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६७)

७२९. **विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः॥ २॥**

पदपाठः— **विद्म हि त्वा तुविकूर्मिम् तुवि कूर्म्मिम् तुविदेष्णाम् तुविमघम् तुवि मघम् तुविमात्रम् तुवि मात्रम् अवोभिः॥ २॥**

अन्वयः—त्वा तुविकूर्मिम् तुविदेष्णम् तुवीमघम् तुविमात्रम् अवोभिः-विद्म हि॥

पदार्थः—(त्वा) हे इन्द्र—परमात्मन्! तुझ (तुविकूर्मिम्) बहुत प्राणशक्तिमान्—बहुत बलवान् ''तुवि बहुनाम'' [श० ७.५.१.७] (तुविदेष्णम्) बहुत प्रेरणाकर्ता 'दिशधातोश्छान्दसं रूपम्' (तुवीमघम्) बहुत ऐश्वर्यवान्—बहुत प्रकार से धनदाता (तुविमात्रम्) बहुत प्रमाण वाले—महान् व्यापक अनन्त को (अवोभिः-विद्म हि) हमारे प्रति विविध रक्षणों कृपाभावों से हम नितान्त जानते हैं।

भावार्थः—परमात्मा की हमारे प्रति विविध रक्षाएँ कृपाएँ हैं जिनसे हम उसे महान् प्राणशक्तिमान् महान् प्रेरणाकर्ता महान् धन साधन दाता और सर्वव्यापक अनन्त जानते हैं जानें मानें॥ २॥

७३०. **न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्। भीमं न गां वारयन्ते॥ ३॥**

पदपाठः— **न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासः दित्सन्तम् भीमम् न गाम् वारयन्ते ॥ ३ ॥**

अन्वयः—शूर त्वा दित्सन्तम् न हि देवाः न मर्त्तासः वारयन्ते भीमं गां न॥

पदार्थः—(शूर) हे समर्थ परमात्मन्! (त्वा दित्सन्तम्) तुझ यथा-योग्य कर्मफल देने की इच्छा करते हुए को (न हि देवाः) न ही देव (न मर्त्तासः) न मनुष्य (वारयन्ते) हटा पाते हैं (भीमं गां न) भयङ्कर वृषभ को जैसे उसके बलकार्य से कोई नहीं हटा सकता है।

भावार्थः—जैसे भयङ्कर वृषभ को उसके बलकार्य से कोई नहीं हटा पाता है ऐसे ही परमात्मा को उसके बलकार्य करते हुए कर्मफल के देते हुए को कोई नहीं रोक सकता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काण्वस्त्रिशोकः (मेधावी से सम्बद्ध मन आत्मा परमात्मा ज्योतियों से सम्पन्न)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

७३१. **अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अभित्वावृषभासुते ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६१)

७३२. **मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **मा त्वा मूराः अविष्यवः मा उपहस्वानः उप हस्वानः आ दभन् मा कीम् ब्रह्मद्विषम् ब्रह्म द्विषम् वनः ॥ २ ॥**

अन्वयः—त्वा मूराः अविष्यवः मा-आदभन् उपहस्वानः-मा ब्रह्मद्विषम् माकीं वनः ॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वा) तुझे (मूराः) मूढ लोग "मूराः-मूढाः" [निरु० ६.८] (अविष्यवः) भोग की कामना करने वाले (मा-आदभन्) नहीं दबा सकते, और (उपहस्वानः-मा) न उपहास करने को नास्तिकजन तुझे दबा सकते हैं (ब्रह्मद्विषम्) तेरे प्रति द्वेष करने वाले ऐसे भोगी और नास्तिक को (माकीं वनः) न कभी तू सम्भजन करता है उसका पक्ष करता है अपनाता है।

भावार्थः—भोग-विलासी तथा नास्तिक मूढजन परमात्मा के दण्ड से बच नहीं सकते। ऐसे ब्रह्मद्वेषी ईश्वरीय नियम और उपकार के द्वेषीजन को परमात्मा

कभी अपनाता नहीं है ॥ २ ॥

७३३. इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

पदपाठः— इह त्वा गोपरीणसम् गो परीणसम् महे मन्दन्तु राधसे सरः गौरः यथा पिब ॥ ३ ॥

अन्वयः—त्वा गोपरीणसम् महे राधसे मन्दन्तु गौरः-यथा सरः पिब ॥

पदार्थः—(त्वा गोपरीणसम्) हे परमात्मन्! तुझ स्तुति-वाणियों से प्राप्त होने वाले अध्यात्म अन्न को "अन्नं वै परीणसम्" [जै० ३.१७४] (महे राधसे) महान् मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिए (मन्दन्तु) उपासकजन स्तुत करें—अर्चित करें "मदतिः-अर्चति कर्मा" [निघं० ३.१४] (गौरः-यथा सरः पिब) गौर हरिण जैसे सर—उदक जल तृप्ति से पीता है ऐसे उपासक के उपासनारस का पान कर।

भावार्थः—स्तुतियों से प्राप्त होने योग्य मोक्ष भोग वाले तुझ परमात्मा की मोक्षैश्वर्य के लिए उपासक अर्चना करते हैं, तू उनके अर्चना रूप आर्द्ररस को पूर्णरूप से पान कर ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधो वा (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला या प्रिय है मेधा जिसको) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

७३४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥

पदपाठः— इदंवसोसुतमन्धः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १२४)

७३५. नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

पदपाठः— नृभिः धौतः सुतः अश्नैः अव्याः वारैः परिपूतः परि पूतः अश्वः न निक्तः नदीषु ॥ २ ॥

अन्वयः—नृभिः सुतः धौतः अव्याः-अश्नैः-वारैः परिपूतः अश्वः-नदीभिः-निक्तः ॥

पदार्थः—(नृभिः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]

(सुतः) निष्पादित (धौतः) प्राप्त (अव्याः-अश्नैः-वारैः) योगभूमि—योगस्थली के ''इयं पृथिवी वा-अविः'' [श० ६.१.२.३३] दोषवारणसाधनों—अभ्यासों से (परिपूतः) सब ओर से परमात्मा रक्षित होता है (अश्वः-नदीभिः-निक्तः) जैसे खुली जलधाराओं से घोड़ा कान्त बनाया जाता है ऐसे।

भावार्थः—मुमुक्षुजन परमात्मा को अपने अन्दर श्रद्धा भरे योगभूमिस्थ अभ्यासों द्वारा निर्मल साक्षात् करते हैं जैसे जलधाराओं से घोड़े को स्नान करा निर्मल कान्तरूप में देखते हैं॥ २॥

७३६. तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥ ३॥

पदपाठः— तम् ते यवम् यथा गोभिः स्वादुम् अकर्म श्रीणन्तः इन्द्र त्वा अस्मिन् सधमादे सध मादे॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र ते तं गोभिः यथा यवं श्रीणन्तः स्वादु-अकर्म त्वा अस्मिन् सधमादे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (ते) तेरे लिए (तं गोभिः) उस उपासनारस को अपनी वाणियों से (यथा यवं श्रीणन्तः) जैसे यव आदि अन्नपान को गोदुग्धों से मिलाते हुए (स्वादु-अकर्म) स्वादु वाला तैयार करते हैं, ऐसे मिलाते हुए तैयार करते हैं, अतः (त्वा) तुझे (अस्मिन् सधमादे) इस मेरे आत्मा के साथ या मुझ आत्मा के साथ अपने हर्षस्थान हृदय में आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—जैसे मनुष्य अपने लिये अन्न भोजन को दुग्ध घृत आदि मिश्रित कर स्वाद वाला बनाते हैं ऐसे उपासनारस को श्रद्धा भरे वचनों से मीठा बनाकर हृदयस्थान में परमात्मा को आमन्त्रित करें॥ ३॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वा३स्य गिर्वणः॥ १॥

पदपाठः— इदथंह्यन्वोजसा॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६५)

७३८. यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्य॥ २॥

पदपाठः— **यः ते अनु स्वधाम् स्व धाम् असत् सुते नियच्छ तन्वम् सः त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥**

अन्वयः—ते यः सुते स्वधाम्-अनु-असत् तन्वं नियच्छ सोम्य सः-त्वा ममत्तु ॥

पदार्थः—(ते) हे इन्द्र परमात्मन्! तेरा (यः) जो उपासक (सुते) उपासनारस निष्पन्न होने पर (स्वधाम्-अनु-असत्) अपनी आत्मसमर्पण क्रिया के अनुसरण हो रहा है (तन्वं नियच्छ) स्वकीय आत्मा—स्वरूप को "आत्मा वै तनूः" [श० ६.७.२.६] उसके लिए प्रदान कर—प्रदान करता है (सोम्य सः-त्वा ममत्तु) हे उपासनारस के योग्य परमात्मन्! वह उपासक तुझे उपासनारस से निरन्तर हर्षित करता रहे।

भावार्थः—परमात्मन्! जो उपासक उपासना समय अपने आत्मा का तेरे प्रति समर्पण करता है तू भी अपने स्वरूपदर्शन का प्रसाद उसे देता है, पुनः वह उपासक उपासनारस से तुझे तृप्त हर्षित करता रहता है ॥ २ ॥

७३९. **प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्र इन्द्र ब्रह्मणा शिरः प्र बाहूइति शूर राधसा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्द्र ते कुक्ष्योः-अश्नोतु ब्रह्मणा शिरः प्र शूर राधसा बाहू प्र ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! उपासक (ते कुक्ष्योः-अश्नोतु) तेरे दोनों पार्श्वों में वर्तमान अभ्युदय और निःश्रेयस को—संसार सुख और मोक्षानन्द को प्राप्त करे—करता है (ब्रह्मणा शिरः प्र) तेरे वेदज्ञान से अपने मस्तिष्क को प्रवृद्ध करता है (शूर) हे महाबलवन् परमात्मन्! (राधसा बाहू प्र) संसिद्धि—संयमरूप आराधना से शरीरात्मबलों को प्राप्त करता है "बाहुर्वीर्यः" [तां० ६.१.८]।

भावार्थः—परमात्मा से उपासक मोक्षानन्द और संसारसुख तो प्राप्त करता ही है परन्तु साथ ही उसके ज्ञान से मस्तिष्क को विकसित करता और संयमपूर्वक आराधना से आत्मबल और जीवनबल को भी प्राप्त किया करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

७४०. **आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **आत्वेतानिषीदत ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६४)

७४१. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते॥ २॥

पदपाठः— पुरुतमम् पुरूणाम् ईशानम् वार्याणाम् इन्द्रम् सोमे सचा सुते॥ २॥

अन्वयः—सोमे पुरुतमम् पुरूणां वार्याणाम्-ईशानम् इन्द्रम् सचा॥

पदार्थः—(सोमे) परमात्मा के उपानारस सम्पादन के निमित्त उपासको! (पुरुतमम्) बहुतेरे प्रसङ्गों में कांक्ष्य वाञ्छनीय—(पुरूणां वार्याणाम्-ईशानम्) बहुत—अनेक वरणीय शुभकामनाओं कमनीय वस्तुओं के स्वामी (इन्द्रम्) परमात्मा को (सचा) एक मन होकर गाओ—स्तुत करो।

भावार्थः—उपासनारस निष्पादनार्थ हे उपासको! बहुत वाञ्छनीय अनेक वरणीय कामना और कमनीय वस्तुओं के स्वामी परमात्मा की एकमन होकर स्तुति गीति गानी चाहिये॥ २॥

७४२. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या। गमद् वाजेभिरा स नः॥ ३॥

पदपाठः— सः घ नः योगे आ भुवत् सः राये सः पुरन्ध्या पुरम् ध्या गमत् वाजेभिः आ सः नः॥ ३॥

अन्वयः—सः-घ नः योगे सः राये सः-पुरन्ध्या आभुवत् सः नः वाजेभिः आगमत्॥

पदार्थः—(सः-घ) वह ही इन्द्र—परमात्मा (नः) हमारे (योगे) अध्यात्मानन्द के निमित्त (सः) वह (राये) लौकिक ऐश्वर्य के निमित्त (सः-पुरन्ध्या) वह पुर—शरीर धारण स्थिति के निमित्त 'ससम्यर्थे तृतीया व्यत्ययेन' (आभुवत्) स्वामीरूप में वर्तमान रहे (सः) वह (नः) हमारे लिए (वाजेभिः) अपने अमृतभोगों के साथ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] (आगमत्) आवे—प्राप्त हो।

भावार्थः—परमात्मा हमारे योगानन्द—अध्यात्मानन्द के लिए परमात्मा हमारे सांसारिक सुख के लिए तथा वह हमारा स्वामी है, रक्षा करता है और वह हमारे लिये अमृतभोग प्रदान करता है॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७४३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये॥ १॥

पदपाठः— योगेयोगेतवस्तरम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६३)

७४४. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे॥ २॥

पदपाठः— अनु प्रत्नस्य ओकसः हुवे तुविप्रतिम् तुवि प्रतिम् नरम् यम् ते पूर्वम् पिता हुवे॥ २॥

अन्वयः—प्रत्नस्य-ओकसः अनु तुविप्रतिम् नरम् हुवे यं ते पिता पूर्वं हुवे॥

पदार्थः—(प्रत्नस्य-ओकसः) दिव् स्थान "असौ वै द्युलोकः प्रत्नम्" [मै० १.५.५] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३] मोक्ष स्थान के (अनु) ऊपर वर्तमान (तुविप्रतिम्) बहुतों के प्रतिपालक—बहुतेरे मुक्तात्माओं को स्वानन्द से पूरण करने वाले—(नरम्) नेता—स्वामी परमात्मा को (हुवे) मैं आमन्त्रित करता हूँ (यं ते पूर्वं पिता हुवे) जिस "ते-त्वाम् विभक्तिव्यत्ययः" तुझ परमात्मा को पहले भी मेरा पिता आमन्त्रित करता रहा।

भावार्थः—मोक्षधाम के ऊपर शासक परमात्मा जोकि बहुतेरे मुक्तात्माओं को स्वानन्द से पूरण करने वाला है उस नेता को उपासक अपने हृदय में आमन्त्रित करें और परम्परा से अपने पूर्वज ब्रह्मा आदि भी आमन्त्रित करते रहे हैं। परम्परा का आदर्श आचरण अथवा हेतु ग्राह्य है "स पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत" [ऋ० १.१.२]॥ २॥

७४५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्त्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम्॥ ३॥

पदपाठः— आ घ गमत् यदि श्रवत् सहस्त्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः उप नः हवम्॥ ३॥

अन्वयः—नः-हवं यदि श्रवत् घ सहस्त्रिणीभिः-ऊतिभिः आगमत् वाजेभिः-उप॥

पदार्थः—(नः-हवं यदि श्रवत्) हमारे नम्र स्तुतिवचन या आमन्त्रण को वह इन्द्र—परमात्मा यदि सुने—स्वीकार करे तो (घ) निश्चय—अवश्य (सहस्त्रिणीभिः-ऊतिभिः) आयुष्मती—दीर्घ जीवन देने वाली रक्षा पद्धतियों के साथ "आयुर्वै सहस्त्रम्" [तै० १.८.१५] (आगमत्) आ जावे तथा (वाजेभिः-उप) अमृत अन्न

भोगों के द्वारा उपकृत करे।

भावार्थः—उपासक नम्र स्तुतिवचन या आमन्त्रण परमात्मा के प्रति करे तो परमात्मा उसे अवश्य सुन—स्वीकार कर दीर्घ जीवन देने वाली रक्षा विधियों के साथ उसके हृदय में प्राप्त होता है साक्षात् होता है तथा उस उपासक को अमृत भोगों से भी उपकृत कर देता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—नारदः (नरद—सद्भाव का रदन न करने वाले का शिष्य या नारा—नर सम्बन्धी जीवन विज्ञान दाता)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

७४६. **इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रसुतेषुसोमेषु ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८१)

७४७. **स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः प्रथमे व्योमनि वि ओमनि देवानाम् सदने वृधः सुपारः सु पारः सुश्रवस्तमः सु श्रवस्तमः सम् अप्सुजित् अप्सु जित् ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-प्रथमे देवानां सदने व्योमनि वृधः सुपारः सुश्रवस्तमः सम्-अप्सुजित् ॥

पदार्थः—(सः-प्रथमे) वह परमात्मा प्रमुख (देवानां सदने व्योमनि) मुक्तों के स्थान विशेष रक्षण स्थान मोक्षरूप में (वृधः) जो उपासकों का वर्धक (सुपारः) संसार सागर से शोभन पारकर्ता (सुश्रवस्तमः) शोभन यशोजीवन का अत्यन्त निमित्त (सम्-अप्सुजित्) हृदयावकाश में कामादि का सम्यक् नाशक उपासनीय है "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४१५]।

भावार्थः—मुक्तों के सदन विशेष रक्षण स्थान प्रमुख मोक्षधाम में आनन्द वर्धक संसार से पारकर्ता अच्छे यश का निमित्त हृदय के कामादि का नाशक परमात्मा उपासनीय है ॥ २ ॥

७४८. **तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्। भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **तम् उ हुवे वाजसातये वाज सातये इन्द्रम् भराय शुष्मिणम् भव नः सुम्ने अन्तमः सखा स खा वृधे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—तं शुष्मिणम्-इन्द्रम्-उ वाजसातये भराय हुवे नः सुम्ने वृधे अन्तमः सखा भव ॥

पदार्थः—(तं शुष्मिणम्-इन्द्रम्-उ) उस सर्व बल वाले परमात्मा को अवश्य (वाजसातये भराय हुवे) अमृत भोग—मोक्षानन्द के लिए ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३] तथा सांसारिक भरण पोषण—सांसारिक शुभ सुख भोग के लिए आमन्त्रित करता हूँ, अतः हे परमात्मन्! तू (नः) हमारे (सुम्ने) सर्व सुख के निमित्त ''सुम्नं सुखनाम'' [निघं० ३.६] और (वृधे) वृद्धि के लिये—जीवन विकास के लिए (अन्तमः सखा भव) अन्तिकतम—अत्यन्त समीपी साथी हृदयस्थ हो जा।

भावार्थः—समस्त बल रखने वाले परमात्मा को हृदय में आमन्त्रित करना चाहिये वह ही मोक्ष का अमृत भोग और सांसारिक भरण पोषणरूप सुख एवं सर्व सुख देता है तथा हमारे जीवन विकास में अत्यन्त समीपी साथी हृदयवासी है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्वृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) छन्दः—बृहती ॥

७४९. **एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **एनावोअग्निन्नमसा ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४५)

७५०. **स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः योजते अरुषा विश्वभोजसा विश्व भोजसा सः दुद्रवत् स्वाहुतः सु आहुतः सुब्रह्मा सु ब्रह्मा यज्ञः सुशमी सु शमी वसूनाम् देवम् राधः जनानाम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-विश्वभोजसा-अरुषा योजते सः-स्वाहुतः-दुद्रवत् सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां जनानां देवं राधः ॥

पदार्थः—(सः-विश्वभोजसा-अरुषा योजते) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा विश्व का पालन करने वाले तेज से युक्त है (सः-स्वाहुतः-दुद्रवत्) वह सम्यक् आमन्त्रित हुआ उपासक के अन्दर शोभनरूप में प्राप्त होता है (सुब्रह्मा यज्ञः) शोभन मन्त्र यथार्थ पवित्र स्तवन वाला यजनीय है (सुशमी) शोभन शान्तिप्रद है (वसूनां जनानां देवं राधः) उसकी शरण में बसने वाले जनों को वह दिव्य धन देता है।

भावार्थः—ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा विश्व का पालन करने वाले ज्ञान तेज से युक्त है उसका तेज दाहक नहीं किन्तु सर्वपालक है वह उपासक द्वारा हृदय से आमन्त्रित हुआ शोभनरूप में प्राप्त होता है तथा सुन्दर पवित्र स्तुतिपात्र यजनीय सङ्गमनीय है उसकी शरण में बसने वाले उपासकों का दिव्य धन है या दिव्य धन दाता है ॥ २ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)॥ देवता—उषाः (परमात्मा की आभा)॥ छन्दः—बृहती ॥

७५१. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

पदपाठः— प्रत्यूअद्रश्र्यायती ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३०३)

७५२. उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

पदपाठः— उत् उस्त्रियाः उ स्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यत् उत् यत् नक्षत्रम् अर्चिवत् तव इत् उषः व्युषि वि उषि सूर्यस्य च सम् भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

अन्वयः—सूर्यः उस्त्रियाः-उत्सृजते सचा उद्यत्-नक्षत्रम्-अर्चिवत् उषः तव-इत्-व्युषि सूर्यस्य च भक्तेन संगमेमहि ॥

पदार्थः—(सूर्यः) सूर्य (उस्त्रियाः-उत्सृजते) रश्मियों को फैलाता है (सचा) साथ ही (उद्यत्-नक्षत्रम्-अर्चिवत्) उदय होने वाले नक्षत्र को भी अपनी ज्योति से ज्योति वाला करता है यह ठीक है, परन्तु (उषः) हे परमात्मा की आभा (तव-इत्-व्युषि) तेरे संसार में भासमान होने पर (सूर्यस्य च भक्तेन संगमेमहि) सूर्य के उदय भाग के साथ ही सूर्य के उदय होने पर तुझे संगत हो।

भावार्थः—यह ठीक है यह भौतिक सूर्य प्रकाशरश्मियों को फैलाता है

प्रत्येक नक्षत्र को ज्योतिष्मान् बनाता है परन्तु परमात्मा की आभा के संसार में आने पर सूर्य प्रकाश को प्राप्त होता है उदय होता है। उसके उदय होने को लक्ष्य कर परमात्मा की आभा से हम समागम कर पाते हैं॥ २॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—अश्विनौ (प्रकाशस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा[1])॥ छन्दः—बृहती॥

७५३. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः॥ १॥

पदपाठः— इमाउवान्दिविष्टयः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३०४)

७५४. युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु॥ २॥

पदपाठः— युवम् चित्रम् ददथुः भोजनम् नरा चोदेथाम् सुनृतावते सु नृतावते अर्वाक् रथम् समनसा स मनसा नि यच्छतम् पिबतम् सोम्यम् मधु॥ २॥

अन्वयः—नरा युवम् सूनृतावते चित्रं भोजनम् ददथुः चोदेथाम् समनसा रयम्-अर्वाक्-नियच्छतम् सोम्यं मधु पिबतम्॥

पदार्थः—(नरा) हे अश्विनौ नरौ—हे व्यापनशील प्रकाशस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन्! (युवम्) तुम (सूनृतावते) स्तुतिवाणी वाले उपासक के लिए (चित्रं भोजनम्) चायनीय—ग्राह्य अद्भुत सुख भोग को (ददथुः) देते हो (चोदेथाम्) और उसे अपनी ओर प्रेरित करते हो (समनसा) समान मन से—समान भाव से (रथम्-अर्वाक्-नियच्छतम्) रमणीय सुख भोग को इधर इस लोक में नियत करते हो, और (सोम्यं मधु पिबतम्) शान्त मधुर उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो अथवा स्व मधुर दर्शनरस उपासक को पिलावे।

भावार्थः—स्तुति करने वाले उपासक के लिये ज्योतिस्वरूप आनन्द-रसरूप परमात्मा अद्भुत-श्रेष्ठ भोग कराता है अपनी ओर प्रेरित करता है, समान-भाव से रमणीय सुख को इस लोक में देता है अपने मधुर दर्शनामृत को पिलाता है॥ २॥

---

१. "अश्विनो ज्योतिषाऽन्यो रसेनान्यः" [निरु० १२.१]।

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षक परमात्मा की ओर शरण—गमन करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७५५. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम्॥ १॥

पदपाठः— अस्य प्रत्नाम् अनु द्युतम् शुक्रम् दुदुह्रे अह्रयः पयः सहस्रसाम् सहस्र साम् ऋषिम्॥ १॥

अन्वयः—अस्य प्रत्नां द्युतम् सहस्रसाम्–ऋषिं पयः अह्रयः–दुदुह्रे॥

पदार्थः—(अस्य) इस ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की (प्रत्नां द्युतम्) शाश्वती अमर ज्योति को एवं (सहस्रसाम्–ऋषिं पयः) सहस्र लाभ देने वाले निर्मल निर्भ्रान्त दूधरूप मन्त्र—वेद को (अह्रयः–दुदुह्रे) अह्रत प्रज्ञा वाले—सर्वगुण सम्पन्न आदि विद्वान् दुहते हैं साक्षात् करते हैं।

भावार्थः—ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की शाश्वतिक अमृत ज्योति को और बहुत लाभ देने वाले निर्भ्रान्त दूधरूप मन्त्र ज्ञान को सर्वगुण सम्पन्न आदि विद्वान् दुहा करते हैं॥ १॥

देवता—पवमानः सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥

७५६. अयं सूर्यइवोपदृगयं सरांसि धावति। सप्त प्रवत आ दिवम्॥ २॥

पदपाठः— अयम् सूर्यः इव उपदृक् उप दृक् अयम् सरांꣳसि धावति सप्त प्रवतः आ दिवम्॥ २॥

अन्वयः—अयम् सूर्यः–इव–उपदृक् अयम् सरांसि धावति सप्त प्रवतः–आ दिवम्॥

पदार्थः—(अयम्) यह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्यः–इव–उपदृक्) सूर्य के समान स्पष्ट प्रकाशक है—साक्षात् प्रकाशमान है उपासकों के सम्मुख या हृदय में (अयम्) यह परमात्मा (सरांसि धावति) उपासकों के प्रार्थनावचनों को "सरः–वाङ् नाम" [निघं० १.११] प्राप्त होता है "धावति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (सप्त प्रवतः–आ दिवम्) परिचरणशील—उपासनाशील "सपति परिचरणकर्मा" [निघं० ३.५] नम्र स्तुतिकर्ताओं को अमृतधाम—मोक्ष तक पहुँचाता है।

भावार्थः—प्रकाशस्वरूप परमात्मा उपासकों के प्रति सूर्य के समान साक्षात् प्रकाशमान होता है उनके प्रार्थनावचनों को स्वीकार करता है तथा हृदय में नम्र स्तुति करने वाले उन उपासकों को मोक्षधाम तक पहुँचाता है अपनाता है ॥ २ ॥

७५७. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि। सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

पदपाठः— अयम् विश्वानि तिष्ठति पुनानः भुवना उपरि सोमः देवः न सूर्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—अयं सोमः-देवः विश्वानि भुवना पुनानः उपरि तिष्ठति देवः-न सूर्यः ॥

पदार्थः—(अयं सोमः-देवः) यह शान्त परमात्मा (विश्वानि भुवना पुनानः) सारे लोक लोकान्तरों को शोधने के हेतु तथा गति देने के हेतु (उपरि तिष्ठति) उनके ऊपर अधिष्ठातारूप में विराजमान है (देवः-न सूर्यः) सूर्य दिव्यलोक की भाँति।

भावार्थः—सूर्य दिव्य पदार्थ के समान शान्त परमात्मा सब लोक लोकान्तरों को शोधने और गति देने के हेतु उनके ऊपर अधिष्ठाता के रूप में विराजमान है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७५८. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

पदपाठः— एषः प्रत्नेन जन्मना देवः देवेभ्यः सुतः हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

अन्वयः—एषः-हरिः-देवः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः पवित्रे सुतः अर्षति ॥

पदार्थः—(एषः-हरिः-देवः) यह दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मदेव "भद्रः सोमः पवमानो वृषा हरिः" [काठक० ६.३] (प्रत्नेन जन्मना) पुरातन—शाश्वत प्रसिद्धि से (देवेभ्यः) जीवन्मुक्तों के 'विभक्ति व्यापयेन' (पवित्रे सुतः अर्षति) हृदयाकाश में साक्षात् होता है प्राप्त होता है।

भावार्थः—दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा शाश्वत प्रसिद्धि से जीवन्मुक्तों के हृदयाकाश में साक्षात् होकर प्राप्त है ॥ १ ॥

७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि। कविर्विप्रेण वावृधे॥ २॥

पदपाठः— एषः प्रत्नेन मन्मना देवः देवेभ्यः परि कविः विप्रेण वि प्रेण वावृधे॥ २॥

अन्वयः—एषः-देवः प्रत्नेन मन्मना देवेभ्यः-परि कविः विप्रेण वावृधे॥

पदार्थः—(एषः-देवः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (प्रत्नेन मन्मना) शाश्वत माननीय मन्त्र के द्वारा (देवेभ्यः-परि) आदि विद्वानों से—उनके उपदेश से परिप्राप्त होता है—अन्तःकरण में समझा जाता है (कविः) वह सब में कान्त—पहुँचा हुआ परमात्मा (विप्रेण वावृधे) मेधावी विद्वान् ब्रह्मा जैसे के द्वारा बढ़ाया जाता है—प्रचारित किया जाता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा शाश्वत मन्त्र—वेद के द्वारा आदि विद्वानों से उनके उपदेश देने से जाना जाता है, वह सर्वत्र प्राप्त परमात्मा मेधावी उपासक के द्वारा अन्तःकरण में बढ़ता जाता है—साक्षात् होता जाता है॥ २॥

७६०. दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे। क्रन्दं देवाँ अजीजनः॥ ३॥

पदपाठः— दुहानः प्रत्नम् इत् पयः पवित्रे परि षिच्यसे क्रन्दन् देवान् अजीजनः॥ ३॥

अन्वयः—दुहानः प्रत्नम्-इत् पयः पवित्रे परिषिच्यसे क्रन्दन् देवान्-अजीजनः॥

पदार्थः—(दुहानः) 'दुह्यमानः' कर्मणि कर्तृप्रत्ययः, वेदज्ञान से दुह्यमान—दुहा जाता हुआ हे सोम—शान्त परमात्मन्! (प्रत्नम्-इत् पयः) शाश्वत दूधरूप ही (पवित्रे परिषिच्यसे) पवित्र—हृदय में परिषिक्त किया जाता है—बिठाया जाता है (क्रन्दन् देवान्-अजीजनः) तू उपदेश देता हुआ मेरे अन्दर दिव्यगुणों को उत्पन्न करता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा वेदज्ञान से प्राप्त किया हुआ शाश्वत दूधरूप हृदय में निश्चित बैठ जाता है, वहाँ उपदेश करता हुआ दिव्यगुणों को प्रकट करता है॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (कामबन्धन से रहित या परमात्मदेव को जीवन में लाने धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७६१. उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे। पवमान विदा रयिम्॥ १॥

पदपाठः— उप शिक्ष अपतस्थुषः अप तस्थुषः भियसम् आ धेहि शत्रवे पवमान विदाः रयिम्॥ १॥

अन्वयः—पवमान अपतस्थुषः उपशिक्ष शत्रवे भियसम्–आधेहि रयिं विदा॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन्! तू (अपतस्थुषः) मेरे अन्दर अन्यथा स्थित दोषों के प्रति (उपशिक्ष) (शत्रवे भियसम्–आधेहि) मेरे अन्तःस्थल को नष्ट करने वाले काम आदि शत्रु के लिए मेरे अन्दर भय बिठा (रयिं विदा) अपना स्वरूपैश्वर्य अनुभव करा।

भावार्थः—आनन्दधारा में आने वाला परमात्मा उपासक के अन्दर अन्यथा स्थित दोषों के प्रति घृणा कराता है काम आदि शत्रु सदृश भावों के प्रति भय दिलाता है और अपने स्वरूपैश्वर्य का अनुभव कराता है॥ १॥

७६२. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्। इन्दुं देवा अयासिषुः॥ २॥

पदपाठः— उपोषुजातमप्तुरम्॥ २॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८७)

७६३. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते॥ ३॥

पदपाठः— उपास्मैगायतानरः॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६५१)

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीनों स्तुति प्रार्थना उपासना से सम्पन्न परमात्मप्राप्ति में कुशल)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७६४. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः। वनानि महिषाइव॥ १॥

पदपाठः— प्रसोमासोविपश्चितः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७८)

७६५. अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन्॥ २॥

पदपाठः— अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया वाजम् गोमन्तम् अक्षरन्॥ २॥

अन्वयः—शुक्राः-बभ्रवः ऋतस्य धारया वाजं गोमन्तम् द्रोणानि अभि-अक्षरन्॥

पदार्थः—(शुक्राः-बभ्रवः) तेजस्वी—सोम शान्तस्वरूप परमात्मा 'बहुवचन-मादरार्थम्' "सोमो वै बभ्रुः" [श० ७.२.४.२६] (ऋतस्य धारया) ऋत—अमृत की धारा से—धारा रूप में "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०] (वाजं गोमन्तम्) स्तुति वाले—स्तुति से प्राप्त अमृतभोग को (द्रोणानि) हृदयपात्र में (अभि-अक्षरन्) झिराता है।

भावार्थः—तेजस्वी शान्त परमात्मा स्तुति सम्पन्न अमृत भोग—मोक्षानन्द को उपासक के हृदयपात्र में अमृतधारारूप में झिराता है॥ २॥

७६६. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमा अर्षन्तु विष्णवे॥ ३॥

पदपाठः— सुताः इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः सोमाः अर्षन्तु विष्णवे॥ ३॥

अन्वयः—सुताः सोमाः इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः विष्णवे अर्षन्तु॥

पदार्थः—(सुताः सोमाः) उपासित शान्त परमात्मा (इन्द्राय) वाणी के लिए "अथ य इन्द्रः सा वाक्" [जै० १.११] (वायवे) मन के लिए "मनो वायुः" [काठ० १.१] (वरुणाय) प्राण के लिए "यः प्राणः स वरुणः" [गो० २.४.११] (मरुद्भ्यः) ओज—आत्मतेज के लिए "ओजो वै वीर्यं मरुतः" [जै० ३.३०९] (विष्णवे) वीर्य के लिए "वीर्यं विष्णुः" [तै० १.७.२.२३] (अर्षन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थः—उपासित शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के वाक्—वाणी, मन, प्राण, ओज—आत्मतेज, वीर्य—शारीरिक बल को प्राप्त हो इन्हें यथोचित उन्नत करे॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्र (सब का मित्र)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

७६७. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥ १॥

पदपाठः— **प्रसोमदेववीतये॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१४)

७६८. **आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।**
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः॥ २॥

पदपाठः— **आ हर्यतः अर्जुनः अत्के अव्यत प्रियः सूनुः न मर्ज्यः तम् ईम् हिन्वन्ति अपसः यथा रथम् नदीषु आ गभस्त्योः॥ २॥**

अन्वयः—हर्यतः अर्जुनः सूनुः-न प्रियः मर्ज्यः अत्के-आ-अव्यत तम्-इम् अपसः हिन्वन्ति यथा नदीषु रथं गभस्त्योः-आ॥

पदार्थः—(हर्यतः) कमनीय "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६] (अर्जुनः) जीवन में अर्जित करने योग्य या निर्मल (सूनुः-न प्रियः) पुत्र के समान स्नेहपात्र (मर्ज्यः) तथा अलङ्करणीय निज अर्चना स्तुति से प्रशंसनीय "मृजू शौचालङ्करणयोः" सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अत्के-आ-अव्यत) "अत सातत्यगमने" [भ्वादि०] निरन्तर पुनः पुनः जिसमें प्राप्त होता है उस हृदय-प्रदेश में आ जाता है प्राप्त होता है (तम्-इम्) उसे अवश्य (अपसः) कर्म वाले अभ्यासी योगाभ्यासी जन 'अत्र मत्वर्थीयोऽकारश्छान्दसः' (हिन्वन्ति) प्राप्त करते हैं अनुभव करते हैं "हिन्वन्ति प्राप्नुवन्ति" [निरु० १.२०] (यथा नदीषु रथं गभस्त्योः-आ) जैसे नदियों—जलधाराओं में जलयानों (नौका) को दोनों अरित्ररूप बाहुओं—भुजाओं में बलवान् मल्लाह 'आप्नुवन्ति' प्राप्त करते—सम्भाले रखते हैं "गभस्ती बाहुनाम" [निघं० २.४]।

भावार्थः—कमनीय स्वात्मा में अर्जित करने योग्य या निर्मल पुत्र के समान स्नेह पात्र तथा अर्चनाओं से भूषित करने प्रशंसित करने योग्य शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय में आता है, प्राप्त होता है। उसको अभ्यासी उपासकजन अनुभव करते हैं, प्राप्त करते हैं जैसे जलधाराओं में जलयान—नौका को बलवान् मल्लाह चप्पूसहित दोनों भुजाओं में सम्भाले रहते हैं॥ २॥

तृतीय तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७६९. **प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्। सुता विदथे अक्रमुः॥ १॥**

पदपाठः— **प्रसोमासोमदच्युतः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७७)

७७०. आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्। अत्यो न गोभिरज्यते॥ २॥

पदपाठः— आत् ईम् हꣳसः यथा गणम् विश्वस्य अवीवशत् मतिम् अत्यः न गोभिः अज्यते॥ २॥

अन्वयः—आत्-ईम् यथा हंसः-गणम्-अवीवशत् विश्वस्य मतिम् अत्यः-न गोभिः-अज्यते॥

पदार्थः—(आत्-ईम्) तो फिर (यथा हंसः-गणम्-अवीवशत्) जैसे हंस अन्य पक्षीगण को अपने श्वेत सुन्दरता आदि गुणों से वश करता है अपेक्षा से प्रशंसापत्र बनता है (विश्वस्य मतिम्) ऐसे यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा अपने न्याय दया आनन्द आदि गुणों में संसारभर के मतिमान् जन को 'अत्र मतुप्प्रत्ययस्य लुक् छान्दसः' वश करता है स्वप्रभाव में ले आता है तथा (अत्यः-न गोभिः-अज्यते) जैसे अतनशील घोड़ा अन्नाद्यों—दाने चारे आदि से व्यक्त—पुष्ट प्रसन्न किया जाता है ऐसे सोम—परमात्मा भी स्तुतियों से हृदय में साक्षात् किया जाता है 'उपमेयलुप्तोपमालङ्कारः'।

भावार्थः—हंस जैसे पक्षीगण को अपने गुणों से अभिभूत करता है, मोहित करता है, ऐसे परमात्मा संसार के मतिमान् मात्र को प्रभावित करता है तथा गतिशील घोड़ा जैसे दाने चारे जल से प्रसन्न पुष्ट किया जाता है, ऐसे परमात्मा स्तुतियों से हृदय में साक्षात् किया जाता है॥ २॥

७७१. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये॥ ३॥

पदपाठः— आत् ईम् त्रितस्य योषणः हरिम् हिन्वन्ति अद्रिभिः अ द्रिभिः इन्दुम् इन्द्राय पीतये॥ ३॥

अन्वयः—आत्-ईम् त्रितस्य योषणः हरिम् अद्रिभिः हिन्वन्ति इन्द्राय-इन्दुं पीतये॥

पदार्थः—(आत्-ईम्) पुनश्च (त्रितस्य) मेधा से तीर्णतम उपासक की "त्रिणस्तीर्णतमो मेधया" [निरु० ४.७] (योषणः) योषन्—मिलने वाली—समागम कराने वाली स्तुतियाँ "यू मिश्रणे....." [अदादि०] "योषा हि वाक्" [श० १.४.४.४] (हरिम्) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अद्रिभिः) आदरणीय श्रद्धा नम्रता आस्तिक भावनाओं से (हिन्वन्ति) प्राप्त करती हैं—प्राप्त कराती हैं 'अन्तर्गतणिजर्थः' (इन्द्राय-इन्दुं पीतये) आत्मा के लिए

आनन्दपूर्ण परमात्मा का पान कराने के लिए।

भावार्थः—मेधा से उत्कृष्ट बने उपासक की स्तुतियाँ दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा को श्रद्धा नम्रता आस्तिकभावनाओं के साथ आत्मा के लिए आनन्दरसपूर्ण परमात्मा का पान ज्ञान कराती हैं॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—चाक्षुषोऽग्निः (दृष्टिविज्ञान में कुशल अग्रणी उपासक) इति द्वयोः। प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी) इति तृतीयायाः॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७७२. **अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः। मधोर्धारा असृक्षत॥ १॥**

पदपाठः— **अया पवस्व देवयुः रेभन् पवित्रम् परि एषि विश्वतः मधोः धाराः असृक्षत॥ १॥**

अन्वयः—हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (देवयुः) मुमुक्षुओं को चाहने वाला उनकी हितकामना करने वाला (अया) इस उपासना से (पवस्व) प्राप्त हो (पवित्रे रेभन् विश्वतः पर्येषि) उपासक के हृदय में प्रवचन शब्द करता हुआ उसे सब प्रकार से प्राप्त हो रहा है (मधोः-धाराः-असृक्षत) तेरे द्वारा मधुरस की धारायें छोड़ी जाती हैं।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के हृदय में प्रवचन करने वाला मुमुक्षुजनों को चाहने वाला उसके सब ओर रहता है और मधुर धाराओं के समान अपना अमृतदर्शन कराता है॥ १॥

७७३. **पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या। अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः॥ २॥**

पदपाठः— **पवतेहर्यतोहरिः॥ २॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७६)

७७४. **प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः। अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥ ३॥**

पदपाठः— **प्रसुन्वानायान्धसः॥ ३॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५३)

इति द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक[१])॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः। अभि विश्वानि काव्या॥ १॥

पदपाठः— पवस्व वाचः अग्रियः सोम चित्राभिः ऊतिभिः अभि विश्वानि काव्या॥ १॥

अन्वयः—सोम अग्रियः चित्राभिः-ऊतिभिः वाचः विश्वानि काव्या अभि-पवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (अग्रियः) अग्र—हमारा अग्रणायक हुआ (चित्राभिः-ऊतिभिः) चायनीय—मंहनीय—प्रशंसनीय बलिष्ठ रक्षाओं—रक्षण क्रियाओं के द्वारा (वाचः) हमारी वाणियों को तथा (विश्वानि काव्या) हमारे समस्त ज्ञानकृत्यों आचरणों को (अभि-पवस्व) स्वाभिमुख अपनी ओर प्रेरित कर।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू अग्रणायक हुआ अपनी प्रशंसनीय—बलिष्ठ रक्षाओं—रक्षण क्रियाओं के द्वारा हमारी वाणियों को और हमारे सारे कर्मव्यवहारों आचरणों को अपनी ओर प्रेरित कर। हमारी वाणियाँ तेरे गुणगान में लगे। हमारे सारे आचरण तेरी प्राप्ति के निमित्त हों॥ १॥

७७६. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्। पवस्व विश्वचर्षणे॥ २॥

पदपाठः— त्वम् समुद्रियाः सम् उद्रियाः अपः अग्रियः वाचः ईरयन् पवस्व विश्वचर्षणे विश्व चर्षणे॥ २॥

अन्वयः—विश्वचर्षणे त्वम् अग्रियः समुद्रियाः-अपः वाचः-ईरयन् पवस्व॥

पदार्थः—(विश्वचर्षणे) हे सर्वद्रष्टा शान्त परमात्मन्! (त्वम्) तू (अग्रियः)

---

१. ''जमदग्नयः प्रज्वलिताग्नयः'' [निरु० ७.२५]।

अग्रणायक हुआ अग्रे गति देता हुआ (समुद्रियाः-अपः) मन के साथ सम्बन्ध रखने वाली—मन में होने वाली "मनो वै समुद्रः" [श० ७.५.२.५२] काम—कामनाओं को "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४.१५] (वाचः-ईरयन्) स्तुतियों की ओर प्रेरित करने के हेतु (पवस्व) पवित्र कर।

भावार्थः—हे सर्वद्रष्टा अन्तर्यामी शान्त परमात्मन्! तू अग्रणायक हो हमारी मानसिक—मन में वर्तमान कामनाओं को अपनी स्तुतियों की ओर प्रेरित करने के हेतु पवित्र कर। हमारी कामनायें संसार की ओर न जावें। संसार में न फँसाएँ, अपितु तेरी स्तुतियों में लगें॥ १॥

७७७. **तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे। तुभ्यं धावन्ति धेनवः॥ ३॥**

पदपाठः— **तुभ्य इमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे तुभ्यम् धावन्ति धेनवः॥ ३॥**

अन्वयः—कवे सोम इमा भुवना तुभ्यम् महिम्ने तस्थिरे तुभ्यं धेनवः-धावन्ति॥

पदार्थः—(कवे सोम) हे क्रान्तदर्शक—समस्त बाहिर भीतर के द्रष्टा शान्त परमात्मन् (इमा भुवना) बाहिरी लोक लोकान्तर और भीतरी इन्द्रिय संस्थान (तुभ्यम्) 'तव-विभक्तिव्यत्ययः' तेरी (महिम्ने) महिमा को दर्शाने के लिए (तस्थिरे) वर्तमान हैं और नियत हैं (तुभ्यं धेनवः-धावन्ति) तेरी महिमा दर्शाने और गाने के लिये बाहिरी वाक् विद्युतें विद्युच्छक्तियाँ और भीतरी वाणियाँ प्रगति कर रही हैं, प्रवृत्त हो रही हैं।

भावार्थः—हे व्यष्टि समष्टि के द्रष्टा शान्त परमात्मन्! समस्त लोक लोकान्तर और इन्द्रिय संस्थान तेरी महिमा दर्शाने को वर्तमान है, स्थिर है, दर्शा रही है और विद्युत्-शक्तियाँ और वाणियाँ तेरी महिमा को गा रही हैं॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (मही—पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री॥

७७८. **पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि॥ १॥**

पदपाठः— **पवस्वेन्दोवृषासुतः॥ १॥**

अन्वयः—इन्दो सुतः वृषा नः जने यशसः कृधि विश्वाः-द्विषः-अपजहि॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरस भरे आनन्दधारा वाले परमात्मन्! तू (सुतः) हृदय में साक्षात् किया (वृषा) कामनावर्षक हुआ (नः) हमें (जने) जनसमुदाय

में (यशसः) यश वाले 'अकारो मत्वर्थीयः' (कृधि) कर (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेषभावनाओं को दूर कर दे।

भावार्थः—हे आनन्दरसभरे परमात्मन्! तू हृदय में साक्षात् हुआ कामपूरक हो जनसमुदाय—जनसमाज में यशस्वी कर दे और काम-क्रोध आदि शत्रुभावनाओं को दूर कर दे॥ १॥

७७९. यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः। तवेन्दो द्युम्न उत्तमे॥ २॥

पदपाठः— यस्य ते सख्ये स ख्ये वयम् सासह्याम पृतन्यतः तव इन्दो द्युम्ने उत्तमे॥ २॥

अन्वयः—यस्य ते सख्ये वयम् पृतन्यतः सासह्याम इन्दो तव-उत्तमे द्युम्ने॥

पदार्थः—(यस्य ते) जिस तुझ शान्तस्वरूप परमात्मा के (सख्ये) सखापन में (वयम्) हम (पृतन्यतः) संघर्ष करते हुए—प्रहार करते हुए काम आदि दोषों को (सासह्याम) निरन्तर सहन करें—दबा सकते हैं (इन्दो) हे रसीले परमात्मन्! (तव-उत्तमे द्युम्ने) तेरे उत्तम द्योतमान यशोबल में हम स्थिर रहें।

भावार्थः—परमात्मा के मित्रभाव में काम आदि प्रहारक दोषों को हम दबा सकते हैं उसके उत्तम यशोबल में हम स्थिर रहें॥ २॥

७८०. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे। रक्षा समस्य नो निदः॥ ३॥

पदपाठः— या ते भीमानि आयुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे रक्ष समस्य नः निदः॥ ३॥

अन्वयः—धूर्वणे ते या भीमानि तिग्मानि आयुधा सन्ति समस्य निदः नः-रक्षा॥

पदार्थः—(धूर्वणे) हे धूर्वणि! काम आदि शत्रुओं के नाशक (ते) तेरे (या) जो (भीमानि) भयङ्कर (तिग्मानि) तीक्ष्ण (आयुधा) उपदेश शस्त्र (सन्ति) हैं (समस्य निदः) समस्त निन्दक के दबाव से (नः-रक्षा) हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप काम आदि के विनाशक परमात्मन्! तेरे जो भयङ्कर तीक्ष्ण उपदेशास्त्र हैं उनसे समस्त काम आदि के दबाव से हमारी रक्षा कर॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मारीचः कश्यपः (वासनाओं को मार देने वाली ज्योति से सम्पन्न नियन्त्रित मन से पान करने वाला[1])॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

---

१. "कश्येन पिबतीति कश्यपः, कशार्हः शासनीयः कश शासने" [अदादि.]

७८१. **वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः। वृषा धर्माणि दध्रिषे॥ १॥**

पदपाठः— **वृषासोमद्युमाँ३असि॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५०४)

७८२. **वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः। स त्वं वृषन्वृषेदसि॥ २॥**

पदपाठः— **वृष्णः ते वृष्ण्यम् शवः वृषा वनम् वृषा सुतः सः त्वम् वृषन् वृषा इत् असि॥ २॥**

अन्वयः—वृषन् ते वृष्णः शवः–वृष्ण्यम् वनं वृषा सुतः–वृषा सः–त्वम् वृषा–इत्–असि॥

पदार्थः—(वृषन्) हे सुखवर्षक शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते वृष्णः) तुझ वृषा—सुखवर्षक का (शवः–वृष्ण्यम्) बल "शवःबलम्" [निघं० २.९] सुखवर्षण निमित्त है (वनं वृषा) सम्भजन बलरूप है (सुतः–वृषा) उपासित हुआ भी सुखवर्षक है (सः–त्वम्) वह तू (वृषा–इत्–असि) सुखवर्षक ही है।

भावार्थः—हे सुखवर्षक परमात्मन्! तेरा बल सुखवर्षक है तेरा भजन गान भी सुखवर्षक है तू साक्षात् हुआ भी सुखवर्षक है तू सचमुच सुखवर्षक ही है॥ २॥

७८३. **अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः। वि नो राये दुरो वृधि॥ ३॥**

पदपाठः— **अश्वः न चक्रदः वृषा सम् गाः इन्दो सम् अर्वतः वि नः राये दुरः वृधि॥ ३॥**

अन्वयः—इन्दो अश्वः–न सं चक्रदः वृषा गाः सम् (चक्रदः) अर्वतः सम् (चक्रदः) नः राये दुरः–विवृधि॥

पदार्थः—(इन्दो) हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (अश्वः–न सं चक्रदः) घोड़े की भाँति संक्रन्दन करता है, सर्वत्र व्यापता है, व्याप रहा है। (वृषा) सुखवर्षक हुआ (गाः सं०) हमारे इन्द्रियों को भी व्याप रहा है, इन्द्रियों द्वारा तेरा प्रत्यक्ष हो रहा है। (अर्वतः सं०) हमारे मन आदि गतिशील को भी व्याप रहा है, मन आदि द्वारा तेरा भानचिन्तन हो रहा है। (नः) हमारे अभीष्ट (राये) मोक्षैश्वर्य प्राप्ति के निमित्त (दुरः–विवृधि) द्वारों को खोल दे—बाधक अज्ञान पाप आदि को हटा दे।

भावार्थः—हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! जैसे घोड़ा मार्ग में व्यापता है ऐसे तू विश्व में व्याप रहा है। हमारी इन्द्रियों में व्याप रहा है। उनसे प्रत्यक्ष हो रहा हमारे मन आदि में भी व्याप रहा है—चिन्तन ध्यान में आ रहा है। हमारे मोक्षैश्वर्य के निमित्त अज्ञान पाप को परे कर दे॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७८४. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वर्दृशम्॥ १॥

पदपाठः— वृषाह्यसिभानुना॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८०)

७८५. यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः। द्रोणे सधस्थमश्नुषे॥ २॥

पदपाठः— यत् अद्भिः परिषिच्यसे परि सिच्यसे मर्मृज्यमानः आयुभिः द्रोणे सधस्थम् सध स्थम् अश्नुषे॥ २॥

अन्वयः—यत्-आयुभिः मर्मृज्यमानः अद्भिः परिषिच्यसे द्रोणे सधस्थम्-अश्नुषे॥

पदार्थः—(यत्-आयुभिः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! जब तू उपासकजनों के द्वारा "आयवः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (मर्मृज्यमानः) पुनः पुनः साक्षात् करने के हेतु (अद्भिः) श्रद्धाभावों से "आपो वै श्रद्धा" [मै० ४.१.४] (परिषिच्यसे) परिषिक्त किया जाता है, द्रवित किया जाता है, अपनाया जाता है, तो तू (द्रोणे) हृदय में (सधस्थम्-अश्नुषे) समानस्थान को प्राप्त करता है।

भावार्थः—उपासकों द्वारा जब परमात्मा पुनः पुनः साक्षात् करने के हेतु श्रद्धाभावों से द्रवित किया जाता है—अपनाया जाता है तो हृदय में समानस्थानत्त्व को प्राप्त होता है॥ २॥

७८६. आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध। इहो ष्विन्दवा गहि॥ ३॥

पदपाठः— आ पवस्व सुवीर्यम् सु वीर्यम् मन्दमानः स्वायुध सु आयुध इह उ सु इन्दो आ गहि॥ ३॥

अन्वयः—स्वायुध इन्दो मन्दमानः सुवीर्यम्-आपवस्व इह-उ सु-आगहि ॥

पदार्थः—(स्वायुध इन्दो) हे शोभन आयुध वाले—काम आदि दोषों को सरल भाव से मिटाने वाले गुणरूप शस्त्रों वाले शान्त परमात्मन्! (मन्दमानः) स्तुत किया जाता हुआ "मन्दते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] (सुवीर्यम्-आपवस्व) शोभन—श्रेष्ठ बल को प्रेरित कर (इह-उ) यहाँ हृदय में अवश्य (सु-आगहि) भली प्रकार आ—प्राप्त हो।

भावार्थः—काम आदि को नष्ट करने के लिए शान्तादि गुण प्रभाव वाला परमात्मा अर्चित उपासित हुआ हृदय में साक्षात् आत्मबल को प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

७८७. **पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः। सखित्वमा वृणीमहे॥ १ ॥**

पदपाठः— **पवमानस्य ते वयम् पवित्रम् अभ्युन्दतः अभि उन्दतः सखित्वम् स खित्वम् आ वृणीमहे॥ १ ॥**

अन्वयः—पवित्रम्-अभ्युन्दतः ते पवमानस्य सखित्वम्-आवृणीमहे ॥

पदार्थः—(पवित्रम्-अभ्युन्दतः) पवित्रकारक आनन्दरस को क्षरित करते हुए—बहाते हुए (ते पवमानस्य) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए परमात्मा के (सखित्वम्-आवृणीमहे) सखापन मित्रभाव को हम समन्तरूप से वरते हैं—अङ्गीकार करते हैं।

भावार्थः—आत्मा को पवित्र करने वाले आनन्दरस को क्षरित करते हुए आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा की मित्रता को अवश्य अपनाना चाहिये॥ १ ॥

७८८. **ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया। तेभिर्नः सोम मृडय॥ २ ॥**

पदपाठः— **ये ते पवित्रम् उर्म्मयः अभिक्षरन्ति अभि क्षरन्ति धारया तेभिः नः सोम मृळय॥ २ ॥**

अन्वयः—सोम ये ते ऊर्मयः धारया पवित्रम्-अभिक्षरन्ति तेभिः नः मृळय ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् (ये ते) जो तेरी (ऊर्मयः) आनन्द तरङ्गें (धारया) धाराप्रवाह से निरन्तर (पवित्रम्-अभिक्षरन्ति) पवित्ररूप में अभिक्षरित होती हैं (तेभिः) उन से (नः) हमको (मृळय) सुखी कर।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा की आनन्द तरङ्गें धाराप्रवाह से निरन्तर पवित्र बह रही हैं। उनके द्वारा हम उपासकों को सुखी करता है ॥ २ ॥

७८९. स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्। ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— सः नः पुनानः आ भर रयिम् वीरवतीम् इषम् ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम सः पुनानः नः रयिम् वीरवतीम्-इषम् आ भर विश्वतः-ईशानः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (सः) वह तू (पुनानः) शान्तरूप प्राप्त होता हुआ (नः) हमारे लिए (रयिम्) मोक्षैश्वर्यरूप धन को और (वीरवतीम्-इषम्) बलवती इस लोकस्थिति को "अयं वै लोक इषमिति" [ऐ० ६.७] (आ भर) आभरित कर दे (विश्वतः-ईशानः) तू विश्व का स्वामी है।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू विश्व का स्वामी है अपनी आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ हमारे लिए मोक्षैश्वर्य को और इस लोक गुणवती स्थिति को आभरित कर दे ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन करने वाला) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

७९०. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्निंदूतंवृणीमहे ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३)

७९१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

पदपाठः— अग्निमग्निम् अग्निम् अग्निम् हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् हव्यवाहम् हव्य वाहम् पुरुप्रियम् पुरु प्रियम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हवीमभिः पुरुप्रियम् हव्यवाहम् विश्पतिम् अग्निम्-अग्निम् सदा हवन्ते ॥

पदार्थः—(हवीमभिः) आह्वानसाधन मन्त्रों से (पुरुप्रियम्) बहुतों के प्रिय या बहुत प्रिय (हव्यवाहम्) हाव भाव स्तुतिरूप भेंट को प्राप्त करने वाले—स्वीकार करने वाले (विश्पतिम्) ज्येष्ठ "ज्येष्ठो विश्पतिः" [तै० सं० २.३.३३] (अग्निम्-अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा हाँ ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (सदा) नित्य, अत एव 'अग्निम्-अग्निम्' पाठः "नित्यवीप्सयोः" [अष्टा० ८.१.४] (हवन्ते) उपासकजन आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—आह्वानसाधन मन्त्रों मननीय वचनों से बहुत प्रिय स्तुति भेंट को स्वीकार करने वाले ज्येष्ठ—सर्वश्रेष्ठ अग्रणायक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को नित्य उपासकजन आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

७९२. **अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अग्ने देवान् इह आ वह जज्ञानः वृक्तबर्हिषे वृक्त बर्हिषे असि होता नः ईड्यः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्ने वृक्तबर्हिषे जज्ञानः इह देवान्-आवह नः ईड्यः-होता-असि ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (वृक्तबर्हिषे) छिन्न प्रजा-सम्बन्ध या त्यक्तप्रजा-सम्बन्ध—पूर्ण ब्रह्मचारी या संन्यासी उपासक के लिये "बर्हिः प्रजा" [जै० १.८६] (जज्ञानः) साक्षात् होता हुआ (इह) इस जीवन में (देवान्-आवह) दिव्य गुणों को ले आ—ले आता है (नः) हमारा (ईड्यः-होता-असि) स्तुत्य—उपासनीय ग्रहण करने वाला—स्वीकार करने वाला है।

भावार्थः—गार्हस्थ्य-सम्बन्ध त्यागे हुए पूर्ण ब्रह्मचारी या संन्यासी उपासक के लिए इसी जीवन में परमात्मा दिव्य गुणों दिव्य सुखों को प्राप्त कराता है कारण कि वह उपासक का स्तुतियोग्य अपनाने वाला उपास्यदेव है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला)॥
देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरणा देने वाला और वरने अपनाने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७९३. **मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥**

पदपाठः— **मित्रम् मि त्रम् वयम् हवामहे वरुणम् सोमपीतये सोम पीतये या जाता पूतदक्षसा पूत दक्षसा ॥ १ ॥**

अन्वयः—वयम् सोमपीतये मित्रं वरुणम् हवामहे या पूतदक्षसा जाता ॥

पदार्थः—(वयम्) हम (सोमपीतये) मोक्षानन्दरसपान के लिए (मित्रं वरुणम्) संसार में शुभकर्माचरणार्थ प्रेरक शुभकर्मफलभोगार्थ अपनी ओर वरने वाले परमात्मा को (हवामहे) स्मरण करते हैं—उपासित करते हैं (या पूतदक्षसा जाता) जो हमारे लिये दो धर्म वाले मित्ररूप में और वरुण रूप में पवित्र बल वाले प्रसिद्ध स्वतः सिद्ध हैं।

भावार्थः—हम मोक्षानन्दरसपान के लिए उस परमात्मा का स्मरण करें, उसकी उपासना करें, जो दो धर्मों वाला एक शुभ कर्म करणार्थ संसार में हमें प्रेरित करता है। पुनः शुभ कर्मों का मोक्षफलभोगार्थ अपनी ओर वरण करने वाला है। उक्त दोनों धर्म उसके पवित्र—निर्दोष—नितान्त प्रशंसनीय और स्वतःसिद्ध प्रसिद्ध हैं॥ १ ॥

७९४. **ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे॥ २ ॥**

पदपाठः— **ऋतेन यौ ऋतावृधौ ऋत वृधौ ऋतस्य ज्योतिषः पतीइति। ता मित्रा मि त्रा वरुणा हुवे॥ २ ॥**

अन्वयः—यौ मित्रावरुणौ तौ ऋतेन ऋतावृधौ ऋतस्य ज्योतिषः पती ता हुवे॥

पदार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण परमात्मा (तौ) वे (ऋतेन) यथार्थ ज्ञान से वर्तमान हैं (ऋतावृधौ) यथार्थ ज्ञान के वर्धक हैं (ऋतस्य ज्योतिषः) यथार्थ ज्ञानज्योति के (पती) पालक हैं—पालन करने वाले हैं (ता) उन्हें (हुवे) मैं आमन्त्रित करता हूँ।

भावार्थः—संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरक और मोक्ष कर्मफलभोगार्थ अङ्गीकारकर्ता परमात्मा यथार्थ ज्ञान से वर्तमान है, यथार्थ ज्ञान का वर्धक है। यथार्थ ज्ञान ज्योति के पालन कराने वाला है, उससे जीवन धारण करना चाहिये॥ २ ॥

७९५. **वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **वरुणः प्राविता प्र आविता भुवत् मित्रः मि त्रः विश्वाभिः ऊतिभिः करताम् नः सुराधसः सु राधसः॥ ३ ॥**

अन्वयः—वरुणः-मित्रः विश्वाभिः-ऊतिभिः अविता प्रभुवत् नः सुराधसः करताम्॥

पदार्थः—(वरुणः-मित्रः) मोक्षकर्मभोगार्थ वरने वाला तथा संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरित करने वाला परमात्मा (विश्वाभिः-ऊतिभिः) समस्त रक्षणविधियों द्वारा (अविता प्रभुवत्) रक्षक प्रभूत है—रक्षक होने में समर्थ है (नः सुराधसः करताम्) हमें शोभन धन वाले—शोभनसिद्धि वाले कर दे।

भावार्थः—मित्ररूप वरुणरूप परमात्मा समस्त रक्षाविधियों से रक्षक होने में समर्थ है। हमें शोभन धन वाले और शोभन सिद्धि वाले कर देता है, जब कि हम उसके उपासक हो जावें॥ ३॥

तृतीय चतूर्ऋच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

७९६. **इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।**
इन्द्रं वाणीरनूषत॥ १॥

पदपाठः— **इन्द्रमिद्गाथिनोबृहत्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १९८)

७९७. **इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ २॥**

(देखो पदपाठ एवं अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५९७)

७९८. **इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ ३॥**

(देखो पदपाठ एवं अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५९८)

७९९. **इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ४॥**

पदपाठः— **इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे आ सूर्यम् रोहयत् दिवि वि गोभिः अद्रिम् अ द्रिम् ऐरयत्॥ ४॥**

अन्वयः—इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे सूर्यं दिवि-आरोहयत् गोभिः-अद्रिम्-वि-ऐरयत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घ दर्शन—बहुत

काल तक तथा बहुत दूर दर्शन के लिए (सूर्यं दिवि-आरोहयत्) सूर्य को द्युलोक में आरोपित किया—आस्थापित किया, तथा (गोभिः-अद्रिम्-वि-ऐरयत्) जो सूर्य रश्मियों द्वारा मेघ को जल वर्षाने के लिये नीचे बिखेर देता है।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने दीर्घकाल तक तथा दूर तक दिखाने के लिये सूर्य दर्शनसाधन द्युलोक में ऊपर स्थापित किया है तथा वह जलवृष्टि के लिये मेघ को नीचे बिखेरता है ॥ ४ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

८००. **इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे। धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रे अग्ना नमः बृहत् सुवृक्तिम् सु वृक्तिम् आ ईरयामहे धिया धेनाः अवस्यवः ॥ १ ॥**

अन्वयः—अवस्यवः इन्द्रे-अग्ना बृहत्-नमः सुवृक्तिम् एरयामहे धिया धेनाः ॥

पदार्थः—(अवस्यवः) हम रक्षण चाहने वाले उपासकजन (इन्द्रे-अग्ना) ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा के निमित्त 'अग्ना' आकारादेशश्छान्दसः (बृहत्-नमः) बहुत नम्रभाव—आत्मस्नेह अनुराग तथा (सुवृक्तिम्) शोभन वर्जन—मन से वासनात्याग को (एरयामहे) भेंट देते हैं (धिया धेनाः) कर्म के साथ वाणियों—गुणकीर्तन को भी भेंट ५ते हैं।

भावार्थः—रक्षण चाहने वाले उपासक ऐश्वर्यवान् अग्रणेता परमात्मा के निमित्त बहुत आत्मस्नेह तथा वासनारहित मन—शुद्ध मनोभाव तथा वाणी से गुणकीर्तन एवं उत्तमकर्म—उत्तम आचरण को भेंट दें तो वह अवश्य रक्षा करे ॥ १ ॥

८०१. **ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये। सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥**

पदपाठः— **ता हि शश्वन्तः ईडते इत्था विप्रासः वि प्रासः ऊतये सबाधः स बाधः वाजसातये वाज सातये ॥ २ ॥**

अन्वयः—इत्था शश्वन्तः-विप्रासः ऊतये ता हि ईडते वाजसातये सबाधः ॥

पदार्थः—(इत्था) सचमुच "इत्था सत्यनाम" [निघं० ३.१०] (शश्वन्तः-विप्रासः) बहुत विप्र—मेधावी विद्वान् (ऊतये) रक्षा के लिए (ता हि ईडते) उन ऐश्वर्यवान् और अग्रणायक परमात्मा को ही स्तुत करते हैं (वाजसातये) अमृत अन्नभोग प्राप्ति के लिए (सबाधः) समान बाध पीड़ा वाले होकर।

भावार्थः—यह सत्य है कि उपासकजन एक साथ बाधा पीड़ा या संकट आ जाने पर सब दशा में परमात्मा की शरण लेते हैं ॥ २ ॥

८०२. ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे। मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥

पदपाठः— ता वाम् गीर्भिः विपन्युवः प्रयस्वन्तः हवामहे मेधसाता मेध साता सनिष्यवः ॥ ३ ॥

अन्वयः—विपन्यवः प्रयस्वन्तः सनिष्यवः ता वाम् मेधसाता हवामहे ॥

पदार्थः—(विपन्यवः) हम स्तुति करने वाले (प्रयस्वन्तः) स्तुतिरूप भेंट वाले (सनिष्यवः) सम्भजन करने वाले—उपासकजन (ता वाम्) उन तुम (मेधसाता) अध्यात्मयज्ञ में सेवन करने योग्य परमात्मा को (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं।

भावार्थः—हम स्तोता स्तुति भेंट देने वाले उपासकजन अध्यात्मयज्ञ में सेवनीय उस ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशवान् अग्रणेता परमात्मा को आमन्त्रित करें ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वारुणिर्भृगुर्जमदग्निर्वा (वरुणविद्याकुशल तेजस्वीजन या प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ शान्त परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८०३. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः। विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

पदपाठः— वृषापवस्वधारया ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४६९)

८०४. तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम्। हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

पदपाठः— तम् त्वा धर्त्तारम् ओण्योः पवमान स्वर्दृशम् हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—पवमान तं त्वा स्वर्दृशम् ओण्योः-धर्त्तारम् वाजेषु वाजिनम् हिन्वे ॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन्! (तं त्वा स्वर्दृशम्) उस तुझ सुखदर्शक (ओण्योः-धर्त्तारम्) द्युलोक पृथिवीलोक के धर्त्ता को "ओण्यौ

द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०] (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० ३.१९३] (वाजिनम्) अमृत अन्न वाले परमात्मा को (हिन्वे) प्राप्त करूँ।

भावार्थः—हे आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन्! उस तुझ द्युलोक पृथिवीलोक के कर्त्ता धर्त्ता अमृत अन्नभोगों के निमित्त अमृत अन्नभोगों के स्वामी को प्राप्त होऊँ॥ २ ॥

८०५. **अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया। युजं वाजेषु चोदय॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अया चित्तः विपा अनया हरिः पवस्व धारया युजम् वाजेषु चोदय॥ ३ ॥**

अन्वयः—अया-अनया विपा धारया चित्तः हरिः युजम् वाजेषु चोदय॥

पदार्थः—(अया-अनया) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! इस प्रगतिमय—(विपा धारया) स्तुतिरूप वाणी से ''धारा वाङ्नाम'' [निघं० १.११] (चित्तः) संचेतित हुआ—प्रसन्न हुआ हमारी ओर कृपायमाण हुआ (हरिः) दुःखापहरणकर्त्ता सुखाहरणकर्त्ता बना (युजम्) युक्त—मुझ अपने से युक्त हुए को (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त (चोदय) प्रेरित कर।

भावार्थः—परमात्मा प्रगतिमय स्तुतिरूप वाणी से कृपायमाण हुआ दुःखापहरणकर्त्ता सुखाहरणकर्त्ता बना अपने साथ युक्त—योगी उपासक को अमृत भोगों के निमित्त प्रेरित करता है॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—उपमन्युः (परमात्मा का उपमनन करने वाला उपासना करने वाला)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ शान्त परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री॥

८०६. **वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम्। इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम्॥ १ ॥**

पदपाठः— **वृषा शोणः अभिकनिक्रदत् अभि कनिक्रदत् गाः नदयन् एषि पृथिवीम् उत द्याम् इन्द्रस्य इव वग्नुः आ शृण्वे आजौ प्रचोदयन् प्र चोदयन् अर्षसि वाचम् आ इमाम्॥ १ ॥**

अन्वयः—गाः-अभिक्रन्दत् वृषा शोणः पृथिवीम्-उत द्यां नदयन्-एषि इन्द्रस्य वग्नुः-इव आश्रृण्वे इमां वाचम्-आजौ प्रचोदयन्-आ-अर्षसि॥

पदार्थः—(गाः-अभिक्रन्दत्) उपासक आत्मा जब आरम्भ सृष्टि में परमात्मन्! तेरी स्तुतियाँ करता है, तब हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वृषा शोणः) सुखवर्षक—कामनापूरक स्वज्ञान से प्रकाशमान हुआ (पृथिवीम्-उत द्यां नदयन्-एषि) ज्ञान का प्रवचन करता हुआ प्राण और उदान को हृदय को प्राप्त होता है "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४.३.१.२२] तब (इन्द्रस्य वग्नुः-इव) विद्युत् के स्तयित्नु मेघ में शब्द की भाँति (आश्रृण्वे) वह उपासक सुनता है 'पुरुषव्यत्ययः,' हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू जिस (इमां वाचम्-आजौ प्रचोदयन्-आ-अर्षसि) इस वाणी—कल्याणी वाणी—वेद को प्रेरित प्रकाशित करने के हेतु जीवन संग्राम स्थल संसार या आजवन या महत्त्वपूर्ण हृदयस्थान में समन्तरूप से प्राप्त होता है "परमं वा एतन्महो यदाजिः" [जै० २.४०५]।

भावार्थः—आरम्भसृष्टि के उपासक जब परमात्मा की स्तुतियाँ करते हैं तो शान्तस्वरूप परमात्मा सुखवर्षक स्वज्ञानप्रकाशस्वरूप बन उस के प्राण और उदान को उनसे पूरित हृदय देश को प्रत्येक श्वास प्रश्वास के साथ आता है, प्रवचन करता है। उसे उपासक सुनते हैं। इस कल्याणी वाणी वेद को प्रेरित करने के हेतु तू समन्तरूप जीवनसंग्रामस्थल संसार में या आजवन या महत्त्वपूर्ण हृदयस्थान में समन्तरूप से प्राप्त होता है॥ १॥

८०७. **रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।**
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः॥ २॥

पदपाठः— **रसाय्यः पयसा पिन्वमानः ईरयन् एषि मधुमन्तम् अꣳशुम् पवमान सन्तनिम् सम् तनिम् एषि कृण्वन् इन्द्राय सोम परिषिच्यमानः परि सिच्यमानः॥ २॥**

अन्वयः—पवमान सोम रसाय्यः पयसा पिन्वमानः मधुमन्तम्-अंशुम्-ईरयन्-एषि परिषिच्यमानः इन्द्राय सन्तनिं कृण्वन्-एषि॥

पदार्थः—(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए शान्तस्वरूप परमात्मन्! (रसाय्यः) उपासनारस योग्य (पयसा) उपासनारस के द्वारा "रसो वै पयः" [श० ४.४.४.८] (पिन्वमानः) सेवन किया जाता हुआ "पिवि सेवने" [भ्वादि०] (मधुमन्तम्-अंशुम्-ईरयन्-एषि) कामभाव वाले कामना वाले मन को "सर्वे वै कामा मधु" [ऐ० आ० १.१.३] "मनो ह वाऽअंशुः" [श० ११.५.९.२] उत्कृष्ट करता हुआ उपासक को प्राप्त होता है तथा (परिषिच्यमानः)

उपासनारस से परितृप्त किया जाता हुआ (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (सन्तनिं कृण्वन्-एषि) प्राण—प्राणशक्ति को जीवन को भी सुसम्पन्न करता हुआ आता है।

भावार्थः—आनन्दधारा में आने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा उपासनारस प्राप्त करने योग्य पात्र उपासनारस के द्वारा सेवन किया जाता हुआ कामना विषय वाले मन को उत्कृष्ट करता हुआ उपासक को प्राप्त होता है तथा उपासनारस से तृप्त हुआ प्रसन्न हुआ परमात्मा उपासक आत्मा के लिये प्राणशक्ति जीवन को भी सुसम्पन्न बनाता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८०८. **एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम्। परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **एव पवस्व मदिरः मदाय उदग्राभस्य उद ग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् वध स्नुम् परि वर्णम् भरमाणः रुशन्तम् गव्युः नः अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम मदिरः उदग्राभस्य मदाय वधस्नुं नमयन् पवस्व एव सिक्तः रुशन्तं वर्णं भरमाणः परिअर्ष नः-गव्युः परि ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (मदिरः) हर्षकर हुआ (उदग्राभस्य मदाय) उपासनारस ग्रहण कराने वाले उपासक के हर्ष के लिए (वधस्नुं नमयन् पवस्व एव) प्रहार-प्रसारक कामभाव को नमता हुआ निर्बल करता हुआ अवश्य आनन्दधारा में प्राप्त हो (सिक्तः) उपासनारस से पूरित—तृप्त हुआ (रुशन्तं वर्णं भरमाणः) प्रकाशमान स्वरूप को धारण करता हुआ (परिअर्ष) भली भाँति प्राप्त हो (नः-गव्युः परि) हमारी स्तुतियों को चाहता हुआ भली भाँति प्राप्त हो।

भावार्थः—हर्षप्रद शान्तस्वरूप परमात्मा उपासनारस प्रदान करने वाले उपासक के हर्ष के लिए उस नाशकारी काम आदि शत्रु को विलीन करता हुआ प्राप्त होता है तथा उपासनारस से तृप्त—प्रसन्न हुआ प्रकाशमान स्वरूप को धारण करता हुआ प्राप्त होता है। हम उपासकों की स्तुतियों को चाहने वाला सम्यक् प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड—प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न या ज्ञानबल को धारण करने वाला)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

८०९. **त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वामिद्धिहवामहे॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३४)

८१०. **स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।**
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ २॥

पदपाठः— **सः त्वम् नः चित्र वज्रहस्त वज्र हस्त धृष्णुया महः स्तवानः अद्रिवः अ द्रिवः गाम् अश्वम् रथ्यम् इन्द्र सम् किर सत्रा वाजम् न जिग्युषे॥ २॥**

अन्वयः—चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः-अद्रिवः सः-त्वं स्तवानः नः रथ्यं गाम्-अश्वम् सत्रा वाजम् न सङ्किर जिग्युषे॥

पदार्थः—(चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः-अद्रिवः) हे चायनीय दर्शनीय, प्राणों से वर्जित कराने वाले ओज ही हाथ जिसका है "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] धर्षणशील 'याच्प्रत्ययः सम्बोधने' महान् विभु आनन्दधनवन् परमात्मन्! (सः-त्वं स्तवानः) वह स्तुत किया जाता हुआ (नः) हमारे लिए (रथ्यं गाम्-अश्वम्) देहरथ-सम्बन्धी गो—ऋषभ प्राण को "प्राणो हि गौः" [श० ४.३.४.२५] और वीर्य को "वीर्यं वा अश्वः" [श० २.१.४.२३] (सत्रा) साथ (वाजम्) बल को (न सङ्किर) सम्प्रति भरपूर दे "न सम्प्रत्यर्थे प्रतिभागं दीधिम-भागंमनुध्यांयोम" [निरु० ६.८] (जिग्युषे) संसारसंघर्ष को जीतने के लिए।

भावार्थः—हे दर्शनीय पापनिवारक ओजरूप हाथों वाले धर्षणशील परमात्मन्! तू स्तुति में लाया हुआ हमारे देह में प्राण, वीर्य, बल को भी सम्प्रति संसारसंघर्ष में जीतने वाले भरपूर प्रदान कर॥ २॥

द्वितीय द्वृयच

ऋषिः—काण्वः प्रस्कण्वः (मेधावी का पुत्र अतिमेधावी उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

८११. **अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो**
मघवा पुरूवसुः सहस्त्रेणेव शिक्षति॥ १॥

पदपाठः— **अभिप्रवःसुराधसम्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३५)

८१२. **शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।**
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥ २॥

पदपाठः— **शतानीका शत अनीका इव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे गिरेः इव प्र रसाः अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः पुरु भोजसः ॥ २ ॥**

अन्वयः—धृष्णुया दाशुषे वृत्राणि हन्ति शतानीका-इव प्रजिगाति अस्य पुरुभोजसः दत्राणि गिरेः-रसाः-इव प्रपिन्वरे ॥

पदार्थः—(धृष्णुया) धर्षणशील परमात्मा (दाशुषे) स्वात्मसमर्पण कर्त्ता उपासक के "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २.३.६२] इत्यत्र 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि वक्तव्यम्' (वृत्राणि) पापों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (हन्ति) नष्ट कर देता है (शतानीका-इव प्रजिगाति) जैसे सैकड़ों सैनिक बलों को सेनानायक पूर्णरूप से जीत लेता है तथा (अस्य पुरुभोजसः) इस बहुत पालनकर्ता परमात्मा के (दत्राणि) सुखद भोग्य दान (गिरेः-रसाः-इव प्रपिन्वरे) पर्वत के नदी सोते जैसे "रसा नदी" [निरु० ११.२५] भूमि को सींचते हैं, तृप्त करते हैं। ऐसे उपासक को तृप्त करते हैं।

भावार्थः—आत्मसमर्पणकर्ता उपासक के पापों का नाश परमात्मा ऐसे कर देता है, जैसे सेनानायक शत्रुसैनिकबलों को जीत लेता नष्ट कर देता है। पुनः बहुत पालनकर्ता विविध सुखदान उपासक को ऐसे तृप्त करते हैं, जैसे पर्वत के नदी सोते भूमि को सींचते तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला[1])॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

८१३. **त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः। स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वामिदाह्योनरः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३०२)

८१४. **मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः। तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **मत्स्व सुशिप्रिन् सु शिप्रिन् हरिवः तम् ईमहे त्वया भूषन्ति वेधसः तव श्रवाꣳसि उपमानि उप मानि उक्थ्य सुतेषु इन्द्र गिर्वणः गिः वनः ॥ २ ॥**

---

१. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.९२]

अन्वयः—सुशिप्रिन् हरिवः-उक्थ्य गिर्वणः-इन्द्र मत्स्व तम्-ईमहे त्वया वेधसः-भूषन्ति सुतेषु तव उपमानि श्रंवासि॥

पदार्थः—(सुशिप्रिन् हरिवः-उक्थ्य गिर्वणः-इन्द्र) हे सुन्दर विभुगति वाले दुःखापहरण सुखाहरण शक्ति वाले स्तुतियों से सेवनीय प्रशंसनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (मत्स्व) हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हो (तम्-ईमहे) उस तुझ को हम चाहते हैं (त्वया वेधसः-भूषन्ति) तेरे सहारे से मेधावी उपासक ''वेधाः-मेधावीनाम'' [निघं० ३.१५] ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं (सुतेषु) समस्त उपासनारसप्रसङ्गों में (तव) तेरे (उपमानि श्रंवासि) ऊपर मान कराने वाले श्रवणों को सुनते रहें।

भावार्थः—विभुगतिमान् दुःखहारी सुखकारी तथा स्तुतियों से सेवनीय प्रशंसनीय ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होता है जब कि उसे हम चाहते हैं, उसकी स्तुतियाँ करते हैं। परमात्मा के आश्रय से मेधावी उपासकजन मोक्षैश्वर्य के भागी हो जाते हैं, अतः इस प्रकार ऊपर मान कराने वाले, जीवन्मुक्त बनाने वाले परमात्मविषयक श्रवणों को हम सुनते रहें॥ २॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८१५. **यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।**
देवावीरघशंसहा॥ १॥

पदपाठः— **यस्तेमदोवरेण्यः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७०)

८१६. **जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे। गोषातिरश्वसा असि॥ २॥**

पदपाठः— **जघ्निः वृत्रम् अमित्रियम् अ मित्रियम् सस्निः वाजम् दिवेदिवे दिवे दिवे गोषातिः गो सातिः अश्वसाः अश्व साः असि॥ २॥**

अन्वयः—अमित्रियं वृत्रं जघ्निः दिवे दिवे वाजं सस्निः गोषातिः-अश्वसाः-असि॥

पदार्थः—(अमित्रियं वृत्रं जघ्निः) अमित्र न मित्र—शत्रु के समान आचरण करते हुए पाप को नष्ट करता है (दिवे दिवे वाजं सस्निः) दिन दिन प्रतिदिन अध्यात्मबल का दाता है (गोषातिः-अश्वसाः-असि) वाणी—स्तुति को सेवन—स्वीकार करने

वाला आशुव्यापी मन—मनोभाव का सेवन करने—स्वीकार करने वाला है।

भावार्थः—शत्रु के समान आचरण करने वाले पाप को परमात्मन् तू नष्ट करता है। आध्यात्मिक बल को प्रदान करता है। पश्चात् हमारी स्तुतियाँ स्वीकार करता है और मनोभाव को भी अपनाता है॥ २॥

८१७. **सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः। सीदं च्छ्येनो न योनिमा॥ ३॥**

पदपाठः— **सम्मिश्लः सम् मिश्लः अरुषः भुवः सूपस्थाभिः सु उपस्थाभिः न धेनुभिः सीदन् श्येन न योनिम् आ॥ ३॥**

अन्वयः—सूपस्थाभिः-धेनुभिः-न सम्मिश्लः-अरुषः-भुवः श्येनः-न योनिम्-आसीदन्॥

पदार्थः—(सूपस्थाभिः-धेनुभिः-न) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू सुव्यवस्थित स्तुतिवाणियों से सम्प्रति "धेनुः-वाङ्नाम" [निघं० १.११] (सम्मिश्लः-अरुषः-भुवः) संयुक्त सम्भाव को प्राप्त हो रोचमान हृदय में साक्षात् हो जाता है (श्येनः-न योनिम्-आसीदन्) भास—बाज पक्षी की भाँति प्रशंसनीय गतिमान् हो अपने घर में विराजमान हो जाता है।

भावार्थः—परमात्मा उत्तम स्तुतियों से स्तुत किया हुआ हृदय में साक्षात् भासमान होता है जैसे प्रशंसनीय गतिमान् भास—बाज पक्षी अपने घर में आ विराजता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नहुषो ययातिर्मानवो वा (जीवन्मुक्त या मननकुशल उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥
छन्दः—अनुष्टुप्॥

८१८. **अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति। पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥ १॥**

पदपाठः— **अयम्पूषारयिर्भगः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४६)

८१९. **समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः। सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः॥ २॥**

पदपाठः— **सम् उ प्रियाः अनूषत गावः मदाय घृष्वयः सोमासः कृण्वते पथः पवमानासः इन्दवः॥ २॥**

अन्वयः—प्रियाः-घृष्वयः-गावः उ सम्-अनुषत इन्दवः पवमानासः सोमासः पथः कृण्वते ॥

पदार्थः—(प्रियाः-घृष्वयः-गावः) हे प्यारी परस्पर संघर्ष करती हुई एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर स्तुतिवाणियो! तुम सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के हर्ष आनन्द प्राप्ति के लिए (उ सम्-अनुषत) अवश्य सम्यक् उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को स्तुत करो यतः (इन्दवः पवमानासः सोमासः) आनन्दरस भरा धारारूप में प्राप्त होता हुआ सोम शान्त परमात्मा 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' हम स्तोताओं उपासकों के लिये (पथः कृण्वते) जीवनमार्गों को सम्पन्न करता है।

भावार्थः—हे एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर स्तुति करने वाली प्यारी वाणियो! तुम मेरे हर्ष आनन्द प्राप्त करने के लिए शान्तस्वरूप परमात्मा की स्तुति करो, वह आनन्दरस भरा धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा हम स्तोताओं—उपासकों के लिए जीवनमार्गों को सम्पन्न करता है ॥ २ ॥

८२०. **य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्। यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥ ३ ॥**

पदपाठः— यः ओजिष्ठः तम् आ भर पवमान श्रवाय्यम् यः पञ्च चर्षणीः अभि रयिम् येन वनामहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—पवमान यः-ओजिष्ठः तं श्रवाय्यम्-आभर यः पञ्च चर्षणीः-अभि येन रयिं वनामहे ॥

पदार्थः—(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! (यः-ओजिष्ठः) जो तेरा सर्वोत्तमरस—आनन्दरस है (तं श्रवाय्यम्-आभर) उस श्रवणीय—अङ्गीकार करने योग्य—अपने अन्दर समाने योग्य को हमारे अन्दर आभरित कर (यः पञ्च चर्षणीः-अभि) जो पाँच मनुष्यों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद—वनवासी जनों—मनुष्य मात्र को "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघं० २.३] अभि—अभिप्राप्त—करने योग्य अध्यात्मरस है (येन) जिसके द्वारा (रयिं वनामहे) हम पुष्ट—मुक्त जीवन "पुष्टं वै रयिः" [श० २.३.४.१३] सेवन कर सकें।

भावार्थः—हे मेरे प्यारे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरा जो सर्वोत्तम आनन्दरस है अपने अन्दर समाविष्ट करने योग्य को हमारे अन्दर आभरित कर दे जो मनुष्यमात्र को धारण करने योग्य है। परमात्मदर्शन या परमात्मश्रवण करने का अधिकार मनुष्यमात्र—वनवासी तक को है जिस से मुक्तजीवन बना सके ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भार्गवः कविः (तेजस्वी से सम्बद्ध क्रान्तदर्शी विद्वान्)॥

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥

छन्दः—अनुष्टुप्॥

८२१. **वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्यविशन्मनीषिभिः॥ १॥**

पदपाठः— **वृषामतीनाम्पवतेविचक्षणः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५९)

८२२. **मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत्। त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन्॥ २॥**

पदपाठः— **मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविः नृभिः यतः परि कोशान् असिष्यदत् त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरन् इन्द्रस्य वायुम् सख्याय स ख्याय वर्द्धयन्॥ २॥**

अन्वयः—मनीषिभिः-नृभिः-यतः पूर्व्यः कविः कोशान् परि-असिष्यदत् त्रितस्य-इन्द्रस्य मधु नाम जनयन् सख्याय वायुं वर्धयन् पवते॥

पदार्थः—(मनीषिभिः-नृभिः-यतः) मननशील मुमुक्षुओं के द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] योगाभ्यास से साधा ध्याया हुआ (पूर्व्यः कविः) शाश्वतिक सर्वज्ञ शान्तस्वरूप परमात्मा (कोशान् परि-असिष्यदत्) हृदय-अवकाशों को पूरित करता है (त्रितस्य-इन्द्रस्य मधु नाम जनयन्) "त्रितः-त्रिस्थान इन्द्रः" [निरु० ९.२५] स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर में वर्तमान जीवात्मा या स्तुति प्रार्थना उपासना में प्रवृत्त उपासक आत्मा के नमाने वाले मधुर आनन्दरस को उत्पन्न करता हुआ झिराता हुआ (सख्याय वायुं वर्धयन् पवते) अपने साथ मित्रता के लिए तथा आयु—परम आयु को बढ़ाने के हेतु "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २.४.३] प्राप्त होता है।

भावार्थः—मननशील मुमुक्षु द्वारा ध्याया हुआ शाश्वतिक सर्वज्ञ शान्त स्वरूप परमात्मा उनके हृदयों में समा जाता है, बस जाता है। तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों में रहने वाले या स्तुति प्रार्थना उपासना में प्रवृत्त उपासक आत्मा के नमाने वाले मधुररस को प्रकट करता हुआ तथा चुआता हुआ अपने साथ मित्रता कराने के लिए एवं परम आयु मोक्ष वाले को बढ़ाने के हेतु प्राप्त होता है॥ २॥

८२३. **अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्। अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः॥ ३॥**

पदपाठः— **अयम् पुनानः उषसः अरोचयत् अयम् सिन्धुभ्यः अभवत् उ लोककृत् लोक कृत् अयम् त्रिः सप्त दुदुहानः आशिरम् आ शिरम् सोमः हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अयं सोमः पुनानः–उषसः–अरोचयत् सिन्धुभ्यः–लोककृत्–अभवत् अयं त्रिः सप्त–आशिरं दुदुहानः हृदे मत्सरः–चारु पवते ॥

पदार्थः—(अयं सोमः) यह शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः–उषसः–अरोचयत्) अध्येषित हुआ ध्याया हुआ ज्ञानप्रकाशधाराओं को चमका देता है (सिन्धुभ्यः–लोककृत्–अभवत्) प्राणों के लिए "प्राणो वै सिन्धुः" [श० ८.५.२.४] प्रतिष्ठा करने वाला है "इम उ लोकाः प्रतिष्ठा" [श० ८.३.१.१०] (अयं त्रिः सप्त–आशिरं दुदुहानः) यह परमात्मा स्तुति प्रार्थना उपासना में सृप्त चला हुआ "सप्त सृप्तः" [निरु० ४.२५] आनन्द आश्रय को दोहन करता हुआ (हृदे मत्सरः–चारु पवते) हृदय के लिए हर्षकर हो सुन्दर रूप में प्राप्त होता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा ध्याया हुआ ज्ञानज्योतियों को प्रकाशित करता है। प्राणों को यथावत् प्रतिष्ठित करता है। स्तुति प्रार्थना उपासना में चलाया हुआ, आनन्द आश्रय को दोहन करता हुआ, हृदय के लिये हर्षकर सुन्दर रूप में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८२४. **एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **एवाह्यसिवीरयुः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३७)

८२५. **एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥**

पदपाठः— **एव रातिः तुविमघ तुवि मघ विश्वेभिः धायि धातृभिः अध चित् इन्द्र नः सचा ॥ २ ॥**

अन्वयः—तुविमघ–इन्द्र विश्वेभिः–धातृभिः रातिः–धायि अध–एव चित्–नः सच ॥

पदार्थः—(तुविमघ-इन्द्र) हे बहुत प्रकार धनस्वामिन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तुझ से (विश्वेभिः-धातृभिः) सब धारणा ध्यान करने वाले उपासकजन (रातिः-धायि) अध्यात्म सम्पत्ति—अमरता धारते हैं (अध-एव चित्-नः सच) ऐसे फिर हमारा भी सहायक बन।

भावार्थः—बहुविध धनस्वामिन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! जैसे धारणा ध्यान करने वाले उपासकजन तुझ अमरता रूप सम्पत्ति को धारते, प्राप्त करते हैं, वैसे अब हमें भी उस अमरतारूप सम्पत्ति प्रदान करने में हमारा सहायक बन॥ २॥

८२६. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥ ३॥

पदपाठः— मा उ सु ब्रह्मा इव तन्द्रयुः भुवः वाजानाम् पते मत्स्व सुतस्य गोमतः॥ ३॥

अन्वयः—वाजानां पते ब्रह्मा-इव तन्द्रयुः सु-मा-उ भुवः गोमतः सुतस्य मत्स्व॥

पदार्थः—(वाजानां पते) हे अमृत अन्नभोगों के स्वामिन्! तू (ब्रह्मा-इव) 'ब्रह्मणे' ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण के लिए अपने उपासक के लिए जैसे 'ब्रह्मणे-अत्र चतुर्थीविभक्तेर्लुक्' तू (तन्द्रयुः) तन्द्रा प्राप्त उपेक्षायुक्त (सु-मा-उ भुवः) सुनिश्चित नहीं कभी होता है अतः (गोमतः सुतस्य मत्स्व) स्तुति वाले निष्पादित उपासनारस के उपहार को पाकर प्रसन्न हो।

भावार्थः—हे अमृतभोगों के स्वामिन् परमात्मन्! तू ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण के लिए जैसे अमृतभोग देने में कभी भी निश्चय तन्द्रायुक्त—उपेक्षाकारी नहीं होता ऐसे ही नम्र वाणियों से उपासनारस को स्वीकार करने में भी उपेक्षाकारी नहीं होता है॥ ३॥

पञ्च तृच

ऋषिः—माधुच्छन्दसो जेता (मधुच्छन्दाः से सम्बद्ध इन्द्रिय विजयी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

८२७. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥ १॥

पदपाठः— इन्द्रंविश्वाअवीवृधन्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४३)

८२८. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते। त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम्॥ २॥

पदपाठः— **सख्ये स ख्ये ते इन्द्रवाजिनः मा भेम शवसः पते त्वाम् अभि प्र नोनुमः जेतारम् अपराजितम् अ पराजितम्॥ २॥**

अन्वयः—शवसस्पते-इन्द्र ते सख्ये वाजिनः मा भेम त्वाम्-अपराजितं जेतारम् प्र नोनुमः॥

पदार्थः—(शवसस्पते-इन्द्र) हे बल के स्वामिन्! ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव में (वाजिनः) बलवान् होते हुए—आत्मबल वाले होते हुए हम (मा भेम) नहीं भय करते हैं (त्वाम्-अपराजितं जेतारम्) तुझ पराजित न होने वाले जैता—विजेता—समर्थ को हम (प्र नोनुमः) पुनः पुनः प्रणाम करते हैं—तेरी ओर नमते हैं—तेरी उपासना करते हैं।

भावार्थः—सर्वबलवान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा की मित्रता में उपासकजन बलवान् होकर निर्भय हो जाते हैं, अतः उस अभयशरण समर्थ अपराजित की पुनः पुनः उपासना करनी चाहिये॥ २॥

८२९. **पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः। यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्॥ ३॥**

पदपाठः— **पूर्वीः इन्द्रस्य रातयः न वि दस्यन्ति ऊतयः यदा वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यः मंहते मघम्॥ ३॥**

अन्वयः—यदा स्तोतृभ्यः गोमतः-वाजस्य मघं मंहते इन्द्रस्य पूर्वीः रातयः-ऊतयः न विदस्यन्ति॥

पदार्थः—(यदा स्तोतृभ्यः) जब स्तोता-उपासकों के लिए (गोमतः-वाजस्य मघं मंहते) स्तुति वाले स्तुतिविषयक अध्यात्मबल के प्रतीकाररूप—पुरस्काररूप धन—आनन्दप्रद धन को इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा देता है "मघं मंहतेदानकर्माः" [निघं० ३.२०] तो (इन्द्रस्य पूर्वीः) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के प्राचीन शाश्वतिक (रातयः-ऊतयः) दान तथा रक्षण (न विदस्यन्ति) नहीं क्षीण होते हैं।

भावार्थः—जब ऐश्वर्यवान् परमात्मा अपने स्तोताओं उपासकों के लिए स्तुतिविषयक अध्यात्मबल के प्रतीकाररूप पुरस्काररूप आनन्दप्रद धन को देता है, तो उस परमात्मा की शाश्वतिक दानभावनाओं और रक्षणक्रियाओं का अन्त नहीं होता, निरन्तर चलती रहती हैं॥ ३॥

इति तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८३०. एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा॥ १॥

पदपाठः— एते असृग्रम् इन्द्रवः तिरः पवित्रम् आशवः विश्वानि अभि सौभगा सौ भगा॥ १॥

अन्वयः—एते-आशवः-इन्दवः तिरः पवित्रम्-असृग्रम् विश्वानि सौभगा-अभि॥

पदार्थः—(एते-आशवः-इन्दवः) 'अत्र सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' यह व्यापनशील आनन्दरस भरा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (तिरः पवित्रम्-असृग्रम्) अन्तर्हित—अन्दर "तिरो दधे—तिरो अन्तर्दधाति" [निरु० १२.३२] "तिरोऽन्तर्धौ" [अष्टा० १.४.७०] पवित्र हृदय में सृजा जाता है—प्रकट—प्रत्यक्ष किया जाता ध्यानी उपासकों द्वारा (विश्वानि सौभगा-अभि) सारे सुभग धर्मों को प्राप्त करने के लिए।

भावार्थः—उपासक आनन्दरसपूर्ण व्यापनशील शान्त परमात्मा को अन्दर हृदय में साक्षात् करते हैं समस्त सौभाग्यप्राप्ति को लक्ष्य करके॥ १॥

८३१. विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः। त्मना कृण्वन्तो अर्वतः॥ २॥

पदपाठः— विघ्नन्तः वि घ्नन्तः दुरिता दुः इता पुरु सुगा सु गा तोकाय वाजिनः त्मना कृण्वन्तः अर्वतः॥ २॥

अन्वयः—वाजिनः दुरिता विघ्नन्तः तोकाय पुरु सुगा त्मना-अर्वतः कृण्वन्तः॥

पदार्थः—(वाजिनः) अमृत अन्नभोगों वाला "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] सोम शान्त परमात्मा (दुरिता विघ्नन्तः) दुःख अज्ञान पापों को विशेषरूप से नष्ट करता हुआ (तोकाय पुरु सुगा) निकेतन—शरीरस्थान के लिए "तुज

निकेतने'' [चुरादि०] बहुत सुगतियों सुखसाधनों को तथा (त्मना-अर्वतः कृण्वन्तः) 'आत्मनः—आकारादेशः शसि' आत्माओं को पौरुष वाले—बलवान् करता हुआ ''पुमांसोऽर्वन्तः'' [श० ३.२.४.७] प्राप्त होता है।

भावार्थः—अमृतभोगों वाला सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा मन के अज्ञान पाप दुःख को नष्ट करता हुआ शरीरस्थान के सुगमन—सुखसाधनों को स्थिर करता हुआ और आत्मा को बलवान्—आत्मबलवान् बनाता हुआ प्राप्त होता है॥ २॥

८३२. **कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्। इडामस्मभ्यं संयतम्॥ ३॥**

पदपाठः— **कृण्वन्तः वरिवः गवे अभि अर्षन्ति सुष्टुतिम् सु स्तुतिम् इडाम् अस्मभ्यम् संयतम् सम् यतम्॥ ३॥**

अन्वयः—गवे वरिवः सुष्टुतिम् अस्मभ्यम् इडां संयतम् कृण्वन्तः अभ्यर्षन्ति॥

पदार्थः—(गवे वरिवः सुष्टुतिम्) वाणी के लिए बोलने का अवकाश ''अन्तरिक्षं वै वरिवः'' [श० ८.५.२.५] तथा उत्तम स्तुति करने का गुण एवं (अस्मभ्यम्) मह्यम्—''अस्मदो द्वयोश्च'' [अष्टा० १.२.५९] मेरे—मुझ उपासक आत्मा के लिए (इडां संयतम्) श्रद्धा को ''श्रद्धा-इडा'' [श० ११.२.७.२०] 'सम्पूर्वकयमधातोः क्विपि रूपम्' और संयतम्—संयमशक्ति को (कृण्वन्तः) सम्पादन करता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होता है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा अपने उपासक आत्मा में अपने प्रति श्रद्धा और संयमशक्ति तथा उसकी वाणी में भाषणावकाश और अपनी स्तुतिप्रवृत्ति का सम्पादन करता हुआ प्राप्त होता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक)॥

८३३. **राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे॥ १॥**

पदपाठः— **राजा मेधाभिः ईयते पवमानः मनौ अधि अन्तरिक्षेण यातवे॥ १॥**

अन्वयः—पवमानः-राजा मनौ-अधि मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातवे ईयते॥

पदार्थः—(पवमानः-राजा) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला सर्वत्र राजमान—

विराजमान तथा दीप्यमान प्रकाशमान परमात्मा (मनौ–अधि) मननशील उपासक में (मेधाभिः) मेधा—बुद्धि—विविध बुद्धियों—विविध मननक्रियाओं के द्वारा ''मेधा मतौ धीयते'' [निरु० ३.१९] मति में रहने वाली मननप्रक्रियाओं से (अन्तरिक्षेण यातवे) हृदयाकाश में प्राप्त होने को (ईयते) धारा जाता है माना जाता है।

भावार्थः—आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाला प्रकाशमान परमात्मा हृदयाकाश में सिद्ध प्राप्त होने को मननशील उपासक में मननक्रियाओं से माना—जाना जाता है॥१॥

८३४. आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर। सुष्वाणो देववीतये॥ २॥

पदपाठः— आ नः सोम सहः जुवः रूपम् न वर्चसे भर सुष्वाणः देववीतये देव वीतये॥ २॥

अन्वयः—सोम सुष्वाणः नः जुवः सहः–रूपं न वर्चसे देववीतये आभर॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (सुष्वाणः) उपासना द्वारा साक्षात् हुआ (नः) हमारी (जुवः सहः–रूपं न) वाणी के ''जूरसीत्येतद्ध वा अस्या वाच एकं नाम'' [श० ३.२.४.११] बल ''सहः–बलनाम'' [निघं० २.९] को निरूपणप्रकार भावनामय को भी (वर्चसे) आत्मतेज के सम्पन्न करने के लिए (देववीतये) तुझ देव की प्राप्ति के लिए (आभर) आभरित कर—पूर्णरूप से भर दे।

भावार्थः—परमात्मा उपासकों को स्वसाक्षात्कार के निमित्त उनकी वाणी में वदनशक्ति और भावमय स्तवनप्रकार को आत्मतेज के लिए और अपनी प्राप्ति के लिए पूरा भर देता है॥ २॥

८३५. आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्। वहा भगत्तिमूतये॥ ३॥

पदपाठः— आ नः इन्दो शतग्विनम् शत ग्विनम् गवाम् पोषम् स्वश्व्यम् सु अश्व्यम् वह भगत्तिम् ऊतये॥ ३॥

अन्वयः—इन्दो नः गवां पोषम् शतग्विनम् स्वश्व्यम् भगत्तिम् ऊतये आवह॥

पदार्थः—(इन्दो) हे दीप्तिमन् आनन्दरसवन् परमात्मन्! (नः) हमारे लिए (गवां पोषम्) वाणियों—स्तुतियों के फल को (शतग्विनम्) सैंकड़ों स्तुतियों से निष्पन्न को (स्वश्व्यम्) सुन्दर विषयव्याप्तिशील मनोभाव को (भगत्तिम्) मोक्षैश्वर्यदानप्रवृत्ति को (ऊतये) रक्षा के लिए (आवह) समन्तरूप से प्रवाहित

कर।

भावार्थः—दीप्तिमन आनन्दरस भरे परमात्मन्! तू हमारे सैकड़ों वार के स्तुतिफल तथा सुन्दर मन के भाव को और अपनी मोक्षदानप्रवृत्ति को प्राप्त करा जिससे हम सुरक्षित रहें॥ ३॥

तृतीय पञ्चर्च

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८३६. तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः। चारुं सुकृत्ययेमहे॥ १॥

पदपाठः— तम् त्वा नृम्णानि बिभ्रतम् सधस्थेषु सध स्थेषु महः दिवः चारुम् सुकृत्यया सु कृत्यया ईमहे॥ १॥

अन्वयः—तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतम् महः-दिवः चारुं सुकृत्यया-ईमहे॥

पदार्थः—(तं त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! उस तुझे (नृम्णानि बिभ्रतम्) उपासकनरों के नमाने वाले सुखसाधनों के धारण करते हुए को (महः-दिवः) महान् मोक्षधाम के समानस्थानों—सुखस्थानों में (चारुं सुकृत्यया-ईमहे) चरणशील व्यापने वाले सुन्दर को हम उपासना से चाहते हैं सङ्गति में चाहते हैं।

भावार्थः—महान् मोक्षधाम के समानस्थानों में उपासकजनों को झुकाने वाले धनों के धारण करने वाले उस तुझ व्यापनशील सुन्दर परमात्मा को उपासना से प्राप्त करना चाहते हैं॥ १॥

८३७. संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्। शतं पुरो रुरुक्षणिम्॥ २॥

पदपाठः— संवृक्तधृष्णुम् संवृक्त धृष्णुम् उक्थ्यम् महामहिव्रतम् महा महिव्रतम् मदम् शतम् पुरः रुरुक्षणिम्॥ २॥

अन्वयः—संवृक्तधृष्णुम् महामहिव्रतम् उक्थ्यं मदम् शतं पुरः-रुरुक्षणिम्॥

पदार्थः—(संवृक्तधृष्णुम्) सम्यक् पृथक् हो जाते हैं धर्षणशील काम आदि जिस से ऐसे (महामहिव्रतम्) महान्—अनेक महत्त्वपूर्ण कर्म जिसके हैं ऐसे—(उक्थ्यं मदम्) प्रशंसनीय—हर्षकर—आनन्दप्रद (शतं पुरः-रुरुक्षणिम्) बहुत—असंख्य उपासकों आत्माओं को "आत्मा वै पूः" [श० ७.५.२.२१] रोहण—आरोहण—मोक्ष में आरूढ़ कराने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा को हम प्राप्त करें।

भावार्थः—जो शान्तस्वरूप परमात्मा हम उपासकों के अन्दर से काम आदियों को पृथक् कर देता है तथा जो महान् प्रशंसनीय कर्म करने वाला आनन्दप्रद है और

जो असंख्य उपासक आत्माओं को मोक्ष में स्थापित करता है उसको हम उपासक प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

८३८. अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥

पदपाठः— अतः त्वा रयिः अभि अयत् राजानम् सुक्रतो सु क्रतो दिवः सुपर्णः सु पर्णः अव्यथी अ व्यथी भरत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सुक्रतो-अतः-रयिः-त्वा राजानम्-अभ्ययत् सुपर्णः-अव्यथी दिवः-भरत् ॥

पदार्थः—(सुक्रतो-अतः-रयिः-त्वा राजानम्-अभ्ययत्) हे उत्तम प्रज्ञानवन् परमात्मन्! "क्रतुः प्रज्ञाननाम" [निघं० २.९] 'सम्बोधने मतुपो लुक् छान्दसः' इस कारण कि मोक्षैश्वर्य तुझ प्रकाशमान को प्राप्त है—तेरे अधीन है (सुपर्णः-अव्यथी दिवः-भरत्) सम्यक् धर्मपालक उपासक पुरुष "पुरुषः सुपर्णः" [श० ७.४.२.५] व्यथारहित हो—बिना कष्ट के मोक्षधाम से धारण कर लेता है—प्राप्त कर लेता है।

भावार्थः—हे सुप्रज्ञानवन् परमात्मन्! तुझ राजमान स्वामी को मोक्षैश्वर्य प्राप्त है अतः तेरा उपासक मनुष्य बिना व्यथा—अनायास मोक्षधाम से मोक्षैश्वर्य को प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

८३९. अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे। अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥

पदपाठः— अध हिन्वानः इन्द्रियम् ज्यायः महित्वम् आनशे अभिष्टिकृत् अभिष्टि कृत् विचर्षणिः वि चर्षणिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—अध ज्यायः-इन्द्रियं हिन्वानः महित्वम्-आनशे अभिष्टिकृत्-विचर्षणिः ॥

पदार्थः—(अध) पुनः (ज्यायः-इन्द्रियं हिन्वानः) ज्येष्ठ इन्द्रिय अर्थात् मन को प्रेरित करता हुआ (महित्वम्-आनशे) मेरे द्वारा पूजन सत्कार को प्राप्त होता है (अभिष्टिकृत्-विचर्षणिः) तू कामना पूर्ण करने वाला विशेष कृपादृष्टि रखने वाला है।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के मन या अन्तःकरण को प्रेरित करता हुआ—कामनापूरक और कृपादृष्टि करने वाला होने से हमारे द्वारा पूजा

पात्रता को प्राप्त है ॥ ४ ॥

८४०. विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्। गोपामृतस्य विर्भरत्॥ ५ ॥

पदपाठः— विश्वस्मै इत् स्वः दृशे साधारणम् रजस्तुरम् गोपाम् ऋतस्य विः भरत्॥ ५ ॥

अन्वयः—विश्वस्मै-इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ऋतस्य गोपाम् विः-भरत्॥

पदार्थः—(विश्वस्मै-इत् स्वर्दृशे) सब के लिए निश्चय सुख दिखाने के लिए (साधारणं रजस्तुरम्) समानरूपी दोषनाशक (ऋतस्य गोपाम्) अमृत के रक्षक परमात्मा को ''ऋतममृतमित्याह'' [जै० २.१६०] (विः-भरत्) ज्ञानवान् उपासक ''वी गति......'' [अदादि०] अपने अन्दर धारण करता है।

भावार्थः—समस्त जन को सुख दिखाने के लिए जो समानरूप दोषनाशक अमृत का रक्षक परमात्मा है उसको ज्ञानवान् उपासक अपने अन्दर धारण करता है॥ ५ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—कश्यपः (अध्यात्मदर्शी उपासक[१])॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८४१. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि॥ १ ॥

पदपाठः— इषेपवस्वधारया॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५०५)

८४२. पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः। हरे सृजान आशिरम्॥ २ ॥

पदपाठः— पुनानः वरिवः कृधि ऊर्जम् जनाय गिर्वणः गिः वनः हरे सृजानः आशिरम् आ शिरम्॥ २ ॥

अन्वयः—गिर्वणः-हरे जनाय पुनानः वरिवः-ऊर्जं कृधि आशिरं सृजान॥

पदार्थः—(गिर्वणः-हरे) हे स्तुतिवाणियों से वननीय सेवनीय दुःखापहरण सुखाहरणकर्ता परमात्मन्! (जनाय) उपासकजन के लिए (पुनानः) उपासक के

---

१. ''कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्'' [तै० आ० १.८.८]

हृदय में प्राप्त होने के हेतु (वरिवः-ऊर्जं कृधि) भोगधन और अमृतरस—मोक्षानन्द को सम्पादन कर (आशिरं सृजान) मुझे अपने आश्रय में आनन्द प्राप्त करा।

भावार्थः—स्तुतियों से प्राप्त होने वाले दुःखहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मन्! तू उपासकजन के लिए उसके हृदय में प्राप्त होने के हेतु भोगधन और अमृतरस को मुझे प्राप्त करा॥ २॥

८४३. पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्। द्युतानो वाजिभिर्हितः॥ ३॥

पदपाठः— पुनानः देववीतये देव वीतये इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् निः कृतम् द्युतानः वाजिभिः हितः॥ ३॥

अन्वयः—वाजिभिः-हितः द्युतानः पुनानः देववीतये इन्द्रस्य निष्कृतं याहि॥

पदार्थः—(वाजिभिः-हितः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू वाजी—छन्दी—छन्द—अर्जन स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा "छन्दांसि वै वाजिः" [मै० १.१०] "छन्दति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४] हित—ध्याया हुआ (द्युतानः पुनानः) उपासकों को प्रकाशमान और पवित्र करता हुआ (देववीतये) देवों—जीवन्मुक्तों की गति—गमनस्थली—मुक्ति है उसके लिए (इन्द्रस्य निष्कृतं याहि) अध्यात्मयज्ञ के यजमान आत्मा के संस्कृत—सुपात्र हृदय को प्राप्त हो "यद् वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १.१.४]।

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू अर्चना करने वाले उपासना करनेवाले उपासकों के द्वारा ध्याया हुआ, उपासकों के अन्दर प्रकाशित हुआ, उन्हें पवित्र करता हुआ, मुक्ति प्राप्ति के लिए आत्मा के सुसज्जित अन्तःपात्र को प्राप्त होता है॥ ३॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८४४. अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः॥ १॥

पदपाठः— अग्निना अग्निः सम् इध्यते कविः गृहपतिः गृह पतिः युवा हव्यवाट् हव्य वाट् जुह्वास्यः जुहु आस्यः॥ १॥

अन्वयः—अग्निना अग्निः-समिध्यते कविः गृहपतिः युवा हव्यवाट् जुह्वास्यः॥

पदार्थः—(अग्निना) आत्मरूप अग्नि से—आत्मसमर्पण से (अग्निः-समिध्यते) सर्वप्रकाशक परमात्मा स्वात्मा के अन्दर प्रकाशित होता है "अयं त

इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेद्धस्व" [आश्व० १.१०.१२] जो कि (कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड के स्वामी परमात्मा "प्रजापतिरेव गृहपतिरासीत्" [श० १२.१.१.१] (युवा) सदा यौवनसम्पन्न "अकामो....तमेव विद्वान्....अजरं युवानम्" [अथर्व० १०.८.४४] (हव्यवाट्) स्तुतिरूप भेंट को वहन करने वाला "किं मे हव्यमहृणानो जुषेत" [ऋ० ७.८६.२] (जुह्वास्यः) जुहू—वाणी "वाग्—जुहूः" [तै० आ० २.१७.२] स्तुति फेंकने—प्रेरित करने का साधन जिसके लिए है वह ऐसा परमात्मा है।

भावार्थः—उपासक के आत्मा द्वारा—आत्मसमर्पण से उपासक के अन्दर परमात्मा अग्नि प्रकाशित हो जाता है जो कि क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ, ब्रह्माण्डस्वामी सदा युवा स्तुति भेंट को स्वीकार करने वाला और वाणी जिसके लिए स्तुति प्रेरित करने का साधन है ॥ १ ॥

८४५. **यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव॥ २ ॥**

पदपाठः— **यः त्वाम् अग्ने हविष्पतिः हविः पतिः दूतम् देव सपर्यति तस्य स्म प्राविता प्र अविता भव ॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्ने देव यः हविष्पतिः त्वां दूरं सपर्यति तस्य स्म प्र-अविता भव ॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव! (यः) जो (हविष्पतिः) अपने मन का स्वामी—मन को निरुद्ध कर चुका हुआ उपासक "मनो हविः" [तै० आ० ३.६.१] (त्वां दूरं सपर्यति) तुझ प्रेरक को सेवित करता है—तेरी उपासना करता है (तस्य स्म) उसका निश्चय (प्र-अविता भव) तू प्रबल रक्षक है।

भावार्थः—हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! जो मन को निरुद्ध कर तेरी उपासना करता है उसकी तू पूर्णरूप से रक्षा करता है ॥ २ ॥

८४६. **यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृडय॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यः अग्निम् देववीतये देव वीतये हविष्मान् आविवासति आ विवासति तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥**

अन्वयः—पावक यः-हविष्मान् देववीतये अग्निम्-आविवासति तस्मै मृळय ॥

पदार्थः—(पावक) हे शोधक परमात्मन्! (यः-हविष्मान्) जो मनस्वी उपासक (देववीतये) देवस्थली—मुक्तिप्राप्ति के लिए (अग्निम्-आविवासति)

तुझ अग्नि—परमात्मा की समन्तरूप से उपासना करता है (तस्मै मृळय) उसके लिये मुक्ति देता है ''मृळतिर्दानकर्मा'' [निरु० १०.१५]।

भावार्थः—हे पवित्र करनेवाले परमात्मन्! जो मनस्वी उपासक मुक्तिधामप्राप्ति के लिए तेरी उपासना करता है उसके लिए तू अवश्य मुक्ति प्रदान करता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)॥ देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक एवं वरणकर्ता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

८४७. **मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता॥ १॥**

पदपाठः— **मित्रम् मि त्रम् हुवे पूतदक्षम् पूत दक्षम् वरुणम् च रिशादसम् धियम् घृताचीम् साधन्ता॥ १॥**

अन्वयः—पूतदक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं च हुवे धियं घृताचीम् साधन्ता हुवे॥

पदार्थः—(पूतदक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं च हुवे) पवित्रबल वाले प्रेरक परमात्मा को तथा हिंसकों के भक्षणकर्ता या हिंसकों के क्षयकर्ता अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा को जो कि (धियं घृताचीम्) प्रज्ञा—मनोभावना को ''धी प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९] वाणी—स्तुतिवाणी को ''वाग् वै घृताची'' [ऐ० आ० १.१.४] (साधन्ता) साधने—सफल बनाने वाला है (हुवे) उसे आमन्त्रित करता हूँ—स्मरण करता हूँ।

भावार्थः—मैं संसार में कर्मार्थ प्रेरक मनोभावना को सिद्ध—सफल करने वाले तथा अपनी ओर वरने वाले स्तुतिवाणी को सफल बनाने वाले परमात्मा को निरन्तर अपने अन्दर आमन्त्रित करूँ—स्मरण करूँ॥ १॥

८४८. **ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे॥ २॥**

पदपाठः— ऋतेन मित्रा मि त्रा वरुणौ ऋतावृधौ ऋत वृधौ ऋतस्पृशा ऋत स्पृशा क्रतुम् बृहन्तम् आशाथेइति॥ २॥

अन्वयः—ऋतावृधा ऋतस्पृशा मित्रावरुणौ बृहन्तं क्रतुम् ऋतेन-आशाथे॥

पदार्थः—(ऋतावृधा) सत्य—सत्याचरणकर्ता के वर्धक (ऋतस्पृशा) सत्य—सत्याचरणकर्ता के स्पर्शी—सङ्गतिकर्ता (मित्रावरुणौ) प्रेरक और वरने—अङ्गीकार करने वाला परमात्मा (बृहन्तं क्रतुम्) महान् ज्ञानयज्ञ को या अध्यात्मयज्ञ को (ऋतेन-आशाथे) अपने अमृतस्वरूप से प्राप्त होते हैं ''ऋतममृतमित्याह'' [जै०

२.१६०]।

भावार्थः—सत्याचरणकर्ता—सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी का वर्धक तथा सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी का स्पर्शकर्ता सङ्गी प्रेरक और अङ्गीकार करने वाला परमात्मा महान् अध्यात्मयज्ञ को अपने अमृतस्वरूप से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८४९. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— कवीइति नः मित्रा मि त्रा वरुणा तुविजातौ तुवि जातौ ऊरुक्षया उरु क्षया दक्षम् दधातेइति अपसम् ॥ ३ ॥

अत्र द्विवचनं गौणम्, धर्मद्वययुक्तः परमात्मा गृह्यते।

अन्वयः—तुविजातौ उरुक्षया मित्रावरुणा नः-दक्षम्-अपसं दधाते ॥

पदार्थः—कवी क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (तुविजातौ) बहुत प्रकार से साक्षात् होने वाला (उरुक्षया) महान् से महान् पदार्थों का निवास जहाँ हो ऐसा परमात्मा (मित्रावरुणा) प्रेरक और अङ्गीकारकर्ता (नः-दक्षम्-अपसं दधाते) हम उपासकों के लिए आत्मबल और कर्मशक्ति को धारण कराता है।

भावार्थः—अन्तर्यामी सर्वज्ञ तथा बहुत प्रकार से साक्षात् होने वाला महान् से महान् पदार्थों का निवासस्थान परमात्मा हम उपासकों के लिए आत्मबल और कर्मशक्ति को धारण कराता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)॥ देवता—मरुद्गणः-इन्द्रश्च (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उससे सम्बद्ध जीवन्मुक्त)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८५०. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥

पदपाठः— इन्द्रेण सम् हि दृक्षसे सञ्जग्मानः सम् जग्मानः अबिभ्युषा अ बिभ्युषा मन्दूइति समानवर्चसा समान वर्चसा ॥ १ ॥

अन्वयः—अबिभ्युषा-इन्द्रेण सञ्जग्मानः-हि सं दृक्षसे मन्दू समानवर्चसा ॥

पदार्थः—(अबिभ्युषा-इन्द्रेण सञ्जग्मानः-हि सं दृक्षसे) भयरहित करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा के साथ उपासना द्वारा संगत हुआ तू हे जीवन्मुक्त उपासकगण सदृश—उस जैसा हो रहा है "मरुतो देवविशः" [श० २.५.१.१२] (मन्दू समानवर्चसा) यतः अब दोनों समान तेज वाले और आनन्दवान् आनन्दप्रद

हो रहे हैं "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि" [यजु० १२.२] "रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" [तै० उप० ब्रह्म० अनु० ६]।

भावार्थः—भयरहित करने वाले परमात्मा के साथ उपासना द्वारा जीवन्मुक्त उपासकगण संगत हो सदृश प्रतीत होते हैं क्योंकि दोनों समान तेज वाले और आनन्दपूर्ण आनन्दमय हो जाते हैं॥ १॥

८५१. **आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम्॥ २॥**

पदपाठः— **आत् अह स्वधाम् स्व धाम् अनु पुनः गर्भत्वं एरिरे आ इरिरे दधानाः नाम यज्ञियम्॥ २॥**

अन्वयः—आत्-अह स्वधाम्-अनु पुनः-गर्भत्वम्-एरिरे यज्ञियं नाम दधानाः॥

पदार्थः—(आत्-अह) बस, अन्तर—परमात्मसदृश गुण प्राप्त कर मुक्त गण (स्वधाम्-अनु) अपनी धृति—स्थिति के अनुसार (पुनः-गर्भत्वम्-एरिरे) पुनः परमात्मा के गर्भभाव को प्राप्त हो जाते हैं उसके अन्दर विराजमान हो जाते हैं (यज्ञियं नाम दधानाः) सङ्गमनीय आत्मसमर्पण नम्रभाव को धारण करते हुए।

भावार्थः—उपासना से उपासकजन उपास्य परमात्मा के गुण धारण कर अपने धृति स्थिति—स्व ज्ञान गति के अनुसार परमात्मा के अन्दर पुनः प्राप्ति अनुभव करते हैं जैसे संसार में आने से पूर्व मोक्ष में रहते थे सङ्गमनीय आत्मसमर्पणरूप नम्रीभाव को धारण करते हुए॥ २॥

८५२. **वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु॥ ३॥**

पदपाठः— **वीडु चित् आरुजत्नुभिः आ रुजत्नुभिः गुहा चित् इन्द्र वह्निभिः अविन्दः उस्रियाः उ स्रियाः अनु॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्र वीडु चित्-आरुजत्नुभिः वह्निभिः गुहा चित् उस्रियाः-अनु-अविन्द॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वीडु चित्-आरुजत्नुभिः) 'वीडुभिः-चित्' भिस्विभक्तेर्लुक् "सुपां सुलुक्...." [अष्टा० ७.१.३९] बल वाले—आत्मबल वाले ही समन्तरूप से अज्ञान का भंजन करने वालों—(वह्निभिः) अपने ज्ञानसन्देशवाहकों मरुतों—आरम्भसृष्टि में उत्पन्न मुक्तात्मा अग्नि आदि परम ऋषियों के द्वारा (गुहा चित्) 'गुहायां चित्' उनके हृदय में निश्चय (उस्रियाः-अनु-अविन्द) ज्ञानरश्मियाँ—वेदवाणियाँ संसारी जनों को प्राप्त कराईं।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने आरम्भसृष्टि में अध्यात्मबलशाली अज्ञाननाशक उपासक मुक्तों अग्नि आदि परम ऋषियों के द्वारा—उनके हृदय में ज्ञानरश्मियों मन्त्रवाणियों को संसारी जनों के लिये पहुँचाया है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न को धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८५३. **ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥**

पदपाठः— ता हुवे ययोः इदम् पप्ने विश्वम् पुरा कृतम् इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति न मर्द्धतः ॥ १ ॥

अन्वयः—ता-इन्द्राग्नी हुवे ययोः पुरा कृतं विश्वं पप्ने न मर्द्धतः ॥

पदार्थः—(ता-इन्द्राग्नी हुवे) मैं उन दोनों नामों से कहे जाने वाले ऐश्वर्यवान् बलशाली एवं ज्ञानप्रकाशवान् अग्रणेता परमात्मा को आमन्त्रित करता हूँ (ययोः पुरा कृतं विश्वं पप्ने) जिसका प्रथम किया—रचा विश्व—संसार प्रशंसित किया जाता है (न मर्द्धतः) जो पीड़ा नहीं देता है 'मृध हिंसायाम्-छान्दसः।'

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा का रचा प्रवाह से पुराना संसार प्रशंसित किया जाता है वह परमात्मा उपास्य देव है जो उपासकों को पीड़ित नहीं करता है ॥ १ ॥

८५४. **उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥**

पदपाठः— उग्रा विघनिना वि घनिना मृधः इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति हवामहे ता नः मृडातः ईदृशे ॥ २ ॥

अन्वयः—उग्रा मृधः-विघनिना इन्द्राग्नी हवामहे ता नः-ईदृशे मृडातः ॥

पदार्थः—(उग्रा) उभरे बल वाले (मृधः-विघनिना) संग्राम करने वाले काम आदि को विशेषरूप से मारने वाले (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा को (हवामहे) हम अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं (ता नः-ईदृशे मृडातः) वह ऐसा संग्राम संकट में हमारी रक्षा करता है ''मृडयतिरुपदयाकर्मा'' [निरु० १०.१६]।

भावार्थः—ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा उपासक के अन्दर संग्राम मचाने वाले काम आदि शत्रुओं को सर्वथा नष्ट करता है और हमारी रक्षा करता है ॥ २ ॥

८५५. हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती। हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

पदपाठः— हथः वृत्राणि आर्या हथः दासानि सत्पती सत् पतीइति हथः विश्वाः अप द्विषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सत्पती आर्या वृत्राणि अपहथः दासानि–अपहथः विश्वाः–द्विषः–अपहथः ॥

पदार्थः—(सत्पती) सत्पुरुष—उपासक के रक्षक ऐश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मन्! (आर्या वृत्राणि) अरि—अमित्र—शत्रु के अन्दर होने वाले पापों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७] (अपहथः) हटा दो—दूर कर दो (दासानि–अपहथः) दास—निष्कर्म जन या कर्मविनाशक जन के अन्दर होने वाले पापों को हटा दो दूर कर दो (विश्वाः–द्विषः–अपहथः) सारी द्वेषभावनाओं को हटा दो—दूर कर दो।

भावार्थः—उपासक का रक्षक परमात्मा उपासक के प्रति शत्रु की हिंसावृत्ति, कर्मविनाशक प्रवृत्ति और द्वेषी की द्वेषभावनाओं को दूर कर देता है तथा उपासक के अन्दर से किसी के भी प्रति शत्रु जैसी वृत्ति वैरवृत्ति दास जैसी हानि करने की प्रवृत्ति और द्वेषभावनाओं को उठने नहीं देता है ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र सब को मित्ररूप में देखने वाला उपासक) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा) ॥ छन्दः—बृहती ॥

८५६. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ १ ॥

पदपाठः— अभिसोमासआयवः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१८)

८५७. तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्। अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ २ ॥

पदपाठः— तरत् समुद्रम् सम् उद्रम् पवमानः ऊर्मिणा राजा देवः ऋतम् बृहत् अर्ष मित्रस्य मि त्रस्य वरुणस्य धर्म्मणा प्र हिन्वानः ऋतम् बृहत् ॥ २ ॥

अन्वयः—देवः पवमानः-राजा बृहत्-ऋतम् समुद्रम्-ऊर्मिणा तरत् मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा ऋतं बृहत्-हिन्वानः प्रार्ष ॥

पदार्थः—(देवः पवमानः-राजा) सुखदाता प्राप्त होने वाला सोम राजा शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान परमात्मा (बृहत्-ऋतम्) महान् अमृतरूप "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०] (समुद्रम्-ऊर्मिणा तरत्) हृदयाकाश को "अयं समुद्रः....यदन्तरिक्षम्" [जै० १.१६५] अपनी ज्योतिः—तरङ्ग से प्राप्त होता है (मित्रस्य वरुणस्य) प्राण अपान के "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [तां० ६.१०.५.९] (धर्मणा) धर्म से—प्राणसमान अपानसमान बनकर (ऋतं बृहत्-हिन्वानः) महान् अमृत—मोक्ष की ओर उपासक को प्रेरित करता हुआ—उन्नत करता हुआ (प्रार्ष) साक्षात् होता है।

भावार्थः—सुखदाता प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान महान् अमृत परमात्मा हृदयावकाश में अपनी ज्योतितरङ्ग से प्राप्त होता है प्राण अपान के समान बन उपासक को महान् अमृत मोक्ष की ओर प्रेरित करने के हेतु साक्षात् होता है ॥ २ ॥

८५८. नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥ ३ ॥

पदपाठः— नृभिः येमानः हर्यतः विचक्षणः वि चक्षणः राजा देवः समुद्र्यः सम् उद्र्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—नृभिः-येमाणः हर्यतः विचक्षणः राजा देवः समुद्र्यः ॥

पदार्थः—(नृभिः-येमाणः) मुमुक्षुओं के द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] यम आदि साधना में आता हुआ (हर्यतः) कमनीय "हर्यति प्रेप्साकर्मा" [निरु० २.१०] (विचक्षणः) विशेषद्रष्टा (राजा) सर्वत्र राजमान (देवः) सुखदाता परमात्मा (समुद्र्यः) हृदयावकाश में साक्षात् होने योग्य है साक्षात् किया जाता है।

भावार्थः—कमनीय सर्वद्रष्टा सर्वत्र राजमान सुखदाता परमात्मा मुमुक्षुओं द्वारा साधना में लाया हुआ हृदयावकाश में साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—पराशरः (काम आदि का शीर्ण करने वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

८५९. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ १ ॥

पदपाठः— तिस्रोवाचईरयतिप्रवह्निः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२५)

८६०. सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः। सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते॥ २॥

पदपाठः— सोमम् गावः धेनवः वावशानाः सोमम् विप्राः वि प्राः मतिभिः पृच्छ मानाः सोमः सुतः ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्क्काः त्रिष्टुभः त्रि स्तुभः सम् नवन्ते॥ २॥

अन्वयः—गावः-धेनवः सोमं वावशानाः विप्राः मतिभिः पृच्छमानाः संनवन्ते सोमः सुतः पूयमानः-ऋच्यते सोमे-अर्काः-त्रिष्टुभः-संनवन्ते॥

पदार्थः—(गावः-धेनवः) गाती हुई वेदवाणियाँ ''धेनुः-वाङ्नाम'' [निघं० १.१०] (सोमं वावशानाः) शान्तस्वरूप परमात्मा को पुनः पुनः चाहती हुई (विप्राः) मेधावी विद्वान् (मतिभिः) स्तुतिवाणियों से ''वाग् वै मतिः'' [श० ८.१.२.७] ''मन्यते अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] (पृच्छमानाः) अर्चित करते हुए ''पृच्छति अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] (संनवन्ते) सम्यक् प्राप्त होते हैं (सोमः सुतः पूयमानः-ऋच्यते) शान्त परमात्मा साक्षात् हो अन्तरात्मा को शोधता हुआ प्रशसित होता है (सोमे-अर्काः-त्रिष्टुभः-संनवन्ते) शान्त परमात्मा में अर्चना करने वाले मन वाणी कर्म से तीन प्रकार स्तुति करने वाले सङ्गत होते हैं।

भावार्थः—जाने वाली स्तुतिवाणियाँ पुनः पुनः चाहती हुई शान्त परमात्मा को प्राप्त होती हैं, मेधावी उपासक स्तुतिवाणियों से अर्चना करते हुए शान्त परमात्मा को प्राप्त होते हैं, साक्षात् हुआ परमात्मा उपासक के आत्मा को शोधता हुआ प्रशंसित किया जाता है, मन वाणी कर्म से स्तुति करने वाले अर्चकजन परमात्मा में सङ्गति पाते हैं॥ २॥

८६१. एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति। इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्॥ ३॥

पदपाठः— एव नः सोम परिषिच्यमानः परि सिच्यमानः आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति सु अस्ति इन्द्रम् आ विश बृहता मदेन वर्द्धय वाचम् जनय पुरन्धिम् पुरम् धिम्॥ ३॥

अन्वयः—सोम परिषिच्यमानः पूयमानः नः स्वस्ति एव आपवस्व बृहता मदेन इन्द्रम्-आविश वाचं वर्धय पुरन्धिं जनय॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (परिषिच्यमानः) सर्वभाव

से धारित निदिध्यासन में आया हुआ (पूयमानः) तथा साक्षात् हुआ (नः स्वस्ति) हमारी सु-अस्ति—स्वरूपापत्ति—मुक्ति को (एव) अवश्य (आपवस्व) प्राप्त करा "पवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४] (बृहता मदेन) महान् हर्षक स्वरूप या हर्षनिमित्त से (इन्द्रम्-आविश) उपासक आत्मा को आविष्ट हो उसके अन्दर आवेश कर (वाचं वर्धय) उसकी स्तुतिवाणी को समृद्ध कर—सफल कर—करता है (पुरन्धिं जनय) उपासक आत्मा को बहुत धी—बुद्धि वाला सम्पन्न कर दे "पुरन्धिर्बहुधीः...." [निरु० ६.१३]।

भावार्थः—मेरे प्यारे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू सर्वभाव से धारित—निदिध्यासन में लाया उपासना द्वारा ध्याया तथा साक्षात् किया हुआ मेरे स्वरूपप्राप्ति—मुक्ति को अवश्य प्राप्त करा—कराता है, मुझ उपासक आत्मा को महान् अपने हर्षप्रद स्वरूप में या हर्षनिमित्त बन प्राप्त हो—होता है मेरी स्तुतिवाणी को सफल कर—करता है मुझे बहुत बुद्धिमान् कुशल बुद्धिमान् बना—बनाता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत प्रगतिशील ज्ञानी)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

८६२. **यद् द्याव इन्द्र ते शतंशतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यद्यावइन्द्रतेशतम् ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७८)

८६३. **आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा अस्मान् अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिः ऊतिभिः ॥ २ ॥**

अन्वयः—शविष्ठ वृषन् शवसा विश्वा महिना वृष्ण्या आपप्राथ वज्रिन् मघवन् गोमति व्रजे चित्राभिः-ऊतिभिः अस्मान्-अव ॥

पदार्थः—(शविष्ठ वृषन्) हे अत्यन्त बलवान्—सुखवर्षक परमात्मन्! तू (शवसा) अपने बल से (विश्वा महिना वृष्ण्या) सारे प्रशंसीय सुख वर्षाने में योग्य तत्त्वों वस्तुओं को (आपप्राथ) पूरे हुए हैं (वज्रिन् मघवन्) हे ओजस्वी ऐश्वर्यवान्

परमात्मन् "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] (गोमति व्रजे) स्तुतिवाणियों वाले मन्त्रसमूह में "छन्दांसि वै व्रजः" [मै० ४.१.१०] (चित्राभिः-ऊतिभिः) चायनीय—प्रशंसनीय रक्षाओं द्वारा "चित्रं चायनीयं मंहनीयम्" [निरु० १२.७] (अस्मान्-अव) हमें सुरक्षित कर—हमारी रक्षा कर।

भावार्थः—हे अत्यन्त बलवान् सुखवर्षक परमात्मन्! तू अपने बल से सारे सुख वर्षा करने योग्य तत्त्वों वस्तुओं को पूरे हुए—व्यापे हुए हैं वे सुखवर्षाने योग्य तत्त्व तेरे से प्रेरित हुए ही सुख वर्षाते हैं, हे ओजस्वी ऐश्वर्यवन् परमात्मन् स्तुतिवाणियों वाले मन्त्रसमूह में—उसके धारण में आचरण में अपनी प्रशंसनीय रक्षाओं के द्वारा हमारी हम उपासकों की रक्षा कर—करता है॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

८६४. **वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते॥ १॥**

पदपाठः— **वयङ्घत्वासुतावन्तः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २६१)

८६५. **स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः। कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः॥ २॥**

पदपाठः— **स्वरन्ति त्वा सुते नरः वसो निरेके उक्थिनः कदा सुतम् तृषाणः ओकः आ गमः इन्द्र स्वब्दी इव वंसगः॥ २॥**

अन्वयः—वसो-इन्द्र एके-उक्थिनः-नरः सुते त्वा निः स्वरन्ति ओकः-तृषाणः कदासुतम्-आगमः स्वब्दी-इव वंसगः॥

पदार्थः—(वसो-इन्द्र) हे सर्वत्र वसे हुए ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (एके-उक्थिनः-नरः) विरले भाग्यशाली स्तुतिवाणी वाले "वाग्-उक्थम्" [ष० १.५] मुमुक्षु जन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९] (सुते) उपासनारस सम्पन्न हो जाने पर (त्वा निः स्वरन्ति) तुझे सम्यक् गाते हैं तेरा सम्यक् भजन गान गाते हैं कि (ओकः-तृषाणः) कब, जलाशय की ओर प्यासे हरिण की भाँति 'लुप्तोपमानोपमा-वाचकालङ्कारः' (कदासुतम्-आगमः) कब—कभी तो सम्पन्न उपासनारस की ओर आता है (स्वब्दी-इव वंसगः) सु-निश्चित अब्दी—अब्द—संवत्सर—समय वाले "संवत्सरो वा अब्दः" [तै० स० ५.६.४.१] वननीय स्थान को प्राप्त होने

वाले अतिथि की भाँति।

भावार्थः—हे सर्वत्र बसने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! विरले भाग्यशाली स्तुतिकर्ता मुमुक्षु जन उपासनारस सम्पन्न हो जाने पर तेरा भली भाँति गान करते हैं और प्रतीक्षा करते हैं। जलाशय पर जलपान करने के लिए प्यासे हरिण की भाँति तू उपास्य कब आता है—कभी तो आयेगा ही। जैसे वर्ष या अपने विशेष समय पर विशिष्ट पूजनीय अतिथि वननीय स्थान पर आता ही है॥ २॥

८६६. **कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्त्रिणम्। पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे॥ ३॥**

पदपाठः— **कण्वेभिः धृष्णो आ धृषत् वाजम् दर्षि सहस्त्रिणम् पिशङ्गरूपम् पिशङ्ग रूपम् मघवन् विचर्षणे वि चर्षणे मक्षूगोमन्तमीमहे॥ ३॥**

अन्वयः—धृष्णो विचर्षणे मघवन् कण्वेभिः सहस्त्रिणं वाजं धृषत्–अदर्षि पिशङ्गरूपं गोमन्तं मक्षु–ईमहे॥

पदार्थः—(धृष्णो विचर्षणे मघवन्) हे दोषनिवारक विशेषद्रष्टा ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (कण्वेभिः) मेधावी उपासकों को लक्ष्य कर "कण्वो मेधावी" [निघं० ३.१५] (सहस्त्रिणं वाजं धृषत्–अदर्षि) सहस्त्रों में गिना जाने वाला सहस्त्रों के तुल्य बढ़े चढ़े दबाने वाले सताने वाले विरोधिबल वासनाबल को चकनाचूर छिन्न भिन्न कर दे, पुनः (पिशङ्गरूपं गोमन्तं मक्षु–ईमहे) स्तुति वाणियों वाले—स्तुतियों के फलभूत तेरे सुनहरे रूप ज्ञानानन्दरूप को शीघ्र चाहते हैं "मक्षु क्षिप्र नाम" [निघं० २.१५] "ईमहे याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।

भावार्थः—दोषनिवारक अन्तर्द्रष्टा ऐश्वर्यवान् परमात्मा मेधावी उपासकों के अन्दर से सहस्त्रों में बढ़े चढ़े विरोधी कामवासनाबल को छिन्न भिन्न कर देता है और स्तुतियों के फलभूत अपने सुनहरे ज्ञानानन्दरूप को प्रदान करता है जिसकी उपासक शीघ्र प्रार्थना करते हैं॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

८६७. **तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा। आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥ १॥**

पदपाठः— **तरणिरित्सिषासति॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३८)

८६८. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २ ॥

पदपाठः— न दुष्टुतिः दुः स्तुतिः द्रविणोदेषु द्रविणः देषु शस्यते
न स्रेधन्तम् रयिः नशत् सुशक्तिः सु शक्तिः इत् मघवन्
तुभ्यम् मावते देष्णम् यत् पार्ये दिवि ॥ २ ॥

अन्वयः—द्रविणोदेषु दुष्टुतिः-न शस्यते स्रेधन्तं रयिः-न नशत् मघवन् तुभ्यं सुशक्तिः-इत् मावते देष्णम् यत् पार्ये दिवि ॥

पदार्थः—(द्रविणोदेषु) भौतिक या आध्यात्मिक धनदाताओं में (दुष्टुतिः-न शस्यते) बुरी स्तुति—विपरीत स्तुति—मन में कुछ, आचरण में कुछ, ऐसी अपवित्र मिथ्या स्तुति प्रशस्त नहीं या विहित नहीं और (स्रेधन्तं रयिः-न नशत्) हिंसा करने वाले—फिर उपकार को न मानने वाले कृतघ्न को धनादि व्याप्त भी नहीं होता—सफल नहीं होता "नशत्–व्याप्तिकर्मा" [निघं० २.२८] (मघवन् तुभ्यं सुशक्तिः-इत्) ऐश्वर्यवन् तेरे लिए तो सुगमता ही है (मावते देष्णम्) मेरे जैसे उपासक के लिए जो देने योग्य आध्यात्मिक धन तू देना चाहे (यत् पार्ये दिवि) जो धन पार—द्युलोक—मोक्षधाम का धन है।

भावार्थः—धनदाताओं के निमित्त बुरी स्तुति अपवित्र स्तुति प्रशस्त नहीं—पसन्द नहीं या विहित नहीं और कृतघ्न को धन व्याप्त नहीं होता है—नहीं फलता है ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तेरे लिए तो सुगमता है। मेरे जैसे उपासक के लिए अभीष्ट धन देना चाहे तो वह अध्यात्मधन अत्यन्त दूर मोक्षधाम में भी देता है।

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीन को लेकर उपासना करने वाला ब्रह्मप्राप्ति में योग्य उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८६९. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

पदपाठः— तिस्रोवाचउदीरते ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७१)

८७०. अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः। मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥

पदपाठः— **अभि ब्राह्मीः अनूषत यह्वीः ऋतस्य मातरः मर्जयन्तीः दिवः शिशुम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—यह्वीः ब्राह्मीः ऋतस्य मातरः दिवः शिशुं मर्जयन्तीः अभि-अनूषत ॥

पदार्थः—(यह्वीः) महत्त्वपूर्ण (ब्राह्मीः) ब्रह्म—वेद सम्बन्धी (ऋतस्य मातरः) सत्य का स्वरूप प्रकट कराने वाली (दिवः शिशुं मर्जयन्तीः) अमृतधाम में शयन करने वाले परमात्मा को प्राप्त करने के हेतु "मर्जयन्त गमयन्तः" [निरु० १२.४३] (अभि-अनूषत) अभिमुखता से स्तुति करती है।

भावार्थः—वेद में कही सत्य का स्वरूप दर्शाने वाली महत्त्वपूर्ण वाणियाँ अमृतधाम में वर्तमान परमात्मा के प्राप्त कराने हेतु उसकी पूर्ण स्तुति करती हैं, उनका सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

८७१. **रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्त्रिणः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **रायः समुद्रान् सम् उद्रान् चतुरः अस्मभ्यम् सोम विश्वतः आ पवस्व सहस्त्रिणः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम अस्मभ्यम् विश्वतः सहस्त्रिणः रायः चतुरः समुद्रान् आपवस्व ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (विश्वतः) सब प्रकार से—सर्वतोभाव से (सहस्त्रिणः) सहस्त्रों के समान—अत्यन्त महामूल्य (रायः) धनरूप (चतुरः समुद्रान्) चारों वाणियों—तेरे रचे वेदवचनों—स्तुति प्रार्थना उपासना और जपों को "वाग् वै समुद्रः" [ऐ० ५.५६] (आपवस्व) चरितार्थ कर।

भावार्थः—शान्तस्वरूप परमात्मन्! कृपा कर हम उपासकों के अन्दर सर्वभाव से तेरे उपदिष्ट सर्वमहान् धनरूप चार वाणियाँ स्तुति प्रार्थना उपासना और जप चरितार्थ कर। इनके सेवन में निरत होकर तेरे दर्शन समागम पाने में सफल होवें ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—ययातिः (परमात्मप्राप्ति के लिए जीवनयात्रा करने वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

८७२. **सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **सुतासोमधुमत्तमाः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४७)

८७३. इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥

पदपाठः— **इन्दुः इन्द्राय पवते इति देवासः अब्रुवन् वाचः पतिः मखस्यते विश्वस्य ईशानः ओजसः ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्दुः इन्द्राय पवते इति देवासः-अब्रुवन् वाचस्पतिः विश्वस्य ओजसः-ईशानः मखस्यते ॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (इन्द्राय पवते) उपासक आत्मा के लिए आनन्दधारा रूप में प्राप्त होता है (इति देवासः-अब्रुवन्) ऐसा विद्वान् कहते हैं (वाचस्पतिः) ब्रह्मात्मा परमात्मा "ब्रह्म वै वाचस्पतिः" [काठ० २७.१] (विश्वस्य) संसार का (ओजसः-ईशानः) बलवान् 'अकारो मत्वर्थीयः' अधिकारकर्ता स्वामी (मखस्यते) जब कि अध्यात्मयज्ञरूप में सेवित होता है तो उपासक आत्मा के लिए आनन्दरसधारा रूप में प्राप्त होता है ऐसा ऋषिजन कहते हैं ॥

८७४. सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ३ ॥

पदपाठः— **सहस्रधारः सहस्र धारः पवते समुद्रः सम् उद्रः वाचमीङ्खयः वाचम् ईङ्खयः सोमः पतिः रयीणाम् सखा स खा इन्द्रस्य दिवेदिवे दिवे दिवे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वाचमीङ्खयः सहस्रधारः समुद्रः रयीणां पतिः इन्द्रस्य सखा दिवे दिवे पवते ॥

पदार्थः—(वाचमीङ्खयः) स्तुतिवाणियों को प्राप्त होने वाला—स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाला 'वाचमीङ्खति-इति खश्प्रत्ययान्तः' (सहस्रधारः समुद्रः) बहुत आनन्दधाराओं वाला उभरने वाला आनन्दसागर परमात्मा (रयीणां पतिः) विविध ऐश्वर्यों का स्वामी (इन्द्रस्य सखा) उपासक आत्मा का साथी मित्र (दिवे दिवे पवते) दिनों दिन बढ़ बढ़ कर उपासक आत्मा के अन्दर प्राप्त होता है।

भावार्थः—स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाला बहुत आनन्दधाराओं में प्राप्त होने वाला आनन्दसागर परमात्मा विविध ऐश्वर्यों का स्वामी उपासक आत्मा का साथी मित्र दिनों दिन बढ़ बढ़ कर उसके अन्दर प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—पवित्रः (शुद्ध अन्तःकरण वाला निष्पाप उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

८७५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत॥ १॥

पदपाठः— पवित्रंतेविततंब्रह्मणस्पते॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६५)

८७६. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्। अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा॥ २॥

पदपाठः— तपोः पवित्रम् विततम् वि ततम् दिवः पदे अर्च्चन्तः अस्य तन्तवः वि अस्थिरन् अवन्ति अस्य पवितारम् आशवः दिवः पृष्टम् अधि रोहन्ति तेजसा॥ २॥

अन्वयः—तपोः-पवित्रं विततम् अस्य तन्तवः अर्चन्तः दिवस्पदे व्यस्थिरन् अस्य-आशवः पवितारम्-अवन्ति तेजसा दिवः पृष्ठम्-अधिरोहन्ति॥

पदार्थः—(तपोः-पवित्रं विततम्) काम आदि को या दुष्टों को तपाने वाले परमात्मा का पवित्र तथा उपासक को पवित्र करने वाला स्वरूप संसार में फैला हुआ है (अस्य तन्तवः) इसका अपने अन्दर विस्तार करने वाले (अर्चन्तः) इसकी अर्चना स्तुति करते हुए (दिवस्पदे) अमृतधाम मोक्षपद में ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३] (व्यस्थिरन्) विशेषरूप से स्थिर हो जाते हैं—विराजमान हो जाते हैं (अस्य-आशवः) इसके अन्दर उपासना द्वारा समन्तरूप से शयन करने वाले उपासक (पवितारम्-अवन्ति) उस पवित्रकर्ता परमात्मा का आलिङ्गन करते हैं ''अव रक्षण....आलिङ्गन....'' [भ्वादि०] पुनः (तेजसा दिवः पृष्ठम्-अधिरोहन्ति) अध्यात्मतेज से अमृतधाम मोक्ष के प्राप्तव्य पद पर अधिष्ठित हो जाते हैं।

भावार्थः—काम आदि दोषों और दुष्टों का तापक उपासकों के पवित्रकारक परमात्मा का स्वरूप संसार में फैल रहा है, इसका अपने अन्दर विस्तार करने वाले मननशील उपासकजन इसकी अर्चना स्तुति करते हुए अमृतधाम मोक्षपद में विशेषरूप से विराजमान हो जाते हैं तथा इसके अन्दर उपासना द्वारा समन्त रूप से

शयन करने वाले उपासक पवित्रकर्ता परमात्मा का आलिङ्गन करते हैं। पुनः अध्यात्मतेज से अमृतधाम मोक्ष के प्राप्तव्य पद पर अधिष्ठित हो जाते हैं॥ २॥

८७७. **अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रियः उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः॥ ३॥**

पदपाठः— **अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रियः॥ ३॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५९६)

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (अपने अन्दर परमात्मा को धारण करने में कुशल)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

८७८. **प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे। उपस्तुतासो अग्नये॥ १॥**

पदपाठः— **प्रमꣳहिष्ठायगायत॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १०७)

८७९. **आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः। कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्॥ २॥**

पदपाठः— **आ वꣳसते मघवा वीरवत् यशः समिद्धः सम् इद्धः द्युम्नी आहुतः आ हुतः कुवित् नः अस्य सुमतिः सु मतिः भवीयसी अच्छ वाजेभिः आगमत् आ गमत्॥ २॥**

अन्वयः—मघवा द्युम्नी–आहुतः समिद्धः वीरवत्–यशः–आवंसते अस्य सुमतिः नः कुवित् भवीयसी अस्य वाजेभिः–अच्छा–आगमत्॥

पदार्थः—(मघवा द्युम्नी–आहुतः समिद्धः) विविध धनवान् यशस्वी—यश देने वाला स्वात्मा में उपासना द्वारा समन्तरूप से गृहीत तथा प्रकाशित हुआ परमात्मा (वीरवत्–यशः–आवंसते) आत्मबलयुक्त यश समन्तरूप से देता है (अस्य सुमतिः) इसकी कल्याणकारी मतिमान्यता (नः) हमारे लिए (कुवित्) बहुत ही ''कुवित् बहुनाम'' [निघं० ३.१] (भवीयसी) बढ़ी चढ़ी है (अस्य वाजेभिः–

अच्छा–आगमत्) इसके जो अमृत अन्नभोग हैं उनके द्वारा वह "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] भली भाँति आवे—प्राप्त हो।

भावार्थः—विविध धन वाला अपने अन्दर धारण किया हुआ और उपासना द्वारा प्रकाशित किया हुआ यशस्वी परमात्मा आत्मबलयुक्त यश को समन्तरूप से प्रदान करता है, इसकी कल्याणकारी मति—मान्यता भी हमारे लिए बहुत ही बढ़ी चढ़ी प्राप्त होती है। यह अपने अमृतभोगों के साथ प्राप्त होवे॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ (इन्द्रियों के विषय में अच्छी उक्ति समर्पण करने वाला और प्राण के सम्बन्ध में अच्छी उक्ति प्राणायाम करने वाला जन)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

८८०. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ १॥

पदपाठः— तन्तेमदङ्गृणीमसि॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८७)

८८१. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ २॥

पदपाठः— येन ज्योतीꣳषि आयवे मनवे च विवेदिथ मन्दानः अस्य बर्हिषः वि राजसि॥ २॥

अन्वयः—येन च मनवे–आयवे ज्योतींषि विवेदिथ मन्दानः अस्य बर्हिषः–विराजसि॥

पदार्थः—(येन च) 'च–इति वाक्यसमुच्चयार्थः' हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! और तू जिस हर्षप्रद स्वरूप से (मनवे–आयवे) मननशील मनुष्य के लिए "आयवः–मनुष्यनाम" [निघं० २.३] (ज्योतींषि विवेदिथ) ज्ञानज्योतियों को जनाता है (मन्दानः) स्तुत किया जाता हुआ (अस्य बर्हिषः–विराजसि) इस उपासक के हृदयाकाश में विराजमान होता है।

भावार्थः—परमात्मन्! तू अपने जिस हर्षप्रदस्वरूप से मननशील जन को ज्ञानज्योतियाँ जनाता है और जिस हर्षप्रद स्वरूप के कारण स्तुतिपात्र बना हुआ इस मननशील उपासक के हृदयावकाश में स्थान पाता है, वह हर्षप्रद स्वरूप प्रशंसनीय है॥ २॥

८८२. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥ ३॥

पदपाठः— **तत् अद्य अ द्य चित् ते उक्थिनः अनु स्तुवन्ति पूर्वथा वृषपत्नीः वृष पत्नीः अपः जय दिवेदिवे दिवे दिवे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अद्य चित् पूर्वथा ते-उक्थिनः-अनुष्टुवन्ति दिवे दिवे वृषपत्नीः अपः जय ॥

पदार्थः—(अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्व की भाँति पूर्वकाल से परम्परागत (ते-उक्थिनः-अनुष्टुवन्ति) तेरे स्तोता निरन्तर स्तुति करते हैं, अतः तू हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (दिवे दिवे) दिनों दिन—प्रतिदिन (वृषपत्नीः) मन है पति—पालक जिनका उन "वृषा: हि मनः" [श० १.४.४.१] (अपः) कामनाओं को—पर "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४.१५] "मनसि वै सर्वे कामाः श्रिताः" [ऐ० आ० १.३.२] (जय) विजय प्राप्त करा।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! पूर्वकाल की भाँति परम्परागत आज भी तेरे स्तुतिकर्ता उपासकजन तेरी निरन्तर प्रतिदिन स्तुति करते चले आ रहे हैं, तू उपासकों के मन में रहने वाली कामनाओं को जीत—उन्हें असत् से सत् की ओर ले चल ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—तिरश्ची (अन्तर्मुखी[1] उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

८८३. **श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति। सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥ १ ॥**

पदपाठः— **श्रुधीहवन्तिरश्च्याः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४६)

८८४. **यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्। चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्॥ २ ॥**

पदपाठः— **यः ते इन्द्र नवीयसीम् गिरम् मन्द्राम् अजीजनत् चिकित्विन्मनसम् चिकित्वित् मनसम् धियम् प्रत्नाम् ऋतस्य पिप्युषीम्॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्र ते यः नवीयसीं मन्द्रां गिरम्-अजीजनत् चिकित्विन्मनसम्

---

१. "तिरोऽन्तर्दधाति" [निरु० १२.३२]।

प्रत्नाम् ऋतस्य पिप्युषीम् धियम् अजीजनः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते) तेरे लिए (यः) जो उपासक (नवीयसीं मन्द्रां गिरम्-अजीजनत्) अपूर्व पवित्र नम्र हर्षकारी स्तुतिवाणी को प्रस्तुत करता है (चिकित्विन्मनसम्) ज्ञानप्रेरक मन से युक्त (प्रत्नाम्) शाश्वतिक—निर्मल (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्य से पूर्ण—सत्यप्रसारिका (धियम्) बुद्धि को उसके लिए तू (अजीजनः) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—परमात्मा के लिए जो उपासक अपूर्व पवित्र नम्र हर्षकारी स्तुति प्रस्तुत करता है उस उपासक के लिए परमात्मा ज्ञानप्रेरक मन से युक्त शाश्वतिक सत्यपूर्ण बुद्धि को प्रदान करता है ॥ २ ॥

८८५. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः। पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे॥ ३ ॥

पदपाठः— तम् उ स्तवाम यम् गिरः इन्द्रम् उक्थानि वावृधुः पुरूणि अस्य पौꣳस्या सिषासन्तोवनामहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—तम्-उ स्तवाम यम्-इन्द्रं गिरः-उक्थ्यानि वावृधुः अस्य पुरूणि पौंस्या सिषासन्तः वनामहे ॥

पदार्थः—(तम्-उ स्तवाम) हम उपासक उस इष्टदेव की स्तुति करते हैं (यम्-इन्द्रं गिरः-उक्थ्यानि वावृधुः) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को स्तुतिपरक वाणियाँ वक्तव्यप्रशस्त मन्त्रवचन बढ़ चढ़ कर गुणव्याख्यान करते हैं (अस्य) इसके (पुरूणि पौंस्या) बहु प्रकार के पौरुष—सृष्टिरचन धारण कर्मफलप्रदान, मोक्षप्रदान, उपकार आदि को (सिषासन्तः) सम्यक् पालते धारण करते मानते हुए (वनामहे) भजें।

भावार्थः—हम उस इष्टदेव ऐश्वर्यवान् परमात्मा की स्तुति करते हैं जिसे स्तुतिवाणियाँ और प्रशस्त वेदवचन बढ़-चढ़कर कथन करते हैं। इसके बहुत पौरुष कर्मों—सृष्टिरचन धारण जीवों के कर्मफलप्रदान, मुमुक्षुओं को मोक्षप्रदान उपकारकार्यों को धारण पालन करते हुए भजें॥ ३ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

विज्ञप्ति—पञ्चम अध्याय से प्रमाणभाग नीचे दिप्पणी में दिये गये हैं, बीच में देने से किन्हीं की दृष्टि में वाक्यार्थ समझने में कठिनाई होती है, शब्दार्थ में ही भावार्थ है पृथक् नहीं।

अथ पञ्चम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—ऋषिगणाः 'सायणमते' (ऋषियों—प्राणों इन्द्रियों[1] को संख्यात ज्ञात रखने वाले संयमी उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

८८६. प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि। प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥ १॥

पदपाठः— प्र ते आश्विनीः पवमान धेनवः दिव्याः असृग्रन् पयसा धरीमणि प्र अन्तरिक्षात् स्थाविरीः स्था विरीः ते असृक्षत ये त्वा मृजन्ति ऋषिषाण ऋषि सान वेधसः॥ १॥

अन्वयः—ऋषिषाण पवमान ते आश्विनीः दिव्याः धेनवः धरीमणि पयसा प्रासृग्रन् अन्तरिक्षात् स्थाविरीः ते प्रासृक्षत ये वेधसः-त्वा मृजन्ति॥

पदार्थः—(ऋषिषाण पवमान) हे ऋषियों के सम्भजनयोग्य आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! (ते) तेरी (आश्विनीः) श्रोत्रों कानों से सम्बद्ध एवं व्यापन धर्म वाली[2] (दिव्याः) अमानुषी—दिव्यविषयक (धेनवः) स्तुतिवाणियाँ[3] (धरीमणि) धरा—धरती पर (पयसा प्रासृग्रन्) अपने आनन्दरस प्राप्ति के हेतु[4] तूने छोड़ी—रची—प्रचारित करी हैं (अन्तरिक्षात्) हृदयावकाश में[5] (स्थाविरीः) स्थिर होने वाली (ते) तेरी उन वाणियों को (प्रासृक्षत) प्रकृष्टरूप से बिठा लेते हैं (ये वेधसः-त्वा मृजन्ति) जो आदिसृष्टि के मेधावी विधाता ऋषि तुझे प्राप्त होते हैं—साक्षात् करते हैं॥ १॥

---

१. "प्राणा उ वा ऋषयः" [श० ८.४.१.५]।
२. "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२.९.१.१३]।
३. "धेनुः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
४. "रसो वै पयः" [श० ४.४.४.८]।
५. विभक्तिव्यत्ययः।

८८७. **उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः। यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति॥ २॥**

पदपाठः— **उभयतः पवमानस्य रश्मयः ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः यदि पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति॥ २॥**

अन्वयः—ध्रुवस्य सतःपवमानस्य रश्मयः केतवः उभयतः परियन्ति यदि 'यत्-इ' हरिः पवित्रे-अधि मृज्यते सत्ता योनौ कलशेषु नि-सीदति॥

पदार्थः—(ध्रुवस्य सतः पवमानस्य) एकरस वर्तमान आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के (रश्मयः केतवः) व्यापनशील प्रज्ञान—गुण[1] (उभयतः परियन्ति) जड़ जङ्गम संसार में परिप्राप्त हो रहे हैं (यदि 'यत्-इ') जब ही (हरिः पवित्रे-अधि मृज्यते) दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा प्राप्तिस्थान पवित्र उपासक के अन्दर प्राप्त किया जाता है—साक्षात् किया जाता है (सत्ता योनौ कलशेषु नि-सीदति) बैठने वाला यह मिलन के स्थान हृदय में और उसके समस्त कलास्थानों मन इन्द्रियों में[2] बस जाता है—उसका हृदय में ध्यान, मन में मनन, कानों में श्रवण, वाणी में स्तवन आदि होता रहता है॥ २॥

८८८. **विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः। व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि॥ ३॥**

पदपाठः— **विश्वा धामानि विश्वचक्षः विश्व चक्षः ऋभ्वसः प्रभोः प्र भोः ते सतः परि यन्ति केतवः व्यानशी वि आनशी पवसे सोम धर्मणा पतिः विश्वस्य भुवनस्य राजसि॥ ३॥**

अन्वयः—सोम विश्वचक्षः ते प्रभोः सतः ऋभ्वसः केतवः विश्वा धामानि परियन्ति व्यानशी पवसे धर्मणा विश्वस्य भुवनस्य पतिः-राजसि॥

पदार्थः—(सोम) शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (विश्वचक्षः) सर्वद्रष्टा है (ते प्रभोः सतः) तुझ प्रभु होते हुए के (ऋभ्वसः केतवः) बहुत—असंख्यात[3] प्रज्ञापक

---

१. ''केतुः प्रज्ञानम्'' [निघं० ३.९]।
२. ''कलशः कस्मात् कला अस्मिञ्छेरते'' [निरु० ११.१२]
३. ''ऋभ्वमुरुभूतम्'' [निरु० ११.२१]।

गुण (विश्वा धामानि परियन्ति) सारे लोक लोकान्तरों पर परिप्राप्त हो रहे हैं (व्यानशी पवसे) विशेष व्यापने वाला[1] सर्वत्र प्राप्त है (धर्मणा) स्वरूप से (विश्वस्य भुवनस्य पतिः-राजसि) समस्त संसार का स्वामी रूप में राजमान प्रकाशमान हो रहा है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं मोक्षधाम को चाहने वाला उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

८८९. **पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्। ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥ १ ॥**

पदपाठः— **पवमानोअजीजनत्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८४)

८९०. **पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः। वि वारमव्यमर्षति॥ २ ॥**

पदपाठः— **पवमान रसः तव मदः राजन् अदुच्छुनः अ दुच्छुनः वि वारम् अव्यम् अर्षति॥ २ ॥**

अन्वयः—पवमान राजन् तव-अदुच्छुनः-मदः-रसः अव्यं वारं वि-अर्षति ॥

पदार्थः—(पवमान राजन्) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले प्रकाशमान परमात्मन्! (तव-अदुच्छुनः-मदः-रसः) तेरा विघ्नक्षय पापरहित[2] हर्षकर रस या रसीला हर्ष (अव्यं वारं वि-अर्षति) पार्थिव शरीर[3] आवरक को लांघ कर अन्तरात्मा को प्राप्त होता है, सांसारिकरस विघ्न से क्षय से पाप से रहित नहीं। परमात्मन् तेरा रस विघ्न—बाधा से क्षय से पाप से रहित तथा आनन्दप्रद है, उसे तू उपासक को प्रदान कर—करता है ॥ २ ॥

८९१. **पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान्। ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे॥ ३ ॥**

पदपाठः— **पवमानस्य ते रसः दक्षः वि राजति द्युमान् ज्योतिः विश्वम् स्वः दृशे॥ ३ ॥**

---

१. ''आनशे व्याप्तिकर्मा'' [निघं० २.१८]।
२. ''यो वा अभिचरति योऽभिदासति यः पापं कामयते स वै दुच्छुनः'' [जै० १.९३]।
३. ''इयं पृथिवी वाऽविः'' [श० ३.१.२.३३]।

अन्वयः—पवमानस्य ते रसः-दक्षः-द्युमान् विराजति ज्योतिः-विश्वं स्वः-दृशे ॥

पदार्थः—(पवमानस्य ते) तुझ धारारूप में प्राप्त होते हुए परमात्मा का (रसः-दक्षः-द्युमान्) रस प्रबल—महान् एवं दीप्तिमान् ज्योति वाला (विराजति) विशेष प्रकाशित हो रहा है उपासक के अन्दर (ज्योतिः-विश्वं स्वः-दृशे) जो ज्योति समस्त सुखों के सर्वोपरि सुख को दिखाने को है ॥ ३ ॥

तृतीय षड्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

८९२. **प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः। घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥ १ ॥**

पदपाठः— **प्रयद्गावोनभूर्णयः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९१)

८९३. **सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम्। साह्याम दस्युमव्रतम्॥ २ ॥**

पदपाठः— **सुवितस्य वनामहे अति सेतुम् दुराय्यम् दुः आय्यम् साह्याम दस्युम् अव्रतम् अ व्रतम्॥ २ ॥**

अन्वयः—सुवितस्य 'सु-इत' दुराय्यम्-अतिसेतुं वनामहे अव्रतं दस्युं साह्याम ॥

पदार्थः—(सुवितस्य 'सु-इत') सम्यक् सुलभ प्राप्त[1] शान्त परमात्मा के (दुराय्यम्-अतिसेतुं वनामहे) कठिनाई से प्राप्त होने योग्य बन्धनरहित करने वाले आनन्दरूप को सेवन करें अतः (अव्रतं दस्युं साह्याम) व्रतहीन करने वाले—शिवसङ्कल्प से गिराने वाले, आत्मबल के क्षीण करने वाले, अज्ञान वासना पाप को तिरस्कृत करें—भगावें। शिवसङ्कल्प से गिराने वाले, आत्मबल के क्षीण करने वाले, अज्ञान वासना पाप को हटाने से परमात्मा का आनन्दमय स्वरूप बन्धनरहित करने वाला प्राप्त होता है ॥ २ ॥

८९४. **शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि॥ ३ ॥**

पदपाठः— **शृण्वे वृष्टेः इव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः चरन्ति विद्युतः वि द्युतः दिवि॥ ३ ॥**

---

१. "सुविते सु इते" [निरु० ४.१०]।

अन्वयः—शुष्मिणः पवमानस्य स्वनः वृष्टेः-इव शृण्वे दिवि विद्युतः-चरन्ति ॥

पदार्थः—(शुष्मिणः पवमानस्य) बलवान्[1] धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा का (स्वनः) अमृतवचन (वृष्टेः-इव शृण्वे) धारारूप में प्राप्त हो रही वृष्टि का जैसे सुनता हूँ (दिवि विद्युतः-चरन्ति) तथा जैसे[2] आकाश में विद्युतें चल रही—चमक रही होती हैं ऐसे परमात्मा की आनन्दधारायें भी चल रहीं चमक रही होती हैं ॥ ३ ॥

८९५. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्। अश्ववत् सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

पदपाठः— आ पवस्व महीम् इषम् गोमन् इन्दो हिरण्यवत् अश्ववत् सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्दो सोम महीम्-इषम् आपवस्व गोमत् अश्ववत् वीरवत् हिरण्यवत् ॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (महीम्-इषम्) मेरी महती एषणा—इच्छा को[3] जो न पुत्रैषणा न लोकैषणा न वित्तैषणा किन्तु तेरी स्वरूपप्राप्ति की एषणा है उसको (आपवस्व) समन्तरूप से पूरा कर—भली भाँति पूरा कर (गोमत्) यही गौओं वाली (अश्ववत्) घोड़ों वाली (वीरवत्) पुत्रों वाली (हिरण्यवत्) स्वर्ण सम्पत्ति वाली एषणा—इच्छा है इसके पूरे होने से सभी लौकिक एषणायें पूरी हुई होती हैं उपासक की दृष्टि में[4] ॥ ४ ॥

८९६. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

पदपाठः— पवस्व विश्वचर्षणे आ महीइति रोदसीइति पृण उषाः सूर्यः न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

अन्वयः—विश्वचर्षणे पवस्व मही रोदसी आपृण उषाः सूर्यः-न रश्मिभिः ॥

पदार्थः—(विश्वचर्षणे) विश्वद्रष्टा परमात्मन्! तू (पवस्व) मुझ उपासक के अन्दर आ—प्राप्त हो (मही रोदसी आपृण) मेरे महत्त्वपूर्ण दोनों किनारों—इहलोक जीवन और परलोक जीवन अर्थात् भोगपार्श्व और अपवर्गपार्श्व को अपने आनन्दरस धाराओं से आपूर कर दे[5] (उषाः सूर्यः-न रश्मिभिः) सूर्य जैसे

---

१. "शुष्मं बलनाम" [निघं० २.९]।
२. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।
३. "इषु इच्छायाम्" [तुदादि०] क्विपि।
४. यस्यां प्राप्तौ सर्वा प्राप्तिः सा गरीयसी। "यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति" [मुण्ड० १.३] तद्वत्।
५. "रोदसी रोधसी विरोधनात् रोधः कूल निरुणद्धि स्रोतः" [निरु० ६.१]

प्रकाशधाराओं से उषावेलाओं को भर देता है ॥ ५ ॥

८९७. परि नः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः। सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥

पदपाठः— परि नः शर्म्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः सर रसा इव विष्टपम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—सोम नः शर्मयन्त्या धारया विश्वतः परि सर रसा इव विष्टपम् ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (नः) हमारी ओर (शर्मयन्त्या धारया) सुखकारी धारा से (विश्वतः) सर्व प्रकार (परि सर) परिप्राप्त हो—बहता-सा प्राप्त हो (रसा इव विष्टपम्) नदी[1] जैसे अपने प्रवेशस्थान निम्न भूस्थल समुद्र की ओर बहती चली जाती है ॥ ६ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम षड्च

ऋषिः—बृहन्मतिः (बड़ी मान्यता बड़ी स्तुति वाला ऊँचा आस्तिक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

८९८. आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

पदपाठः— आशुः अर्ष बृहन्मते बृहत् मते परि प्रियेण धाम्ना यत्र देवाः इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

अन्वयः—बृहन्मते आशुः प्रियेण धाम्ना परि-अर्ष यत्र देवाः इति ब्रुवन् ॥

पदार्थः—(बृहन्मते) हे बड़ी मान्यता वाले—सर्वाधिक मानने योग्य शान्त-स्वरूप परमात्मन्! तू (आशुः) व्यापनशील हुआ (प्रियेण धाम्ना) तेरा प्रिय धाम है इस हेतु (परि-अर्ष) परिप्राप्त हो (यत्र देवाः) जहाँ देव—दिव्य धर्म वाले हैं वह स्थान हृदय है, हृदय में पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का विषयगति मन बुद्धि चित्त अहङ्कार की स्थिति सत्त्व रज तमोगुण आत्मा भी है और तेरी प्राप्ति भी वहाँ हुआ करती है[2] (इति ब्रुवन्) ऐसा ब्रह्मवेत्ता परम्परा से कहते हैं[3] मानते हैं ॥ १ ॥

---

१. ''रसा नदी'' [निरु० ११.२५]

२. ''पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमातन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥'' [अथर्व० १०.८.४३]।

३. 'ब्रुवन्—अब्रुवन्—ब्रुवन्ति' अडभावश्छान्दसः ''बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'' [अष्टा० ६.४.७५] ईश्वरावतारवादस्य गन्धोऽपि नात्र यश्च भगवदाचार्येण कल्पितः, सायणभाष्या-सम्मतश्च।

८९९. **परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव॥ २॥**

पदपाठः— **परिष्कृण्वन् परि कृण्वन् अनिष्कृतम् अ निष्कृतम् जनाय यातयन् इषः वृष्टिम् दिवः परि स्रव॥ २॥**

अन्वयः—अनिष्कृतं परिष्कृण्वन् जनाय-इषः-यातयन् दिवः-वष्टिं परिस्रव॥

पदार्थः—(अनिष्कृतं परिष्कृण्वन्) असंस्कृत[१] हृदय को अपने आगमन से सुशोभित करता हुआ तू परमात्मन्! (जनाय-इषः-यातयन्) उपासकजन के लिये तेरे दर्शन ज्ञान आनन्दरूप इच्छाओं को प्राप्त कराने के हेतु[२] (दिवः-वष्टिं परिस्रव) अपने अमृतधाम से[३] रस—अमृतरस को[४] परिस्रवित कर—धारारूप में टपका दे॥ २॥

९००. **अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत्॥ ३॥**

पदपाठः— **अयम् सः यः दिवः परि रघुयामा रघु यामा पवित्रे आ सिन्धोः ऊर्म्मा व्यक्षरत् वि अक्षरत्॥ ३॥**

अन्वयः—अयं सः-यः रघुयामा दिवः परि पवित्रे-आ सिन्धोः-ऊर्मा॥

पदार्थः—(अयं सः-यः) यह वह जो परमात्मा (रघुयामा) मीठी गति वाला[५] (दिवः परि) अमृतधाम—मोक्षधाम का अध्यक्ष है[६] (पवित्रे-आ) पवित्र आत्मा उपासक के अन्दर आक्षरित होता है—आ जाता है (सिन्धोः-ऊर्मा) स्यन्दमान महान् जलाशय की तरङ्ग[७] जैसे[८] विविध रूप से क्षरित हो जाती है॥ ३॥

९०१. **सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन्॥ ४॥**

पदपाठः— **सुतः एति पवित्रे आ त्विषिम् दधानः ओजसा विचक्षाणः वि चक्षाणः विरोचयन् वि रोचयन्॥ ४॥**

---

१. ''यद्वै निष्कृतं तत्संस्कृतम्'' [ऐ० आ० १.१.४]।
२. ''यातयति आयातयति'' [निरु० १०.२२]।
३. ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३]।
४. ''रसो वृष्टिः'' [मै० २.५.७]।
५. ''रघ आस्वादने'' [चुरादि०]।
६. ''पञ्चम्याः परावध्यर्थे'' [अष्टा० ८.३.५१]।
७. आकारादेशश्छान्दसः।
८. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।

अन्वयः—सुतः त्विषिं दधानः विचक्षाणः विरोचयन् पवित्रे ओजसा-आ-एति ॥

पदार्थः—(सुतः) अभ्यास द्वारा निष्पादित (त्विषिं दधानः) ज्योति को प्राप्त कराने के हेतु (विचक्षाणः) विशेष ज्ञानदाता (विरोचयन्) चमकता हुआ (पवित्रे) हृदय में (ओजसा-आ-एति) शीघ्रता से प्राप्त होता है—साक्षात् होता है ॥ ४ ॥

९०२. आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः। इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

पदपाठः— आविवासन् आ विवासन् परावतः अथ उ अर्वावतः सुतः इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

अन्वयः—सुतः इन्द्राय परावतः-अथ-उ-अर्वावतः आविवासन् मधु सिच्यते ॥

पदार्थः—(सुतः) साक्षात् किया हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (परावतः-अथ-उ-अर्वावतः) सम्प्रज्ञात समाधिजन्य दिव्य अतीन्द्रिय विषयों को और इन्द्रियजन्य विषयों को (आविवासन्) समन्तरूप में स्वरूप से विवासित करता हुआ उनका (मधु सिच्यते) सार—उत्तम आनन्द सींचता है[1] उनके सच्चे सुख का कारण परमात्मा ही है ॥ ५ ॥

९०३. समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥

पदपाठः— समीचीनाः सम् ईचीनाः अनूषत हरिंꣳहिन्वन्त्यद्रिभिः इन्दुमिन्द्रायपीतये ॥ ६ ॥

अन्वयः—समीचीनाः-हरिम्-इन्दुम्-अनूषत इन्द्राय पीतये अद्रिभिः-हिन्वन्ति ॥

पदार्थः—(समीचीनाः-हरिम्-इन्दुम्-अनूषत) हे सम्यक् गुणाचारसम्पन्न उपासकजनो तुम दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरसपूर्ण परमात्मा की स्तुति करो (इन्द्राय पीतये) स्वान्तरात्मा[2] के पान—आधान के लिए (अद्रिभिः-हिन्वन्ति) जिसे श्लोकर्त्ता—स्तुतिकर्ता मन्त्रपाठक ऋषियों के द्वारा[3] आप्त करते हैं—श्रवण करते हैं[4] ॥ ६ ॥

---

१. कर्तरि कर्मप्रत्ययः।
२. "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" [अष्टा० २.३.६२ वा०]।
३. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] "श्लोको वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
४. "हिन्वन्ति आप्नुवन्ति" [निरु० १.२०]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—जमदग्निर्भृगुर्वा (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला या तेजस्वी उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९०४. हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्। महामिन्दुं महीयुवः॥ १॥

पदपाठः— हिन्वन्ति सूरम् उस्रयः स्वसारः जामयः पतिम् महाम् इन्दुम् महीयुवः॥ १॥

अन्वयः—उस्रयः स्वसारः जामयः महीयुवः महां सूरं पतिम्–इन्दुम् हिन्वन्ति॥

पदार्थः—(उस्रयः) परमात्मा में बसनेवाली—उस तक पहुँचनेवाली (स्वसारः) स्वसरणशील—स्वाधारगतिशील (जामयः) एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर प्रवृत्त होने वाली[1] (महीयुवः) वाणी के साथ गमन करने वाली स्तुतियाँ[2] (महां सूरं पतिम्–इन्दुम्) महान् प्रेरक पालक आनन्दरसपूर्ण परमात्मा को (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती हैं[3] उपासक की स्तुतियाँ ही परमात्मा तक जाकर प्रसन्न करती हैं॥ १॥

९०५. पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः। विश्वा वसून्या विश॥ २॥

पदपाठः— पवमान रुचारुचा रुचा रुचा देव देवेभ्यः सुतः विश्वा वसूनि आ विश॥ २॥

अन्वयः—पवमान देव देवेभ्यः सुतः रुचा रुचा विश्वा वसूनि–आविश॥

पदार्थः—(पवमान देव) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मदेव! तू (देवेभ्यः) देवों मुमुक्षुजनों के अन्दर[4] (सुतः) साक्षात् हुआ (रुचा रुचा) अपनी प्रत्येक दीप्त धारा या प्रत्येक रुचिर धारा से या अमृत धारा से[5] (विश्वा वसूनि–आविश) मुक्त उपासक के समस्त वासस्थानों के हृदय मन इन्द्रियों को आविष्ट हो जा, इनमें तेरा आधान ध्यान चर्चा भान हो॥ २॥

९०६. आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः। इषे पवस्व संयतम्॥ ३॥

---

१. ''जाम्यतिरेकनाम'' [निरु० ४.२०]।
२. ''मही वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।
३. ''हिवि प्रीणनार्थः'' [भ्वादि०]।
४. विभक्तिव्यत्ययः।
५. ''अमृतं वै रुक्'' [श० ७.४.२.२१]।

पदपाठः— **आ पवमान सुष्टुतिम् सु स्तुतिम् वृष्टिम् देवेभ्यः दुवः इषे पवस्व संयतम् सम् यतम्॥ ३॥**

अन्वयः—पवमान देवेभ्यः सुष्टुतिं वृष्टिम्-आदुवः इषे संयतं पवस्व॥

पदार्थः—(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (देवेभ्यः) मुमुक्षु उपासकों के लिए (सुष्टुतिं वृष्टिम्-आदुवः) उत्तम स्तुति वाली जिसके लिए श्रद्धा पवित्रभाव से स्तुति की, उस सुखवृष्टि को आराधित कर,[1] सिद्ध कर। (इषे संयतं पवस्व) तेरे दर्शन समागम की इच्छा के निमित्त स्वयं को सम्यक् नियत स्थिर कर॥ ३॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुतम्भरः 'सायणमते शतम्भरः' (साक्षात् किए परमात्मा को धारण करने वाला या शत प्रकार—बहु प्रकार से परमात्मा का विवेचन कर धारण करने वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥

छन्दः—जगती॥

९०७. **जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः॥ १॥**

पदपाठः— **जनस्य गोपाः गो पाः अजनिष्ट जागृविः अग्निः सुदक्षः सु दक्षः सुविताय नव्यसे घृतप्रतीकः घृत प्रतीकः बृहता दिविस्पृशा दिवि स्पृशा द्युमत् वि भाति भरतेभ्यः शुचिः॥ १॥**

अन्वयः—भरतेभ्यः-नव्यसे सुविताय जनस्य गोपाः जागृविः सुदक्षः घृतप्रतीकः शुचिः अग्निः अजनिष्ट दिविस्पृशा महता द्युमत्-विभाति॥

पदार्थः—(भरतेभ्यः-नव्यसे सुविताय) परमात्मा को अन्तरात्मा में धारण करने वालों के लिए अत्यन्त नवीन अपूर्व कल्याणार्थ (जनस्य गोपाः) जायमान—उत्पन्न स्थावर जङ्गम संसार का गोपायिता रक्षक धारक (जागृविः) जागरूक सदा सावधान (सुदक्षः) प्रशंसनीय बल वाला—यथावत् बल प्रयोक्ता संसारचालन दुष्टताड़न करने योग्य बल रखने वाला (घृतप्रतीकः) तेज[2] से प्रीति जिसकी है ऐसा तेजस्वी तेजःस्वरूप (शुचिः) अत्यन्त निर्मल (अग्निः) उपासक का अग्रणेता

---

१. ''दुवस्यती राध्नोतिकर्मा'' [निरु० १०.२०] यको लुक् छान्दसः।

२. ''तजो वै घृतम्'' [मै० १.६.८]।

परमात्मा (अजनिष्ट) प्रकट होता है, जो (दिविस्पृशा महता द्युमत्-विभाति) मोक्ष—अमृतधाम को स्पर्श करने वाले महान् दीप्तिमान्[1] धर्म से विशेष भासमान हो रहा है ॥ १ ॥

९०८. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥

पदपाठः— त्वाम् अग्ने अङ्गिरसः गुहा हितम् अनु अविन्दन् शिश्रियाणम् वनेवने वने वने स जायसे मथ्यमानः सहः महत् त्वाम् आहुः सहसः पुत्रम् पुत् त्रम् अङ्गिरः ॥ २ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वाम् अङ्गिरसः गुहाहितम्-अन्वविन्दन् वने वने शिश्रियाणम् सः-मथ्यमानः-जायसे सहः-महत्-अङ्गिरः त्वां सहसः पुत्रम्-आहुः ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन्! (त्वाम्) तुझे (अङ्गिरसः) तेरे सम्बन्ध में पढ़ने पढ़ाने वाले तेरा अध्यात्मयज्ञ कराने वाले विद्वान् ऋषिजन[2] (गुहाहितम्-अन्वविन्दन्) हृदय में अनुभव कर लेते हैं (वने वने शिश्रियाणम्) सम्भजन सम्भजन—स्तुति प्रार्थना उपासना में[3] आश्रयणीय देव को (सः-मथ्यमानः-जायसे) वह तू अभ्यास वैराग्य द्वारा मन्थन से हृदय में प्रकाशित होता है (सहः-महत्-अङ्गिरः) हे बलरूप महत्त्वरूप अग्नि परमात्मन्! (त्वां सहसः पुत्रम्-आहुः) तुझे महान् योगबल का पुत्र—योगबल से प्राप्त होने वाला कहते हैं ॥ २ ॥

९०९. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते। इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥

पदपाठः— यज्ञस्य केतुम् प्रथमम् पुरोहितम् पुरः हितम् अग्निम् नरः त्रिषधस्थे त्रि सधस्थे सम् इन्धते इन्द्रेण देवैः सरथम् स रथम् सः बर्हिषि सीदत् नि होता यजथाय सुक्रतुः सु क्रतुः ॥ ३ ॥

---

१. द्युमत्-द्युमता "सुपां सुलुक्....." [अष्टा० ७.१.३९]।

२. "तान् हादित्यानङ्गिरसो याजयाञ्चक्रुः" [गो० २.६.१४]।

३. "वन षण सम्भक्तौ" [भ्वादि०]।

अन्वयः—नरः यज्ञस्य केतुम् प्रथमं पुरोहितम्–अग्निम् त्रिषधस्थे समिन्धते इन्द्रेण देवैः यजथाय सुक्रतुः–होता सः सरथं बर्हिषि निषीदत्॥

पदार्थः—(नरः) मुमुक्षु उपासकजन[1] (यज्ञस्य केतुम्) अध्यात्मयज्ञ के प्रज्ञापक—साधनाधार (प्रथमं पुरोहितम्–अग्निम्) प्रमुख पुरोहितरूप—प्रथम से धारण करने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (त्रिषधस्थे समिन्धते) तीन सहयोग—समागम–स्थान—विषयप्रसङ्ग स्तुति प्रार्थना उपासना में सम्यक् प्रदीप्त करते हैं (इन्द्रेण देवैः) आत्मा और इन्द्रियों के साथ आत्मा द्वारा समर्पण, मन से मनन, इन्द्रियों से श्रवण, स्तवन आदि करके (यजथाय) अध्यात्मयज्ञ करने के लिए (सुक्रतुः–होता सः) यथार्थ यजन क्रिया करने वाला ऋत्विक् बना वह परमात्मा (सरथं बर्हिषि निषीदत्) समान रमणस्थान[2] हृदयावकाश[3] में बैठ जाता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु या स्तोता हर्षालु[4])॥ देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक एवं वरणकर्ता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९१०. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम्॥ १॥

पदपाठः— अयम् वाम् मित्रा मि त्रा वरुणा सुतः सोमः ऋतावृधा ऋत वृधा मम इत् इह श्रुतम् हवम्॥ १॥

अन्वयः—ऋतावृधा मित्रावरुणा वाम् अयं सोमः सुतः इह मम हवम् इत्–श्रुतम्॥

पदार्थः—(ऋतावृधा मित्रावरुणा) हे मेरे अन्दर सच्चा सुख और अमृत के वर्धक संसार में प्रेरक और मोक्ष में वरणकर्ता दोनों धर्मयुक्त परमात्मन्! (वाम्) तुम्हारे—तेरे लिए (अयं सोमः सुतः) यह उपासनारस तैयार है (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (मम हवम्) मेरी भेंट—उपासनारस को (इत्–श्रुतम्) अवश्य सुनो—स्वीकार करो—करते हो॥ १॥

९११. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आशाते॥ २॥

पदपाठः— राजानौ अनभिद्रुहा अन् अभिद्रुहा ध्रुवे सदसि उत्तमे सहस्रस्थूणे सहस्र स्थूणे आशातेइति॥ २॥

---

१. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।
२. सप्तमीस्थाने द्वितीया व्यत्ययेन।
३. ''बर्हिः–अन्तरिक्षम्'' [निघं० १.३]।
४. ''गृत्समदो गृत्समदनः, गृत्स इति मेधाविनाम गृणातेः स्तुतिकर्मणः'' [निरु० ९.५]।

अन्वयः—अनभिद्रुहा राजानौ उत्तमे सहस्रस्थूणे ध्रुवे सदसि आशाते ॥

पदार्थः—(अनभिद्रुहा राजानौ) हे अभिद्रोह न करने वाले—अपितु स्नेह करने वाले सर्वत्र राजमान परमात्मन्! (उत्तमे सहस्रस्थूणे ध्रुवे सदसि) सर्वोत्तम अविनाशी सहस्रस्तम्भ—खुले विचरण सदन मोक्षधाम में (आशाते) विराजते हो[1] वहाँ हमें भी ले जावें ॥ २ ॥

९१२. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— ता सम्राजा सम् राजा घृतासुती घृत आसुतीइति आदित्या आ दित्या दानुनः पतीइति सचेतेइति अनवह्वरम् अन् अवह्वरम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—ता सम्राजा घृतासुती दानुनः-पती अनवह्वरं सचेते ॥

पदार्थः—(ता) वे (सम्राजा) सम्राट्—विश्वसम्राट् (घृतासुती) तेज को फैलाने वाले अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति के स्वामी (दानुनः-पती) दानपति—भोग प्रदान अपवर्ग—मोक्ष प्रदान के पति सदा भोग अपवर्ग प्रदान करने वाले[2] (अनवह्वरं सचेते) अकुटिल पवित्र अन्तःस्थल वाले को अपनाते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमः (उपासना में अत्यन्त गतिशील उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९१३. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

पदपाठः— इन्द्रोदधीचोअस्थभिः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १७९)

९१४. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

पदपाठः— इच्छन् अश्वस्य यत् शिरः पर्वतेषु अपश्रितम् अप श्रितम् तत् विदत् शर्यणावति ॥ २ ॥

---

१. 'आसाते' वर्णव्यत्ययः।

२. ''दानुनस्पतिः-दानपतिः'' [निरु० २.१३]।

अन्वयः—अश्वस्य यत्-शिरः इच्छन् पर्वतेषु-अपश्रितम् तत् शर्यणावति विदत्॥

पदार्थः—(अश्वस्य) गतिशील संसार या जगत् के[1] (यत्-शिरः) जिस शिर—ऊर्ध्वस्थान—आधार—इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (इच्छन्) उपासक चाहता हुआ (पर्वतेषु-अपश्रितम्) पर्व वाले योगाङ्गों में[2] योगभूमियों में पहुँचा हुआ (तत्) उसको (शर्यणावति विदत्) उपासक ने शर्यणावत्—धनुष पर प्राप्त किया है—करता है। वह धनुष है प्रणव—ओ३म्[3]। ओ३म् धनुष पर अपने आत्मा शर को चढ़ा देता है। ब्रह्म जो प्रणव ओ३म् का वाच्य लक्ष्य है, उसे प्राप्त करता है॥ २॥

९१५. **अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे॥ ३॥**

पदपाठः— **अत्राहगोरमन्वत॥ ३॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १४७)

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् दोनों धर्मों से युक्त परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९१६. **इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि॥ १॥**

पदपाठः— **इयम् वाम् अस्य मन्मनः इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति पूर्व्यस्तुतिः पूर्व्य स्तुतिः अभ्रात् वृष्टिः इव अजनि॥ १॥**

अन्वयः—इन्द्राग्नी त्वाम् अस्य मन्मनः इयं पूर्व्यस्तुतिः अभ्रात्-वृष्टिः-इव-अजनि॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन्! (त्वाम्) तुझ दोनों धर्म वाले परमात्मा के लिए (अस्य मन्मनः) इस मननशील उपासक की (इयं पूर्व्यस्तुतिः) यह श्रेष्ठ स्तुति (अभ्रात्-वृष्टिः-इव-अजनि) मेघ से वृष्टि की

---

१. "जागतोऽश्वः प्राजापत्यः" [तै० ३.८.८.४]।

२. "तप्पर्वमरुद्भ्याम्" [अष्टा० ५.२.१२२ वा०]।

३. शर—बाण का लोहफलक, शर्य—फलकसहित बाण, शर्यणा—बाण को फेंकने के लिए झुकी ज्या—तांत या डोरी, शर्यणावत्—उससे युक्त धनुष "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते" [मुण्डको० २.२.४]।

भाँति निरन्तर बरस रही है इसे स्वीकार करे ॥ १ ॥

९१७. शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

पदपाठः— शृणुतम् जरितुः हवम् इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति वनतम् गिरः ईशाना पिप्यतम् धियः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी जरितुः-हवं शृणुतम् गिरः-वनतम् ईशान धियः पिप्यतम् ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन्! (जरितुः-हवं शृणुतम्) स्तुतिकर्ता को[1] आमन्त्रण को अभिप्राय को सुनो (गिरः-वनतम्) स्तुति वाणियों को स्वीकार करो (ईशान) हे जगत् के स्वामी! (धियः पिप्यतम्) कर्मों को—अध्यात्म कर्मों को[2] बढ़ाओ ॥ २ ॥

९१८. मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥

पदपाठः— मा पापत्वाय नः नरा इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति मा अभिशस्तये अभि शस्तये मा नः रिरधतम् निदे ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी नरा नः पापत्वाय मा रीरधतम् अभिशस्तये मा नः-मा निदे ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी नरा) हे ऐश्वर्यवन् ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन्! मेरे जीवननेता! (नः) हमें (पापत्वाय मा रीरधतम्) मानस पाप के लिए पापवश न करें[3] (अभिशस्तये मा) हिंसा करने के लिए शारीरिक पाप के वश न कर (नः-मा निदे) हमें निन्दा के लिए वाणी विषयक पापवश न करना ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—दृढ़च्युतः (दृढ़ दोष को भी च्युत नष्ट करने वाला उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री ॥

९१९. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

---

१. ''जरिता स्तोता'' [निघं० ३.१६]।
२. ''धीः कर्मनाम'' [निरु० २.१]।
३. ''रध्यतिर्वशगमने'' [निरु० ६.३२]।

पदपाठः— **पवस्वदक्षसाधनः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७४)

९२०. **सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः। पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सम् देवैः शोभते वृषा कविः योनौ अधि प्रियः पवमानः अदाभ्यः अ दाभ्यः ॥ २ ॥**

अन्वयः—वृषा कविः प्रियः पवमानः अदाभ्यः देवैः संशोभते ॥

पदार्थः—(वृषा) सुखवर्षक (कविः) क्रान्तदर्शी (प्रियः) स्नेही (पवमानः) धारारूप में प्राप्त होने वाला (अदाभ्यः) न दबने न हिंसित करने योग्य[1] परमात्मा (देवैः योनौ अधि संशोभते) मुमुक्षु उपासकजनों द्वारा स्तुति से उनके (योनौ अधि) हृदय में दीप्त होता है—प्रकाशित होता है[2] ॥ २ ॥

९२१. **पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्। धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **पवमान धिया हितः अभि योनिम् कनिक्रदत् धर्मणा वायुम् आ अरुहः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—पवमान धिया हितः योनिं कनिक्रदत् धर्मणा वायुम्–आरुहः ॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! (धिया हितः) ध्यान धारणा द्वारा धारा ध्याया हुआ (योनिं कनिक्रदत्) मिलने वाले—मिलने–समागम के पात्र उपासक को क्लयाणप्रवचन करता हुआ[3] (धर्मणा वायुम्–आरुहः) मोक्षधर्म के हेतु आयु को[4] ऊपर आरोपित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती ॥

९२२. **तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे। पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥ १ ॥**

---

१. ''न दब्धुमशक्नुवन्'' [काठक० ३०.७]।

२. ''शुभ दीप्तौ'' [भ्वादि०]।

३. ''कनिक्रदत् प्रब्रुवाणः'' [निरु० ९.३]।

४. ''आयुर्वा एष यद् वायुः'' [ऐ० आ० २.४.३]।

पदपाठः— **तवाहꣳसोमरारण ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१६)

९२३. **तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि। घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुनाइव पप्तिम ॥ २ ॥**

पदपाठः— **तव अहम् नक्तम् उत सोम ते दिवा दुहानः बभ्रो ऊधनि घृणा तपन्तम् अति सूर्यम् परः शकुनाः इव पप्तिम ॥ २ ॥**

अन्वयः— बभ्रो सोम तव-ऊधनि नक्तम्-उत दिवा-अहं दुहानः घृणा तपन्तं सूर्यम्-अति परः शकुनाः-इव पप्तिम ॥

पदार्थः— (बभ्रो सोम) हे भरण पोषण करने वाले शान्त परमात्मन्! (तव-ऊधनि) तेरे ऊधस—आनन्दरसाधान स्वरूप को (नक्तम्-उत दिवा-अहं दुहानः) रात्रि में सायं और दिन में—प्रातः मैं दोहता हुआ (घृणा तपन्तं सूर्यम्-अति) दीप्ति से[1] तपते चमकते सूर्य को अतिक्रम कर—जब तपता हुआ सूर्य छिपने के निकट आवे तब (परः शकुनाः-इव पप्तिम) परे देश से पक्षी जैसे घोंसले की ओर गमन करते हैं, ऐसे हम उपासक तुझ अपने आश्रय को[2] प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—बृहन्मतिः (बड़ी स्तुति वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९२४. **पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः। शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **पुनानोअक्रमीदभि ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८८)

९२५. **आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम्। ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥**

पदपाठः— **आ योनिम् अरुणः रुहत् गमत् इन्द्रः वृषा सुतम् ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥**

---

१. ''घृ क्षरणदीप्त्योः'' [जुहोत्यादि०] दीप्तिरत्र गृह्यते, तृतीयाया अलुक्।

२. लुप्तोमेयालङ्कारः।

अन्वयः—अरुणः योनिम्-आरुहत् वृषा-इन्द्रः सुतम्-आगमत् ॥

पदार्थः—(अरुणः) आरोचन—समन्त प्रकाशमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा[1] (योनिम्-आरुहत्) मिलने वाले—मिलने के इच्छुक उपासक में आ बैठा—आ बैठता है तब (वृषा-इन्द्रः सुतम्-आगमत्) इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा स्वयं सोम की ओर उस साक्षात् हुए की ओर झुक जाता है। पुनः ध्रुवस्थान में विराजित हो जाता है ॥ २ ॥

९२६. **नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **नू नः रयिम् महाम् इन्दो अस्मभ्यंꣳसोमविश्वतः आपवस्वसहस्रिणम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्दो सोम अस्मभ्यम् नु नः महाम् सहस्रिणः रयिम् आपवस्व ॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आनन्दरसरसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (नु) निश्चय (नः) हमारे (महाम्) महान् (सहस्रिणः) बहुमूल्य (रयिम्) धन को (आपवस्व) प्राप्त कर ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विराट् ॥

९२७. **पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥**

पदपाठः— **पिबासोममिन्द्रमन्दतुत्वा ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३९८)

९२८. **यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥**

पदपाठः— **यः ते मदः युज्यः चारुः अस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हरि अश्व हꣳसि सः त्वाम् इन्द्र प्रभूवसो प्रभु वसो ममत्तु ॥ २ ॥**

---

१. "अरुण आरोचनः" [निरु० ५.२०]।

अन्वयः—हर्यश्व प्रभूवसो-इन्द्र ते यः मदः-युज्यः-चारुः-अस्ति येन वृत्राणि हंसि सः-त्वाम् ममत्तु ॥

पदार्थः—(हर्यश्व प्रभूवसो-इन्द्र) ऋक् साम[1]—स्तुति उपासना जिस के घोड़े हैं अध्यात्मयान में जुड़ने वाले ऐसा तथा प्रभूत धन—महान् मोक्ष धन वाले हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते) तेरे लिए (यः) जो (मदः-युज्यः-चारुः-अस्ति) हर्षकर सोम उपासनारस है तेरे साथ योग का साधन सुन्दर है (येन वृत्राणि हंसि) जिससे तू उपासक के पाप—अनुदार भाव को नष्ट करता है (सः-त्वाम्) वह तुझे (ममत्तु) उपासक पर प्रसन्न करे ॥ २ ॥

९२९. **बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **बोध सु मे मघवन् वाचम् आ इमाम् याम् ते वसिष्ठः अर्चति प्रशस्तिम् प्र शस्तिम् इमा ब्रह्म सधमादे सध मादे जुषस्व ॥ ३ ॥**

अन्वयः—मघवन् ये-इमां वाचम्-आसुबोध यां प्रशस्तिं वसिष्ठः-अर्चति इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥

पदार्थः—(मघवन्) हे धनवन् इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ये-इमां वाचम्-आसुबोध) मेरी इस वाणी को समन्तरूप से भली भाँति समझ—समझता है जानता है सर्वज्ञ अन्तःसाक्षी होने से (यां प्रशस्तिं वसिष्ठः-अर्चति) जिस प्रशंसारूप—स्तुतिरूप वाणी को मैं यह तेरा उपासक बोलता हूँ तथा (इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व) इन प्रणववचनों को—ओ३म् जपों को[2] हर्षप्रदस्थान में मेरे हृदय में सेवन कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्रिशोको रेभो वा (तीन ज्ञानज्योतियों से युक्त[3] या स्तुति करने वाला उपासक[4]) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—अति जगती ॥

९३०. **विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥**

१. ''ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी'' [मै० ३.१०.६]।
२. ''ब्रह्म वै प्रणवः'' [कौ० ११.४; गो० २.३.११]।
३. ''शोचति ज्वलतिकर्मा'' [निघं० १.१६]।
४. ''रेभः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।

पदपाठः— **विश्वाःपृतनाअभिभूतरन्नरः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३७०)

९३१. **नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे । सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **नेमिम् नमन्ति चक्षसा मेषम् विप्राः वि प्राः अभिस्वरे अभि स्वरे सुदीतयः सु दीतयः वः अद्रुहः अ द्रुहः अपि कर्णे तरस्विनः सम् ऋक्वभिः ॥ २ ॥**

अन्वयः—विप्राः चक्षसा अभिस्वरे नेमिं मेषं नमन्ति वः सुदीतयः-तरस्विनः-अद्रुहः ऋक्वभिः अपि कर्णे सम् ॥

पदार्थः—(विप्राः) ऋषिजन[1] (चक्षसा) दर्शन हेतु[2] (अभिस्वरे) उच्च स्वर एवं स्नेहमय स्वर के निमित्त (नेमिं मेषं नमन्ति) नेता सुखसेचन करने वाले[3] ऐश्वर्यवान् परमात्मा को नमस्कार करते हैं—स्वात्मसमर्पण करते हैं (वः) 'यूयम्' तुम (सुदीतयः-तरस्विनः-अद्रुहः) शोभनगति वाले—सम्यक् ज्ञानी[4] तथा प्रशस्त बलवान् किसी से भी वैर न करने वाले (ऋक्वभिः) स्तुतिमन्त्रों के द्वारा (अपि कर्णे सम्) चाहे किसी कान में भी सुनने में आवे ऐसी सम्यक् स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

९३२. **समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये । स्वःपतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **सम् उ रेभासः अस्वरन् इन्द्रम् सोमस्य पीतये स्वःपतिः स्वा३रिति पतिः यदि वृधे धृतव्रतः धृत व्रतः हि ओजसा सम् ऊतिभिः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—रेभासः-इन्द्रं समस्वरन्-उ सोमस्य पीतये यत्-ई धृतव्रतः-स्वः-पतिः ओजसा-ऊतिभिः-हि संवृधे ॥

पदार्थः—(रेभासः-इन्द्रं समस्वरन्-उ) स्तुति करने वाले उपासकजन ऐश्वर्यवान् परमात्मा की सम्यक् अर्चना करते हैं[5] (सोमस्य पीतये) उनके उपासनारस के पान करने—स्वीकार करने के लिए (यत्-ई) कि जिससे (धृतव्रतः-स्वः-

---

१. ''विप्रा यद् ऋषयः'' [श० १.४.२.७]।

२. हेतौ तृतीया।

३. ''मिष सेचने'' [भ्वादि०]।

४. ''दीयति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

५. ''स्वरति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

पतिः) स्थिर कर्म वाला सुखों का स्वामी परमात्मा (ओजसा-ऊतिभिः-हि संवृधे) ओज से अनेक रक्षाक्रियाओं के द्वारा सम्यक् वृद्धि के लिए हो ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत—अतिशय से दोषों का हन्ता) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—प्रगाथः (विषमा बृहती) ॥

९३३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

पदपाठः— योराजाचर्षणीनाम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७३)

९३४. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि । हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ॥ २ ॥

पदपाठः— इन्द्रम् तम् शुम्भ पुरुहन्मन् पुरु हन्मन् अवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि वि धर्त्तरि हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतः महान् देवः न सूर्यः ॥ २ ॥

अन्वयः—पुरुहन्मन् तम्-इन्द्रम्-अवसे शुम्भ यस्य विधर्तरि द्विता हस्तेन वज्रः प्रतिधायि महान् दर्शतः-देवः-न सूर्यः ॥

पदार्थः—(पुरुहन्मन्) हे दोषों के अत्यन्त नाशक उपासक ! तू (तम्-इन्द्रम्-अवसे शुम्भ) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अपने रक्षण के लिए बोल—प्रार्थित कर[1] (यस्य विधर्तरि द्विता) जिस विशेषधकर्ता इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा में दो धर्म हैं भोग और अपवर्ग प्रदान करना या दण्ड और पुरस्कार देना (हस्तेन वज्रः प्रतिधायि) हस्त से वज्र प्रतिधान करना (महान् दर्शतः-देवः-न सूर्यः) दर्शनीय महान् देव सूर्य के समान है। सूर्य अन्धकार को नष्ट करता और प्रकाश को फैलाता है ऐसा परमात्मा उपासक की वासना को मिटाता है और शान्ति को बढ़ाता है ॥ २ ॥

षष्ठ खण्ड—प्रथम तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (पापवासना में न बँधा हुआ या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

९३५. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

---

१. ''शुम्भ भाषणे'' [भ्वादि०] ।

पदपाठः— **परिप्रियादिवःकविः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७६)

९३६. **स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्। महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः सूनुः मातरा शुचिः जातः जातेइति अरोचयत् महान् महीइति ऋतावृधा ऋत वृधा ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-महान् सूनुः-शुचिः-जातः मही ऋतावृधा मातरा जाते-अरोचयत्॥

पदार्थः—(सः-महान् सूनुः-शुचिः-जातः) वह महान् शान्तस्वरूप परमात्मा उत्पत्तिकर्ता प्रकाशमान[1] प्रसिद्ध हुआ (मही ऋतावृधा मातरा जाते-अरोचयत्) महती सत्यनियम के प्रसारक जगत् के माता पिता के समान उत्पन्न हुआ द्युलोक पृथिवीलोक को[2] प्रकाशमान कर रहा है ॥ २ ॥

९३७. **प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः। वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्रप्र प्र प्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टः अद्रुहः अ द्रुहः वीती अर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥**

अन्वयः—प्र प्र क्षयाय अद्रुहः पन्यसे जनाय पनिष्टये जुष्टः वीति-आर्ष ॥

पदार्थः—(प्र प्र क्षयाय) उत्तरोत्तर प्रकृष्ट निवास[3] मोक्षधाम प्राप्ति के निमित्त (अद्रुहः पन्यसे जनाय) द्रोह न करने वाले[4] अपितु स्तुतिकर्ता जन के लिए (पनिष्टये जुष्टः) स्तुति के लिए सेवित हुआ—उपासित हुआ (वीति-आर्ष) प्राप्ति के लिए अर्थात् अभीष्ट प्राप्ति के लिये प्राप्त हो ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वासिष्ठः शक्तिः (परमात्मा में वसने वाले से सम्बद्ध समर्थ उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९३८. **त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥**

---

१. ''शोचति ज्वलतिकर्मा'' [निघं० १.१६]।

२. ''दौर्मे पिता....माता पृथिवी महीयम्'' [ऋ० १.१६४.३३]।

३. ''क्षि निवासे'' [तुदादि०]।

४. चतुर्थ्यर्थे षष्ठी।

पदपाठः— **त्वᳲह्या३ऽङ्गादैव्य ॥ १ ॥**

(देखो अर्थ व्याख्या मन्त्र संख्या ५८३)

९३९. **येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे। देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥ २ ॥**

पदपाठः— **येन नवग्वा नव ग्वा दध्यङ् अपोर्णुते अप ऊर्णुते येन विप्रासः वि प्रासः आपिरे देवानाम् सुम्ने अमृतस्य अ मृतस्य चारुणः येन श्रवाᳲसि आशत ॥ २ ॥**

अन्वयः—येन नवग्वाः-दध्यङ्-अप-ऊर्णुते येन विप्रासः-आपिरे देवानां सुम्ने अमृतस्य च अरुणः येन श्रवांसि-आशत ॥

पदार्थः—(येन) जिस शान्तस्वरूप परमात्मा के द्वारा (नवग्वाः-दध्यङ्-अप-ऊर्णुते) नव गति अध्यात्म प्रवृत्ति जिनकी या नवप्राप्त गति अध्यात्म में प्रवेश जिनका है ऐसे पूर्ण खोज से अध्यात्मप्रवेश वाले[1] तथा ध्यान को प्राप्त जन[2] अध्यात्मावरक पट को खोल देते हैं (येन विप्रासः-आपिरे) जिस परमात्मा के आश्रय से उपासकजन अध्यात्मफल मोक्ष प्राप्त करते हैं (देवानां सुम्ने) जीवन्मुक्तों के सुख में[3] (अमृतस्य च) मुक्त के सुख में (अरुणः) आरोचन परमात्मा साक्षात् होता है (येन श्रवांसि-आशत) जिस परमात्मा के आश्रय से उपासकजन विविध यश[4] प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (साक्षात् द्रष्टा अग्रणेता)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—ककुप्॥

९४०. **सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **सोमःपुनानऊर्मिणा ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७२)

---

१. "नवग्वा नवगतयो नवनीतागतयो वा" [निरु० ११.१९]।

२. "दध्यङ्प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२.२३]।

३. "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३.६]।

४. "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९]।

९४१. धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्। अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन्॥ २॥

पदपाठः— धीभिः मृजन्ति वाजिनम् वने क्रीडन्तम् अत्यविम् अति अविम् अभि त्रिपृष्ठम् त्रि पृष्ठम् मतयः सम् अस्वरन्॥ २॥

अन्वयः—(मतयः) अर्चना[1] स्तुति करने वाले मेधावी[2] उपासक (अत्यविम्) अवि—पृथिवी[3] पार्थिव शरीर को अतिक्रान्त किए हुए—शरीरबन्धन से रहित (वने क्रीडन्तम्) वननीय संसार में क्रीड़ा करते हुए जैसे (वाजिनम्) अमृत अन्न भोग वाले[4] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (धीभिः-मृजन्ति) ध्यानक्रियाओं के द्वारा प्राप्त करते हैं[5] (त्रिपृष्ठम्-अभि समस्वरन्) तीन दिशाओं स्तुति प्रार्थना उपासना को या 'अ उ म्' को सम्मुख रख कर सम्यक् अर्चना[6] करते हैं॥ २॥

९४२. असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः। पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत्॥ ३॥

पदपाठः— असर्जि कलशान् अभि मीढ्वान् सप्तिः न वाजयुः पुनानः वाचम् जनयन् असिष्यदत्॥ ३॥

अन्वयः—वाजयुः मीढ्वान्-सप्तिः-न कलशान्-अभि-असर्जि पुनानः वाचं जनयन्-असिष्यदत्॥

पदार्थः—(वाजयुः) उपासकों के लिए अमृत अन्न भोग को चाहता हुआ (मीढ्वान्-सप्तिः-न) वीर्यसिञ्चन समर्थ घोड़े[7] के समान उछलता हुआ-सा (कलशान्-अभि-असर्जि) उपासकों के कल कल शब्द वाले हृदयों के प्रति हृदय में निष्पन्न साक्षात् किया जाता है (पुनानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ (वाचं जनयन्-असिष्यदत्) आशीर्वचन बोलता हुआ आनन्दधारा में बहता है॥ ३॥

---

१. "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
२. "मतय-मेधाविनाम" [निघं० ३.१५]।
३. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.३२]।
४. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
५. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
६. "स्वरति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
७. "सप्तिः-अश्वनाम" [निघं० ११.४]।

चतुर्थ तृच

ऋषिः—प्रतर्दनः (कामादि दोषों का निराकरणकर्ता) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

९४३. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥

पदपाठः— सोमःपवतेजनितामतीनाम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२७)

९४४. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥

पदपाठः— ब्रह्मा देवानाम् पदवीः पद वीः कवीनाम् ऋषिः विप्राणाम् वि प्राणाम् महिषः मृगाणाम् श्येनः गृध्राणाम् स्वधितिः स्व धितिः वनानाम् सोमः पवित्रम् अति एति रेभन् ॥ २ ॥

यहाँ लुप्तोपमावाचकालङ्कार है।

अन्वयः—देवानां ब्रह्मा कवीनां पदवीः विप्राणाम्–ऋषिः मृगाणां महिषः गृध्राणां श्येनः वनानां स्वधितिः सोमः–रेभन् पवित्रम्–अत्येति ॥

पदार्थः—(देवानां ब्रह्मा) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा हम उपासकों का मानस्थान ऐसा है जैसे विद्वानों में[1] ब्रह्मा ज्ञानवृद्ध मान्य होता है (कवीनां पदवीः) क्रान्तदर्शी जनों में पदवेत्ता (विप्राणाम्–ऋषिः) मेधावी जनों शिक्षकों में ऋषि (मृगाणां महिषः) जङ्गली पशुओं में महिष पशु है (गृध्राणां श्येनः) पक्षियों में श्येन—भास—बाज पक्षी है (वनानां स्वधितिः) शब्दकारी पदार्थों में[2] वज्र—विद्युत् का निर्घोष[3] (सोमः–रेभन् पवित्रम्–अत्येति) इस प्रकार शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को आशीर्वाद देता हुआ हृदयावकाश में प्रशस्तरूप से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

---

१. "विद्वांसो हि देवाः" [श० ३.७.३.१०]

२. "वन शब्दे" [भ्वादि०]

३. "स्वधितिः–वज्रनाम" [निघ० २.२०] "वज्रः स्वधितिः" [मै० ३.९.६]

९४५. प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः। अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥ ३॥

पदपाठः— प्र अवीविपत् वाचः ऊर्म्मिम् न सिन्धुः गिरः स्तोमान् पवमानः मनीषाः अन्तरिरिति पश्यन् वृजना इमा अवराणि आ तिष्ठति वृषभः गोषु जानन्॥ ३॥

अन्वयः—पवमानः-मनीषाः-वाचः प्रावीविपत् सिन्धुः-ऊर्मिं न गिरः-स्तोमान् इमा-अवराणि वृजना-अन्तः पश्यन् वृषभः-जानन् गोषु-आतिष्ठति॥

पदार्थः—(पवमानः-मनीषाः-वाचः प्रावीविपत्) धारारूप में प्राप्त हुआ अन्तर्यामी परमात्मा उपासक की वाणियों को प्रेरित करता है (सिन्धुः-ऊर्मिं न) समुद्रतरङ्ग को प्रेरित करता है (गिरः-स्तोमान्) स्तुतियाँ स्तोमों—स्तुतिसमूहों को भी स्वदर्शनानुरूप करता है (इमा-अवराणि वृजना-अन्तः पश्यन्) उपासक के इन अल्पबलों को[1] अन्दर देखता हुआ (वृषभः-जानन् गोषु-आतिष्ठति) सुख की वर्षा करने वाला इन्द्रियों में—इन्द्रियों को समर्थ बनाता हुआ साक्षात् होता है॥ ३॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रयोगो भार्गवः (ज्ञान से भृज्यमान के प्रयोग का कर्ता)॥

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९४६. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्। अच्छा नप्त्रे सहस्वते॥ १॥

पदपाठः— अग्निंवोवृधन्तम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २१)

९४७. अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या। अस्य क्रत्वा यशस्वतः॥ २॥

पदपाठः— अयम् यथा नः आभुवत् आ भुवत् त्वष्टा रूपा इव तक्ष्या अस्य क्रत्वा यशस्वतः॥ २॥

अन्वयः—अयम् नः-आभुवत् यथा त्वष्टा तक्ष्या रूपा-इव अस्य यशस्वतः क्रत्वा॥

---

१. "वृजनं बलनाम" [निघं० २.९]।

पदार्थः—(अयम्) यह अग्रणेता ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (नः-आभुवत्) हम पर अधिकार करता है (यथा त्वष्टा) तक्षक—बढई (तक्ष्या रूपा-इव) घड़ने योग्य वस्तुओं पर अधिकार करता है (अस्य यशस्वतः) इस यशस्वी परमात्मा के (क्रत्वा) प्रज्ञान—आदेश के अनुसार हम चलें॥ २॥

९४८. अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते। आ वाजैरुप नो गमत्॥ ३॥

पदपाठः— अयम् विश्वाः अभि श्रियः अग्निः देवेषु पत्यते आ वाजैः उप नः गमत्॥ ३॥

अन्वयः—अयम्-अग्निः विश्वाः-श्रियः देवेषु अभिपत्यते नः-वाजैः-उपागमत्॥

पदार्थः—(अयम्-अग्निः) यह अग्रणेता परमात्मा (विश्वाः-श्रियः) सारी श्री—लक्ष्मी शोभाओं का (देवेषु) देवों—मुमुक्षुओं के निमित्त (अभिपत्यते) स्वामित्व करता है[1] (नः-वाजैः-उपागमत्) वह हमें अमृत अन्न भोगों के साथ पास आवे—प्राप्त हो॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

९४९. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्। शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने॥ १॥

पदपाठः— इममिन्द्रसुतम्पिब॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४४)

९५०. न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे। न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे॥ २॥

पदपाठः— न किः त्वत् रथीतरः हरीइति यत् इन्द्र यच्छसे न किः त्वा अनु मज्मना न किः स्वश्वः सु अश्वः आनशे॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र त्वत्-रथीतरः-न किः हरी यत्-यच्छसे मज्मना त्वा-अनु न किः स्वश्वः न किः-आनशे॥

---

१. ''पत्यते ऐश्वर्यकर्मा'' [निघं० २.२१]।

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वत्-रथीतरः-न किः) तुझ से भिन्न मोक्षरथ—रमणस्थान का स्वामी कोई नहीं (हरी यत्-यच्छसे) ऋक् साम स्तुति—उपासना को तू ही अपने में स्थान देता है (मज्मना त्वा-अनु न किः) बल से[१] भी तेरे समान कोई नहीं (स्वश्वः न किः-आनशे) शोभन व्यापन धर्म वाला भी तेरा जैसा कोई संसार भर में नहीं व्यापता है॥ २॥

९५१. **इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः॥ ३॥**

पदपाठः— **इन्द्राय नूनम् अर्चत उक्थानि च ब्रवीतन ब्रवीत न सुताः अमत्सुः इन्दवः ज्येष्ठम् नमस्यत सहः॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्राय नूनम्-अर्चत च उक्थानि ब्रवीतन ज्येष्ठं सहः-नमस्यत सुताः-इन्दवः-अमत्सुः॥

पदार्थः—(इन्द्राय नूनम्-अर्चत) हे उपासको! तुम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये निश्चय[२] अर्चना करो (च) और (उक्थानि ब्रवीतन) प्रशंसावचन बोलो (ज्येष्ठं सहः-नमस्यत) अतिमहान् तथा बलवान्[३] को नमस्कार करो—नम्रभाव आत्मा में लाओ (सुताः-इन्दवः-अमत्सुः) इस प्रकार तुम्हारे द्वारा निष्पादित या सम्पन्न किए उपासनारस तुम्हें आनन्दित करें॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अनिर्दिष्ट होने से पूर्ववत्॥ देवता—दृष्टलिङ्ग इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषम अनुष्टुप्॥

९५२. **इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह। पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्र जुषस्व प्र वह आ याहि शूर हरीह पिब सुतस्य मतिः न मधोः चकानः चारुः मदाय॥ १॥**

अन्वयः—शूर हरिह-इन्द्र जुषस्व प्रवह आयाहि मतिः-न सुतस्य पिब मधोः-चकानः मदाय चारुः॥

पदार्थः—(शूर हरिह-इन्द्र) हे शक्तिमन् स्तुति—उपासना के द्वारा उपासक को प्राप्त होने वाले[४] ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (जुषस्व) हम से प्रीति कर (प्रवह) हमें

---

१. "मज्मना बलनाम" [निघं० २.९]।

२. "नूनं निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धने]।

३. "सहः-बलनाम" [निघं० २.९]। मतुबर्थप्रत्ययस्य लुक् छान्दसः।

४. "हन् हिंसागत्यो" [अदादि०] सम्बुद्धौ छान्दसः प्रयोगः।

आगे ले जा (आयाहि) हमारे पास आ (मतिः-न सुतस्य पिब) मान करनेवाले की भाँति निष्पन्न उपासनारस को[1] पान कर—स्वीकार कर (मधोः-चकानः) हमारे लिए मधु की कामना करता हुआ (मदाय चारुः) आनन्द प्राप्ति के लिए सुन्दर बन ॥ १ ॥

छन्दः—अनुष्टुप्॥

९५३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न। अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

पदपाठः— इन्द्र जठरम् नव्यम् न पृणस्व मधोः दिवः न अस्य सुतस्य स्वः न उप त्वा मदाः सुवाचः सु वाचः अस्थुः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्र नव्यं जठरं न पृणस्व दिवः-मधोः-न अस्य सुतस्य मदाः स्वः-न सुवाचः त्वा-उपस्थुः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (नव्यं जठरं न पृणस्व) स्तुत्य—समर्थ जठर उदर के समान मुझ उपासक को दर्शनामृत से तृप्त कर, तथा (दिवः-मधोः-न) जैसे आकाश के जल[2] से तू प्राणियों को तृप्त करता है (अस्य सुतस्य) इस हमारे द्वारा निष्पन्न उपासनारस के (मदाः स्वः-न) हर्षतरङ्ग तेरे दिए सुख के समान (सुवाचः) सुन्दर वाणियों वाले (त्वा-उपस्थुः) तुझे—तेरे लिए उपस्थित हैं ॥ २ ॥

छन्दः—त्रिष्टुप्॥

९५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न। बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्रः तुराषाट् मित्रः मि त्रः न जघान वृत्रम् यतिः न बिभेद बलम् भृगुः न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्रः-तुराषाट्-मित्रः-न वृत्रं जघान यतिः-न ॥

पदार्थः—(इन्द्रः-तुषाट्-मित्रः-न) परमात्मा उपासित हुआ उपासक के काम आदि को तुरन्त दबा देने वाला है सूर्य[3] की भाँति जैसे सूर्य प्रकाशित होते ही अन्धकार को दबा देता है (वृत्रं जघान यतिः-न) परमात्मा उपासक के भविष्य में होने वाले पाप[4] को नष्ट कर देता है यति—ब्रह्मचारी जैसे पाप को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः

---

१. द्वितीयार्थे षष्ठी।
२. "मधु-उदकनाम" [निघं० १.१२]।
३. "मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्" [काठ० २३०.१२]।
४. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।

अथ षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रय ऋषिगणाः (तीन ऋषिगण—मन वाणी प्राण के द्रष्टा ज्ञाता)॥
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला सोम)॥
छन्दः—जगती॥

९५५. गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः। त्वं सुवीरो असि सोम विश्वविक्तं त्वा नर उप गिरेम आसते॥ १॥

पदपाठः—गोवित् गो वित् पवस्व वसुवित् वसु वित् हिरण्यवित् हिरण्य वित् रेतोधाः रेतः धाः इन्दो भुवनेषु अर्पितः त्वम् सुवीरः सु वीरः असि सोम विश्ववित् विश्व वित् तम् त्वा नरः उप गिरा इमे आसते॥ १॥

अन्वयः—इन्दो सोम गोवित् वसुवित् हिरण्यवित् रेतोधा भुवनेषु-अर्पितः त्वम् सुवीरः-असि विश्ववित् इमे नरः-तं त्वा गिरा-उपासते॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आनन्दरसपूर्ण शान्त परमात्मन्! तू (गोवित्) वाणी—वेदवाणी को प्राप्त कराने वाला (वसुवित्) मोक्षवास प्राप्त कराने वाला (हिरण्यवित्) अमृत को प्राप्त कराने वाला[1] (रेतोधा) प्राण का धारण कराने वाला[2] (भुवनेषु-अर्पितः) सब लोकों—पिण्डों में प्राप्त है (त्वम्) तू (सुवीरः-असि) उपासकजन उत्तम वीर जिसके आश्रय से बन जाते हैं ऐसा है (विश्ववित्) सर्वज्ञ है (इमे नरः-तं त्वा गिरा-उपासते) ये मुमुक्षुजन स्तुति से उस तुझ को उपासित करते हैं, तेरी उपासना करते हैं॥ १॥

९५६. त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि। स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे॥ २॥

---

१. ''अमृतं वै हिरण्यम्'' [तै० स० ५.२.७.२]।
२. ''प्राणो रेतः'' [ऐ० २.३८]।

पदपाठः— त्वम् नृचक्षाः नृ चक्षाः असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि सः नः पवस्व वसुमत् हिरण्यवत् वयम् स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

अन्वयः—पवमान सोम वृषभ नृचक्षाः-असि ता त्वं विश्वतः-विधावसि सः वसुवित्-हिरण्यवित् पवस्व वयं भुवनेषु जीवसे स्याम ॥

पदार्थः—(पवमान सोम) धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वृषभ) सुखवर्षक (नृचक्षाः-असि) मुमुक्षुजनों को देखता है—जानता है कौन से हैं (ता त्वं विश्वतः-विधावसि) तू उन सुखों को प्राप्त कराने सब ओर विविध गुणों से जाता है प्राप्त होता है (सः) वह तू (वसुवित्-हिरण्यवित् पवस्व) मोक्षवास प्राप्त कराने वाला अमृत प्राप्त कराने वाला हमें प्राप्त हो (वयं भुवनेषु जीवसे स्याम) हम लोकों में जीने के लिए समर्थ होवें ॥ २ ॥

९५७. ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥

पदपाठः— इशानः इमा भुवनानि ईयसे युजानः इन्द्रो हरितः सुपर्ण्यः सु पर्ण्यः ताः ते क्षरन्तु मधुमत् घृतम् पयः तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्दो सोम इमा भुवनानि-ईशानः-ईयसे हरितः सुपर्ण्यः-युजानः ताः-ते मधुमत्-घृतं पयः क्षरन्तु तव व्रते कृष्टयः-तिष्ठन्तु ॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आनन्दरसरसीले शान्त परमात्मन्! तू (इमा भुवनानि-ईशानः-ईयसे) इन लोकों का स्वामित्व करने के हेतु इन्हें प्राप्त है इनमें व्याप्त है (हरितः सुपर्ण्यः-युजानः) आनन्द की हरणशील[1] स्तुतिवाणियों[2] से युक्त हुआ रह (ताः-ते मधुमत्-घृतं पयः क्षरन्तु) वे तेरे मधुर तेज[3] को और रस को ले लेती हैं (तव व्रते कृष्टयः-तिष्ठन्तु) तेरे व्रत में—वरणीय आदेश में उपासकजन[4] रहते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपः (पश्यक—ज्ञानी ब्रह्मदर्शी) ॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला सोम) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

---

१. ''हरितः-हरणाः'' [निरु० ४.१०]।

२. ''वागेव सुपर्णी'' [श० ३.६.२.२]।

३. ''तेजो वै घृतम्'' [मै० १.६.८]।

४. ''कृष्टयो मनुष्याः'' [निघं० २.३]।

९५८. पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत। सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

पदपाठः— पवमानस्य विश्ववित् विश्व वित् प्र ते सर्गाः असृक्षत सूर्यस्य इव न रश्मयः ॥ १ ॥

अन्वयः—विश्ववित् ते पवमानस्य सर्गाः प्रासृक्षत सूर्यस्य-इव न रश्मयः ॥

पदार्थः—(विश्ववित्) हे विश्ववेत्ता सर्वज्ञ परमात्मन्! (ते पवमानस्य सर्गाः) तुझ धारारूप में प्राप्त होते हुए के आनन्दप्रवाह (प्रासृक्षत) प्रवाहित हो रहे हैं (सूर्यस्य-इव न रश्मयः) सूर्य की रश्मियों के समान सूर्य की रश्मियाँ जैसे सूर्य से चली आ रही होती हैं ऐसे[1] ॥ १ ॥

९५९. केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि। समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

पदपाठः— केतुम् कृण्वन् दिवः परि विश्वा रूपा अभि अर्षसि समुद्रः सम् उद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

अन्वयः—सोम दिवः-परि केतुं कृण्वन् विश्वा रूपा-अभ्यर्षसि समुद्रः पिन्वसे ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (दिवः-परि) अपने द्योतनात्मक स्वरूप में होता हुआ (केतुं कृण्वन्) उपासकों के निज प्रज्ञान—ज्ञानधारा को करता हुआ (विश्वा रूपा-अभ्यर्षसि) सब निरूपणीय वस्तुओं को प्रकाशित करता है (समुद्रः पिन्वसे) तू आनन्दसागर बना उपासकों को तृप्त करता है ॥ २ ॥

९६०. जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि। क्रन्दन् देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

पदपाठः— जज्ञानः वाचम् इष्यसि पवमान विधर्म्मणि वि धर्म्मणि क्रन्दन् देवः न सूर्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—पवमान विधर्मणि जज्ञानः वाचम्-इष्यसि क्रन्दन् देवः-न सूर्यः ॥

पदार्थः—(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (विधर्मणि जज्ञानः) विशेष उपासनाधर्मी उपासक के हृदय में प्रकट हुआ (वाचम्-इष्यसि) स्तुति वाणी को प्राप्त होता है[2] (क्रन्दन् देवः-न सूर्यः) मानो सूर्य अपने को प्रकाश से घोषित करता हुआ आता है ऐसे तू भी आनन्दधारा द्वारा घोषित करता हुआ

१. ''इव अनर्थक :''।

२. ''इष गतौ'' [दिवादि०]।

आता है ॥ ३ ॥

तृतीय सप्तर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (बन्धनरहित—रागरहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला सोम)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९६१. प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः। श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

पदपाठः— प्र सोमासः अधन्विषुः पवमानासइन्दवः श्रीणानाः अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

अन्वयः—पवमानासः-इन्दवः सोमासः प्राधन्विषुः श्रीणानाः अप्सु वृञ्जते ॥

पदार्थः—(पवमानासः-इन्दवः सोमासः) 'बहुवचन आदरार्थ' धारा रूप में प्राप्त होता हुआ आनन्दरसपूर्ण शान्त परमात्मा (प्राधन्विषुः) उपासक के हृदय में प्रगति कर रहा है—प्रवाहित हो रहा है (श्रीणानाः) आत्मा से मिश्रण कर संयुक्त हो (अप्सु वृञ्जते) प्राणों के अन्दर[१] अपने आनन्दरस छोड़ता है, इस उपासक का आत्मा हृदय और प्राण परमात्मा के आनन्दरस से पूर्ण हो जाते हैं ॥ १ ॥

९६२. अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः। पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

पदपाठः— अभि गावः अधन्विषुः आपः न प्रवता यतीः पुनानाः इन्द्रम् आशत ॥ २ ॥

अन्वयः—गावः-अभि-अधन्विषुः यतीः-आपः-न प्रवताः पुनानाः-इन्द्रम्-आशत ॥

पदार्थः—(गावः-अभि-अधन्विषुः) इस प्रकार गतिशील शान्तस्वरूप परमात्मा सर्वत्र गति करता है (यतीः-आपः-न प्रवताः) जैसे चलते हुए बहते हुए जल नीचे नीचे चले जाते हैं (पुनानाः-इन्द्रम्-आशत) पवित्रता करते हुए—काम मलों को शोधता हुआ आत्मा को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

९६३. प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः। नृभिर्यतो वि नीयते ॥ ३ ॥

पदपाठः— प्र पवमान धन्वसि सोम इन्द्राय मादनः नृभिः यतः वि नीयसे ॥ ३ ॥

---

१. ''प्राणा वा आपः'' [तां० ९.९.४]।

अन्वयः—पवमान सोम मादनः इन्द्राय प्रधन्वसि नृभिः-यतः विनीयसे ॥

पदार्थः—(पवमान सोम) धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (मादनः) हर्षित करता हुआ (इन्द्राय प्रधन्वसि) उपासक आत्मा के लिए प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होता है (नृभिः-यतः) मुमुक्षुजनों[1] से संयत—योगसाधन द्वारा अभ्यस्त किया हुआ (विनीयसे) अपनी ओर प्राप्त किया जाता है—साक्षात् धारण किया जाता है ॥ ३ ॥

९६४. इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे। अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

पदपाठः— इन्दो यत् अद्रिभिः अ द्रिभिः सुतः पवित्रम् परिदीयसे परि दीयसे अरमिन्द्रस्यधाम्ने ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्दो अद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे इन्द्रस्य धाम्ने-अरम् ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (अद्रिभिः सुतः) श्लोककर्त्ताओं स्तुतिकर्ता जनों से[2] उपासित किया हुआ (पवित्रं परिदीयसे) निर्वासन हृदयों[3] में परिप्राप्त होता है[4] (इन्द्रस्य धाम्ने-अरम्) उपासक आत्मा के अभीष्ट धाम—मोक्षधाम प्राप्ति के लिए समर्थ[5] है ॥ ४ ॥

९६५. त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः। सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥

पदपाठः— त्वम् सोम नृमादनः नृ मादनः पवस्व चर्षणीधृतिः चर्षणि धृतिः सस्निः यः अनुमाद्यः अनु माद्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—सोम त्वम् नृमादनः चर्षणीधृतः यः-सस्निः-अनुमाद्यः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (नृमादनः) मुमुक्षुजनों का हर्षदाता (चर्षणीधृतः) साक्षात् करनेवाले उपासकों द्वारा धारण करनेयोग्य (यः-सस्निः-अनुमाद्यः) जो शुद्ध या उपासकों का स्नानाधार[6] अर्चनीय उपासनीय[7] है ॥ ५ ॥

---

१. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।
२. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [काठ० १.५]।
३. ''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥'' [कठो० वल्ली ६.१४]।
४. ''दीयति गतिकर्मा'' [निघ० १.१४]।
५. ''अरम्—अलम्-समर्थादौ'' [अव्ययार्थनिबन्धने]।
६. ''सस्निं संस्नातम्'' [निरु० ५.१]।
७. ''मदति-अर्चतिकर्मा'' [निघ० ३.१४]।

९६६. **पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः। शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **पवस्व वृत्रहन्तमः वृत्र हन्तमः उक्थेभिः अनुमाद्यः अनुमाद्यः शुचिः पावकः अत्भुतः ॥ ६ ॥**

अन्वयः—वृत्रहन्तमः उक्थेभिः-अनुमाद्यः शुचिः पावकः अद्भुतः ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्तमः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू मेरे अन्दर के पापों का अत्यन्त हननकर्ता (उक्थेभिः-अनुमाद्यः) प्रशस्त वचनों द्वारा निरन्तर स्तुति योग्य (शुचिः) स्वयं पवित्र (पावकः) उपासक को पवित्र करने वाला (अद्भुतः) विरला—अपूर्व है ॥ ६ ॥

९६७. **शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान्। देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **शुचिः पावकः उच्यते सोमः सुतः सः मधुमान् देवावीरघशꣳसहा ॥ ७ ॥**

अन्वयः—सोमः सुतः शुचिः पावकः मधुमान् उच्यते देवावीः अघशंसहा ॥

पदार्थः—(सोमः सुतः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासना द्वारा निष्पन्न किया हुआ—साक्षात् किया हुआ (शुचिः पावकः) निर्मल निःसङ्ग केवल दोषशोधक (मधुमान्) मधुररस वाला (उच्यते) कहा जाता है (देवावीः) मुमुक्षुओं का रक्षक (अघशंसहा) पापप्रशंसक विचारों का नाशक है ॥ ७ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम सप्तर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागादि बन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९६८. **प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत। साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **प्र कविः देववीतये देव वीतये अव्याः वारेभिः अव्यत साह्वान् विश्वाः अभिः स्पृधः ॥ १ ॥**

अन्वयः—कविः देववीतये अव्याः-वारेभिः-अव्यत विश्वाः स्पृधः-अभि साह्वान् ॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (देव-वीतये) देवों मुमुक्षु उपासकों की कमनीया[1] मुक्ति के लिए (अव्याः-वारेभिः-अव्यत) देवों मुमुक्षु उपासकों को अवि—पृथिवी—पार्थिव देह के[2] वरणीय मन श्रोत्र नेत्र वाणी आदि साधनों अङ्गों के द्वारा—मनन श्रवण दर्शन स्तवन करा कर प्रेरित करता है[3] (विश्वाः स्पृधः-अभि) उपासक की सारी स्पर्धा—संघर्ष करने वाली[4] वासनाओं को अभिभूत कर दबा कर (साह्वान्) सहन कराने वाला—सहन करने में प्रतिरोध कराने समर्थ बनाने वाला है ॥ १ ॥

९६९. स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्त्रिणम् ॥ २ ॥

पदपाठः— सः हि स्म जरितृभ्यः आ वाजम् गोमन्तम् इन्वति पवमानः सहस्त्रिणम् ॥ २ ॥

अन्वयः—सः-पवमानः-हि स्म जरितृभ्यः सहस्त्रिणम् गोमन्तम् वाजम् आ-इन्वति ॥

पदार्थः—(सः-पवमानः-हि स्म) यह धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा ही (जरितृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिए[5] (सहस्त्रिणम्) सहस्त्रों में ऊँचा (गोमन्तम्) स्तुति वाला—स्तुति प्रतिफल (वाजम्) अमृत अन्नभोग को[6] (आ-इन्वति) प्राप्त कराता है ॥ २ ॥

९७०. परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

पदपाठः— परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती सः नः सोम श्रवः विदः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम चेतसा विश्वानि परिमृज्यसे मती पवसे सः नः-श्रवः-विदः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (चेतसा) चित्त को लक्ष्य बनाकर—चित्त की पवित्रता तथा चिन्तनशीलता को लक्ष्य बनाकर या चित्त से

---

१. "वी गति....कान्त्य...." [अदादि०], "वेति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६]।
२. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.३३] ॥
३. "वेति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
४. "स्पर्ध संघर्षे" [भ्वादि०]।
५. "जरिता स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
६. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

किए (विश्वानि परिमृज्यसे) समस्त चिन्तनों को परिप्राप्त होता है[१] तथा (मती पवसे) वाणी से[२] की गई स्तुति को लक्ष्य कर या द्वारा हम तक पहुँचता है तब तो (सः) वह तू (नः-श्रवः-विदः) हमारे लिए अपने यशोरूप को[३] प्राप्त करा ॥ ३ ॥

९७१. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्। इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ४॥

पदपाठः— अभि अर्ष बृहत् यशः मघवद्भ्यः ध्रुवम् रयिम् इषःꣳस्तोतृभ्यआभर॥ ४॥

अन्वयः—मघवद्भ्यः स्तोतृभ्यः बृहद् यशः-ध्रुवं रयिम् अभ्यर्ष इषम्-आभर॥

पदार्थः—(मघवद्भ्यः स्तोतृभ्यः) अध्यात्मयज्ञानुष्ठानी[४] स्तोताओं के लिए (बृहद् यशः-ध्रुवं रयिम्) अपने महत् यशोरूप को[५] तथा मोक्षैश्वर्य को (अभ्यर्ष) प्राप्त करा, एवं (इषम्-आभर) तदनुकूल कामना को आभरित कर—पूरा कर[६] ॥ ४॥

९७२. त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ। पुनानो वह्ने अद्भुत॥ ५॥

पदपाठः— त्वम् राजा इव सुव्रतः सु व्रतः गिरः सोम आ विवेशिथ पुनानः वह्ने अद्भुत अत् भुत॥ ५॥

अन्वयः—अद्भुत वह्ने सोम त्वम् राजा-इव सुव्रतः पुनानः-गिरः-आविवेशिथ॥

पदार्थः—(अद्भुत वह्ने सोम) हे विरले अपूर्व उपासकों के निर्वाहक शान्तस्वरूप परमात्मदेव! (त्वम्) तू (राजा-इव सुव्रतः) राजा के समान अच्छे सङ्कल्प तथा कर्म करने वाला है, जैसे राजा प्रजा का हितकर चिन्तन और कर्म करता है, ऐसा तू (पुनानः-गिरः-आविवेशिथ) पवित्र करता हुआ हम उपासक प्रजाओं में[७] आवेश करे—प्राप्त हो॥ ५॥

९७३. स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः। सोमश्चमूषु सीदति॥ ६॥

---

१. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
२. "वाग् वै मतिः" [श० ८.१.२.७]॥
३. "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० १२.९]।
४. "यज्ञेन मघवान् भवति" [तै० सं० ४.४.८.१]।
५. "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२.३]।
६. "इषवान् कामवान्" [निरु० १०.४२]।
७. "विशो गिरः" [श० ३.६.१.२४]।

पदपाठः— **सः वह्निः अप्सु दुष्टरः दुः तरः मृज्यमानः गभस्त्योः सोमः चमूषु सीदति ॥ ६ ॥**

अन्वयः—सः–वह्निः–सोमः अप्सु दुष्टरः गभस्त्योः–मृज्यमानः चमूषु सीदति ॥

पदार्थः—(सः–वह्निः–सोमः) वह उपासकों का निर्वाहक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अप्सु दुष्टरः) कामनाओं में[1] फँसे रहने में तो दुष्प्राप्य है—अप्राप्य है (गभस्त्योः–मृज्यमानः) गभ—प्रजा—सन्ततिभाव[2] को फेंक हटाने मिटाने वाले अभ्यास और वैराग्य में प्राप्त होता हुआ (चमूषु सीदति) विषय वासनाओं के चमनों भक्षणों[3]—मन बुद्धि चित्त अहङ्काररूप पात्रों में बैठ जाता है। इन ही में परमात्मा का मनन विवेचन स्मरण व ममत्व होता रहता है ॥ ६ ॥

९७४. **क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **क्रीडुः मखः न मंहयुः पवित्रम् सोम गच्छसि दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् सु वीर्यम् ॥ ७ ॥**

अन्वयः—सोम क्रीडुः–मखः–न मंहयुः पवित्रं गच्छसि स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् ॥

पदार्थः—(सोम क्रीडुः–मखः–न मंहयुः) शान्तस्वरूप परमात्मन्! यज्ञ के समान[4] खेलता हुआ-सा—चलता हुआ महत्त्व को प्राप्त होने वाला उपासक के अन्दर महिमा को प्राप्त हुआ (पवित्रं गच्छसि) हृदय को प्राप्त होता है (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तुतिकर्ता के अन्दर अच्छे ज्ञानबल को धारण कराता हुआ ॥ ७ ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवतारः (रक्षा करते हुए परमात्मा के आदेश के अनुसार चलता हुआ)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९७५. **यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव। विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यवंयवम् यवम् यवम् नः अन्धसा पुष्टंपुष्टम् पुष्टम् पुष्टम् परि स्रव विश्वा च सोम सौभगा सौ भगा ॥ १ ॥**

अन्वयः—सोम अन्धसा नः यवं यवम् पुष्टं पुष्टम् परिस्रव च विश्वा सौभगा ॥

---

१. "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४.१५]।

२. "विड् वै गभः" [श० १३.२.९.६]।

३. "चमु अदने" [भ्वादि०, स्वादि०]।

४. "यज्ञो वै मखः" [तै० स० ५.१.६.३]।

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (अन्धसा) अपने आध्यानीय स्वरूप से[1] (नः) हमारे लिए (यवं यवम्) पाप और द्वेष भावना को हमसे पृथक् करनेवाले[2] तथा (पुष्टं पुष्टम्) सद्गुण पोषण करने वाले आनन्दरूप को नित्य (परिस्रव) बहा दे (च) और (विश्वा सौभगा) सारे सौभाग्यकारक गुणों को प्राप्त करा॥ १ ॥

९७६. **इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः। नि बर्हिषि प्रिये सदः॥ २ ॥**

पदपाठः— **इन्दो यथा तव स्तवः यथा ते जातम् अन्धसः नि बर्हिषि प्रिये सदः॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्दो यथा तव स्तवः यथा ते-अन्धसः-जातम् प्रिये बर्हिषि नि-सदाः॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसम्पूर्ण परमात्मन्! (यथा तव स्तवः) जैसे तेरा स्तुतियोग्य स्वरूप (यथा ते-अन्धसः-जातम्) जैसा तुझ आध्यानीय का प्रत्यक्ष हुआ आनन्दरस है (प्रिये बर्हिषि नि-सदाः) वैसा तू हृदयावकाश में विराजमान हो॥ २ ॥

९७७. **उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा। मक्षूतमेभिरहभिः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **उत नः गोवित् गो वित् अश्ववित् अश्व वित् पवस्व सोम अन्धसा मक्षूतमेभिः अहभिः अ हभिः॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम नः उत अन्धसा गोवित् अश्ववित् मक्षूतमेभिः-अहभिः पवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (नः) हमारे लिए (उत) अवश्य (अन्धसा) अपने आध्यानीय स्वरूप से (गोवित्) हमारी स्तुति वाणी को जानने वाला (अश्ववित्) व्यापनशील मनन करने वाला मन को जानने वाला (मक्षूतमेभिः-अहभिः) अत्यन्त शीघ्र साधक[3] दिनों के द्वारा (पवस्व) आनन्दधारा में प्रवाहित हो॥ ३ ॥

९७८. **यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य। स पवस्व सहस्रजित्॥ ४ ॥**

---

१. ''अन्धः-आध्यानीयं भवति'' [निरु० ५.२]।

२. ''यव यवयास्मदघा द्वेषांसि'' [तै० आ० ६.९.२]।

३. ''मक्षु क्षिप्रनाम'' [निघं० २.१५]।

पदपाठः— **यः जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुम् अभीत्य अभि इत्य सः पवस्व सहस्रजित् सहस्र जित् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—यः–जिनाति न जीयते शत्रुम्–अभीत्य हन्ति सः–सहस्रजित् पवस्व ॥

पदार्थः—(यः–जिनाति) जो सारे संसार को अभिभूत करता है[1] स्वायत्त करता है (न जीयते) अन्य किसी से अभिभूत नहीं होता है (शत्रुम्–अभीत्य हन्ति) अन्य शातयिया—उसके आदेशों के नाशक को स्वाधीन कर नष्ट करता है (सः–सहस्रजित् पवस्व) वह सर्वजित्[2] सब को स्वाधीन करने वाला तू आनन्दधारा में प्राप्त हो ॥ ४ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

९७९. **यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये। ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **याः ते धाराः मधुश्च्युतः मधु श्च्युतः असृग्रम् इन्दो ऊतये ताभिः पवित्रम् आ असदः ॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्दो ते याः–मधुश्चुतः–धाराः ऊतये–असृग्रन् ताभिः पवित्रम्–आसदः ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! (ते) तेरी (याः–मधुश्चुतः–धाराः) जो मधुर आनन्दरस बहाने वाली धाराएँ (ऊतये–असृग्रन्) रक्षा के लिए—स्वात्मा रक्षा के लिए छूट रही हैं—बह रही हैं (ताभिः पवित्रम्–आसदः) उनके साथ पवित्र हृदय को प्राप्त हो—हृदय में विराज ॥ १ ॥

९८०. **सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः अर्ष इन्द्राय पीतये तिरोवाराण्यव्यया सीदन् ऋतस्य योनिम् आ ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः इन्द्राय पीतये अव्यया वाराणि तिरः अर्ष ऋतस्य योनिम्–आसीदन् ॥

---

१. "जि अभिभवे" [भ्वादि०] ।

२. "सर्वं वै सहस्रम्" [श० ४.६.१.१५] ।

पदार्थः—(सः) वह तू हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (पीतये) पान करने के लिए (अव्यया वाराणि तिरः) पार्थिव देह के आवरकस्थानों—अङ्गों को लांघकर (अर्ष) प्राप्त हो (ऋतस्य योनिम्-आसीदन्) अध्यात्मयज्ञ को[1] विराजमान होने के हेतु॥ २॥

९८१. **त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः। वरिवोविद् घृतं पयः॥ ३॥**

पदपाठः— **त्वम् सोम परि स्रव स्वादिष्ठः अङ्गिरोभ्यः वरिवोवित् वरिवः वित् घृतम् पयः॥ ३॥**

अन्वयः—सोम त्वम् स्वादिष्ठः अङ्गिरोभ्यः वरिवोवित् घृतं पयः परिस्रव॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (स्वादिष्ठः) अत्यन्त स्वादु रस वाला (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गी परमात्मा को उपासना द्वारा जो रिझाते हैं उन अध्यात्मवीर उपासक मुमुक्षुजनों के लिए[2] (वरिवोवित्) उनके अभीष्ट अध्यात्म धन को[3] जानने वाला (घृतं पयः परिस्रव) तेजस्वी[4] रस को बहा॥ ३॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैतहव्योऽरुणः (समाप्ताग्निहोत्र विरक्त से सम्बद्ध तेजस्वी उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

९८२. **तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतो ऽग्रेश्चिकित्र उषसामिवेतयः। यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि॥ १॥**

पदपाठः— **तव श्रियः वर्ष्यस्य इव विद्युतः वि द्युतः अग्नेः चिकित्रे उषसाम् इव एतयः आ इतयः यत् ओषधीः ओष धीः अभिसृष्टः अभि सृष्टः वनानि च परि स्वयम् चिनुषे अन्नम् आसनि॥ १॥**

अन्वयः—तव-अग्नेः श्रियः वर्ष्यस्य-इव विद्युतः उषसाम्-इव-इतयः चिकित्र यत् ओषधीः च वनानि स्वयम्-आसनि-अन्नं परि चिनुषे अभिसृष्टः॥

---

१. "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श० १.३.४.१६]।
२. "वीरा वै तदजायन्त यदङ्गिरसः" [जै० ३.२६४]।
३. "वरिवः-धननाम" [निघं० २.१०]।
४. "तेजो वै घृतम्" [मै० १.६.८]।

पदार्थः—(तव–अग्ने: श्रियः) तुझ ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणायक परमात्मा के धर्म—गुण या ज्ञानरश्मियाँ[1] (वर्ष्यस्य–इव विद्युतः) पर्जन्य—मेघ की[2] विद्युतों के समान (उषसाम्–इव–इतयः) प्रभातकालीन उषाओं की गतिधाराओं जैसी[3] (चिकित्र) जानी जा रही हैं प्रत्यक्ष हो रही हैं (यत्) जब कि तू (ओषधीः) जगती धरती की सब चर अचर वस्तुओं को[4] (च) और (वनानि) अन्तरिक्ष के जलादि[5] को और द्युलोक के रश्मि आदि[6] को (स्वयम्–आसनि–अन्नं परि चिनुषेः स्वकीय मुख में या मुखसमान मृत्यु में[7] अन्नरूप में समेट लेता है[8] अनन्तर (अभिसृष्टः) उन्हें अभिसृष्ट करता उत्पन्न करता है तो उस तुझ परमात्मा के धर्म गुण विभूतियाँ प्रलय के अनन्तर ऐसे ही प्रतीत होते हैं जैसे मेघ के अन्धकार में बिजलियाँ रात्रि के अन्धकार में उषा के गतिप्रवाह प्रतीत हो रहे हैं ॥ १ ॥

९८३. वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥

पदपाठः— **वातोपजूतः वात उपजूतः इषितः वशान् अनु त्रिषु यत् अन्ना वेविषत् वितिष्ठसे वि तिष्ठसे आ ते यतन्ते रथ्यः यथा पृथक् शर्द्धांसि अग्ने अजरस्य अ जरस्य धक्षतः ॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्ने वातोपजूतः इषितः वशान्–अनु तृषु यत्–अन्ना वेविषत्–वितिष्ठसे ते–अजरस्य धक्षतः आयतन्ते यथा रथ्यः पृथक् शर्धांसि ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन्! (वातोपजूतः) मन से प्रीत—चाहा हुआ[9] (इषितः) स्तुति वाणी से प्रेरित (वशान्–अनु) वशवर्ती उपासकों के अनुकूल (तृषु) शीघ्र[10] (यत्–अन्ना वेविषत्–वितिष्ठसे) जोकि जड़

१. ''श्रीवै धर्मः'' [जै० ३.२३१]।
२. ''पर्जन्यो वर्षाः'' [जै० २.५१]।
३. ''इतिश्च मे गतिश्च मे'' [तै० सं० ४.७.५.२]।
४. ''जगत्य ओषधयः'' [श० १.२.२.२]।
५. ''वनम्–उदकनाम'' [निघं० १.१२]।
६. ''वनं रश्मिनाम'' [निघं० १.५]।
७. ''मुखं मृत्युः'' [काठ० २१.७]।
८. ''अत्ता चराचरग्रहणात्'' [वेदान्तदर्शन० ३.२.९]।
९. ''न वै वातात् किञ्चनाशीयोऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोऽसि तस्मादाह वातो वा मनो वा'' [श० ५.१.४.८] ''देवजूतं........देवप्रीतम्'' [निरु० १०.२८]
१०. ''तृषु क्षिप्रनाम'' [निघ० २.१५]

जङ्गम प्रजाओं को[1] व्याप कर विशेषरूप से विराजमान है (ते-अजरस्य धक्षतः) तुझ जरारहित पाप दग्ध करते हुए के समागमार्थ (आयतन्ते) उपासकजन पूर्ण यत्न करते हैं—या अपने अन्दर आयतन बनाते हैं (यथा रथ्यः पृथक् शर्धांसि) जैसे रथस्वामी—यात्री अपने अपने गन्तव्य प्राप्ति के लिए बलों का प्रयोग करते हैं[2] ॥ २ ॥

९८४. **मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम्। त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो वृणते नान्यं त्वत्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **मेधाकारम् मेधा कारम् विदथस्य प्रसाधनम् प्र साधनम् अग्निम् होतारम् परिभूतरम् परि भूतरम् मतिम् त्वाम् अर्भस्य हविषः समानम् सम् आनम् इत् त्वाम् महः वृणते न अन्यम् अन् यम् त्वत्॥ ३ ॥**

अन्वयः—मेधाकारम् विदथस्य प्रसाधनम् होतारम् मतिम् अग्निम् त्वाम् अर्भस्य हविषः महः समानम्-इत् त्वा वृणते त्वत्-अन्यं न ॥

पदार्थः—(मेधाकारम्) मेधाजनक[3] (विदथस्य प्रसाधनम्) वेदन—अध्यात्मानन्दलाभ का प्रधान साधन[4] (होतारम्) दिव्य गुणों के लाने वाले सब पर स्वामित्व करने वाले (मतिम्) उपासकों के मानकर्ता (अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप (त्वाम्) तुझ परमात्मा को (अर्भस्य हविषः) थोड़े हाव भाव के भेंट करने को (महः) बहुत भेंट करने को (समानम्-इत्) समानरूप में (त्वा वृणते) तुझे वरते हैं (त्वत्-अन्यं न) तुझ से भिन्न को नहीं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मित्रावरुणौ (प्रेरक और अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा)॥

छन्दः—गायत्री॥

९८५. **पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम्॥ १ ॥**

---

१. "अन्नं विशः" [श० २.१.३.८]

२. "शर्धः-बलनाम" [निघ० २.९]

३. "यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु॥" [यजु० ३२.१४]

४. "विदथा वेदनेन" [निरु० ३.१२]

पदपाठः— पुरूरुणा पुरु उरुणा चित् हि अस्ति अवः नूनम् वाम् वरुण मित्रा मि त्रा वंꣳसि वाम् सुमतिम् सु मतिम्॥ १ ॥

अन्वयः—वरुण मित्र नः पुरु-उरुणा अवः-नूनं चित्-हि वाम्-अस्ति सुमतिं वंसि॥

पदार्थः—(वरुण मित्र) मुझे अपनी ओर वरण करने वाले मुक्ति प्राप्ति के लिए मुझे संसार में तदर्थ कर्म करने भुक्ति—भोग पाने के लिए प्रेरित करने वाले परमात्मन्! (नः) हमारे लिए (पुरु-उरुणा) बहुत बहुत करके (अवः-नूनं चित्-हि वाम्-अस्ति) रक्षण जो है निश्चित तेरा है (सुमतिं वंसि) मुझ उपासना वाले को चाहता है॥ १ ॥

९८६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च। वयं वां मित्रा स्याम॥ २ ॥

पदपाठः— ता वाम् सम्यक् अद्रुह्वाणा अ द्रुह्वाणा इषम् अश्याम धाम च वयम् वाम् मित्रा मि त्रा स्याम॥ २ ॥

अन्वयः—अद्रुहाणा ता वाम् इषम् च धाम अश्याम वयम् मित्रा स्याम॥

पदार्थः—(अद्रुहाणा) द्रोह न करते हुए (ता वाम्) उस (इषम्) मनोभाव को कामना को (च) और (धाम) धाम—मोक्षधाम को (अश्याम) प्राप्त करूँ (वयम्) हम (मित्रा स्याम) मित्र हो जायें॥ २ ॥

९८७. पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। साह्याम दस्यून् तनूभिः॥ ३ ॥

पदपाठः— पातम् नः मित्रा मि त्रा पायुभिः उत त्रायेथाम् सुत्रात्रा सु त्रात्रा साह्याम दस्यून् तनूभिः॥ ३ ॥

अन्वयः—मित्रा नः पायुभिः पातम् उत सुत्रात्रा त्रायेथाम् तनूभिः दस्यून् साह्याम॥

पदार्थः—(मित्रा) हे मित्र—प्रेरक तथा वरुण—वरने वाले परमात्मन्! (नः) हमारी (पायुभिः) रक्षा साधनों से (पातम्) दोषों से बचाओ (उत) तथा (सुत्रात्रा) उत्तम त्राणसाधन से (त्रायेथाम्) त्राण कर (तनूभिः) अपने अङ्गों से (दस्यून्) क्षय करने वाले दोषों को (साह्याम) सहन करें—दबा सकें॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—कुरुसुतिः (अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विजों की विभूति वाला[1])॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९८८. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमूसुतम्॥ १॥

पदपाठः— उत्तिष्ठन् उत् तिष्ठन् ओजसा सह पीत्वा शिप्रेइति अवेपयः सोमम् इन्द्र चमूइति सुतम्॥ १॥

अन्वयः—इन्द्र चमूसुतं सोमं पीत्वा ओजसा सह–उत्तिष्ठन् शिप्रे–अवेपयः॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (चमूसुतं सोमं पीत्वा) योग की भूमि और मूर्धा अभ्यास वैराग्य के आधार पर[2] सम्पन्न उपासनारस को पान कर स्वीकार कर (ओजसा सह–उत्तिष्ठन्) स्वकीय ओज तेज के साथ उठाता हुआ[3] (शिप्रे–अवेपयः) नासिका के दोनों छिद्र[4]—प्राण उदान को चला दे—प्रशस्तरूप से चला दे। हमारे उपासनारस को पान कर। हमें जीवनरस—दीर्घ जीवनरस—स्थिर जीवनरस मोक्ष का प्रदान कर॥ १॥

९८९. अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम्। इन्द्र यद्दस्युहाभवः॥ २॥

पदपाठः— अनु त्वा रोदसीइति उभेइति स्पर्द्धमानम् अददेताम् इन्द्र यत् दस्युहा दस्यु हा अभवः॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र यत्–दस्युहा–अभवः त्वा स्पर्धमान–अनु अददेताम् उभे रोदसी॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (यत्–दस्युहा–अभवः) जब हमारे क्षय करने वालों—काम आदि दोषों का हननकर्ता होता है तो (त्वा स्पर्धमान–अनु अददेताम्) तुझे स्पर्धमान—संघर्ष—परास्त करते हुए को[5] लक्ष्य कर (उभे रोदसी) मानो दोनों आकाश और पृथिवी हर्षित होते हैं[6] आकाशचारी पक्षी और पृथिवीवासी प्राणी हर्षित होते हैं॥ २॥

---

१. ''कुरवः–ऋत्विङ्नाम'' [निघं० ३.१८]।
२. ''चम्वौ द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०], ''भूमिः प्रमा....दिवं यश्चक्रे मूर्धानाम्'' [अथर्व० १०.७.३२]।
३. अन्तर्गतणिजर्थः।
४. ''क्षिप्रे हनू–नासिके वा'' [निरु० ६.१६]।
५. ''सुपां सुलुक्.....'' [अष्टा० ७.१.३९] इति अमो लुक्।
६. दकारोपजनश्छान्दसः।

९९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्। इन्द्रात् परि तन्वं ममे॥ ३॥

पदपाठः— वाचम् अष्टापदीम् अष्ट पदीम् अहम् नवस्रक्तिम् नव स्रक्तिम् ऋतावृधम् ऋत वृधम् इन्द्रात् परि तन्वम् ममे॥ ३॥

अन्वयः—ऋतावृधम् अष्टापदीम् नवस्रक्तिम् वाचम् इन्द्रात् तन्वं परिममे॥

पदार्थः—(ऋतावृधम्) अमृतवर्धक[1] (अष्टापदीम्) स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जप[2] ये चार पाद तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार साधनरूप पाद इन आठों पाद वाली (नवस्रक्तिम्) नौ दिशाओं[3]—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार, कोण दिशा चार, ऊपर दिशा में व्यापने वाली (वाचम्) वाणी को (इन्द्रात्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के आश्रय से (तन्वं परिममे) सूक्ष्मा परिष्कृत करूँ—बनाऊँ।

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला)॥
देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

९९१. इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत। पिबतं शम्भुवा सुतम्॥ १॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति युवाम् इमे अभि स्तोमाः अनूषत पिबतम् शम्भुवा शम् भुवा सुतम्॥ १॥

अन्वयः—शम्भुवा-इन्द्राग्नी युवाम् इमे स्तोताः-अभि-अनूषत सुतं पिबतम्॥

पदार्थः—(शम्भुवा-इन्द्राग्नी युवाम्) हे कल्याण को भावित करने वाले ऐश्वर्यवन् तथा प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तुम्हें (इमे स्तोताः-अभि-अनूषत) ये स्तुतिसमूह बहुत स्तुतिरूप में प्रस्तुत हैं[4] (सुतं पिबतम्) निष्पन्न उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो॥ १॥

९९२. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम्॥ २॥

---

१. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६]।
२. "ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति अथर्वभिर्जपन्ति" [काठ० संक० २७.१]।
३. "दिशः स्रक्तयः" [का० श० ५.८.१.६]।
४. कर्मणि कर्तृप्रत्ययः, पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः।

पदपाठः— **याः वाम् सन्ति पुरुस्पृहः पुरु स्पृहः नियुतः नि युतः दाशुषे नरा इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति ताभिः आ गतम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—नरा इन्द्राग्नी वाम् याः पुरुस्पृहः नियुतः सन्ति दाशुषे ताभिः-आगतम् ॥

पदार्थः—(नरा इन्द्राग्नी) हे नायक ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन्! (वाम्) तुम्हारे (याः) जो (पुरुस्पृहः) बहुत स्पृहणीय (नियुतः सन्ति) नियमनीय—निरन्तर या अन्दर धारण करने योग्य अध्यात्मसम्पदाएँ ज्ञानप्रकाशधाराएँ[1] हैं (दाशुषे) अपने को—अपना समर्पण करने वाले के लिए (ताभिः-आगतम्) उनके साथ आओ ॥ २ ॥

९९३. **ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **ताभिः आगच्छतम् नरा उप इदम् सवनम् सुतम् इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति सोमपीतये सोम पीतये ॥ ३ ॥**

अन्वयः—नरा-इन्द्राग्नी इदं सवनं सुतम्-उप ताभिः-आगच्छतम् सोमपीतये ॥

पदार्थः—(नरा-इन्द्राग्नी) हे जीवननेता ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (इदं सवनं सुतम्-उप) इस निष्पादनस्थान हृदय तथा निष्पन्न उपासनारस की ओर (ताभिः-आगच्छतम्) उन अपनी अध्यात्मसम्पदाओं और ज्ञानप्रकाशधाराओं के साथ आओ (सोमपीतये) उपासनारस पान करने स्वीकार करने के लिए ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भृगुर्जमदग्निर्वा (ज्ञान में भृज्यमान[2] पक्व या प्रज्वलित ज्ञान अग्नि वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

९९४. **अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्। सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अर्षासोमद्युमत्तमः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५०३)

---

१. ''नियुतो नियमनात्'' [निरु० ५.२७]।

२. ''भृगुर्भृज्यमानो न देहे'' [निरु० ३.१७]।

९९५. **अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमा अर्षन्तु विष्णवे॥ २॥**

पदपाठः— **अप्साः इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः सोमाः अर्षन्तु विष्णवे॥ २॥**

अन्वयः—अप्साः सोमाः इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्ययः विष्णवे अर्षन्तु॥

पदार्थः—(अप्साः सोमाः) व्यापक शान्तस्वरूप परमात्मा[1] (इन्द्राय) आत्मा के लिए (वायवे) मन के लिए[2] (वरुणाय) प्राण के लिए[3] (मरुद्भ्यः) ओज वीर्य के लिए[4] (विष्णवे) श्रोत्र के लिए[5] (अर्षन्तु) प्राप्त हो, इन सब के अन्दर शान्ति का प्रवाह चले॥ २॥

९९६. **इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणम्॥ ३॥**

पदपाठः— **इषम् तोकाय नः दधत् अस्मभ्यꣳसोमविश्वतः आपवस्वसहस्रिणम्॥ ३॥**

अन्वयः—सोम नः-तोकाय-इषं दधत् अस्मभ्यं सहस्रिणं विश्वतः-आपवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (नः-तोकाय-इषं दधत्) हमारे सन्तान के लिए लौकिक कमनीय वस्तु को धारण कराता हुआ (अस्मभ्यं सहस्रिणं विश्वतः-आपवस्व) हम उपासकों के लिए सहस्रगुणित—सहस्रों में ऊँची कमनीय वस्तु मोक्ष-ऐश्वर्य सब प्रकार से समस्त क्रियाकलाप के फलरूप प्राप्त करा। मोक्ष-सुख या अध्यात्मसम्पदा तभी प्राप्त होती है जब पुत्र की लौकिक कमनीय निर्वाहक वस्तु पिता प्रदान कर जावे उसके लिए प्रार्थना है॥ ३॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

९९७. **सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥ १॥**

---

१. "अप्सो नाम व्यापिनः" [निरु० ५.१३] बहुवचनमादरार्थम्।
२. "मनो वायुः" [काठ० १३.१]।
३. "यः प्राणः स वरुणः" [गो० २.४.११]।
४. "ओजो वै वीर्यं मरुतः" [जै० ३.३०९]।
५. "यच्छ्रोत्रं स विष्णुः" [गो० २.४.१२]।

पदपाठः— **सोमउष्वाणःसोतृभिः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१५)

९९८. **अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः । समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अनूपे गोमान् गोभिः अक्षारिति सोमः दुग्धाभिः अक्षारिति समुद्रम् सम् उद्रम् न संवरणानि सम् वरणानि अग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ २ ॥**

अन्वयः—गोमान् गोभिः-अनूपे-अक्षाः सोमः-दुग्धाभिः-अक्षाः संवरणानि समुद्रं न-अग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥

पदार्थः—(गोमान् गोभिः-अनूपे-अक्षाः) गौओं वाला गोपाल गौओं के साथ जैसे अनूप देश—जलाधान स्थान की ओर प्रस्थान करता है[१] ऐसे (सोमः-दुग्धाभिः-अक्षाः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासकों द्वारा प्रपूरित की हुई उपासनारस धाराओं के साथ व्याप्त होता है प्राप्त होता है (संवरणानि समुद्रं न-अग्मन्) जैसे रिक्त स्थान को भरने वाले जल अन्त में समुद्र की ओर चले जाते हैं ऐसे (मन्दी मदाय तोशते) हर्ष आनन्ददाता परमात्मा हर्ष आनन्दप्रवाह पहुँचाने के लिए सन्तोषयितव्य उपासक के अन्दर[२] ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (राग बन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

९९९. **यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यत् सोम चित्रम् उक्थ्यम् दिव्यम् पार्थिवम् वसु तत् नः पुनानः आ भर ॥ १ ॥**

अन्वयः—सोम यत् चित्रम् उक्थ्यम् दिव्यं पार्थिवं वसु तत्-नः पुनानः-आभर ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (यत्) जो (चित्रम्) चायनीय जीवन में या अन्तरात्मा में धारण करने योग्य (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (दिव्यं पार्थिवं वसु) दिव्य भी है पार्थिव भी है मोक्ष में प्राप्त होने योग्य अमृतधन तथा पार्थिव—

१. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।
२. 'तोशते—तोष्टयितव्ये' तुश सन्तोषे वैदिकधातुः, यद्वा वर्णव्यत्ययश्छान्दसः ।

इस पृथिवी से उत्पन्न शरीर में प्राप्त होने वाला अध्यात्मधन ध्यान से प्राप्त होने योग्य है (तत्-नः) उसे हमारे लिए (पुनानः-आभर) पवित्र करता हुआ आभरित कर॥ १ ॥

१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि। हरिः सन्योनिमासदः॥ २॥

पदपाठः— वृषा पुनानः आयूंषि स्तनयन् अधि बर्हिषि हरिः सत् योनिम् आ असदः॥ २॥

अन्वयः—वृषा हरिः पुनानः सन् बर्हिष-अधि-आयूंषि स्तनयन् योनिम्-आसदः॥

पदार्थः—(वृषा हरिः पुनानः सन्) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू कामनावर्षक दुःखापहारी सुखाहारी शोधक होता हुआ (बर्हिष-अधि-आयूंषि स्तनयन्) आयुओं जीवन के दिनों को सारे दिनों में अध्यात्मप्रवचन करता हुआ प्रवृद्ध अन्तःस्थल में (योनिम्-आसदः) हृदय घर में आ विराज॥ २॥

देवता—सोमेन्द्राः (शान्तस्वरूप और ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥

१००१. युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती। ईशाना पिप्यतं धियः॥ ३॥

पदपाठः— युवम् हि स्थः स्वःपती स्वा३रिति पतीइति इन्द्रः च सोम गोपती गो पतीइति ईशानापिप्यतन्धियः॥ ३॥

अन्वयः—सोम-इन्द्रः-च युवं हि स्वःपती गोपती ईशाना स्थः धियः पिप्यतम्॥

पदार्थः—(सोम-इन्द्रः-च) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् और इन्द्र ऐश्वर्यवान् भी (युवं हि) तुम दोनों नामों से भी (स्वःपती) सुख के स्वामी (गोपती) स्तुति वाणी के पात्र (ईशाना) और स्वामी (स्थः) हो (धियः पिप्यतम्) कर्मों—अध्यात्मकर्मों का[1] विस्तार करो॥ ३॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के अन्दर अधिक गतिमान्)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥ १॥

---

१. "धीः कर्मनाम" [निघं० २.१]।

पदपाठः— **इन्द्रोमदायवावृधे॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४११)

१००३. **असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादर्दिः। असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥ २ ॥**

पदपाठः— **असि हि सेन्यः असि भूरि परादर्दिः परा ददिः असि दभ्रस्य चित् वृधः यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥ २ ॥**

अन्वयः—वीर सेन्यः-हि-असि भूरि परादर्दिः दभ्रस्य चित्-वृधः-असि सुन्वते यजमानाय ते भूरि वसु शिक्षसि॥

पदार्थः—(वीर) हे वीर्यवान् स्वाधारबलसम्पन्न परमात्मन्![1] तू (सेन्यः-हि-असि) अकेला हि सेना जितना बल वाला है अथवा कामादि विरोधी सेना को विजय करने में समर्थ है (भूरि परादर्दिः) अत्यन्त पर—अभीष्ट अनुकूल गुणों का आदान करने वाला—अपनाने वाला है[2] अत एव (दभ्रस्य चित्-वृधः-असि) अल्प—थोड़े अभीष्ट गुण वाले का भी बढ़ाने वाला है (सुन्वते यजमानाय) उपासनारस निष्पन्न करने वाले उपासक आत्मा के लिए (ते भूरि वसु) तेरा जो बहुत धन मोक्षैश्वर्य है उसे भी (शिक्षसि) दे देता है[3] ॥ २ ॥

१००४. **यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्। युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यदुदीरतआजयः॥ ३ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४१४)

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के अन्दर अधिक गतिमान्)।

१००५. **स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः। या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम्॥ १ ॥**

---

१. ''स ह वीरो य आत्मन एव वीर्यमनुवीरः'' [जै० २.२८२]।

२. 'पर-आददिः' आङ्पूर्वकाद् दाधातोः किः प्रत्ययः ''आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च'' [अष्टा० ३.२.१७१]।

३. ''शिक्षति दानकर्मा'' [निघं० ३.२०]।

पदपाठः— **स्वादोरित्थाविषूवतः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४०९)

१००६. **ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः। प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्॥ २॥**

पदपाठः— **ताः अस्य पृशनायुवः सोमम् श्रीणन्ति पृश्नयः प्रियाः इन्द्रस्य धेनवः वज्रम् हिन्वन्ति सायकम् वस्वीरनुस्वराज्यम्॥ २॥**

अन्वयः—अस्य इन्द्रस्य ताः पृशनायुवः पृश्नयः सोमं श्रृणन्ति प्रियाः-धेनवः वज्रं सायकं हिन्वन्ति वस्वीः-अनु स्वराज्यम्॥

पदार्थः—(अस्य इन्द्रस्य) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा की उसके सम्बन्ध की (ताः पृशनायुवः पृश्नयः) वे स्पर्श को चाहने वाली[1] वाणियाँ[2] (सोमं श्रृणन्ति) उपासनारस को पक्व करती—सम्पन्न करती हैं क्योंकि (प्रियाः-धेनवः) प्यारी धेनु हैं उसे दुहने वाली हैं जो कि (वज्रं सायकं हिन्वन्ति) उपासक के लिए वज्र दोष वर्जित भोग के अन्त करने वाले अध्यात्म मार्ग की ओर ले जाती हैं[3] (वस्वीः-अनु स्वराज्यम्) उपासक आत्मा के स्वराज्य के अनुकूल॥ २॥

१००७. **ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः। व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्॥ ३॥**

पदपाठः— **ताः अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः प्र चेतसः व्रतानि अस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये पूर्व चित्तये वस्वीरनुस्वराज्यम्॥ ३॥**

अन्वयः—अस्य ताः प्रचेतसः नमसा सहः सपर्यन्ति अस्य पुरूणि व्रतानि पूर्वचित्तये सश्चिरे वस्वीः-अनुस्वराज्यम्॥

पदार्थः—(अस्य) इस इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा की (ताः प्रचेतसः) वे प्रगति देने वाली वाणियाँ (नमसा सहः सपर्यन्ति) परमात्मा का नम्रभाव से स्तवनरूप सेवन करती हैं (अस्य पुरूणि व्रतानि पूर्वचित्तये सश्चिरे) इस परमात्मा के बहुत नाना नियमों को पूर्वकर्म के लिए—प्रथम ही श्रेष्ठ कर्म करने के लिए[4] प्राप्त करते

---

१. स्पृशधातोः क्युः प्रत्ययः औणादिकः सकारलोपश्च छान्दसः।
२. ''वाग् वै पृश्निः'' [काठ० ३४.१]।
३. ''वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः'' [निरु० ३.११]।
४. ''चित्तिभिः कर्मभिः'' [निरु० २.९]।

हैं—सेवन करते हैं[1] (वस्वीः-अनुस्वराज्यम्) बसाने वाली है आत्मा के स्वराज्य के अनुकूल होती है॥ ३॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१००८. **असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः। श्येनो न योनिमासदत्॥ १॥**

पदपाठः— **असाव्यंश्शुर्मदाय॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७३)

१००९. **शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम्। स्वदन्ति गावः पयोभिः॥ २॥**

पदपाठः— **शुभ्रम् अन्धः देववातम् देव वातम् अप्सु धौतम् नृभिः सुतम् स्वदन्ति गावः पयोभिः॥ २॥**

अन्वयः—नृभिः सुतम् शुभ्रम् अन्धः देववातम् अप्सु धौतम् गावः पयोभिः स्वदन्ति॥

पदार्थः—(नृभिः सुतम्) मुमुक्षु जनों[2] द्वारा सोतव्य उपासना द्वारा निष्पन्न करने योग्य (शुभ्रम्) प्रकाशमान (अन्धः) आध्यानीय—चिन्तनयोग्य (देववातम्) विद्वानों उपासकों से प्राप्त होने योग्य (अप्सु धौतम्) श्रद्धा[3] से निर्मल किए हुए सोम—शान्त स्वरूप परमात्मा को (गावः) स्तोता—उपासकजन[4] (पयोभिः स्वदन्ति) आन्तरिक साधनों मन बुद्धि चित्त अहङ्कार से[5] स्वाद लेते हैं॥ २॥

१०१०. **आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय। मधो रसं सधमादे॥ ३॥**

पदपाठः— **आत् ईम् अश्वम् न हेतारम् अशूशुभन् अमृताय अ मृताय मधोः रसम् सधमादे सध मादे॥ ३॥**

---

१. "सश्चति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
२. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]।
३. "श्रद्धा वा आपः" [तै० ३.२.४.१]।
४. "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
५. "अन्तर्हितमिव वा एतद् यत् पयः" [तां० ९.९.३]।

अन्वयः—आत् सधमादे मधोः रसम्-अश्वं हेतारं न अमृताय अशूशुभन् ॥

पदार्थः—(आत्) अनन्तर—पुनः (सधमादे) साथ होकर—परमात्मा के साथ होकर जहाँ माद—हर्ष आनन्द अनुभव किया जाता है उस हृदयप्रदेश में (मधोः) मधुमय—सोम—शान्त परमात्मा के (रसम्-अश्वं हेतारं न) व्यापनशील तथा प्रेरणा देने वाले आनन्दरस को सम्प्रति[1] (अमृताय) अमृत—मोक्ष पाने के लिए (अशूशुभन्) प्राप्त कर प्रशंसित करते हैं स्तुत करते हैं[2] ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊँचे—मोक्ष को सदन बनाने वाला उपासक)॥

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—कुकप्-बृहती ॥

१०११. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

पदपाठः— अभिद्युम्नंबृहद्यशः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७९)

छन्दः—सतो बृहती ॥

१०१२. आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः । वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥

पदपाठः— आ वच्यस्व सुदक्ष सु दक्ष चम्वोः सुतः विशाम् वह्निः न विश्पतिः वृष्टिम् दिवः पवस्व रीतिम् अपः जिन्वन् गविष्टये गो इष्टये धियः ॥ २ ॥

अन्वयः—सुदक्ष चम्वोः सुतः विशां वह्निः-न विश्पतिः आवच्यस्व दिवः-वृष्टिं पवस्व अपः-रीतिं जिन्वन् गविष्टये धियः ॥

पदार्थः—(सुदक्ष) हे श्रेष्ठ बल वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (चम्वोः सुतः) योग की भूमिरूप अभ्यास और द्यौः—मूर्धारूप वैराग्य में सम्पन्न हुआ—साक्षात् हुआ (विशां वह्निः-न विश्पतिः) उपासकरूप प्रजाओं का निर्वाहक प्रजापालक राजा के समान होता हुआ (आवच्यस्व) आ जा—प्राप्त हो[3] (दिवः-वृष्टिं पवस्व) अपने अमृतधाम से आनन्दवृष्टि को प्रेरित कर (अपः-रीतिं जिन्वन्) कामनाओं[4] की गति को प्रेरित करता हुआ (गविष्टये धियः) स्तोता की इष्टि—इच्छापूर्ति के

---

१. ''न सम्प्रत्यर्थे'' [निरु० ६.८]।
२. ''शुम्भ भाषणे'' [भ्वादि०]।
३. ''वञ्चति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] नकारलोपश्छान्दसः।
४. ''आपो वै सर्वे कामाः'' [का० १०.४.५.१५]।

लिए धारणाएँ साधित कर ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (परमात्मा को तीन ढङ्ग से प्राप्त करने में कुशल)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्।

१०१३. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्। विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

पदपाठः— प्राणाशिशुर्महीनाम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७०)

१०१४. उप त्रितस्य पाष्योः३रभक्त यद् गुहा पदम्। यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

पदपाठः— उप त्रितस्य पाष्योः अभक्त यत् गुहा पदम् यज्ञस्य सप्त धामभिः अध प्रियम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यत् पदं गुहा त्रितस्य पाष्योः उप-अभक्त यज्ञस्य सप्तधामभिः अध प्रियम् ॥

पदार्थ—(यत् पदं गुहा) जो सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्रापणीय पद हृदय गुहा में है (त्रितस्य पाष्योः) स्तुति प्रार्थना उपासना तीनों का विस्तार करने वाले योग के गतिक्रमों[१] अभ्यास और वैराग्य में (उप-अभक्त) सेवन करता है (यज्ञस्य सप्तधामभिः) ज्ञान यज्ञ के सात धामों सात छन्दों के द्वारा[२] (अध प्रियम्) अनन्तर प्रिय परमात्मा को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१०१५. त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्। मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेषु आ ऐरयत् रयिम् मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः सु क्रतुः ॥ ३ ॥

अन्वयः—त्रितस्य त्रीणि धारय पृष्ठेषु रयिम्-ऐरयत् सुक्रतुः अस्य योजना विमिमीते ॥

पदार्थः—(त्रितस्य) स्तुति प्रार्थना उपासना को तानने वाले उपासक के (त्रीणि) तीन कर्मों को (धारय) धारण कर (पृष्ठेषु रयिम्-ऐरयत्) सोम—

---

१. ''पष गतौ'' [चुरादि०]।
२. ''छन्दांसि वा अस्य सप्त धाम प्रियाणि'' [श० ९.२.३.४४]।

शान्तस्वरूप परमात्मा इन्द्रियों के अन्दर[1] वीर्य[2] संयमबल को प्रेरित करता है (सुक्रतुः) सम्यक् कर्ता उपासक (अस्य) इस परमात्मा के (योजना) योग साधनों को (विमिमीते) विशेष सम्पादन जब करता है ॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—रेभः (स्तोता[3])॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१०१६. पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः। इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः॥ १॥

पदपाठः— पवस्व वाजसातये वाज सातये पवित्रे धारया सुतः इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यः मधुमत्तरः॥ १॥

अन्वयः—सोम वाजसातये पवित्रे धारया सुतः इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः मधुमत्तरः पवस्व॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वाजसातये) अमृत अन्न भोग[4] सम्भक्ति प्राप्ति के लिए (पवित्रे) हृदयस्थान में (धारया सुतः) धारणा ध्यान से निष्पन्न साक्षात् (इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः) आत्मा के लिए व्यापनशील मन के लिए और इन्द्रियों के लिए (मधुमत्तरः पवस्व) अत्यन्त मधुमय हो कर प्राप्त हो॥ १॥

१०१७. त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः। वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि॥ २॥

पदपाठः— त्वाम् रिहन्ति धीतयः हरिम् पवित्रे अद्रुहः अ द्रुहः वत्सम् जातम् न मातरः पवमानविधर्म्मणि॥ २॥

अन्वयः—पवमान त्वां हरिम् धीतयः अद्रुहः पवित्रे रिहन्ति जातं वत्सं न मातरः-विधर्मणि॥

पदार्थः—(पवमान त्वां हरिम्) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ दुःखापहर्ता सुखाहर्ता को (धीतयः) प्रज्ञाएँ—उपासना-प्रज्ञाएँ[5] (अद्रुहः) सब

---

१. "इन्द्रियाणि वै पृष्ठानि" [जै० १.२५४]।

२. "वीर्यं वै रयिः" [श० १३.४.२१३]।

३. "रेभः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।

४. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

५. "ऋतस्य धीतिः-ऋतस्य प्रज्ञा" [निघं० ३.१४]।

द्रोहरहित सङ्गत होकर (पवित्रे) हृदय के अन्दर (रिहन्ति) अर्चित करतीं हैं पूजती हैं—सम्मानित करती हैं[1] (जातं वत्सं न मातरः–विधर्मणि) नवजात बच्चे—पुत्र को जैसे माताएँ आदि विविधधर्म में वर्तमान हुई—माता, चाची, ताई, बुआ, मौसी, मामी आदि भिन्न-भिन्न बाह्य वस्तुओं से तथा स्नेह से स्वागत करती हैं॥ २॥

१०१८. **त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे। प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना॥ ३॥**

पदपाठः— **त्वम् द्याम् च महिव्रत महि व्रत पृथिवीम् च अति जभृषे प्रति द्रापिम् अमुञ्चथाः पवमान महित्वना॥ ३॥**

अन्वयः—महिव्रत पवमान त्वम् द्यां च पृथिवीं च अति जभ्रिषे महित्वना द्रापिम्–अपि–अमुञ्चथाः॥

पदार्थः—(महिव्रत पवमान) हे महान् कर्मशील परमात्मन्! (त्वम्) तू (द्यां च पृथिवीं च) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अति जभ्रिषे) अत्यन्त धारण करता है (महित्वना) अपनी महिमा से (द्रापिम्–अपि–अमुञ्चथाः) समस्त संसार की रक्षा के लिए परिमण्डलरूप कवच—दृढ़ घेरें को भी धारण किए हुए है॥ ३॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—मन्युः (परमात्मा की अर्चना करने वाला[2])॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१०१९. **इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय। हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा॥ १॥**

पदपाठः— **इन्दुर्वाजीपवतेगोन्योघाः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४०)

१०२०. **अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः। इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय॥ २॥**

---

१. ''रिहति–अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

२. ''मन्यते अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

पदपाठः— **अध धारया मध्वा पृचानः तिरः रोम पवते अद्रिदुग्धः अद्रि दुग्धः इन्दुः इन्द्रस्य सख्यम् स ख्यम् जुषाणः देवः देवस्य मत्सरः मदाय॥ २॥**

अन्वयः—इन्दुः अध मध्वा धारया पृचानः अद्रिदुग्धः तिरः-रोम पवते इन्द्रस्य देवस्य सख्यं जुषाणः-देवः मत्सरः-मदाय॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (अध) अनन्तर (मध्वा धारया) मधुर ध्यान धारणा से (पृचानः) सम्पर्क करता हुआ (अद्रिदुग्धः) स्तुतिकर्ता उपासक[1] के हृदय में निष्पादित (तिरः-रोम पवते) हृदय के सूक्ष्म तन्तुओं को[2] लांघ कर हृदय-आकाश में प्राप्त होता है (इन्द्रस्य देवस्य सख्यं जुषाणः-देवः) दिव्य गुण वाले आत्मा से मित्रभाव को प्रिय करता हुआ—चाहता हुआ परमात्मदेव (मत्सरः-मदाय) हर्षप्रद हर्ष आनन्द देने के लिए प्राप्त होता है॥ २॥

१०२१. **अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्। इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये॥ ३॥**

पदपाठः— **अभि व्रतानि पवते पुनानः देवः देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् इन्दुः धर्माणि ऋतुथा वसानः दश क्षिपः अव्यत सानौ अव्ये॥ ३॥**

अन्वयः—इन्दुः व्रतानि-अभि पवते पुनानः-देवः देवान्-स्वेन रसेन पृञ्चन् ऋतुथा धर्माणि वसानः दश क्षिपः॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (व्रतानि-अभि पवते) अपने नियम कर्मों को अभिप्राप्त होता है—पूर्ण करता है (पुनानः-देवः) प्राप्त होता हुआ परमात्मदेव (देवान्-स्वेन रसेन पृञ्चन्) इन्द्रियों को अपने आनन्दरस से सम्पृक्त करता हुआ—संयुक्त करता हुआ (ऋतुथा धर्माणि वसानः) समय समय पर धारणसामर्थ्यों को आच्छादित करने का हेतु हुआ (दश क्षिपः) विषयों में क्षिप्त—जाने वाली दश इन्द्रियों के सम्भजन स्थान मन में पहुँच जाता है॥ ३॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसुश्रुतः (सबके बसाने वाले परमात्मा का श्रवण जिसने किया ऐसा उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः॥

---

१. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [काठ० १.५]।

२. ''लोमानि हृदये श्रितानि'' [तै० ३.१०.८.८]।

१०२२. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर॥ १ ॥

पदपाठः— आतेअग्नइतीमहि॥ १ ॥

अन्वयः—अग्ने देव ते द्युमन्तम्–अजरम्–आ–इधीमहि यत्–ह ते स्या पनीयसी समित् द्यवि दीदयति इषं स्तोतृभ्यः–आभर॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव! (ते द्युमन्तम्–अजरम्–आ–इधीमहि) तुझ[१] दीप्तिमान् अजर देव को हम अपने अन्दर पूर्णरूप से प्रकाशित करें—साक्षात् करें (यत्–ह ते स्या पनीयसी समित्) पुनः तेरी जो अत्यन्त स्तुत्य दीप्ति है (द्यवि दीदयति) द्युलोक मोक्षधाम में प्रकाशित है चमकती है[२] (इषं स्तोतृभ्यः–आभर) उस कमनीया को स्तुतिकर्ता उपासकों के लिए आभरित कर दे॥ १ ॥

१०२३. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते। सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ २ ॥

पदपाठः— आ ते अग्ने ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषः पते सुश्चन्द्र सु श्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् हव्य वाट् तुभ्यम् हूयते इषꣳस्तोतृभ्यआभर॥ २ ॥

अन्वयः—ज्योतिषः–पते सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् ते शुक्रस्य ऋचा हविः तुभ्यं हूयते स्तोतृभ्यः–इषम्–आभर॥

पदार्थः—(ज्योतिषः–पते) हे ज्योति के स्वामिन्! (सुश्चन्द्र) उत्तम आह्लादक—हर्षानन्दकारी (दस्म) दर्शनीय[३] (विश्पते) समस्त प्राणी प्रजा के पालक (हव्यवाट्) हमारी भेंट को प्राप्त करने वाले स्वीकार करने वाले (ते शुक्रस्य) तुझ निर्मल की (ऋचा हविः) स्तुति के साथ स्वात्मा[४] (तुभ्यं हूयते) तेरे लिए दिया जाता है समर्पित किया जाता है (स्तोतृभ्यः–इषम्–आभर) हम स्तुतिकर्ताओं के लिये कमनीय स्वरूप को आभरित कर॥ २ ॥

१०२४. ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि। उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ३ ॥

---

१. 'ते—त्वाम्' विभक्तिव्यत्ययः।

२. ''दीदयति ज्वलतिकर्मा'' [निघं० १.१६]।

३. ''दस दर्शने'' [चुरादि०]।

४. ''आत्मा वै हविः'' [काठ० ८.५]।

पदपाठः— **आ उभेइति सुश्चन्द्र सु चन्द्र विश्पते दर्वीइति श्रीणीषे आसनि उत उ नः उत् पुपूर्याः उक्थेषु शवसः पते इषꣳस्तोतृभ्यआभर ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सुश्चन्द्र विश्पते उभे दर्वी आसनि–आ श्रीणीषे उत–उ शवसः पते उक्थेषु नः स्तोतृभ्यः इषम्–आभर ॥

पदार्थः—(सुश्चन्द्र विश्पते) हे उत्तम आह्लादक जड़ जङ्गम प्रजाओं के स्वामी ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (उभे दर्वी) दोनों दर्वियाँ—दारण करने वाली, नष्ट करने वाली इन्द्रिय विषययुक्ति और मनोवासना को जो दो चक्की के पाटों के समान चकनाचूर करने वाली हैं[1] उन्हें (आसनि–आ श्रीणीषे) अपने स्वरूप में पका देता गला देता या आश्रय दे देता है[2] (उत–उ) और (शवसः पते) हे बल के स्वामिन्! (उक्थेषु) प्रशंसावचनों में स्तुतियों के प्रतीकार में (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओं के लिए (इषम्–आभर) कमनीय मुक्ति शान्ति को आभरित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

१०२५. **इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रायसामगायत ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८८)

१०२६. **त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥**

पदपाठः— **त्वम् इन्द्र अभिभूः अभि भूः असि त्वम् सूर्यम् अरोचयः विश्वकर्म्मा विश्व कर्म्मा विश्वदेवः विश्व देवः महान् असि ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्र अभिभूः–असि त्वं सूर्यम्–अरोचयः विश्वकर्मा विश्वदेवः महान्–असि ॥

---

१. ''निर्ऋतिगृहीता वै दर्विः'' [मै० १.१०.१६]।

२. ''न घा त्वद्रिगपवेति मे मनः त्वमिष्टकामं पुरुहूत शिश्रिते'' [ऋ० १०.४३.२]।

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (अभिभूः-असि) तू संसार पर या सब पर अधिकारकर्ता है (त्वं सूर्यम्-अरोचयः) तू सूर्य—जगत् प्रकाशक पिण्ड को चमकाता है—प्रकाशित करता है[1] (विश्वकर्मा) विश्व—संसार को रचने—घड़नेवाला[2] (विश्वदेवः) सबका इष्टदेव (महान्-असि) तू महान् सर्वमहान् है॥ २॥

१०२७. **विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वा३रगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे॥ ३॥**

पदपाठः— **विभ्राजन् वि भ्राजन् ज्योतिषा स्वः अगच्छः रोचनम् दिवः देवाः ते इन्द्र सख्याय स ख्याय येमिरे॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्र ज्योतिषा विभ्राजन् दिवः-रोचनम् स्वः-आगच्छः देवाः ते सख्याय येमिरे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (ज्योतिषा विभ्राजन्) अपने प्रकाश से प्रकाशित हुआ (दिवः-रोचनम्) द्युलोक का रोचन[3] प्रकाशक हुआ (स्वः-आगच्छः) मोक्षधाम को प्राप्त है, वहाँ तेरा ही प्रकाश है[4] (देवाः) मुमुक्षुजन (ते सख्याय येमिरे) तेरी मित्रता के लिए अपने को संयम में ढालते हैं॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति रखने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१०२८. **असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि। आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥ १॥**

पदपाठः— **असाविसोमइन्द्रते॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४७)

१०२९. **आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना॥ २॥**

पदपाठः— **आ तिष्ठ वृत्रहन् वृत्र हन् रथम् युक्ता ते ब्रह्मणा हरीइति अर्वाचीनम् अर्व अचीनम् सु ते मनः ग्रावा कृणोतु वग्नुना॥ २॥**

---

१. "इन्द्रः सूर्यमरोचयत्" [ऋ० ८.३.६]।
२. "किं स्विद् वनं क उ स वृक्षो यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः" [ऋ० १०.८१.४]।
३. 'रोचनः' विभक्तिव्यत्ययेन अम्।
४. "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति" [मुण्डको० २.१०]।

अन्वयः—वृत्रहन् रथम्-आतिष्ठ ते हरी ब्रह्मणा युक्ता ते मनः ग्रावा वग्नुना अर्वाचीनं सुकृणोतु ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्) हे पापनाशक[1] ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (रथम्-आतिष्ठ) रमणीय निष्पाप मन में आ विराज (ते हरी ब्रह्मणा युक्ता) तेरे प्रिय तुझ को लाने वाले ऋक् और साम[2] स्तुति और उपासना वेद द्वारा जोड़ दी हैं (ते मनः) तेरे मन को (ग्रावा) स्तुति करने वाला विद्वान्[3] (वग्नुना) स्तुति वाणी[4] से (अर्वाचीनं सुकृणोतु) मुझ उपासक की ओर भली-भाँति कर दे॥ २ ॥

१०३०. **इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् इत् हरीइति वहतः अप्रतिधृष्टशवसम् अप्रतिधृष्ट शवसम् ऋषीणाम् सुष्टुतीः सु स्तुतीः उप यज्ञम् च मानुषाणाम्॥ ३ ॥**

अन्वयः—अप्रतिधृष्टशवसम्-इन्द्रम् हरी-इत् उप वहतः ऋषीणां स्तुतीः च मानुषाणां यज्ञम्॥

पदार्थः—(अप्रतिधृष्टशवसम्-इन्द्रम्) अन्य से प्रतिघात को न प्राप्त होने योग्य बल वाले परमात्मा को (हरी-इत्) हरियाँ ही—ऋक् साम—स्तुति उपासना ही (उप वहतः) वहन करती हैं (ऋषीणां स्तुतीः) ऋषियों—मन्त्रद्रष्टाओं की मन्त्रस्तुतियों को (च) और (मानुषाणां यज्ञम्) मनुष्यों के अध्यात्मयज्ञ को लक्ष्य कर परमात्मा प्राप्त होता है॥ ३ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

---

१. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।
२. "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मै० ३.१०.६]।
३. "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३.९.३.१४]।
४. "वग्नुः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

अथ सप्तम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अकृष्टमाषाः (बिना बोए स्वतः प्राप्त माष खाने वाले उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

१०३१. **ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः। दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः॥ १ ॥**

पदपाठः— **ज्योतिः यज्ञस्य पवते मधु प्रियम् पिता देवानाम् जनिता विभूवसुः विभु वसुः दधाति रत्नम् स्वधयोः स्व धयोः अपीच्यम् मदिन्तमः मत्सरः इन्द्रियः रसः॥ १ ॥**

अन्वयः—मदिन्तमः मत्सरः यज्ञस्य ज्योतिः प्रियं मधु पवते देवानां पिता जनिता विभूवसुः स्वधयोः-अपीच्यं रत्नं दधाति इन्द्रियः-रसः॥

पदार्थः—(मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षस्वरूप—अत्यानन्दस्वरूप (मत्सरः) हर्षप्रद सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (यज्ञस्य ज्योतिः) अध्यात्मयज्ञ का प्रकाशक (प्रियं मधु पवते) उपासक को प्रिय मधुर रसमय रूप में प्राप्त होता है (देवानां पिता जनिता) दिव्य गुणों का रक्षक और उत्पन्न करने वाला (विभूवसुः) सर्वत्र वास करने वाला महाव्यापक है (स्वधयोः-अपीच्यं रत्नं दधाति) द्युलोक पृथिवीलोक के अन्दर[१] अन्तर्हित[२] अपने विभूतिरूप रमणीय धन को धारण कराता है (इन्द्रियः-रसः) वह ऐसा परमात्मा इन्द्र—उपासक आत्मा का हितकर रस है॥ १ ॥

१०३२. **अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः। हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा॥ २ ॥**

पदपाठः— **अभिक्रन्दन् अभि क्रन्दन् कलशम् वाजी अर्षति पतिः दिवः शतधारः शत धारः विचक्षणः वि चक्षणः हरिः**

---

१. ''स्वधो द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०]।
२. ''अपीच्यम्-अन्तर्हितनाम'' [निघं० ३.२५]।

मित्रस्य मि त्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानः अविभिः सिन्धुभिः वृषा ॥ २ ॥

अन्वयः—वाजी दिवः पतिः शतधारः विचक्षणः अभिक्रन्दन् कलशम्-अर्षति हरिः मित्रस्य सदनेषु सीदति वृषा सिन्धुभिः-अविभिः ॥

पदार्थः—(वाजी) अमृत अन्न भोग वाला (दिवः पतिः) अमृतधाममोक्ष का स्वामी (शतधारः) असंख्य आनन्दधारा वाला (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा—सर्वद्रष्टा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अभिक्रन्दन् कलशम्-अर्षति) साक्षात् उपदेश देता मधुर संवाद करता हुआ पात्र[१] उपासक को प्राप्त होता है, पुनः (हरिः) वह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (मित्रस्य सदनेषु) मित्रभूत उपासक आत्मा के शक्तिस्थानों में—मन आदि में (सीदति) बैठ जाता है ऐसा वह (वृषा) कामनावर्षक (सिन्धुभिः-अविभिः) स्यन्दनशील—आगे बढ़ती हुई योगभूमियों के साथ निरन्तर गति करता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१०३३. अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि। अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥

पदपाठः— अग्ने सिन्धूनाम् पवमानः अर्षसि अग्ने वाचः अग्रियः गोषु गच्छसि अग्रे वाजस्य भजसे महत् धनम् स्वायुधः सु आयुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम पवमानः सिन्धूनाम्-अग्रे-अर्षसि वाचः-अग्रे-अग्रियः गोषु गच्छसि वाजस्य अग्रे महद् धनं भजसे स्वायुधः सोतृभिः सूयसे ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (पवमानः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला (सिन्धूनाम्-अग्रे-अर्षसि) मेरे शरीर में स्यन्दमान होती हुई या शरीर को बाँधने सम्भालने वाली प्राणनाडियों के[२] पूर्व आत्मा में प्राप्त है (वाचः-अग्रे-अग्रियः-गोषु गच्छसि) तू वाणी के प्रथम ही अग्रिय—अगुवा स्तोताओं[३] के निमित्त प्राप्त होता है जो मैं तुझे कहना चाहता हूँ तू प्रथम ही समझ लेता है (वाजस्य अग्रे महद् धनं भजसे) अमृत अन्न भोग के प्रथम ही मुझे उस उत्कृष्ट धन का भागी बनाता है (स्वायुधः सोतृभिः सूयसे) अच्छी आयु—मोक्ष के जीवन को धारण कराने वाला तू उपासना द्वारा निष्पादन करने वाले उपासकों के द्वारा साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

---

१. 'कलशः' इति सामान्यपात्रार्थवाची।

२. "प्राणो वै सिन्धुः" [श० ८.५.२.४] "तद् यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० उ० १.९.२.९]।

३. "गोः स्तोतृनाम" [निघं ३.१६]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपः (नियन्त्रित मन से परमात्मा के आनन्दरस का पान करने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०३४. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः॥ १॥

पदपाठः— असृक्षतप्रवाजिनः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८२)

१०३५. शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः। पवन्ते वारे अव्यये॥ २॥

पदपाठः— शुम्भमानाः ऋतायुभिः मृज्यमानाः गभस्त्योः पवन्ते वारे अव्यये॥ २॥

अन्वयः—ऋतायुभिः गभस्त्योः मृज्यमानाः शुम्भमानाः वारे-अव्यये पवन्ते॥

पदार्थः—(ऋतायुभिः) अमृतधाम[1] को चाहने वाले उपासकों द्वारा (गभस्त्योः) प्रजा—सन्ततिकर्म[2] त्याग वाले अभ्यास और वैराग्य के अन्दर (मृज्यमानाः) प्राप्यमाण साक्षात् किया जाता हुआ[3] (शुम्भमानाः) शोभमान परमात्मा (वारे-अव्यये पवन्ते) वरणीय रक्षणीय हृदय में प्राप्त होता है॥ २॥

१०३६. ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा। पवन्तामान्तरिक्ष्या॥ ३॥

पदपाठः— ते विश्वा दाशुषे वसु सोमाः दिव्यानि पार्थिवा पवन्ताम् आ अन्तरिक्ष्या॥ ३॥

अन्वयः—ते सोमाः दाशुषे विश्वा दिव्यानि-आन्तरिक्ष्या पार्थिवा वसु पवन्ताम्॥

पदार्थः—(ते सोमाः) वह शान्तस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) स्वात्मा को देने समर्पित करने वाले उपासक के लिये (विश्वा) सारे (दिव्यानि-आन्तरिक्ष्या पार्थिवा वसु पवन्ताम्) द्युलोक वाले, अन्तरिक्ष लोक वाले, पृथिवीलोक वाले ज्ञानधनों या वाससाधनों प्राणों को[4] प्रेरित करता है॥ ३॥

---

१. ''ऋतममृतमित्याह'' [जै० २.१६०]।

२. ''विड् वै गभः'' [श० १३.२.९.६]।

३. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.२४] बहुवचनमादरार्थम्।

४ ''प्राणा वाव वसवः, तेषां देवानां वायं वस्वासीत्'' [जै० १.१४२]।

तृतीय दशर्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या। इन्द्रमिन्दो वृषा विश॥ १॥

पदपाठः— पवस्व देववीः देव वीः अति पवित्रम् सोम रंह्या इन्द्रम् इन्दो वृषा आ विश॥ १॥

अन्वयः—सोम-इन्दो देववीः रंह्या पवित्रम्-अतिपवस्व वृषा इन्द्रं विश॥

पदार्थः—(सोम-इन्दो) हे शान्तस्वरूप आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (देववीः) देवों—मुमुक्षु जनों को प्राप्त होने वाला (रंह्या) वेग से (पवित्रम्-अतिपवस्व) पवित्र हृदय को सुन्दर रूप में प्राप्त हो (वृषा) कामवर्षक (इन्द्रं विश) उपासक आत्मा में प्रवेश कर॥ १॥

१०३८. आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः। आ योनिं धर्णसिः सदः॥ २॥

पदपाठः— आ वच्यस्व मही प्सरः वृषा इन्दो द्युम्नवत्तमः आ योनिम् धर्णसिः सदः॥ २॥

अन्वयः—इन्दो वृषा द्युम्नवत्तमः प्सरः महि-आ वच्यस्व धर्णसिः योनिम्-आसदः॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (वृषा) सुखवर्षक (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशस्वी (प्सरः) भोगप्रद[1] (महि-आ वच्यस्व) महत्त्व आदेश दे[2] (धर्णसिः) बलवान्[3] (योनिम्-आसदः) हृदयगृह में[4] आ विराज॥ २॥

१०३९. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः। अपो वसिष्ट सुक्रतुः॥ ३॥

पदपाठः— अधुक्षत प्रियम् मधु धारा सुतस्य वेधसः अपः वसिष्ट सुक्रतुः सु क्रतुः॥ ३॥

---

१. "प्सा भक्षणे" [अदादि०] ततो मत्वर्थीयो 'रः' प्रत्ययः, यथा मधुरः।
२. 'आवच्यस्व'—"वच परिभाषणे" [चुरादि०]।
३. "धर्णसिः-बलनाम" [निघं० २.९] मतुब्लोपश्छान्दसः।
४. "योनिः-गृहनाम" [निघं० ३.४]।

अन्वयः—सुतस्य वेधसः धारा प्रियं मधु–अधुक्षत सुक्रतुः–अपः–वसिष्ट ॥

पदार्थः—(सुतस्य वेधसः) उपासक अन्तरात्मा में निष्पादित—साक्षात् किए जगद्विधाता परमात्मा के (धारा) धारणा ध्यान से (प्रियं मधु–अधुक्षत) प्रिय अमृत को दुहता है (सुक्रतुः–अपः–वसिष्ट) जो सुप्रज्ञान वाला श्रद्धा में[१] बस जाता है ॥ ३ ॥

१०४०. **महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **महान्तम् त्वा महीः अनु आपः अर्षन्ति सिन्धवः यत् गोभिः वासयिष्यसे ॥ ४ ॥**

अन्वयः—त्वा महान्तम्–अनु महीः–आपः सिन्धवः–अर्षन्ति यद् गोभिः–वासयिष्यसे ॥

पदार्थः—(त्वा महान्तम्–अनु) तुझ महान् शान्तस्वरूप परमात्मा की ओर (महीः–आपः सिन्धवः–अर्षन्ति) भारी संख्या में बहुतेरे उपासक जन[१] स्यन्दमान—दौड़ते हुए प्राप्त होते हैं (यद्) जब तू (गोभिः–वासयिष्यसे) वाणियों से उपदेशवचनों से या स्तुतिवाणियों से—उनके प्रतिफल आनन्द से उन्हें वासित कर देता है ॥ ४ ॥

१०४१. **समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः। सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **समुद्रः सम् उद्रः अप्सु मामृजे विष्टम्भः वि स्तम्भः धरुणः दिवः सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—सोमः विष्टम्भः दिवः–धरुणः अस्मयुः समुद्रः अप्सु मामृजे ॥

पदार्थः—(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (विष्टम्भः) जगत् का सम्भालने वाला, तथा (दिवः–धरुणः) मोक्षधाम का प्रतिष्ठा[२]—प्रतिष्ठान है (अस्मयुः) हम उपासकों को चाहने वाला (समुद्रः) आनन्दरसभरा—आनन्द को उछालने बखेरने वाला[३] वह परमात्मा (अप्सु मामृजे) उपासकजनों में प्राप्त होता है[४] ॥ ५ ॥

१०४२. **अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥**

---

१. "मनुष्या वा आपः" [श० ७.३.१.२०]।

२. "प्रतिष्ठा वै धरुणम्" [श० ७.४.२.५]।

३. "समुद्रमनु प्रजाः प्रजायन्ते" [तै० सं० ५.२.६.१]।

४. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

पदपाठः— अचिक्रदद्वृषाहरिः॥ ६॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९७)

१०४३. गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भसे॥ ७॥

पदपाठः— गिरः ते इन्दो ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः याभिः मदाय शुम्भसे॥ ७॥

अन्वयः—इन्दो अपस्युवः-गिरः ते ओजसा मर्मृज्यन्ते याभिः मदाय शुम्भसे॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! (अपस्युवः-गिरः) कर्म—वैदिक कर्म को चाहती हुई विधान के अनुसार चलती हुई वाणियाँ—स्तुतिवाणियाँ (ते) तेरे लिए (ओजसा) आत्मीय बल से हमारे द्वारा (मर्मृज्यन्ते) प्रेरित की जाती हैं[१] (याभिः) जिन से प्रेरित हुआ या जिनके द्वारा (मदाय शुम्भसे) हमारे हर्ष आनन्द देने के लिए तू शोभित हो रहा है—सत्कृत हो रहा है॥ ७॥

१०४४. तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे। तव प्रशस्तये महे॥ ८॥

पदपाठः— तम् त्वा मदाय घृष्वये उ लोककृत्नुम् लोक कृत्नुम् ईमहे तव प्रशस्तये प्र शस्तये महे॥ ८॥

अन्वयः—घृष्वये मदाय-उ तं त्वा लोककृत्नुम्-ईमहे तव महे प्रशस्तये॥

पदार्थः—(घृष्वये मदाय-उ) काम आदि दोषों को धर्षित करने वाले दबा देने वाले आनन्द पाने के लिए (तं त्वा लोककृत्नुम्-ईमहे) उस तुझ लोकों के कर्ता—रचयिता को प्रार्थित करते हैं[२] तथा (तव) तेरी (महे प्रशस्तये) महती प्रशंसा स्तुति के लिए। तुझ से बलशाली आनन्द पाना और तेरी स्तुति करना यह लक्ष्य हम उपासकों का है और होना चाहिये॥ ८॥

१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत। आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥ ९॥

पदपाठः— गोषाः गो साः इन्दो नृषाः नृ साः असि अश्वसाः अश्व साः वाजसाः वाज साः उत आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥ ९॥

---

१. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

२. "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघं० ३.१९]।

अन्वयः—इन्दो गोषाः नृषाः अश्वसाः उत वाजसाः असि यज्ञस्य पूर्व्यः-आत्मा ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (गोषाः) वाणी वेदवाणी का सेवन कराने वाला (नृषाः) जीवन्मुक्तों को[1] सेवन कराने वाला (अश्वसाः) व्यापनशील मन का[2] सेवन कराने वाला (उत) और (वाजसाः) अमृत अन्नभोग का[3] सेवन कराने वाला (असि) है (यज्ञस्य पूर्व्यः-आत्मा) अध्यात्मयज्ञ—देवपूजा का[4] शाश्वतिक आत्मा—आधार है ॥ ९ ॥

१०४६. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया। पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ॥ १० ॥

पदपाठः— अस्मभ्यम् इन्दो इन्द्रियम् मधोः पवस्व धारया पर्जन्यः वृष्टिमान् इव ॥ १० ॥

अन्वयः—इन्दो मधोः-धारया अस्मभ्यम् इन्द्रियं पवस्व वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (मधोः-धारया) आनन्दरस की[5] धारा से (अस्मभ्यम्) हमारे[6] (इन्द्रियं पवस्व) प्राण को[7] प्राप्त हो—तृप्त कर (वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव) जलवृष्टि करने वाले मेघ के समान—जैसे मेघ जलवृष्टि कर प्राण को तृप्त करता है ऐसे तू आनन्दवृष्टि करके तृप्त करा ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम दशर्च

ऋषिः—हिरण्यस्तूपः (सुनहरे स्तूप—लक्ष्य वाला या अमृतलोक[8] मोक्ष उच्च लक्ष्य जिसका है ऐसा उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०४७. सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

---

१. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]।
२. "अश्वोऽसि.....नृमणा असि" [तै० स० ७.१.१२.१]।
३. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
४. "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]।
५. "अन्तो वै रसानां मधु" [जै० १.२२४]।
६. "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यषि" [अष्टा० २.३.६२ वा]।
७. "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८.१]।
८. "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० सं० ५.२.७.२]।

पदपाठः— **सन च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः अथ नः वस्यसः कृधि॥ १॥**

अन्वयः—पवमान सोम महि श्रवः सन च जेषि अथ नः-वस्यसः-कृधि॥

पदार्थः—(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (महि श्रवः) ऊँचे यश को (सन) सेवन करा—प्राप्त करा (च) और (जेषि) विरोधी भाव पर विजय करा (अथ) अनन्तर (नः-वस्यसः-कृधि) हमें श्रेष्ठ करो—बनाओ॥ १॥

१०४८. **सना ज्योतिः सना स्वा३र्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ २॥**

पदपाठः— **सन ज्योतिः सन स्वः विश्वाचसोमसौभगा अथ नः वस्यसः कृधि॥ २॥**

अन्वयः—सोम ज्योतिः सन स्वः सन च विश्वा सौभगा अथ नः-वस्यसः-कृधि॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (ज्योतिः सन) अपनी ज्योति को सेवन करा—प्रदान कर (स्वः सन) अपने मोक्ष को सेवन करा—प्रदान कर (च) और (विश्वा सौभगा) सारे सौभाग्य इहलोक परलोक के सौभाग्य भी हमें सेवन करा (अथ नः-वस्यसः-कृधि) पूर्ववत्॥ २॥

१०४९. **सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ३॥**

पदपाठः— **सन दक्षम् उत क्रतुम् अप सोम मृधः जहि अथ नः वस्यसः कृधि॥ ३॥**

अन्वयः—सोम दक्षम्-उत क्रतुं सन मृधः-अपजहि॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (दक्षम्-उत क्रतुं सन) आत्मबल को मानस सङ्कल्प को प्रदान कर (मृधः-अपजहि) काम आदि घातकों को नष्ट कर। शेष पूर्ववत्॥ ३॥

१०५०. **पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे। अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ४॥**

पदपाठः— **पवीतारः पुनीतन पुनीत न सोमम् इन्द्राय पातवे अथ नः वस्यसः कृधि॥ ४॥**

अन्वयः—पवीतारः सोमं पुनीतन इन्द्राय पातवे ॥

पदार्थः—(पवीतारः) हे मनन विवेचन स्मरण आत्मभाव द्वारा सम्मुख लाने वाले मन बुद्धि चित्त अहङ्कार! तुम (सोमं पुनीतन) शान्तस्वरूप परमात्मा को विशुद्ध केवलरूप में लाओ (इन्द्राय पातवे) आत्मा के लिए रसरूप में पान करने को। शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

१०५१. त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

पदपाठः— त्वम् सूर्ये नः आ भज तव क्रत्वा तव ऊतिभिः अथ नः वस्यसः कृधि ॥ ५ ॥

अन्वयः—त्वम् तव क्रत्वा तव-ऊतिभिः नः सूर्ये-आभज ॥

पदार्थः—(त्वम्) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (तव क्रत्वा) तेरे—अपने प्रज्ञान से (तव-ऊतिभिः) तेरी—अपनी रक्षाओं से (नः) हम उपासकों को (सूर्ये-आभज) अपने सूर्यस्वरूप स्वर्ग[1] मोक्षधाम में अपना ले, पहुँचा दे। शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

१०५२. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

पदपाठः— तव क्रत्वा तव ऊतिभिः ज्योक् पश्येम सूर्यम् अथ नः वस्यसः कृधि ॥ ६ ॥

अन्वयः—तव क्रत्वा तव-ऊतिभिः सूर्यं ज्योक् पश्येम ॥

पदार्थः—(तव क्रत्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे—अपने प्रज्ञान से (तव-ऊतिभिः) तेरी—अपनी रक्षाओं से (सूर्यं ज्योक् पश्येम) उक्त तेरे—अपने सूर्यस्वरूप—स्वर्ग मोक्षधाम को चिर तक देखते रहें। मोक्ष में देर तक रहने की आकांक्षा है। शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

१०५३. अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

पदपाठः— अभि अर्ष स्वायुध सु आयुध सोम द्विबर्हसम् द्वि बर्हसम् रयिम् अथ नः वस्यसः कृधि ॥ ७ ॥

---

१. "स्वर्गो वैं लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमः" [श० १२.९.२.८]।

अन्वयः—स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् अभ्यर्ष ॥

पदार्थः—(स्वायुध सोम) हे सु—शोभन—सर्वोत्तम आयु—मोक्ष की आयु को धारण कराने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासकों के लिए (द्विबर्हसं रयिम्) दो लोकों में बढ़ कर ऐश्वर्य—अभ्युदय और निःश्रेयस को (अभ्यर्ष) प्रेरित कर—प्राप्त करा। शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

१०५४. अभ्या३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

पदपाठः— अभि अर्ष अनपच्युतः अन् अपच्युतः वाजिन् समत्सु स मत्सु सासहिः अथ नः वस्यसः कृधि ॥ ८ ॥

अन्वयः—वाजिन् अनपच्युतः सासहिः समत्सु अभ्यर्ष ॥

पदार्थः—(वाजिन्) हे अमृत अन्नभोग के स्वामिन्—दाता (अनपच्युतः) एक रस रहने वाला तथा जिससे उपासक अपच्युत नहीं होता तथा (सासहिः) स्वयं सहनशील तथा उपासकों को सहनशील बनाने वाला (समत्सु) तू हमें काम आदि के साथ संघर्ष अवसरों पर अध्यात्म हर्ष आनन्द प्रसङ्गों में[१] (अभ्यर्ष) प्राप्त हो। शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

१०५५. त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

पदपाठः— त्वाम् यज्ञैः अवीवृधन् पवमानविधर्म्मणि अथ नः वस्यसः कृधि ॥ ९ ॥

अन्वयः—पवमान विधर्मणि यज्ञैः त्वाम्-अवीवृधन् ॥

पदार्थः—(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! (विधर्मणि) विशेष धर्म—अध्यात्म गुण लाभ के निमित्त (यज्ञैः) अध्यात्मयज्ञों के यम नियम आदि अङ्गों द्वारा (त्वाम्-अवीवृधन्) तुझे उपासक जन अपने अन्दर प्रवृद्ध करते हैं। शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

१०५६. रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥

पदपाठः— रयिम् नः चित्रम् अश्विनम् इन्दो विश्वायुम् विश्व आयुम् आ भर अथ नः वस्यसः कृधि ॥ १० ॥

१. "समदो वा मदतेः" [निरु० ९.१६]।

अन्वयः—इन्दो नः चित्रम् अश्विनम् विश्वायुं रयिम् आभर॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (नः) हमारे लिए (चित्रम्) अद्भुत चायनीय अपूर्व सर्वोत्तम (अश्विनम्) अचल (विश्वायुं रयिम्)[1] पूर्णायुवाला पोष पुष्टि को (आभर) आभरित कर। शेष पूर्ववत्॥ १०॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए परमात्मा के आदेशानुसार चलने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०५७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्स मन्दी धावति॥ १॥

पदपाठः— तरत्समन्दीधावति॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५००)

१०५८. उस्रा वेद वसूनां मर्त्तस्य देव्यवसः। तरत्स मन्दी धावति॥ २॥

पदपाठः— उस्रा उ स्रा वेद वसूनाम् मर्त्तस्य देवी अवसः तरत् सः मन्दी धावति॥ २॥

अन्वयः—देवी-उस्रा मर्तस्य वसूनाम् अवसः वेद मन्दी सः तरत् धावति॥

पदार्थः—(देवी-उस्रा) सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की दिव्या आनन्दधारा ऊँचे प्रेरित करने वाली[2] उन्नति पथ पर ले जाने वाली (मर्तस्य वसूनाम्) उपासक मनुष्य के प्राणों के[3] (अवसः) रक्षण को (वेद) प्राप्त कराती है, अतः (मन्दी) परमात्मा की उस आनन्दधारा का पान करने वाला (सः) वह स्तुतिकर्ता (तरत्) पापों को तरता हुआ (धावति) प्रगति करता है॥ २॥

१०५९. ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥ ३॥

पदपाठः— ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः पुरु सन्त्योः आ सहस्राणि दद्महे तरत् सः मन्दी धावति॥ ३॥

अन्वयः—ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः सहस्राणि-आदद्महे॥

---

१. ''रयिं देहि पोषं देहि'' [काठ० १.७]।

२. ''उस्रा-उत्स्राविणो भोगा अस्याम्'' [निरु० ४.१९]।

३. ''प्राणा वै वसवः'' [तै० ३.२.३.३]।

पदार्थः—हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे (ध्वस्रयोः) पापध्वंसकों (पुरुषन्त्योः) तुझ पुरुष—परमात्मा के समीप ले जाने वाले जप और अर्थभावन की (सहस्राणि-आदद्महे) सहस्रों आवृत्तियाँ करूँ। ऐसा करने वाला संसार को तरता हुआ दौड़ा जा रहा है॥ ३॥

१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे। तरत्स मन्दी धावति॥ ४॥

पदपाठः— आ ययोः त्रिंशतम् तना सहस्राणि च दद्महे तरत् सः मन्दी धावति॥ ४॥

अन्वयः—ययोः-त्रिंशतम् तना सहस्राणि-आदद्महे॥

पदार्थः—(ययोः-त्रिंशतम्) जिनके तीस—तीसों दिन रात (तना) धनों को[1] (सहस्राणि-आदद्महे) सहस्रों आवृत्तियाँ करता हूँ। शेष पूर्ववत्॥ ४॥

तृतीय तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे। मदिन्तमस्य धारया॥ १॥

पदपाठः— एते सोमाः असृक्षत गृणानाः शवसे महे मदिन्तमस्य धारया॥ १॥

अन्वयः—एते सोमाः-गृणानाः-असृक्षत महे शवसे मदिन्तमस्य धारया॥

पदार्थः—(एते सोमाः-गृणानाः-असृक्षत) यह स्तुति किया जाता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा[2] साक्षात् किया जाता है (महे शवसे) महान् आत्मबल प्राप्ति के लिए (मदिन्तमस्य धारया) अत्यन्त हर्षप्रद परमात्मा की धारणा से या स्तुतिवाणी से॥ १॥

१०६२. अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि। सनद्वाजः परि स्रव॥ २॥

पदपाठः— अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानः अर्षसि सनद्वाजः सनत् वाजः परि स्रव॥ २॥

---

१. "तना धननाम" [निघं० २.१०]।

२. बहुवचनमादरार्थम्।

अन्वयः—पुनानः सनद्वाजः वीतये गव्यानि नृम्णा अभि-अर्षसि परिस्रव ॥

पदार्थः—(पुनानः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासकों को पवित्र करता हुआ (सनद्वाजः) शाश्वतिक अमृत अन्नभोग वाला (वीतये) तृप्ति के लिए (गव्यानि) स्तुति वाणी से सिद्धि वाले (नृम्णा) यशोभोग (अभि-अर्षसि) प्रेरित करता है, अतः तू (परिस्रव) हमारी ओर प्राप्त हो ॥ २ ॥

१०६३. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः। गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥

पदपाठः— उत नः गोमतीः इषः विश्वाः अर्ष परिष्टुभः परि स्तुभः गृणानः जमदग्निना जमत् अग्निना ॥ ३ ॥

अन्वयः—उत नः ष्टुभः-गोमतीः-विश्वाः-इषः जमदग्निना गृणानः परि-अर्ष ॥

पदार्थः—(उत) अपि च—तथा (नः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् तू मेरे लिए (ष्टुभः-गोमतीः-विश्वाः-इषः) स्तुत्य—प्रशंसनीय प्रार्थना वाली सारी कामनाएँ (जमदग्निना गृणानः) मुझ प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाले उपासक के द्वारा स्तुत किया जाता हुआ—स्तुति को प्राप्त हुआ (परि-अर्ष) परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता उपासक[1])॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

१०६४. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

पदपाठः— इमथंस्तोममर्हतेजातवेदसे ॥ १ ॥

अन्वयः—इमं स्तोमम्-अर्हते जातवेदसे रथम्-इव मनीषया सम्महेम अस्य संसदि प्रमतिः-नः-भद्रा हि अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम ॥

पदार्थः—(इमं स्तोमम्-अर्हते जातवेदसे) इस स्तुतिसमूह को प्राप्त करने योग्य उत्पन्नमात्र को जानने वाले सर्वज्ञ परमात्मा को[2] (रथम्-इव) रमण साधन रथ के समान (मनीषया सम्महेम) हार्दिक भावना से सत्कृत करते हैं (अस्य

---

१. ''कुत्सः कर्ता स्तोमानाम्'' [निरु० ३.११]।

२. द्वितीयार्थे चतुर्थी।

संसदि प्रमति:-न:-भद्रा हि) इस की सङ्गति में प्रकृष्ट मति—स्थिर बुद्धि कल्याणकारी हो जाती है, अत: (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् तेरी मित्रता में हम हिंसित न हो सकें ॥ १ ॥

१०६५. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्त: पर्वणापर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

पदपाठ:—भराम इध्मम् कृणवाम हवीꣳषि ते चितयन्त: पर्वणा-पर्वणा पर्वणा पर्वणा वयम् जीवातवे प्रतराम् साधय धिय: अग्ने सख्ये स ख्ये मा रिषाम वयम् तव ॥ २ ॥

अन्वय:—अग्ने पर्वणा पर्वणा वयम् चितयन्त: ते इध्मं भराम हवींषि कृणवाम जीवातवे धियं प्रतरां साधय ते सख्ये वयं मा रिषाम ॥

पदार्थ:—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (पर्वणा पर्वणा) प्रति पर्व प्रति प्रात: सायं (वयम्) हम (चितयन्त:) सावधान होते हुए (ते) तेरे अन्दर (इध्मं भराम) अपने आत्मा को[1] समर्पित करें (हवींषि कृणवाम) मन:कामनाओं को[2] तेरे प्रति नमा दें (जीवातवे) दीर्घ जीवन—अमर जीवन—मोक्ष के लिए (धियं प्रतरां साधय) अध्यात्म कर्मों को प्रकृष्ट बना दे (ते सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता में हम न हिंसित हों ॥ २ ॥

१०६६. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यू३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥

पदपाठ:— शकेम त्वा समिधम् सम् इधम् साधय धिय: त्वेइति देवा: हवि: अदन्ति आहुतम् आ हुतम् त्वम् आदित्यान् आ दित्यान् आ वह तान् हि उश्मसि अग्ने सख्ये स ख्ये मा रिषाम वयम् तव ॥ ३ ॥

अन्वय:—अग्ने त्वा समिधं शकेम त्वे धिय: साधय देवा:-आहुतं हवि:-अदन्ति त्वम्-आदित्यान्-आवह तान्-उश्मसि ॥

पदार्थ:—(अग्ने त्वा समिधं शकेम) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! अपने

---

१. ''आत्मा वा इध्म:'' [तै० ३.२.१०.३]।

२. ''मनो हवि:'' [तै० आ० ३.६.१]।

अन्दर तुझ सम्यक् दीस—सम्यक् प्रकाशमान हुए को धारण करने में हम समर्थ हैं (त्वे धियः साधय) तू[1] हमारे अध्यात्मकर्मों को सिद्ध कर (देवाः-आहुतं हविः-अदन्ति) जीवन्मुक्त या मुक्त आत्माएँ तुझ होमी हुई आत्महवि को—उसके प्रतिफल को मुक्ति में खाते हैं भोगते हैं (त्वम्-आदित्यान्-आवह) तू हमें अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति में रहने वाले अधिकारी सम्पादन कर—बना (तान्-उश्मसि) हम उन अपने मुक्त रूपों को चाहते हैं। शेष पूर्ववत्॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥
देवता—आदित्यः (अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति का स्वामी परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री॥

१०६७. **प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम्॥ १॥**

पदपाठः— **प्रति वाम् सूरे उदिते उत् इते मित्रम् मि त्रम् गृणीषे वरुणम् अर्यमणम् रिशादसम्॥ १॥**

अन्वयः—सूरे-उदिते वां प्रति मित्रम् वरुणम् रिशादसम्-अर्यमणम् गृणीषे॥

पदार्थः—(सूरे-उदिते) सूर्य[2] उदय होने पर (वां प्रति) तुझ प्रत्येक नाम से कहे जाने वाले (मित्रम्) संसार में प्रेरक (वरुणम्) अपनी ओर वरने वाले (रिशादसम्-अर्यमणम्) हिंसक—घातकों के फेंकने—भगाने वाले, हिंसकों के क्षीण करने वाले, हिंसकों को खा जाने वाले[3] सर्व स्वामी आदित्य[4] को (गृणीषे) स्तुत करूँ, स्तुतिपात्र बनाऊँ॥ १॥

१०६८. **राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये॥ २॥**

पदपाठः— **राया हिरण्यया मतिः इयम् अवृकाय अ वृकाय शवसे इयम् विप्रा वि प्रा मेधसातये मेध सातये॥ २॥**

अन्वयः—विप्राः इयं मतिः हिरण्यया राया अवृकाय शवसे इयं मेधसातये॥

पदार्थः—(विप्राः) हे विशेष कामनापूरक मित्र वरुण अर्यमा 'आदित्य'

---

१. 'त्वम्-त्वे' ''सुपां सुलुक्....शे....आलः'' [अष्टा० ७.१.३९] इति सुस्थाने शे।
२. ''सजूः सूरः....सूर्यमेव प्रीणाति'' [मै० ३.४.४]।
३. ''रिशादसः-रेशयांदासिनः'' [निरु० ६.१४]।
४. ''अर्यमाऽऽदित्योऽरीन्नियच्छति'' [निरु० ११.३]।

प्रेरक वरण करने वाले अखण्ड सुखसम्पत्ति के स्वामी परमात्मन्! (इयं मतिः) यह तेरी स्तुति[1] (हिरण्यया राया) सुनहरी धन—अध्यात्मज्ञान धन के साथ (अवृकाय शवसे) अहिंसक बल—शान्तिप्रसारक बल—अध्यात्मबल के लिए[2] (इयं मेधसातये) यह स्तुति अध्यात्मयज्ञ की[3] सम्पन्नता के लिए सिद्ध हो ॥ २ ॥

१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि॥ ३ ॥

पदपाठः— ते स्याम देव वरुण ते मित्र मि त्र सूरिभिः सह इषम् स्वा३रिति च धीमहि॥ ३ ॥

अन्वयः—देव वरुण ते स्याम मित्र ते सूरिभिः सह स्वश्च इषं धीमहि ॥

पदार्थः—(देव वरुण ते स्याम) हे अपनी ओर वरने वाले परमात्मदेव! हम तेरे हों—तुझ से अलग न हों (मित्र ते) हे प्रेरक परमात्मन्! हम तेरे हों—तुझ से अलग न हों (सूरिभिः सह) स्तुतिकर्त्ताओं[4] के साथ हम से पूर्व स्तुतिकर्त्ता जैसे तेरे हो गये उनके साथ हम भी तेरे हो जावें उनकी श्रेणी में तेरे बन जावें?॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन ज्योतियों वाला मन, आत्मा, परमात्मा का ज्ञानी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः। वसु स्पार्हं तदा भर॥ १ ॥

पदपाठः— भिन्धिविश्वाअपद्विषः॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३४)

१०७१. यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर॥ २ ॥

पदपाठः— यस्य ते विश्वम् अनुषक् अनु सक् भूरेः दत्तस्य वेदति वसु स्पार्हं तद् आ भर॥ २ ॥

अन्वयः—ते यस्य भूरेः-दत्तस्य विश्वम्-आनुषक् वेदति तत् स्पार्हं वसु-आभर ॥

---

१. "मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।

२. "शवः-बलनाम" [निघं० २.९]।

३. "मेधो यज्ञनाम" [निघं० ३.१७]।

४. "सूरिः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।

पदार्थः—(ते) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरे (यस्य भूरेः-दत्तस्य) जिस भारी दातव्य—देने योग्य 'धन' को[1] (विश्वम्-आनुषक् वेदति) सब मनुष्य आनुपूर्व्य से[2] परम्परा से जानता है (तत् स्पार्हं वसु-आभर) उस स्पृहणीय स्वसमीप में बसाने वाले धन को हमारे लिए आभरित कर—दे दे—प्रदान कर॥ २॥

१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्। वसु स्पार्हं तदा भर॥ ३॥

पदपाठः— यद्वीडाविन्द्रयत्स्थिरे॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २०७)

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (उच्च गतिशील या निर्मल इन्द्रियरूप घोड़े जिसके हों ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०७३. यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ १॥

पदपाठः— यज्ञस्य हि स्थः ऋत्विजा सस्नीइति वाजेषु कर्म्मसु इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति तस्य बोधतम्॥ १॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी यज्ञस्य सस्नी ऋत्विजा स्थः वाजेषु कर्मसु तस्य बोधतम्॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (यज्ञस्य) अध्यात्मयज्ञ के (सस्नी) विशुद्ध (ऋत्विजा) याजक—यज्ञ कराने वाले (स्थः) हो (वाजेषु कर्मसु) वाज—अमृत अन्न भोग वाले[3] अध्यात्मकर्मों में वर्तमान (तस्य बोधतम्) उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना॥ १॥

१०७४. तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ २॥

पदपाठः— तोशासा रथयावाना रथ यावाना वृत्रहणा वृत्र हना अपराजिता अ पराजिता इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति तस्य बोधतम्॥ २॥

---

१. सर्वत्र षष्ठी द्वितीयार्थे।

२. "आनुषगिति नामानुपूर्व्यस्य" [निरु० ६.१४]।

३. अकारो मत्वर्थीयः।

अन्वयः—तोशासा रथयावाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥

पदार्थः—(तोशासा) हे तुष्ट करने वाले! (रथयावाना) संसाररथ पर आरूढ—संसाररथ के स्वामी—संसाररथ के चालक (वृत्रहणा) पापहन्ता (अपराजिता) किसी पराजित करने वाले से रहित (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (तस्य बोधतम्) उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना॥ २॥

१०७५. **इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ ३॥**

पदपाठः— **इदम् वाम् मदिरम् मधु अधुक्षन् अद्रिभिः अ द्रिभिः नरः इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति तस्य बोधतम्॥ ३॥**

अन्वयः—अद्रिभिः-नरः वाम् इदं मदिरं मधु अधुक्षन् इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥

पदार्थः—(अद्रिभिः-नरः) 'श्लोककृद्भिः' प्रशंसा करने वाले स्तुति करने वाले[1] मुमुक्षुजन[2] (वाम्) तेरे लिए (इदं मदिरं मधु अधुक्षन्) इस हर्षकर मधुर उपासनारस को दूहते हैं—प्रस्तुत करते हैं (इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्) हे ऐश्वर्यवन् ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कश्यपः (शासन में[3] आने योग्य मन से पान करने वाला अभ्यासी उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्त परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०७६. **इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। अर्कस्य योनिमासदम्॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्रायेन्दोमरुत्वते॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७२)

१०७७. **तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्। सं त्वा मृजन्त्यायवः॥ २॥**

पदपाठः— **तम् त्वा विप्राः वि प्राः वचोविदः वचः विदः परि कृण्वन्ति धर्णसिम् सम् त्वा मृजन्ति आयवः॥ २॥**

---

१. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५]। २. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]।
३. "कश शासने" [अदादि०]।

अन्वयः—तं त्वा धर्णसिम् वचोविदः-विप्राः परिष्कृण्वन्ति त्वा आयवः सं मृजन्ति ॥

पदार्थः—(तं त्वा धर्णसिम्) उस तुझ बलवान्[1] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (वचोविदः-विप्राः) स्तुतिप्रकारवेत्ता विशेष प्रीति प्रदर्शित करने वाले विद्वान् (परिष्कृण्वन्ति) साक्षात् करते हैं (त्वा) तुझे (आयवः सं मृजन्ति) साधारण मनुष्य[2] अलंकृत—सत्कृत करते हैं अतः सर्वोपास्य है ॥ २ ॥

१०७८. रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे। पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— रसम् ते मित्रः मि त्रः अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—कवे ते पवमानस्य रसम् मित्रःअर्यमा वरुणः-मरुतः पिबन्तु ॥

पदार्थः—(कवे) हे क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते पवमानस्य रसम्) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के रस को (मित्रःअर्यमा वरुणः-मरुतः पिबन्तु) मित्र—सर्वमित्र —सब से स्नेह करने वाला[3] विशेषतः तेरे से स्नेह करने वाला, अर्यमा—तुझे स्वामी मानने वाला तेरे प्रति अपने को दे देने वाला समर्पणकर्ता[4], वरुण—तुझे पूर्णरूप से वरने वाला, अन्य से राग छोड़ देने वाला तथा मुमुक्षुजन[5] पीवें—पीते हैं। पीने के अधिकारी हैं, हम अधिकारी बनें ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती ॥

१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि। रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥

पदपाठः— मृज्यमानःसुहस्त्या ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१७)

१०८०. पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने। देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २ ॥

---

१. ''धर्णसिः-बलनाम'' [निघं० २.९] मतुप्प्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः।

२. ''आयवः-मनुष्याः'' [निघं० २.३]।

३. ''सर्वस्य ह्येव मित्रो मित्रम्'' [श० ५.३.२.७]।

४. ''यो ददाति सोऽर्यमा'' [मै० २.३.६]। ५. ''मरुतो देवविशः'' [श० २.५.१.१२]।

पदपाठः— **पुनानः वारे पवमानः अव्यये वृषा उ अचिक्रदत् वने देवानाम् सोम पवमान निष्कृतम् निः कृतम् गोभिः अञ्जानः अर्षसि ॥ २ ॥**

अन्वयः—पवमान सोम गोभिः-अञ्जानः देवानां निष्कृतम्-अर्षसि पवमानः पुनानः-वृषा-उ अव्यये वारे वने-अचिक्रदत् ॥

पदार्थः—(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होनेवाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (गोभिः-अञ्जानः) स्तुतिवाणियों से सम्मुख झलकता हुआ (देवानां निष्कृतम्-अर्षसि) उपासकजनों के निर्मल हृदयस्थान को प्राप्त होता है (पवमानः पुनानः-वृषा-उ) धारारूप में आता हुआ पवित्रकारक सुखवर्षक बना (अव्यये वारे वने-अचिक्रदत्) अनश्वर वरने वाले सम्भजन करने वाले आत्मा में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं मोक्ष को चाहने वाला उपासक) ॥
देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥
छन्दः—गायत्री ॥

१०८१. **एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥**

पदपाठः— **एतम् उ त्यम् दश क्षिपः मृजन्ति सिन्धुमातरम् सिन्धु मातरम् सम् आदित्येभिः आ दित्येभिः अख्यत ॥ १ ॥**

अन्वयः—उ-एतं त्यम् सिन्धुमातरम् दश क्षिपः-मृजन्ति आदित्येभिः-अख्यत ॥

पदार्थः—(उ-एतं त्यम्) निश्चय इस उस (सिन्धुमातरम्) स्यन्दनशील पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक की पदार्थशक्तियों के[1] मातृरूप या निर्माता को[2] (दश क्षिपः-मृजन्ति) दश फिंकी हुईं फैली हुईं दिशाएँ प्राप्त हैं[3] वह ऐसा परमात्मा (आदित्येभिः-अख्यत) अदिति—अखण्डिता मुक्ति के साधनधर्मों शम, दम, योगाभ्यासादि के द्वारा अन्तगत्मा में दृष्ट होता है साक्षात् होता है ॥ १ ॥

१०८२. **समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥**

---

१. जिन से सारा संसार बँधा है "तद् यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० १.९.२.९] ।
२. माता निर्माता भवति "माता निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि" [निरु० २.८] ।
३. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० १०.१४] ।

पदपाठः— **सम् इन्द्रेण उत वायुना सुतएतिपवित्रआ सम् सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥**

अन्वयः—सुतः पवित्रे इन्द्रेण–उत वायुना सम्–आ–एति सूर्यस्य रश्मिभिः सम्आ एति ॥

पदार्थः—(सुतः) उपासना द्वारा निष्पन्न—साक्षात् हुआ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (पवित्रे) प्राप्तिस्थान हृदय में (इन्द्रेण–उत वायुना सम्–आ–एति) आत्मा से समागम करता है पुनः आयु[1] के साथ भी (सूर्यस्य रश्मिभि सम् आ एति) हृदय के[2] प्राणों के[3] साथ समागम करता है आत्मा में परमात्मा का समागमलाभ हुआ तो आत्मा की अमर आयु मुक्ति की आयु और सांसारिक जीवन की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

१०८३. **स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्। चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **सः नः भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् चारुः मित्रे मि त्रे वरुणे च॥ ३ ॥**

अन्वयः—सः नः भगाय वायवे पूष्णे मधुमान् पवस्व मित्रे वरुणे च चारुः ॥

पदार्थः—(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (नः) हमारे (भगाय) आध्यात्मिक ऐश्वर्य या आत्मिक तेज[4] के लिए (वायवे) मन[5] या मनोविकास के लिए (पूष्णे) शारीरिक पुष्टि[6] के लिए (मधुमान् पवस्व) मधुररूप होकर प्राप्त हो (मित्रे वरुणे च चारुः) प्राण[7], श्वास और अपान[8] उच्छ्वास के निमित्त भी अनुकूल रूप हो प्राप्त हो ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१०८४. **रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥**

---

१. "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २.४.३]।
२. "असौ वा आदित्यो हृदयम्" [श० ९.१.२.९०]।
३. "प्राणा रश्मयः" [तै० ३.२.५.२]।
४. "भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पेताम्" [तै० सं० ९.७.३.१]।
५. "मनो वायुः" [काठ० १३.१]।
६. "पुष्टिर्वै पूषा" [काठ० ३१.१]।
७. "प्राणो वै मित्रः" [श० ६.५.१.५]।
८. "अपानो वरुणः" [श० ८.४.२.६]।

पदपाठः— **रेवतीर्नःसधमादे ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५३)

१०८५. **आ घ त्वावान् त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यः धृष्णो ईयानः ऋणोः अक्षम् न चक्र्योः ॥ २ ॥**

अन्वयः—धृष्णो त्वावान् घ स्तोतृभ्यः–ईयानः त्मना युक्तः चक्र्योः–अक्षं न आ–ऋणोः ॥

पदार्थः—(धृष्णो) हे काम आदि दोषों के धर्षक—धकेलने वाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वावान् घ) तुझ जैसा[1] तू ही है (स्तोतृभ्यः–ईयानः) स्तुतिकर्ताओं द्वारा प्रार्थ्यमान—प्रार्थना किया जाता हुआ उनके लिए उनके साथ (त्मना युक्तः) अपने स्वरूप से युक्त हुआ (चक्र्योः–अक्षं न) रथ के पहियों में अक्ष—धुरा दण्ड के समान (आ–ऋणोः) समन्तरूप से उन्हें गति दे[2] मोक्ष की ओर ले जा ॥ २ ॥

१०८६. **आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ यत् दुवः शतक्रतो शत क्रतो आ कामम् जरितॄणाम् ऋणोः अक्षम् न शचीभिः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—शतक्रतो जरितॄणाम् यत्–दुवः कामम्–आ–ऋणोः शचीभिः–अक्षं न–आ ॥

पदार्थः—(शतक्रतो) हे बहुत—अनन्त ज्ञानकर्मवन् परमात्मन्! तू (जरितॄणाम्) स्तुतिकर्त्ताओं के[3] (यत्–दुवः कामम्–आ–ऋणोः) जो परिचरणीय[4] सेवनीय सुख है उसे कामनानुसार प्राप्त करा (शचीभिः–अक्षं न–आ) कर्मों से[5] गतिक्रियाओं से जैसे अक्ष—रथस्वामी के गन्तव्य प्राप्तव्य को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

---

१. "युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम्" [अष्टा० ५.२.९४ वा०] इति मतुप्।
२. "ऋणोति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
३. "जरिता स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
४. "दुवस् परिचरणे" [कण्ड्वादि०] ततः क्विप्।
५. "शची कर्मनाम" [निघं० २.१]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०८७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि॥ १॥

पदपाठः— सुरूपकृत्नुमूतये॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६०)

१०८८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः॥ २॥

पदपाठः— उप नः सवना आ गहि सोमस्य सोमपाः सोम पाः पिब गोदाः गो दाः इत् रेवतः मदः॥ २॥

अन्वयः—सोमपाः नः सवना–उप–आगहि सोमस्य पिब रेवतः–मदः–गोदाः–इत्॥

पदार्थः—(सोमपाः) हे सोम—उपासनारस के पीने वाले—स्वीकार करनेवाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (नः) हमारे (सवना–उप–आगहि) उपासनावसरों में उपगत होओ—प्राप्त होओ (सोमस्य पिब) उपासनारस को[1] पान कर—स्वीकार कर (रेवतः–मदः–गोदाः–इत्) तुझ रेवान्—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए[2] समर्पित उपासनारस मुझ उपासक के लिए ज्ञानप्रद और हर्षकारी हो—है॥ २॥

१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि॥ ३॥

पदपाठः— अथ ते अन्तमानाम् विद्याम सुमतीनाम् सु मतीनाम् मा नः अति ख्यः आ गहि॥ ३॥

अन्वयः—अथ ते अन्तमानाम् सुमतीनाम् विद्याम मा नः–अतिख्य आ गहि॥

पदार्थः—(अथ ते) और हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरे (अन्तमानाम्) अत्यन्त समीपी[3] (सुमतीनाम्) उत्तम मति वालों—सुमेधावियों—जीवन्मुक्तों के[4] समान[5]

---

१. द्वितीयार्थे षष्ठी।
२. ''चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि'' [अष्टा० २.३.६२]।
३. ''अन्तमानाम्–अन्तिकनाम'' [निघं० २.१६]।
४. ''मतयः–मेधाविनाम'' [निघं० ३.१५]।
५. अत्र लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।

(विद्याम) हम तुझे जानें (मा नः-अतिख्य) मत हमें अपने दर्शन से वञ्चित कर, अतः (आ गहि) तू हम तक आ—यह गहरी आकांक्षा है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मान्धाता (मान्-मिति स्थिति को धारणकर्ता)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—महापंक्तिः ॥

१०९०. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्। देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ १ ॥

पदपाठः— उभेयदिन्द्ररोदसी॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३७९)

१०९१. दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः। पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः। देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ २ ॥

पदपाठः— दीर्घम् हि अङ्कुशम् यथा शक्तिम् बिभर्षि मन्तुमः पूर्वेण मघवन् पदा वयाम् अजः यथा यमः देवीजनित्र्यजीजनद्भद्राजनित्र्यजीजनत्॥ २ ॥

अन्वयः—मन्तुमः-मघवन् दीर्घम्-अंकुशं यथा शक्तिं बिभर्षि पूर्वेण पदा वयाम्-अजः-यथा यमः जनित्री देवी-अजीजनत् भद्रा जनित्री-अजीजनत्॥

पदार्थः—(मन्तुमः-मघवन्) हे ज्ञानवन्—सर्वथा ज्ञानवन्[१] ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (दीर्घम्-अंकुशं यथा) बड़े अंकुश की भाँति (शक्तिं बिभर्षि) शक्ति को तू धारण करता है (पूर्वेण पदा वयाम्-अजः-यथा यमः) अगले पैर से बकरा शाखा को[२] स्वायत्त करता है ऐसे तू प्रकृति को स्वायत्त करता है, वह (जनित्री देवी-अजीजनत्) उत्पादिका देवी संसार को उत्पन्न करती है (भद्रा जनित्री-अजीजनत्) कल्याणकारिणी उत्पादिका उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

१०९२. अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम्। अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति। देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ ३ ॥

---

१. "मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि" [अष्टा० ८.५.१]।

२. "वयाः शाखाः" [निरु० १.४]।

पदपाठः— **अव स्म दुर्हणायतः दुः हणायतः मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् अधस्पदम् अधः पदम् तम् ईम् कृधि यः अस्मान् अभिदासति अभि दासति देवीजनित्र्यजीजनदभद्राः- जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—मर्तस्य दुर्हणायतः स्थिरम् अव तनुहि स्म तम्-इम्-अधस्पदं कृधि यः-अस्मान्-अभिदासति ॥

पदार्थः—(मर्तस्य) मनुष्य के (दुर्हणायतः स्थिरम्) दुराधर्ष—गहन दबाने वाले काम आदि दोष के[1] सत्त्वस्वरूप को (अव तनुहि स्म) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! निर्बल कर दे (तम्-इम्-अधस्पदं कृधि) उसको अवश्य नीचे कर दबा दे (यः-अस्मान्-अभिदासति) जो हमें क्षीण करता है या दबाता है। आगे पूर्ववत् ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१०९३. **परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्। मदेषु सर्वधा असि॥ १ ॥**

पदपाठः— **परिस्वानोगिरिष्ठाः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७५)

१०९४. **त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः। मदेषु सर्वधा असि॥ २ ॥**

पदपाठः— **त्वम् विप्रः वि प्रः त्वम् कविः मधु प्र जातम् अन्धसः मदेषु सर्वधा सर्व धा असि॥ २ ॥**

अन्वयः—त्वं विप्रः त्वं कविः अन्धसः मधु प्रजातम् मदेषु सर्वधा-असि ॥

पदार्थः—(त्वं विप्रः) हे सोम-शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू विशेष रूप से तृप्त करने वाला (त्वं कविः) तू क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (अन्धसः) तुझ अध्यानीय उपासनीय का (मधु प्रजातम्) मधुर रस प्रसिद्ध है (मदेषु सर्वधा-असि) हर्ष आनन्द देने वालों में—का सर्वधारक आधार तू है ॥ २ ॥

---

१. ''दुर्हणायून् दुराधर्षान्'' [निरु० १४.२६]।

१०९५. त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत। मदेषु सर्वधा असि॥ ३॥

पदपाठः— त्वेइति विश्वे सजोषसः स जोषसः देवासः पीतिम् आशत मदेषु सर्वधा सर्व धा असि॥ ३॥

अन्वयः—विश्वे देवासः सजोषसः त्वे पीतिम्-आशत (मदेसु...)॥

पदार्थः—(विश्वे देवासः सजोषसः) सारे मुमुक्षु विद्वान् तुझ से समान प्रीति रखने वाले (त्वे पीतिम्-आशत) तेरे आधार पर अमृतपान का स्वाद लेते हैं। (मदेसु...) आगे पूर्ववत्॥ ३॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—ऋणञ्चयः (तीनों ऋण चुकाने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्। सोमो यः सुक्षितीनाम्॥ १॥

पदपाठः— ससुन्वेयोवसूनाम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५८२)

१०९७. यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः। आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे॥ २॥

पदपाठः— यस्य ते इन्द्रः पिबात् यस्य मरुतः यस्य वा अर्यमणा भगः आ येन मित्रा मि त्रा वरुणा करामहे आ इन्द्रम् अवसे महे॥ २॥

अन्वयः—यस्य ते इन्द्रः पिबात् यस्य मरुतः वा अर्यमणा भगः महे-अवसे येन मित्रावरुणा-आकरामहे इन्द्रम्-आ॥

पदार्थः—(यस्य ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! जिस तेरे आनन्दरस को (इन्द्रः पिबात्) उपासक आत्मा पीता है (यस्य मरुतः) जिस तेरे आनन्दरस को मुमुक्षुजन[1] पीते हैं (वा) और[2] (अर्यमणा भगः) आत्मसमर्पणकर्ता जन[3] तथा साथ ही भाग्यशाली आत्मतेज वाला पीता है (महे-अवसे येन मित्रावरुणा-

---

१. ''मरुता देवविशः'' [श० २.५.१.१२]।
२. ''अथापि वा समुच्चयार्थे भवति'' [निरु० १.५]।
३. ''यो ददाति सोऽर्यमा'' [मै० २.३.६]।

आकरामहे) महती रक्षा के लिए जिस तुझ परमात्मा के द्वारा प्राण अपान को स्वच्छ प्रबल बनावें (इन्द्रम्-आ) जिस तुझ परमात्मा के द्वारा स्वात्मा को भी स्वच्छ प्रबल बनावें बनाते हैं उस का=तेरा समागम स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (अध्यात्म पर्व वाला और नरसम्बन्धी सुख—अध्यात्म उपदेश देने वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

पदपाठः— तंवःसखायोमदाय ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६९)

१०९९. सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

पदपाठः— सम् वत्सः इव मातृभिः इन्दुः हिन्वानः अज्यते देवावीः देव अवीः मदः मतिभिः परिष्कृतः परि कृतः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्दुः देवावीः मदः मतिभिः परिष्कृतः सम् अज्यते मातृभिः-हिन्वानः-वत्सः-इव ॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मा! (देवावीः) मुमुक्षु उपासकों का रक्षक (मदः) हर्षकारी (मतिभिः परिष्कृतः सम् अज्यते) स्तुतिवाणियों के द्वारा[1] परिपुष्ट हुआ सम्मुख आता है[2] साक्षात् होता है (मातृभिः-हिन्वानः-वत्सः-इव) दूध पिलाने वाली माताओं के द्वारा वर्धित[3] पोषित हुए बच्चे के समान ॥ २ ॥

११००. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— अयम् दक्षाय साधनः अयम् शर्द्धाय वीतये अयम् देवेभ्यः मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥

---

१. "वाग् वै मतिर्वाचा हीदं सर्वं मनुते" [श० ८.१.२.७]।
२. "अञ्जु व्यक्तित....." [रुधादि०]।
३. "हि वृद्धौ" [स्वादि०]।

अन्वयः—अयं सुतः देवेभ्यः-मधुमत्तरः अयं दक्षाय साधनः अयं शर्धाय वीतये ॥

पदार्थः—(अयं सुतः) यह साक्षात् हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः-मधुमत्तरः) मुमुक्षुजनों के लिए अत्यन्त मधुररसरूप है (अयं दक्षाय साधनः) यह समृद्धि[1] का[2] साधने वाला है (अयं शर्धाय वीतये) यह बल—आत्मबल[3] का साधने वाला और कामपूर्ति का साधने वाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—मनुः (परमात्मा का मनन करने वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

११०१. **सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः । मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **सोमाःपवन्तइन्दवः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४८)

११०२. **ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥**

पदपाठः— **ते पूतासः विपश्चितः विपः चितः सोमासोदध्याशिरः सूरासः न दर्शतासः जिगत्नवः ध्रुवाः घृते ॥ २ ॥**

अन्वयः—ते सोमासः विपश्चितः दध्याशिरः सूरासः-न दर्शतासः जिगत्नवः घृते ध्रुवा ॥

पदार्थः—(ते सोमासः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा[4] (विपश्चितः) मेधावी जनों को चेताने वाला महामेधावी (दध्याशिरः) ध्यान से[5] मिश्रण करने वाले उपासक के ध्यान से मेल करने वाला (सूरासः-न दर्शतासः) सूर्य[6] के समान दर्शनीय (जिगत्नवः) सर्वत्र गतिमान् (घृते ध्रुवा) स्वतेज में[7] स्थिर—कभी तेजोहीन न होने वाला है उसकी उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

---

१. "अथ यदस्मै तत् समृध्यते स दक्षः" [श० ४.१.४.१]
२. "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २.३.६२] इति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी।
३. "शर्धः बलनाम" [निघं० २.९]।
४. बहुवचनमादरार्थम्।
५. "दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२.३]।
६. "सजूः सूरः.....सूर्यमेव प्रीणाति" [मै० ३.४.४]।
७. "तेजो वै घृतम्" [मै० १.६.७]।

**११०३. सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः॥ ३॥**

पदपाठः— सुष्वाणासः वि अद्रिभिः अ द्रिभिः चिताना: गोः अधि त्वचि इषम् अस्मभ्यम् अभितः सम् अस्वरन् वसुविदः वसु विदः॥ ३॥

अन्वयः—गोः-अधित्वचि अद्रिभिः सुष्वाणासः विचितानः वसुविदः अस्मभ्यम् अभितः इषं समस्वरन्॥

पदार्थः—(गोः-अधित्वचि) स्तुतिवाणी के[1] प्रस्ताव में[2]—प्रबल स्तुतिप्रसङ्ग में (अद्रिभिः) श्लोक[3]—प्रशंसा—स्तुति करने वालों के द्वारा[4] (सुष्वाणासः) सम्यक् उपासित किया हुआ (विचितानः) विशेष चेताने वाला (वसुविदः) ऐश्वर्यप्राप्त—सकलैश्वर्यवान् परमात्मा (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (अभितः) सब ओर से[5] (इषं समस्वरन्) कामना को सम्प्रेरित कर—प्रदान कर[6]॥ ३॥

पञ्चम तृच

**ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥
छन्दः—त्रिष्टुप्।**

११०४. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व। ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्॥ १॥

पदपाठः— अयापवापवस्वैनावसूभूनि॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४१)

११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे। षष्टिंसहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय॥ २॥

---

१. "गौः वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
२. "त्वक् प्रस्तावः" [ज० उ० १.१२.२.६]।
३. "स्वरश्च मे श्लोकश्च मे यज्ञेन कल्पताम्" [तै० सं० ४.७.१.८]।
४. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५]।
५. "अभितः सर्वतोभावे" [अव्ययार्थ निबन्धने]।
६. "स्वरति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

पदपाठः— **उत नः एना पवया पवस्व अधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे षष्टिम् सहस्रा नैगुतः नै गुतः वसूनि वृक्षम् न पक्वम् धूनवत् रणाय ॥ २ ॥**

अन्वयः—श्रवाय्यस्य श्रुते-अधि तीर्थे उत नः एना पवया पवस्व नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि रणाय वृक्षं न पक्वं धूनवत् ॥

पदार्थः—(श्रवाय्यस्य श्रुते-अधि तीर्थे) हे सोम—धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तुझ श्रवणीय के प्रसिद्ध तराने के साधनस्थान में—अध्यात्मस्थल हृदय में (उत) अपि—अवश्य (नः) हमारे लिए (एना पवया) इस पावनधारा से (पवस्व) प्राप्त हो (नैगुतः) निगुत—अपने अन्दर आमन्त्रण शब्द करने वाले का इष्टदेव[1] तू सोम—परमात्मा (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ हजार असंख्य प्रकार वाले[2] बसाने वाले अध्यात्म सुखैश्वर्यों को (रणाय) रमण के लिए प्रदान कर (वृक्षं न पक्वं धूनवत्) वृक्ष जैसे पके फल को नीचे झाड़ देता गिरा देता है ॥ २ ॥

११०६. **महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे । अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **मही इमेइति अस्य वृष नाम शूषेइति माꣳश्चत्त्वे वा पृशने वा वधत्रेइति अस्वापयत् निगुतः नि गुतः स्नेहयत् च अप अमित्रान् अ मित्रान् अप अचितः अ चितः अच इतः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अस्य इमे मही वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वधत्रे निगुतः अस्वापयत्-च स्नेहयत् अमित्रान्-अप-अचेतः अचितः-अप ॥

पदार्थः—(अस्य) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के (इमे मही वृष नाम) महान् कामवर्षण—उपासकों के लिए कमनीय पदार्थों की वृष्टि करना और नास्तिकों को नमाना—दबाना दण्ड देना ये दो धर्म[3] (शूषे) सुखरूप—सुखकर[4] और बलरूप[5] हैं (मांश्चत्वे) मननीय (वा) और (पृशने) स्पर्शनीय—स्मरणीय और (वधत्रे) वध से त्राण करने वाले हैं (निगुतः) आन्तरिकभाव से तुझे आमन्त्रित करने वालों

---

१. नि—निहितो भूत्वा शब्दयति-आमन्त्रयति यस्त्वां स 'निगुतः' "गुङ् शब्दे" [भ्वादि०] तस्य इष्टदेवो नैगुतः ।

२. जैसे लोक में कहा जाता है 'सौ वर्ष तक जीवे एक एक वर्ष के दिन हों साठ हजार'।

३. 'वृषा च नाम च-वृषनाम' "सुपां सुलुक्...." [अष्टा० ७.१.३९]।

४. "शूषं सुखनाम" [निघं० ३.६]।

५. "शूषं बलम्" [निघं० २.९]।

को (अस्वापयत्-च) और शान्ति की नींद सुलाता है (स्नेहयत्) स्नेह करता है (अमित्रान्-अप-अचेतः) शत्रुओं—नास्तिकों को मूढ बनाता है (अचितः-अप) धर्मकर्मरहितों को मूढ बनाता है ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—बन्धुवर्गः (परमात्मा के स्नेह में बँधने वाला उपासक वर्ग)॥

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा)॥

छन्दः—द्विपदा निचृद् विराट्॥

११०७. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्नेत्वन्नोअन्तमः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४४८)

११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ २ ॥

पदपाठः— वसुः अग्निः वसुश्रवाः वसु श्रवाः अच्छ नक्षि द्युमत्तमः रयिम् दाः ॥ २ ॥

अन्वयः—अग्निः वसुः वसुश्रवाः द्युमत्तमः अच्छ नक्षि रयिं दाः ॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्रणी परमात्मा (वसुः) उपासक को अपने में वास देने वाला (वसुश्रवाः) बसाने वाला धन[1] जिसके पास है (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशवान्—सर्वप्रकाशक (अच्छ नक्षि) तू भली प्रकार व्याप्त है (रयिं दाः) मोक्षैश्वर्य को प्रदान कर ॥ २ ॥

११०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥

पदपाठः— तम् त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः स खिभ्यः ॥ ३ ॥

अन्वयः—शोचिष्ठ दीदिवः तं त्वा सखिभ्यः सुम्नाय नूनम्-ईमहे ॥

पदार्थः—(शोचिष्ठ) हे अत्यन्त दीप्तिमन्! (दीदिवः) तेजस्वी परमात्मन्! (तं त्वा) उस तुझे (सखिभ्यः) 'सखायः'[2] हम तेरे सखि मित्र उपासक (सुम्नाय) सुख के लिए[3] (नूनम्-ईमहे) निश्चय प्रार्थित करते हैं—प्रार्थना में लाते हैं ॥ ३ ॥

---

१. "श्रवः-धननाम" [निघं० २.१०]।

२. विभक्तिव्यत्ययः।

३. "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३.६]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—भौवन आप्त्यः (विश्वविज्ञान में स्वयं आप्त)॥ देवता—विश्वेदेवा इन्द्रश्च (सर्व दिव्य गुण वाला परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा निचृद् विराट्॥

११११०. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥ १॥

पदपाठः— इमानुकम्भुवनासीषधेम॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४५२)

१११११. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु॥ २॥

पदपाठः— यज्ञम् च नः तन्वम् च प्रजाम् प्र जाम् च आदित्यैः आ दित्यैः इन्द्रः सह सीषधातु॥ २॥

अन्वयः—नः यज्ञं च तन्वं च प्रजां च इन्द्रः आदित्यैः सह सीषधातु॥

पदार्थः—(नः) हमारे (यज्ञं च) आत्मा को[1] और (तन्वं च) शरीर को (प्रजां च) और प्रजा पुत्र शिष्य को (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (आदित्यैः सह सीषधातु) अदिति—मुक्ति के अधिकारी मुमुक्षु जीवन्मुक्तों के द्वारा सिद्ध बनावे॥ २॥

१११२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्॥ ३॥

पदपाठः— आदित्यैः आ दित्यैः इन्द्रः सगणः स गणः मरुद्भिः अस्मभ्यम् भेषजा करत्॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्रः आदित्यैः मरुद्भिः सगणः अस्मभ्यम् भेषजा करत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (आदित्यैः) अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति के अधिकारी जीवन्मुक्तों (मरुद्भिः) मुमुक्षु जनों के साथ (सगणः) गुणवान् होता हुआ (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (भेषजा करत्) सुखों को[2] प्रदान करे॥ ३॥

ऋषिः—सम्पातः (स्तुति प्रार्थना उपासना का मेल करने वाला)॥ देवता—उषाः (परमात्मा की ज्योति—झलक झाँकी)॥ छन्दः—द्विपदा त्रिष्टुप् प्रतीकपृष्ट्या॥

पदपाठः— प्रवोर्चोप०॥ ४॥

अन्वयः—वः प्र अर्च उप॥

---

१. ''आत्मा वै यज्ञः'' [श० ६.२.१.७]।
२. ''भेषजं सुखनाम'' [निघं० ३.६]।
३. 'वः' विभक्तिव्यत्ययः।

पदार्थः—(वः) हे उपासक जनो! तुम[३] जिस परमात्मा की ज्योति सब ज्योतियों की ज्योति है उस परमात्मा की (प्र) प्रार्थना करो (अर्च) 'अर्चत' अर्चना—स्तुति करो (उप) उपासना करो॥४॥

यह सायणमत में एक मन्त्र है। परन्तु माधव ने अपने विवरण में पूर्वार्चिक में आये तीन मन्त्रों का प्रतीक रूप माना है जो मन्त्र निम्न हैं—

१११३. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४४६)

१११४. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः॥२॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४४५)

१११५. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४४४)

इति सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अथ अष्टम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम द्वादशर्च

ऋषिः—वासिष्ठो वृषगणः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाले से सम्बद्ध, वृषा—सुखवर्षक सोम[1]—शान्त परमात्मा के लिए गणा[2]—स्तुतिवाणी जिसकी है वह ऐसा उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

११११६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥ १॥

पदपाठः— प्रकाव्यमुशनेवब्रुवाणः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२४)

१११७. प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम्॥ २॥

पदपाठः— प्र हꣳसासः तृपला वग्नुम् अच्छ अमात् अस्तम् वृषगणाः वृष गणाः अयासुः अङ्गोषिणम् पवमानम् सखायः स खायः दुर्मर्षम् दुः मर्षम् वाणम् प्र वदन्ति साकम्॥ २॥

अन्वयः—हंसासः–तृपला वृषगणाः वग्नुम्–अच्छ अमात्–अस्तं प्र–अयासुः सखायः अङ्गोषिणम् दुर्मर्षम् वाणम् पवमानम् साकं प्रवदन्ति॥

पदार्थः—(हंसासः–तृपला वृषगणाः) वासनाओं को हनन किए हुए ब्राह्मण[3] तृप्त—आप्तकाम[4] सुखवर्षक सोम—परमात्मा के उपासक जन (वग्नुम्–अच्छ) स्तुतिवाणी को[5] लक्ष्य कर—स्तुति करने[6] (अमात्–अस्तं प्र–अयासुः) रागभय से[7]

---

१. "वृषा वै सोमः" [जै० ३.२४]। २. "गणा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
३. "ब्राह्मणा है वै हंसाः तृपलाः" [जै० ३.१७४]।
४. "कलस्तृपश्च" [उणा० १.१०४] 'तृप तृप्तौ' [तुदादि०] ततः कलः कर्तरि भूते।
५. "वग्नुः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
६. "अच्छाभेराप्तुमिति शाकपूणिः" [निरु० ५.२८]।
७. "अमं भयम्" [निरु० १०.२१]।

बचने को ध्यान स्थान पर[1] प्राप्त होते हैं—पहुँचते हैं (सखायः) वे परमात्मा के सखि—मित्र उपासक (अङ्गोषिणम्) आङ्गूष—स्तोम[2] स्तुतिसमूह जिसका है जिसके लिए है उस आङ्गूषी[3] (दुर्मर्षम्) दुःखनाशक (वाणम्) आश्रयरूप (पवमानम्) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा को (साकं प्रवदन्ति) सङ्ग हो—पास हो प्रार्थना प्रस्तवन—प्रकृष्ट स्तवन—बढ़ कर स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१११८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः। परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ३ ॥

पदपाठः— सः योजते उरुगायस्य उरु गायस्य जूतिम् वृथा क्रीडन्तम् मिमते न गावः परीणसम् परि नसम् कृणुते तिग्मशृङ्गः तिग्म शृङ्गः दिवा हरिः ददृशे नक्तम् ऋज्रः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः उरुगायस्य जूतिम् योजत गावः वृथा क्रीडन्तम् मिमते न परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्ग दिवा नक्तम् हरिः-ऋज्रः-ददृशे ॥

पदार्थः—(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (उरुगायस्य) बहुत स्तुतिकर्ता की[4] (जूतिम्) प्रीति को[5] (योजत) युक्त होता है—अपनाता है (गावः) स्तोता—स्तुति करने वाले[6] (वृथा क्रीडन्तम्) निष्काम जगद्रचनारूप क्रीड़ा करते हुए[7] परमात्मा को (मिमते न) माप नहीं सकते हैं परिमित नहीं करते हैं (परीणसं कृणुते) क्योंकि बहुविध अन्नभोग्य[8] या जगत् को रचता है अतः उसे परिमित नहीं करते (तिग्मशृङ्ग) उत्साहक[9] शृङ्ग—ज्ञानज्वलन—ज्वालाएँ रश्मियाँ वेदरूप जिसकी हैं[10] (दिवा नक्तम्) दिन रात (हरिः-ऋज्रः-ददृशे) वह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता एवं प्रेरक ऋजुमार्ग नायक उपासक को साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

---

१. ''अस्तं गृहनाम'' [निघं० ३.४]। २. ''आङ्गूषः स्तोमः'' [निरु० ५.११]।
३. आकारस्य ह्रस्वत्वम्, उकारस्य-ओत्वं च छान्दसम्।
४. ''गायति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।
५. ''जूतिः प्रीतिः'' [निरु० १०.२८]।
६. ''गौः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।
७. ''लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'' [वेदान्त० २.१.३३]।
८. ''अन्नं वै परीणसम्'' [जै० ३.१७४] ''परीणसा बहुनाम'' [निघं० ३.१]।
९. ''तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मणः'' [निरु० १०.६]।
१०. ''शृङ्गाणि ज्वलतो नाम'' [निघं० १.१७] ''चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः'' [काठक सं० २५.१]।

११ १९. प्र स्वानासो रथाइवार्वन्तो न श्रवस्यवः। सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

पदपाठः— प्र स्वानासः रथाः इव अर्वन्तोनश्रवस्यवः सोमासः राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

अन्वयः—स्वानासः श्रवस्यवः सोमासः राये रथाः-इव अर्वन्तः-न प्र-अक्रमुः ॥

पदार्थः—(स्वानासः) निष्पद्यमान—उपासित हुआ उपासना में लाया हुआ (श्रवस्यवः) उपासक को सुनाना चाहता हुआ (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा (राये) उपासक को मोक्षैश्वर्य प्रदान करने के लिए (रथाः-इव) रथ के समान (अर्वन्तः-न) घोड़ों के समान (प्र-अक्रमुः) प्रगति से प्राप्त होता है[१] ॥ ४ ॥

११२०. हिन्वानासो रथाइव दधन्विरे गभस्त्योः। भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

पदपाठः— हिन्वानासः रथाः इव दधन्विरे गभस्त्योः भरासः कारिणाम् इव ॥ ५ ॥

अन्वयः—हिन्वानासः-रथाः-इव कारिणां भरासः-इव गभस्त्योः-दधन्विरे ॥

पदार्थः—(हिन्वानासः-रथाः-इव) आगे बढ़ते हुए रथ वाले घोड़ों के समान या (कारिणां भरासः-इव) शिल्पकारी कारीगरों के भरण करने वाले चलते हुए कला भागों के समान (गभस्त्योः-दधन्विरे) सन्तानत्याग[२]—गृहस्थत्याग भावना करने वाले या अज्ञानान्धकार को हटाने वाले अभ्यास और वैराग्य में सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते। यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

पदपाठः— राजानः न प्रशस्तिभिः प्र शस्तिभिः सोमासः गोभिः अञ्जते यज्ञः न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

अन्वयः—प्रशस्तिभिः-राजानः-न सप्तधातृभिः-यज्ञः-न गोभिः सोमासः-अञ्जते ॥

पदार्थः—(प्रशस्तिभिः-राजानः-न) प्रशस्त वाणियों—प्रशंसाओं से राजा लोग जैसे प्रसन्न होते हैं (सप्तधातृभिः-यज्ञः-न) सात होताओं ऋत्विजों के द्वारा[३]

---

१. बहुवचनमादरार्थम्।

२. 'विड् वै गभः' [तै० ३.९.७.३] 'गभमन्धकारमस्यति—गभस्तिः' [उणा० ४.१८० दयानन्दः]

३. ''धाता होता'' [तै० २.२.८.४] ''ते वै सप्त होतारो....होता, अध्वर्युः अचित्तपाजा, अग्नीध्—अग्नीधः, उपवक्ता, अभिगराः, उद्गाता'' [मै० १.९.५]।

यज्ञ जैसे सम्पन्न या सुसिद्ध होता है ऐसे ही (गोभिः सोमासः-अञ्जते) स्तुतियों से शान्तस्वरूप परमात्मा प्रसन्न—साक्षात् होता है ॥ ६ ॥

११२२. **परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥**

पदपाठः— **परिस्वानासइन्दवः ॥ ७ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८५)

११२३. **आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥**

पदपाठः— **आपानासः विवस्वतः वि वस्वतः जिन्वन्तः उषसः भगम् सूराः अण्वम् वि तन्वते ॥ ८ ॥**

अन्वयः—आपानासः विवस्वतः-उषसः-भगं जिन्वन्तः सूराः अण्वं वितन्वते ॥

पदार्थः—(आपानासः) सर्वत्र व्यापक—सब को प्राप्त हुआ[१] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (विवस्वतः-उषसः-भगं जिन्वन्तः) सूर्य के उषा के तेज और शोभा को[२] प्रेरित करता हुआ—सूर्य में तेज और उषा में शोभा को देता हुआ (सूराः) उपासना द्वारा निष्पन्न—साक्षात् हुआ परमात्मा (अण्वं वितन्वते) अणु परिमाण वाले उपासक आत्मा को[३] विशेष उपकृत करता है[४] ॥ ८ ॥

११२४. **अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥**

पदपाठः— **अप द्वारा मतीनाम् प्रत्नाः ऋण्वन्ति कारवः वृष्णः हरसे आयवः ॥ ९ ॥**

अन्वयः—प्रत्नाः कारवः वृष्णः-हरसः-आयवः मतीनां द्वारा-अप-ऋण्वन्ति ॥

पदार्थः—(प्रत्नाः कारवः) मुमुक्षु[५] स्तुति करने वाले[६] (वृष्णः-हरसः-आयवः) सुखवर्षक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के अपने अन्दर ग्रहण करने वाले जन[७] (मतीनां द्वारा-अप-ऋण्वन्ति) अपनी मतियों बुद्धियों के द्वारों को हटा देते हैं

---

१. "व्याप्तिकर्माणः.....आपान-आप्नुवानः" [निरु० ३.१०]।
२. "भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पताम्" [तै० सं० ४.७.३.१]।
३. "तमणुमात्रमात्मानम्" [योगद० १.३६ पर व्यासभाष्यम्]।
४. "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०]।
५. "देवा वै प्रत्नम्" [मै० १.५.५]।
६. "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
७. "आयवः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३]।

खोल देते हैं[1] ॥ ९ ॥

११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः। पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

पदपाठः— समीचीनासः सम् इचीनासः आशत होतारः सप्तजामयः सप्त जानयः पदम् एकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

अन्वयः—सप्त जानयः समीचीनासः होतारः पिप्रतः-एकस्य पदम्-आशत ॥

पदार्थः—(सप्त जानयः) सात जाया—पत्नियाँ[2]—पत्नी की भाँति रक्षणीय तथा हित साधने वाली मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, श्रोत्र, नेत्र और वाणी। परमात्मा का मन से मनन, बुद्धि से विवेचन, चित्त से स्मरण, अहङ्कार से अपनाना, श्रोत्र से श्रवण, नेत्र से विभूतिदर्शन, वाणी से स्तवन हितकर होता है, ऐसे (समीचीनासः) परमात्मा को सम्यक् प्राप्त करने वाले या योगयुक्त (होतारः) परमात्मा को आमन्त्रित करने वाले मुमुक्षु उपासक जन (पिप्रतः-एकस्य) विश्व को पूर्ण करने वाले महान् व्यापक अकेले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के (पदम्-आशत) स्वरूप या प्रापणीय मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे। कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥

पदपाठः— नाभा नाभिम् नः आ ददे चक्षुषा सूर्यम् दृशे कवेः अपत्यम् अ दुहे ॥ ११ ॥

अन्वयः—नाभिं नः नाभा आददे चक्षुषा सूर्यम आदृशे कवेः अपत्यम् आदुहे।

पदार्थः—(नाभिं नः-नाभा-आददे) विश्व को अपने साथ बाँधने वाले[3] विश्वकेन्द्रभूत तथा विश्व के मध्यरूप[4] सोम शान्तस्वरूप परमात्मा को हमारे—अपने मध्य में—अन्दर ग्रहण करें अपनावें या आधान करें[5] (चक्षुषा सूर्यम्-आदृशे) पुनः ज्ञाननेत्र से सरणशील सर्वत्र व्यापनशील सोम—शान्त परमात्मा को समन्तात् देख सकूँ साक्षात् कर सकूँ (कवेः-अपत्यम्-आदुहे) स्तुतिकर्ता उपासक के न गिराने वाले[6]—रक्षक सोम—परमात्मा को समन्तरूप से दुह लूँ—अपने

---

१. ''ऋणु गतौ'' [तनादि०]।

२. ''पतिर्जनीनां पालयिता जायानाम्'' [निरु० १०.२३] ''ऋतुर्जनीनां कालो जायानाम्'' [निरु० १२.४६] ''देवानां वै पत्नीर्जनयः'' [काठ० १९.७] 'जानिः' अकारस्य दीर्घत्वं छान्दसम्, लोकेऽपि भवति दीर्घप्रयोगः—युवतिर्जाया यस्य स युवजानिः।

३. ''नाभिः सन्नहनात्'' [निरु० ४.२१]। ४. ''मध्यं वै नाभिः'' [श० १.१.२.२]।

५. ''दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः'' [निरु० २.२]।

६. ''अपत्यं नानेन पततीति'' [निरु० ३.१]।

अन्दर समा लूँ या क्रान्तदर्शी परमात्मा के अपत्यरूप—उससे प्रादुर्भूत आनन्दरस को दुह लूँ॥ ११॥

११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्। सूरः पश्यति चक्षसा॥ १२॥

पदपाठः— अभि प्रियम् दिवः पदम् अध्वर्युभिः गुहा हितम् सूरः पश्यति चक्षसा॥ १२॥

अन्वयः—दिवः पदं प्रियम् अध्वर्युभिः गुहा हितम् सूरः–चक्षसा–अभि पश्यति॥

पदार्थः—(दिवः पदं प्रियम्) द्यौ—मोक्ष जिससे प्राप्त किया जावे उस के प्राप्तिनिमित्त सोम—शान्तस्वरूप प्रिय परमात्मा को (अध्वर्युभिः) मनोभावनाओं से[1] (गुहा हितम्) गुहा निहित कर दिये जैसे (सूरः–चक्षसा–अभि पश्यति) सेवन करने वाला उपासक अपनी ज्ञानदृष्टि से सम्मुख देखता है—साक्षात् करता है॥ १२॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्वादशर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजना॥ १॥

पदपाठः— असृग्रम् इन्दवः पथा धर्मन् ऋतस्य सुश्रियः सु श्रियः विदानाः अस्य योजना॥ १॥

अन्वयः—सुश्रियः इन्दवः ऋतस्य धर्मन् पथा–असृग्रम् अस्य योजना विदानाः॥

पदार्थः—(सुश्रियः) उत्तम शोभित करने वाले (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (ऋतस्य धर्मन्) अध्यात्मयज्ञ के धर्म में—आचरण में (पथा–असृग्रम्) योगाभ्यास मार्ग से प्राप्त होता है (अस्य योजना विदानाः) इस अध्यात्ममार्ग के युक्तिक्रमों को जनाता हुआ[2]॥ १॥

११२९. प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते। हविर्हविःषु वन्द्यः॥ २॥

---

१. "मनो वा अध्वर्युः" [श० १२.३.१.५]।

२. "योगो योगेन ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्तते" "तस्य भूमिषु विनियोगः" [योग द० ३.६ व्यासभाष्यम्]।

पदपाठः— **प्र धारा मधो अग्रियः महीः अपः वि गाहते हविः हविषुः वन्द्यः ॥ २ ॥**

अन्वयः—मधोः-अग्रियः-धारा महीः-अपः-विगाहते हविःषु हविः-वन्द्यः ॥

पदार्थः—(मधोः-अग्रियः-धारा) मधुर सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की श्रेष्ठ आनन्दधाराएँ (महीः-अपः-विगाहते) महन्त आप्त जनों[1] की ओर विगाहन करती हैं प्राप्त होती हैं (हविःषु हविः-वन्द्यः) सब हवियों में यह हवि स्तुतियोग्य है ॥ २ ॥

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने। सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

पदपाठः— **प्र युजा वाचः अग्रियः वृषोअचिक्रदद्वने सद्म अभि सत्यः अध्वरः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वृषा-उ सत्यः-अध्वरः अग्रियः-युजाः-वाचः वने सद्म अभि प्र-अचिक्रदत् ॥

पदार्थः—(वृषा-उ) कामवर्षक (सत्यः-अध्वरः) सत्यस्वरूप और यज्ञरूप[2] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अग्रियः-युजाः-वाचः) अग्र—आरम्भसृष्टि की युक्त—आनुपूर्वीरूप मन्त्रवाणियों को (वने सद्म) 'सद्मनि' सम्भजनस्थान ऋषियों के अन्तःकरण में (अभि प्र-अचिक्रदत्) साक्षात् हो प्रवचन करता है ॥ ३ ॥

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति। स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

पदपाठः— **परि यत् काव्या कविः नृम्णा पुनानः अर्षति स्वः वाजी सिषासति ॥ ४ ॥**

अन्वयः—कविः यत् नृम्णा पुनानः परि-अर्षति स्वर्वाजी काव्या सिषासति ॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्तदर्शी सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (यत्) कि जब (नृम्णा पुनानः) मन्त्ररूप ज्ञानधनों को झिराने हेतु (परि-अर्षति) सम्भजन स्थान ऋषियों के अन्तःकरण को परिप्राप्त होता है तब (स्वर्वाजी काव्या सिषासति) स्वः—मोक्ष भोग वाला—मोक्ष चाहने वाला उपासक आत्मा उन काव्यधनों मन्त्रज्ञानों को सम्भजन करना चाहता है ॥ ४ ॥

---

१. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०]।

२. "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" [ऋ० १०.९०.९]।

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति। यदीमृण्वन्ति वेधसः॥ ५॥

पदपाठः— पवमानः अभि स्पृधः विशः राजा इव सीदति यत् ईम् ऋण्वन्ति वेधसः॥ ५॥

अन्वयः—वेधसः-यत्-ईम्-ऋण्वन्ति पवमानः स्पृधः-अभि सीदति राजा-इव विशः॥

पदार्थः—(वेधसः-यत्-ईम्-ऋण्वन्ति) उपासक मेधावी आत्माएँ जब इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करते हैं[1] कर लेते हैं तो (पवमानः स्पृधः-अभि सीदति) आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा उनके साथ संघर्ष करने वाले पाप काम आदि दोषों को दबा देता है (राजा-इव विशः) जैसे राजा प्रजा पर अधिकार करता है उनके उपद्रवों को दबा देता है॥ ५॥

११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति। रेभो वनुष्यते मती॥ ६॥

पदपाठः— अव्याः वारे परि प्रियः हरिः वनेषु सीदति रेभः वनुष्यते मती॥ ६॥

अन्वयः—प्रियः-हरिः वनेषु अव्याः-वारे परि सीदति मती रेभः-वनुष्यते॥

पदार्थः—(प्रियः-हरिः) प्रिय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा (वनेषु) वनन—सम्भजनस्थलों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अन्तःस्थलों में (अव्याः-वारे परि) पृथिवी के वारण—पार्थिव शरीर[2] से परे—उसे पार कर (सीदति) प्राप्त होता है, तब (मती रेभः-वनुष्यते) स्तुति से स्तुतिकर्ता सेवन करता है प्राप्त करता है॥ ६॥

११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति। रणा यो अस्य धर्मणा॥ ७॥

पदपाठः— सः वायुम् इन्द्रम् अश्विना साकम् मदेन गच्छति रण यः अस्य धर्म्मणा॥ ७॥

अन्वयः—यः अस्य धर्मणा रण सः वायुम् इन्द्रम् अश्विना मदेन गच्छति॥

पदार्थः—(यः) जो उपासक (अस्य धर्मणा) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के धर्म—मद—हर्षानन्द प्राप्त करने से 'अस्मिन्'[3] इस ही सोम—शान्तस्वरूप

---

१. ''ऋण्वन्ति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

२. ''इयं पृथिवी वा अविः'' [श० ६.१.२.३३]।

३. 'अस्मिन्' इति पदमाकांक्ष्यते।

परमात्मा में (रण) रमण करता है[1] (सः) वह ऐसा उपासक (वायुम्) आयु को[2] (इन्द्रम्) वाणी को[3] (अश्विना) श्रत्रों को[4] (मदेन) उस हर्षानन्द को लेकर (गच्छति) प्राप्त होता है, उसके जीवन में हर्ष, वाणी में हर्ष, श्रवण में हर्ष रहता है ॥ ७ ॥

११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः। विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

पदपाठः— आ मित्रे मि त्रे वरुणे भगे मधोः पवन्ते ऊर्मयः विदानाः अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

अन्वयः—शक्मभिः अस्य विदानाः मित्रे वरुणे भगे मधोः ऊर्मयः आ पवन्ते ॥

पदार्थः—(शक्मभिः) यम, नियम, आसन, प्राणायामादि, शम, दम आदि अध्यात्मकर्मों द्वारा[5] (अस्य) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (विदानाः) जाननेवाले हैं उन उपासकों के (मित्रे) प्राण में[6] (वरुणे) अपान में[7] (भगे) मस्तिष्कस्थ ओज में[8] (मधोः) मधुमय परमात्मा की (ऊर्मयः) आनन्दतरङ्गें—धाराएँ (आ पवन्ते) समन्तरूप से पहुँच जाती हैं वस जाती हैं ॥ ८ ॥

११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये। श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥ ९ ॥

पदपाठः— अस्मभ्यम् रोदसीइति रयिम् मध्वः वाजस्य सातये श्रवः वसूनि सम् जितम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—रोदसी मध्वः-वाजस्य सातये अस्मभ्यम् रयिं श्रवः-वसूनि सञ्जितम् ॥

पदार्थः—(रोदसी) हे विश्व के रोध—तट समान द्युलोक और पृथिवी लोक[9] तुम अपने व्यापक रचयिता (मध्वः-वाजस्य सातये) मधुर सोम[10] शान्तस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (रयिं श्रवः-

---

१. ''रणाय रमणीयाय'' [निरु० ९.२७] ''नाहमिन्द्राणि रारणे....नाहमिन्द्राणि रमे'' [निरु० ११.३९]।
२. ''आयुर्वा एष यद् वायुः'' [ऐ० आ० २.४.३]।
३. ''य इन्द्रः सा वाक्'' [जै० १.११.१.२]।
४. ''श्रोत्रे अश्विनौ'' [श० १२.९.१.१३]।
५. ''शक्म कर्मनाम'' [निघं० २.१]।
६. ''प्राणो वै मित्रः'' [श० ६.५.१.५]।
७. ''अपानो वरुणः'' [श० ८.४.२.६]।
८. ''भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पताम्'' [तै० सं० ४.७.३.१]।
९. ''रोदसी रोधसी द्यावापृथिव्यौ'' [निरु० ६.१]।
१०. ''सोमो वै वाजः'' [मै० ४.५.४]।

वसूनि) पोष—पोषण करने योग्य आहार[1] श्रवणीय ज्ञान और बसाने वाले साधनों को (सञ्जितम्) अपने अन्दर सम्पन्न करो ॥ ९ ॥

११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे। पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

पदपाठः— आ ते दक्षम् मयोभुवम् मयः भुवम् वह्निम् अद्य अ द्य वृणीमहे पान्तम् आ पुरुस्पृहम् पुरु स्पृहम् ॥ १० ॥

अन्वयः—ते मयोभुवम् वह्निम् पान्तम् पुरुस्पृहम् दक्षम् अद्य आवृणीमहे ॥

पदार्थः—(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे (मयोभुवम्) सुख को भावित करने वाले (वह्निम्) निर्वाहक (पान्तम्) पालन रक्षण करने वाले (पुरुस्पृहम्) बहुत स्पृहा योग्य चाहने योग्य (दक्षम्) बलस्वरूप को (अद्य) आज—अभी तुरन्त (आवृणीमहे) अपने अन्दर समन्तरूप से वरते हैं—धारण करते हैं ॥ १० ॥

११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्। पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

पदपाठः— आ मन्द्रम् आ वरेण्यम् आ विप्रम् वि प्रम् आ मनीषिणम् पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—मन्द्रम्-आ वरेण्यम्-आ विप्रम्-आ मनीषिणम्-आ पान्तम्-आ पुरुस्पृहम् ॥

पदार्थः—(मन्द्रम्-आ) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ हर्षकर[2] आनन्दप्रद को हम समन्तरूप से वरते हैं—अपने अन्दर धारण करते हैं[3] (वरेण्यम्-आ) वरने योग्य—अवश्य वरणीय को अपने अन्दर समन्तरूप से धारण करते हैं (विप्रम्-आ) विशेष कामनापूरक को अपने अन्दर धारण करते हैं (मनीषिणम्-आ) स्वतः ज्ञानवान् को अपनाते हैं (पान्तम्-आ पुरुस्पृहम्) रक्षक को तथा बहुत चाहने योग्य को अपनाते हैं ॥ ११ ॥

११३९. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा। पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

पदपाठः— आ रयिम् आ सुचेतुनम् सु चेतुनम् आ सुक्रतो सु क्रतो तनूषु आ पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

---

१. ''रयिं देहि पोषं देहि'' [काठ० १.७]।''पुष्टं वै रयिः'' [श० २.३.४.१३]।

२. ''मदि स्तुतिमोदः....'' [भ्वादि०]।

३. 'आ' उपसर्ग पूर्वमन्त्र से 'वृणीमहे' क्रिया को आकर्षित करता है।

अन्वयः—सुक्रतो रयिम्–आ सुचेतुनम्–आ तनूषु–आ पान्तं पुरुस्पृहम्–आ॥

पदार्थः—(सुक्रतो) हे उत्तम प्रज्ञान कर्म वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! (रयिम्–आ) तुझ धनरूप को अपनाते हैं (सुचेतुनम्–आ) तुझ सम्यक् चेताने वाले को अपनाते हैं (तनूषु–आ) अपने अङ्गों—अङ्ग में अपनाते हैं (पान्तं पुरुस्पृहम्–आ) तुझ रक्षक बहुत स्पृहणीय को अपनाते हैं॥ १२॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को धारणकर्ता उपासक)॥ देवता—वैश्वानरोऽग्निः (विश्वनायक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानमासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः॥ १॥

पदपाठः— मूर्द्धानन्दिवोअरतिम्पृथिव्याः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६७)

११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः॥ २॥

पदपाठः— त्वाम् विश्वे अमृत अ मृत जायमानम् शिशुम् न देवाः अभि सम् नवन्ते तव क्रतुभिः अमृतत्वम् अ मृतत्वम् आयन् वैश्वानर वैश्व नर यत् पित्रोः अदीदेः॥ २॥

अन्वयः—अमृत वैश्वानर विश्वे देवाः त्वां जायमानम्–अभि सं नवन्ते शिशुं न तव क्रतुभिः अमृतत्वम्–आयन् यत् पित्रोः–अदीदेः॥

पदार्थः—(अमृत वैश्वानर) हे अमृतस्वरूप या मरणरहित एकरस विश्वनायक परमात्मन्! (विश्वे देवाः) ब्राह्मण—ब्रह्मज्ञानी—मुमुक्षुजन[1] (त्वां जायमानम्–अभि सं नवन्ते) तुझे हृदय में प्रसिद्ध हुए—साक्षात् हुए परमात्मा को अभिसङ्गत होते हैं आलिङ्गित करते हैं[2] (शिशुं न) जैसे नव बालक को लोग आलिङ्गित करते हैं (तव क्रतुभिः) तेरे प्रज्ञानों—मन्त्रज्ञानों से[3] (अमृतत्वम्–आयन्) अमृतत्व—अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं (यत्) जब कि (पित्रोः–अदीदेः) मनों में—मन और बुद्धि में[4]

१. "विश्वे ह्येतद् देवा.....यद् ब्राह्मणाः" [तै० सं० ३.१.१.४]।
२. "नवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
३. "क्रतुः प्रज्ञाननाम" [निघं० ३.९]।
४. "मनः पितरः" [श० १४.४.२.१३] द्विवचनाद् द्वे मनोबुद्धी गृह्येते।

प्रकाशमान हो जाता है[१] ॥ २ ॥

**११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— नाभिम् यज्ञानाम् सदनम् रयीणाम् महाम् आहावम् आ हावम् अभि सम् नवन्त वैश्वानरम् वैश्व नरम् रथ्यम् अध्वराणाम् यज्ञस्य केतुम् जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यज्ञानां नाभिम् रयीणां सदनम् महाम्-आहावम् अभि सं नवन्ते अध्वराणां रथ्यं यज्ञस्य केतुं वैश्वानरम् देवाः-जनयन्त ॥

पदार्थः—(यज्ञानां नाभिम्) श्रेष्ठतम कर्मों के[२] केन्द्र—जिसे लक्ष्य कर श्रेष्ठ कर्म किए जाते हैं उसे (रयीणां सदनम्) विविध ऐश्वर्यों के स्थान को (महाम्-आहावम्) महान् अध्यात्म रसपान[३] आनन्दसरोवररूप परमात्मा को (अभि सं नवन्ते) मुमुक्षु उपासक जन अभिसङ्गत होते हैं तथा (अध्वराणां रथ्यं यज्ञस्य केतुं वैश्वानरम्) प्राणों के इन्द्रियों के[४] विषयरस वाहक[५] अध्यात्मज्ञापक विश्वनायक परमात्मा को (देवाः-जनयन्त) मुमुक्षु उपासक प्रसिद्ध करते हैं अपने अन्दर साक्षात् करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—यजतः (अध्यात्मयाजक) ॥ देवता—मित्रावरुणौ (उपयोगी कार्य में प्रेरक और अपनी ओर वरने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा। महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

पदपाठः— प्र वः मित्रा य मि त्राय गायत वरुणाय विपा गिरा महिक्षत्रौ महि क्षत्रौ ऋतम् बृहत् ॥ १ ॥

अन्वयः—वः मित्राय वरुणाय विपा गिरा ऋतं बृहत्-प्रगायत महिक्षत्रौ ॥

पदार्थः—(वः) हे उपासको तुम[६] (मित्राय) अभ्युदयकार्य में प्रेरक परमात्मा के लिए (वरुणाय) मोक्षप्राप्ति के लिए अपनी ओर वरने वाले परमात्मा के लिए

---

१. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.१६]।
२. "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" [काठ० ३०.१८]।
३. "निपानमाहावः" [अष्टा० ३.३.७४]।
४. "प्राणोऽध्वरः" [श० ७.३.१.५] "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८.१]।
५. "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १.२.२१]।
६. विभक्तिव्यत्ययः।

(विपा गिरा) विशेष स्तुति करने वाली वाणी से[१] (ऋतं बृहत्–प्रगायत) सत्य और महत्—अच्छा मधुर गाओ बखान करो (महिक्षत्रौ) जो महान् धन वाले हैं ॥ १ ॥

११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च। देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

पदपाठः— सम्राजा सम् राजा या घृतयोनी घृत योनीइति मित्रः मि त्रः च उभा वरुणः च देवा देवेषु प्रशस्ता प्र शस्ता ॥ २ ॥

अन्वयः—या सम्राजा घृतयोनी च–मित्रः च वरुणः च उभा देवाः देवेषु प्रशस्ता ॥

पदार्थः—(या) जो (सम्राजा) सम्यक् राजमान—प्रकाशमान (घृतयोनी) तेज का आश्रय—महातेजस्वी[२] (मित्रः च वरुणः च) मित्र और वरुण (च–उभा) ये दोनों धर्म वाला (देवाः) देव (देवेषु प्रशस्ता) मुमुक्षु उपासकों में प्रशंसनीय है ॥ २ ॥

११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

पदपाठः— ता नः शक्तम् पार्थिवस्य महः रायः दिव्यस्य महि वाम् क्षत्रम् देवेषु ॥ ३ ॥

अन्वयः—ता नः पार्थिवस्य महः–रायः दिव्यस्य शक्तम् वाम् क्षत्रं देवेषु महि ॥

पदार्थः—(ता) वह अभ्युदय का प्रेरक मोक्षार्थ अपनी ओर वरने वाला परमात्मा (नः) हम उपासकों के लिए (पार्थिवस्य महः–रायः) पृथिवी सम्बन्धी महान् पोष अभ्युदय साधन के (दिव्यस्य) मोक्षधाम सम्बन्धी महान् आनन्दधन निःश्रेयस रूप के प्रदान करने में (शक्तम्) समर्थ है (वाम्) तुम्हारा (क्षत्रं देवेषु महि) यह धनदान या बल मुमुक्षु उपासकों में महनीय—प्रशंसनीय है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

---

१. ''पन स्तुतौ'' ततो विपूर्वाद् डः।

२. ''तेजो वै घृतम्'' [मै० १.६.८] ''तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्'' [मै० १.६.८]।

पदपाठः— **इन्द्र आ याहि चित्रभानो चित्र भानो सुताः इमे त्वायवः अण्वीभिः तना पूतासः ॥ १ ॥**

अन्वयः—चित्रभानो-इन्द्र आयाहि त्वायवः-इमे सुताः अण्वीभि-तना पूतासः ॥

पदार्थः—(चित्रभानो-इन्द्र) हे अद्भुत दीप्ति वाले इन्द्र परमात्मन्! तू (आयाहि) आ (त्वायवः-इमे सुताः) तू जिन्हें चाहता है ऐसे ये निष्पन्न उपासनारस (अण्वीभि-तना) सूक्ष्म गहन आन्तरिक श्रद्धाओं से[१] (पूतासः) अध्येषित—प्रस्तुत हैं[२] इन्हें स्वीकार कर ॥ १ ॥

११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

पदपाठः— **इन्द्र आ याहि धिया इषितः विप्रजूतः विप्र जूतः सुतावतः उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्र धिया-इषितः विप्रजूतः सुतावतः-वाघतः ब्रह्माणि-उपआ याहि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (धिया-इषितः) ध्यान की साधनभूत स्तुतिवाणी से[३] प्रासव्य (विप्रजूतः) ब्राह्मण—ब्रह्मचिन्तनकर्ता के द्वारा[४] प्रीत—प्रसन्न होने वाला[५] (सुतावतः-वाघतः) उपासनारसवाले मेधावी[६] उपासक के (ब्रह्माणि-उपआ याहि) मन्त्रस्तवनों की उपेत हो—प्राप्त हो ॥ २ ॥

११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

पदपाठः— **इन्द्र आ याहि तूतुजानः उप ब्रह्माणि हरिवः सुते ददिष्व नः चनः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—हरिवः-इन्द्र तूतुजानः ब्रह्माणि-उप-आयाहि सुते नः-चनः-दधिष्व ॥

पदार्थः—(हरिवः-इन्द्र) हे ऋक् साम—स्तुति उपासना वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (तूतुजानः) शीघ्रता करता हुआ[७] (ब्रह्माणि-उप-आयाहि) मन्त्रस्तोत्रों

१. ''तनु श्रद्धायाम्'' [चुरादि०] तनाभिः ''सुपां सुलुक्'' [अष्टा० ७.१.३९] ।
२. ''पवस्व अध्येषणाकर्मा'' [निघं० ३.२१] ।
३. ''धीरसि ध्यायते हि वाचा'' [काठ० २४.१] ।
४. ''ब्राह्मणा हवै विप्रः'' [जै० ३.८४] ।
५. ''देवजूतं देवप्रीतम्'' [निरु० १०.२८] ।
६. ''वाघतः-मेधाविनाम्'' [निघं० ३.१५] ।
७. ''तूतुजानः-त्वरमाणः'' [निरु० ६.२०] ।

की ओर (सुते नः-चनः-दधिष्व) उपासनारस सिद्ध होने पर हमारे लिये अपना अमृत—आनन्दरूप अन्न[1] धारण करा॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को धारण करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

११४९. **तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्। कृष्णा कृणोति जिह्वया॥ १॥**

पदपाठः— **तम् ईडिष्व यः अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् परि स्वजत् कृष्णा कृणोति जिह्वया॥ १॥**

अन्वयः—तम्-ईडिष्व यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजत् (परितः) जिह्वा कृष्णा कृणोति॥

पदार्थः—(तम्-ईडिष्व) हे उपासक जन! तू उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा की स्तुति कर (यः) जो (अर्चिषा) अपनी प्रकाशशक्ति से[2] (विश्वा वना परिष्वजत्) सारे रश्मिमान्[3] ज्योतिष्मान् सूर्य आदि को [परितः] प्राप्त होता है—उन्हें ज्योति देता है—प्रकाशित करता है (जिह्वया कृष्णा कृणोति) पुनः अपने अन्दर ग्रहण शक्ति से[4] अन्धकार बना देता है[5] प्रलय में[6] एवं जगद्रचयिता प्रलयकर्ता परमात्मा है उपास्य है॥ १॥

११५०. **य इद्धे आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः॥ २॥**

पदपाठः— **यः इद्धे आविवासति आ विवासति सुम्नम् इन्द्रस्य मर्त्यः द्युम्नाय सुतराः सु तराः अपः॥ २॥**

अन्वयः—यः-मर्त्यः इद्धे-इन्द्रस्य 'इन्द्रे' सुम्नम्-आविवासति द्युम्नाय अपः सुतराः॥

पदार्थः—(यः-मर्त्यः) जो मनुष्य (इद्धे-इन्द्रस्य 'इन्द्रे') दीप्त ऐश्वर्यवान् परमात्मनिमित्त[7] (सुम्नम्-आविवासति) अपने को साधु[8] सुन्दर हविरूप में समर्पित

---

१. ''चन इत्यन्ननाम'' [निरु० ३.१५]। २. ''अर्चिः-ज्वलतो नाम'' [निघं० १.१७]।
३. ''वनं रश्मिनाम'' [निघं० १.५] तद्वान्-मतुब्लोपश्छान्दसः।
४. ''जिह्वा जोहुवा'' [निरु० ५.२७] ''अत्ता चराचरग्रहणात्'' [वेदान्त०]।
५. ''तमो वै कृष्णम्'' [मै० २.१.६]।
६. ''तम आसीत् तमसा गूढमग्रे'' [ऋ० १०.१२९.३]।
७. निमित्तसप्तम्यां विभक्तिव्यत्ययः।
८. ''सुम्ने मा धत्तम्-साधौ माधत्तमित्येवैतदाह'' [श० १.८.५.२७]।

करता है[1] (द्युम्नाय) उस द्योतमान—यशोरूप—यशस्वी बने मनुष्य के लिये[2] (अपः सुतराः) प्राण[3] सागर को सुख से तराने वाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

११५१. **ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः। एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **ता नः वाजवतीः इषः आशून् पिपृतम् अर्वतः आ इन्द्रम् अग्निम् च वोढवे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—ता वाजवतीः-इषः पिपृतम् आशून्-अर्वतः इन्द्रम्-अग्निं च वोढवे ॥

पदार्थः—(ता) वह तू ज्ञानप्रकाशस्वरूप बलैश्वर्यवान् परमात्मन्! (वाजवतीः-इषः) अमृत अन्नभोग वाली[4] एषणाओं—कामनाओं को (आशून्-अर्वतः) व्यापनशील ईरण वाले[5]—प्रेरणा करने वाले मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को (पिपृतम्) अपने विचारों से पूरण कर—भर दे, जिससे (इन्द्रम्-अग्निं च वोढवे) तुझ आत्मबलैश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा को प्राप्त करने के लिये ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सिक्तानिवारी ऋषिगणः (ज्ञानसिक्त दोषनिवारक ऋषियों में गिने जाने वाले)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

११५२. **प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १ ॥**

पदपाठः— **प्रोअयासीदिन्दुरिन्द्रस्यनिष्कृतम् ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५७)

११५३. **प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः। हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥ २ ॥**

---

१. ''विवासति परिचर्याकर्मा'' [निघं० ३.५]।

२. ''द्युम्नं द्योतते यशो'' [निरु० ५.५]।

३. ''प्राणा वा आपः'' [तां ० ८.९.४] विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः।

४. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० १.१९३]।

५. ''अर्वा-ईरणवान्'' [निरु० १०.३१]।

पदपाठः— प्र वः धियः मन्द्रयुवः विपन्युवः पनस्युवः संवरणेषु सम् वरणेषु अक्रमुः हरिम् क्रीडन्तम् अभि अनूषत स्तुभः अभि धेनवः पयसा इत् अशिश्रयुः ॥ २ ॥

अन्वयः—वः मन्द्रयुवः पनस्युवः विपन्युवः संवरणेषु धियः–प्र–अक्रमुः स्तुभः क्रीडन्तं हरिम्–अनूषत धेनवः पयसा–इत्–अभि–अशिश्रयुः ॥

पदार्थः—(वः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ[१] (मन्द्रयुवः) हर्षप्रद को चाहने वाले (पनस्युवः) स्तुति चाहने वाले (विपन्युवः) मेधावी उपासक (संवरणेषु) गुप्त स्थानों—हृदय आदि प्रदेशों में (धियः–प्र–अक्रमुः) धारणा आदि योगाङ्गों का प्रारम्भ अनुष्ठान करते हैं (स्तुभः) स्तुतिकर्ताजनों[२] (क्रीडन्तं हरिम्–अनूषत) संसार रचनारूप क्रीड़ामात्र सा करते हुए दुःखापहरणकर्ता सुखाहर्ता परमात्मा की स्तुति करो (धेनवः) तुम्हारी स्तुतिवाणियाँ[३] (पयसा–इत्–अभि–अशिश्रयुः) अन्तर्हित श्रद्धारस से ही[४] आश्रित हों॥ २ ॥

११५४. **आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा। या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन् मधुमत्सुवीर्यम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— आ नः सोम संयतम् सम् यतम् पिप्युषीम् इषम् इन्दो पवस्व पवमानः ऊर्म्मिणा या नः दोहते त्रिः अहन् अ हन् असश्चुषी अ सश्चुषी क्षुमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यम् सु वीर्यम्॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्दो सोम ऊर्मिणा पवमानः नः संयतं पिप्युषीम्–इषम्–आ पवस्व या अह न–त्रिः असश्चुषी नः क्षुमत्–वाजवत्–मधुमत् सुवीर्यं दोहते ॥

पदार्थः—(इन्दो सोम) हे आनन्दरसम्पूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (ऊर्मिणा पवमानः) धारारूप से होता हुआ (नः) हमारे लिये (संयतं पिप्युषीम्–इषम्–आ पवस्व) स्थायी समृद्ध करने वाली एषणीय—कमनीय स्वसङ्गति को प्राप्त करा (या) जो (अह न–त्रिः) प्रतिदिन तीन क्रम वाली—स्तुति प्रार्थना उपासना वाली (असश्चुषी) अचल—अविनाशी—प्रतिबन्धरहित (नः) हमारे लिये (क्षुमत्–वाजवत्–मधुमत् सुवीर्यं दोहते) निवास वाले[५] अमृत अन्न वाले[६] मधुर शोभन

१. वचनव्यत्ययः।

२. "स्तुभ् स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।

३. "धेनुः–वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

४. "अन्तर्हितमिव वा पयः" [तां० ९.९.३]। "रसो वै पयः" [श० ४.४.४.८]।

५. "क्षि निवासे" [तुदादि०] ततो डुक्–औणादिको बाहुलकरत् क्षुः, मतुपि क्षुमत्।

६. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

आत्मबल को दूहती है—प्राप्त करती है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—पुरुहन्मा (दोषों का बहुत हन्ता) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—बृहती ॥

११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥

पदपाठः— नकिष्टंकर्म्मणानशत् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४३)

११५६. अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः। सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २ ॥

पदपाठः— अषाढम् उग्रम् पृतनासु सासहिम् यस्मिन् महीः उरुज्रयः उरु ज्रयः सम् धेनवः जायमाने अनोनवुः द्यावः क्षामिः अनोनवुः ॥ २ ॥

अन्वयः—अषाढम्-उग्रम् पृतनासु सासहिम् यस्मिन् जायमाने महीः-उरुज्रयः-धेनवः अनोनवुः द्यावः क्षामीः-अनोनवुः ॥

पदार्थः—(अषाढम्-उग्रम्) न सह सकने वाले ऊँचे बलवाले (पृतनासु) संघर्षों—विषयों में (सासहिम्) अत्यन्त सहज स्वभाव की स्तुति करें (यस्मिन् जायमाने महीः-उरुज्रयः-धेनवः) जिस अन्तःस्थल हृदय में प्रसिद्ध हो जाने पर महती बहुत वेगवाली वाणियाँ (अनोनवुः) स्तुतिकर्ता है (द्यावः क्षामीः-अनोनवुः) द्युलोक की और पृथिवी की[1] प्रजाएँ भी उसकी स्तुति करती हैं ॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पर्वतनारदौ (आत्मतृप्तिमान् नरविषयक ज्ञानदाता उपासक) ॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत। शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

पदपाठः— सखायआनिषीदत ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६८)

---

१. ''क्षमा पृथिवी'' [निघं० १.१] ।

११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्। देवाव्यां३ मदमभि द्विशवसम्॥ २॥

पदपाठः— सम् ई वत्सम् न मातृभिः सृजत गयसाधनम् गय साधनम् देवाव्यम् देव अव्यम् मदम् अभि द्विशवसम् द्वि शवसम् ॥ २॥

अन्वयः—गयसाधनम् देवाव्यम् मदम् द्विशवसम् तम् वत्सं न मातृभिः-अभि सं सृजत॥

पदार्थः—(गयसाधनम्) प्राणों[1] के साधने—उन्नत करने वाले—(देवाव्यम्) मुमुक्षुजनों द्वारा कमनीय—(मदम्) हर्ष आनन्द के देनेवाले—(द्विशवसम्) दो बलों वाले सृष्टिरचन और जीवों के कर्मफल देने का बल रखने वाले, ऐसे (तम्) उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (वत्सं न मातृभिः-अभि सं सृजत) बछड़े को जैसे माताओं—गौओं से मिलाते हैं ऐसे मान करने वाली देववृत्तियों से मिलाओ॥ २॥

११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये। यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम्॥ ३॥

पदपाठः— पुनात दक्षसाधनम् दक्ष साधनम् यथा शर्द्धार्य वितये यथा मित्राय मि त्राय वरुणाय शन्तमम्॥ ३॥

अन्वयः—दक्षसाधनं पुनात यथा शर्धाय वीतये यथा मित्राय-वरुणाय शन्तमम्॥

पदार्थः—(दक्षसाधनं पुनात) उस आत्मबल के साधन शान्तस्वरूप परमात्मा को अपने अन्दर प्राप्त करो—धारण करो (यथा शर्धाय) जैसे आत्मबल के लिये (वीतये) तृप्ति के लिये (यथा मित्राय-वरुणाय) जैसे प्राण के लिये अपान के लिये (शन्तमम्) अत्यन्त कल्याणकर हो सके॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्याः (धिषणा[2]—स्तुतिवाणी के साधक उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥

११६०. प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम्॥ १॥

पदपाठः— प्र वाजी अक्षारिति सहस्रधारः सहस्र धारः तिरः पवित्रम् वि वारम् अव्यम्॥ १॥

अन्वयः—वाजी सहस्रधारः पवित्रं तिरः प्र-अक्षाः अव्ययं वारं वि॥

---

१. "प्राणा वै गयाः" [श० १४.८.१५.७]। २. "धिषणा वाक्" [निघ० १.११]।

पदार्थः—(वाजी सहस्रधारः) बलवान् सोम—परमात्मा बहुत आनन्दधारा वाला (पवित्रं तिरः) पवित्र आत्मा के अन्दर[1] (प्र-अक्षाः) प्रक्षरित होता है—पहुँचता है—प्राप्त होता है (अव्ययं वार वि) पृथिवी के बने—पार्थिव देह आवरक को विगत करके—हटाकर ॥ १ ॥

११६१. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ २ ॥

पदपाठः— **सः वाजी अक्षारिति सहस्ररेताः सहस्र रेताः अद्भिः मृजानः गोभिः श्रीणानः ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-वाजी सहस्ररेताः अद्भिः-मृजानः गोभिः-श्रीणानः अक्षाः ॥

पदार्थः—(सः-वाजी) वह तेजवान् सोम—परमात्मा (सहस्ररेताः) बहुत शक्ति वाला[2] (अद्भिः-मृजानः) आप्तजनों[3] मनस्वी उपासकों द्वारा चिन्त्यमान हुआ, तथा (गोभिः-श्रीणानः) स्तुतिवाणियों से संयुक्त हुआ (अक्षाः) हृदय में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— **प्र सोम याहि इन्द्रस्य कुक्षा नृभिः येमानः अद्रिभिः अ द्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोम नृभिः-येमाणः अद्रिभिः सुतः इन्द्रस्य कुक्षा प्र याहि ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (नृभिः-येमाणः) मुमुक्षुजनों से[4] साधना में—उपासना में लाया जाता हुआ (अद्रिभिः सुतः) श्लोक कर्ता—स्तुति कर्ताओं के द्वारा साक्षात् हुआ[5] (इन्द्रस्य कुक्षा) उपासक आत्मा के हृदय में (प्र याहि) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भृगुर्जमदग्निर्वा (तेजस्वी या प्रज्वलित ज्ञान अग्निवाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वादः शर्यणावति ॥ १ ॥

---

१. ''तिरोऽन्तर्धौ'' [अष्टा० १.४.७०] ''तिरोदधे-अन्तर्धत्ते'' [निरु०]।

२. ''कामस्तदग्रे समवर्तते मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्'' [अथर्व० १९.५२.१]।

३. ''मनुष्या वा आपश्चन्द्राः'' [श० ७.३.१.२०]।

४. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [जै० १.८९]।

५. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।

पदपाठः— **ये सोमासः परावति ये अर्वा वति सुन्विरे ये वा अदः शर्यणावति॥ १॥**

११६४. **य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्। ये वा जनेषु पञ्चसु॥ २॥**

पदपाठः— **ये आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ये वा जनेषु पञ्चसु॥ २॥**

११६५. **ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः॥ ३॥**

पदपाठः— **ते नः वृष्टिम् दिवः परि पवन्ताम् आ सुवीर्यम् सु वीर्यम् स्वानाः देवासः इन्दवः॥ ३॥**

इन तीनों मन्त्रों की एक वाक्यता है अतः एकवाक्यतारूप में अर्थ दिया जाता है—

अन्वयः—ये सोमासः परावति ये अर्वावति वा शर्यणावति सुन्विरे ये-आर्जिकेषु कृत्वसु ये पस्त्यानां मध्ये वा ये पञ्चसु जनेषु ते स्वानाः-इन्दवः-देवासः नः दिवः वृष्टिं सुवीर्यम्-आ परि पवन्ताम्॥

पदार्थः—(ये सोमासः परावति) 'बहुवचनमादरार्थम्' जो सोम शान्तस्वरूप परमात्मा दूर[1] परे—मोक्षधाम में (ये अर्वावति) जो समीप—स्वात्मा में[2] (वा) और[3] (अदः शर्यणावति) उस प्रणव धनुष पर[4] (सुन्विरे) साक्षात् होता है (ये-आर्जिकेषु) जो ऋजुगामी परमाणुओं में सूक्ष्म भूतों में (कृत्वसु) कार्यद्रव्यों—पृथिवी आदि स्थूल भूतों में (ये पस्त्यानां मध्ये) जो परमात्मा पशुपक्षी वनस्पतियों के[5] अन्दर (वा) और (ये) जो (पञ्चसु जनेषु) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद—वन वासी मनुष्यों में साक्षात् होता है रचनादृष्टि से (ते स्वानाः-इन्दवः-देवासः) वह साक्षात् हुआ रसपूर्ण देव (नः) हमारे लिये (दिवः) अपने अमृत

---

१. ''परावतः-दूरनाम'' [निघं० ३.२६]।''अन्तो वै परावतः'' [ऐ० ५.२]।

२. ''य आत्मनि तिष्ठत्'' [श० १४.६.७.३०]।

३. ''वा समुच्चयार्थः'' [निरु० १.५]।

४. ''शर्याः-इषवः शरमय्यः'' [निरु० ५.४]। शर्या-शरमयीषम् [निरु० १०.२९] इषुं प्रक्षेप्तुंनमति यासा शर्यणा तद्वत् धनुः, ''प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते'' [मुण्ड० २.२.४]।

५. ''विशो वा पस्त्याः'' [श० ५.३.५.१९२]।

लोक से (वृष्टिं सुवीर्यम्-आ) सुख वृष्टि और शोभन आत्मबल को (परि पवन्ताम्) परिस्रवित कर—वर्षा दे ॥ १-३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मेधावी से सम्बद्ध वक्ता-स्तुतिकर्ता)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

११६६. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्। अग्ने त्वां कामये गिरा॥ १॥

पदपाठः— आतेवत्सोमनोयमत्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ८)

११६७. पुरुत्रा हि स दृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः। समत्सु त्वा हवामहे॥ २॥

पदपाठः— पुरुत्रा हि सदृङ् स दृङ् असि दिशः विश्वाः अनु प्रभुः प्र भुः समत्सु स मत्सु त्वा हवामहे॥ २॥

अन्वयः—पुरुत्राः-हि सदृङ्-असि विश्वाः-दिशः-अनु प्रभुः त्वा समत्सु हवामहे॥

पदार्थः—(पुरुत्राः-हि सदृङ्-असि) हे अग्रणी परमात्मन्! तू बहुत प्रकार से त्राणकर्ता है निश्चय समानद्रष्टा है—त्राण करने में तू समदर्शी है (विश्वाः-दिशः-अनु प्रभुः) सारी दिशाओं के प्रति—प्रभु सारी दिशाओं का स्वामी है (त्वा समत्सु हवामहे) तुझे सम्यक् मोद—आनन्द[१] प्रसङ्गों के निमित्त आमन्त्रित करते हैं—बुलाते हैं—तू प्रमोद आनन्द का देने वाला है॥ २॥

११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम्॥ ३॥

पदपाठः— समत्सु स मत्सु अग्निम् अवसे वाजयन्तः हवामहे वाजेषु चित्रराधसम् चित्र राधसम्॥ ३॥

अन्वयः—समत्सु अवसे वाजेषु चित्रराधसम् अग्निं हवामहे॥

पदार्थः—(समत्सु) सम्यक् हर्ष आनन्द प्रसङ्गों के निमित्त (अवसे) तृप्ति के लिये[२] तथा (वाजेषु चित्रराधसम्) संग्रामों आन्तरिक संग्रामों के निमित्त अद्भुत सिद्धिप्रद (अग्निं हवामहे) तुझ अग्रणी को आमन्त्रित करते हैं॥ ३॥

---

१. "समदो धा....सम्मदो वा मदतेः" [निरु० ९.१७]।

२. "अव रक्षण गति कान्ति प्रीति तृप्ति..." [भ्वादि०]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु बुद्धि वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—ककुप्॥

११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनासहम्॥ १ ॥

पदपाठः— त्वन्नइन्द्राभर॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४०५)

११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथा ते सुम्नमीमहे॥ २ ॥

पदपाठः— त्वम् हि नः पिता वसो त्वम् माता शतक्रतो शत क्रतो बभूविथ अथ ते सुम्नम् ईमहे॥ २ ॥

अन्वयः—वसो त्वं हि नः पिता शतक्रतो त्वं माता बभूविथ अथ ते सुम्नम्-ईमहे॥

पदार्थः—(वसो त्वं हि नः पिता) हे बसाने वाले परमात्मन्! तू ही हमारा पिता है—अपने आश्रय में अपने अन्दर बसाने वाला होने से (शतक्रतो त्वं माता बभूविथ) हे बहुत प्रकार से हृदय में[1] मन को प्रेरित करने वाले परमात्मन्! तू माता है—सङ्कल्पों को प्रेरित करने वाला जीवन निर्माता है (अथ ते सुम्नम्-ईमहे) अधिकार के साथ तेरे—तुझ से प्राप्त होने वाले साधुभाव एवं सुख को[2] हम चाहते हैं[3]॥ २॥

११७१. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वाम् शुष्मिन् पुरुहूत पुरु हूत वाजयन्तम् उप ब्रुवे सहस्कृत सहः कृत स नः रास्व सुवीर्यम् सु वीर्यम्॥ ३ ॥

अन्वयः—शुष्मिन् पुरुहूत सहस्कृत वाजयन्तं त्वाम्-उपब्रुवे सः-नः सुवीर्यं रास्व॥

---

१. ''हत्सु ह्ययं क्रतुर्मनो जवः प्रविष्टः'' [श० ३.३.४.७]।

२. ''सुम्ने मा धत्तं....साधौ मा धत्तमित्येव तदाह'' [श० १.८.३.७]। ''सुम्नं सुखनाम'' [निघं० ३.६]।

३. ''ईमहे याच्ञाकर्मा'' [निघं० ३.१९]।

पदार्थः—(शुष्मिन् पुरुहूत सहस्कृत) हे बलवन् बहुत प्रकार आमन्त्रण करने योग्य ओज—आत्मतेज से साक्षात्करणीय[1] (वाजयन्तं त्वाम्-उपब्रुवे) तुझ हमारे लिये अमृत अन्नभोग[2] चाहने वाले की उपस्तुति—उपासना करता हूँ (सः-नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमारे लिये उत्तमबल—अध्यात्मबल को प्रदान कर ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भौमोऽत्रिः (पार्थिव शरीर में रहता हुआ तृतीय मोक्षधाम का ज्ञाता उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्।

११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर॥ १ ॥

पदपाठः— यदिन्द्रचित्रमइहन॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४५)

११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर। विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः॥ २ ॥

पदपाठः— यत् मन्यसे वरेण्यम् इन्द्र द्युक्षम् द्यु क्षम् तत् आ भर विद्याम तस्य ते वयम् अकूपारस्य दावनः॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्र यत्-वरेण्यं द्युक्षं मन्यसे तत्-आभर ते तस्य-अकूपार स्व दावनः-विद्याम ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्-वरेण्यं द्युक्षं मन्यसे) जिसे वरण करने योग्य दीप्ति के निवास—दीप्तिवाला धन है (तत्-आभर) उसे आभरित कर (ते) तेरे (तस्य-अकूपार स्व दावनः-विद्याम) उस अपार धनदाता के दान को हम प्राप्त करें॥ २ ॥

११७४. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्। तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये॥ ३ ॥

पदपाठः— यत् ते दिक्षु प्रराध्यम् प्र राध्यम् मनः अस्ति श्रुतम् बृहत् तेन दृढा चित् अद्रिवः अ द्रिवः आ वाजम् दर्षि सातये॥ ३ ॥

---

१. "ओजः-सहः-ओजः" [का० ३.५३]।

२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १.१९३]।

अन्वयः—अद्रिवः दिक्षु ते यत् प्राध्यं श्रुतं बृहत् मनः-अस्ति तेन दृढाचित्-वाजम्-आदर्षि सातये॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे आनन्दधन वाले परमात्मन्! (दिक्षु) सब दिशाओं में, वस्तु वस्तु में (ते) तेरा (यत् प्राध्यं श्रुतं बृहत् मनः-अस्ति) जो प्रशंसनीय प्रसिद्ध या सुनने योग्य बड़ा मनन करने योग्य स्वरूप है (तेन) उस अपने स्वरूपदर्शन से (दृढाचित्-वाजम्-आदर्षि) स्थिर अन्नभोग को भी हमारी ओर बखेर देता है—प्रदान करता है (सातये) हमारे लाभ के लिये, अतः तू स्तुतियोग्य है॥ ३॥

इति अष्टम अध्याय॥ ८॥

अथ नवम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों का ताडन करने वाला उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

११७५. शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन। कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥ १ ॥

पदपाठः— शिशुम् जज्ञानम् हर्यतम् मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रम् वि प्रम् मरुतः गणेन कविः गीर्भिः काव्येन कविः सन् सोमः पवित्रमत्येतिरेभन्॥ १ ॥

अन्वयः—मरुतः गणेन विप्रम् हर्यतम् जज्ञानं-शिशुम् मृजन्ति शुम्भन्ति कविः-गोभिः सोमः कविः सन्-काव्येन रेभन् पवित्रम्-अत्येति ॥

पदार्थः—(मरुतः) मुमुक्षुजन[१] (गणेन) स्तुतिवचन से[२] (विप्रम्) विविध कामानाओं के पूर्ण करने वाले—(हर्यतम्) कमनीय[३] (जज्ञानं-शिशुम्) उत्पन्न हुए बच्चे जैसे[४] या शंसनीय[५] साक्षात् हुए सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (मृजन्ति शुम्भन्ति) प्राप्त करते[६] और प्रार्थना वचन कहते हैं[७] (कविः-गोभिः) क्रान्तदर्शी परमात्मा स्तुतियों द्वारा तथा (सोमः कविः सन्-काव्येन) शान्तस्वरूप परमात्मा कवि होता हुआ कलात्मक व्यवहार से (रेभन् पवित्रम्-अत्येति) प्रवचन करता हुआ—आशीर्वाद देता हुआ पवित्र उपासक आत्मा को अत्यन्त—आशिष से प्राप्त होता है ॥ १ ॥

११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम्। तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥ २ ॥

---

१. "मरुतो देवविशः" [श० २.५.१.१२]।
२. "गणः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
३. "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६]।
४. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।
५. "शिशुः शंसनीयः" [निरु० १०.३९]।
६. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
७. "शुम्भ भाषणे" [भ्वादि०]।

पदपाठः— **ऋषिमनाः ऋषि मनाः यः ऋषिकृत् ऋषि कृत् स्वर्षाः स्वः साः सहस्रनीथः सहस्र नीथः पदवीः पद वीः कवीनाम् तृतीयम् धाम महिषः सिषासन् सोमः विराजम् वि राजम् अनु राजति स्तुप्॥ २ ॥**

अन्वयः—यः ऋषिमनाः ऋषिकृत् स्वर्षा सहस्रनीथः कवीनां पदवीः महिषः तृतीयं धाम सिषासन् विराजम्–अनु स्तुप् सोमः–विराजति ॥

पदार्थः—(यः) जो शान्तस्वरूप परमात्मा (ऋषिमनाः) ऋषियों—द्रष्टा उपासकों का मन जिस में है ऐसा (ऋषिकृत्) निजदर्शन से ऋषियों का बनानेवाला (स्वर्षा) मोक्ष का सम्भागी बनाने वाला (सहस्रनीथः) सब का[१] नेता (कवीनां पदवीः) ऋषियों का पदवेत्ता[२] स्वरूप ज्ञाता (महिषः) महान्[३] (तृतीयं धाम) स्वः–मोक्षधाम को (सिषासन्) उपयुक्त करने—प्राप्त कराने की इच्छा रखता हुआ (विराजम्–अनु) स्तुति वाणी को लक्ष्य कर[४] उसके साथ (स्तुप् सोमः–विराजति) स्तुतियोग्य[५] शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक आत्मा के अन्दर विराजमान होता है ॥ २ ॥

११७७. **चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्। अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **चमूषत् चमू सत् श्येनः शकुनः विभृत्वा वि भृत्वा गोविन्दुः गो विन्दुः द्रप्सः आयुधानि बिभ्रत् अपाम् ऊर्मिम् सचमानः समुद्रम् सम् उद्रम् तुरीयम् धाम महिषः विवक्ति ॥ ३ ॥**

अन्वयः—चमूषत् श्येनः शकुनः विभृत्वा गोविन्दुः द्रप्सः आयुधानि बिभ्रत् अपाम्–ऊर्मिं सचमानः महिषः तुरीयं धाम समुद्रं विवक्ति ॥

पदार्थः—(चमूषत्) द्युलोक पृथिवीलोक में[६] द्यावापृथिवीमय समस्त जगत् में रहने वाला सर्वत्र व्यापक (श्येनः शकुनः) शंसनीय गतिमान्—प्रशंसनीय प्राप्ति वाला[७] कल्याणकारी[८] (विभृत्वा) विशेष भरण पोषण करने वाला[९] (गोविन्दुः)

---

१. "सर्वं वै सहस्रम्" [श० ४.१.५.१५]। २. "ऋषयः कवयः" [मै० ४.१.२]।
३. "महिषो महन्नाम" [निघं० ३.१]। ४. "वाग्वै विराट्" [मै० २.३.१०]।
५. "स्तोभति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१] कर्मणि क्विप्।
६. "चम्वौ द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.३०]।
७. "श्येनः शंसनीयं गच्छति" [निरु० ४.२४]।
८. "शकुनिः सर्वत्र शङ्करः" [निरु० ९.३]।
९. "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" [अष्टा० ३.२.८५] भृञ् धातोः क्वनिप्।

वाक् विद्याविषय को प्राप्त हुआ (द्रप्सः) अपने अन्दर भरणीय और भक्षणीय सात्म करने योग्य[1] शान्तस्वरूप परमात्मा (आयुधानि बिभ्रत्) जलों को[2] धारण करता है (अपाम्-ऊर्मिं सचमानः) आप्तजनों की[3] भावना—स्तुति प्रार्थना को सेवन करता हुआ (महिषः) महान् उपकारक सोम—परमात्मा (तुरीयं धाम समुद्रं विवक्ति) चतुर्थ—कार्य, कारण, जीवलोक से ऊपर मोक्ष—आनन्दसागर का विवेचन करता है—प्राप्त कराता स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय नवर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (राग बन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लेने धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्। वर्धन्तो अस्य वीर्यम्॥ १ ॥

पदपाठः— एते सोमाः अभि प्रियम् इन्द्रस्य कामम् अक्षरन् वर्द्धन्तः अस्य वीर्यम्॥ १ ॥

अन्वयः—एते सोमाः अस्य इन्द्रस्य वीर्यं वर्धन्तः प्रियं कामम्-अभि-अक्षरन्॥

पदार्थः—(एते सोमाः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अस्य इन्द्रस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस उपासक आत्मा के उत्साह को बढ़ाने के हेतु (प्रियं कामम्-अभि-अक्षरन्) प्रिय कमनीय स्वदर्शन को प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना। ते नो धत्त सुवीर्यम्॥ २ ॥

पदपाठः— पुनानासः चमूषदः गच्छन्तः वायुम् अश्विना ते नः धत्त सुवीर्यम् सु वीर्यम्॥ २ ॥

अन्वयः—ते चमूषदः पुनानासः वायुम्-अश्विना गच्छन्तः नः सुवीर्यं धत्त॥

पदार्थः—(ते चमूषदः पुनानासः) वह द्युलोक पृथिवीलोक—द्यावापृथिवीमय जगत् में व्यापक शान्तस्वरूप परमात्मा साक्षात् हुआ (वायुम्-अश्विना गच्छन्तः) प्राणवायु को[4] और दोनों कानों को[5] प्रेरित करता हुआ अपने आनन्दरस में और

---

१. "द्रप्सः सम्भृतः प्सानीयो भवति" [निरु० ५.१५]।
२. "आयुधानि-उदकनाम" [निघं० १.१२]।
३. "मनुष्या वा आपश्चन्द्रा" [श० ७.३.१.२०] कर्मणि क्विप्।
४. "प्राणो वै वायुः" [तै० सं० २.१.१.२]। ५. "श्रोत्रे अश्विनी" [श० १२.९.१.१३]।

अमृतवचन से तृप्त करता हुआ (नः सुवीर्यं धत्त) हमारे लिये आत्मबल उत्तम उत्साह को धारण करावे ॥ २ ॥

११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय। देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानः हार्दि चोदय देवानाम् योनिम् आसदम् आ सदम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम राधसे देवानाम्-आसदं इन्द्रस्य योनिं पुनानः हार्दि चोदय ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (राधसे) अपनी आराधना उपासना कराने के लिये (देवानाम्-आसदं इन्द्रस्य योनिं पुनानः हार्दि चोदय) देववृत्तियों—सद्वृत्तियों के समन्तरूप से बैठने योग्य मुझ आत्मा के स्थान हृदयगृह को पवित्र करता हुआ प्रेरित कर जिससे तेरी उपासना कर सकूँ, हृदय की गन्ध आदि वृत्ति नहीं इन्द्रियों की असुरवृत्तियाँ और देववृत्तियाँ पर्याय से आती रहती हैं ॥ ३ ॥

११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः। अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

पदपाठः— मृजन्ति त्वा दश क्षिपः हिन्वन्ति सप्त धीतयः अनु विप्राः वि प्राः अमादिषुः ॥ ४ ॥

अन्वयः—त्वा दश क्षिपः मृजन्ति सप्त-धीतयः हिन्वन्ति अनु-'त्वाम्-अनु' विप्राः-अमादिषुः ॥

पदार्थः—(त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझे (दश क्षिपः) विषयों की ओर फेंकने वाली इन्द्रिय शक्तियाँ वृत्तियाँ (मृजन्ति) प्राप्त हो रही हैं[1] विषयों में न जाकर तेरी ओर प्रवृत्त हो रही हैं (सप्त-धीतयः हिन्वन्ति) सात प्रज्ञाएँ[2] योग भूमियाँ—हेय दुःख समझ लिया, क्षीण हो गए हेय हेतु, ज्ञान का उपाय विवेक दर्शन सम्पादन कर लिया, सत्त्व आदि गुणों के अधिकार से बुद्धि निवृत्त हो गई, गुण अपने कारण में अस्त हो गए, फिर इनकी उत्पत्ति नहीं प्रयोजन के अभाव से, तुझे आप्त हो रही हैं—समन्तरूप से प्राप्त हो रही हैं[3]—तेरे से चरित हो रही हैं, इस प्रकार (अनु-'त्वाम्-अनु' विप्राः-अमादिषुः) तुझे लक्ष्य कर उपासक ब्राह्मण[4]

१. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
२. "तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा" [योगद० २.१७]।
३. "धीतिः प्रज्ञा" [निरु० १०.४१]।
४. "हिन्वन्ति अप्नुवन्ति" [निरु० १.२०]।

हर्षित आनन्दित हो जाते हैं॥४॥

११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः। सं गोभिर्वासयामसि॥५॥

पदपाठः— देवेभ्यः त्वा मदाय कम् सृजानम् अति मेष्यः सम् गोभिः वासयामसि॥५॥

अन्वयः—त्वा देवेभ्यः-मदाय कं सृजानम् मेष्यः-गोभिः अति वासयामसि॥

पदार्थः—(त्वा) हे परमात्मन्! तुझ शान्तस्वरूप को (देवेभ्यः-मदाय) मुमुक्षुजन के[1] हर्ष आनन्द प्राप्ति के लिए (कं सृजानम्) सुख सर्जन करते हुए को (मेष्यः-गोभिः) सेचन करती हुई सी[2] स्तुति वाणियों द्वारा (अति वासयामसि) हम उपासक बहुत वासित कर देते हैं॥५॥

११८३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः। परि गव्यान्यव्यत॥६॥

पदपाठः— पुनानः कलशेषु आ वस्त्राणि अरुषः हरिः परि गव्यानि अव्यत॥६॥

अन्वयः—अरुषः-हरिः कलशेषु वस्त्राणि गव्यानि परि-अव्यत॥

पदार्थः—(अरुषः-हरिः) आरोचमान दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा (कलशेषु) कलास्थानों में—जहाँ परमात्मा की कलाएँ भासित होती हैं वहाँ स्तुत किया जाता हुआ—चिन्तन किया जाता हुआ (वस्त्राणि गव्यानि) वस्त्ररूप स्तुतिवाणियों को (परि-अव्यत) ओढता है—उस हृदयस्थान में आकर॥६॥

११८४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः। इन्दो सखायमा विश॥७॥

पदपाठः— मघोनः आ पवस्व नः जहि विश्वाः अप द्विषः इन्दो सखायम् स खायम् आ विश॥७॥

अन्वयः—इन्दो नः-मघोनः आपवस्व विश्वाः-द्विषः-अपजहि सखायम्-आविश॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (नः-मघोनः) देने योग्य

---

१. ''ब्राह्मणा देवाः'' [जै० ३.८४]।

२. ''मिषु सेचने'' [भ्वादि०]।

धन रूप[1] स्तवन—स्तुतिवचन वाले हम उपासक आत्माओं को (आपवस्व) समन्तरूप से प्राप्त हो (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेष भावनाओं को नष्ट कर (सखायम्-आविश) मुझ मित्र उपासक आत्मा के अन्दर आविष्ट हो—समाजा ॥ ७ ॥

११८५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्। भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

पदपाठः— नृचक्षसम् नृ चक्षसम् त्वा वयम् इन्द्रपीतम् इन्द्र पीतम् स्वर्विदम् स्वः विदम् भक्षीमहि प्रजाम् प्र जाम् इषम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—त्वा नृचक्षसम् इन्द्रपीतम् स्वर्विदम् प्रजाम्-इषम् भक्षीमहि ॥

पदार्थः—(त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ—(नृचक्षसम्) मनुष्यों के द्रष्टा—कर्मफल प्रदानार्थ अन्तः साक्षी—(इन्द्रपीतम्) आत्मा के पान—धारण करने योग्य—(स्वर्विदम्) सुख प्राप्त कराने वाले—(प्रजाम्-इषम्) प्रजारूप और अन्नरूप को (भक्षीमहि) भजं[2] सेवन करें—स्तुति में लावें—तू ही प्रजा है, तू ही अन्न है, तू ही हमारा सब कुछ है ॥ ८ ॥

११८६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि। सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥

पदपाठः— वृष्टिन्दिवः परिस्रवः द्युम्नम् पृथिव्याः अधि सहः नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥

अन्वयः—सोम नः दिवः-वृष्टिं परिस्रव पृथिव्या-अदि द्युम्नम् पृत्सु सहः-धाः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (नः) हम उपासकों के लिये (दिवः-वृष्टिं परिस्रव) मोक्षधाम से[3] स्वधा[4]—अमृतधारा को बहादे (पृथिव्या-अधि द्युम्नम्) पृथिवी के अन्दर—पार्थिव[5] देह में द्योतमान यश को[6] स्थापित कर (पृत्सु सहः-धाः) कामादि संघर्ष अवसरों पर[7] साहस—सहनबल दबाने वाले बल को धारण करा ॥ ९ ॥

---

१. ''मघमिति धननामधेयम्, मंहतेर्दानकर्मणः'' [निरु० १.७] ''मघं धनम्'' [निघं० २.१०]।
२. ''भक्षत विभक्षमाणाः स यथा धनानि विभजति'' [निरु० ६.८]।
३. ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३]। ४. ''स्वधा वृष्टिः'' [जै० ३.२७]।
५. ''ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति'' [निरु० २.५]।
६. ''द्युम्नं द्योततेर्यशः'' [निरु० ५.५]। ७. ''पृत्सु संग्रामनाम'' [निघं० २.१७]।

द्वितीय खण्ड
प्रथम नवर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री।

११८७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः। वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्॥ १॥

पदपाठः— सोमःपुनानोअर्षति सहस्रधारः सहस्र धारः अत्यविः अति अविः वायोः इन्द्रस्य निष्कृतम् निः कृतम्॥ १॥

अन्वयः—सोमः सहस्रधारः पुनानः इन्द्रस्य निष्कृतं वायोः अत्यविः अर्षति॥

पदार्थः—(सोमः सहस्रधारः पुनानः) शान्तस्वरूप परमात्मा बहुत आनन्दधाराओं वाला अध्येष्यमाण—स्तुति प्रार्थना में लाया हुआ[1] (इन्द्रस्य) उपासक आत्मा के (निष्कृतं वायोः) संस्कृत[2] 'वायुम्' मन को[3] (अत्यविः) पार्थिव देह[4] को लाङ्घता हुआ (अर्षति) प्राप्त होता है॥ १॥

११८८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत। सुष्वाणं देववीतये॥ २॥

पदपाठः— पवमानम् अवस्यवः विप्रम् वि प्रम् अभि प्र गायत सुष्वाणम् देववीतये देव वीतये॥ २॥

अन्वयः—अवस्यवः सुष्वाणं विप्रं पवमानम् देववीतये अभि प्रगायत॥

पदार्थः—(अवस्यवः) हे रक्षण चाहने वालो! तुम (सुष्वाणं विप्रं पवमानम्) निष्पन्न—साक्षात् हुए विविध रूप से कामनापूरक आनन्दधारारूप में प्राप्त होते हुए शान्तस्वरूप परमात्मा को (देववीतये) देवों—जीवन्मुक्तों के द्वारा प्राप्त करने योग्य मुक्ति के लिये (अभि प्र गायत) निरन्तर या पुनः पुनः स्तुतिगान करो॥ २॥

११८९. पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः। गृणाना देववीतये॥ ३॥

---

१. "पवस्व अध्येषणाकर्मा" [निघं० ३.२१]।
२. "यद्वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १.१.४]। "निष्कृण्वाना.....निरित्येष समित्येतस्य स्थाने" [निरु० १२.८]।
३. "मनो वायुः" [काठ० १३.१]।
४. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.२३]।

पदपाठः— **पवन्ते वाजसातये वाज सातये सोमाः सहस्रपाजसः सहस्र पाजसः गृणानाः देववीतये देव वीतये ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सहस्रपाजसः सोमाः गृणानाः वाजसातये देववीतये पवन्ते ॥

पदार्थः—(सहस्रपाजसः) बहुविध धनबल वाला[1] (सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा (गृणानाः) स्तूयमान—स्तुति में लाया जाता हुआ[2] (वाजसातये) अमृत अन्नभोग प्राप्ति के लिये (देववीतये) जीवन्मुक्तों की मुक्ति के लिये (पवन्ते) धारारूप में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

११९०. **उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः। द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **उत नः वाजसातये वाज सातये पवस्व बृहतीः इषः द्युमत् इन्दो सुवीर्यम् सु वीर्यम् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—इन्दो उत नः-वाजसातये बृहतीः-इषः द्युमन्तं सुवीर्यम् पवस्व ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (उत नः-वाजसातये) हाँ, हमारी अमृत अन्नभोग प्राप्ति है जिसमें उस मुक्ति के लिये (बृहतीः-इषः) बड़ी ऊँची—श्रेष्ठ कामनाओं—शम दम आदि भावनाओं—द्युमन्तं सुवीर्यम्) तेजस्वी[3] शोभन वीर्य—आत्मबल—आध्यात्मिक बल को (पवस्व) प्राप्त करा ॥ ४ ॥

११९१. **अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये। वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **अत्याः हियानाः न हेतृभिः असृग्रम् वाजसातये वाज सातये वि वारम् अव्यम् आशवः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—हेतृभिः-हियानाः-अत्याः-न-असृग्रन् वाजसातये आशवः अव्या वारं वि ॥

पदार्थः—(हेतृभिः-हियानाः-अत्याः-न-असृग्रन्) प्रेरकों द्वारा प्रेरे हुए घोड़े[4] जैसे दौड़ते चले जाते हैं ऐसे ही सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (वाजसातये) अमृत अन्नभोग की प्राप्ति सदा कराने के लिये[5] उपासकों द्वारा उपासित हुआ (आशवः)

---

१. ''पाजः बलनाम'' [निघं० २.९]।
२. ''कर्मणि कर्तृप्रत्ययः''
३. ''द्युमत्-ज्वलतो नाम'' [निघं० १.६]।
४. ''अत्यः-अश्वनाम'' [निघं० १.१४]। ''द्युमान् द्योतनवान्'' [निघं० ६.१२]।
५. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० १.१९३]।

आशुकारी—शीघ्र प्रवृत्तिवाला[१] सोम परमात्मा (अव्या वारं वि) पार्थिववारण करने वाले आवरक देह को विगत करके उपासक आत्मा में प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

११९२. ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

पदपाठः— ते नः सहस्रिणम् रयिम् पवन्तामासुवीर्यम् स्वानादेवासइन्दवः ॥ ६ ॥

अन्वयः—ते स्वानाः-इन्दवः-देवासः नः सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम् आपवन्ताम् ॥

पदार्थः—(ते स्वानाः-इन्दवः-देवासः) वह उपासना द्वारा साक्षात् हुआ आनन्दरसपूर्ण सोम प्रकाशमान परमात्मा (नः) हमारे लिये (सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम्) सहस्र गुणित—सहस्रों में ऊँचे अध्यात्म बलरूप धन को (आपवन्ताम्) समन्तरूप से प्राप्त करावे ॥ ६ ॥

११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः। दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

पदपाठः— वाश्राः अर्षन्ति इन्दवः अभि वत्सम् न मातरः दधन्विरेगभस्त्योः ॥ ७ ॥

अन्वयः—वत्सं न मातरः वाश्राः इन्दवः-अभि-अर्षन्ति गभस्त्योः दधन्विरे ॥

पदार्थः—(वत्सं न मातरः) बछड़े के प्रति माताओं के समान (वाश्राः इन्दवः-अभि-अर्षन्ति) स्नेह वचन बोलता हुआ परमात्मा उपासक के प्रति प्राप्त होता है, जब कि (गभस्त्योः दधन्विरे) अभ्यास और वैराग्य से स्वायत्त हो जाता है, आ जाता है ॥ ७ ॥

११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत्। विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

पदपाठः— जुष्टः इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् विश्वाअपद्विषोजहि ॥ ८ ॥

अन्वयः—जुष्टः मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् विश्वाः-द्विषः-अपजहि ॥

पदार्थः—(जुष्टः) उपासना द्वारा प्रीत—प्रसन्न किया हुआ (मत्सरः) तृप्ति करने वाला[२] (पवमानः) धारारूप में आने वाला सोम—परमात्मा (कनिक्रदत्)

---

१. "आशवः क्षिप्रकारिणः" [निरु० ९.६]।

२. "मत्सरः सोमो मन्दतेस्तृप्तिकर्मणः" [निरु० २.५]।

मधुर प्रवचन करता हुआ (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेषभावनाओं को दूर करे—नष्ट करे ॥ ८ ॥

११९५. **अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः। योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥**

पदपाठः— **अपघ्नन्तः अप घ्नन्तः अराव्णः अ राव्णः पवमानाः स्वर्दृशः स्वः दृशः योनौ ऋतस्य सीदत ॥ ९ ॥**

अन्वयः—पवमानाः अराव्णः-अपघ्नन्तः स्वर्दृशः ऋतस्य योनौ सीदत ॥

पदार्थः—(पवमानाः) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम—परमात्मन्! तू (अराव्णः-अपघ्नन्तः) अपने को तेरे लिए न देने वाले—न समर्पित करने वाले, असत्य की प्रशंसा करने वाले—असत्य बोलने वाले को[1] अपने से अलग करता हुआ—उन्हें न अपनाता हुआ (स्वर्दृशः) मोक्ष सुख को दिखाने—प्राप्त कराने वाला (ऋतस्य योनौ सीदत) सत्य के स्थान सत्यमानी, सत्यभाषी, सत्यकारी उपासक आत्मा में प्राप्त हो ॥ ९ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम नवर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

११९६. **सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया। इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **सोमाः असृग्रम् इन्दवः सुताः ऋतस्य धारया इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्दवः सोमाः सुताः ऋतस्य धारया असृग्रम्-'(असृग्रन्' इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥

पदार्थः—(इन्दवः सोमाः सुताः) आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय से साक्षात् हुआ (ऋतस्य धारया) अमृत की[2] धारा के धाराप्रवाह से (असृग्रम्-'न्') छूट रहा है—प्राप्त हो रहा है (इन्द्राय मधुमत्तमाः) उपासक आत्मा के लिए अत्यन्त मधुर हुआ ॥ १ ॥

---

१. "अराव्णो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति" [ताण्ड्य ६.१०.७]।

२. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०]।

११९७. **अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः। इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अभि विप्राः वि प्राः अनूषत गावोवत्सन्नधेनवः इन्द्रꣳसोमस्यपीतये ॥ २ ॥**

अन्वयः—विप्राः-अभि-अनूषत धेनवः-गावः-वत्सं न इन्द्रं ('इन्द्राय') सोमपीतये ॥

पदार्थः—(विप्राः-अभि-अनूषत) हे ब्राह्मणो—ब्रह्म के उपासकजनो[1] तुम सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की स्तुति—उपासना[2] करो (धेनवः-गावः-वत्सं न) जैसे दुधारी गौवें बछड़े को प्रशंसित करती हैं, पास जाती हैं (इन्द्रं[3] ('इन्द्राय') सोमपीतये) आत्मा को सोम-शान्तस्वरूप परमात्मा का पान-अनुभव कराने के लिए ॥ २ ॥

११९८. **मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित्। सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **मदच्युत् मद च्युत् क्षेति सादने सिन्धोः ऊर्म्मा विपश्चित् विपः चित् सोमः गौरीइति अधि श्रितः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—मदच्युत्-विपश्चित्-सोमः सिन्धोः-ऊर्मा सादने क्षेति गौरी अधिश्रितः ॥

पदार्थः—(मदच्युत्-विपश्चित्-सोमः) हर्ष चुवाने वाला—प्राप्त कराने वाला सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, शान्तस्वरूप परमात्मा (सिन्धोः-ऊर्मा सादने क्षेति) समस्त शरीर को नाड़ी जालों में बाँधने वाले[4] हृदय के ज्योति, तरङ्ग रूप, स्थान में प्राप्त होता है[5] (गौरी अधिश्रितः) स्तुति वाणी में[6] अधिश्रित हुआ स्तुति करते रहने से ॥ ३ ॥

११९९. **दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते। सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥**

---

१. "ब्राह्मणा ह वै विप्राः" [जै० ३.८४]।
२. "णु स्तुतौ" [अदादि०] "नौति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
३. 'इन्द्रम्' विभक्तिव्यत्ययः।
४. "तद्यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० १०९]।
५. "क्षि निवासगत्योः" [तुदादिः] "क्षियति गतिकर्मा" [नि० २.१४]।
६. "गौरी वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

पदपाठः— **दिवः नाभा विचक्षणः वि चक्षणः अव्याः वारे महीयते सोमः यः सुक्रतुः सु क्रतुः कविः ॥ ४ ॥**

अन्वयः—यः विचक्षणः सुक्रतुः कविः सोमः दिवः-नाभा अव्याः-वारे महीयते ॥

पदार्थः—(यः) जो (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा, अन्तर्यामी (सुक्रतुः) उत्तम कर्ता—विश्वरचयिता (कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा है, वह (दिवः-नाभा) द्युलोक के—मोक्ष के[1] मध्य में[2] (अव्याः-वारे) पृथिवी के वरने वाले अन्तःस्तर में—पार्थिव शरीर के वरने वाले आधार हृदय में (महीयते) महान् रूप में विराजमान है। वही परमात्मा द्युलोक के मध्य में है, वही पृथिवी के गर्भ में है, वही मोक्षधाम में है, वही शरीरस्थ हृदय में है। हृदय में ढूँढो तो मोक्ष में पाओ, मोक्ष में पाना चाहो तो हृदय में देखो ॥ ४ ॥

१२००. **यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः। तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **यः सोमः कलशेषु आ अन्तरिति पवित्रे आहितः आ हितः तम् इन्दुः परि सस्वजे ॥ ५ ॥**

अन्वयः—यः सोमः कलशेषु आ पवित्रे-अन्तः-आहितः तम्-इन्दुः 'इन्दुम्' परिषस्वजे ॥

पदार्थः—(यः) जो (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (कलशेषु) कला—रचना कलाएँ जहाँ हों ऐसे आकाशीय चन्द्र आदि पिण्डों में[3] (आ) और[4] (पवित्रे-अन्तः-आहितः) पवित्र—हृदय के अन्तर समन्तरूप से विराजित है (तम्-इन्दुः 'इन्दुम्' परिषस्वजे) उस आनन्दरसपूर्ण परमात्मा को[5] मैं उपासक आलिङ्गित करता हूँ ॥ ५ ॥

१२०१. **प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि। जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **प्र वाचम् इन्दुः इष्यति समुद्रस्य सम् उद्रस्य अधि विष्टपि जिन्वन् कोशम् मधुश्चुतम् मधु श्चुतम् ॥ ६ ॥**

---

१. "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे...." [अष्टा० ७.१.३९] आकारादेशः।
२. "मध्यं वै नाभिः" [श० १.१.२.२३]।
३. "कला अस्मिन् शेरते-कलशः" [निरु० १२.२]।
४. "एतस्मिन्नेवार्थे आकारः" [निरु० १.५]।
५. "सुपां सु०" [अष्टा० ७.१.३९] इति अम् स्थाने सुः।

अन्वयः—समुद्रस्य-अधि विष्टपि वाचं प्रेष्यति मधुश्चुतं कोशं जिन्वन् ॥

पदार्थः—(समुद्रस्य-अधि विष्टपि) दिव्—मोक्षधाम[1] के अन्दर ब्रह्मलोक—ब्रह्मदर्शक पद में[2] ब्रह्मदर्शन स्थिति में (वाचं प्रेष्यति) वक्ता को, स्तुतिकर्ता जन को[3] प्रेषित करता है—पहुँचाता है (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) मधुर रस बरसाने वाले कोश—मधु भण्डार को प्राप्त कराने के हेतु स्तुतिकर्ता को परमात्मा मोक्षधाम में अपने स्वरूप दर्शन पद में स्थापित करता है मधुभण्डार के रसास्वादनार्थ ॥ ६ ॥

१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम्। हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

पदपाठः— नित्यस्तोत्रः नित्य स्तोत्रः वनस्पतिः धेनाम् अन्तरिति सबर्दुघाम् सबः दुघाम् हिन्वानः मानुषा युजा ॥ ७ ॥

अन्वयः—नित्यस्तोत्रः वनस्पतिः सबर्दुघां धेनाम् युजा मानुषा-अन्तः हिन्वानः ॥

पदार्थः—(नित्यस्तोत्रः) नित्य स्तुति योग्य (वनस्पतिः) वरन सम्भजन स्तुति स्तवन करने वाले उपासकों का पालक—रक्षक शान्तस्वरूप परमात्मा[4] (सबर्दुघां धेनाम्) सर्व—सब कामनाओं को दूहने वाली[5] या सबेर्—संवरणीय वस्तुओं को दूहने वाली वाणी—वेदवाणी को[6] (युजा मानुषा-अन्तः) तेरे अन्दर युक्त हुए मनुष्यों में श्रेष्ठ मनुष्यों—ऋषियों के अन्दर[7] (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ साक्षात् होता है ॥ ७ ॥

१२०३. आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम्। अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

पदपाठः— आ पवमान धारय रयिम् सहस्रवर्चसम् सहस्र वर्चसम् अस्मेइति इन्दोइति स्वाभुवम् सु आभुवम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—इन्दो पवमान सहस्रवर्चसम् स्वाभुवम् रयिम् अस्मे आधारय ॥

पदार्थः—(इन्दो पवमान) हे आनन्दरसपूर्ण धारारूप में प्राप्त होने वाले

---

१. "असौ वा द्यौः समुद्रः" [श० ९.४.२.५]।
२. "विष्टप एव ब्रह्मलोकः" [जै० १.३३]।
"तदेव ब्रध्नस्य विष्टपं तस्मिन्नेतद् देवाः सर्वान् कामान्" [जै० ३.३२९]।
३. "वक्षि वाक् क्विपि।"
४. "वनस्पतिर्वनानां पाता वा पालयिता वा" [निरु० ८.३]।
५. "रेफस्य स्थान विपर्यासः, समो मकारस्य लोपश्छान्दसो वा।"
६. "धेना वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
७. "सप्तमी स्थाने-आकारदेशश्छान्दसः"।

परमात्मन्! तू (सहस्रवर्चसम्) बहुत तेजस्वी (स्वाभुवम्) शोभन सत्ता वाले (रयिम्) ऐश्वर्य—मोक्षैश्वर्य को (अस्मे आधारय) हमारे लिये—हमारे अन्दर आधान कर॥८॥

१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः। सोमो हिन्वे परावति॥९॥

पदपाठः— अभि प्रिया दिवः कविः विप्रः वि प्रः सः धारया सुतः सोमः हिन्वे परावति॥९॥

अन्वयः—सः-कविः विप्रः सोमः धारया सुतः दिवः प्रिया परावति अभि हिन्वे॥

पदार्थः—(सः-कविः) वह क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (विप्रः) विविध प्रकार से तृप्त करने वाला (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (धारया सुतः) स्तुतिवाणी[1] द्वारा साक्षात् किया हुआ (दिवः) मोक्षधाम के (प्रिया) प्रिय—कमनीय सुखों को (परावति) दूर स्थान में (अभि) कहीं भी जहाँ स्तुति करी हों उन्हें लक्ष्य कर (हिन्वे) प्रेरित करता है॥९॥

चतुर्थ खण्ड

पञ्चर्च

ऋषिः—उचथ्यः (वक्ता-स्तुतिकर्ता)। देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२०५. उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः। वाणस्य चोदया पविम्॥१॥

पदपाठः— उत् ते शुष्मासः ईरते सिन्धोः ऊर्म्मेः इव स्वनः वाणस्य चोदय पविम्॥१॥

अन्वयः—ते शुष्मासः उदीरते सिन्धोः-ऊर्मेः-इव स्वनः वाणस्य पविं चोदय॥

पदार्थः—(ते) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तेरे (शुष्मासः) रचना सम्बन्धी बलप्रभाव (उदीरते) उठ रहे हैं—संसार में प्रवृत्त हो रहे हैं (सिन्धोः-ऊर्मेः-इव स्वनः) स्यन्दनशील समुद्र की तरङ्गों के प्रभावक शब्द समान, यह तेरा एक कार्य है शिल्पकलात्मक, दूसरा ज्ञानात्मक कार्य है (वाणस्य) अपने शब्द भण्डार वेदरूप[2] वाद्य—बाजे की (पविं चोदय) वाणी—मन्त्रवाणी

---

१. "धारा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

२. "वण शब्दे" [भ्वादि०]। "अन्तो वै वाणः-वाद्यानाम्" [काठ० ३.२.६]।

स्तुति मधुरवाणी को[1] प्रेरित कर—करता है—उपासकों के अन्दर सफलरूप में प्रेरित कर रहा है ॥ १ ॥

१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः। यदव्य ऐषि सानवि ॥ २ ॥

पदपाठः— प्रसवे प्र सवे ते उत् ईरते तिस्रः वाचः मखस्युवः यत् अव्ये एषि सानवि ॥ २ ॥

अन्वयः—प्रसवे ते तिस्रः-वाचः मखस्युवः उदीरते यद् अव्यः सानवि ॥

पदार्थः—(प्रसवे) सृष्टि के उत्पत्ति समय में (ते) तेरी (तिस्रः-वाचः) ऋग्यजुः सामरूप या स्तुति प्रार्थना उपासना तीन वाणियाँ (मखस्युवः) अध्यात्मयज्ञ को चाहती हुईं[2] (उदीरते) उद्‌भूत होती हैं (यद्) जब कि तू परमात्मन् (अव्यः सानवि) पृथिवी के[3] ऊँचे स्थान—त्रिविष्टप्—तिब्बत पर तथा पार्थिव देह के सम्भजनीय हृदय या अन्तःकरण में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१२०७. अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— अव्याः वारैः परि प्रियम् हरिम् हिन्वन्ति अद्रिभिः पवमानम् मधुश्चुतम् मधु श्चुतम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—(मधुश्चुतं पवमानम) अद्रिभिः-'अद्रयः' प्रियं हरिम् अव्याः-वारैः परिहिन्वन्ति ॥

पदार्थः—(अद्रिभिः-'अद्रयः') श्लोककर्ता—स्तुतिकर्ताजन[4] (प्रियं हरिम्) प्रिय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्त एकरूप परमात्मा को (अव्याः-वारैः) पृथिवी—पार्थिव देह के वरणीय शुद्ध साधनों—मन, वाणी आदि द्वारा स्तुति करके (परिहिन्वन्ति) परिवृद्ध[5] करते हैं—साक्षात् करते हैं ॥ ३ ॥

१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे। अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

पदपाठः— आ पवस्व मदिन्तम पवित्रम् धारया कवे अर्कस्ययोनिमासदम् ॥ ४ ॥

---

१. "पविः-वाङ्नाम" [निघं० ३.११]।
२. "मखो यज्ञः" [निघं० ३.२७] "यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्" [ऋ० १०.७१.३]
३. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.३३]।
४. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] विभक्तिव्यत्ययः।
५. "हि गतिवृद्धयोः" [स्वादिः]।

अन्वयः—मदिन्तम कवे अर्कस्य पवित्रं योनिम्-आसदम् धारया-आपवस्व ॥

पदार्थः—(मदिन्तम कवे) हे अत्यन्त हर्षकर क्रान्तदर्शी सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (अर्कस्य पवित्रं योनिम्-आसदम्) प्राण[1] के पवित्र घर[2] अथवा अर्चनीय के अपने पवित्र घर में बैठने का (धारया-आपवस्व) धारा—आनन्दधारा रूप से प्राप्त हो ॥ ४ ॥

१२०९. **स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः। एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥**

पदपाठः— **सः पवस्व मदिन्तम गोभिः अञ्जानः अक्तुभिः आ इन्द्रस्य जठरम् विश ॥ ५ ॥**

अन्वयः—मदिन्तम सः अक्तुभिः-गोभिः अञ्जानः इन्द्रस्य जठरम्-आविश ॥

पदार्थः—(मदिन्तम) हे अत्यन्त हर्षप्रद सोम—परमात्मन्! तू (सः) वह (अक्तुभिः-गोभिः) कमनीय स्तुति वाणियों से (अञ्जानः) प्रसिद्ध हुआ (इन्द्रस्य जठरम्-आविश) उपासक आत्मा के अन्दर[3] आविष्ट हो—प्राप्त हो ॥ ५ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्षधाम का इच्छुक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२१०. **अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अयावीतीपरिस्रव ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९५)

१२११. **पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम्। अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **पुरः सद्यः स द्यः इत्थाधिये इत्था धिये दिवोदासाय दिवः दासाय शम्बरम् शम् बरम् अध त्यम् तुर्वशम् यदुम् ॥ २ ॥**

---

१. "प्राणो वा अर्कः" [श० १०.४.१.२३]।

२. "योनिः-गृहनाम" [निघं० ३.४]।

३. "मध्यं वै जठरम्" [श० ७.१.१.२२]।

अन्वयः—पुरः सद्यः इत्थाधिये दिवोदासाय त्यं शम्बरम् तुर्वशम् अध यदुम् ॥

पदार्थः—(पुरः सद्यः) प्रथम तुरन्त (इत्थाधिये) पूर्वोक्त सत्यप्रज्ञा वाले[1] (दिवोदासाय) मोक्षदर्शक[2] उपासक के लिये (त्यं शम्बरम्) उस विरोधी कल्याण के वारक रोकने वाले अज्ञानान्धकार को (तुर्वशम्) हिंसा में शमन करने वाले द्वेष को[3] (अध) और (यदुम्) जो भी हो उससे अपने को भरके ऐसे कामभाव को (अवाहन्ः)[4] सोम परमात्मा नष्ट करता है ॥ २ ॥

१२१२. **परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्। क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **परि नः अश्वम् अश्वविंत् अश्व वित् गोमदिन्दोहिरण्यवत् क्षर सहस्रिणीः इषः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्दो अश्ववित् नः अश्वम् गोमत् हिरण्यवत् सहस्रिणीः-इषः परिक्षर ॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (अश्ववित्) व्यापनशील मन को—मनोभाव को जानने वाला है (नः) हमारे लिये (अश्वम्) व्यापनशील मन को (गोमत्) स्तुति वाणी वाला (हिरण्यवत्) यश वाला यशस्वी[5] तथा (सहस्रिणीः-इषः) सहस्रों में ऊँची कामनाओं को भी (परिक्षर) सम्पन्न कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्षधाम का इच्छुक) ॥

१२१३. **अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।**
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

पदपाठः— **अपघ्नन्पवतेमृधः ॥ १ ॥**

अन्वयः—सोमः मृधः-अपघ्नन् अराव्णः अप-अपघ्नन् इन्द्रस्य निष्कृतम्-गच्छन् पवते ॥

पदार्थः—(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मृधः-अपघ्नन्) पापों को[6] दूर

---

१. "इत्था सत्यनाम" [निघं० ३.१०]।
२. अलुक् समासः "दश दर्शने" [चुरादिः]।
३. "तुर्वी हिंसायाम्" ततः अच् कर्तरि। तुवेशेते डः।
४. पूर्वतोऽध्याहृतम।
५. "यशो वै हिरण्यम्" [ऐ० ७.२८.७]।
६. "पाप्मा वै मृधः" [श० ६.३.३.८]।

करता हुआ (अराव्णः) अनृत प्रशंसाओं[1] को (अप-अपघ्नन्) दूर करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतम्-गच्छन्) उपासक आत्मा के संस्कृत शुद्ध हृदय को गति देता हुआ (पवते) धारारूप में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः। रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

पदपाठः— महः नः रायः आ भर पवमान जहि मृधः रास्व इन्दो वीरवत् यशः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्दो पवमान नः महः-रायः आभर मृधः जहि वीरवत्-यशः-रास्व ॥

पदार्थः—(इन्दो पवमान) हे आनन्दरसपूर्ण धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (नः) हमारे लिये (महः-रायः) महती—ऊँची सम्पत्तियाँ जीवन्मुक्तों वाली (आभर) आभरित कर (मृधः जहि) हमारे प्रति अन्यों के पापों को नष्ट कर (वीरवत्-यशः-रास्व) स्वात्माधार बलवाले यश को प्रदान कर ॥ २ ॥

१२१५. न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्। यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥

पदपाठः— न त्वा शतम् च न ह्रुतः राधः दित्सन्तम् आ मिनन् यत् पुनानः मखस्यसे ॥ ३ ॥

अन्वयः—त्वा राधः-दित्सन्तम् शतञ्चन ह्रुतः न-आमिनन् यत् पुनानः-मखस्यते ॥

पदार्थः—(त्वा राधः-दित्सन्तम्) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ धन देते हुए को (शतञ्चन) सौ भी (ह्रुतः) कुटिल जन (न-आमिनन्) नहीं हिंसित कर सकते हैं—नहीं टकराते हैं (यत् पुनानः-मखस्यते) जब कि दोष शोधन करता हुआ अध्यात्मयज्ञ निर्विघ्न कराना चाहता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—निध्रुविः (नियत धारणा वाला एकाग्र उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२१६. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः। हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

---

१. अराव्णो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति [ता० ६.१०.७]।

पदपाठः— **अयापवस्वधारया ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९३)

१२१७. **अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अयुक्त सूरः एतशम् पवमानोमनावधि अन्तरिक्षेण-यातवे ॥ २ ॥**

अन्वयः—सूरः पवमानः मनौ-अधि एतशम्-अयुक्त अन्तरिक्षेण यातवे ॥

पदार्थः—(सूरः) सरणशील—व्यापनशील (पवमानः) आनन्दधारारूप में आने वाला परमात्मा (मनौ-अधि) विद्वान् उपासक[1] के अन्दर (एतशम्-अयुक्त) मनरूप घोड़े को जोड़ दे—लगा दे (अन्तरिक्षेण यातवे) आत्मा—अध्यात्ममार्ग से[2] जाने को ॥ २ ॥

१२१८. **उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे। इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **उत त्याः हरितः रथे सूरः अयुक्त यातवे इन्दुः इन्द्रः इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—उत सूरः त्याः-हरितः रथे-अयुक्त इन्दुः-इन्द्रः-इति ब्रुवन् ॥

पदार्थः—(उत) हाँ (सूरः) सरणशील—व्यापनशील परमात्मा (त्याः-हरितः) उन हरणशील—उपासकों का हरने आकर्षित करने वाले आनन्दप्रवाहों को (रथे-अयुक्त) रमणीय अध्यात्मयज्ञ में जोड़ता है (इन्दुः-इन्द्रः-इति ब्रुवन्) तू इन्द्र है—उपासक आत्मा है मैं इन्दु हूँ—उपास्य हूँ—उपास्य हूँ मैं आ गया हूँ इस प्रकार कहता हुआ ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१२१९. **अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्। यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥**

---

१. "ये विद्वांसस्ते मनवः" [श० ८.६.३.१८]।

२. "आत्मान्तरिक्षम्" [काठ० १६.२]।

पदपाठः— **अग्निम् वः देवम् अग्निभिः सजोषाः स जोषाः यजिष्ठम् दूतम् अध्वरे कृणुध्वम् यः मर्त्येषु निध्रुविः नि ध्रुविः ऋतावा तपुमूर्धा तपुः मूर्द्धा घृतान्नः घृत अन्नः पावकः ॥ १ ॥**

अन्वयः—वः ('यूयम्')-अग्निभिः ('अग्नयः') सजोषाः यजिष्ठम् दूतम् अग्निम् अध्वरे कृणुध्वम् यः मर्त्येषु निध्रुविः ऋतावा तपुः मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥

पदार्थः—(वः 'यूयम्'-अग्निभिः 'अग्नयः')[1] तुम ज्ञानी उपासको! (सजोषाः) समान साथी—ज्ञान चेतनता में समानरूप (यजिष्ठम्) अत्यन्त याजक—अध्यात्मयज्ञ के सम्पादक प्रसारक (दूतम्) प्रेरक (अग्निम्) परमात्मा को (अध्वरे कृणुध्वम्) अध्यात्मयज्ञ में प्रकाशित करो (यः) जो (मर्त्येषु) तुम ज्ञानी मनुष्यों में (निध्रुविः) नित्य रहने वाला तुम्हारे अन्दर व्यापक (ऋतावा) अध्यात्मयज्ञ का आधार (तपुः) तेजस्वी (मूर्धा) मूर्धारूप (घृतान्नः) तेजस्वरूप (पावकः) शोधक है ॥ १ ॥

१२२०. **प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्। आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥**

पदपाठः— **प्रोथत् अश्वः न यवसे अविष्यन् यदा महः संवरणात् सम् वरणात् व्यस्थात् वि अस्थात् आत् अस्य वातः अनु वाति शोचिः अध स्म ते व्रजनम् कृष्णम् अस्ति ॥ २ ॥**

अन्वयः—अश्वः-न यवसे प्रोथत् यदा अविष्मन् महः संवरणात्-व्यवस्थात् आत् वातः-अस्य-अनुवाति अधस्म ते शोचिः कृष्णं वृजनम्-अस्ति ॥

पदार्थः—(अश्वः-न यवसे प्रोथत्) जैसे घोड़े को घास भोजन के लिये जहाँ तहाँ परिप्राप्त होता है[2] (यदा) जब (अविष्मन्) परमात्मा उपासक की रक्षा करने के हेतु (महः संवरणात्-व्यवस्थात्) महान् मोक्ष स्थान से अपने कृपापात्र उपासक आत्मा के अन्दर व्यवस्थित—साक्षात् हो जाता है (आत्) अनन्तर (वातः-अस्य-अनुवाति) जब उपासक आत्मा[3] इस परमात्मा के अनुकूल हो जाता है (अधस्म) तब ही (ते शोचिः कृष्णं वृजनम्-अस्ति) तेरी ज्योति आकर्षक बल[4] है ॥ २ ॥

---

१. उभयत्र विभक्तिव्यत्ययः।
२. "प्रोथृ पर्याप्तौ" [भ्वादि०]।
३. "वातः-अयमात्मा" [काठ० ७.२४]।
४. "वृजनं बलनाम" [निघं० २.९]।

१२२१. **उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः। अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्॥ ३॥**

पदपाठः— **उत् यस्य ते नवजातस्य नव जातस्य वृष्णः अग्ने चरन्ति अजराः अ जराः इधानाः अच्छ द्याम् अरुषः धूमः सम् दूतः अग्ने ईयसे हि देवान्॥ ३॥**

अन्वयः—अग्ने ते यस्य नवजातस्य वृष्णः अजराः–ईधानाः–उच्चरन्ति अरुषः–धूमः–अच्छ द्याम्–एषि दूतः–देवान् हि समीयसे॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (ते यस्य नवजातस्य वृष्णः) जिस तुझ साक्षात् सुखबर्षक के (अजराः–ईधानाः–उच्चरन्ति) अजर ज्ञान ज्योतियाँ उपासक के ऊपर—उपासक के अन्दर उद्भूत होती हैं (अरुषः–धूमः–अच्छद्याम्–एषि) आरोचमान काम आदि का कम्पाने वाला हो उपासक को अमृतमोक्षधाम की ओर ले जाती हैं (दूतः–देवान् हि समीयसे) प्रेरक हुआ मुमुक्षु उपासकों को प्राप्त हो जाता है[१]॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सुकक्षः श्रुतकक्षो वा (अच्छी कक्षा में वर्त्तमान या सुनली है अध्यात्म कक्षा जिसने ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२२२. **तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्॥ १॥**

पदपाठः— **तमिन्द्रंवाजयामसि॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११९)

१२२३. **इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥ २॥**

पदपाठः— **इन्द्रः सः दामने कृतः ओजिष्ठः सः बले हितः द्युम्नी श्लोकी सः सोम्यः॥ २॥**

अन्वयः—सः–इन्द्रः दामने कृतः सः–ओजिष्ठः बले हितः सः–द्युम्नी श्लोकी सोम्यः॥

---

१. एषि–अन्तर्गत णिच्।

पदार्थः—(सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा, अतः (दामनेकृतः) कर्मफल प्रदान करने में समर्थ (सः-ओजिष्ठः) वह अत्यन्त बलवान् अतः (बले हितः) सृष्टि के रचन, धारणरूप बलकार्य करने के निमित्त योग्य (सः-द्युम्नी श्लोकी सोम्यः) वह यशस्वी प्रशंसनीय उपासनारस प्राप्त करने योग्य ॥ २ ॥

१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— गिरा वज्रः न सम्भृतः सम् भृतः सबलः स बलः अनपच्युतः अन् अपच्युतः ववक्षे उग्रः अस्तृतः अ स्तृतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—गिरा वज्रः-न सम्भृतः सः-बलः अनपच्युतः उग्रः-अस्तृतः ववक्ष ॥

पदार्थः—(गिरा) वह स्तुति वाणी से (वज्रः-न सम्भृतः) वज्रसमान दुःखों से वर्जित वाला सम्यक् धारण करने योग्य (सः-बलः) वह बलवान् (अनपच्युतः) अपच्युत न करने योग्य (उग्रः-अस्तृतः) तेजस्वी अहिंसनीय (ववक्ष) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उचथ्यः (वाक्-स्तुति करने में कुशल[1]) ॥ देवता—सोम (शान्त परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

पदपाठः— अध्वर्योअद्रिभिःसुतम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९९)

१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत। पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

पदपाठः— तव त्य इन्दो अन्धसः देवाः मधोः वि आशत पवमानस्यमरुतः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्दो तव पवमानस्य-अन्धसः-मधोः त्ये मरुतः-देवाः-व्याशत ॥

---

१. "वागुक्थम्" [ष० १.५]।

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! (तव पवमानस्य-अन्धसः-मधोः) तुझ आध्यानीय उपासनीय धारारूप में प्राप्त होते हुए मधुमय को[1] (त्ये मरुतः-देवाः-व्याशत) वे मुमुक्षु[2] देव उपासकजन विशेष रूप से प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— दिवः पीयूषम् उत्तमम् सोममिन्द्रायवज्रिणे सुनोत मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—दिवः-उत्तमं पीयूषं मधुमत्तमं सोमम् वज्रिणे-इन्द्राय सुनोत ॥

पदार्थः—(दिवः-उत्तमं पीयूषं मधुमत्तमं सोमम्) मोक्षधाम के स्वत्त्वरूप उत्तम अमृत अत्यन्त मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा को (वज्रिणे-इन्द्राय) ओजस्वी[3] आत्मा के लिये (सुनोत) हे उपासको साक्षात् करो ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कविः (विद्वान् मेधावी उपासक) ॥ देवता—सोम (शान्त परमात्मा) ॥ छन्दः—जगती ॥

१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥

पदपाठः— धर्त्तादिवःपवतेकृत्व्योरसः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५८)

१२२९. शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वा ३ः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु। इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

पदपाठः— शूरः न धत्ते आयुधा गभस्त्योः स्वा३रिति सिषासन् रथिरः गविष्टिषु गी इष्टिषु इन्द्रस्य शुष्मम् ईरयन् अपस्युभिः इन्दुः हिन्वानः अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

अन्वयः—गभस्त्योः-शूरः-न-आयुधा धत्ते रथिरः-इन्दुः-स्वः-गविष्टिषु-सिषासन् इन्द्रस्य-शुष्मम्-ईरयन् अपस्युभिः-मनीषिभिः हिन्वानः-अज्यते ॥

---

१. "द्वितीयार्थे षष्ठी"। २. "मरुतो देवविशः" [श० २.७.१.१२]।
३. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]।

पदार्थः—(गभस्त्योः-शूरः-न-आयुधा धत्ते) जैसे शूर पराक्रमी हाथों में अस्त्रों को धारण करता है, ऐसे (रथिरः-इन्दुः-स्वः-गविष्टिषु-सिषासन्) विश्वरथ का स्वामी[1] परमात्मा स्तुतिवाणियों से इष्टि-अध्यात्मयज्ञ जिनका है उन उपासकों के निमित्त मोक्षानन्द को देने की इच्छा रखता हुआ (इन्द्रस्य-शुष्मम्-ईरयन्) उपासक आत्मा के बल को प्रेरित करता हुआ (अपस्युभिः-मनीषिभिः) अध्यात्मकर्म योगाभ्यास चाहनेवाले चिन्तकों उपासकों के द्वारा (हिन्वानः-अज्यते) प्रेरित हुआ साक्षात् होता है ॥ २ ॥

१२३०. **इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश । प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रस्य सोम पवमानः ऊर्म्मिणा तविष्यमाणः जठरेषु आ विश प्र नः पिन्व विद्युत् वि द्युत् अभ्रा इव रोदसीइति धिया नः वाजान् उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—पवमान सोम ऊर्मिणा तविष्यमाणः इन्द्रस्य जठरेषु आविश नः प्र पिन्व विद्युद्-अभ्रा-इव रोदसी नः शश्वतः-वाजान् धिया उपमाहि ॥

पदार्थः—(पवमान सोम) हे आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाले शान्त परमात्मन्! तू (ऊर्मिणा तविष्यमाणः) अपनी आनन्दधारा से गति करता हुआ बहता हुआ[2] (इन्द्रस्य) आत्मा के (जठरेषु) मध्य[3] मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार में (आविश) आविष्ट हो, बस जा (नः प्र पिन्व) हमें अपनी आनन्दधाराओं से सींच—भरपूर कर (विद्युद्-अभ्रा-इव रोदसी) जैसे विद्युत् मेघों को—मेघ वर्षाओं को भूमि आकाश में सींच देती है (नः शश्वतः-वाजान् धिया उपमाहि) हमारे लिये नित्य अमृत अन्न भोगों को प्रज्ञा से भेंट प्रदान कर ॥ ३ ॥

तृतीय द्वृच

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्मा में अतन-गमन करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती ॥

१२३१. **यदिन्द्र प्रागपागु दङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यदिन्द्रप्रागपागुदक् ॥ १ ॥**

---

१. ''तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति रथस्य हैतद्रूपम्'' [जै० २.१२]।

२. ''तु गतिवृद्धिहिंसासु'' [अदादि०]।

३.''मध्यं वै जठरम्'' [श० ७.१.१.२२]।

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७९)

१२३२. **यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा। कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि॥ २ ॥**

पदपाठः— **यत् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे इन्द्र मादयसे सचा कण्वासः त्वा स्तोमेभिः ब्रह्मवाहसः ब्रह्म वाहसः इन्द्र आ यच्छन्ति आगहि ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्र यत्-वा रुमे रुशके श्यावके कृपे सचा मादयसे ब्रह्म वाहसः कण्वासः स्तोमेभिः त्वा-आयच्छन्ति इन्द्र-आयाहि ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (यत्-वा) और जो (रुमे) स्तुतिकर्ता[1] (रुशके) ज्ञानज्वलित[2] (श्यावके) अध्यात्म मार्ग में चलने वाले (कृपे) समर्थ—आत्मबलवाले उपासक के निमित्त (सचा मादयसे) समकाल या समभाव से उन्हें हर्षित करता है क्योंकि (ब्रह्म वाहसः कण्वासः स्तोमेभिः) ब्रह्मस्तोत्र समर्पित करने वाले मेधावी[3] उपासक स्तुतिवचनों से (त्वा-आयच्छन्ति) तूझे अपनी ओर आकर्षित करते हैं अतः (इन्द्र-आयाहि) परमात्मन् उपासक के हृदय में आ—साक्षात् हो ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

१२३३. **उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ १ ॥**

पदपाठः— **उभयंꣳशृणवच्चनः॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २९०)

१२३४. **तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः। उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः॥ २ ॥**

---

१. ''रुश शब्दे'' [अदादि०] ततः-मक्-डित् औणादिकः।

२. ''रुशत्-रोचते ज्वलितकर्मणः'' [निरु० ६.१४]।

३. ''कण्वः-मेधावी'' [निघं० ३.१५]।

पदपाठः— तम् हि स्वराजम् स्व राजम् वृषभम् तम् ओजसा धिषणेइति निष्टतक्षतुः निः ततक्षतुः उत उपमानाम् प्रथमः नि सीदसि सोमकामम् सोम कामम् हि ते मनः ॥ २ ॥

अन्वयः—तम् ओजसा स्वराजं वृषभं हि धिषणे निष्टतक्षतुः उत उपमानां प्रथमः-निषीदसि ते मनः सोम कामं हि ॥

पदार्थः—(तम्) उस तुझ (ओजसा स्वराजं वृषभं हि) बल से स्वयं राजमान कामवर्षक इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (धिषणे) स्तुति और विद्या[1] (निष्टतक्षतुः) निष्पन्न करती है—साक्षात् कराती है (उत) अपि च (उपमानां प्रथमः-निषीदसि) उपासना योग्यों में[2] प्रमुख—सर्वोपरि तू निश्चित इष्ट प्रसिद्ध होता है (ते मनः सोम कामं हि) तेरा मन सोम की—उपासनारस की कामना करने वाला है ॥ २ ॥

अष्टम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त स्थिर योगी) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ १ ॥

पदपाठः— पवस्वदेवआयुषक् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८३)

१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमा विश ॥ २ ॥

पदपाठः— पवमान नि तोशसे रयिम् सोम श्रवाय्यम् इन्दो समुद्रम् सम् उद्रम् आ विश ॥ २ ॥

अन्वयः—पवमान सोम इन्दो श्रवाय्यं रयिं नितोशसे समुद्रम्-आविश ॥

पदार्थः—(पवमान सोम इन्दो) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप रसीले परमात्मन्! तू (श्रवाय्यं रयिं नितोशसे) श्रवणीय—यशोधन को अपने अन्दर रख—रखता है, तू (समुद्रम्-आविश) मुझ उपासक के मन को—में[3]

---

१. वाग्वै धिषणा [मैं० ३.१.८] धिषणा वाङ्नाम [निघं० १.११] विद्या वै धिषणा [मैं० ४.२.१]।

२. निर्धारणे षष्ठी।

३. मनो वै समुद्रः [श० ७.५.२.५२]।

आविष्ट हो ॥ २ ॥

१२३७. **अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अपघ्नन्पवसेमृधः ॥ ३ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४९२)

द्वितीय तृच

ऋषिः—अम्बरीषः—(अध्यात्मान्न ग्राहक हृदयाकाश को प्रेरित करने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१२३८. **अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् । इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अभीनोवाजसातमम् ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४९)

१२३९. **वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः । नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ २ ॥**

पदपाठः— **वयम् ते अस्य राधसः वसोः वसो पुरुस्पृहः पुरु स्पृहः नि नेदिष्ठतमाः इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो अध्रि गो ॥ २ ॥**

अन्वयः—अध्रिगो वसो अस्य ते वसो पुरुस्पृहः-राधसः सुम्ने वयम्-इषः-नेदिष्ठतमाः-निस्याम ॥

पदार्थः—(अध्रिगो वसो) हे अधृतगमन[१] निर्बाध व्याप्त गति वाले वासाधार परमात्मन्! (अस्य ते वसो पुरुस्पृहः-राधसः) इस तुझ बसाने वाले बहुत कामना करने योग्य सिद्धिप्रद के (सुम्ने) सुख शान्ति के निमित्त[२] (वयम्-इषः-नेदिष्ठतमाः-निस्याम) हम प्रार्थी निरन्तर अत्यन्त निकट रहें ॥ २ ॥

१२४०. **परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः । धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **परि स्यः स्वानः अक्षरत् इन्दुः अव्ये मदच्युतः मद च्युतः धारा यः ऊर्ध्वः अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥ ३ ॥**

---

१. "अध्रिगो अधृतगमन" [निरु० ५.१०]। २. "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३.६]।

अन्वयः—स्यः स्वानः-मदच्युतः गव्ययुः इन्दुः अव्ये परि-अक्षरत् भ्राजा-न-धारा ऊर्ध्वः अध्वरे याति ॥

पदार्थः—(स्यः स्वानः-मदच्युतः) वह निष्पन्न—साक्षात् हुआ हर्ष आनन्दरस झिर रहा जिससे ऐसा (गव्ययुः) स्तुति स्नेह को चाहने वाला (इन्दुः) रसीला सोम परमात्मा (अव्ये परि-अक्षरत्) रक्षणीय हृदय में परिपूर्णरूप से प्राप्त होता है (भ्राजा-न-धारा) चमकती विद्युतरङ्ग की भाँति अपनी आनन्दधारा से (ऊर्ध्वः) उछलता सा (अध्वरे याति) ध्यान यज्ञ में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण त्रास को क्षीण करने वाले जप स्वाध्याय कर्ता दो ऋषि)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥

१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥ १ ॥

पदपाठः— पवस्वसोम॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४२९)

१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः॥ २ ॥

पदपाठः— शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शम् च प्रजाभ्यः प्र जाभ्यः॥ २ ॥

अन्वयः—सोम शुक्रः देवेभ्यः दिवे पृथिव्यै च प्रजाभ्यः शं पवस्व ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (शुक्रः) शुभ्र-दीप्तिमान् हुआ (देवेभ्यः) उपासकजनों के लिये उनके (दिवे पृथिव्यै) प्राण के लिये[1] शरीर के लिये[2] (च) और (प्रजाभ्यः) इन्द्रियों के लिये[3] (शं पवस्व) कल्याण कर होकर प्राप्त हो ॥ २ ॥

१२४३. दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व॥ ३ ॥

पदपाठः— दिवः धर्त्ता असि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्म्मन् वि धर्म्मन् वाजी पवस्व॥ ३ ॥

---

१. "प्राणो द्युलोकः" [श० १४.४.३.११]।
२. "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २.३.३]।
३. "इन्द्रियं वै प्रजाः" [काठ० २७.२]।

अन्वयः—शुक्रः-पीयूषः-वाजी दिवः-धर्ता-असि सत्ये विधर्मन् पवस्व ॥

पदार्थः—(शुक्रः-पीयूषः-वाजी) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू शुभ्र-तेजस्वी अमृतरूप अमृत अन्नभोग वाला (दिवः-धर्ता-असि) मोक्षधाम का धारक है (सत्ये विधर्मन् पवस्व) सत्यस्वरूप विशेष धर्म सम्पन्न उपासक आत्मा में प्राप्त हो ॥ ३ ॥

नवम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उशनाः (स्वकल्याणार्थ परमात्मसङ्गति का इच्छुक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥

पदपाठः— प्रिष्ठंवोअतिथिम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५)

१२४५. कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता। नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

पदपाठः— कविम् इव प्रशंस्यम् प्र शंस्यम् यम् देवासः इति द्विता नि मर्त्त्येषु आदधुः आ दधुः ॥ २ ॥

अन्वयः—यं प्रशस्यं कविम्-इव इति द्विता मर्त्येषु-देवासः-नि-आदधुः ॥

पदार्थः—(यं प्रशंस्यं कविम्-इव) जिस परमात्मरूप अग्नि को प्रशंसा योग्य कवि—उपदेष्टा ज्ञानदाता की भाँति भी (इति द्विता) इस दो प्रकार से—प्रिय मित्र जैसा और प्रशंसा योग्य उपदेष्टा रूप से आत्मा के अन्दर साथी और जगन्नियन्ता विराट् रूप में (मर्त्येषु-देवासः-नि-आदधुः) मनुष्यों में विद्वान् जन या जीवन्मुक्त ऋषिजन प्रकाशित करते हैं—वर्णित करते हैं ॥ २ ॥

१२४६. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुही गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वम् यविष्ठः दाशुषः नॄन् पाहि शृणुहि गिरः रक्ष तोकम् उत त्मना ॥ ३ ॥

अन्वयः—यविष्ठ त्वं दाशुषः-नृन्-पाहि गिरः शृणुधि उत त्मना तोकं रक्ष ॥

पदार्थः—(यविष्ठ) हे अत्यन्त मिलने वाले[1] आत्मभाव से अपनाने वाले परमात्मन्! तू (त्वं दाशुषः-नृन्-पाहि) स्वात्मदान करने वाले मुमुक्षुजनों की पालना कर (गिरः शृणुधि) स्तुति को सुन—स्वीकार कर (उत) अपि-और (त्मना तोकं रक्ष) अपने पुत्र रूप आत्मा की रक्षा कर सत्सङ्ग प्रदान करके ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधावाला[2]) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥

१२४७. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य। गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

पदपाठः— एन्द्रनोगधिप्रिय ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३९३)

१२४८. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

पदपाठः— अभि हि सत्य सोमपाः सोम पाः उभेइति बभूथ रोदसीइति इन्द्र असि सुन्वतः वृधः पतिः दिवः ॥ २ ॥

अन्वयः—सत्य सोमपाः-इन्द्र उभे रोदसी-अभि बभूविथ हि दिवः पतिः सुन्वतः-वृधः ॥

पदार्थः—(सत्य सोमपाः-इन्द्र) हे सत्यस्वरूप उपासनारस को पान करने वाले—स्वीकार करने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (उभे रोदसी-अभि बभूविथ हि) दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को अभिभूत किए हुए उनका स्वामी बना हुआ है (दिवः पतिः) मोक्षधाम का पति है[3] (सुन्वतः-वृधः) उपासनारस सम्पादन करने वाले का वर्धक है—बढ़ाने वाला है ॥ २ ॥

१२४९. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वम् हि शश्वतीनाम् इन्द्र धर्त्ता पुराम् असि हन्ता दस्योः मनोः वृधः पतिः दिवः ॥ ३ ॥

---

१. ''यू मिश्रणे'' ''योता-अतिशयेन यविष्ठः'।

२. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।

३. ''त्रिपादस्यामृतं'' [ऋ० १०.९०.३]।

अन्वयः—इन्द्र त्वं हि शश्वतीनां पुरां धर्ता–असि दस्योः–हन्ता मनोः–वृधः दिवः पतिः ॥

पदार्थः—(इन्द्र त्वं हि) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू ही (शश्वतीनां पुरां धर्ता–असि) शाश्वतिक या श्रेष्ठ[1] आत्माओं[2] मुमुक्षुओं—जीवन्मुक्तों का धारणकर्ता है (दस्योः–हन्ता) क्षयकर्ता—कामादि विघ्नों का हननकर्ता (मनोः–वृधः) मननशील जन का वर्धक (दिवः पतिः) मोक्षधाम का पति है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—जेता (वासनाओं पर जय पाने वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

१२५०. **पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत। इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **पुराम्भिन्दुर्युवाकविः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३५९)

१२५१. **त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्। त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **त्वम् बलस्य गोमतः अप अवः अद्रिवः अ द्रिवः बिलम् त्वाम् देवाः अबिभ्युषः अ बिभ्युषः तुज्यमानासः आविषुः ॥ २ ॥**

अन्वयः—अद्रिवः–त्वम् गोमतः–बलस्य बिलम् अपावः देवाः तुज्यमानासः अबिभ्युषः त्वाम्–आविषुः ॥

पदार्थः—(अद्रिवः–त्वम्) हे अदीर्ण शक्ति वाले परमात्मन्! तू (गोमतः–बलस्य बिलम्) स्तुतिवाणी वाले संवृत स्थान—अन्तःकरण—मन के प्राण द्वार को (अपावः) खोल दे जिससे (देवाः) मुमुक्षुजन या देववृत्तियाँ—सद्वृत्तियाँ (तुज्यमानासः) कामादि पापों या पापवृत्तियों से पीड़ित हुए (अबिभ्युषः) निडर हुए (त्वाम्–आविषुः) तुझे प्राप्त हो सकें ॥ २ ॥

१२५२. **इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत। सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥**

---

१. "धीराणां शश्वताम्" [अथर्व० २०.१२८.४]।

२. "आत्मा वै पूः" [श० ७.५.१.२१]।

पदपाठः— इन्द्रम् ईशानम् ओजसा अभिस्तोमैरनूषत सहस्रम् यस्य रातयः उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥

अन्वयः—ईशानम्-इन्द्रम् ओजसा स्तोमैः-अभि-अनूषत यस्य रातयः सहस्रं सन्ति उत वा भूयसीः ॥

पदार्थः—(ईशानम्-इन्द्रम्) हे उपासको! विश्व के स्वामित्व करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा की (ओजसा) आत्मबल के साथ (स्तोमैः-अभि-अनूषत) स्तुतिसमूहों द्वारा निरन्तर स्तुति करो (यस्य रातयः सहस्रं सन्ति) जिसके धन—तृप्तिकारक साधन सहस्रों हैं (उत वा) अपि च—और भी (भूयसीः) बहुतेरी लाखों प्रकार की दान प्रवृत्तियाँ—कृपा दृष्टियाँ हैं ॥ ३ ॥

इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पराशरः (पर-विरोधी काम आदि को नष्ट करने वाला उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥ १॥

पदपाठः— अक्रान्त्समुद्रःप्रथमेविधर्मन्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२९)

१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः। मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम॥ २॥

पदपाठः— मत्सि वायुम् इष्टये राधसे नः मत्सि मित्रा मि त्रा वरुणा पूयमानः मत्सि शर्द्धः मारुतम् मत्सि देवान् मत्सि द्यावा पृथिवीइति देव सोम॥ २॥

अन्वयः—सोमदेव पूयमानः नः–इष्टये राधसे वायुं मत्सि मित्रावरुणा मत्सि मारुतं शर्धः–मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी मत्सि॥

पदार्थः—(सोमदेव) हे शान्तस्वरूप परमात्मदेव (पूयमानः) तू योगाभ्यास द्वारा साक्षात् हुआ (नः–इष्टये राधसे) हमारी आभ्युदयिक कामना के लिये तथा नैःश्रेयसिक—मोक्षसिद्धि के लिये (वायुं मत्सि) आयु को[1] हर्ष देने वाला बना[2] (मित्रावरुणा मत्सि) प्राण–अपान को[3] श्वास उच्छ्वास को हर्ष देने वाले कर दे (मारुतं शर्धः–मत्सि) प्राणों के बल[4] को—जीवन शक्ति हर्ष देने वाला बना (देवान् मत्सि) इन्द्रियों को हर्षप्रद बना (द्यावापृथिवी मत्सि) ज्ञानाधार मन को और रसाधार शरीर को[5] हर्ष देने वाला कर दे॥ २॥

---

१. ''आयुर्वा एष यद् वायुः'' [ऐ० आ० १.५]।
२. ''मत्सि मादय'' अन्तर्गतणिजर्थः, लेट् प्रयोगः।
३. ''प्राणापानौ मित्रावरुणौ'' [काठ० २९.२]।
४. ''शर्धः–बलनाम'' [निघं० २.९]।
५. ''यच्छरीरं सा पृथिवी'' [ऐ० आ० २.३.३]।

१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्। अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥ ३॥

पदपाठः— महत्तत्सोमोमहिषश्चकार॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५४२)

द्वितीय दशर्च

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते। अभि द्रोणान्यासदम्॥ १॥

पदपाठः— एषः देवः अमर्त्यः अ मर्त्यः पर्णवीः पर्ण वीः इव दीयते अभि द्रोणानि आसदम् आ सदम्॥ १॥

अन्वयः—एषः-अमर्त्यः-देवः पर्णवीः-इव द्रोणानि-अभि-आसदं दीयते॥

पदार्थः—(एषः-अमर्त्यः-देवः) यह अमर शान्तस्वरूप परमात्मदेव (पर्णवीः-इव) पक्षों से गति करने वाले पक्षी की भाँति (द्रोणानि-अभि-आसदं दीयते) द्रवण स्थानों—उपासक पात्रों के प्रति[1] प्राप्त होने को गति करता है[2] प्राप्त होता है॥ १॥

१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते। दधद्रत्नानि दाशुषे॥ २॥

पदपाठः— एषः विप्रैः वि प्रैः अभिष्टुतः अभि स्तुतः अपः देवः वि गाहते दधद्रत्नानिदाशुषे॥ २॥

अन्वयः—एषः-देवः विप्रैः-अभिष्टुतः अपः-विगाहते दाशुषे रत्नानि दधत्॥

पदार्थः—(एषः-देवः) यह द्योतमान सोम—शान्त परमात्मा (विप्रैः-अभिष्टुतः) मेधावी उपासकों द्वारा अभीष्ट स्तुति में लाया गया (अपः-विगाहते) उनकी श्रद्धाओं में विगाहन करता है[3] (दाशुषे रत्नानि दधत्) आत्मसमर्पी—श्रद्धावान् के लिये रमणीय अध्यात्म सुखैश्वर्यों को धारण कराने के हेतु॥ २॥

---

१. ''प्रजापतेर्वापात्रं यद्द्रोणकलशः'' [मै० ४.८.८]।

२. ''दीयते-गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

३. ''आपः श्रद्धा'' [क० ४७.३]।

१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्त्वभिः। पवमानः सिषासति॥ ३॥

पदपाठः— एषः विश्वानि वार्या शूरः यन् इव सत्त्वभिः पवमानः सिषासति॥ ३॥

अन्वयः—एषः-शूरः सत्त्वभिः-यन्-इव विश्वानि वार्या पवमानः॥

पदार्थः—(एषः-शूरः) यह प्रगतिशील परमात्मा (सत्त्वभिः-यन्-इव) गुणबलों द्वारा प्राप्त होता हुआ-सा (विश्वानि वार्या) सब वरणीय सुखों को (पवमानः) साक्षात् होता हुआ उपासक को देना चाहता है—दे देता है॥ ३॥

१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति। आविष्कृणोति वग्वनुम्॥ ४॥

पदपाठः— एषः देवः रथर्यति पवमानः दिशस्यति आविः आ विः कृणोति वग्वनुम्॥ ४॥

अन्वयः—एषः-पवमानः-देवः रथर्यति दिशस्यति वग्वनुम्-आविष्कृणोति॥

पदार्थः—(एषः-पवमानः-देवः) यह आनन्दधारा में आता हुआ द्योतमान सोम परमात्मा (रथर्यति) उपासक को रथ-रमणस्थान बनाना चाहता है (दिशस्यति) उसे अपना आनन्दरस देना चाहता है (वग्वनुम्-आविष्कृणोति) मधुरवाणी[१] आशीर्वाद-रूप को प्रकट करता है या उपासक की स्तुति वाणी को सफल करता है॥ ४॥

१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः। हरिर्वाजाय मृज्यते॥ ५॥

पदपाठः— एष देवः विपन्युभिः पवमानः ऋतायुभिः हरिः वाजाय मृज्यते॥ ५॥

अन्वयः—एषः-हरिः-पवमानः-देवः विपन्युभिः-ऋतायुभिः वाजाय मृज्यते॥

पदार्थः—(एषः-हरिः-पवमानः-देवः) यह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता धारारूप में प्राप्त होता हुआ द्योतमान परमात्मा (विपन्युभिः-ऋतायुभिः) स्तुतिकर्ता मेधावी[२] सत्यकामी उपासकों के द्वारा (वाजाय मृज्यते) अमृत अन्न-भोग के लिये प्राप्त किया जाता है[३]॥ ५॥

---

१. ''वग्नुः-वाङ्नाम'' [निघं० १.११] मध्ये वकार उपजनश्छान्दसः।
२. ''विपन्युः-मेधावी'' [निघं० ३.१५]।
३. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति। पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

पदपाठः— एषः देवः विपा कृतः अति ह्वरांऽसि धावति पवमानोअदाभ्यः ॥ ६ ॥

अन्वयः—एषः-पवमानः-अदाभ्यः-देवः विपा कृतः ह्वरांसि-अतिधावति ॥

पदार्थः—(एषः-पवमानः-अदाभ्यः-देवः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होनेवाला अबाध्य सोम-शान्तरूप परमात्मदेव (विपा कृतः) स्तुति वाणी द्वारा[1] साक्षात् किया हुआ या प्रसन्न किया हुआ (ह्वरांसि-अतिधावति) क्रोधों[2] या कुटिल भावों—सङ्कल्पों को[3] हटाकर प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया। पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

पदपाठः— एषः दिवम् वि धावति तिरः रजांऽसि धारया पवमानःकनिक्रदत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—एषः-पवमानः धारया कनिक्रदत् रजांसि तिरः दिवं विधावति ॥

पदार्थः—(एषः-पवमानः) यह पवित्रकर्ता सोम परमात्मा (धारया) स्तुतिवाणी से[4] (कनिक्रदत्) साधु शब्द करता हुआ (रजांसि तिरः) भोगलोकों को[5] तिरस्कृत कर—उन्हें छोड़कर उनसे अलग (दिवं विधावति) उपासक को मोक्षधाम में पहुँचाता है[6] ॥ ७ ॥

१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः। पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

पदपाठः— एषः दिवम् व्यासरत् वि आसरत् तिरः रजांऽसि अस्तृतः अ स्तृतः पवमानः स्वध्वरः सु अध्वरः ॥ ८ ॥

अन्वयः—एषः-पवमानः अस्तृतः रजांसि तिरः स्वध्वरः दिवं व्यासरत् ॥

पदार्थः—(एषः-पवमानः) यह पवित्रकर्ता सोम परमात्मा (अस्तृतः) अहिंसित अप्रतिबद्ध—बिना रुकावट वाला (रजांसि तिरः) भोगलोकों का तिरस्कार कर स्वयं भोगलोकों से परे हो (स्वध्वरः) उत्तम अध्यात्मयज्ञ आश्रय (दिवं

१. "विपा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
२. "ह्वरः क्रोधनाम" [निघं० २.१३]।
३. "ह्वृ कौटिल्ये" [भ्वादि०]।
४. "धारा वाङ्नाम" [निघं० १.१३]।
५. "लोका रजांस्युच्यन्ते" [निघं० ४.१९]।
६. "अन्तर्गतणिच्"।

व्यासरत्) मोक्षधाम में विशेष प्राप्त है ॥ ८ ॥

१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति॥ ९ ॥

पदपाठः— एषप्रत्नेनजन्मना॥ ९ ॥

अन्वयः—एषः–हरिः–देवः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति ॥

पदार्थः—(एषः–हरिः–देवः) यह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम शान्त परमात्मदेव (प्रत्नेन जन्मना) देव जन्म—दिव्य जीवन होने से[1] (देवेभ्यः सुतः) जीवन्मुक्तों के लिये साक्षात् हुआ (पवित्रे अर्षति) पवित्र मोक्षधाम में प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः। धारया पवते सुतः॥ १० ॥

पदपाठः— एषः उ स्यः पुरुव्रतः पुरु व्रतः जज्ञानः जनयन् इषः धारया पवते सुतः॥ १० ॥

अन्वयः—एषः–स्यः–उ पुरुव्रतः जज्ञानः इषः–जनयन् धारया–सुतः–पवते ॥

पदार्थः—(एषः–स्यः–उ) यह वही (पुरुव्रतः) बहुत कर्म आनन्द कर्म शक्तिवाला (जज्ञानः) उपासक के अन्दर प्रत्यक्ष हुआ (इषः–जनयन्) इच्छाओं को या इष्ट कमनीय वस्तुओं को प्रसिद्ध करता हुआ (धारया–सुतः–पवते) स्तुति धाराप्रवाह से साक्षात् कर्ताओं[2] को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

अष्टर्चं

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥ १ ॥

पदपाठः— एषः धिया याति अण्व्या शूरः रथेभिः आशुभिः गच्छन्निन्द्रस्यनिष्कृतम्॥ १ ॥

अन्वयः—एषः–शूरः अण्व्या धिया आशुभिः–रथेभिः इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्

---

१. "देवा वै प्रत्नम्" [मै० १.५.५]।

२. 'सुतः' क्विप् प्रत्ययः भूते।

याति ॥

पदार्थः—(एषः-शूरः) यह पराक्रमी सोम—परमात्मा (अण्व्या धिया) सूक्ष्म स्तुति से—आत्मीय स्तुति से[1] (आशुभिः-रथेभिः) शीघ्रगामी या व्यापनेवाले रमणीय तथा रममाण गुणों से (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् याति) उपासक आत्मा के संस्कृत अन्तःकरण को 'अवगच्छन्' जानता हुआ प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२६७. एष पुरू धियायते बृहते देवतातये। यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥

पदपाठः— एषः पुरु धियायते बृहते देवतातये यत्र अमृतासः अ मृतासः आशत ॥ २ ॥

अन्वयः—एषः बृहते देवतातये पुरु धियायते यत्र-अमृतासः-आशत ॥

पदार्थः—(एषः) यह शान्तस्वरूप परमात्मा (बृहते देवतातये) महती मुक्ति देने के लिये (पुरु धियायते) बहु स्तुति चाहता है (यत्र-अमृतासः-आशत) जहाँ मुक्त आत्माएँ आनन्दभोग को प्राप्त हैं ॥ २ ॥

१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

पदपाठः— एतम् मृजन्ति मर्ज्यम् उप द्रोणेषु आयवः प्रचक्राणम् प्र चक्राणम् महीः इषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—महीः-इषः-चक्राणम् एतं मर्ज्यम् आयवः द्रोणेषु उपमृजन्ति ॥

पदार्थः—(महीः-इषः-चक्राणम्) महती कामनाओं को पूरा करने वाले (एतं मर्ज्यम्) इस प्राप्त करने योग्य को (आयवः) उपासकजन[2] (द्रोणेषु) मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार पात्रों में (उपमृजन्ति) उपगत होते हैं—मनन आदि करके अपनाते हैं ॥ ३ ॥

१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा। यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

पदपाठः— एषः हितः वि नीयते अन्तरिति शुन्ध्यावता पथा यदि तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

---

१. ''वाग्वैधीः'' [का० श० ४.२.४.३]।

२. ''आयवः-मनुष्याः'' [निघं० २.३]।

अन्वयः—(यदि) यद्-इ एषः-हितः शुन्ध्यावता पथा अन्तः-विनीयते भूर्णयः-तुञ्जन्ति ॥

पदार्थः—(यद्-इ) जब ही (एषः-हितः) यह हितकर सोम-शान्त परमात्मा (शुन्ध्यावता पथा) शुद्धि—आत्मपरिशुद्धि वाले यम, नियम आदि मार्ग—योगमार्ग से (अन्तः-विनीयते) अन्दर बिठा लिया जाता है—बैठ जाता है तो (भूर्णयः-तुञ्जन्ति) धारण करने वाले उपासकजन इसे ग्रहण कर लेते हैं—अपना लेते हैं[1] ॥४॥

१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः। पतिः सिन्धूनां भवन्॥५॥

पदपाठः— एषः रुक्मिभिः ईयते वाजी शुभ्रेभिः अंशुभिः पतिः सिन्धूनाम् भवन्॥५॥

अन्वयः—एषः-वाजी सिन्धूनां पतिः-भवन् रुक्मिभिः शुभ्रेभिः-अंशुभिः ईयते ॥

पदार्थः—(एषः-वाजी) यह अमृत अन्नभोग वाला सोम परमात्मा (सिन्धूनां पतिः-भवन्) स्यन्दमान—शरीर में बहने वाले प्राणों[2] का पालक होता हुआ (रुक्मिभिः शुभ्रेभिः-अंशुभिः) तेजस्वी शुभ्र—शोभन आनन्द प्रवाहों से (ईयते) उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥५॥

१२७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा। नृम्णा दधान ओजसा॥६॥

पदपाठः— एषः शृङ्गाणि दोधुवत् शिशीते यूथ्यः वृषा नृम्णा दधानः ओजसा॥६॥

अन्वयः—एषः ओजसा शृङ्गाणि दोधुवत् यूथ्यः-वृषा शिशीते नृम्णा दधानः ॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (ओजसा) ज्ञानबल से (शृङ्गाणि दोधुवत्) अपनी आनन्द तरङ्गों को उपासक के अन्दर तरङ्गित कर देता है (यूथ्यः-वृषा शिशीते) जैसे गोसमूह का साण्ड अपने सींगों को तीक्ष्ण करता है उन्हें भूमि में धुनकर[3] (नृम्णा दधानः) उपासकों के लिये अध्यात्म अन्न[4] अमृतभोग को धारण करने के हेतु ॥६॥

---

१. "तुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु" [चुरादि०] आदानार्थेऽत्र।
२. "प्राणो वै सिन्धुः" [श० ८.५.३.७]।
३. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।
४. "अन्नं नृम्णाम्" [कौ० २७.४]।

१२७२. एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति। अव शादेषु गच्छति॥ ७॥

पदपाठः— एषः वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवान् अति अव शादेषु गच्छति॥ ७॥

अन्वयः—एषः परुषा वसूनि पिब्दनः अतिययिवान् शादेषु-अवगच्छति॥

पदार्थः—(एषः) यह सोम—परमात्मा (परुषा वसूनि) कठोर आच्छादक अध्यात्म सद्भावों के आवरक काम आदि दुर्वृत्तों को (पिब्दनः) नाशक[1] (अतिययिवान्) दूर कर जाता है—भगा देता है (शादेषु-अवगच्छति) वह उपासक के अन्दर रहने वाले—शादों—शातनीयों—नाशनीयों—छिपे हुओं को जानता है॥ ७॥

१२७३. एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे। स्वायुधं मदिन्तमम्॥ ८॥

पदपाठः— एतमुत्यन्दशक्षिपः हरिम् हिन्वन्ति यातवे स्वायुधम् सु आयुधम् मदिन्तमम्॥ ८॥

अन्वयः—एतं त्यम्-उ स्वायुधं मदिन्तमं हरिम् दश क्षिपः-हिन्वन्ति॥

पदार्थः—(एतं त्यम्-उ) इस उस ही (स्वायुधं मदिन्तमं हरिम्) उत्तम आयु धारण करानेवाले अति हर्षकारक दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम परमात्मा को (दश क्षिपः-हिन्वन्ति) आत्मा को अपने विषय में प्रेरित कर्ता मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी सदुपयुक्त हो परमात्मा को प्राप्त कराती हैं॥ ८॥

तृतीय खण्ड

षड्टच

ऋषिः—रहूगणः (विषयों से रहित परमात्मप्राप्ति के लिये गणा वाणी—स्तुतिवाणी[2] जिसकी है ऐसा उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत। गच्छन्वाजं सहस्त्रिणम्॥ १॥

पदपाठः— एषः उ स्यः वृषा रथः अव्यावारेभिरव्यत गच्छन् वाजम् सहस्त्रिणम्॥ १॥

---

१. ''पिब्द नाशे'' वैदिक धातुः।

२. ''गणा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

अन्वयः—एषः-स्यः-उ वृषा रथः अव्याः-वारेभिः-अज्यते सहस्त्रिणं वाजं गच्छन् ॥

पदार्थः—(एषः-स्यः-उ) यह वही (वृषा रथः) कामनावर्षक रमणीय रसरूप स्तोम—परमात्मा (अव्याः-वारेभिः-अज्यते) पृथिवी[1]—पार्थिव देह के साधन द्वारों[2] श्रोत्र, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारों से श्रवण, मनन आदि करने से व्यक्त—साक्षात् किया जाता है (सहस्त्रिणं वाजं गच्छन्) सहस्त्रों के ऊपर—सर्वोच्च अमृत अन्नभोग को[3] प्राप्त कराने के हेतु[4] ॥ १ ॥

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

पदपाठः— एतम् त्रितस्य योषणः हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः इन्दुमिन्द्रायपीतये ॥ २ ॥

अन्वयः—एतं हरिम्-इन्दुम् त्रितस्य योषणः-अद्रिभिः हिन्वन्ति इन्द्राय पीतये ॥

पदार्थः—(एतं हरिम्-इन्दुम्) इस दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरसपूर्ण परमात्मा को (त्रितस्य) स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरगत—इन्द्र—आत्मा की (योषणः-अद्रिभिः) प्रीति साधने वाले मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, वाक्, इन्द्रियाँ श्लोक प्रशंसा स्तुति करने वाले[5] (हिन्वन्ति) आत्मा की ओर प्रेरित करते हैं (इन्द्राय पीतये) आत्मा के पान करने के लिये ॥ २ ॥

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति। गच्छं जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— एषः स्यः मानुषीषु आ श्येनः न विक्षु सीदति गच्छन् जारः न योषितम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—एषः-स्यः श्येनः-न मानुषीषु विक्षु-आसीदति जारः-न-योषितम् गच्छन् ॥

पदार्थः—(एषः-स्यः) यह वह सोम—परमात्मा (श्येनः-न) प्रशंसनीय गति वाले भास—वाज पक्षी के समान (मानुषीषु विक्षु-आसीदति) मननशील

---

१. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.३३]।
२. "द्वारो वारयते" [निरु० ८.१०]।
३. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १.१९३]।
४. 'गच्छन्-गमयन्' अन्तर्गतणिजर्थः।
५. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५] विभक्तिव्यत्ययेन प्रथमार्थे तृतीया।

प्रजाओं में समन्तरूप से आ जाता है (जारः-न-योषितम् गच्छन्) अर्चनीय स्वामी[1] जैसे सेवक को[2] सेवार्थ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

पदपाठः— एषः स्यः मद्यः रसः अव चष्टे दिवः शिशुः यः इन्दुः वारम् आविशत् आ अविशत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—एषः-स्यः मद्यः-रसः यः-इन्दुः दिवः शिशुः वारम्-आविशत् ॥

पदार्थः—(एषः-स्यः) यह वह (मद्यः-रसः) हर्षकर रसरूप रसीला (यः-इन्दुः) जो दीप्तिमान् परमात्मा (दिवः शिशुः) मोक्षधाम का शंसन करने वाला उपदेष्टा या प्रदाता[3] (वारम्-आविशत्) वरणीय हृदय को या आत्मा को[4] आविष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥

पदपाठः— एषः स्यः पीतये सुतः हरिः अर्षति धर्णसिः क्रन्दन् योनिम् अभि प्रियम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—एषः-स्यः-धर्णसिः-हरिः-सुतः प्रियं क्रन्दन् योनिम्-अभि-अर्षति ॥

पदार्थः—(एषः-स्यः-धर्णसिः-हरिः-सुतः) यह वह धारणकर्ता दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा उपासना द्वारा उपासित साधित हुआ (प्रियं क्रन्दन्) हितकर वचन बोलता हुआ (योनिम्-अभि-अर्षति) हृदय के प्रति—हृदय में प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥

पदपाठः— एतम् त्यम् हरितः दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः याभिः मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥

---

१. ''जरति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] ।

२. ''जुषते सेवते-इति योषित्'' [उणादि० १.९७] युष इति सौत्रो धातुः । अथवा जुष इत्यस्य वर्णविकारेण पाठः (हसृरुहियुषिभ्य इतिः) इत्युणादिसूत्रभाष्ये महर्षिदयानन्दसरस्वती ।

३. ''शिशुः शंसनीयोभवति शिशीतेर्वा स्याद् दानकर्मणः'' [निघं० १०.३९] ।

४. ''आत्मा यस्य शरीरम्'' [श० १४.६.७.३०] ।

अन्वयः—एतं त्यम् अपस्युवः दश हरितः मर्मृज्यन्ते याभिः-मदाय शुम्भते ॥

पदार्थः—(एतं त्यम्) इस उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अपस्युवः) कर्म में व्याप्त होने वाले (दश हरितः) दश हरणशील—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्—वाणी का अपने मनन, विवेचन, स्मरण-चिन्तन, ममत्व, श्रवण-स्तवन आदि कर्मप्रवृत्तियाँ (मर्मृज्यन्ते) पुनः पुनः प्राप्त करती हैं[1] (याभिः-मदाय शुम्भते) जिनके द्वारा हर्ष आनन्द कर[2] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा शोभित—आत्मा में प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

चतुर्थ खण्ड

षड्टच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥

पदपाठः— एषः वाजी हितः नृभिः विश्ववित् विश्व वित् मनसः पतिः अव्यंवारंविधावति ॥ १ ॥

अन्वयः—एषः-वाजी विश्ववित् मनसः-पतिः नृभिः-हितः अव्यं वारं विधावति ॥

पदार्थः—(एषः-वाजी) यह अमृत अन्नभोग देने वाला (विश्ववित्) विश्वज्ञाता (मनसः-पतिः) मन का स्वामी (नृभिः-हितः) मुमुक्षुजनों[3] से धारित—धारण किया हुआ (अव्यं वारं विधावति) पार्थिव देह विगत करके वरणीय मन—मुमुक्षु उपासक के मन को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२८१. एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

पदपाठः— एषः पवित्रे अक्षरत् सोमः देवेभ्यः सुतः विश्वा धामानि आविशन् आ विशन् ॥ २ ॥

अन्वयः—एषः-सोमः देवेभ्यः सुतः विश्वा धामानि-आविशन् पवित्रे-अक्षरत् ॥

---

१. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

२. प्रथमार्थे चतुर्थी।

३. "नरो ह वै देवविशः" [जै० २.८९]।

पदार्थः—(एषः–सोमः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः सुतः) मुमुक्षु उपासकों द्वारा[1] साक्षात् किया हुआ (विश्वा धामानि–आविशन्) सारे मन, बुद्धि, श्रोत्र, नेत्र आदि अङ्गों में[2] आविष्ट होने के हेतु (पवित्रे–अक्षरत्) पवित्र स्थान हृदय में होता है ॥ २ ॥

१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः। वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

पदपाठः— एषः देवः शुभायते अधि योनौ अमर्त्त्यः अ मर्त्त्यः वृत्रहा वृत्र हा देववीतमः देव वीतमः ॥ ३ ॥

अन्वयः—एषः वृत्रहा देववीतमः अमर्त्यः देवः योनौ–अधि शुम्भते ॥

पदार्थः—(एषः) यह (वृत्रहा) पापनाशक[3] (देववीतमः) मुमुक्षुजनों का अत्यन्त कमनीय[4] (अमर्त्यः) अमर (देवः) द्योतमान सोम परमात्मा (योनौ–अधि शुम्भते) हृदयस्थान में प्रकाशित होता है—चमकता है[5] ॥ ३ ॥

१२८३. एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः। अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

पदपाठः— एषः वृषा कनिक्रदत् दशभिः जामिभिः यतः अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

अन्वयः—एषः–वृषा दशभिः–जामिभिः–यतः कनिक्रदत् द्रोणानि–अभि धावति ॥

पदार्थः—(एषः–वृषा) यह कामनावर्षक सोम—परमात्मा (दशभिः–जामिभिः–यतः) दश गति करने वाली बढ़ी–चढ़ी[6] स्तुतियों—मन के मनन, बुद्धि के विवेचन, चित्त के स्मरण, अहङ्कार के ममत्व तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों के श्रवण आदि और वाक् इन्द्रिय के प्रकथन रूप स्तुतियों द्वारा वशीकृत—वश किया हुआ (कनिक्रदत्) साधु उपदेश करता हुआ (द्रोणानि–अभि धावति) अधिकारी उपासक पात्रों की ओर गति करता है—उनको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

---

१. विभक्ति व्यत्ययः, तृतीयास्थाने चतुर्थी।
२. "अङ्गानि वै धामानि" [का० श० ४.३.४.११]।
३. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।
४. "वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्ति...." [अदादि०]।
५. "शुम्भ दीप्तौ" [भ्वादि०]।
६. "जमति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]। "जाम्यतिरेकनाम" [निरु० ४.२०] अतिरेकः प्रवृद्धः। "उप त्वा जामयो गिरः" [साम० पू० १.१.३]।

१२८४. एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

पदपाठः— एषः सूर्यम् अरोचयत् पवमानः अधि द्यवि पवित्रे मत्सरः मदः ॥ ५ ॥

अन्वयः—एषः-पवमानः द्यवि-अधि सूर्यम्-अरोचयत् मत्सरः-मदः पवित्रे॥

पदार्थः—(एषः-पवमानः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा (द्यवि-अधि सूर्यम्-अरोचयत्) जैसे द्युलोक में सूर्य को चमकाता है[1] ऐसे (मत्सरः-मदः पवित्रे) तृप्ति करने वाला[2] हर्षयिता विकसित करने वाला पवित्र हृदय में उपासक आत्मा को चमकाता है ॥ ५ ॥

१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता। पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

पदपाठः— एषः सूर्येण हासते संवसानः सम् वसानः विवस्वता वि वस्वता पतिः वाचः अदाभ्यः अ दाभ्यः ॥ ६ ॥

अन्वयः—एषः वाचः-पतिः अदाभ्यः संवसानः विवस्वता सूर्येण हासते 'हासयते'॥

पदार्थः—(एषः) यह (वाचः-पतिः) स्तुति वाणी तथा वेदवाणी का स्वामी[3] (अदाभ्यः) न दबाने योग्य परमात्मा (संवसानः) अपने आनन्दमय रसीले स्वरूप से उपासकों को सम्यक् आच्छादित करता हुआ[4] (विवस्वता सूर्येण) खुलते हुए—किरणें फेंकते हुए सूर्य के समान[5] (हासते 'हासयते') हँसता—हर्षित करता हुआ—ज्ञानप्रकाश और अमृत आनन्दरस से हर्षाता है ॥ ६ ॥

पञ्चम खण्ड

षड्टच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु बुद्धिवाला[6] उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते। पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥

---

१. अत्र लुप्तोपमावाचकोपमालङ्कारः।
२. "मत्सरः सोमो मन्दतेस्तृप्तिकर्मणः" [निघं० २.५]।
३. "प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्" [यजु० ३४.५७]।
४. "वस्न आच्छादने" [अदादि०]। ५. "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः"।
६. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.९३]।

पदपाठः— **एषः कविः अभिष्टुतः अभि स्तुतः पवित्रे अधि तोशते पुनानः घ्नन् अप द्विषः ॥ १ ॥**

अन्वयः—एषः–कविः अभिष्टुतः पुनानः द्विषः–अपघ्नन् पवित्रे–अधितोशते ॥

पदार्थः—(एषः–कविः) यह क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (अभिष्टुतः) स्तुति में लाया हुआ (पुनानः) पवित्र करता हुआ (द्विषः–अपघ्नन्) द्वेष भावनाओं को दूर हटाता हुआ (पवित्रे–अधितोशते) हृदय में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते। पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

पदपाठः— **एषः इन्द्राय वायवे स्वर्जित् स्वः जित् परि सिच्यते पवित्रे दक्षसाधनः दक्ष साधनः ॥ २ ॥**

अन्वयः—एषः–स्वर्जित्–दक्षसाधनः वायवे–इन्द्राय पवित्रे परिषिच्यते ॥

पदार्थः—(एषः–स्वर्जित्–दक्षसाधनः) यह मोक्षादि पर अधिकार रखने वाला आत्मबलसाधक (वायवे–इन्द्राय) आयु वाले[1] उपासक आत्मा के लिये (पवित्रे परिषिच्यते) पवित्र हृदय में परिपूर्णरूप से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः। सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

पदपाठः— **एषः नृभिः वि नीयते दिवः मूर्द्धा वृषा सुतः सोमः वनेषु विश्ववित् विश्व वित् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—एषः दिवः–मूर्धा वृषा विश्ववित् सोमः नृभिः सुतः वनेषु विनीयते ॥

पदार्थः—(एषः) यह (दिवः–मूर्धा) मोक्षधाम का मूर्धारूप—मोक्षधाम में मूर्धा के समान वर्तमान (वृषा) सुखवर्षक (विश्ववित्) विश्व में प्राप्त—सर्वत्र व्यापक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (नृभिः सुतः) मुमुक्षुजनों से[2] साधित उपासित हुआ (वनेषु विनीयते) सम्भजन करणों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार में आ जाता है ॥ ३ ॥

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

पदपाठः— **एषः गव्युः अचिक्रदत् पवमानः हिरण्ययुः इन्दुः सत्राजित् सत्रा जित् अस्तृतः अ स्तृतः ॥ ४ ॥**

---

१. "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २.४.३] मतुब्लोपश्छान्दसः।

२. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]।

अन्वयः—एषः पवमानः इन्दुः अस्तृतः सत्राजित् गव्युः हिरण्ययुः अचिक्रदत् ॥

पदार्थः—(एषः पवमानः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला (इन्दुः) रसीला परमात्मा (अस्तृतः) अहिंसित (सत्राजित्) सबको समन्तरूप से जीतने—स्वाधिकार में रखनेवाला[१] (गव्युः) हमारे लिये वाणी का इच्छुक (हिरण्ययुः) अमृत का इच्छुक[२] (अचिक्रदत्) साधु वचन बोलता हुआ प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

१२९०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः। पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

पदपाठः— एषः शुष्मी असिष्यदत् अन्तरिक्षेः वृषा हरिः पुनानः इन्दुः इन्द्रम् आ ॥ ५ ॥

अन्वयः—एषः शुष्मी वृषा हरिः पुनानः इन्दुः इन्द्रम्-आ अन्तरिक्षे असिष्यदत् ॥

पदार्थः—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान्[३] (वृषा) कामनावर्षक (हरिः) दोष-हर्ता (पुनानः) शोधता हुआ (इन्दुः) रसीला परमात्मा (इन्द्रम्-आ) उपासक आत्मा को प्राप्त होकर (अन्तरिक्षे) हृदयावकाश में (असिष्यदत्) सञ्चार करता है ॥ ५ ॥

१२९१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति। देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

पदपाठः— एषः शुष्मी अदाभ्यः अ दाभ्यः सोमःपुनानोअर्षति देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

अन्वयः—एषः शुष्मी अदाभ्यः पुनानः देवावीः अघशंसहा सोमः अर्षति ॥

पदार्थः—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान् (अदाभ्यः) न दबने वाला (पुनानः) पवित्र करने वाला (देवावीः) मुमुक्षु उपासकों का रक्षक (अघशंसहा) पापप्रशंसक विचारों का नाशक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

षष्ठ खण्ड

षडृच

ऋषिः—रहुगणः (वासनारहित स्तुतिवाणी वाला[४])॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१२९२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति। विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

---

१. ''सर्वं वै सत्रम्'' [श० ४.६.१.६५]।
२. ''अमृतं वै हिरण्यम्'' [तै० सं० ५.२.७.९] छन्दसि परेच्छामृतं स्थचल।
३. ''शुष्मं बलनाम'' [निघं० २.९]।
४. ''गणा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

पदपाठः— **सः सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति विघ्नन् वि घ्नन् रक्षांᳬसि देवयुः ॥ १ ॥**

अन्वयः—सः वृषा रक्षांसि विघ्नन् देवयुः सुतः पीतये पवित्रे-अर्षति ॥

पदार्थः—(सः) वह (वृषा) कामवर्षक (रक्षांसि विघ्नन्) जिनसे रक्षा करनी चाहिए ऐसे विघ्न बाधाओं को[1] विनष्ट करता (देवयुः) मुमुक्षु उपासक को चाहने वाला (सुतः) उपासित हुआ—उपासना में आया हुआ (पीतये) स्वानन्दरसपान कराने के लिये (पवित्रे-अर्षति) पवित्र हृदय में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२९३. **स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः। अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः पवित्रे विचक्षणः वि चक्षणः हरिरर्षतिधर्णसिः अभियोनिङ्कनिक्रदत् ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः विचक्षणः धर्णसिः हरिः योनिम्-अभि पवित्रे कनिक्रदत्-अर्षति ॥

पदार्थः—(सः) वह (विचक्षणः) द्रष्टा (धर्णसिः) धारणकर्ता (हरिः) दोषहरणकर्ता सोम—परमात्मा (योनिम्-अभि) स्वस्थान उपासक आत्मा को अभिप्राप्त होना लक्ष्य कर (पवित्रे कनिक्रदत्-अर्षति) हृदय में साधु प्रवचन करता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१२९४. **स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति। रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **सः वाजी रोचनम् दिवः पवमानः वि धावति रक्षोहा रक्षः हा वारम् अव्ययम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सः-वाजी दिवः-रोचनम् रक्षोहा वारम्-अव्ययम् विधावति ॥

पदार्थः—(सः-वाजी) वह अमृत अन्नभोग वाला (दिवः-रोचनम्) मोक्षधाम का प्रकाशक (रक्षोहा) विघ्न दोष विनाशक (वारम्-अव्ययम् विधावति) वरने—चाहने वाले अविनाशी आत्मा को विशेषरूप से प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

१२९५. **स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्। जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥**

---

१. ''रक्षस-रक्षितव्यमस्मात्'' [निरु० ५.१८]।

पदपाठः— सः त्रितस्य अधि सानवि पवमानः अरोचयत् जामिभिः सूर्यम् सह ॥ ४ ॥

अन्वयः—सः-पवमानः जामिभिः सह त्रितस्य सानवि-अधि सूर्यम् अरोचयत् ॥

पदार्थः—(सः-पवमानः) वह सोम—परमात्मा (जामिभिः सह) बढ़ती हुई स्तुतियों के द्वारा (त्रितस्य) स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरधारी आत्मा के (सानवि-अधि) सम्भजनीय सर्वोच्च साधन अन्तःकरण में उस उपासक आत्मा को (सूर्यम्) 'सूर्यमिव' सूर्य की भाँति[1] (अरोचयत्) तेजस्वी बना देता है ॥ ४ ॥

१२९६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः। सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

पदपाठः— सः वृत्रहा वृत्र हा वृषा सुतः वरिवोवित् वरिवः वित् अदाभ्यः अ दाभ्यः सोमः वाजम् इव असरत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—सः वृत्रहा वृषा वरिवोवित् अदाभ्यः सोमः सुतः वाजम्-इव-असरत् ॥

पदार्थः—(सः) वह (वृत्रहा) पापनाशक (वृषा) कामनावर्षक (वरिवोवित्) मोक्षैश्वर्य को प्राप्त कराने वाला (अदाभ्यः) अहिंसनीय (सोमः) शान्त परमात्मा (सुतः) उपासक द्वारा साक्षात् हुआ (वाजम्-इव-असरत्) उसे ऐसे प्राप्त होता है जैसे यज्ञ को[2] ब्रह्मा प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

१२९७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति। इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥

पदपाठः— सः देवः कविना इषितः अभिद्रोणानिधावति इन्दुः इन्द्राय मंꣳहयन् ॥ ६ ॥

अन्वयः—सः देवः इन्दुः कविना-इषितः इन्द्राय मंहयन् द्रोणानि-अभिधावति ॥

पदार्थः—(सः) वह (देवः) द्योतमान (इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण सोम—परमात्मा (कविना-इषितः) स्तुतिकर्मा मेधावी से प्रेरित—स्तुति में लाया हुआ (इन्द्राय मंहयन्) आत्मा के लिये स्वानन्द देने[3] के हेतु (द्रोणानि-अभिधावति) मन, बुद्धि,

---

१. "सूर्यः सूर्यमिव" लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।

२. "वाजं त्वा सरिष्यन्तं त्वा वाजजितं सम्मामीति यज्ञं त्वा वक्ष्यन्तं यज्ञियं सम्मार्जीत्यवैतदाह" [श० १.४.४.१५]।

३. "मंहतेर्दानकर्मा" [निघं० ३.२०]।

चित्त, अहङ्कार पात्रों में प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सप्तम खण्ड

षड्टच

ऋषिः—पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा (शुद्धान्तःकरण वाला या परमात्मा में अन्तन्त बसने वाला उपासक या दोनों)॥ देवता—पावमान्या अध्ययनप्रशंसा (पावमानी ऋचाओं के अध्ययन की प्रशंसा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१२९८. **यः पावमानी रध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ १ ॥**

पदपाठः— **यः पावमानीः अध्येति अधि एति ऋषिभिः सम्भृतम् सम् भृतम् रसम् सर्वम् सः पूतम् अश्नाति स्वदितम् मातरिश्वना॥ १ ॥**

अन्वयः—यः पावमानीः-अध्येति ऋषिभिः सम्भृतं रसम् सः सर्वं पूतम् मातरिश्वना स्वदितम् अश्नाति ॥

पदार्थः—(यः) जो उपासक (पावमानीः-अध्येति) पवमान—आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा की स्तुतियों को अपने अन्दर अधिगत करता है—आत्मा में समा लेता है (ऋषिभिः सम्भृतं रसम्) जिन स्तुतियों के कवियों—स्तुतिकर्ताजनों ने[1] रस—आनन्दरस—पवमान परमात्मरस को अपने अन्दर परम्परा से सम्यक् भरा—धारा[2] भरता—धारता है (सः) वह पावमानी स्तुतियों को अपने अन्दर बिठाने वाला (सर्वं पूतम्) समग्र प्राप्त रस को (मातरिश्वना स्वदितम्) माता—अन्तरिक्ष—हृदयाकाश में प्राप्त मन से स्वदित—मनन आदि से अनुभव किए हुए को (अश्नाति) भोगता है ॥ १ ॥

१२९९. **पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ २ ॥**

पदपाठः— **पावमानीः यः अध्येति अधि एति ऋषिभिःसम्भृतथ्ठरसम् तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरम् सर्पिः मधु उदकम्॥ २ ॥**

[पूर्वार्द्ध का अर्थ पूर्व समान जानें]

अन्वयः—तस्मै सरस्वती क्षीरं सर्पिः-मधूदकं दुहे ॥

पदार्थः—(तस्मै सरस्वती) उस उपासक के लिये स्तुति वाणी[3] (क्षीरं सर्पिः-

---

१. "कवय ऋषयः" [मै० ४.१.२]। २. "लिङ्ग व्यत्ययश्छान्दसः।"

३. "सरस्वती वाङ्नाम" [निरु० १.११]।

मधूदकं दुहे) दूध, घृत, मधुर जल को दूहती है॥ २॥

१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥ ३॥

पदपाठः— पावमानी स्वस्त्ययनीः स्वस्ति अयनिः सुदुघाः सु दुघाः हि घृतश्चुतः घृत श्चुतः ऋषिभिः सम्भृतः सम् भृतः रसः ब्राह्मणेषु अमृतम् अ मृतम् हितम्॥ ३॥

अन्वयः—पावमानीः स्वस्ति-अयनीः सुदुघाः हि घृतश्चुतः ऋषिभिः-रसः सम्भृतः ब्राह्मणेषु-अमृतं हितम्॥

पदार्थः—(पावमानीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियाँ (स्वस्ति-अयनीः) कल्याण प्राप्त कराने वाली (सुदुघाः) साधुरूप कामना को दूहने वाली (हि) अवश्य (घृतश्चुतः) ज्ञानदीप्ति को झिराने वाली हैं (ऋषिभिः-रसः सम्भृतः) जिनको अपने अन्दर धारण कर उपासक मेधावीजनों ने रसरूप परमात्मा को परम्परा से सम्यक् धारण किया है (ब्राह्मणेषु-अमृतं हितम्) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों के निमित्त अमृत—मोक्ष कहा गया है॥ ३॥

१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्। कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः॥ ४॥

पदपाठः— पावमानीः दधन्तु नः इमम् लोकम् अथ उ अमुम् कामान् सम् अर्द्धयन्तु नः देवीः देवैः समाहृताः सम् आहृताः॥ ४॥

अन्वयः—पावमानीः नः इमं लोकम्-अथ-उ-अमुम् दधन्तु देवीः देवैः समाहृताः नः कामान् समर्धयन्तु॥

पदार्थः—(पावमानीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियाँ (नः) हमारे लिये (इमं लोकम्-अथ-उ-अमुम्) इस पृथिवी लोक अर्थात् आभ्युदयिक जीवन को और उस लोक—मोक्षधाम अर्थात् निःश्रेयस-अध्यात्म जीवन को (दधन्तु) धारण करावें (देवीः) दिव्य गुण वाली वे स्तुतियाँ (देवैः समाहृताः) जीवन्मुक्तों द्वारा संज्ञापित—समझाई सिखाई हुई (नः) हमारी (कामान् समर्धयन्तु) कामनाओं को समृद्ध करें—सफल करें॥ ४॥

१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥ ५॥

पदपाठः— **येन देवाः पवित्रेण आत्मानम् पुनते सदा तेन सहस्त्रधारेण सहस्त्र धारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥**

अन्वयः—देवाः येन पवित्रेण आत्मानं सदा पुनते तेन सहस्त्रधारेण नः पावमानीः पुनन्तु ॥

पदार्थः—(देवाः) सुमुक्षु उपाजसकजन (येन पवित्रेण) जिस पवित्रकारक परमात्मा से—'उसके ध्यान दर्शन हो जाने पर' (आत्मानं सदा पुनते) अपने को सदा पवित्र करते हैं (तेन सहस्त्रधारेण) उस सहस्त्र आनन्द धारा वाले पवमान—परमात्मा के ध्यान दर्शन से (नः) हमें (पावमानीः पुनन्तु) स्तुतियाँ पवित्र करें ॥ ५ ॥

१३०३. **पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् । पुण्याँश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **पावमानीः स्वस्त्ययनीः ताभिः गच्छति नान्दनम् पुण्यान् च भक्षान् भक्षयति अमृतत्वम् अ मृतत्वम् च गच्छति ॥ ६ ॥**

अन्वयः—पावमानीः स्वस्त्यनीः ताभिः नान्दनं-गच्छति च पुण्यान् भक्षान् भक्षयति अमृतत्वं च गच्छति ॥

पदार्थः—(पावमानीः स्वस्त्यनीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियाँ कल्याण प्राप्त कराने वाली हैं (ताभिः) उनके द्वारा—उनके सेवन से उपासक (नान्दनं-गच्छति) केवल सुख[१] मोक्ष को प्राप्त होता है (च) तथा (पुण्यान् भक्षान् भक्षयति) वहाँ मोक्ष में पुण्यभोगों को भोगता है (अमृतत्वं च गच्छति) और अमरत्व को पाता है ॥ ६ ॥

अष्टम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥ देवता—अग्निः (अग्रणी ज्ञान प्रकाशक परमात्मा) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१३०४. **अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे । चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥**

---

१. 'नन्दनं सुखम्' अनन्दनं नसुखं तत्प्रतिषिद्धम्–नान्दनम् ।

पदपाठः— **अगन्म महा नमसा यविष्ठम् यः दीदाय समिद्धः सम् इद्धः स्वे दुरोणे दुः ओने चित्रभानुम् चित्र भानुम् रोदसीइति अन्तः ऊर्वीइति स्वाहुतम् सु आहुतम् विश्वतः प्रत्यञ्चम् प्रति अञ्चम्॥ १ ॥**

अन्वयः—यः स्वे-दुरोणे समिद्धः दीदाय यविष्ठम् उर्वी रोदसी-अन्तः चित्रभानुम् विश्वतः प्रत्यञ्चम् स्वाहुतम् महा नमसा-अगन्म॥

पदार्थः—(यः) जो अग्नि—अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (स्वे-दुरोणे) अपने घर मोक्षधाम में[1] (समिद्धः) सम्यक् दीप्त, स्वप्रकाश से प्रकाशित (दीदाय) जो विश्व को प्रकाशित करता है[2] उस (यविष्ठम्) अत्यन्त युवा—सदा अजर (उर्वी रोदसी-अन्तः) महान् द्युलोक पृथिवी लोक—विश्व के ओर छोर पर्यन्त[3] वर्तमान (चित्रभानुम्) चायनीय महनीय—प्रशंसनीय[4] ज्योति वाले (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्व ओर प्रतिगत ज्ञानदृष्टि से प्राप्त (स्वाहुतम्) हृदय में सम्यक् गृहीत—धारित को (महा नमसा-अगन्म) महान् नम्र-भाव-स्तवन से हम प्राप्त करें॥ १ ॥

१३०५. **स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि ष्टवे दम आ जातवेदाः। स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः मह्ना विश्वा दुरितानि दुः इतानि साह्वान् अग्निः स्तवे दमे आ जातवेदाः जात वेदाः सः नः रक्षिषत् दुरितात् दुः इतात् अवद्यात् अस्मान् गृणतः उत नः मघोनः॥ २ ॥**

अन्वयः—सः जातवेदाः-अग्निः मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान् दमे आष्टवे सः नः रक्षिषत् अस्मान्-गृणतः-दुरितात् उत नः-मघोनः-अवद्यात्॥

पदार्थः—(सः) वह (जातवेदाः-अग्निः) उत्पन्नमात्र एवं प्रसिद्ध मात्र का जानने वाला अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (मह्ना) अपने महत्त्व से (विश्वा दुरितानि साह्वान्) हमारे सब कष्टों दुःखों को दबाने दूर करने वाला है (दमे

---

१. "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।

२. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निरु० ६.१]।

३. "रोदसी रोधसी रोधः कूलम्" [निरु० ६.१] "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.३०]

४. "चित्रं चायनीयं मंहनीयम्" [निघं० ४.४]।

आष्टवे) वह प्रास घर में समन्त रूप से स्तुति किया जाता है (सः) वह (नः) हमें हमारी (रक्षिषत्) रक्षा करे (अस्मान्-गृणतः-दुरितात्) हम स्तुति करने वालों की दुःखों से रक्षा करे (उत) अपि-और (नः-मघोनः-अवद्यात्) हम अध्यात्म-यज्ञ वालों या अध्यात्म धन वालों[1] की निन्दनीयरूप पाप से रक्षा करे ॥ २ ॥

१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः। त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वम् वरुणः उत मित्रः मि त्रः अग्ने त्वाम् वर्द्धन्ति मतिभिः वसिष्ठाः त्वेइति वसु सुषणनानि सु सननानि सन्तु यूयम् पात स्वस्तिभिः सु अस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वं वरुणः-उत मित्रः वसिष्ठाः मतिभिः त्वां वर्धन्ति त्वे सुषणानि वसु सन्तु यूयं स्वस्तिभिः-नः सदा पात ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! (त्वं वरुणः-उत मित्रः) तू वरने वाला—अपनी ओर मोक्षार्थ वरण करने वाला और संसार में श्रेष्ठकर्म करणार्थ प्रेरित करने वाला है (वसिष्ठाः) तेरे में अत्यन्त वसने वाले उपासकजन (मतिभिः) स्तुति वाणियों से[2] (त्वां वर्धन्ति) तुझे अपने अन्दर बढ़ाते हैं—अधिकाधिक साक्षात् करते हैं (त्वे) तेरे साक्षात् हो जाने पर (सुषणानि वसु सन्तु) सुखसम्भाजक धन—अध्यात्मधन हो (यूयं स्वस्तिभिः-नः सदा पात) तुम[3] कल्याणसाधनों से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वत्सः (स्तुतिवचन बोलने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

पदपाठः— महान् इन्द्रः यः ओजसा पर्जन्योवृष्टिमाꣳइव स्तोमैः वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

---

१. ''यज्ञेन मघवान् भवति'' [तै० ४.४.८.१]।

२. ''वाग्वै मतिः'' [शत० ८.१.२.७]।

३. ''यूयम्'' बहुवचनमादरार्थम्।

अन्वयः—यः इन्द्रः ओजसा महान् वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव वत्सस्य स्तोमैः-वावृधे ॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (ओजसा महान्) निज ऐश्वर्यबल से महान् (वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव) वृष्टि करने वाले मेघ के समान सुख वृष्टि करने वाला (वत्सस्य स्तोमैः-वावृधे) वक्ता—स्तुतिकर्ता के स्तुतिवचनों से अधिकाधिक साक्षात् होता जाता है वह उपासनीय है ॥ १ ॥

१३०८. **कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥**

पदपाठः— **कण्वाः इन्द्रम् यत् अक्रत स्तोमैः यज्ञस्य साधनम् जामि ब्रुवते आयुधा ॥ २ ॥**

अन्वयः—कण्वाः स्तोमैः इन्द्रं यज्ञस्य साधनम्-अक्रत आयुधा जामि ब्रुवत् ॥

पदार्थः—(कण्वाः) स्तुतिवक्ता मेधावीजन[1] (स्तोमैः) स्तुतिसमूहों से (इन्द्रं यज्ञस्य साधनम्-अक्रत) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अध्यात्मयज्ञ का साधन करते हैं बनाते हैं (आयुधा जामि ब्रुवत्) आयोध[2]—आक्रमण करने वाले काम आदि दोषों को बालिश[3] तुच्छ अकिञ्चित्कर कहते हैं—मानते हैं ॥ २ ॥

१३०९. **प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्रजाम् प्र जाम् ऋतस्य पिप्रतः प्र यत् भरन्त वह्नयः विप्राः वि प्राः ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—पिप्रतः-ऋतस्य प्रजाम् यद् 'यदा' प्रभरन्तः—वह्नयः विप्राः ऋतस्य वाहसा ॥

पदार्थः—(पिप्रतः-ऋतस्य) विश्व को पूरण करने[4] विश्व में व्यापने वाले अमृतरूप परमात्मा के[5] (प्रजाम्) प्रजायमान प्रसिद्ध मधु[6] आनन्द को (यद् 'यदा') ज़ब (प्रभरन्तः—वह्नयः) अपने अन्दर प्रकृष्ट रूप से धारण करने हेतु स्तुति से पहुँचाने वाले[7] स्तोता उपासक (विप्राः) मेधावीजन (ऋतस्य वाहसा) अमृतरूप परमात्मा के वाहक स्तुतिसमूह से परमात्मा को वहन करते हैं ॥ ३ ॥

---

१. "कण भाषार्थः" [भ्वादिः] "कण्वः-मेधाविनाम" [निघं० ३.१५]।
२. "आयुधमायोधनात्" [निरु० १०.६]।
३. "जामिः बालिशस्य नाम" [निरु० ४.२०]।
४. "पृ पालनपूर्णयोः" [जुहो०]।
५. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०]।
६. "प्रजा वै मधु" [जै० २.१४४]।
७. "वह्नयो वोढारः" [निरु० ८.४]।

नवम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैखानसः (परमात्मा को विशेष खनन करने खोजने में कुशल)॥
देवता—पवमानः सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत। जीरा अजिरशोचिषः॥ १॥

पदपाठः— पवमानस्य जिघ्नतः हरेः चन्द्राः असृक्षत जीराः अजिरशोचिषः अजिर शोचिषः॥ १॥

अन्वयः—जिघ्नतः अजिर-शोचिषः हरेः पवमानस्य जीराः-चन्द्राः-असृक्षत॥

पदार्थः—(जिघ्नतः) दुःख दोषों को नष्ट करते हुए (अजिर-शोचिषः) गमन व्यापनशील तेज वाले (हरेः) सुखाहर्ता (पवमानस्य) धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा की (जीराः-चन्द्राः-असृक्षत) शीघ्रगति वाली[1] आह्लादकारी आनन्दधारायें हम उपासकों पर बरस रही हैं॥ १॥

१३११. पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः। हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः॥ २॥

पदपाठः— पवमानः रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः शुभ्र शस्तमः हरिश्चन्द्रः हरि चन्द्रः मरुद्गणः मरुत् गणः॥ २॥

१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥ ३॥

पदपाठः— पवमान वि अश्नुहि रश्मिभिः वाजसातमः वाज सातमः दधत्स्तोत्रेसुवीर्यम्॥ ३॥

इन दोनों मन्त्रों की एकवाक्यता है—

अन्वयः—पवमान रथीतमः शुभ्रेभिः-शुभ्रशस्तमः हरिः चन्द्रः मरुद्गणः वाजसातमः पवमानः रश्मिभिः स्तोत्रैः सुवीर्यं दधत् व्यश्नुहि॥

पदार्थः—(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (रथीतमः) अत्यन्त रसवाला[2] (शुभ्रेभिः-शुभ्रशस्तमः) तेजों से अति तेजस्वी (हरिः) अज्ञानहर्ता (चन्द्रः) आह्लादक (मरुद्गणः) मुमुक्षुओं की स्तुति वाणी

---

१. "जोरी च रक्" [उणा० २.२३] "जीरा क्षिप्रनाम" [निघं० ३.१५]।
२. "तं वा एतं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १.२.५१]।

जिसके लिए ऐसा[१] (वाजसातमः) आत्मबल को अत्यन्त देने वाला (पवमानः) अध्येष्यमाणप्रार्थना में लाया हुआ (रश्मिभिः) अपनी आनन्दरश्मियों—धाराओं से (स्तोत्रैः) तुझ स्तोता उपासक के लिये (सुवीर्यं दधत्) शोभन बल धारण कराता हुआ (व्यश्नुहि) व्याप्त हो ॥ २-३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सप्तर्षयः (ज्ञान में पारङ्गत उपासकजन)॥ देवता—पवमानः सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—प्रगाथः (जगती)॥

१३१३. **परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः। दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥ १॥**

पदपाठः— **परीतोषिञ्चतासुतम्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१२)

१३१४. **नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः। सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम्॥ २॥**

पदपाठः— **नूनम् पुनानः अविभिः परि स्रव अदब्धः अ दब्धः सुरभिन्तरः सु रभिन्तरः सुते चित् त्वा अप्सु मदामः अन्धसा श्रीणन्तः गोभिः उत्तरम्॥ २॥**

अन्वयः—अदब्धः सुरभिरः पुनानः अविभिः परिस्रव सुतेचित् अन्धसा-अप्सु त्वा उत्तरम् गोभिः श्रीणन्तः नूनं मदामः॥

पदार्थः—(अदब्धः) हे सोम—परमात्मन्! तू अबाधित (सुरभिन्तरः) अति शोभन जीवन निर्माणकर्ता प्राणों का प्राण[२] (पुनानः) प्रार्थना किया हुआ (अविभिः परिस्रव) प्राप्तिसाधनों—योगाभ्यासों के द्वारा[३] हृदय में परिप्राप्त हो (सुतेचित्) तेरे साक्षात् हो जाने पर (अन्धसा-अप्सु त्वा) आध्यान, स्मरण, चिन्तन से तुझे प्राणों में[४] (उत्तरम्) पश्चात् (गोभिः श्रीणन्तः) इन्द्रियों में मिलाते हुए (नूनं मदामः) निश्चय हम हर्षित—आनन्दित होते हैं। हृदय में साक्षात् परमात्मा प्राणों इन्द्रियों में सुख सञ्चार करता है॥ २॥

१३१५. **परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः॥ ३॥**

---

१. "मरुतो ह वै देवविशः" [कौ० ७.८]।
"गणाः-वाङ्नाम" [निघं० १.११] असमानविभक्तिको बहुव्रीहिः।
२. "प्राणा वै सुरभयः" [तै० ३.९.७.५]।
३. "अव रक्षणगति" [भ्वादि०]।
४. "आपो वै प्राणः" [श० ४.८.२.२]।

पदपाठः— **परि स्वानः चक्षसे देवमादनः देव मादनः क्रतुः इन्दुः विचक्षणः वि चक्षणः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—इन्दुः देवमादनः विचक्षणः क्रतुः स्वानः चक्षसे परि ॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (देवमादनः) मुमुक्षु उपासकों का हर्षाने वाला (विचक्षणः) सर्वज्ञ (क्रतुः) जगत् रचयिता (स्वानः) उपासित हुआ (चक्षसे) उपासक के दर्शनार्थ (परि) परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—वसुः (परमात्मा में वसने वाला आत्मा) ॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—जगती ॥

१३१६. **असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **असाविसोमोअरुषोवृषाहरिः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६२)

१३१७. **पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे । स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनः नाभा पृथिव्याः गिरिषु क्षयम् दधे स्वसारः आपः अभिगाः उदासरन् उत् आसरन् सम् ग्रावभिः वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥**

अन्वयः—महिषस्य पर्णिनः पर्जन्यः पिता पृथिव्या-नाभा गिरिषु क्षयं दधे स्वसारः-आपः-अधि गाः-उदासरन् वीते-अध्वरे ग्रावभिः-'ग्रावाणः' संवसते ॥

पदार्थः—(महिषस्य पर्णिनः) महान्[1] पर्णी—पर्ण—पालन—प्रशस्त पालन धर्म वाला[2] (पर्जन्यः) तृप्तिकर्ता[3] (पिता) पालक सोम—शान्त परमात्मा (पृथिव्या-नाभा) पार्थिव शरीर के मध्य में (गिरिषु क्षयं दधे) स्तुतिसाधनों[4] मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और वाणी में स्थान बनाता है (स्वसारः-आपः-अधि गाः-उदासरन्)

---

१. ''महिषः-महन्नाम'' [निघं० ३.९]।
२. ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' [ऋ० १.१६४.२०] व्यत्ययेन प्रथमास्थाने षष्ठी।
३. ''पर्जन्यः-तृपेराद्यन्तविपरीतस्य'' [निरु० १०.११]।
४. ''गृणाति स्तुतिकर्मा'' [निघं० ३.५] ततः-इः किच्च।

स्तुति वाणियों को अधिकृत कर स्वसरणशील उपासकजन[१] ऊँचे उठते हैं (वीतेअध्वरे) प्राप्त अध्यात्मयज्ञ में अवसर पर (ग्रावभिः–'ग्रावाणः') वे स्तुति करने वाले विद्वान् जन[२] (संवसते) आच्छादन—रक्षण प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि। अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— कविः वेधस्या परि एषि माहिनम् अत्यः न मृष्टः अभि वाजम् अर्षसि अपसेधन् अप सेधन् दुरिता दुः इता सोम नः मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् निः निजम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोमः कविः वेधस्या माहिनम् पर्येषि अत्यः–नः–मृष्टः–वाजम्–अभि–अर्षसि दुरिता–अपसेधन् नः–मृड घृतावसानः निर्णिजं परियासि ॥

पदार्थः—(सोमः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (वेधस्या) विधातृभावना से[३] (माहिनम्) प्रथित संसार को[४] (पर्येषि) परिप्राप्त हो रहा है (अत्यः–नः–मृष्टः–वाजम्–अभि–अर्षसि) घोड़े के समान स्तुति द्वारा प्रेरित अध्यात्म या ध्यान यज्ञ[५] को प्राप्त होता है (दुरिता–अपसेधन्) दुःखों को दूर करता हुआ (नः–मृड) हमें सुखी कर (घृतावसानः) तेज को[६] आच्छादित[७] करता हुआ—उस पर अधिकार करता हुआ (निर्णिजं परियासि) पवित्र उपासक को परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

दशम खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधावाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती ॥

१३१९. श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ १ ॥

पदपाठः— श्रायन्तइवसूर्यम् ॥ १ ॥

---

१. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०]।
२. "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३.९.३.१४]। ३. "वेधसे विधात्रे" [निरु० १०.६]।
४. "इयं वै माहिनम्" [ऐ० ३.३८]। ५. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
६. "वाजं त्वा सरिष्यन्तं.....यज्ञं त्वा........." [श० १.४.३.१५]।
७. "तेजो वै घृतम्" [मै० १.४.८]।

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २६७)

१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः। यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्॥ २॥

पदपाठः— अलर्षिरातिम् अलर्षि रातिम् वसुदाम् वसु दाम् उप स्तुहि भद्राः इन्द्रस्य रातयः यः अस्य कामम् विधतः न रोषति मनः दानाय चोदयन्॥ २॥

अन्वयः—इन्द्रस्य रातिम्-अलर्षि वसुदाम्-उपस्तुहि भद्राः-रातयः अस्य विदधतः कामं यः-न रोषति मनः दानाय चोदयन्॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य रातिम्-अलर्षि) हे उपासक! तू ऐश्वर्यवान् परमात्मा के दान को प्राप्तकर्ता है[1] (वसुदाम्-उपस्तुहि) उस धनदाता की उपासना कर (भद्राः-रातयः) उनके दान कल्याणकारी हैं (अस्य विदधतः) उस तुझ परिचरण करते हुए—उपासना करते हुए की[2] (कामं यः-न रोषति) कामना को जो नष्ट नहीं करता है (मनः दानाय चोदयन्) तेरे मन को दान के हेतु—आत्मदान—आत्मसमर्पण के हेतु॥ २॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

१३२१. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥ १॥

पदपाठः— यतइन्द्रभयामहे॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७४)

१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता। तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे॥ २॥

पदपाठः— त्वम् हि राधसः पते राधसः महः क्षयस्य असि विधर्त्ता वि धर्त्ता तम् त्वा वयम् मघवन् इन्द्र गिर्वणः गिः वनः सुतावन्तोहवामहे॥ २॥

---

१. "दाधर्ति-अलर्षि......." [अष्टा० ७.३.६२] इति निपातनम्।

२. "विधेम परिचरणकर्मा" [निघं० ३.५]।

अन्वयः—राधसः-पते गिर्वणः-मघवन्-इन्द्र त्वं हि महः-राधसः क्षयस्य विधर्ता-असि तं त्वा वयं सुतावन्तः-हवामहे ॥

पदार्थः—(राधसः-पते गिर्वणः-मघवन्-इन्द्र) हे हमारे लिये धन के पालक रक्षक स्तुतियों से वननीय सम्भजनीय अध्यात्मयज्ञ के आधार[१] ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (त्वं हि महः-राधसः क्षयस्य विधर्ता-असि) तू ही महान् धन—मोक्षैश्वर्य एवं महान् निवास मोक्षधाम का विधानकर्ता—प्रदाता और आधार है (तं त्वा) उस तुझ को (वयं सुतावन्तः-हवामहे) हम उपासनारस वाले आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

एकादश खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग अपने अन्दर भरण—धारण करनेवाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे। पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥

पदपाठः— त्वम् सोम असि धारयुः मन्द्रः ओजिष्ठः अध्वरे पवस्व मंऽहयद्रयिः मंऽहयत् रयिः ॥ १ ॥

अन्वयः—सोमः त्वम् अध्वरे धारयुः मन्द्रः मंहयद्रयिः पवस्व ॥

पदार्थः—(सोमः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (अध्वरे) मेरे अध्यात्मयज्ञ—ध्यानसमाधि में (धारयुः) धाराप्रवाह वाला—धाराप्रवाह में आता हुआ (मन्द्रः) हर्षकारी अत्यन्त ओजस्वी—आत्मबल देने वाला (मंहयद्रयिः) दातव्य धन वाला (पवस्व) प्राप्त हो ॥ १ ॥

१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

पदपाठः— त्वम् सुतः मदिन्तमः दधन्वान् मत्सरिन्तमः इन्दुःसत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

अन्वयः—त्वम् सुतः मदिन्तमः दधन्वान् मत्सरिन्तमः इन्दुः सत्राजित् अस्तृतः ॥

पदार्थः—(त्वम्) हे परमात्मन्! (सुतः) साक्षात् हुआ (मदिन्तमः) अति-हर्षकारी (दधन्वान्) उपासकों का धारणकर्ता (मत्सरिन्तमः) अधिक तृप्तिकर (इन्दुः) रसीला (सत्राजित्) सबको जीतने वाला (अस्तृतः) अविचलित है अतः

---

१. ''यज्ञेन मघवान्'' [तै० सं० ४.४.८.१]।

उपास्य है॥ २॥

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममा भर॥ ३॥

पदपाठः— **त्वम् सुष्वाणः अद्रिभिः अ द्रिभिः अभि अर्ष कनिक्रदत् द्युमन्तम् शुष्मम् आ भर॥ ३॥**

अन्वयः—त्वम् अद्रिभिः सुष्वाणः कनिक्रदत् अभि-अर्ष द्युमन्तं शुष्मम्-आभर॥

पदार्थः—(त्वम्) हे सोम—परमात्मन्! तू (अद्रिभिः सुष्वाणः) स्तुतिकर्ता उपासकों द्वारा उपासित (कनिक्रदत्) साधु प्रवचन करता हुआ (अभि-अर्ष) प्राप्त हो (द्युमन्तं शुष्मम्-आभर) दीप्ति वाले बल को हमारे अन्दर आभरित कर॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—आप्सवो मनुः (देह में व्याप्त अभोक्ता परमात्मा का मनन करने वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा। आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः॥ १॥

पदपाठः— **पवस्वदेववीतये॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७१)

१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः। त्वां देवासो अमृताय कं पपुः॥ २॥

पदपाठः— **तव द्रप्साः उदप्रुतः उद प्रुतः इन्द्रम् मदाय वावृधुः त्वाम् देवासः अमृताय अ मृताय कम् पपुः॥ २॥**

अन्वयः—तव द्रप्साः-उदप्रुतः मदाय इन्द्रं वावृधुः देवासः अमृताय त्वां कं पपुः॥

पदार्थः—(तव द्रप्साः-उदप्रुतः) हे इन्दो सोम—रसपूर्ण परमात्मन् तेरे आनन्दविन्दु रसभरे रसीले (मदाय) 'मदेन' हर्ष से[1] (इन्द्रं वावृधुः) आत्मा को बढ़ाते हैं (देवासः) मुमुक्षु (अमृताय) अमर होने के लिये (त्वां कं पपुः) तुझ सुखस्वरूप को पान करते हैं॥ २॥

---

१. विभक्तिव्यत्ययः।

१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्। वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः॥ ३ ॥

पदपाठः— आ नः सुतासः इन्दवः पुनानाः धावत रयिम् वृष्टिद्यावः वृष्टि द्यावः रीत्यापः रीति आपः स्वर्विदः स्वः विदः॥ ३ ॥

अन्वयः—सुतासः पुनानाः इन्दवः रयिम् नः आधावत वृष्टिद्यावः रीत्यापः स्वर्विदः॥

पदार्थः—(सुतासः) उपासित (पुनानाः) पवित्र करने वाले (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्[1] (रयिम्) पोष—अध्यात्मपोष उत्कर्ष को[2] (नः) हमारे लिये (आधावत) प्राप्त करा (वृष्टिद्यावः) दीप्तवृष्टि वाला तेजवर्षक—ज्योतिःप्रेरक (रीत्यापः) श्रवणप्रवाह वाला[3] (स्वर्विदः) मोक्ष प्राप्त कराने वाला परमात्मा॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अम्बरीषः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला उपासक)॥
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥
छन्दः—उष्णिक्॥

१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण। यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति॥ १ ॥

पदपाठः— परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिम्॥ १ ॥
(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५२)

१३३०. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम्। प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः॥ २ ॥

पदपाठः— द्विः यम् पञ्च स्वयशसम् स्व यशसम् सखायः स खायः अद्रिसꣳहतम् अद्रि सꣳहतम् प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम् प्रस्नापयन्ते प्र स्नापयन्ते ऊर्मयः॥ २ ॥

अन्वयः—त्यं-अद्रिसंहतम् स्वयशसम् इन्द्रस्य प्रियं काम्यं द्विः पञ्च सखायः ऊर्मयः प्रस्नापयन्त॥

---

१. बहुवचनमादरार्थम्।
२. ''रयिं देहि पोषं देहि'' [काठ० १.७]।
३. ''रीङ् श्रवणे'' [दिवादि०]।

पदार्थः—(त्यं-अद्रिसंहतम्) जिस श्लोककृत्[1] स्तुतिकर्ताओं से सङ्गत—स्तुतिकर्ताओं को प्राप्त होने वाले (स्वयशसम्) स्वाधार यशोरूप[2] (इन्द्रस्य प्रियं काम्यं) आत्मा को प्रिय कमनीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (द्विः पञ्च सखायः) दश प्राण—इन्द्रिय शक्तियाँ[3] मनन श्रवण स्तवन आदि (ऊर्मयः) ऊर्मिरूप उन्नत हुई (प्रस्नापयन्त) प्रख्यात कराते हैं—साक्षात् कराते हैं ॥ २ ॥

१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे। नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने वृत्र घ्ने परि सिच्यसे नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे सदन सदे ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम वृत्रघ्ने दक्षिणावते वीराय सदनासदे नरे इन्द्राय पातवे परिषिच्यसे ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वृत्रघ्ने) पाप नष्ट कर चुका जो उस निष्पाप[4] (दक्षिणावते) कामवान्—कामना वाले[5] (वीराय) कर्मशील—स्वतन्त्र कर्म करने वाले (सदनासदे) शरीर या हृदय सदन में बैठने वाले (नरे) मुमुक्षु[6] (इन्द्राय) आत्मा के (पातवे) पान—धारण करने को (परिषिच्यसे) प्रार्थित किया जाता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण-त्रास को क्षीणकर्ता जपपरायण स्वाध्यायशील)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥

१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १ ॥

पदपाठः— पवस्वसोम ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४३०)

---

१. "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १.५]।
२. "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२.३]।
३. "प्राणो वै सखा" [श० १.८.१.२]।
४. सर्वत्र चतुर्थी षष्ठ्यर्थे "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" [अष्टा० २.३.६२] "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.३.५.७] "शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा"।
५. "दक्षिणा कामः" [मै० १.९.४]।
६. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९]।

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ २ ॥

पदपाठः— प्र ते सोतारः रसम् मदाय पुनन्ति सोमम् महे द्युम्नाय ॥ २ ॥

अन्वयः—ते सोतारः मदाय महे द्युम्नाय सोमं रसं प्रपुनन्ति ॥

पदार्थः—(ते सोतारः) वे निष्पन्न करने वाले साधकजन (मदाय) हर्ष आनन्द पाने के लिये (महे द्युम्नाय) महान् यश के लिये (सोमं रसं प्रपुनन्ति) रसरूप सोम शान्तस्वरूप परमात्मा के अध्येषित करते हैं—सत्कृत करते हैं पूजते हैं ॥ २ ॥

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— शिशुम् जज्ञानम् हरिम् मृजन्ति पवित्रे सोमम् देवेभ्यः इन्दुम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—शिशुम् जज्ञानाम् हरिम् इन्दुम् सोमम् पवित्रे देवेभ्यः मृजन्ति ॥

पदार्थः—(शिशुम्) प्रशंसनीय[१] (हरिम्) दुःखहर्ता—(इन्दुम्) दीप्तिमान्—(सोमम्) शान्तस्वरूप परमात्मा को (मृजन्ति) प्राप्त करते हैं[२] ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्षधाम का इच्छुक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्। इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

पदपाठः— उपोषुजातमप्तुरम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४८७, ७६२)

१३३६. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव। य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥ २ ॥

पदपाठः— तमिद्वर्द्धन्तुनोगिरः वत्सम् सꣳशिश्वरीः सम् शिश्वरीः इव यः इन्द्रस्य हृदꣳसनिः हृदम् सनिः ॥ २ ॥

---

१. ''शिशुः शंसनीयो भवति'' [निरु० १०.३९]।

२. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

अन्वयः—तम्-इत् नः-गिरः संवर्धन्तु वत्सं शिश्वरीः-इव यः-इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥

पदार्थः—(तम्-इत्) उस सोम—परमात्मा को ही (नः-गिरः संवर्धन्तु) हमारी स्तुतियाँ बढ़ावा दें—हमारी ओर आने को उत्साहित करें[1] (वत्सं शिश्वरीः-इव) जैसे शिशु वाली[2] माताएँ दूध पिलाने वाली अपनी ओर आने के लिये बच्चे को उत्साहित करती हैं (यः-इन्द्रस्य हृदं सनिः) जो उपासक आत्मा के हृदय का सम्भक्ता—हृदय में रहने वाला या हृदयग्राही हो ॥ २ ॥

१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्। वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥

पदपाठः— अर्ष नः सोम शम् गवे धुक्षस्व पिप्युषीम् इषम् वर्द्ध समुद्रम् सम् उद्रम् उक्थ्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम नः-गवे शम्-अर्ष पिप्युषीम्-इषं धुक्षस्व उक्थ्यं समुद्रं वर्ध ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (नः-गवे शम्-अर्ष) हमारी वाणी के लिये[3] सुख प्रेरित कर (पिप्युषीम्-इषं धुक्षस्व) बढ़ी-चढ़ी दर्शन कामना को प्रपूर्ण कर (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) हमारे प्रशंसनीय मन को[4] बढ़ा ॥ ३ ॥

द्वादश खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन ज्ञानकर्म उपासना से प्राप्त ज्योतियों वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

पदपाठः— आघायेअग्निमिन्धते ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३३)

१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

---

१. "तमिद्वर्धन्तु नो गिरः-वर्धयन्तु नो गिरः" [निरु० १.१०]।
२. "शिश्वरी यथा 'ऋतावरी' ऋतवती" [निरु० २.२५]।
३. "गौः वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
४. "मनो वै समुद्रः" [श० ८.५.२.४]।

पदपाठः— बृहन् इत् इध्मः एषाम् भूरि शस्त्रम् पृथुः स्वरुः येषामिन्द्रोयुवासखा ॥ २ ॥

अन्वयः—येषां युवासखा-इन्द्रः एषाम् बृहन्-इत्-इध्मः भूरि शस्त्रम् पृथुः स्वरुः ॥

पदार्थः—(येषां युवासखा-इन्द्रः) जिन उपासकों का सदा अजर—बलवान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा साथी हो गया (एषाम्) इनका—उनका (बृहन्-इत्-इध्मः) महान् तेज (भूरि शस्त्रम्) बहुत[1] स्तुतिवाणी[2] (पृथुः स्वरुः) प्रथित अचनाकर्म[3] होता है ॥ २ ॥

१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

पदपाठः— अयुद्ध अ युद्धः इत् युधा वृतम् शूरः आ अजति सत्वभिः येषामिन्द्रोयुवासखा ॥ ३ ॥

अन्वयः—युधा वृतम् आ-अजति 'आजयाती' ॥

पदार्थः—(युधा वृतम्) युद्ध करने वाले काम, क्रोध आदि से आवृत हुए—घिरे हुए अपने को (आ-अजति 'आजयाति') आगमयति बचा लेता है[4] (येषाम् इन्द्रः युवा सखा) जिनका अजर बलवान् परमात्मा सदा साथ होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अधिक गति से प्रवेश करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥ १ ॥

पदपाठः— यएकइद्विदयते ॥ १ ॥
(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८९)

१३४२. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग॥ २ ॥

---

१. "भूरि बहुनाम" [निघं० ३.१]।
२. "वग्धि शस्त्रम्" [ऐ० ३.४४]।
३. "स्वरति-अर्चनाकर्मा" [निघं० ३.१४]।
४. "अज गतिक्षेपणयोः" [भ्वादि०] अन्तर्गतणिजर्थः।

पदपाठः— **यः चित् हि त्वा बहुभ्यः आ सुतावान् आविवासति आ विवासति उग्रम् तत् पत्यते शवः इन्द्रः अङ्ग ॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्रः बहुभ्यः यः कः-चित् सुतावत् त्वा-अविवासति अङ्ग उग्रं शवः पत्यते ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा! (बहुभ्यः) बहुतेरे मनुष्यों में से (यः कः-चित्) जो कोई—विरला ही (सुतावत्) उपासना रसवाला (त्वा-अविवासति) तेरी समन्तरूप से परिचर्या[1] उपासना करता है (अङ्ग) शीघ्र ही वह (उग्रं शवः) तेजस्वी बल को (पत्यते) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१३४३. **कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग॥ ३ ॥**

पदपाठः— **कदा मर्त्तम् अराधसम् अ राधसम् पदा क्षुम्प इव स्फुरत् कदा नः शुश्रवत् गिरः इन्द्रः अङ्ग ॥ ३ ॥**

अन्वयः—कदा अराधसं मर्तम् पदा क्षुम्पम्-इव स्फुरत् कदा इन्द्रः नः-गिरः अङ्ग शुश्रवत् ॥

पदार्थः—(कदा) किसी समय (अराधसं मर्तम्) अराधना-उपासना न करने वाले—नास्तिकजन को (पदा क्षुम्पम्-इव स्फुरत्) पैर से सर्पछत्र—खुम निर्बल—वर्षा ऋतु में उत्पन्न छत्र बूटी को नष्ट करने जैसा नष्ट कर देता है[2] (कदा) किसी भी समय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नः-गिरः) हम उपासकों की स्तुतियों—प्रार्थनाओं को (अङ्ग शुश्रवत्) शीघ्र सुने—पूरा कर सके ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१३४४. **गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः। ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥ १ ॥**

पदपाठः— **गायन्तित्वागायत्रिणः॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४२)

१३४५. **यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥ २ ॥**

---

१. ''त्रिवासति परिचर्याकर्मा'' [निघं० ३.५]।
२. ''स्फुरति वधकर्मा'' [निघं० २.१९]।

पदपाठः— **यत् सानोः सानु आरुहः आ अरुहः भूरि अस्पष्ट कर्त्वम् तत् इन्द्रः अर्थम् चेतति यूथेन वृष्णिः एजति ॥ २ ॥**

अन्वयः—यत् सानोः सानु–आरुहः भूरि कर्त्वम्–अस्पष्ट तत् इन्द्रः–अर्थं चेतति वृष्णिः–यूथेन रेजति ॥

पदार्थः—(यत्) कि जब उपासक (सानोः सानु–आरुहः) एक उच्च योगभूमि से दूसरी योगभूमि पर आरूढ़ होता जाता है (भूरि कर्त्वम्–अस्पष्ट) बहुत कर्म—अभ्यासकर्म[1] को स्पर्श—सेवन या पार कर लेता है[2] (तत्) तो वह (इन्द्रः–अर्थं चेतति) परमात्मा अभीष्ट को समझाता है, पुनः (वृष्णिः–यूथेन रेजति) सुखवर्षक परमात्मा मिलने योग्य सब अर्थमात्र प्रदान के मिष से प्राप्त होता है[3] ॥ २ ॥

१३४६. **युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **युङ्क्ष्व हि केशिना हरीइति वृषणा कक्ष्यप्रा कक्ष्य प्रा अथ नः इन्द्र सोमपाः सोम पाः गिराम् उपश्रुतिम् उप श्रुतिम् चर ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सोमपाः–इन्द्र वृषणा कक्ष्यप्रा केशिना हरी युङ्क्ष्व हि अथ नः गिरां श्रुतिम्–उपचर ॥

पदार्थः—(सोमपाः–इन्द्र) हे उपासनारस के पान कर्ता—स्वीकारकर्ता तू (वृषणा कक्ष्यप्रा) सुखवर्षक कक्षगत—कक्षीवान् तेरे समीपवर्ती आत्मा को तृप्त करने वाले (केशिना) रश्मिमान्[4] व्यापक प्रभाव वाले (हरी) तुझे हम तक ले आने वाले और हमें तुझ तक ले जाने वाले ऋक्, साम—ज्योति, शान्ति गुणों को[5] (युङ्क्ष्व हि) अवश्य युक्त कर (अथ) अनन्तर—फिर (नः) हमारी (गिरां श्रुतिम्–उपचर) वाणियों की श्रुति—श्रवणीय प्रार्थना को उपयुक्त कर—स्वीकार—पूरी कर ॥ ३ ॥

इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

१. ''कर्त्वं कर्मनाम'' [निघं० २.१]।

२. ''स्पर्श बाधनस्पर्शयोः'' [भ्वादि०]।

३. ''यू मिश्रणे'' [भ्वादि०]।''यूथस्य माता सर्वस्य माता'' [निरु० ११.४९]।

४. ''केशा रश्मयस्तद्वान्'' [निरु० १२.२५]।''अश्नोतेरश् च'' [उणा० ४.४६]।

५. ''ऋक् सामे वा इन्द्रस्य हरी'' [मै० ३.१०.६]।''ज्योतिस्तदक्'' [जै० १.७६]।''यच्च शिवं शान्तं वचस्तत् सोम'' [जै० ३.५२]।

अथ एकादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा (दीप्त-दीप्तिमान् या सर्वप्रकाशक अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३४७. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च॥ १॥

पदपाठः— सुषमिद्धः सु समिद्धः नः आ वह देवान् अग्ने हविष्मते होतरिति पावक यक्षि च॥ १॥

अन्वयः—पावक हविष्मते होता च यक्षि अग्ने सु समिद्धः नः 'माम्' देवान्-आवह॥

पदार्थः—(पावक) हे दीप्त पवित्रकर्ता परमात्मन्! तू (हविष्मते) मुझ स्वात्म हवि देने वाले[1] समर्पित करने वाले उपासक के लिये (होता) होता—ऋत्विक् बन (च) और (यक्षि) अध्यात्मयज्ञ करा, तथा (अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (सु समिद्धः) सम्यक् प्रकाश युक्त हुआ (नः 'माम्') मुझे[2] (देवान्-आवह) अमर[3] मुक्त आत्माओं के प्रति प्राप्त करा—ले जा मोक्ष में पहुँचा॥ १॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—तनूनपात् (आत्मा को पतित न करने वाला किन्तु अमर बनाने वाला)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३४८. मधुमन्तं तनूनापद्यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुह्यूतये॥ २॥

पदपाठः— मधुमन्तम् तनूतपात् तनू नपात् यज्ञम् देवेषु नः कवे अद्य अ द्य कृणुहि ऊतये॥ २॥

अन्वयः—तनूनपात् कवे नः मधुमन्तं यज्ञम् अद्य ऊतये देवेषु कृणुहि॥

१. "आत्मा वै हविः" [काठ० ७.५]।

२. "अस्मदो द्वयोश्च" [अष्टा० १.२.५९]।

३. "अमृता देवाः" [श० २.१.३.४]।

पदार्थः—(तनूनपात् कवे) हे अपनी देहरूप आत्मा[1] को न गिराने वाले—अमर बनाने वाले क्रान्तदर्शी परमात्मन्! तू (नः) मुझ आत्मयाजी के (मधुमन्तं यज्ञम्) आत्मा वाले[2] स्वात्मसमर्पण वाले यज्ञ को (अद्य) आज—इसी जीवन में (ऊतये) आत्मरक्षा के लिये—अमरता के लिये (देवेषु कृणुहि) अमर-मुक्त आत्माओं में कर—मुक्त आत्मा बनने में सफल कर ॥ २ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—नराशंसः (नरों [मुमुक्षुओं] का प्रशंसनीय परमात्मा) छन्दः—गायत्री॥

१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये। मधुजिह्वं हविष्कृतम्॥ ३ ॥

पदपाठः— नराशंसम् इह प्रियम् अस्मिन् यज्ञे उप ह्वये मधुजिह्वम् मधु जिह्वम् हविष्कृतम् हविः कृतम्॥ ३ ॥

अन्वयः—इह-अस्मिन् यज्ञे प्रियम् मधुजिह्वम् हविष्कृतम् नराशंसम् उपह्वये ॥

पदार्थः—(इह-अस्मिन् यज्ञे) इस जीवन में इस आत्मयजनकर्म अध्यात्मयज्ञ में (प्रियम्) प्रिय (मधुजिह्वम्) मधुरवाणी[3] मधुर प्रवचन जिसका है या मधुर स्तुतिवाणी जिसके लिये है उस (हविष्कृतम्) आत्महवि को संस्कृत करने वाले (नराशंसम्) नरों-मुमुक्षुओं से[4] प्रशंसनीय—अतिस्तुतियोग्य परमात्मा को (उपह्वये) अपहूत करता हूँ—अपनाता हूँ—उपासना में लाता हूँ ॥ ३ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इडः (स्तुतियोग्य परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह। असि होता मनुर्हितः ॥ ४॥

पदपाठः— अग्ने सुखतमे सु खतमे रथे देवान् ईडितः आ वह असि होता मनुर्हितः मनुः हितः ॥ ४॥

अन्वयः—अग्ने ईडितः सुखतमे रथे देवान्-आवह मनुर्हितः-होता-असि ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (ईडितः) स्तुति को प्राप्त हुआ (सुखतमे रथे) अत्यन्त सुखरूप रमणस्थान में मोक्ष में (देवान्-आवह)

---

१. ''य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्'' [श० १४.६.७.३०]।
२. ''आत्मा वै पुरुषस्य मधु'' [तै० सं० २.३.२.९]।
३. ''जिह्वा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।
४. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।

दिव्य अभौतिक सङ्कल्पात्मक मन आदि शक्तियों को समन्तरूप से प्राप्त करा[1] (मनुर्हितः-होता-असि) क्योंकि तू हम उपासक मनुष्यों का हितकर होता—बुलाने वाला है ॥ ४ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥ देवता—आदित्यः (अदिति—अखण्ड सुख सम्पत्ति—मुक्ति का स्वामी परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

पदपाठः— यत् अद्य अ द्य सूरे उदिते उत् इते अनागाः अन् आगाः मित्रः मि त्रः अर्यमा सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

अन्वयः—यत् अद्य सूरे-उदिते अनागाः मित्रः अर्यमा सविता भगः सुवाति ॥

पदार्थः—(यत्) कि (अद्य) आज—इसी जीवन में (सूरे-उदिते) सूर्य उदय होते ही (अनागाः) पाप रहित जिससे हो जाते हैं वह ऐसा (मित्रः) संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरक (अर्यमा) मुक्तिदाता[2] (सविता) उत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सुवाति) हमें अध्यात्मयज्ञ में सम्पन्न करें ॥ १ ॥

१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥

पदपाठः— सुप्रावीः सु प्रावीः अस्तु सः क्षयः प्र नु यामन् सुदानवः सु दानवः ये नः अंहः अतिपिप्रति अति पिप्रति ॥ २ ॥

अन्वयः—सः-क्षयः सुप्रावीः-अस्तु यामन्-सुदानवः-नु प्र ये नः-अंहः-अति पिप्रति ॥

पदार्थः—(सः-क्षयः) वह निवास स्थान शरीररूप (सुप्रावीः-अस्तु) उत्तम रक्षा वाला हो—सुरक्षित रहे (यामन्-सुदानवः-नु प्र) जीवन यात्रा में दानकर्ता उक्त मित्र—प्रेरक, अर्यमा—मुक्तिदाता, सविता—उत्पादक, भग—ऐश्वर्यवान् परमात्मा दानकर्ता हों—शीघ्र प्रवर्तमान रहें (ये नः-अंहः-अति पिप्रति) जो हमारे पाप को अति परे—दूर कर देता है[3] ॥ २ ॥

---

१. "शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनो भवति" [श० १४.२.२.१९]।
२. "एष वा अर्यमा यो ददाति" [काठ० ११.१४]।
३. बहुवचनमादरार्थम्।

१३५३. उत त्स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥ ३ ॥

पदपाठः— उत स्वराजः स्व राजः अदितिः अ दितिः अदब्धस्य अ दब्धस्य व्रतस्य ये महः राजानः ईशते ॥ ३ ॥

अन्वयः—अदितिः ये स्वराजः उत अदब्धस्य व्रतस्य महः राजानः ईशते ॥

पदार्थः—(अदितिः) 'अदितेः' अखण्ड सुख सम्पत्ति—मुक्ति का (ये स्वराजः) जो स्वयं राजा (उत) अपि—और (अदब्धस्य व्रतस्य) अहिंसनीय—अबाध्य कर्म का (महः राजान ईशते) महान् राजा होकर शासन करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—स्तुति वाणी वाला[1])॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३५४. उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १ ॥

पदपाठः— उत्वामन्दन्तुसोमाः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १९४)

१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि। न हि त्वा कश्चन प्रति॥ २ ॥

पदपाठः— पदा पणीन् अराधसः अ राधसः नि बाधस्व महान् असि न हि त्वा कः च न प्रति ॥ २ ॥

अन्वयः—अराधसः पणीन् पदा निबाधस्व महान्-असि त्वा प्रति न हि कश्चन ॥

पदार्थः—(अराधसः पणीन्) राधनारहित—उपासनारहित स्तुतिकर्ताओं—ऊपर से उपासना प्रदर्शनकर्ताओं को (पदा निबाधस्व) पैर से ठुकराते हैं ऐसे ठुकरादे—ठुकराता है (महान्-असि) तू महान् है (त्वा प्रति) तेरा प्रतिपक्षी—प्रतिरोधी या तेरा प्रतिमान—तेरे समान उपास्यदेव (न हि कश्चन) कोई भी नहीं है ॥ २ ॥

१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम्॥ ३ ॥

---

१. ''गाथा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

पदपाठः— त्वम् ईशिषे सुतानाम् इन्द्र त्वम् असुतानाम् अ सुतानाम् त्वम् राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्र त्वम् सुतानाम्-ईशिषे त्वम्-असुतानाम् राजा जनानाम् ॥

पदार्थः—(इन्द्र त्वम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (सुतानाम्-ईशिषे) उपासनारस सम्पादकों का स्वामी हो रहा है (त्वम्-असुतानाम्) तू उपासनारस-रहितों—नास्तिकों का भी स्वामी हो रहा है (त्वं राजा जनानाम्) तू राजा है ज़ायमान प्राणियों का भोगप्रदानार्थ[1] भोग यथायोग्य सब देता है, यह तेरी महती दया है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पराशरः (दोषों का अत्यन्त नष्टकर्ता उपासक) ॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु । सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

पदपाठः— आ जागृविः विप्रः वि प्रः ऋतम् मतीनाम् सोमः पुनानः असदत् चमूषु सपन्ति यम् मिथुनासः निकामाः नि कामाः अध्वर्यवः रथिरासः सुहस्ताः सु हस्ताः ॥ १ ॥

अन्वयः—जागृविः विप्रः सोमः मतीनाम्-ऋतं पुनानः चमूषु-आसदत् यम् मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः सपन्ति ॥

पदार्थः—(जागृविः) जागरूक—जागरणशील—सदा सावधान ज्ञानपूर्ण (विप्रः) विशेष कामनापूरक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मतीनाम्-ऋतं पुनानः) मेधावी प्रार्थनाकर्ताओं के[2] सत्य प्रार्थनीय विषय को प्राप्त कराने के हेतु (चमूषु-आसदत्) अदन—स्वादन पात्रों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारों में आ बैठता है (यम्) जिसको (मिथुनासः) मिले हुए (निकामाः) बाह्यकामनाओं को छोड़ निहित—आध्यात्मिक कामनाओं वाले (रथिरासः) रमणीय मोक्ष के अधिकारी (सुहस्ताः) शोभन हस्त—यशोभागी (अध्वर्यवः सपन्ति) अध्यात्मयज्ञकर्ता उपासकजन स्पर्श करते हैं या सम्प्राप्त करते हैं[3] ॥ १ ॥

---

१. 'सुतानाम्' कर्तरि क्तश्छान्दसो मतुब्लोपश्च ।

२. ''मतयो मेधाविनः'' [निघं० ३.१५] ।

३. ''सपतेः स्पृशतिकर्मणः'' [निरु० ५.१६] ''षप समवाये'' [भ्वादि०] ।

१३५८. **स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः। प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत्॥ २॥**

पदपाठः— **सः पुनानः उप सूरे दधानः आ उभेइति अप्राः रोदसीइति वि सः आवरिति प्रिया चित् यस्य प्रियसासः ऊती सतः धनम् कारिणे न प्र यꣳसत्॥ २॥**

अन्वयः—सः पुनानः सूरे-उपदधानः उबे रोदसी-आ-अप्राः सः वि-आवः यस्य सतः प्रिया चित् प्रियासः ऊती प्रयंसत्-धनं कारिणे न॥

पदार्थः—(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः) व्यापता हुआ—विभुगति करता हुआ[1] (सूरे-उपदधानः) संसार में जन्म पाने वाले आत्मा के निमित्त[2] कृपा करता हुआ (उभे रोदसी-आ-अप्राः) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक को अपनी व्यापन गति शक्ति से भरता है और (सः) वह (वि-आवः) उन्हें खोल देता है—उन्हें प्रकट करता है—उत्पन्न करता है (यस्य सतः प्रिया चित्) जिस नित्य प्रिय उपासक आत्मा के लिये[3] (प्रियासः) परमात्मा के प्रिय आनन्दधाराप्रवाह (ऊती) रक्षा के लिये है, उन्हें (प्रयंसत्-धनं कारिणे न) प्रदान करता है कर्मचारी के लिये जैसे धन प्रदान करता है॥ २॥

१३५९. **स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावित्। यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन्॥ ३॥**

पदपाठः— **सः वर्द्धिता वर्द्धनः पूयमानः सोमः मिढ्वान् अभि न ज्योतिषा आवीत् यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः पद ज्ञाः स्वर्विद स्वः विदः अभिगा अद्रिम् अ द्रिम् इष्णन्॥ ३॥**

अन्वयः—सः-सोमः वर्धिता वर्धनः मीढ्वान् पुनानः नः ज्योतिषा आवीत् यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदः गाः-अभि-अद्रिम्-इष्णन्॥

पदार्थः—(सः-सोमः) वह शान्तस्वरूप परमात्मा (वर्धिता वर्धनः) बढ़ाने वाला स्वयं समृद्ध (मीढ्वान्) सुखवर्षक (पुनानः) प्राप्त होता हुआ (नः) हमें (ज्योतिषा) अपनी ज्योति से (आवीत्) रक्षा करता है, तथा (यत्र) जहाँ (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व गुरु आदि उपासक (पदज्ञाः स्वर्विदः) परमपद परमात्मा को जानने वाले मोक्ष को प्राप्त कर चुके हुए (गाः-अभि-अद्रिम्-इष्णन्) स्तुति

---

१. ''पवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]। २. निमित्तसप्तमी।

३. षष्ठ्या आकारदेशश्छान्दसः, सा च चतुर्थ्यर्थे।

वाणियों को अभिगत कर—जीवन में सेवन कर अखण्ड मोक्ष चाहा करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट स्तुति करने वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

पदपाठः— माचिदन्यद्विशꣳसत ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४२)

१३६१. अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम्। विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

पदपाठः— अवक्रक्षिणम् अव क्रक्षिणम् वृषभम् यथा जुवम् गाम् न चर्षणीसहम् चर्षणि सहम् विद्वेषणम् वि द्वेषणम् संवननम् सम् वननम् उभयङ्करम् उभयम् करम् मꣳहिष्ठम् उभयाविनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—अवक्रक्षिणम् वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् विद्वेषणं संवननम्-उभयङ्करम् मंहिष्ठम्-उभयाविनम् ॥

पदार्थः—(अवक्रक्षिणम्) काम क्रोध आदि के छिन्न भिन्न करने वाले[१] (वृषभं यथा) वृषभ के समान (जुवं गां न) प्राप्त[२] पृथिवी[३] के सदृश (चर्षणीसहम्) देखने वाले ज्ञानवान् उपासक के तृप्तिकर्ता[४] इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को, तथा (विद्वेषणं संवननम्-उभयङ्करम्) पापियों-नास्तिकों से द्वेषकर्ता, उपासकों को सम्भागी बनाने वाले—अपनाने वाले दोनों द्वेष करने और प्रसाद देने वाले (मंहिष्ठम्-उभयाविनम्) दाता और दोनों के रक्षक परमात्मा को 'शंसत'[५] प्रशंसित करो ॥ २ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन-गमन प्रवेश करने वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥

---

१. "कृष विलेखने" [भ्वादि०]।
२. "जुङ् गतौ" [भ्वादि०]।
३. "गौः पृथिवी" [निघं० १.१]।
४. "षह चक्यर्थे" [दिशादि०] "चक तृप्तौ" [भ्वादि०]।
५. "शंसत" पूर्वमन्त्रादनुवर्तते।

पदपाठः— **उदुत्येमधुमत्तमाः ॥ १ ॥**

अन्वयः—त्ये स्तोमासः मधुमत्तमाः-गिरः-उ-उदीरते सत्राजितः धनसाः अक्षितोतयः रथाः-इव ॥

पदार्थः—(त्ये स्तोमासः) हे इन्द्र—परमात्मन्! वे उपासक आत्माएँ[1] (मधुमत्तमाः-गिरः-उ-उदीरते) अत्यन्त मधुर—नम्र स्तुतियाँ तेरे लिये प्रेरित करते हैं (सत्राजितः) काम आदि सर्व दोषों को जीतने वाले (धनसाः) धन के भागी—धनपात्र (अक्षितोतयः) तेरी स्थिर रक्षा वाले (रथाः-इव) तेरे लिये रमण स्थान जैसे या रथ समान हैं ॥ १ ॥

१३६३. **कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमाशत। इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्॥ २ ॥**

पदपाठः— **कण्वाः इव भृगवः सूर्याः इव विश्वम् इत् धीतम् आशत इन्द्रम् स्तोमेभिः महयन्तः आयवः प्रियमेधासः प्रिय मेधासः अस्वरन्॥ २ ॥**

अन्वयः—कण्वाः-इव भृगवः सूर्याः-इव धीतं विश्वमित्-आशत प्रियमेधासः-आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं महयन्तः अस्वरन्॥

पदार्थः—(कण्वाः-इव) मेधावी[2] (भृगवः) तेजस्वी (सूर्याः-इव) योग्य परमात्मा की ओर सरण—गमन करने वाले उपासक (धीतं विश्वमित्-आशत) ध्यान करने ध्यान में आने योग्य विश्व व्यापक को प्राप्त होते हैं (प्रियमेधासः-आयवः) प्रिय बुद्धि वाले जन (स्तोमेभिः) स्तुतिसमूहों से (इन्द्रं महयन्तः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को प्रशंसित करते हुए (अस्वरन्) अर्चित[3] करते हैं—श्रद्धापूर्वक अपने अन्दर बिठाते हैं ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण त्रास को क्षीण करने वाले जप स्वाध्यायशील)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१३६४. **पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे॥ १ ॥**

पदपाठः— **पर्यूषुप्रधन्ववाजसातये॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४२८)

---

१. ''स्तोम आत्मा'' [काठ० १३.८]।
२. 'अत्र मन्त्रे' इवशब्दः पदपूरणः सामञ्जस्यात् ''इवोऽपि दृश्यते'' [निरु० २.१०]।
३. ''स्वरति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः। गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या॥ २॥

पदपाठः— अजीजनः हि पवमान सूर्यम् विधारे वि धारे शक्मना पयः गोजीरया गो जीरया रंहमाणः पुरन्ध्या पुरम् ध्या॥ २॥

अन्वयः—पवमान विधारे शक्मना सूर्यं पयः अजीजनः-हि गोजीरया पुरन्ध्या रंहमाणः॥

पदार्थः—(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (विधारे) विशेष धारा-स्तुति वाणी[1] जिसके अन्दर है ऐसे उपासक आत्मा में (शक्मना) कर्मशक्ति से[2] (सूर्यं पयः) सूर्य समान[3] ज्ञानप्रकाश[4] (अजीजनः-हि) निश्चित उत्पन्न करता है (गोजीरया पुरन्ध्या रंहमाणः) स्तुतिवाणी से प्रेरित—अतिशयित बुद्धि से[5] उपकारक बुद्धि से उपासक के अन्दर प्राप्त होता हुआ॥ २॥

१३६६. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये। वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे॥ ३॥

पदपाठः— अनुहित्वासुतꣳसोममदामसि॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४३२)

पञ्चम तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण त्रास को क्षीण करने वाले जप स्वाध्यायशील)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥

१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय॥ १॥

पदपाठः— परिप्रधन्व॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४२७)

१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः॥ २॥

पदपाठः— एव अमृताय अ मृताय महे क्षयाय सः शुक्रः अर्ष दिव्यः पीयूषः॥ २॥

---

१. "धारा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
२. "शक्म कर्मनाम" [निघं० २.१]।
३. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।
४. "पयः-ज्वलतो नाम" [निघं० १.१७]।
५. "पुरन्धिर्बहुधीः" [निरु० ६.१६]।

अन्वयः—सः शुक्रः-दिव्यः पीयूषः एव अमृताय महे क्षयाय अर्ष ॥

पदार्थः—(सः) वह तू सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! (शुक्रः-दिव्यः पीयूषः) शुभ्र दिव्य पान करने योग्य आनन्दरस रूप (एव) अवश्य (अमृताय) अमरत्व के लिये (महे क्षयाय) महान् सर्वश्रेष्ठ निवास—मोक्ष के लिये (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २ ॥

१३६९. इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्रः ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सोम ते सुतस्य इन्द्रः पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे देवाः-च ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते सुतस्य) तुझ साक्षात् हुये आनन्दरस स्वरूप को (इन्द्रः पेयात्) उपासक आत्मा पान करे (क्रत्वे दक्षाय) प्रज्ञान और कर्मबल प्राप्त करने के लिये (विश्वे देवाः-च) प्राण, मन इन्द्रियाँ भी पान करें—बाह्य वस्तु में तेरा मनन, श्रवण, दर्शन आदि करें ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—हिरण्यस्तूपः (अमृतरूप संघात वाला[१]—अमृतपुञ्ज परमात्मा का उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते। तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन॥ १ ॥

पदपाठः— सूर्यस्य इव रश्मयः द्रावयित्नवः मत्सरासः प्रसुतः प्र सुतः साकम् ईरते तन्तुम् ततम् परि सर्गासः आशवः न इन्द्रात् ऋते पवते धाम किम् च न॥ १ ॥

अन्वयः—सूर्यस्य-इव रश्मयः द्रावयित्नवः मत्सरासः प्रसुतः सर्गासः आशवः ततं तन्तुं साकं परि-ईरते इन्द्रात्-ऋते किञ्चन धाम न पवते ॥

पदार्थः—(सूर्यस्य-इव रश्मयः) सूर्य की रश्मियों—किरणों के समान सोम—परमात्मा की (द्रावयित्नवः) द्रवणशील—उपासकों को अपनी ओर द्रवित करने वाला (मत्सरासः) हर्षित करने वाला—आनन्द देने वाला (प्रसुतः) प्रकृष्टरूप से

१. "हिरण्यस्तूपः-हिरण्यमयस्तूपोऽस्येति, स्तूपः संघातः" [निरु० १०.३३]।

उपासित हुआ (सर्गास:) वेगवान्—तीव्र गतिमान् (आशव:) व्यापनशील, सोम—परमात्मा (ततं तन्तुं साकं परि-ईरते) श्रद्धागत श्रद्धालु[१] प्रजारूप—पुत्ररूप[२] उपासक आत्मा को एक साथ—तुरन्त परिप्राप्त होता है (इन्द्रात्-ऋते) श्रद्धालु उपासक आत्मा के बिना (किञ्चन धाम न पवते) कुछ भी धाम—वस्तु या आश्रय अश्रद्धालु प्राप्त नहीं होता है ॥ १ ॥

१३७१. **उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि। पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति॥ २ ॥**

पदपाठः— **उप उ मतिः: पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी मन्द्र अजनी चोदते अन्तः आसनि पवमानः सन्तनिः सम् तनिः सुन्वताम् इव मधुमान् द्रप्सः परि वारम् अर्षति॥ २ ॥**

अन्वयः—मतिः-उपपृच्यते-उ मधु सिच्यते मन्द्राजनी-अन्तः-आसनि चोदते पवमानः सन्तनिः मधुमान् द्रप्सः सुन्वताम्-इव वारं परि-अर्षति॥

पदार्थः—(मतिः-उपपृच्यते-उ) जब उपासक द्वारा की गई स्तुतिवाणी[३] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा में जाकर सम्पृक्त हो जाती है तथा (मधु सिच्यते) आत्मा—स्वात्मा—उपासक का अपना आत्मा[४] परमात्मा में सींच दिया जाता है—समर्पित कर दिया जाता है तब (मन्द्राजनी-अन्तः-आसनि चोदते) सोम—परमात्मा की आनन्द प्रेरित करने वाली धारा को[५] उपासक के अन्तर्मुख-अन्तःकरण में प्रेरित करता है, और (पवमानः सन्तनिः) प्राप्त होने वाला सोम सम्यक् व्यापक (मधुमान् द्रप्सः) मधुर द्रवणशील कृपालु परमात्मा (सुन्वताम्-इव) उपासना द्वारा साक्षात् करने वालों—उपासकों के[६] (वारं परि-अर्षति) वरणीय द्वार हृदय को परिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

१३७२. **उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्। अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत॥ ३ ॥**

---

१. ''तनु श्रद्धोपकरणयोः'' [चुरादि०]। २. ''प्रजा वै तन्तुः'' [ऐ० ३.११]।
३. ''वाग्वै मतिः'' [श० ८.१.२.७]।
४. ''आत्मा वै पुरुषस्य मधु'' [तै० सं० ३.१.२.९]।
५. ''सुपां सुलुक्'' [अष्टा० ७.१.३९] अमो लुक्।
६. ''इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः'' [निरु० १.११]।

पदपाठः— **उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवः देवस्य देवीः उप यन्ति निष्कृतम् निः कृतम् अति अक्रमीत् अर्जुनम् वारम् अव्ययम् अत्कम् न निक्तम् परि सोमः अव्यत ॥ ३ ॥**

अन्वयः—उक्षा मिमेति धेनवः प्रतियन्ति देवस्य देवीः निष्कृतम्-उपयन्ति सोमः अर्जुनं-अव्ययं वारं-अत्यक्रमीत् अत्कं न निक्तं परि-अव्यत ॥

पदार्थः—(उक्षा मिमेति) जैसे साण्ड शब्द करता है[1] (धेनवः प्रतियन्ति) गौवें उसके प्रति जाती हैं, ऐसे (देवस्य देवीः) सोम—परमात्मदेव की स्तुतिवाणियाँ[2] (निष्कृतम्-उपयन्ति) उसी उपासित या उपासकों द्वारा उपासनीय सोम—परमात्मा के पास चली जाती हैं (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अर्जुनं-अव्ययं वारं-अत्यक्रमीत्) नित्य वरणीय शुद्ध—निर्मल आत्मा को अत्यन्त प्राप्त होता है (अत्कं न निक्तं परि-अव्यत) जैसे शुद्ध कवच को योद्धा परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—विराट् ॥

१३७३. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥

पदपाठः— **अग्निन्नरोदीधितिभिररण्योः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ७२)

१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्। दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

पदपाठः— **तम् अग्निम् अस्ते वसवः नि ऋण्वन् सुप्रतिचक्षम् सु प्रतिचक्षम् अवसे कुतः चित् दक्षाय्यः यः दमे आस नित्यः ॥ २ ॥**

अन्वयः—यः नित्यः दक्षाय्यः दमे-आस तम्-सुप्रतिचक्षम्-अग्निम् वसवः कुतः-चित्-अवसे-अस्ते न्यृण्वन् ॥

पदार्थः—(यः) जो अग्नि परमात्मा (नित्यः) नित्य (दक्षाय्यः) स्तुतियों से संवर्धनीय—साक्षात् करणीय (दमे-आस) स्वगृह[3] मोक्षधाम में है (तम्-सुप्रति-

---

१. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः। २. ''वाग्वै तिस्रो देवीः'' [काठ० ३६.३]।

३. ''दम गृहनाम'' [निघं० ३.४]।

चक्षम्-अग्निम्) उस सम्यक् प्रकाशमान परमात्मा को (वसवः) परमात्मा में वसने वाले उपासक (कुतः-चित्-अवसे-अस्ते न्यृण्वन्) किसी भी भय से रक्षार्थ हृदय घर[1] में प्राप्त करते हैं[2] ॥ २ ॥

१३७५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

पदपाठः— प्रेद्धः प्र इद्धः अग्ने दीदिहि पुरः नः अजस्त्रया अ जस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ त्वाम् शश्वन्तः उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यविष्ठ अग्ने प्रेद्धः नः पुरः अजस्त्रया सूर्म्या दीदिहि त्वाम् शश्वन्तः-वाजाः (वाजाः-वाजवन्तः) ॥

पदार्थः—(यविष्ठ अग्ने) हे अजर परमात्मन्! तू (प्रेद्धः) प्रसिद्ध-साक्षात् हुआ (नः पुरः) हमारे सम्मुख (अजस्त्रया सूर्म्या) निरन्तर शोभायमान-ज्ञान-तरङ्गों द्वारा (दीदिहि) ज्ञान प्रकाश कर[3] (त्वाम्) तुझे (शश्वन्तः-वाजाः) श्रेष्ठ[4] प्रजायें[5] उपासक आत्माएँ प्राप्त होते हैं। अथवा बहुतेरे[6] (वाजाः-वाजवन्तः) अमृत अन्न प्राप्त करने वाले[7] प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—सर्पराज्ञी (ऋषिका-वाक्शक्ति सम्पन्ना[8])॥ देवता—सूर्यः (उपासकों को अध्यात्म प्रकाशदाता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१३७६. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

---

१. ''अस्तं गृहनाम'' [निघं० ३.४]।
२. ''ऋणु गतौ'' [तनादिः]।
३. ''दीदयति ज्वलतिकर्मा'' [निघं० १.१६]।
४. ''यश्च पणिरभुजिष्ठयोयश्चदेवाँ अदाशुरिः। धीराणां शश्चतामहं तदपागिति शुश्रुम'' [अथर्व० २०.१२८.४]।
५. ''तपसा प्रजापतिर्वाजा वै प्रजा असृक्षत'' [काठ० ६.७]।
६. ''शश्वत बहुनाम'' [निघं० ३.१]।
७. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।
८. ''वाग्वै सर्पराज्ञी'' [कौ० २७.४]।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३
१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह
१ २
द्युभिः ॥ ३ ॥

१ २र
पदपाठः— आयङ्गौपृश्निरक्रमीत्॥ १-३ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६३०)

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६३१)

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६३२)

इति एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम चतुर्ऋच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३७९. **उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥ १॥**

पदपाठः— **उपप्रयन्तः उप प्रयन्तः अध्वरम् मन्त्रम् वोचेम अग्नये आरे अस्मेइति च शृण्वते॥ १॥**

अन्वयः—अध्वरं-उपप्रयन्तः अस्मे-आरे च शृण्वते अग्नये मन्त्रं वोचेम॥

पदार्थः—(अध्वरं-उपप्रयन्तः) हम उपासक अध्यात्मयज्ञ को (उपप्रयन्त) अपने अन्दर चरित करने के हेतु[१] (अस्मे-आरे च) हमारे दूर[२] और समीप भी (शृण्वते) सुनने वाले (अग्नये) ज्ञानप्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ अन्तर्यामी परमात्मा के लिये (मन्त्रं वोचेम) मननीय स्तुतिवचन बोलें॥ १॥

१३८०. **यः स्त्रीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु। अरक्षद्दाशुषे गयम्॥ २॥**

पदपाठः— **यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु सम् जग्मानासु कृष्टिषु अरक्षत् दाशुषे गयम्॥ २॥**

अन्वयः—यः पूर्व्यः दाशुषे स्नीहितीषु सञ्जग्मानासु कृष्टिषु गयम्-अक्षरत्॥

पदार्थः—(यः पूर्व्यः) जो सनातन या पूर्व ऋषियों से भी श्रेष्ठ शाश्वतिक परमात्मा (दाशुषे) आत्मदान—आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये (स्नीहितीषु) स्नेह करने वाली—(सञ्जग्मानासु) सङ्गति करने वाली—(कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में[३] (गयम्-अरक्षत्) गृह[४] स्थान—निवास—सङ्गमनीय की परमात्मा रक्षा करते स्तुतियों से अपनाते हैं॥ २॥

---

१. "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" [अष्टा० ३.२.१२६]। २. "आरे दूरनाम" [निघं० ३.२६]।
३. "कृष्टयः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३]। ४. "गयं गृहनाम" [निघं० ३.४]।

१३८१. **स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः। उतास्मान् पात्वंहसः॥ ३॥**

पदपाठः— **सः नः वेदः अमात्यम् अग्निः रक्षतु शन्तमः उत अस्मान् पातु अंहसः॥ ३॥**

अन्वयः—सः-शन्तमः-अग्निः नः अमात्यं वेदः-रक्षतु उत अस्मान्-अंहसः पातु॥

पदार्थः—(सः-शन्तमः-अग्निः) वह अत्यन्त कल्याणकारी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (नः) हम उपासकों के (अमात्यं वेदः-रक्षतु) सहभूत—स्वाभाविक ज्ञान धन की रक्षा करे[1] (उत) अपि—और (अस्मान्-अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे॥ ३॥

१३८२. **उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनञ्जयो रणेरणे॥ ४॥**

पदपाठः— **उत ब्रुवन्तु जन्तवः उत् अग्निः वृत्रहा वृत्र हा अजनि धनञ्जयः धनम् जयः रणेरणे रणे रणे॥ ४॥**

अन्वयः—रणे रणे धनञ्जयः वृत्रहा अग्निः उदजनि जन्तवः-उत ब्रुवन्तु॥

पदार्थः—(रणे रणे) काम आदि शत्रुओं के साथ प्रत्येक संघर्ष प्रसङ्ग में (धनञ्जयः) उनके बल को[2] जीतने वाला (वृत्रहा) पाप[3] का नष्टकर्ता (अग्निः) परमात्मा (उदजनि) हृदय में उद्भूत हुआ—साक्षात् होता है (जन्तवः-उत) उपासकजन[4] हाँ—अवश्य (ब्रुवन्तु) उस परमात्मा की स्तुति करें॥ ४॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने वाला)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३८३. **अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्त्याशवः॥ १॥**

पदपाठः— **अग्नेयुंक्ष्वाहियेत्वा॥ १॥**

---

१. ''वेदः-धननाम'' [निघं० २.१०]

२. ''धनं नृम्णमिति पर्यायः। नृम्णं बलम्। नृम्णं बलनाम'' [निघं० २.९३]।

३. ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ७.३.१.३२]।

४. ''मनुष्या वै जन्तवः'' [श० ७.३.१.३२]।

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २३)

१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये। आ देवान्त्सोमपीतये॥ २॥

पदपाठः— अच्छ नः याहि आ वह अभि प्रयांꣳसि वीतये आ देवान् सोमपीतये सोम पीतये॥ २॥

अन्वयः—नः-अच्छ-आयाहि वीतये प्रयांसि-अभि वह सोमपीतये देवान्-आ॥

पदार्थः—(नः-अच्छ-आयाहि) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! तू हमारी ओर साक्षात् आगमन कर—हमें साक्षात् प्राप्त हो (वीतये) कामनापूर्ति के लिये[1] (प्रयांसि-अभि वह) प्रियतम-अत्यन्त तृप्ति करने वाले ज्ञानसुखप्रसङ्गों को प्रेरित कर (सोमपीतये देवान्-आ) अमृतपान स्थान मुक्तिधाम प्राप्ति के लिये[2] देवधर्मों—सत्य, वैराग्य, शम, दम आदि को प्राप्त करा॥ २॥

१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर॥ ३॥

पदपाठः— उत् अग्ने भारत द्युमत् अजस्रेण अ जस्रेण दविद्युतत् शोच वि भाहि अजर अ जर॥ ३॥

अन्वयः—भारत-अजर-अग्ने अजस्रेण द्युमत् दविद्युतत् उत्-शोच-विभाहि॥

पदार्थः—(भारत-अजर-अग्ने) हे भरणकर्ता जरारहित—अमर परमात्मन्! तू (अजस्रेण द्युमत्) निरन्तर वर्तमान प्रकाश वाले तेज से (दविद्युतत्) प्रकाशित हुआ (उत्-शोच-विभाहि) उज्ज्वलित हो[3] साक्षात् हो और हमें विभासित कर—तेजस्वी बना॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वैश्वामित्र प्रजापतिः (सर्वमित्र से सम्बद्ध निज इन्द्रियों का पति संयमी उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः। अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥ १॥

---

१. "वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्ति....." [अदादि०]।
२. "तद्यत्तदमृतं सोमासः" [श० ९.५.१.८]।
३. "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.१६]।

पदपाठः— प्रसुन्वानायान्धसः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५३, ७७४)

१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः। सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥

पदपाठः— आ जामिः अत्के अव्यत भुजे न पुत्रः पुत् त्रः ओण्योः सरत् जारः न योषणाम् वरः न योनिम् आसदम् आ सदम् ॥ २ ॥

अन्वयः—जामिः अत्के अव्यत ओण्योः-भुजे न पुत्रः जारः-न योषणाम्-आसरत् वरः-न योनिम्-आसदत् ॥

पदार्थः—(जामिः) आनन्द प्राप्त कराने वाला सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा[1] (अत्के) अदन—भोगस्थान—अन्तःकरण में[2] (अव्यते) प्राप्त होता है (ओण्योः-भुजे न पुत्रः) जैसे भय दूर करने वाले माता पिता[3] की भुजा में पुत्र प्राप्त होता है, पुनः (जारः-न योषणाम्-आसरत्) उपासक आत्मा की ओर आता है, जैसे अर्चनीय स्वामी अपने सेवक व्यक्ति[4] को पुरस्कार या भृति देने को प्राप्त होता है, या (वरः-न योनिम्-आसदत्) जैसे आत्मा[5] अपने हृदय में बैठता है ॥ २ ॥

१३८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी। हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— सः वीरः दक्षसाधनः दक्ष साधनः वि यः तस्तम्भ रोदसीइति हरिः पवित्रे अव्यत वेधाः न योनिम् आसदम् आ सदम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः वीरः दक्षसाधनः यः रोदसी वितस्तम्भ हरिः पवित्रे अव्यत वेधाः-न योनिम्-आसदम् ॥

पदार्थः—(सः) वह (वीरः) स्वयं अपने वीर्य—ओज पर आश्रित[6] (दक्षसाधनः) स्वाश्रित उपासक के बल को साधने वाला (यः) जो (रोदसी

---

१. "याति प्रापयतीति यामिः आदेर्जत्वं जामिः" [उणा० ४.४२ या धातोर्मिः-बाहुलकात्]।
२. "अद भक्षणे" [अदादि०] ततः करणे क्विप् अद् अद्यते भुज्यते येन भोगः, तद्वतः-करणम्। पुनः स्वार्थे कः।
३. "ओणृ-अपनयने" [भ्वादि०]।
४. "जरति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
५. "जुष प्रीतिसेवनयोः" [तुदादि०]।
६. "स वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० ५.२८२]।

वितस्तम्भ) विश्व के दोनों—रोधन करने वाले द्युलोक और पृथिवी लोकों को सम्भाल रहा है, ऐसा (हरिः) दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता परमात्मा (पवित्रे) पवित्र उपासक आत्मा में (अव्यत) प्राप्त होता है (वेधाः-न योनिम्-आसदम्) जैसे विधाता बैठने को अपने घर में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा ककुप्॥

१३८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे॥ १ ॥

पदपाठः— अभ्रातृव्योअनात्वम्॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३९९)

१३९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे॥ २ ॥

पदपाठः— न किः रेवन्तम् सख्याय स ख्याय विन्दसे पियन्ति ते सुराश्वः यदा कृणोषि नदनुम् सम् ऊहसि आत् इत् पिता इव हूयसे॥ २ ॥

अन्वयः—रेवन्तं सख्याय न किः-विन्दसे ते सुराश्वः पीयन्ति यदा नदनुं कृणोषि समूहसि आत्-इत् पिता-इव हूयसे॥

पदार्थः—(रेवन्तं सख्याय न किः-विन्दसे) केवल धनवान् है ऐसा जान तू उसे मित्रता के लिये कभी नहीं प्राप्त होता है—स्वीकार करता है (ते सुराश्वः पीयन्ति) वे सुरापान कर मद में फूले[1] हैं अन्य जनों को पीड़ित करते हैं[2] (यदा नदनुं कृणोषि) जब तू अपना अर्चक—स्तुतिकर्ता[3] बना लेता है—तेरे उपदेश या प्रभाव से तेरा स्तुतिकर्ता बन जाता है (समूहसि) तू उसे सम्यक् वहन करता है समुन्नत करता है (आत्-इत्) अनन्तर ही (पिता-इव हूयसे) तू पिता के समान स्मरण किया जाता है॥ २ ॥

---

१. ''सुरया शनाः'' शि गतिवृद्ध्योः [भ्वादि]।
२. ''पीयति हिंसाकर्मा'' [निघं० ४.२५]।
३. ''नदति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला या पवित्रभाव से प्रवेशकर्ता)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

१३९१. आ त्वा सहस्त्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये। ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥ १॥

पदपाठः— आत्वासहस्त्रमाशतम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४५)

१३९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या। शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये॥ २॥

पदपाठः— आ त्वा रथे हिरण्यये हरीइति मयूरशेप्या मयूर शेप्या शितिपृष्ठा शिति पृष्ठा वहताम् मध्वः अन्धसः विचक्षणस्य पीतये॥ २॥

अन्वयः—हिरण्यये रथे मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी त्वा वहताम् विवक्षणस्य अन्धसः पीतये॥

पदार्थः—(हिरण्यये रथे) हे इन्द्र—परमात्मन्! अमृतरूप रमणीय[1] मोक्ष के निमित्त (मयूरशेप्या) श्रोत्रस्पर्शी—दोनों कानों को स्पर्श करने वाले[2] (शितिपृष्ठा) श्वेत—निर्मल स्तर वाले (हरी) ऋक् और साम—स्तुति और उपासना[3] (त्वा) तुझ परमात्मा को (वहताम्) तुझ उपासक की ओर लावे (विवक्षणस्य) विशेष प्रशंसनीय—(अन्धसः) आध्यानीय उपासनारस का (पीतये) पान करने के लिये॥ २॥

१३९३. पिबा त्वा३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपाइव। परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते॥ ३॥

पदपाठः— पिबात्वाऽऽस्यगिर्वणः सुतस्य पूर्वपाः पूर्व पाः इव परिष्कृतस्य परिः कृतस्य रसिनः इयम् आसुतिः आ सुतिः चारुः मदाय पत्यते॥ ३॥

---

१. ''अमृतं वै हिरण्यम्'' [तै० सं० ६.२.७.२]।

२. ''अश्विभ्यां मयूरान्'' [मै० २.१४.४] लक्षणया-अश्विनौ ''श्रोत्रे वा अश्विनौ'' [श० १२.९.२.१३]।

३. ''ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी'' [ऐ० २.२४]।

अन्वयः—गिर्वणः अस्य सुतस्य पूर्वपाः-इव तु पिब परिष्कृतस्य रसिनः इयम्-आसुतिः मदाय चारुः पत्यते॥

पदार्थः—(गिर्वणः) हे स्तुति वाणियों द्वारा वननीय सम्भजनीय परमात्मन्! (अस्य सुतस्य) इस निष्पन्न उपासना रस के (पूर्वपाः-इव) प्रथम पानकर्ता—प्रमुख पानकर्ता बना जैसा या पूर्व से ही पान करने वाला[1] स्वीकार करने वाला है (तु पिब) अतः तू पान कर—स्वीकार कर (परिष्कृतस्य रसिनः) यम नियमादि से संस्कृत उपासनारस वाले मुझ उपासक की (इयम्-आसुतिः) यह उपासनारसधारा (मदाय चारुः पत्यते) मुझे हर्ष प्राप्ति के लिये सुन्दर भली प्रकार समर्थ है[2] यह जान भेंट कर रहा हूँ॥ ३॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—ऋजिश्वा (सत्य जीवन यात्रा का पथिक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा ककुप्॥

१३९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥ १॥

पदपाठः— **आसोतापरिषिञ्चत॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५८०)

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊँचे स्थान वाला)॥

१३९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने। ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्॥ २॥

पदपाठः— **सहस्रधारम् सहस्र धारम् वृषभम् पयोदुहम् पयः दुहम् प्रियम् देवाय जन्मने ऋतेन यः ऋतजातः ऋत जातः विवावृधे वि वावृधे राजादेवऋतम्बृहत्॥ २॥**

अन्वयः—सहस्रधारम् वृषभम् पयोदुहम् प्रियम् देवाय जन्मने यः ऋतेन-ऋतजातः ऋतं बृहत्-राजा देवः विवावृधे॥

पदार्थः—(सहस्रधारम्) बहुत ज्ञानवाणियों[3] वाले (वृषभम्) कामनावर्षक (पयोदुहम्) आनन्दरस दोहने वाले—(प्रियम्) प्रीति करने वाले—शान्तस्वरूप परमात्मा को (देवाय जन्मने) देवजन्म—मुक्त जीवन बनने के लिये उपासित

---

१. ''इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः'' [निरु० २.११]।

२. ''पत्यते-ऐश्वर्यकर्मा'' [निघं० २.२१]।

३. ''धारा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

करता हूँ (यः) जो (ऋतेन-ऋतजातः) अपने सत्यस्वरूप से प्रसिद्ध सत्यजात है—सत्य का जन्मदाता (ऋतं बृहत्-राजा) महान् सत्य स्वामी राजमान है (देवः) द्योतमान (विवावृधे) गुण शक्तियों से बढ़ा-चढ़ा है, वही उपासनीय है ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल[१] को धारण करने वाला उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१३९६. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्निर्वृत्राणिजङ्घनत्॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४)

१३९७. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

पदपाठः— गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानः वि दिद्युतानः अक्षरे सीदन्नृतस्ययोनिमा ॥ २ ॥

अन्वयः—मातुः-पितुः-अक्षरे गर्भे पिता विदिद्युतानः ऋतस्य योनिम्-आसीदन्॥

पदार्थः—(मातुः-पितुः-अक्षरे गर्भे) पृथिवी के द्युलोक के[२] अविनाशी गर्भ—गर्भरूप प्रकृतिनामक अव्यक्त उपादान कारण में व्यापक (पिता विदिद्युतानः) पालक—उपादान कारण का पालक एवं सब का पालक परमात्मा विशेष प्रकाशमान है (ऋतस्य योनिम्-आसीदन्) सत्यज्ञान के आधार वेद को आस्थापित—प्रकाशित करता हुआ 'वृत्राणि जङ्घनत्' अज्ञानान्धकार पाप को नष्ट करता है ॥ २ ॥

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥

पदपाठः— ब्रह्म प्रजावत् प्र जावत् आ भर जातवेदः जात वेदः विचर्षणे वि चर्षणे अग्ने यत् दीदयत् दिवि ॥ ३ ॥

---

१. ''वाजयति अर्चयतिकर्मा'' [निघं० ३.१४] वाजमर्चनं भरद्यः सः भरद्वाजः परनिपातेन।
२. ''तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः'' [तै० २.७.१६.३] ''इयं पृथिवी वै माता-असौ द्यौः पिता'' [श० १३.१.६.१]।

अन्वयः—विचर्षणे जातवेदः-अग्ने प्रजावत्-ब्रह्म-आभर यत्-दिवि दीदयत् ॥

पदार्थः—(विचर्षणे जातवेदः-अग्ने) हे विशेषद्रष्टा—विश्वद्रष्टा[1] उत्पन्नमात्र के ज्ञाता प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (प्रजावत्-ब्रह्म-आभर) मति वाले—बुद्धि वाले[2] मन्त्रमय वेद को[3] आभरित कर (यत्-दिवि दीदयत्) जो द्योतनात्मक तेरे स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है[4] ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१३९९. **अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्। सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अस्यप्रेषाहेमनापूयमानः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२६)

१४००. **भद्रा वस्त्रा समन्याऽऽ३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्। आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥**

पदपाठः— **भद्रा वस्त्रा समन्या वसानः महान् कविः निवचनानि नि वचनानि शꣳसन् आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानः विचक्षणः वि चक्षणः जागृविः देववीतौ देव वीतौ ॥ २ ॥**

अन्वयः—समन्या भद्रा वस्त्रा वसानः महान् कविः निवचनानि शंसन् विचक्षणः जागृविः देववीतौ चम्वोः पूयमानः आवच्यस्व ॥

पदार्थः—(समन्या भद्रा वस्त्रा वसानः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासकों को सम्यक् जीवन देने योग्य[5] तथा शान्तिप्रद आच्छादनों—अपनी आनन्दतरङ्गों को ओढ़ता हुआ (महान् कविः) महान् वक्ता ज्ञानी सर्वज्ञ (निवचनानि

---

१. "विचर्षणिः पश्यति कर्मसु नामपदम्" [निघं० ३.११]।
२. "प्रजा वै मतयः" [तै० आ० ५.६.८] "बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे" [वैशेषिक० ३.१.१]।
३. "ब्रह्म वै मन्त्रः" [जै० १.८८] "वेदो ब्रह्म" [जै० उ० ४.११.४.२३]।
४. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.१६]।
५. "समने समननात्" [निरु० ७.१७] सम् पूर्वात्-अन प्राणने धातोः यत् प्रत्ययश्छान्दसः समन्याति बहुवचने।

शंसन्) रहस्यमय वचनों को—प्रेमभरे उपदेशों को कथन करता हुआ (विचक्षणः) विशेष दर्शक (जागृविः) जागरूक—जागृतिप्रद (देववीतौ) देवों—मुमुक्षुओं की कामपूर्त्ति स्थली मुक्ति के निमित्त (चम्वोः पूयमानः) आनन्द का आचमन—आस्वादन कराने वाले मेरे मन और अहङ्कार पात्रों में धारारूप से प्राप्त होने को (आवच्यस्व) आगमन कर[१] ॥ २ ॥

१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे। अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

पदपाठः— सम् उ प्रियः मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरः यशसाम् क्षैतः अस्मेइति अभि स्वर धन्व पूयमानः यूयंपातस्वस्तिभिःसदानः ॥ ३ ॥

अन्वयः—प्रियः यशसां यशस्तः क्षैतः अव्ये सानो अस्मे सम्मृज्यते-उ पूयमानः धन्व-अभिस्वर यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

पदार्थः—(प्रियः) तृप्तिकर्ता (यशसां यशस्तः) यश वालों में अत्यन्त यश वाला[२] महान् आत्माओं में परम महान् (क्षैतः) मुक्तों की निवास योग्य मोक्षभूमि का स्वामी (अव्ये सानो) रक्षणीय ऊँचे सम्भजन साधन में (अस्मे सम्मृज्यते-उ) हमारे द्वारा[३] सम्यक् प्राप्त किया जाता है[४] (पूयमानः) वह तू प्राप्त होता हुआ (धन्व-अभिस्वर) हृदय आकाश में[५] आशीर्वाद वचन बोल (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) तू[६] ही हमारी सदा कल्याण क्रियाओं से रक्षा कर ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—तिरश्ची (अन्तर्ध्यानी उपासक[७]) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना। शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥ १ ॥

पदपाठः— एतोन्विन्द्रथंस्तवाम ॥ १ ॥

---

१. ''वञ्चति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] विकरणव्यत्ययेन श्यन्।
२. ''यस्य नाम महद्यशः'' [गजु० ३२.३]।
३. ''सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छ'' [अष्टा० ७.१.३९]। भिसः से।
४. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]। ५. ''धन्व-अन्तरिक्षनाम'' [निघं० १.३]।
६. ''पूजायां बहुवचनं'' [सायणः]।
७. ''तिरोऽन्तर्धौ'' [अष्टा० १.४.७०] ''तिरो दधे-अन्तर्धत्ते'' [निरु० १२.३२]।

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३५०)

१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः। शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य॥ २॥

पदपाठः— इन्द्र शुद्धः नः आ गहि शुद्धः शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः रयिम् नि धारय शुद्धः ममद्धि सोम्य॥ २॥

अन्वयः—सोम्य-इन्द्र शुद्धः नः-आगहि शुद्धः शुद्धाभिः-ऊतिभिः शुद्धः-रयिं विधारय शुद्धः-ममद्धि॥

पदार्थः—(सोम्य-इन्द्र) हे उपासनारस समर्णयोग्य परमात्मन्! तू (शुद्धः) शुद्ध है (नः-आगहि) हमारी ओर आ (शुद्धः शुद्धाभिः-ऊतिभिः) शुद्ध है अतः शुद्ध रक्षाविधानों के साथ आ[1] (शुद्धः-रयिं विधारय) तू शुद्ध है बल धन को हमारे अन्दर धारण करा (शुद्धः-ममद्धि) तू शुद्ध है अतः हर्ष—आनन्द प्राप्त करा॥ २॥

१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे। शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि॥ ३॥

पदपाठः— इन्द्रः शुद्धः हि नः रयिम् शुद्धः रत्नानि दाशुषे शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धः वाजम् सिषाससि॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र शुद्धः-हि नः-रयिं सिषाससि शुद्ध-दाशुषे रत्नानि शुद्धः-वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धः-वाजं 'सिषाससि'॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (शुद्धः-हि) शुद्ध ही (नः-रयिं सिषाससि) हमें मोक्षैश्वर्य देना चाहता है (शुद्ध-दाशुषे रत्नानि) शुद्ध है अतः आत्मदानी—आत्मसमर्पणकर्ता के लिये रमणीय वस्तुएँ देना चाहता है (शुद्धः-वृत्राणि जिघ्नसे) तू शुद्धरूप पापों अज्ञानों को नष्ट करना चाहता है (शुद्धः-वाजं सिषाससि) शुद्ध ही तू अमृत अन्नभोग[2] सेवन कराना चाहता है॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुतम्भरः (उपासनीय परमात्मदेव को धारण करने वाला उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः॥ १॥

---

१. ''ये नः पन्थानो या स्तुतयस्तावा ऊतयः'' [ऐ० १.२]।
२. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।

पदपाठः— **अग्नेः स्तोमम् मनामहे सिध्रम् अद्य अ द्य दिविस्पृशः दिवि स्पृशः देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥**

अन्वयः—अग्ने दिवि-स्पृशः-देवस्य सिध्रं स्तोमम् द्रविणस्यवः अद्य मनामहे ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मन्! (दिवि-स्पृशः-देवस्य) मोक्षधाम में अमृतस्पर्शी[१] तुझ परमात्मदेव के (सिध्रं स्तोमम्) अभीष्टसाधक[२] स्तुति वचन को (द्रविणस्यवः) हम आत्मबल को चाहने वाले उपासक[३] (अद्य मनामहे) आज—इस जीवन में निरन्तर पुनः पुनः पढ़ते बोलते धारण करते हैं ॥ १ ॥

१४०६. **अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अग्निः जुषत नः गिरः होता यः मानुषेषु आ सः यक्षत् दैव्यम् जनम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्निः नः-गिरः-जुषत यः-होता मानुषेषु-आ सः-दैव्य जनं यक्षत् ॥

पदार्थः—(अग्निः) परमात्मा (नः-गिरः-जुषत) हमारी स्तुतियों को सेवन करे—स्वीकार करे (यः-होता मानुषेषु-आ) जो कि अपनाने वाला, मननशील उपासकों के अन्दर आभासित—साक्षात् होता है (सः-दैव्य जनं यक्षत्) वह मुमुक्षुजन को अपनी सङ्गति में लेता है ॥ २ ॥

१४०७. **त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **त्वम् अग्ने सप्रथाः स प्रथाः असि जुष्टः होता वरेण्यः त्वया यज्ञम् वि तन्वते ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्ने जुष्टः होता वरेण्यः सप्रथाः असि त्वया यज्ञं वितन्वते ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मन्! तू (जुष्टः) हम उपासकों का प्रिय—प्रीतिपात्र (होता) अपनाने वाला (वरेण्यः) वरण करने योग्य (सप्रथाः) सर्वतो महान्[४] (असि) है (त्वया यज्ञं वितन्वते) तुझे लक्ष्य कर अध्यात्मयज्ञ को उपासकजन विस्तृत करते हैं—समृद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

---

१. ''त्रिपादस्यामृतं दिवि:'' [ऋ० १०.९०.३]।

२. ''सिध्रं साधनम्'' [निरु० ९.२८] ''सिधधातोः रक्'' [उणा० २.१]।

३. ''द्रविणं बलम्'' [निघं० २.९]।

४. ''सप्रथाः सर्वतः पृथुः'' [निरु० ६.७]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः। वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥ १॥

पदपाठः— अभित्रिपृष्ठंवृषणंवयोधाम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५२८)

१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥ २॥

पदपाठः— शूरग्रामः शूर ग्रामः सर्ववीरः सर्व वीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि तिग्मायुधः तिग्म आयुधः क्षिप्रधन्वा क्षिप्र धन्वा समत्सु स मत्सु अषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥ २॥

अन्वयः—शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता धनानि सनिता तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्सु-अषाढः पृतनासु शत्रून् साह्वान् पवस्व॥

पदार्थः—(शूरग्रामः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू प्रगतिशील—हर्ष, सन्तोष, शान्तिगुण समूह वाला (सर्ववीरः) सबका प्रेरक—सर्व प्रकार प्रेरणादाता (सहावान्) तर्पण शक्ति वाला—तृप्तिदाता या सहस्वान्—बलवान्[१] (जेता) अभिभव करने वाला—अधिकर्ता—स्वामी[२] (धनानि सनिता) विविध धनों को सम्भजन करने वाला—दान करने के स्वभाव वाला[३] (तिग्मायुधः) कामादि के संघर्ष में उत्साहवर्धक सम्प्रहार शक्ति जिससे प्राप्त हो—ऐसा[४] अथवा उत्साहवर्धक आयु का धारण कराने वाला (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगति—शीघ्रकारी (समत्सु-अषाढः) सम्मोदन हर्ष प्राप्त करने में असह्य—अत्यन्त हर्षमय होने से पूर्ण, न सह सकने

१. ''षह चक्यर्थे'' [दिवादि०] ''चक तृप्तौ'' [भ्वादि०] सह्यति तर्पयति यया सः सहा तर्पणशक्तिः, तद्वान् सहावान् यथा विद्यावान्।''सहावानं महस्वन्तम्'' [निरु० १०.२८]।
२. 'जि-अभिभवे' [भ्वादि०]।
३. ''सनिता-तृन्प्रत्ययान्तः, आद्युदात्तत्वात् तथाकृत्वा हि कर्मणि द्वितीया धनानि''।
४. ''तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मणः'' (आयुधमायोधनात्) [निरु० २०.६]।

योग्य[1] (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) उपासक मनुष्यों के अन्दर वर्तमान[2] पापों को[3] दबा देने वाला (पवस्व) हमें आनन्दधारा में प्राप्त हो ॥ २ ॥

१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी। अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥

पदपाठः— उरुगव्यूतिः उरु गव्यूतिः अभयानि अ भयानि ऋण्वन् समीचीने सम् ईचीनेइति आ पवस्व पुरन्धी पुरम् धीइति अपः सिषासन् उषसः स्वः गाः सम् चिक्रदः महः अस्मभ्यम् वाजान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—उरुगव्यूतिः अभयानि कृण्वन् समीचीने पुरन्धी–आपवस्व अपः–उषसः–स्वः–गाः सिषासन् अस्मभ्यं महः–वाजान् सञ्चिक्रदः ॥

पदार्थः—(उरुगव्यूतिः) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू विशालमार्ग वाला—विभुगति वाला हुआ (अभयानि कृण्वन्) अभय करने के हेतु (समीचीने पुरन्धी–आपवस्व) विश्व के आमने सामने समतुलन करने वाले द्युलोक पृथिवीलोक को[4] समन्तरूप से प्राप्त हो—इनको सुखकारी बना (अपः–उषसः–स्वः–गाः सिषासन्) जलों उषाओं—प्रभातों सूर्य[5] भूभागों को[6] सुखमयरूप में सेवन कराने के हेतु (अस्मभ्यं महः–वाजान् सञ्चिक्रदः) हमारे लिये महान् सुखज्ञान लाभों को बतलाता है—समझाता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

**ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और पौरुष बुद्धि वाला)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥**

१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ १ ॥

पदपाठः— त्वमिन्द्रयशाअसि ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४८)

---

१. "समदः समदो मदतेः" [निरु० ९.१६]।
२. "पृतनाः–मनुष्यनाम" [निघं० ३.२३]।
३. "सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूनिति सद्यो ह्येष पाप्मानमपहत" [ऐ० आ० १.३.४]।
४. "पुरन्धी द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.३०]।
५. "स्वरादित्यो भवति" [निरु० २.१४]।
६. "गौः पृथिवीनाम" [निघं० १.१]।

१४१२. तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे। महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन्॥ २॥

पदपाठः— तम् उ त्वा नूनम् असुर अ सुर प्रचेतसम् प्र चेतसम् राधः भागम् इव ईमहे मही इव कृत्तिः शरणा ते इन्द्र प्र ते सुम्ना नः अश्नुवन्॥ २॥

अन्वयः—असुर-इन्द्र नूनम् तं त्वा प्रचेतसम्-उ भागं राधः-इव-ईमहे ते शरणा मही कृत्तिः-इव ते सुम्ना नः प्र-अश्नुवन्॥

पदार्थः—(असुर-इन्द्र) हे प्रज्ञा के—प्रज्ञान के—प्रकृष्टज्ञान के देनेवाले[1] परमात्मन्! (नूनम् तं त्वा प्रचेतसम्-उ) निश्चय अब उस तुझ प्रवृद्ध ज्ञानवाले[2]—(भागं राधः-इव-ईमहे) भजनीय—सेवनीय धन समान को हम उपासक माँगते हैं—चाहते हैं[3] (ते शरणा) तेरा शरण—आश्रय[4] हम उपासकों के लिये (मही कृत्तिः-इव) महान् यश, महान् अन्न, महान् घर के समान है[5] (ते सुम्ना) तेरे सुखज्ञान कृपा आदि गुण[6] या साधुवृत्त—अच्छे गुण धर्म[7] (नः प्र-अश्नुवन्) हमें प्राप्त हों॥ २॥

चतुर्थ द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा ककुप्॥

१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ १॥

पदपाठः— यजिष्ठंत्वाववृमहे॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११२)

१४१४. अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम्। स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि॥ २॥

---

१. "असुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] प्रज्ञां प्रज्ञानं राति ददाति यः सोऽसुरः।
२. "प्रचेताः प्रवृद्धचेताः" [निरु० ८.५] "चेतः प्रज्ञाननाम" [निघं० ३.९]।
३. "ईमहे याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।
४. "शरणा शरणम्" [निरु० ५.२२] "शरणं गृहनाम" [निघं० ३.५]।
५. "कृत्तिः कृन्ततेर्यशो वा-अन्नं वा" [निरु० ५.२२] "कृत्तिः-गृहनाम" [निघं० ३.४]।
६. "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३.६] बहुवचनात् सुखादीनि।
७. "सुम्ने मा धत्तमिति.....साधौ मा धत्तमित्येतदाह" [१.८.३]।

पदपाठः— **अपां नपातम् सुभगम् सु भगम् सुदीदितिम् सु दीदितिम् अग्निम् उ श्रेष्ठशोचिषम् श्रेष्ठ शोचिषम् सः नः मित्रस्य मि त्रस्य वरुणस्य सः अपाम् आ सुम्नम् यक्षते दिवि ॥ २ ॥**

अन्वयः—अपां नपातम् सुभगम् सुदीदितिम् श्रेष्ठ शोचिषम् अग्निम्–उ सः नः मित्रस्य वरुणस्य सः अपाम् सुम्नम् दिवि यक्षत ॥

पदार्थः—(अपां नपातम्) आप्तजनों[1] उपासक मुमुक्षुओं को न गिराने वाले अपितु उन्नत करने वाले—(सुभगम्) शोभनैश्वर्य वाले (सुदीदितिम्) शोभन दीप्ति वाले[2] (श्रेष्ठ शोचिषम्) अति प्रशंसनीय ज्योति वाले[3] (अग्निम्–उ) अग्रणायक परमात्मा को अवश्य 'ववृमहे' हम वरते हैं—स्वीकार करते हैं—अपनाते हैं (सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (मित्रस्य वरुणस्य) अध्यात्म में प्रेरित करने वाले उपदेशक के अध्यात्म शिक्षण में वरने वाले—अपनाने वाले अध्यापक के—(सः) वह (अपाम्) हम अध्यात्म विद्या प्राप्त उपासक जनों के (सुम्नम्) सुख या साधु—साधनीय लक्ष्य को (दिवि) द्योतनात्मक अमृत के धाम मोक्ष में (यक्षत) सङ्गत करता है ॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुकजन) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४१५. **यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यम् अग्ने पृत्सु मर्त्यम् अवाः वाजेषु यम् जुनाः सः यन्ता शश्वतीः इषः ॥ १ ॥**

अन्वयः—अग्ने यं मर्त्यम् पृत्सु–अवाः यं वाजेषु जुनाः सः शश्वतीः इषः–यन्ता ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (यं मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (पृत्सु–अवाः) प्रीतियोग्य—प्रेयमार्गीय विषयभोगों में[4] रक्षित रखता है—पतित

---

१. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०]।
२. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.६]।
३. "शोचति ज्वलतो नामधेय" [निघं० १.१७]।
४. "पृ प्रीतौ" [स्वादि०] ततः कर्मणि क्विप् औणादिको ह्रस्वश्च।

नहीं होने देता है उपासनाप्रभाव से, तथा (यं वाजेषु जुनाः) जिसको अर्चना साधनों[1] योगाङ्गों में प्रेरित करता है[2] (सः) वह मनुष्य (शश्वतीः इषः-यन्ता) शाश्वतिक—स्थायी कामनाओं का स्वामी हो जाता है[3] ॥ १ ॥

१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

पदपाठः— न किः अस्य सहन्त्य पर्येता परि एता कयस्य चित् वाजः अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

अन्वयः—सहन्त्य अस्य कयस्य चित् पर्येता न किः वाजः श्रवाय्यः-अस्ति ॥

पदार्थः—(सहन्त्य) हे सब के सहन—अभिभव करने वाले अधिपति परमात्मन्! (अस्य कयस्य चित्) तेरे इस ज्ञानी जैसे ऊँचे ज्ञानी उपासक मुमुक्षु का[4] (पर्येता न किः) घेरा डालने वाला—बन्धन में लाने वाला राग आदि कोई विषय नहीं है, कारण कि (वाजः श्रवाय्यः-अस्ति) श्रवण प्राप्त[5] श्रवण-चतुष्टय प्राप्त—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से प्राप्त आध्यात्मिक बल है[6] ॥ २ ॥

१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥

पदपाठः— सः वाजम् विश्वचर्षणिः विश्व चर्षणिः अर्वद्भिः अस्तु तरुता विप्रेभिः वि प्रेभिः अस्तु सनिता ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः विश्वचर्षणिः अर्वद्भिः-(अर्ववन्तः) तरुता-अस्तु विप्रेभिः-वाजं सनिता-अस्तु ॥

पदार्थः—(सः) वह अग्रणायक परमात्मा (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा[7] (अर्वद्भिः-'अर्ववन्तः' तरुता-अस्तु) प्रेरणा वाले[8] स्तुति वाले उपासकों को संसारसागर से तराने वाला हो। (विप्रेभिः-वाजं सनिता-अस्तु) ब्राह्मणों—ब्रह्म जानने वालों को अमृत अन्नभोग का सम्भाजन देने वाला हो ॥ ३ ॥

---

१. "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
२. "जुङ्गतौ" [भ्वादि०] विकरणव्यत्ययेन श्ना।
३. "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" [तै० २.१.१]।
४. "कि ज्ञाने" [जुहो०] ततः-अच् कर्तरि। "चित् पूजायाम् आचार्यश्चित्" [निरु० १.४]।
५. 'श्रवः श्रवणम्, श्रवणेन-आय्यः-प्राप्यः, इणधातोर्ण्यत्'। "वान्तोषि प्रत्यये" [अष्टा० ६.१.७६]।
६. "वाजो बलम्" [निघं० २.९]।
७. "कुटस्य चर्षणिः-कृतस्य कर्मणश्चयिता" [निघं० ४.२]।
८. "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०.३१]।

१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः। हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

पदपाठः— साकमुक्षोमर्जयन्तःस्वसारः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५३८)

१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः। मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः ॥ २ ॥

पदपाठः— सम् मातृभिः न शिशुः वावशानः वृषा दधन्वे पुरुवारः पुरु वारः अद्भिः मर्यः न योषाम् अभि निष्कृतम् निः कृतम् यन् सम् गच्छते कलशे उस्त्रियाभिः उ स्त्रियाभिः ॥ २ ॥

अन्वयः—पुरुवारः-वृषा अद्भिः संदधन्वे मातृभिः-वावशानः शिशुः-न उस्त्रियाभिः-निष्कृतं यन् कलशे सङ्गच्छते मर्यः-न योषाम्-अभि ॥

पदार्थः—(पुरुवारः-वृषा) बहुत वरणीय कामनावर्षक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अद्भिः संदधन्वे) मुमुक्षु उपासकजनों द्वारा[१] आलिङ्गित किया जाता है[२] (मातृभिः-वावशानः शिशुः-न) माताओं से जैसे स्नेह चाहता हुआ आलिङ्गित किया जाता है, तथा (उस्त्रियाभिः-निष्कृतं यन्) उछलती हुई[३] आनन्दधाराओं या स्तुतिवाणियों से संस्कृत—शुद्धपात्र उपासक को प्राप्त होने के हेतु (कलशे सङ्गच्छते) हृदयकलश में—हृदय घट में सङ्गत होता है—स्थान लेता है। (मर्यः-न योषाम्-अभि) जैसे मनुष्य स्नेहपरायण पत्नी को अभिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः। मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

पदपाठः— उत प्र पिप्ये ऊधः अघ्न्यायाः अ घ्न्यायाः इन्दुः धाराभिः सचते सुमेधाः सु मेधाः मूर्द्धानम् गावः पयसा चमूषु अभि श्रीणन्ति वसुभिः न निक्तैः ॥ ३ ॥

---

१. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.११.२०]।
२. "कर्मणि कर्तृप्रत्ययोऽयम्"।
३. "उस्त्रियेति गोनाम। उस्राविण्यः" [निरु० ४.१९]।

अन्वयः—इन्दुः सुमेधाः उत्-अघ्न्यायाः-ऊधः प्रपिप्य धाराभिः सचते गावः मूर्धानम् पयसा चमूषु अभि-श्रीणन्ति वसुभिः-निक्तैः-न ॥

पदार्थः—(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (सुमेधाः) शोभन—मेधावी—सर्वज्ञ (उत्-अघ्न्यायाः-ऊधः प्रपिप्य) जैसे गौ का दूधस्थान दूध से भर जाता है ऐसे ही (धाराभिः सचते) स्तुतिवाणियों से समवेत होता है संज्ञात या प्रसिद्ध साक्षात् होता है (गावः) स्तुतिवाणियाँ (मूर्धानम्) शिरोधार्य सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (पयसा) अन्तर्हितभाव—अनुराग से[1] (चमूषु) अन्तःकरणावयवों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार रूप पात्रों में (अभि-श्रीणन्ति) आश्रय दे देती हैं (वसुभिः-निक्तैः-न) जैसे शुद्ध वास देने वाले वस्त्रादि से वासित आश्रित करते हैं—आश्रय दे देते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय द्वृयृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन-गमन-प्रवेश करनेवाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—प्रगाथः (विषमा बृहती)॥

१४२१. **पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः॥ १ ॥**

पदपाठः— **पिबासुतस्यरसिनः॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २३९)

१४२२. **भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये। अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥ २ ॥**

पदपाठः— **भूयाम ते सुमतौ सु मतौ वाजिनः वयम् मा नः स्तः अभिमातये अभि मातये अस्मान् चित्राभिः अवतात् अभिष्टिभिः आ नः सुम्नेषु यामय॥ २ ॥**

अन्वयः—वयं वाजिनः ते सुमतौ भूयाम अभिमातये नः-मा स्तः चित्राभिः-अभिष्टिभिः अवात् यः सुम्नेषु-आयामय॥

पदार्थः—(वयं वाजिनः) हे इन्द्र—परमात्मन्! हम अर्चना वाले—स्तुति वाले[2] स्तुति समर्पित करने वाले उपासक (ते सुमतौ भूयाम) तेरी कल्याणकारी मति—शिक्षा में हों—रहें (अभिमातये नः-मा स्तः) पाप के लिये[3] पाप करने को

१. ''अन्तर्हितमिव वा तद्यत पयः'' [तां० ९.९.३]।
२. ''वाजयति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।
३. ''पाप्मा वा अभिमातिः'' [काठ० १३.३]।

हमें मत प्रस्तृत[1] प्रेरित कर—करता है। अपितु (चित्राभिः-अभिष्टिभिः) अद्भुत—अलौकिक अभिवेष्टनाओं[2] रक्षणरीतियों के द्वारा (अवात्) हमारी रक्षा कर (यः सुम्नेषु-आयामय) साधु[3] सुख सरल सदाचरणों में समन्तरूप से रहकर—लगा—लगाता है॥ २॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—रेणुर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध सूक्ष्म ज्ञान वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

१४२३. **त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि।**
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत॥ १॥

पदपाठः— **त्रिरस्मैसप्तधेनवोदुदुह्रिरे॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६०)

१४२४. **स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे। तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः॥ २॥**

पदपाठः— **सः भक्षमाणः अमृतस्य अ मृतस्य चारुणः उभेइति द्यावा काव्येन विशश्रथे तेजिष्ठाः अपः मंहना परि व्यत यदि देवस्य श्रवसा सदः विदुः॥ २॥**

अन्वयः—सः चारुणः-अमृतस्य भक्षमाणः उभे द्यावा 'द्यावा पृथिवी' काव्येन विशश्रये तेजिष्ठाः-अपः मंहना परिव्यत यदि देवस्य सदः श्रवसा विदुः॥

पदार्थः—(सः) वह (चारुणः-अमृतस्य भक्षमाणः) शोभन रोचमान[4] अमृत-मोक्षानन्द का सेवन कराना चाहता हुआ[5] सोम—परमात्मा (उभे द्यावा 'द्यावा पृथिवी') दोनों द्युलोक पृथिवीलोक—उनके स्वरूप या ज्ञान को (काव्येन) वेदत्रयी—विद्यात्रयी[6] के द्वारा (विशश्रये) विधृत करता है—खोलता है[7] (तेजिष्ठाः-अपः) अत्यन्त तेजस्वी आप्त उपासक जनों को[8] (मंहना परिव्यत) अपनी सुखप्रदान

---

१. "स्तृञ् आच्छादते" [क्र्यादि०]। २. "अभि पूर्ववात् ष्टै वेष्टने" [भ्वादि०]।
३. "सुम्ने मा धत्तमिति.....साधौ मा धत्तमित्यैवैतदाह" [श० १.८.३.२७]।
४. "चारु रुचेर्विपरीतस्य" [निरु० ११.५]।
५. "इन्द्रस्य भक्षतः.....इन्द्रस्य धनानि विभक्षमाणः स यदा धनानि विभजति" [निरु० ६.८]।
६. "त्रयी वै विद्या काव्यम्" [श० ८.५.२.४]।
७. "श्रथ मोक्षणे" [चुरादि०] विपूर्वको विवरणार्थे।
८. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०]।

प्रवृत्ति से[1] परिप्राप्त होता है (यदि देवस्य सदः श्रवसा विदुः) यदि वे उपासकजन तुझ द्योतमान परमात्मा के सदन—हृदयस्थान को श्रवण द्वारा जान लें[2] ॥ २ ॥

१४२५. **ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु। येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत॥ ३ ॥**

पदपाठः— **ते अस्य सन्तु केतवः अमृत्यवः अ मृत्यवः अदाभ्यासः अ दाभ्यासः जनुषीइति उभेइति अनु येभिः नृम्णा च देव्या च पुनते आत् इत् राजानम् मननाः अगृभ्णत॥ ३ ॥**

अन्वयः—अस्य ते केतवः अमृत्यवः-अदाभ्यः सन्तु उभे जनुषी अनु येभिः नृम्णा च देव्या च पुनते आत्-इत् मननाः-राजानम्-अगृभ्णत॥

पदार्थः—(अस्य) इस सोम—शान्त परमात्मा के (ते केतवः) वे पूर्वोक्त प्रज्ञानवान्[3] मुमुक्षु उपासक (अमृत्यवः-अदाभ्यः सन्तु) मृत्युरहित, अमर, अहिंसनीय हो जावे (उभे जनुषी अनु) दोनों जन्म—प्रादुर्भाव—संसार में आना, आने पर 'अदाभ्य'—अहिंसनीय पुनः मोक्ष में जाने पर 'अमृत्यु' मृत्युरहित—अमर हो जाते हैं (येभिः) जिन्हें लक्ष्य कर या जिनके लिये[4] (नृम्णा च देव्या च) संसार में अन्नादि भोग और मोक्ष में 'देव्या' देवों मुक्तों के योग्य मोद आनन्द आदि (पुनते) प्राप्त कराता है[5] (आत्-इत्) अनन्तर ही (मननाः-राजानम्-अगृभ्णत) अर्चना स्तुति करने वाले उपासक[6] प्रकाशमान परमात्मा को स्वात्मा में ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१४२६. **अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽ३भि मित्रावरुणा पूयमानः। अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्॥ १ ॥**

---

१. "मंहति दानकर्मा" [निघं० ३.२०]।
२. "पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्-वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः" [अथर्व० १०.८.४३]।
३. "केतुः प्रज्ञा-प्रज्ञानम्" [निघं० ३.९] ततो मत्वर्थीयप्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः।
४. "चतुर्थ्यर्थे तृतीया व्यत्ययेन"।
५. "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।
६. पावयति-अन्तर्गतणिजर्थः।

पदपाठः— **अभि वायुम् वीती अर्ष गृणानः अभि मित्रा मि त्रा वरुणा पूयमानः अभि नरम् धीजवनम् धी जवनम् रथेष्ठाम् रथे स्थाम् अभि इन्द्रम् वृषणम् वज्रबाहुम् वज्र बाहुम् ॥ १ ॥**

अन्वयः—गृणानः पूयमानः वीती वायुम्–अभि–अर्ष मित्रावरुणा–अभि धीजवनं नरम्–अभि रथेष्टाम्–वृषणं–वज्रबाहुम्–इन्द्रम्–अभि ॥

पदार्थः—(गृणानः पूयमानः) हे सोमस्वरूप परमात्मन्! तू स्तूयमान—स्तुति में आता हुआ[1] साथ ही अध्येष्यमाण—प्रेरित आकर्षित किया जाता हुआ[2] (वीती) व्याप्ति या कामपूर्ति के लिये[3] (वायुम्–अभि–अर्ष) गतिशील मन को[4] अभिप्राप्त हो—पहुँच मय मनन करता रहे (मित्रावरुणा–अभि) प्राण अपानों को[5] अभिगत हो—पहुँच वे अच्छी गति करते रहें (धीजवनं नरम्–अभि) बुद्धि से अपने विषयों में गति करने वाला—नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय ग्राम समूह[6] को अभिप्राप्त हो—पहुँच जिससे उचित विषय में गमन करे (रथेष्ठाम्–वृषणं–वज्रबाहुम्–इन्द्रम्–अभि) शरीररथ में स्थित अङ्गों में शक्तिवर्षक, ओजरूप[7] बलवीर्य[8] जिसका है ऐसे आत्मा को अभिगत—पहुँच प्राप्त हो जिससे तेरे में रहा रहे ॥ १ ॥

१४२७. **अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः। अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अभि वस्त्रा सुवसनानि सु वसनानि अर्ष अभि धेनूः सुदुघाः सु दुघाः पूयमानः अभि चन्द्रा भर्त्तवे नः हिरण्य अभि अश्वान् रथिनः देव सोम ॥ २ ॥**

अन्वयः—देव सोम पूयमानः नः–भर्तवे सुवसनानि वस्त्रा–अभि–अर्ष सुदुघाः–धेनूः–अभि चन्द्रा हिरण्या–अभि रथिनः अश्वान्–अभि ॥

---

१. कर्मणि कर्तृप्रत्ययः।
२. ''पवस्व–अध्येषणाकर्मा'' [निघं० ३.२१]।
३. ''वी गति व्याप्ति प्रजननकान्ति.....'' [अदादि०] ततः क्तिन्। ''सुपां सुलुक्पूर्वसवर्ण......'' [अष्टा० ७.१.३९]।
४. ''मनो वायुः'' [काठ० १३.२]।
५. ''प्राणापानौ मित्रावरुणौ'' [तां० ६.१०.५]।
६. ''नरो वै देवानां ग्रामः'' [तां० ६.९.२]।
७. ''वज्रो वा ओजः'' [श० ८.४.१.१०]।
८. ''बाहुः वीर्यम्'' [तां० ६.१.८]।

पदार्थः—(देव सोम) हे द्योतमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (पूयमानः) अध्येष्यमाण—प्रेरित—आकर्षित हुआ (नः-भर्तवे) हमारे भरण करने के लिये (सुवसनानि वस्त्रा-अभि-अर्ष) जो शोभनवसन आच्छादन योग्य वस्त्रों को अभिगत हो—वस्त्रों को व्यसनरूप में न देवें—वर्तें किन्तु तेरा प्रसाद है ऐसी दृष्टि से वर्तें (सुदुघाः-धेनूः-अभि) उत्तम दूहन योग्य गौओं में अभिगत—प्राप्त हो उन्हें भी तेरा उपहार समझें (चन्द्रा हिरण्या-अभि) आह्लादकारक स्वर्ण आदि धनों को भी अभिप्राप्त हो—उन्हें केवल भूषामात्र न समझें किन्तु उनमें तेरी झाँकी प्रतीत करें (रथिनः अश्वान्-अभि) रथवान् घोड़ों को भी तेरा प्रसाद मानें॥ २॥

१४२८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः॥ ३॥

पदपाठः— **अभि नः अर्ष दिव्या वसूनि अभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः अभि येन द्रविणम् अश्नवाम अभि आर्षेयम् जमदग्निवत् जमत् अग्निवत् नः॥ ३॥**

अन्वयः—पूयमानः नः दिव्या वसूनि-अभि-अर्ष येन 'यद्' द्रविणम्-अश्नवामः-अभि आर्षेयं जमदग्निवत्-अभि॥

पदार्थः—(पूयमानः) हे सोम—शान्त परमात्मन्! तू अध्येषमाण हुआ आकर्षित हुआ (नः) हमारे (दिव्या वसूनि-अभि-अर्ष) दिव्य आकाश से प्राप्त होने वाले वास साधनों—वृष्टि, ज्योति, अवश्याय=ओस, रात्रि, वायु को अभिगत हो प्राप्त हो—इन्हें सेवन करते हुए तेरा स्मरण करें (येन 'यद्' द्रविणम्-अश्नवामः-अभि) जिस[1] धन को हम भोगें उसे तू अभिगत हो—प्राप्त हो उस भोग के साथ तेरा धन्यवाद करें (आर्षेयं जमदग्निवत्-अभि) ऋषियों से श्रुतज्ञान नेत्र वाला नेत्रदृष्ट[2] साक्षात् है उसे अभिगत—प्राप्त हो उससे तेरा मनन करें॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधावृषी (मुमुक्षु मेधा वाला और बहुत मेधा वाला)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय। तत्पृथिवीम-प्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम्॥ १॥

पदपाठः— **यज्जायथाअपूर्व्य॥ १॥**

अन्वयः—अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय यत् 'यद्'-जायथाः तत् 'तद्' पृथिवीम्-

---

१. "द्रविणं धननाम" [निघं० २.१२]।
२. "चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते" [श० ८.१.२.३]।

अप्रथयः उत–उ उत्–दिवम्–अस्तभ्नाः ॥

पदार्थः—(अपूर्व्य मघवन्) हे अपूर्व गुणसम्पन्न मोक्षैश्वर्यवन् परमात्मन्! (वृत्रहत्याय) आत्मा को प्रथम से आवृत करने वाले अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिये (यत् 'यद्'–जायथाः) जब तू सृष्टि रचने की भावना से प्रसिद्ध होता है (तत् 'तद्') तब (पृथिवीम्–अप्रथयः) उसके लिये शरीर को[1] प्रथित करता है—नाड़ी तन्तुओं, मांस हड्डियों से विस्तृत करता है कर्म करने को (उत–उ) और फिर (उत्–दिवम्–अस्तभ्नाः) तब अमृतधाम—मोक्ष को[2] सम्भालता है मोक्ष प्राप्त कराने को ॥ १ ॥

१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः। तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम्॥ २॥

पदपाठः— तत् ते यज्ञः अजायत तत् अर्कः उत हस्कृतिः तत् विश्वम् अभिभूः अभि भूः असि यत् जातम् यत् च जन्त्वम्॥ २॥

अन्वयः—तत् 'तद्' ते यज्ञः–अजायत् तत्–'तद्' अर्कः उत हस्कृतिः यत्–जातं यत्–च जन्त्वम् तत्–विश्वम् अभिभूः–असि ॥

पदार्थः—(तत् 'तद्' ते) परमात्मन् तब तेरा (यज्ञः–अजायत्) उपासक ऋषियों द्वारा अध्यात्मयज्ञ प्रसिद्ध हो जाता है (तत्–'तद्' अर्कः) उस समय अध्यात्म यज्ञार्थ मन्त्र[3] मन्त्रमय–वेद प्रसिद्ध होता है (उत हस्कृतिः) और उपासकों की हास—हर्ष की क्रिया—प्रसन्नता भी व्यक्त हो जाती है (यत्–जातं यत्–च जन्त्वम्) जो उत्पन्न—प्रत्यक्ष हुआ जगत् सुख और जो उत्पन्न होने वाला परोक्षानन्द[4] (तत्–विश्वम्) उस सब को (अभिभूः–असि) अभिभूत किए हुए है—स्वाधीन रखता है ॥ २ ॥

१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि। घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्॥ ३॥

पदपाठः— आमासु पक्वम् ऐरयः आ सूर्यम् रोहयः दिवि घर्म्मम् न सामन् तपत सुवृक्तिभिः सु वृक्तिभिः जुष्टम् गिर्वणसे गिः वनसे बृहत्॥ ३॥

अन्वयः—आमासु–पक्वम्–ऐरय आ, सूर्यं रोहयः–दिवि धर्मं न सामन् तपत सुवृक्तिभिः बृहत्–'बृहन्तं' दुष्टं गिर्वणसे ॥

---

१. "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २.३.३]।

२. "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।

३. "अर्को मन्त्रो भवति" [निरु० ५.४]।

४. "कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः" [अष्टा० ३.४.१४]।

पदार्थः—(आमासु–पक्वम्–ऐरय) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू अपक्व साधारण उपासक प्रजाओं में परिपक्व—उपासना में सुसम्पन्न उपासक मुमुक्षु को ऊँचे प्रेरित कर (आ, सूर्यं रोहयः–दिवि) जैसे सूर्य को ऊँचे आकाश में चढ़ाया है (धर्मं न सामन् तपत) तथा हे अपक्व उपासक प्रजाओ! तुम अपने को साम में उपासना में ऐसे तपाओ प्रकाश लेकर जैसे यज्ञ[1] को तपाते हैं प्रज्वलित करते हैं (सुवृक्तिभिः) शोभन स्तुतियों से[2] (बृहत्–'बृहन्तं' दुष्टं गिर्वणसे) महान्[3] सेवनीय या प्रीतिपात्र स्तुतिवाणियों से वननीय इन्द्र परमात्मा को[4] स्तुत करो—साक्षात् करो॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अगस्त्यः (शरीर और संसार वृक्ष का संग्रह और त्याग करने वाला अध्यात्म यज्ञ का याजक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः। वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः॥ १॥

पदपाठः— मत्सि अपायि ते महः पात्रस्य इव हरिवः मत्सरः मदः वृषा ते वृष्णे इन्दुः वाजी सहस्रसातमः सहस्र सातमः॥ १॥

अन्वयः—हरिवः ते महः पात्रस्य–इव–अपामि मत्सि मत्सरः–मदः ते वृष्णे वृषा–इन्दुः–वाजी सहस्रसातमः॥

पदार्थः—(हरिवः) हे दुःखापहर्ता सुखाहर्ता ज्योति और शान्ति से युक्त परमात्मन्! (ते महः पात्रस्य–इव–अपामि) तेरे लिये जो महत् पात्र जितना सोम—उपासनारस है उसे तूने पिया—स्वीकार किया, अतः (मत्सि) तू हम पर हर्षित हो रहा है—प्रसन्न हो रहा है (मत्सरः–मदः) यह उपासनारस हर्षप्रद—प्रसन्नताकारक है (ते वृष्णे) तुझ सुखवर्षक के लिये (वृषा–इन्दुः–वाजी) वर्षणशील आर्द्र उपासनारस बलवान् (सहस्रसातमः) बहुत हमारा सुख सम्भाजी है॥ १॥

१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः। सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः॥ २॥

पदपाठः— आ नः ते गन्तु मत्सरः वृषा मदः वरेण्यः सहावान् इन्द्र सानसिः पृतनाषाट् अमर्त्यः अ मर्त्यः॥ २॥

---

१. ''धर्मः–यज्ञनाम'' [निरु० ३.१७]।

२. ''सुवृक्तिभिः–शोभनाभिः स्तुतिभिः'' [निरु० २.२४]।

३. ''सुपां सुलुक्'' [अष्टा० ७.१.३९] इति अम् विभक्तेर्लुक्।

४. विभक्तिव्यत्ययः, द्वितीयास्थाने चतुर्थी।

अन्वयः—इन्द्र नः वृषा मदः-वरेण्यः-मत्सरः ते आगन्तु सहावान् सानसिः पृतनाषाट् अमर्त्यः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (नः) हमारा (वृषा मदः-वरेण्यः-मत्सरः) वर्षणशील निरन्तर चलने वाला सृष्टिनिमित्तक स्वीकार करने योग्य सोम—उपासनारस (ते) तेरे लिये—तेरी ओर (आगन्तु) आ रहा है तू इसे स्वीकार कर (सहावान्) तू सहस्वान्[1] बलवान् (सानसिः) सुख सम्भाजक—सुखदाता (पृतनाषाट्) काम आदि विरोधी दोषों का तिरस्कारकर्ता (अमर्त्यः) अमर अविनाशी एकरस है ॥ २ ॥

१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम्। सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

पदपाठः— **त्वम् हि शूरः सनिता चोदयः मनुषः रथम् सहावान् दस्युम् अव्रतम् अ व्रतम् ओषः पात्रम् न शोचिषा ॥ ३ ॥**

अन्वयः—त्वं हि शूरः सनिता मनुषः-रथं चोदयः सहावान् सहस्वान् अव्रतं दस्युम्-ओषः पात्रं न शोचिषा ॥

पदार्थः—(त्वं हि शूरः) हे इन्द्र—परमात्मन्! तू ही पराक्रमी है—सब पर अधिकारकर्ता (सनिता) सुख सम्भाजक—सुखदाता (मनुषः-रथं चोदयः) मननशील उपासक के रथ—देवरथ—या मनन धर्म के रथ—देवरथ—तुझ देव की ओर चलने वाले रथ अध्यात्मयज्ञ[2] को प्रेरित कर (सहावान् सहस्वान्) बलवान् (अव्रतं दस्युम्-ओषः) व्रतरहित—सदाचरण कर्मरहित—अन्य के क्षयकर्ता को दग्ध कर देता है (पात्रं न शोचिषा) जैसे अग्नि रिक्त पात्र को ज्वाला से दग्ध कर देता है ॥ ३ ॥

इति द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१. "सहावानं सहस्वन्तम्" [निरु० १०.२८]।
२. "देवरथो वा एष यद् यज्ञः" [मै० २.३७]।

अथ त्रयोदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम पञ्चर्च

ऋषिः—कविः (स्तुतिवक्ता उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४३५. पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि। अयक्ष्मा बृहतीरिषः॥ १॥

पदपाठः— पवस्व वृष्टिम् आ सु नः अपाम् ऊर्म्मिम् दिवः परि अयक्ष्माः अ यक्ष्माः बृहतीः इषः॥ १॥

अन्वयः—नः वृष्टिम्-आपवस्व अपाम्-ऊर्मिंदिवस्परि सु बृहतीः-इषः अयक्ष्माः॥

पदार्थः—(नः) हे सोम—परमात्मन्! तू हम उपासकों के लिये (वृष्टिम्-आपवस्व) सुखवृष्टि को ले आ—समन्तरूप से प्राप्त करा (अपाम्-ऊर्मिंदिवस्परि सु) हम मुमुक्षुजनों की[1] स्तुतितरङ्ग को अमृतधाम में[2] पहुँचा, इस प्रकार (बृहतीः-इषः) ऊँची कामनाएँ-कमनीय वस्तुएँ (अयक्ष्माः) रोग से—क्षय से रहित हों॥ १॥

१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन्। जन्यास उप नो गृहम्॥ २॥

पदपाठः— तया पवस्व धारया यया गावः इह आगमन् आ गमन् जन्यासः उप नः गृहम्॥ २॥

अन्वयः—तया धारया पवस्व यया गावः-इह-आगमन् जन्यासः-नः-गृहम्-उप॥

पदार्थः—(तया धारया पवस्व) हे परमात्मन्! तू अपनी उस धारण शक्ति से[3] प्राप्त हो (यया गावः-इह-आगमन्) जिससे तेरी वाणियाँ—[4]वेदवाणियाँ यहाँ

---

१. ''मनुष्या वा आपश्चन्द्राः'' [श० ७.३.१.२०]।

२. ''पञ्चम्याः परावध्यर्थे'' [अष्टा० ८.३.५१]।

३. ''तद्यदक्रमीद्ब्रह्म आभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि यदिकश्चनेति तस्माद् धारा अभवन्'' [गो० १.१.२३]।

४. ''गौः वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

अन्तःकरण में आजावे सात्म्य हो जावे (जन्यासः-नः-गृहम्-उप) उन वाणियों से जन्य—उत्पन्न सुख लाभ हृदय को प्राप्त हो ॥ २ ॥

१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः। अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

पदपाठः— घृतम् पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः देव वीतमः अस्मभ्यम् वृष्टिम् आ पव ॥ ३ ॥

अन्वयः—देववीतमः यज्ञेषु धारया घृतं पवस्व अस्मभ्यं वृष्टिम्-आपव ॥

पदार्थः—(देववीतमः) हे सोम—परमात्मन्! तू मुमुक्षुजनों का अत्यन्त कमनीय होता हुआ, उनके (यज्ञेषु) अध्यात्म यज्ञों में (धारया घृतं पवस्व) अपनी धारणशक्ति से तेज को[1] प्रेरित कर (अस्मभ्यं वृष्टिम्-आपव) हम उपासकों के लिये सुखवृष्टि को बरसा ॥ ३ ॥

१४३८. स न ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया। देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥

पदपाठः— सः नः उर्जे वि अव्ययम् पवित्रम् धाव धारया देवासः शृणवन् हिकम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सः नः-ऊर्जे अव्ययं पवित्रं धारया विधाव देवासः-हि कम्-शृण्वन् ॥

पदार्थः—(सः) वह तू सोम—परमात्मन्! (नः-ऊर्जे) हमारे आनन्दरस के लिये (अव्ययं पवित्रं धारया विधाव) अवि—पृथिवी—पृथिवीमय[2] पार्थिव हृदय—प्राप्तिस्थान के प्रति धारण शक्ति से विशेषरूप में प्राप्त हो[3] (देवासः-हि कम्-शृण्वन्) इन्द्रियाँ भी तेरे सुख को अनुभव करें या स्वीकार करें—अपनावें ॥ ४ ॥

१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्। प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

पदपाठः— पवमानः असिष्यदत् रक्षांसि अपजङ्घनत् अप जङ्घनत् प्रत्नवत् रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

अन्वयः—पवमानः रक्षांसि अपजङ्घनत् प्रत्नवत् 'प्रत्नवती' रुचः-रोचयन् असिष्यदत् ॥

---

१. "तेजो वै घृतम्" [मै० १.६.८]।

२. "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६.१.२.३३]।

३. "धावति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

पदार्थः—(पवमानः) धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा (रक्षांसि अपजङ्घनत्) रक्षा जिनसे करनी चाहिए ऐसे दुर्गुणों पापों को नष्ट करता हुआ (प्रत्नवत् 'प्रत्नवती' रुचः-रोचयन्) परम्परा से चली आई[1] दीप्तियों—ज्ञानज्योतियों को प्रकाशित करता हुआ (असिष्यदत्) प्राप्त होता है ॥५॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को[2] अपने अन्दर धारण करने वाला)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर। अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः॥१॥

पदपाठः— प्रत्यस्मैपिपीषते॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३५२)

१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्। अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥२॥

पदपाठः— आ ईम् एनम् प्रत्येतन प्रति एतन सोमेभिः सोमपातमम् सोम पातमम् अमत्रेभिः ऋजीषिणम् इन्द्रम् सुतेभिः इन्दुभिः॥२॥

अन्वयः—ईम्-एनं सोमपातम् ऋजीषिणम्-इन्द्रम् सुतेभिः-अमत्रेभिः-इन्दुभिः सोमेभिः आप्रत्येतन॥

पदार्थः—(ईम्-एनं सोमपातम्) हे उपासको! तुम अवश्य इस उपासनारस के अत्यन्त पान करने वाले—स्वीकार करने वाले—(ऋजीषिणम्-इन्द्रम्) अध्यात्मयज्ञ में अतिरिक्त बढ़े-चढ़े उपासक वाले[3] परमात्मा को (सुतेभिः-अमत्रेभिः-इन्दुभिः सोमेभिः) सम्पन्न हुए—बिना माप वाले[4] अत्यधिक दीप्यमान उपासनारसों द्वारा (आप्रत्येतन) समन्तरूप से प्राप्त होओ॥२॥

१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ। वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते॥३॥

---

१. प्रत्नवत्-लिङ्शसोर्लुक्छान्दसः।
२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १.१९३]।
३. "अतिरिक्तं वा एतद् यज्ञस्य यद् ऋजीषम्" [मै० ४.८.५]।
४. "अमत्रं....पुनरनिर्मितं भवति" [निरु० ५.१]।

पदपाठः— **यदि सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ प्रति भूषथ वेद विश्वस्य मेधिरः धृषत् तन्तम् तम् तम् इत् आ इषते॥ ३॥**

अन्वयः—यदी सुतेभिः-इन्दुभिः सोमेभिः प्रति भूषथ मेधिरः-धृषत् विश्वस्य वेद तं तम्-इत्-एषते॥

पदार्थः—(यदी) हे उपासको! यदि (सुतेभिः-इन्दुभिः सोमेभिः) निष्पन्न प्रकाशमान उपासनारसों से (प्रति भूषथ) इन्द्र—परमात्मा को तुम प्रतिप्राप्त हो जाओ[1] तो (मेधिरः-धृषत्) प्रशस्त मेधा वाला अज्ञाननाशक परमात्मा (विश्वस्य वेद) सब कमनीय को जानता है (तं तम्-इत्-एषते) उसको प्राप्त कराता है॥ ३॥

१४४३. **अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्। कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत्॥ ४॥**

पदपाठः— **अस्माअस्मै अस्मै अस्मै इत् अन्धसः अध्वर्यो प्र भर सुतम् कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्द्धतः अभिशस्तेः अभि शस्तेः अवस्वरत् अव स्वरत्॥ ४॥**

अन्वयः—अध्वर्यो अस्मै-अस्मै-इत् सुतम्-अन्धसः-'अन्धः' प्रभर समस्य जेन्यस्य शर्धतः-अभिशस्तेः कुवित्-अवस्वरत्॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्यात्मयज्ञ के याजक उपासकजन! तू (अस्मै-अस्मै-इत्) इस ही इस इन्द्र—परमात्मा के लिये (सुतम्-अन्धसः-'अन्धः') निष्पन्न आध्यानीय—उपासनारस को (प्रभर) प्रभरित कर—समर्पित कर (समस्य जेन्यस्य शर्धतः-अभिशस्तेः) सब[2] जीतने योग्य—नष्ट करने योग्य उत्साह करते हुए—उठते हुए—उभरते हुए[3] अभिशंसन—दबाने सताने वाले काम आदि दोष को[3] (कुवित्-अवस्वरत्) बहुत[4] दबाता[5] है—नष्ट करता है॥ ४॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम षड्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागादि बन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लानेवाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४४४. **बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे। सोमाय गाथमर्चत॥ १॥**

---

१. "भू प्राप्तौ" [चुरादि०] ततो लेटि सिप् च अट् च छान्दसौ।
२. "समस्य.....सर्वस्य" [निरु० ५.२३]। ३. "शधतः.....उत्सहताम्" [निरु० ४.१९]।
४. "अभिशस्तिहा" [तै० सं० १.६.५.२]। ५. "स्वृ शब्दोपतापयोः" [भ्वादि०]।

पदपाठः— **बभ्रवे नु स्वतवसे स्व तवसे अरुणाय दिविस्पृशे दिवि स्पृशे सोमाय गाथम् अर्च्चत॥ १ ॥**

अन्वयः—बभ्रवे स्वतवसे अरुणाय दिविस्पृशे सोमाय गाथम्-अर्चत॥

पदार्थः—(बभ्रवे) हे उपासको! तुम भरण-पोषण करने वाले—(स्वतवसे) निजी बल वाले—[1](अरुणाय) तेजस्वी—(दिविस्पृशे) मोक्षधाम में प्राप्ति वाले (सोमाय) शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (गाथम्-अर्चत) स्तुतिसमूह को[2] अर्चित करो—भेंट करो॥

१४४५. **हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन। मधावा धावता मधु॥ २ ॥**

पदपाठः— **हस्तच्युतेभिः हस्त च्युतेभिः अद्रिभिः अ द्रिभिः सुतम् सोमम् पुनीतन पुनीत न मधा आ धावत मधु॥ २ ॥**

अन्वयः—हस्तच्युतैः-अद्रिभिः सुतं सोमम् पुनीतन मधौ मधु-आधावत॥

पदार्थ—(हस्तच्युतैः-अद्रिभिः) हे उपासको! तुम हाथ से रहित अदीर्ण अनश्वर फल वाले कर्मों—योगाभ्यासों—द्वारा (सुतं सोमम्) निष्पादित परमात्मा को (पुनीतन) साक्षात् करो (मधौ मधु-आधावत) मधु—अपने ज्ञानवान् चेतन-स्वरूप आत्मा में महामधु—मधुररूप परमात्मा को समन्तरूप से प्राप्त करो॥ २॥

१४४६. **नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन। इन्दुमिन्द्रे दधातन॥ ३ ॥**

पदपाठः— **नमसा इत् उप सीदत दध्ना इत् अभि श्रीणीतन श्रीणीत न इन्दुम् इन्द्रे दधातन दधात न॥ ३ ॥**

अन्वयः—नमसा-इत् उपसीदत दध्ना-इत्-श्रीणीतन इन्दुम्-इन्द्रे दधातन॥

पदार्थः—(नमसा-इत्) नम्रस्तुति से (उपसीदत) परमात्मा को समीप—साक्षात् प्राप्त करो (दध्ना-इत्-श्रीणीतन) ध्यान से ही[3] उसे परिपक्व करो—सिद्ध करो—अभ्यस्त करो (इन्दुम्-इन्द्रे दधातन) प्रकाशस्वरूप या आनन्दपूर्ण परमात्मा को स्वात्मा में धारण करो॥ ३॥

१४४७. **अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे। देवेभ्यो अनुकामकृत्॥ ४॥**

---

१. ''तवस् बलनाम'' [निघं० २.९] मतुब्लोपश्छान्दसः।

२. ''गाथा वाक्'' [निघं० १.११] तासां समूहः-गाथः।

३. ''दध्यङ्-प्रत्यक्तं ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा'' [निरु० १२.३४]।

पदपाठः— अमित्रहा अमित्र हा विचर्षणिः वि चर्षणिः पवस्व सोम शम् गवे देवेभ्यः अनुकामकृत् अनुकाम कृत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सोम अमित्रहा विचर्षणिः गवे शम् देवेभ्यः-अनुकामकृत् ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (अमित्रहा) जो तेरा मित्र नहीं, तुझ से स्नेह नहीं करता उस नास्तिक भाव का तू हन्ता है (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा—आस्तिक नास्तिक का ज्ञाता है, अतः (गवे शम्) स्तुतिकर्ता के लिये[1] कल्याण-कारी है (देवेभ्यः-अनुकामकृत्) मुमुक्षुजनों के लिये अनुकूल कामनापूरक है ॥ ४ ॥

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे। मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

पदपाठः— इन्द्राय सोमपातवे मदाय परि सिच्यसे मनश्चित् मनः चित् मनसः पतिः ॥ ५ ॥

अन्वयः—सोम इन्द्राय पातवे मदाय परिषिच्यसे मनश्चित् मनसस्पतिः ॥

पदार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (इन्द्राय पातवे मदाय) आत्मा के पान—सेवन करने के लिये, उसके हर्ष के लिये (परिषिच्यसे) स्तुतियों द्वारा परिषिक्त किया जाता है—रिझाया जाता है, (मनश्चित्) तू मन का, मनोवृत्ति का ज्ञाता और (मनसस्पतिः) मन का पालक है ॥ ५ ॥

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः। इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥

पदपाठः— पवमान सुवीर्यम् सु वीर्यम् रयिम् सोम रिरीहि नः इन्दो इन्द्रेण नः युजा ॥ ६ ॥

अन्वयः—पवमान सोम सुवीर्यं रयिं नः-रिरीह नः-इन्दो युजा-इन्द्रेण ॥

पदार्थः—(पवमान सोम) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (सुवीर्यं रयिं नः-रिरीह) शोभन बल वाले ज्ञान-धन को हमें दे—प्रदान कर (नः-इन्दो) हे हमारे आनन्दरसपूर्ण इष्टदेव (युजा-इन्द्रेण) युक्त होने वाले मुझ उपासक आत्मा के साथ युक्त हो—सङ्गति कर ॥ ६ ॥

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन अध्यात्मकक्षा वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४५०. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

---

१. "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]

पदपाठः— **उद्धेदभिश्रुतामघम्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १२५)

१४५१. **नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत्॥ २॥**

पदपाठः— **नव यः नवतिम् पुरः बिभेद बाह्वोजसा बाहू ओजसा अहिम् च वृत्रहा वृत्र हा अवधीत्॥ २॥**

१४५२. **स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्। उरुधारेव दोहते॥ ३॥**

पदपाठः— **सः नः इन्द्रः शिवः सखा स खा अश्वावत् गोमत् यवमत् उरुधारा उरु धारा इव दोहते॥ ३॥**

अन्वयः—बाह्वोजसा नव नवतिं 'नवतीः' पुरः बिभेद वृत्रहा अहिं च-अवधीत् सः-इन्द्रः नः शिवः सखा अश्वावत् गोमत् यवमत् उरुधारा-इव दोहते॥

पदार्थः—(बाह्वोजसा) जो इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा अनिष्टबाधक बल से उपासक को (नव नवतिं 'नवतीः' पुरः) नौ गतियों[1] मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पाँच ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ—जो आत्मा को पूरने वाली—घेरने वाली हैं उन्हें (बिभेद) छिन्न-भिन्न कर देता है (वृत्रहा) पापनाशक परमात्मा (अहिं च-अवधीत्) आत्मा के अमरत्व को आघात पहुँचाने वाले मृत्यु को या आगे आने वाले जन्म को नष्ट कर देता है (सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा पुनः (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र—साथी हुआ (अश्वावत्) घोड़ों वाले विहरण को (गोमत्) गौ वाले पेय (यवमत्) अन्न वाले भक्ष्य भोगों को यदि हम चाहें तो (उरुधारा-इव दोहते) बहुत दुग्ध धारा वाली गौ को दोहता है—देता है॥ २-३॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विभ्राट् सौर्यः (सूर्यसमान अध्यात्म तेज वाला योगी उपासक)॥ देवता—सूर्यः (उपासकों को अध्यात्मप्रकाशदाता परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

१४५३. **विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपताव-विह्रुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति॥ १॥**

---

१. "नवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४]। नवतिम्-'नवतीः' व्यत्ययेन एकवचनम्।

पदपाठः— विभ्राड्बृहत्पिबतुसोम्यम्मधु ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६२८)

१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्। अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥

पदपाठः— विभ्राट् वि भ्राट् बृहत् सुभृतम् सु भृतम् वाजसातमम् वाज सातभम् धर्म्मन् दिवः धरुणे सत्यम् अर्पितम् अमित्रहा अमित्र हा वृत्रहा वृत्र हा दस्युहन्तमम् दस्यु हन्तमम् ज्योतिः जज्ञे असुरहा असुर हा सपत्नहा सपत्न हा ॥ २ ॥

अन्वयः—विभ्राट् बृहत् सुभृतम् वाजसातमम् दिवः-धरुणे धर्मन् सत्यम् अर्पितम् अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमम् असुरहा सपत्नहा ज्योतिः ॥

पदार्थः—(विभ्राट्) विशेष दीप्त (बृहत्) बड़ा (सुभृतम्) सब में सुगमतया रखा (वाजसातमम्) बल का अत्यन्त दाता (दिवः-धरुणे धर्मन्) मोक्षधाम के धारक मुमुक्षु द्वारा धारण करने योग्य[1] (सत्यम्) सत्यस्वरूप (अर्पितम्) प्राप्त—स्थित परमात्मज्योति है (अमित्रहा) चेतनत्वविरोधी—जड़त्व का नाशक (वृत्रहा) पापनाशक (दस्युहन्तमम्) क्षयकारक अज्ञान का अत्यन्त नाशक (असुरहा) स्वार्थभावविघातक (सपत्नहा) वैरनाशक (ज्योतिः) परमात्मज्योति उपासक का पालन करता है ॥ २ ॥

१४५५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्। विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— इदम् श्रेष्ठम् जोतिषाम् ज्योतिः उत्तमम् विश्वजित् विश्व जित् धनजित् धन जित् उच्यते बृहत् विश्वभ्राट् विश्व भ्राट् भ्राजः महि सूर्यः दृशे उरू पप्रथे सहः ओजः अच्युतम् अ च्युतम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—इदं श्रेष्ठम् ज्योतिषां ज्योतिः-उत्तमम् बृहत्-विश्वजित्-उच्यते विश्वभ्राट् महिभ्राजः सूर्यः दशे उरु पप्रथे अच्युतं सहः-ओजः ॥

---

१. उभयत्र प्रथमायां सप्तमी व्यत्ययेन।

पदार्थः—(इदं श्रेष्ठम्) यह श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः-उत्तमम्) ज्योतियों का उत्तम ज्योतिस्वरूप (बृहत्-विश्वजित्-उच्यते) महान् विश्व पर अधिकार रखने वाला, धन—भोग्य वस्तुओं पर अधिकार रखने वाला कहा जाता है (विश्वभ्राट्) विश्वप्रकाश (महिभ्राजः) महान् प्रकाशमान (सूर्यः) सूर्य—परमात्मा (दशे) दर्शनार्थ (उरु पप्रथे) जगत् को प्रथित करता है—फैलाता है (अच्युतं सहः-ओजः) अनश्वर बलरूप और तेजोरूप है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन् पूरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ १ ॥

पदपाठः— इन्द्रक्रतुन्नआभर॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २५९)

१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः। त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥ २ ॥

पदपाठः— मा नः अज्ञाताः अ ज्ञाताः वृजनाः दुराध्यः दुः आध्यः मा अशिवासः अ शिवासः अव क्रमुः त्वया वयम् प्रवतः शश्वतीः अपः अति शूर तरामसि॥ २ ॥

अन्वयः—शूर अज्ञाताः-वृजनाः-दुराध्यः नः-मा अवक्रमुः अशिवासः-मा त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः-अपः अतितरामसि॥

पदार्थः—(शूर) हे पराक्रमशील परमात्मन्! (अज्ञाताः-वृजनाः-दुराध्यः) अज्ञात, प्राणवर्जक[1] दोष दुष्टजन तथा दुर्विचार अहितचिन्तन विचार, चोर शत्रुजन[2] अथवा 'वृजनाः-दुराध्यः' बलवान्[3] विचार या चोर शत्रुजन (नः-मा अवक्रमुः) हमें न दबावें (अशिवासः-मा) पाप[4] पापीजन भी हमें मत दबावें (त्वया) तेरे साथ—तेरी सहायता से (वयं प्रवतः शाश्वतीः-अपः) हम रक्षण पाए हुए[5] या प्रवण हुई गहरी पुरातन से चली आई[6] कामनाओं—वासनाओं को[7] अथवा 'प्रवतः

१. ''वृजी वर्जने'' [अदायि०]। २. ''ये वै स्तेना रिपवस्ते दुराध्यः'' [तां० ७.४.५]।
३. ''वृजनं बलनाम'' [निघं० २.९] अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः।
४. ''प्रवतः अवति गतिकर्मा'' [निघं० १०.२०] उपसर्गा च्छन्दसि धात्वर्थेवत् [अष्टा० .१.११८]। ५. ''अत्राजहीम ये अशेवा'' [ऋ० १०.५३.८]।
६. ''शश्वत्तमा-शाश्वतिकतमा'' 'शश्वतगामिनी' [निरु० १.२४]।
७. ''आपो वै सर्वे कामाः'' [श० १०.५.४.१५]।

शश्वतीरपः' संवत्सर—वर्ष—जीवन के वर्षों को[१] (अतितरामसि) पार कर जाते ॥ २ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१४५८. **अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः। विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥ १॥**

पदपाठः— **अद्याद्य अद्य अद्य श्वःश्वः श्वः श्वः इन्द्र त्रास्व परे च नः विश्वा च नः जरितॄन् सत्पते सत् पते अहा अ हा दिवा नक्तम् च रक्षिषः॥ १॥**

अन्वयः—सत्पते इन्द्र अद्य-अद्य श्वः श्वः परं च नः-त्रास्व विश्वा-अहा दिवा नक्तं च नः-जरितॄन्-रक्षिषः ॥

पदार्थः—(सत्पते इन्द्र) हे सज्जनों के पालक ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (अद्य-अद्य) आए दिन—प्रति आज दिन (श्वः श्वः) कल आने वाले दिन—प्रति आगामी कल दिन (परं च) और उससे परले परश्व—आगामी परसों के दिन (नः-त्रास्व) हमारा त्राण कर तथा (विश्वा-अहा) सब दिनों में (दिवा नक्तं च) दिन और रात (नः-जरितॄन्-रक्षिषः) हम स्तोताओं[२] उपासकों की रक्षा कर—करता है ॥ १ ॥

१४५९. **प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्। उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः॥ २॥**

पदपाठः— **प्रभङ्गी प्र भङ्गी शूरः मघवा तुवीमघः तुवि मघः सम्मिश्लः सम् मिश्लः वीर्याय कम् उभा ते बाहूइति वृषणा शतक्रतो शत क्रतो नि या वज्रम् मिमिक्षतुः॥ २॥**

अन्वयः—शतक्रतो वीर्याय प्रभङ्गी शूरः मघवा सम्मिश्लः कम् ते बाहू वृषणा या वज्रं नि मिमिक्षतुः ॥

पदार्थः—(शतक्रतो) हे बहुत कर्म वाले परमात्मन्! (वीर्याय) वीर्य प्रदर्शन के लिये—प्रदर्शन में तू इन्द्र—परमात्मा (प्रभङ्गी) दुःखभंजक (शूरः) काम आदि शत्रुओं का हिंसक (मघवा) अध्यात्म यज्ञ का स्वामी[३] (सम्मिश्लः कम्) समागम

---

१. ''संवत्सरो वा प्रवतः शाश्वतीरपः'' [तां० ४.७.६]।

२. ''जरिता स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१५]।

३. ''यज्ञेन मघवान्'' [तै० सं० ४.४.८.१]।

योग्य है (ते बाहू) तेरे दोनों कर्मबल और ज्ञानबल रूपी बाहु संसार और मोक्ष में (वृषणा) भोग और अमृत के वर्षाने वाले हैं (या) जो वे (वज्रं नि मिमिक्षतुः) ओज को उपासक में सींचता है[1] ॥ २ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—सरस्वान् (वेदवाणी वाला[2] परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्त सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे॥ १ ॥

पदपाठः— जनीयन्तः नु अग्रवः पुत्रीयन्तः पुत् त्रीयन्तः सुदानवः सु दानवः सरस्वन्तम् हवामहे॥ १ ॥

अन्वयः—जनीयन्तः पुत्रीयन्तः अग्रवः सुदानवः सरस्वन्तं हवामहे॥

पदार्थः—(जनीयन्तः) हम उपासक मुमुक्षुजनों की शक्तियों[3] को चाहते हुए जिनमें मुमुक्षु बनते हैं (पुत्रीयन्तः) अध्यात्मवरों[4] को चाहते हुए जो मुमुक्षुओं के अभीष्ट होते हैं (अग्रवः) आगे बढ़ने वाले (सुदानवः) शोभनदान—आत्मदान—आत्मसमर्पण करने वाले (सरस्वन्तं हवामहे) वेदवाणी वाले परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं॥ १ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्॥ १ ॥

पदपाठः— उत नः प्रिया प्रिया सु सप्तस्वसा सप्त स्वसा सुजुष्टा सु जुष्टा सरस्वती स्तोम्या भूत्॥ १ ॥

अन्वयः—उत नः प्रियासु प्रिया सप्तस्वसा सुजुष्टा सरस्वती स्तोम्या भूत्॥

पदार्थः—(उत) अपि—और (नः) हमारी (प्रियासु) प्रियाओं में—प्यारी चर्चाओं में प्रिया—प्यारी चर्चा (सप्तस्वसा सुजुष्टा) अपने गायत्री आदि सात

---

१. "मिक्ष सेचने" [वैदिक धातु:श्लौ] अथवा "मिह सेचने" [भ्वादि०] ततः स्वार्थे सत्।

२. "सरः वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

३. "देवानां वै पत्नीर्जनयः" [काठ० १२.७]।

४. "वरो हि पुत्रः" [काठ० ९.१४]।

छन्दों में बैठने वाली[1] शोभन सेवनीया (सरस्वती स्तोम्या भूत्) वेदवाणी[2] स्तुति करने योग्य है ॥ १ ॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—गाथिनो विश्वामित्रः (स्तुतिवाणी[3] से प्रपूर्ण आचार्य से सम्बद्ध सर्वमित्र[4] उपासक)॥ देवता—सविता (प्रेरक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १ ॥

पदपाठः— तत् सवितुः वरेण्यम् भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात् प्र चोदयात्॥ १ ॥

अन्वयः—देवस्य सवितुः तत्-वरेण्यं भर्गः धीमहि यः-नः-धियः प्रचोदयात्॥

पदार्थः—(देवस्य सवितुः) द्योतमान तथा प्रेरक[5] ब्रह्मात्मा[6] महान् आत्मा परमात्मा के (तत्-वरेण्यं भर्गः) उस वरणीय—वरने योग्य तेज—ज्ञानमय तेज स्वरूप को (धीमहि) हम ध्यावें—धारण करें यह आकांक्षा है (यः-नः-धियः प्रचोदयात्) जो प्रेरक परमात्मा हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार[7] चारों को अपनी ओर प्रेरित करे, हमारा मन उसका मनन करे, बुद्धि उसका विवेचन करे, चित्त उसका स्मरण करे, अहंकार उसका ममत्व करे—उसे अपनावे ॥ १ ॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः (वेद तथा ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २ ॥

पदपाठः— सोमानाꣳस्वरणम्॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३९)

---

१. "स्वसा स्वेषु सीदति" [निरु० ११.३२]।
२. "सरस्वती वाङ्नायम" [निघं० १.११]।
३. "गाथा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
४. "विश्वामित्रः सर्वमित्रः" [निरु० २.२५]।
५. "सविता वै देवानां प्रसविता" [जै० २.३७१]।
६. "ब्रह्म वै देवः सविता" [तै० सं० ५.३.४.४]।
७. "धीः प्रज्ञा प्रज्ञानानि" [निरु० ११.२७]।

पञ्चम एकर्च

ऋषिः—शतं वैखानसः (बहुत ही अमृतानन्द का विशेष खनन-खोज करने वाला[1] उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४६४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ ३॥

पदपाठः— अग्नआयूंᳲषिपवसे॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६२७)

षष्ठ तृच

ऋषिः—आत्रेयो यजतः (अत्र—इसी जीवन में तृतीय—मोक्षधाम का ज्ञान प्राप्तकर्ता से सम्बद्ध अध्यात्मयज्ञ का याजक)॥ देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक तथा वरणकर्ता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु॥ १॥

पदपाठः— तानःशक्तम्पार्थिवस्य॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११४५)

१४६६. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते॥ २॥

पदपाठः— ऋतम् ऋतेन सपन्ता इषिरम् दक्षम् आशातेइति अद्रुहा अ द्रुहा देवौ वर्द्धेतेइति॥ २॥

अन्वयः—ऋतम् ऋतेन सपन्ता इषिरं दक्षम् आशाते देवौ-अद्रुहा वर्धेते॥

पदार्थः—(ऋतम्) अमृत—न मरने वाले उपासक आत्मा को (ऋतेन) अमृतरूप मोक्ष के साथ[2] (सपन्ता) समवेत करता हुआ[3] 'मित्र' संसार में कर्मभोग के लिये प्रेरक, 'वरुण' अपनी ओर अपवर्ग—मोक्षार्थ वरने वाला परमात्मा (इषिरं दक्षम्) एषणीय भोग को और समृद्ध सुख या प्रज्ञान—प्रकृष्ट ज्ञान—अनुभूत होने वाले मोक्ष को[4] (आशाते) प्राप्त कराता है (देवौ-अद्रुहा वर्धेते) दोनों धर्मों वाला

---

१. ''विश्वननाद् वैखानसः'' [निरु० ३.१७]।
२. ''ऋतममृतमित्याह'' [जै० २.१६०]।
३. ''षप समवाये'' [भ्वादि०] सपन्ता-सपन्तौ मित्रावरुणौ मित्रः प्रेरकः वरणो वरयिता परमात्मा स एव।
४. ''क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधीति वीर्यंप्रज्ञानं वरुण संशिशाधीति'' [ऐ० १.१३]।

परमात्मा द्रोहरहित आपतु उपासक आत्मा को बढ़ाता है—उन्नत करता है ॥ २ ॥

१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापे षस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥

पदपाठः— वृष्टिद्यावा वृष्टि द्यावा रीत्यापा रिति आपा इषः पतीइति दानुमत्याः बृहन्तम् गर्त्तम् आशातेइति ॥ ३ ॥

अन्वयः—वृष्टिद्यावा रीत्यापा दानुमत्याः-इषः-पती बृहन्तं गर्तम्-आशाते ॥

पदार्थः—(वृष्टिद्यावा) आनन्दवृष्टि 'दिव्'—मोक्षधाम में करनेवाला (रीत्यापा) श्रवण से[1] आप्ति—प्राप्ति वाला—पूर्ति करने वाला (दानुमत्याः-इषः-पती) दान वाली इच्छा के स्वामी—सुखदानेच्छा वाला (बृहन्तं गर्तम्-आशाते) महान् रथ जो स्तुति से प्राप्त होने योग्य है[2] उस रमणीय मोक्षधाम को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

सप्तम तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४६८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

पदपाठः— युञ्जन्ति ब्रध्नम् अरुषम् चरन्तं परि तस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

अन्वयः—अरुषम् परिचरन्तम् ब्रध्नम् तस्थुषः युञ्जन्ति दिवि रोचना रोचन्ते ॥

पदार्थः—(अरुषम्) आरोचन—समन्तरूप से प्रकाशमान[3] (परिचरन्तम्) परिप्राप्त—व्यापक (ब्रध्नम्) महान्[4] परमात्मा को (तस्थुषः) उपासकजन[5] (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं—उसके साथ योग को प्राप्त होते हैं, पुनः वे योगी उपासक (दिवि रोचना रोचन्ते) द्योतनात्मक मोक्षधाम में अध्यात्म ज्ञानप्रकाशयुक्त हुए शोभित होते हैं ॥ १ ॥

१४६९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

पदपाठः— युञ्जन्ति अस्य काम्या हरीइति विपक्षसा वि पक्षसा रथे शोणा धृष्णुइति नृवाहसा नृ वाहसा ॥ २ ॥

---

१. "रीङ् श्रवणे" [दिवादि०]।
२. "गृणाति स्तुतिकर्मा" [निघं० ३.५]।
३. "अरुषीः आरोचनाः" [निरु० १२.७]।
४. "ब्रध्नः-महन्नाम" [निघं० ३.३]।
५. "तस्थुषः-मनुष्यः" [निघं० २.३]।

अन्वयः—अस्य रथे विपक्षसा शोणा धृष्णू काम्या नृवाहसा हरी युञ्जन्ति ॥

पदार्थः—(अस्य) इस इन्द्र—परमात्मा के (रथे) रमणीय स्वरूप में (विपक्षसा) विरुद्धपक्षीय (शोणा) शुभ्र (धृष्णू) धर्षणशील पापाज्ञाननाशक (काम्या) कमनीय (नृवाहसा) मुमुक्षुजनों के बहने वाले[1] (हरी) स्तुति और उपासना को[2] (युञ्जन्ति) उपासकजन युक्त करते हैं ॥ २ ॥

१४७०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

पदपाठः— केतुम् कृण्वन् अकेतवे अ केतवे पेशः मर्याः अपेशसे अ पेशसे सम् उषद्भिः अजायथाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—मर्याः अकेतवे केतुं कृण्वन् अपेशसे पेशः उषद्भिः समजायथाः ॥

पदार्थः—(मर्याः) हे उपासक जनो![3] वह इन्द्र—परमात्मा (अकेतवे केतुं कृण्वन्) प्रज्ञानरहित को प्रज्ञानवान् बनाने के हेतु अपना स्वरूप ज्ञान देने के हेतु (अपेशसे पेशः) स्वदर्शनरहित को स्वदर्शन देने के हेतु (उषद्भिः समजायथाः) अज्ञान एवं जड़ता के दग्ध करने वाले ज्ञानानन्द रसमय धर्मों गुणों के साथ उपासकों के अन्दर उनकी स्तुति उपासना से दयावान् होकर साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उशनाः (बन्धन से छूटने—मुक्ति की कामना करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा[4])॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१४७१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि। त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम्॥ १ ॥

पदपाठः— अयम् सोमः इन्द्र तुभ्यम् सुन्वे तुभ्यम् पवते त्वम् अस्य पाहि त्वम् ह यम् चकृषे त्वम् ववृषे इन्दुम् मदाय युज्याय सोमम्॥ १ ॥

---

१. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।

२. ''ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी'' [मै० ३.१०.६]।

३. ''मर्या मनुष्यनाम'' [निघं० २.३]।

४. मन्त्रेऽर्थसाङ्गत्यात् खलु देवता-इन्द्रः, न सोमः सायणाभिमतः, न च भगवदाचार्यप्रतिपादितौ मित्रावरुणौ देवते।

अन्वयः—इन्द्र तुभ्यम् अयं सोमः सुन्वे तुभ्यं पवते अस्य 'इमम्' पाहि त्वं ह यम्-इन्दुं चकृषे त्वं सोमं ववृषे मदाय युज्याय ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (तुभ्यम्) तेरे लिये (अयं सोमः सुन्वे) यह उपासनारस निष्पन्न किया जाता है (तुभ्यं पवते) तेरे लिये प्रेरित है[1] (अस्य 'इमम्' पाहि) इसे तू पान कर—स्वीकार कर[2] (त्वं ह यम्-इन्दुं चकृषे) तू जिस आर्द्र उपासनारस को स्वीकार किया करता है (त्वं सोमं ववृषे) तू जिस उपासनारस को वरा करता है—चाहा करता है, उसे (मदाय युज्याय) उपासक को हर्षित करने के लिये और उसके सहाय के लिये 'पाहि' पान कर—स्वीकार कर ॥ २ ॥

**१४७२. स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त॥ २ ॥**

पदपाठः— सः ईम् रथः न भुरिषाट् अयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि आत् ईम् विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता स्वः साता वने ऊद्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

अन्वयः—सः-ईं भुरिषाट्-महः रथः-न-अयोजि पुरूणि वसूनि सातये आत्-ईम् विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता-'स्वर्षातानि' वने ऊर्ध्वा नवन्ते ॥

पदार्थः—(सः-ईं भुरिषाट्-महः) वह यह बहुतों—असंख्यों को सहने उनपर अधिकार करने वाला महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा (रथः-न-अयोजि) रथ के समान उपासकों द्वारा आश्रयार्थ युक्त किया जाता है (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत बसानेवाले साधनों गुणों की प्राप्ति के लिये (आत्-ईम्) अनन्तर (विश्वा नहुष्याणि जाता) सारे रागबन्धनों को[3] दग्ध करनेवाले जीवन्मुक्त मनुष्यों के वैराग्ययोगाङ्ग शम, दम आदि कर्म प्रसिद्ध हुए—सम्पन्न हुए (स्वर्षाता-'स्वर्षातानि') स्वः—मोक्ष को प्राप्त करानेवाले (वने) वननीय मोक्ष में (ऊर्ध्वा नवन्ते) ऊपर—उत्कृष्ट हुए प्रेरित करते हैं[4] ॥ २ ॥

१४७३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट्। आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाड् न यज्ञः॥ ३ ॥

---

१. ''पवस्व-अध्येषणाकर्मा'' [निघं० ३.२१]।
२. 'व्यत्ययेन अस्य' द्वितीयास्थाने षष्ठी, पाहिक्रियायोगात्।
३. ''णह बन्धने'' [दिवादि०] नह्यति बध्नातीति नह, तदुषति दहतीति नहुषस्तस्य नहुष्यम्; ''नहुषाः-मनुष्याः'' [निघं० २.३]।
४. ''नवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।

पदपाठः— **शुष्मी शर्द्धः न मारुतम् पवस्व अनभिशस्ता अन् अभिशस्ता दिव्या यथा विट् आपः न मक्षु सुमतिः सु मतिः भव नः सहस्राप्साः सहस्र अप्साः पृतनाषाट् न यज्ञः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—शुष्मी मारुतं शर्धं न पवस्व यथा—अनभिशस्ता दिव्याविट् आपः-न मक्षु सुमतिः-भव नः सहस्राप्साः पृतनाषाट्-न यज्ञः ॥

पदार्थः—(शुष्मी) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू बलवान्[1] (मारुतं शर्धं न पवस्व) जीवन्मुक्तों[2] के चरित्र योगाभ्यास वैराग्य शम दम आदि बल को[3] प्राप्त करा[4] (यथा—अनभिशस्ता दिव्याविट्) जैसे अनिन्दित सर्व सद्गुण सम्पन्न दिव्य जीवन्मुक्त हो जावें (आपः-न मक्षु सुमतिः-भव) तू जलों के समान शीघ्र[5] हमारे लिये (सहस्राप्साः) बहुत गुण रूप[6] वाला (पृतनाषाट्-न यज्ञः) हम उपासक मनुष्यों का तृप्तिकर्ता यजनीय—सङ्गमनीय हो[7] ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल की धारण करने वाला)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४७४. **त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वमग्नेयज्ञानाꣳहोता॥ १ ॥**
(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २)

१४७५. **स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः। आ देवान्वक्षि यक्षि च॥ २ ॥**

---

१. ''शुष्मं बलनाम'' [निघं० २.९] शुष्मशब्दस्य सम्बन्धः-इन्द्रेण सह वेदे स्पष्टः ''यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः'' [ऋ० २.१२.१]।

२. ''मरुतो देवविशः'' [श० २.५.१.१२], ''मरुत्वान् वा इन्द्रः'' [जै० १.११६]।

३. ''शर्धः-बलम्'' [निघं० २.९]।

४. ''न'' अत्र पदपूरणः सम्प्रत्यर्थो वा ''ओजसा प्रतिभागं न दीधिम....तं वयं भागमनुध्यायामोजसा बलेन'' [निरु० ६.८]।, ''मरुद्भिर्वै वीर्यैमेन्द्रो वृत्रमहन् न ऋते मरुद्भ्योऽशक्नोद् वीर्यंकर्तुम्'' [मै० ४.६.८]।

५. ''मक्षु क्षिप्रनाम'' [निघं० २.१५]।

६. ''अप्सः-रूपनाम'' [निघं० ३.७]।

७. ''पृतनाः-मनुष्याः'' [निघं० २.३], ''षह चक्यर्थे'' [दिवादि०] ''चक तृप्तौ''।

पदपाठः— **सः नः मन्द्राभिः अध्वरे जिह्वाभिः यज महः आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-महः नः-अध्वरे मन्द्राभिः-जिह्वाभिः-यज देवान्-आवक्षि च आ यक्षि ॥

पदार्थः—(सः-महः) वह तू ज्ञानप्रकाशक महान् परमात्मन्! (नः-अध्वरे) हमारे अध्यात्मयज्ञ में (मन्द्राभिः-जिह्वाभिः-यज) हर्ष—आनन्द देने वाली स्तुतिवाणियों[1] के द्वारा उन्हें निमित्त बनाकर हमारे साथ सङ्गत कर[2] (देवान्-आवक्षि) हमें मुक्तों के प्रति समन्तरूप से ले-जा (च) और (आ यक्षि) उनके साथ समन्तरूप सङ्गति करा ॥ २ ॥

१४७६. **वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा। अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **वेत्थ हि वेधः अध्वनः पथः च देव अञ्जसा अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो सु क्रतो ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सुक्रतो वेधः देव-अग्ने यज्ञेषु अध्वनः-च-पथः-अञ्जसा वेत्थ हि ॥

पदार्थः—(सुक्रतो वेधः) हे सुकर्म वाले भोग और अपवर्ग—मोक्ष के विधाता (देव-अग्ने) द्योतमान ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् तू (यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञप्रसङ्गों में—के (अध्वनः-च-पथः-अञ्जसा वेत्थहि) विस्तृत मार्गों और चलने योग्य पगडण्डियों को तत्त्वतः ठीक-ठीक जानता है ही[3] अतः हम उपासकों का सहायक बन हमें चला, हमारा अग्रणी हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४७७. **होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **होता देवः अमर्त्यः अ मर्त्यः पुरस्तात् एति मायया विदथानि प्रचोदयन् प्र चोदयन् ॥ १ ॥**

---

१. "जिह्वा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।

२. "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]।

३. "अञ्जसा तत्त्वशीघ्रार्थयोः" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]।

अन्वयः—अमर्त्यः होता देवः विदथानि प्रचोदयन् मायया पुरस्तात्-एति ॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (होता) हमारे अध्यात्मयज्ञ का साधक[1] (देवः) द्योतमान (विदथानि प्रचोदयन्) वे दोनों—अध्यात्म अनुभवों को[2] प्रेरित करता हुआ (मायया) प्रज्ञाशक्ति से (पुरस्तात्-एति) सम्मुख आता है—प्रत्यक्ष होता है ॥ १ ॥

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

पदपाठः— वाजी वाजेषु धीयते अध्वरेषु प्र नीयते विप्रः वि प्रः यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

अन्वयः—वाजी वाजेषु धीयते अध्वरेषु प्रणीयते विप्रः-यज्ञस्य साधनः ॥

पदार्थः—(वाजी) अमृत अन्नभोग का स्वामी परमात्मा (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त[3] (धीयते) ध्याया जाता है (अध्वरेषु प्रणीयते) अतः अध्यात्मयज्ञ प्रसङ्गों में लक्षित किया जाता है (विप्रः-यज्ञस्य साधनः) क्योंकि वह अध्यात्मयज्ञ का विशेष पूरक साधन है ॥ २ ॥

१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे। दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥

पदपाठः— धिया चक्रे वरेण्यः भूतानाम् गर्भम् आ दधे दक्षस्य पितरम् तना ॥ ३ ॥

अन्वयः—वरेण्यः धिया चक्रे भूतानां गर्भम्-आदधे दक्षस्य पितरं तन 'तनय' ॥

पदार्थः—(वरेण्यः) अवश्य वरणीय—उपासनीय परमात्मा (धिया चक्रे) प्रज्ञानशक्ति से उपासकों के अध्यात्मयज्ञ को 'सञ्चक्रे' संस्कृत करता है—साधता है (भूतानां गर्भम्-आदधे) उपासक देवों—मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों के[4] स्तवन या याचनीय मोक्ष को समन्तरूप से धारण करता है (दक्षस्य पितरं तन 'तनय') उस प्रज्ञान के[5] पिता—पालक परमात्मा को 'तनय-श्रधत्स्व'[6] श्रद्धापूर्वक उपासित कर ॥ ३ ॥

---

१. "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारम्" [ऋ० १.१.१]।
२. "विदथानि वेदनानि" [निघं० ६.७]।
३. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
४. "देवा वै भूताः" [काठ० २५.६]।
५. "क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि-इति वीर्यं प्रज्ञानं वरुण संशिशाधि इति" [तै० सं० १.२.२.२, ऐ० १.१३]।
६. "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०] णिचोऽनित्यत्वादभावः। औत्सार्गिकः स्वप्रत्ययः। अकारस्य दीर्घत्वं छान्दसम्।

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—हर्यतः प्रगाथः (कमनीय प्रकृष्ट स्तुति वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्। रसा दधीत वृषभम्॥ १॥

पदपाठः— आ सुते सिञ्चत श्रियम् रोदस्योः अभिश्रियम् अभि श्रियम् रसा दधीत वृषभम्॥ १॥

अन्वयः—सुते श्रियम्–आसिञ्चत रोदस्योः श्रियम्–अभि वृषभं रसादधीत॥

पदार्थः—(सुते श्रियम्–आसिञ्चत) हे उपासको! प्रसिद्ध प्रकाशस्वरूप परमात्मा के निमित्त श्री[1] सोम—उपासनारस सीञ्चो—अर्पित करो (रोदस्योः श्रियम्–अभि) 'द्यावापृथिवी'[2] प्राण और उदान को[3]—श्वास और उच्छ्वास को उपासनारस प्रेरित करो—श्वास उच्छ्वास के साथ उपासना प्रवाह चले (वृषभं रसादधीत) सुखवर्षक परमात्मा को स्तुतिवाणी के द्वारा[4] अपने अन्दर धारण करो॥ १॥

१४८१. ते जानत स्वमोक्या३ सं वत्सासो न मातृभिः। मिथो नसन्त जामिभिः॥ २॥

पदपाठः— ते जानत स्वम् ओक्यम् सम् वत्सासः न मातृभिः मिथः नसन्त जामिभिः॥ २॥

अन्वयः—ते स्वम्–ओक्यं संजानत वत्सासः न मातृभिः जामिभिः–मिथः–नसन्त॥

पदार्थः—(ते स्वम्–ओक्यं संजानत) वे उपासक परमात्मा के साथ अपने समवेतव्य—सङ्गमनीय स्थान—मोक्ष को सम्यक् जानते हैं (वत्सासः न मातृभिः) जैसे बछड़े माताओं के साथ अपने–अपने आश्रयणीय स्थान को जानते हैं (जामिभिः–मिथः–नसन्त) पुनः वहाँ मोक्ष में अतिरिक्त—अन्य मुक्तों के साथ[5] मिलते हैं॥ २॥

१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि। इन्द्रे अग्ना नमः स्वः॥ ३॥

---

१. "श्रीर्वै सोमः" [मै० १.११.६]। २. "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.३०]।
३. "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४.३.१.२२]।
४. "रसः–वाङ्नाम" [निघं० १.११], "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णा" [अष्टा० ७.१.३९] इत्याकारादेशः।
५. "मिथः सहार्थे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]।

पदपाठः— **उप स्रक्वेषु वप्सतः कृण्वते धरुणम् दिवि इन्द्रे अग्ना नमः स्वा३रिति ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वप्सतः स्रक्वेषु-उपकृण्वते धरुणं दिवि इन्द्रे 'इन्द्रम्' अग्ना नमः स्वः ॥

पदार्थः—(वप्सतः स्रक्वेषु-उपकृण्वते) जो उपासक भोग कराने वाले—भोग के साधन प्राणों—इन्द्रियों को[1] भोगों में ही न लगाकर—भोग वस्तुओं के अन्दर परमात्मा के सर्जन गुणों[2] को उपयुक्त करते हैं—लगाते हैं (धरुणं दिवि) धारणा साधन[3] मन को अमृतधाम—मोक्ष में उपयुक्त करते हैं—लगाते हैं, तथा (इन्द्रे 'इन्द्रम्' अग्ना) स्वात्मा को[4] ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा में[5] उपयुक्त करते हैं लगाते हैं (नमः स्वः) उनके लोक में अन्न[6] भोग लाभ और मोक्षधाम में अमृत सुख होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—बृहद्दिवः (महान् मोक्षधाम लक्ष्य वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः[7] (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

१४८३. **तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः । सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **तत् इत् आस भुवनेषु ज्येष्ठम् यतः जज्ञे उग्रः त्वेषनृम्णः त्वेष नृम्णः सद्यः स द्यः जज्ञानः नि रिणाति शत्रून् अनु यम् विश्वे मदन्ति ऊमाः ॥ १ ॥**

अन्वयः—(भुवनेषु) पृथिवी आदि लोकों में[8] वर्तमान (तत्-इत्-ज्येष्ठम्-आस) वह ही ज्येष्ठ ब्रह्म—ब्रह्मात्मा परमात्मा था—है (यतः) क्योंकि, वह (उग्रः) तीक्ष्ण स्वभाववाला (त्वेषनृम्णः) ज्ञाननृम्ण—ज्ञान बलवाला[9] (सद्यः-

---

१. ''नसति व्याप्नोतिकर्मावा नमति कर्मा वा'' [निरु० ७.१७]।
२. ''बप्सता.....भुञ्जाने'' [निरु० ९.३६]।
३. ''सृज विसर्गे'' [दिवादि० तुदादि०] ततः क्वनिप् ''अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'' [अष्टा० ३.२.७५]।
४. ''धृञ् धारणे'' [भ्वादि०] ततः-उनन्-औणादिकः।
५. विभक्तिव्यत्ययेन द्वितीयास्थाने सप्तमी।
६. ''सुपां सुलुक् पूर्वसर्वणा'' [अष्टा० ७.१.३९] इति, आकारदेशः। सूक्तम् अग्निदेवताकं, नात्र, इन्द्रो देवता।
७. ''नमः अन्ननाम'' [निघं० २.७]।
८. ''इमे वै लोका भुवनम्'' [काठ० १४१.७]।
९. ''त्वेषनृम्णः-ज्ञाननृम्णः'' [निरु० १४.२६], ''नृम्णं बलनाम'' [निघं० २.९]।

जज्ञानः) उपासक के अन्दर तुरन्त साक्षात् हुआ (शत्रून् निरिणाति) उपासकों के सताने वाले पापों को क्षीण कर देता है[1] (यम्-अनु विश्वे ऊमाः-मदन्ति) जिस परमात्मा के अनुसार हो—अनुभव कर सारे रक्षणीय उपासक हर्षित होते हैं ॥ १ ॥

१४८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति। अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

पदपाठः— वावृधानः शवसा भूर्योजाः भुरि ओजाः शत्रुः दासाय भियसम् दधाति अव्यनत् अ व्यनत् च व्यनत् वि अनत् च सस्नि सम् ते नवन्त प्रभृता प्र भृता मदेषु ॥ २ ॥

अन्वयः—शवसा वावृधानः भूर्योजाः दासाय शत्रुः भियसे दधाति अव्यनत्-च व्यनत्-च सास्नि ते प्रभृताः मदेषु संनवन्ते ॥

पदार्थः—(शवसा वावृधानः) बल से बढ़ा चढ़ा (भूर्योजाः) बहुत तेजस्वी इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दासाय शत्रुः) उपक्षयकारी पाप—पापी के लिये शत्रु—शातयिता शमयिता—नामक समाप्त करने वाला बना हुआ—(भियसे दधाति) भय धारण करता है (अव्यनत्-च व्यनत्-च सास्नि) परमात्मा के आनन्द में स्नात—स्नान किए हुए या उसकी रक्षा में वेष्टित[2] चाहे अविशेष गतिशील सामान्य उपासक और विशेष गतिशील उपासक मुमुक्षु जीवन्मुक्त जन[3] (ते प्रभृताः) वे साधारण उपासक और विशेष उपासक (मदेषु संनवन्ते) हर्षों के निमित्त—सम्यक् स्तुति करते हैं[4] या हर्षों में सङ्गत हो जाते हैं[5] लीन हो जाते हैं ॥ २ ॥

१४८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वेइति क्रतुम् अपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विः यत् एते त्रिः भवन्ति ऊमाः स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृज सम् अदः सु मधु मधुना अभि योधीः ॥ ३ ॥

---

१. "निरिणाति शत्रूनिति.....पाप्मानमपाहत" [ऐ० आ० १.३.४]।

२. "सस्नि संस्नातम्" [निरु० ५.१] "ष्णा शौचे" [अदा०] "ष्णैष्णा वेष्टने" [भ्वादि०] "आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च" [अष्टा० ३.२.१७१]। किन् प्रत्ययः।

३. "अनिति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]। ४. "णु स्तुतौ" [अदादि०]।

५. "नवते गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

अन्वयः—विश्वे-ऊमाः क्रतुं त्वे वृञ्जन्ति यत्-एते द्विः-त्रिः-अपि भवन्ति स्वादोः स्वादीयः स्वादुना संसृज अदः-मधु मधुना सु-अभि योधीः ॥

पदार्थः—(विश्वे-ऊमाः) हे परमात्मन्! सब तेरे द्वारा रक्षण पाए हुए मुमुक्षु उपासक (क्रतुं त्वे वृञ्जन्ति) कर्म या प्रज्ञान को तेरे अन्दर लीन कर देते हैं—त्याग देते हैं—निष्काम बन जाते हैं (यत्-एते द्विः-त्रिः-अपि भवन्ति) चाहे वे एकाश्रमी—ब्रह्मचारी हों या उससे द्वितीयाश्रमी—गृहस्थ भी हो या तृतीयाश्रमी—वानप्रस्थ भी हो, क्योंकि तू (स्वादोः स्वादीयः) अपने स्वादुस्वरूप से संयुक्त करा (अदः-मधु) उस अपने मधुस्वरूप को (मधुना सु-अभि योधीः) मुझ उपासक आत्मा[1] के साथ भली प्रकार सङ्गत कर मिला दे[2] ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक) ॥ देवता—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥

१४८६. **त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत् सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्रिकद्रुकेषुमहिषोयवाशिरन्तुविशुष्मः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४५७)

१४८७. **साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **साकम् जातः क्रतुना साकम् ओजसा ववक्षिथ साकम् वृद्धः वीर्यैः सासहिः मृधः विचर्षणिः वि चर्षणिः दाता राधः स्तुवते काम्यम् वसु प्रचेतन प्र चेतन सैनꣳसश्चद्देवोदेवꣳसत्यइदुःसत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—प्रचेतन क्रतुना साकं जातः ओजसा साकं ववक्षिथ वीर्यैः साकं

---

१. "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २.३.२.९]।

२. "युध्यति गतिकर्मा" [निघं० २.१४] अथवा "यू मिश्रणे" [अदादि०] छान्दसं रूपम्।

वृद्धः विचर्षणिः-मृधः सासहिः स्तुवते काम्यं राधः-वसु दाता एनं सत्यं देवम्-इन्द्रम् सः-सत्यः-इन्द्रः-देवः सश्चत् ॥

पदार्थः—(प्रचेतन) हे प्रकृष्ट चेताने वाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (क्रतुना साकं जातः) प्रज्ञान[1]—प्रकृष्टज्ञान—स्वतः ज्ञानरूप वेद के साथ प्रसिद्ध हुआ (ओजसा साकं ववक्षिथ) आत्मीयबल के द्वारा संसार को वहन—धारण कर रहा है (वीर्यैः साकं वृद्धः) स्वपराक्रमों से वृद्ध है—महान् है (विचर्षणिः-मृधः सासहिः) तू विशेष द्रष्टा है, उपासकों के पापों—काम-क्रोध आदि[2] प्रताड़न करने वाला—दूर करने वाला (स्तुवते काम्यं राधः-वसु दाता) स्तुति करने वाले उपासक के लिये कमनीय धन और मोक्षवास को देने वाला है (एनं सत्यं देवम्-इन्द्रम्) तुझ इस सत्यस्वरूप देव ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (सः-सत्यः-इन्द्रः-देवः सश्चत्) वह सत्य—नित्य—इन्दुमान्[3] उपासनारस वाला उपासक प्राप्त करता है[4] ॥ २ ॥

१४८८. **अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अध त्विषीमान् अभि ओजसा क्रिविम् युधा अभवत् आ रोदसीइति अपृणत् अस्य मज्मना प्र वावृधे अधत्त अन्यम् अन् यम् जठरे प्र ईम् अरिच्यत प्र चेतय सैनथंसश्चद्देवोदेवथंसत्यइन्दुःसत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अध ओजसा त्विषीमान् युधा कृविम्-अभवत् रोदसी-अपृणत् मज्मना प्रवावृधे अन्यं जठरे अधत्त ईम्-प्र-अरिच्यत प्रचेतय एनं सत्यं देवम्-इन्द्रम् सत्यः-इन्दुः सश्चत् ॥

पदार्थः—(अध) और (ओजसा त्विषीमान्) आत्मीय तेज से दीप्तिमान् इन्द्र—परमात्मा (युधा कृविम्-अभवत्) उपासक के हिंसक पाप को[5] अपनी सम्प्रहारक शक्ति से अभिभूत होता है—दबा देता है (रोदसी-अपृणत्) प्राण—अपानों को तृप्त करता है (मज्मना प्रवावृधे) बल से[6] उसे प्रवृद्ध करता है (अन्यं जठरे अधत्त) अन्य—जो उपासक नहीं उसे जन्म देने वाले संसार के मध्य[7]—

---

१. ''क्रतुः प्रज्ञाननाम'' [निघं० ३.९]। २. ''पाप्मा वै मृधः'' [श० ६.३.३.८]।
३. ''इन्दुः-इन्दुमान्'' मतुब्लोपश्छान्दसः। ४. ''सश्चति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।
५. ''कृञ् हिंसायाम्'' [भ्वादि०] ततः क्विन् निपातनात्।
६. ''मज्मना बलनाम'' [निघं० २.९]।
७. ''जनेरष्ठ च'' [उणा० ४.३८] जन-अरः, नकारस्य हकारः।

जन्यक्रम के अन्दर रखता है (ईम्–प्र–अरिच्यत) इस उपासक को जन्मक्रम संसार जठर से अतिरिक्त कर देता है—अलग कर देता है (प्रचेतय) हे उपासक तू सावधान हो (एनं सत्यं देवम्–इन्द्रम्) इस सत्यस्वरूप परमात्मदेव को (सत्यः–इन्दुः सश्चत्) नित्य, उपासनारसवान् आत्मा प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसकी ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥ १ ॥

पदपाठः— अभिप्रगोपतिङ्गिरा॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १६८)

१४९०. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे॥ २ ॥

पदपाठः— आ हरयः ससृज्रिरे अरुषीः अधि बर्हिषी यत्र अभि सन्नवामहे सम् नवामहे ॥ २ ॥

अन्वयः—बर्हिषि-अधि अरुषीः-हरयः आससृज्रिरे यत्र-अभिसंनवामहे ॥

पदार्थः—(बर्हिषि-अधि) हृदयाकाश में[1] (अरुषीः-हरयः) आरोचन[2] समस्त देह में प्रकाशमान प्राण[3] (आससृज्रिरे) परमात्मा की ओर से समन्तरूप से छोड़े गए हैं (यत्र-अभिसंनवामहे) जिस हृदयाकाश में हम परमात्मा की स्तुति करें—करते हैं ॥ २ ॥

१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत्॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्राय गावः आशिरम् आ शिरम् दुदुह्रे वज्रिणे मधु यत् सीम् उपह्वरे उप ह्वरे विदत्॥ ३ ॥

---

१. ''बर्हिः-अन्तरिक्षनाम'' [निघं० १.३]।

२. ''अरुषीः-आरोचमानाः'' [निरु० १२.७]।

३. ''प्राणो वै हरिः'' [कौ० १७.१]।

अन्वयः—वज्रिणे-इन्द्राय गाव आशिरं मधु दुदुह्रे यत् सीम्-उपह्वरे विदत् ॥

पदार्थः—(वज्रिणे-इन्द्राय) ओजस्वी[1] परमात्मा के लिये (गाव) उपासक की स्तुतिवाणियाँ[2] (आशिरं मधु दुदुह्रे) आश्रय लेने वाले[3] उपासक अपने आत्मा को[4] समर्पित करता है (यत् सीम्-उपह्वरे विदत्) जो परमात्मा अपने आश्रय में[5] प्राप्त करता है—ले लेता है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—नृमेधः पुरुमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और बहुत बुद्धि वाला) ॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१४९२. **आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत । उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥**

पदपाठः— **आनोविश्वासुहव्यम् ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २६९)

१४९३. **त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् । तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **त्वम् दाता प्रथमः राधसाम् असि असि सत्यः ईशानकृत् ईशान कृत् तुविद्युम्नस्य तुवि द्युम्नस्य युज्या आ वृणीमहे पुत्रस्य पुत् त्रस्य शवसः महः ॥ २ ॥**

अन्वयः—त्वम् राधसः प्रथमः-दाता-असि सत्यः-ईशानकृत-असि तुविद्युम्नस्य महः-शवसः पुत्रस्य युज्या-आवृणीमहे ॥

पदार्थः—(त्वम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (राधसः प्रथमः-दाता-असि) धनैश्वर्य का प्रमुख दाता—दानी है (सत्यः-ईशानकृत-असि) सच्चा समर्थ—सम्पन्न बनाने वाला है (तुविद्युम्नस्य) बहुत यशोरूप[6]—(महः-शवसः पुत्रस्य) महान् बल के पुत्र अर्थात् अत्यन्त बलवान् या नरक से त्राण करने वाले[7] के (युज्या-आवृणीमहे) योगों—सम्बन्धों को समन्तरूप से वरते हैं—चाहते हैं ॥ २ ॥

---

१. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०] । २. "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १.११] ।
३. "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६.८] ।
४. "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २.३.२.१] ।
५. "प्र सोमादित्यो असृजत्-असृजत् सर्वत इति वा" [निरु० १.७] ।
६. "द्युम्नं द्योततेर्यशो वा अन्नं वा" [निरु० ५.५] ।
७. "पुन्नाम नरकमनेकशततारं तस्मात् त्रातीति पुत्रः" [गो० १.१.२] ।

तृतीय तृच

ऋषिः—त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषी (तीन अरुणाओं-ज्योतियों वाला और त्रास को क्षीण करने वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—ऊर्ध्वा बृहती॥

१४९४. **प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत।**
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन्॥ १॥

पदपाठः— **प्रत्नम् पीयूषम् पूर्व्यम् यत् उक्थ्यम् महः गाहात् दिवः आ निः अधुक्षत इन्द्रम् अभि जायमानम् सम् अस्वरन्॥ १॥**

अन्वयः—प्रत्नं पूर्व्यम्-उक्थ्यम् पीयूषम् महः-गाहात्-दिवः आ निरधुक्षत इन्द्रम्-अभि जायमानं समस्वरन्॥

पदार्थः—(प्रत्नं पूर्व्यम्-उक्थ्यम् पीयूषम्) श्रेष्ठ शाश्वतिक प्रशंसनीय पान करने योग्य अमृत शान्तस्वरूप परमात्मा को (महः-गाहात्-दिवः) महान् गाहने विलोडन करने योग्य द्योतमान हृदयं कूप से (आ निरधुक्षत) समन्तरूप से साक्षात् कर लिया है उपासक ने (इन्द्रम्-अभि) आत्मा को लक्ष्य कर—(जायमानं समस्वरन्) साक्षात् हो जाने के हेतु उसकी स्तुति करते हैं॥ १॥

१४९५. **आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत। दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते॥ २॥**

पदपाठः— **आत् ईम् के चित् पश्यमानासः आप्यम् वसुरुचः वसु रुचः दिव्याः अभि अनूषत दिवः न वारम् सविता वि ऊर्णुते॥ २॥**

अन्वयः—आत्-ईम् आप्यम् केचित् पश्यमानासः वसुरुचः दिव्या अभ्यनूषत दिवः-न वारं सविता व्यूर्णुते॥

पदार्थः—(आत्-ईम्) फिर इस (आप्यम्) प्राप्तव्य परमात्मा को (केचित्) कुछेक (पश्यमानासः) दिखाई देनेवाले (वसुरुचः) रात्रि में चमकने वाले[1] तारे जैसे (दिव्या) दीप्तिमान् (अभ्यनूषत) स्तुत करते हैं (दिवः-न वारं सविता व्यूर्णुते) जैसे सूर्य आकाश को घेरने वाले अन्धकार को अपने प्रकाश से हटा देता है ऐसे अपने अज्ञान अन्धकार को हटा देते हैं॥ २॥

१४९६. **अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना। यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि॥ ३॥**

---

१. ''वसु रात्रिनाम'' [निघं० १.७]।

पदपाठः— **अध यत् इमेइति पवमान रोदसीइति इमा च विश्वा भुवना अभि मज्मना यूथे न निष्ठाः निः स्थाः वृषभः वि राजसि॥ ३ ॥**

अन्वयः—अध पवमान यद् 'यदा' इमे रोदसी च विश्वा भुवनानि मज्मना यूथे न निष्ठा वृषभः विराजसि॥

पदार्थः—(अध) अनन्तर (पवमान) धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! (यद् 'यदा') जब (इमे रोदसी) इन द्यावापृथिवी—प्राण उदान[1] को—प्राणायाम—योगाभ्यास के प्रति (च) और (विश्वा भुवनानि) समस्त अध्यात्मयज्ञों—स्तुति प्रार्थना उपासनाओं के प्रति भी[2] (मज्मना) पावक बल से[3] (यूथे न निष्ठा वृषभः) गोसमूह में विशेष स्थित—विशेष लक्षित साण्ड के समान (विराजसि) तू विशेष प्रकाशमान होता है॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुकजन)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१४९७. **इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः॥ १ ॥**

पदपाठः— **इममूषुत्वमस्माकम्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २८)

१४९८. **विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि॥ २ ॥**

पदपाठः— **विभक्ता वि भक्ता असि चित्रभानो चित्र भानो सिन्धोः ऊर्मौ उपाके आ सद्यः स द्यः दाशुषे क्षरसि॥ २ ॥**

अन्वयः—चित्रभानो सिन्धोः-उपाके ऊर्मौ-आ दाशुषे सद्यः क्षरसि॥

पदार्थः—(चित्रभानो) दर्शनीय ज्योति वाले परमात्मन्! तू (सिन्धोः-उपाके ऊर्मौ-आ) स्यन्दनशील नदी के समीप[4] ऊर्मि—तरङ्ग—लहरों—नहरों के समान

१. "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४.३.१.२२]।
२. "यज्ञो वै भुवनम्" [श० ३.३.७.५]।
३. "मज्मना बलनाम" [निघं० २.९]।
४. "उपाके-अन्तिकनाम" [निघं० २.१६]।

आनन्द ज्योतियों से विभाग करता है (दाशुषे सद्यः क्षरसि) आत्मदानी उपासक के लिये तो तुरन्त आनन्द ज्योति को क्षिराता है ॥ २ ॥

१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥

पदपाठः— आ नः भज परमेषु आ वाजेषु मध्यमेषु शिक्ष वस्वः अन्तमस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—नः परमेषु वाजेषु-आभज मध्यमेषु अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ॥

पदार्थः—(नः परमेषु वाजेषु-आभज) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! तू हमें परम—मोक्षधाम में होने वाले अमृत अन्नभोगों में[1] समन्तरूप से भागी बना (मध्यमेषु) ध्यानयज्ञ—श्रवणयज्ञ शम दमादि यज्ञ में[2] समन्तरूप से भागी बना (अन्तमस्य वस्वः शिक्ष) समीप[3] अवरधन—सद्भोग को प्रदान कर[4] ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मेधावी का पुत्र-अत्यन्त मेधावी)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहं सूर्यइवाजनि ॥ १ ॥

पदपाठः— अहमिद्धिपितुष्परि ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५२)

१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥

पदपाठः— अहम् प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् येन इन्द्रः शुष्मम् इत् दधे ॥ २ ॥

अन्वयः—अहम् प्रत्नेन जन्मना गिरः कण्ववत्-शुम्भामि येन इन्द्रः शुष्मम्-इत्-दधे ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं उपासक वक्ता (प्रत्नेन जन्मना) पूर्व जन्म से ही

---

१. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।

२. ''वाजं त्वा सरिष्यन्तं....संमार्ज्मि.....यज्ञं त्वा यक्ष्यन्तं सम्मार्ज्मि'' [श० १.४.४.१५]।

३. ''अन्तमानाम्-अन्तिकानाम्'' [निघं० २.१६]।

४. ''शिक्षति दानकर्मा'' [निघं० ३.२०]।

(गिरः) स्तुति वाणियों को (कण्ववत्-शुम्भामि) वर्तमान स्तुतिकर्ताओं के[1] समान बोल रहा हूँ[2] (येन) जिससे कि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (शुष्मम्-इत्-दधे) मेरे अन्दर पापशोषक आत्मबल[3] को धारण करावे ॥ २ ॥

१५०२. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— ये त्वाम् इन्द्र न तुष्टुवुः ऋषयः ये च तुष्टुवुः मम इत् वर्द्धस्व सुष्टुतः सु स्तुतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्र ये त्वां न तुष्टुवुः ये च-ऋषयः-तुष्टुवुः सुष्टुतः-मम-इत्-वर्धस्व ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ये त्वां न तुष्टुवुः) जो लोग तेरी स्तुति पूर्व जन्म में नहीं करते रहे वर्तमान में चाहे करते हों, या (ये च-ऋषयः-तुष्टुवुः) और जो ऋषि पूर्व जन्म में तेरी स्तुति करते रहे हों, वर्तमान में चाहे न करते हों यह तो तू जाने, परन्तु (सुष्टुतः-मम-इत्-वर्धस्व) मेरे द्वारा पूर्व जन्म से और वर्तमान जन्म से स्तुत किया हुआ मुझे अवश्य बढ़ा—उन्नत करना—करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—तापसोऽग्निः (तपस्वी अग्रणेता उपासक) ॥ देवता—विश्वेदेवाः (सर्वदेव गुण वाला परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

१५०३. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत। ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्ने विश्वेभिः अग्निभिः जोषि ब्रह्म सहस्कृत सहः कृत ये देवत्रा ये आयुषु तेभिः नः महय गिरः ॥ १ ॥

अन्वयः—सहस्कृत-अग्ने विश्वेभिः-अग्निभिः ब्रह्म जोषि ये-देवत्रा ये-आयुषु तेभिः नः-गिरः-महय ॥

पदार्थः—(सहस्कृत-अग्ने) ओज[4] अध्यात्म तप से उपासित या साक्षात् करणीय ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (विश्वेभिः-अग्निभिः) समस्त तापस—

---

१. "कण शब्दे" [भ्वादि०] ततः क्वन् प्रत्ययः-औणादिकः।
२. "शुम्न भाषणे" [भ्वादि०, तुदादि०]।
३. "शुष्मं बलनाम शोषयतीति सतः" [निरु० २.१४]।
४. "ओजः सहः सह ओजः" [को० ३.५]।

तपस्वी ऋषियों[१] द्वारा किए गए (ब्रह्म जोषि) स्तोत्र—स्तुतिमन्त्रों को सेवन करता है (ये-देवत्रा ये-आयुषु) जो देवों में, जीवन्मुक्तों में, जीवन्मुक्तों की श्रेणी में हों, जो मनुष्यों में,[२] मनुष्य श्रेणी में हों (तेभिः) उनके समान[३] (नः-गिरः-महय) हमारी स्तुतिवाणियों को प्रशंसित कर—सेवन कर॥ १ ॥

१५०४. प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः। तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः॥ २ ॥

पदपाठः— प्र सः विश्वेभिः अग्निभिः अग्निः सः यस्य वाजिनः तनये तोके अस्मत् आ सम्यङ् वाजैः परीवृतः परी वृतः॥ २ ॥

अन्वयः—सः-अग्निः यस्य-वाजिनः विश्वेभिः अग्निभिः अस्मत् 'अस्माभिः' तनये 'तनयेभिः' तोके 'तोकेभिः' प्र वाजैः सम्यक् परीवृतः॥

पदार्थः—(सः-अग्निः) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (यस्य-वाजिनः) जिस के अमृत अन्नभोगभागी उपासक हैं (विश्वेभिः अग्निभिः) उन सब उपासक ऋषियों के समान (अस्मत् 'अस्माभिः' तनये 'तनयेभिः' तोके 'तोकेभिः') हम[४] पुत्रों पौत्रों द्वारा (प्र) प्रार्थित हुआ[५] (वाजैः सम्यक् परीवृतः) अमृत अन्नभोग से भरपूर हुआ प्रदाता बना रहे॥ २ ॥

१५०५. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय। त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वम् नः अग्ने अग्निभिः ब्रह्म यक्षम् च वर्द्धय त्वम् नः देवतातये रायः दानाय चोदय॥ ३ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वं अग्निभिः नः ब्रह्मयज्ञं च वर्धय त्वम् नः देवतातये रयिः-दानाय चोदय॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं) तू (अग्निभिः) अन्य तपस्वी उपासकों के समान (नः) हमारे (ब्रह्मयज्ञं च वर्धय) ज्ञान वैराग्य और श्रेष्ठतम कर्म[६] योगाभ्यास को बढ़ा (त्वम्) तू (नः) हमें (देवतातये)

---

१. "अग्निः ऋषिः" [मै० १.६.१]। २. "आयवः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३]।

३. इव लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।

४. "सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७.१.३९] सर्वत्र भिस् प्रत्ययस्य लुक्।

५. 'प्र' उपसर्गबलाद् योग्यक्रियाध्याहारः।

६. "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" [श० १.७.१.५]।

देवभाव होने के लिये[1] (रयिः-दानाय चोदय) जीवन्मुक्त सम्बन्धी ऐश्वर्य देने के लिये अपनी ओर प्रेरित कर॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषी (तीन ज्योतियों वाला और त्रास को क्षीण करने वाला)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—ऊर्ध्व बृहती॥

१५०६. त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः। स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय॥ १॥

पदपाठः— त्वेइति सोम प्रथमाः वृक्तबर्हिषः वृक्त बर्हिषः महे वाजाय श्रवसे धियम् दधुः सः त्वम् नः वीर वीर्याय चोदय॥ १॥

अन्वयः—वीर सोम प्रथमाः-वृक्तबर्हिषः त्वं महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः यः-त्वम् वीर्याय चोदय॥

पदार्थः—(वीर सोम) हे पाप—पापियों पर विजय पाने वाले सोम—परमात्मन्! (प्रथमाः-वृक्तबर्हिषः) प्रमुख या पूर्वकालीन त्यक्त—त्याग दी है प्रजा—सन्तति जिन्होंने ऐसे वनस्थ या संन्यासी योगी जन[2] (त्वं) तेरे अन्दर (महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः) महान् अमृत अन्नभोग[3] श्रवणीय यश[4] के लिये अपनी धारणा को धरते हैं (यः-त्वम्) वह तू (वीर्याय चोदय) ओज के लिये[5] प्रेरित कर॥ १॥

१५०७. अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्। शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः॥ २॥

पदपाठः— अभ्यभि अभि अभि हि श्रवसः ततर्दिथ उत्सम् उत् सम् न कम् चित् जनपानम् जन पानम् अक्षितम् अ क्षितम् शर्याभिः नः भरमाणः गभस्त्योः॥ २॥

अन्वयः—शवसा हि-अभि ततर्दिथ कं चित्-अक्षितं जनपानम्-उत्सं न गभस्त्योः शर्याभिः-न भरमाणः॥

---

१. ''सर्वदेवात् तातिल्'' [अष्टा० ४.४.१४२]।
२. ''वृजी वर्जते'' [अदादि०] ''बर्हिः प्रजाः'' [जै० १.८६]।
३. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।
४. ''श्रवः श्रवणीयं यशः'' [निरु ११.९]।
५. ''ओजो वै वीर्यम्'' [जै० २.२०९]।

पदार्थः—(शवसा हि-अभि ततर्दिथ) श्रवण—श्रवण चतुष्टय—श्रवण मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से ही सम्मुख देखते देखते ही उपासना के लिये कूप के समान खोद देता है खोल देता है (कं चित्-अक्षितं जनपानम्-उत्सं न) क्षयरहित जनपान को (गभस्त्योः शर्याभिः-न भरमाणः) बाहुओं—हाथों की[1] अङ्गुलियों[2] में—अंजलि में जल धारण करने—लेने वाले के समान ॥ २ ॥

१५०८. **अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः। सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अजीजनः अमृत अ मृत मर्त्याय कम् ऋतस्य धर्मन् अमृतस्य अ मृतस्य चारुणः सदा असरः वाजम् अच्छ सनिष्यदत्॥ ३ ॥**

अन्वयः—अमृत मर्त्याय ऋतस्य कम्-अजीजनः चारुणः-ऋतस्य धर्मन् सदा-असदः वाजम्-अच्छ-सनिष्यदत्॥

पदार्थः—(अमृत) हे अमृत—अविनाशी सोम—परमात्मन्! तू (मर्त्याय) मरणधर्मी—जन्म मरण में आने वाले उपासकजन के लिये (ऋतस्य कम्-अजीजनः) अमृत के[3] सुख को प्रसिद्ध करता है (चारुणः-ऋतस्य धर्मन्) सुन्दर—ऋत—अमृत धारण करने वाले सरोवर में (सदा-असदः) सदा विचर रहा है (वाजम्-अच्छ-सनिष्यदत्) अमृत अन्नभोग को भुगाने के अभिमुख हो बहाकर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वा (विश्व संस्कृत इन्द्रिय घोड़ों को रखने में समर्थ सब में समान मनोभाव रखने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१५०९. **एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु। प्र राधांसि चोदयते महित्वना॥ १ ॥**

पदपाठः— **एन्दुमिन्द्रायसिञ्चत॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८६)

१५१०. **उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम्। नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य॥ २ ॥**

---

१. "गभस्ती बाहुनाम" [निघं० २.४]। २. "शर्याः-अंगुलिनाम" [निघं० २.५]।
३. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०]।

पदपाठः— उप उ हरीणाम् पतिम् राधः पृचन्तम् अब्रवम् नूनम् श्रुधि स्तुवतः अश्व्यस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हरीणां पतिम् राधः पृचन्तम् उप-अब्रवम्-उ नूनम् अश्वयस्यः-स्तुवतः-श्रुधि ॥

पदार्थः—(हरीणां पतिम्) परमात्मा को अपनी ओर हरने—लाने वाले उपासकों के पालक (राधः पृचन्तम्) उपासकों को राधनीय—साधनीय आनन्द से संयुक्त करते हुए इन्द्र—परमात्मा को (उप-अब्रवम्-उ) उपासित—प्रार्थित करता हूँ (नूनम्) निश्चय (अश्वयस्यः-स्तुवतः-श्रुधि) इन्द्रिय घोड़ों के अधिकर्ता संयमी स्तुति करते हुए की स्तुति को सुन—स्वीकार कर ॥ २ ॥

१५११. न ह्या ३ङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्। न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥

पदपाठः— न हि अङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरत्वरः त्वत् न किः राया न एवथा न भन्दना ॥ ३ ॥

अन्वयः—अङ्ग त्वत्-वीरतरः न हि पुरा च न जज्ञे न किः-राया न भन्दना ॥

पदार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय—इन्द्र परमात्मन्! (त्वत्-वीरतरः) उपासकों का तुझ से भिन्न उपास्यदेव अत्यन्त वीर (न हि पुरा च न जज्ञे) पूर्व कल्पों में कोई न हुआ—माना गया न इस कल्प में प्रसिद्ध है (न किः-राया) नहीं कोई ऐश्वर्यवान् धनदाता (न भन्दना) न भन्दनीय—स्तुतियोग्य[1] या कल्याणकर्ता[2] ॥ ३ ॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको)॥ देवता—इन्द्र (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१५१२. नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्। पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥

पदपाठः— नदम् वः ओदतीनाम् नदम् योयुवतीनाम् पतिम् वः अघ्न्यानाम् अ घ्न्यानाम् धेनूनाम् इषुध्यसि ॥ १ ॥

अन्वयः—वः ओदतीनाम्-अघ्न्यानां नदं पतिम् वः योयुवतीनां धेनूनां नदम् इषुध्यसि ॥

पदार्थः—(वः) हे उपासकजनो! तुम्हारी (ओदतीनाम्-अघ्न्यानां नदं पतिम्)

---

१. "भन्दते-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३१.४]।

२. "भदि कल्याणे सुखे-च" [भ्वादि०]।

उन्दन करने वाली—आर्द्र बनाने वाली स्तुतिवाणियों के[1] नदनीय—प्रवचनीय स्तुति स्वामी परमात्मा की, तथा (वः) तुम्हारी (योयुवतीनां धेनूनां नदम्) परमात्मा से मिलाने वाली स्तुतिवाणियों के[2] नदनीय—स्तुतियोग्य स्वामी परमात्मा को (इषुध्यसि) प्रार्थित करो[3] ॥ १ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१५१३. **देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्। उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥ १॥**

पदपाठः— **देवोवोद्रविणोदाः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५)

१५१४. **तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत। दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥ २॥**

पदपाठः— **तम् होतारम् अध्वरस्य प्रचेतसम् प्र चेतसम् वह्निम् देवाः अकृण्वत दधाति रत्नम् विधते सुवीर्यम् सु वीर्यम् अग्निः जनाय दाशुषे॥ २॥**

अन्वयः—देवाः अध्वरस्य होतारं प्रचेतसम् तं वह्निम् अकृण्वत अग्निः विधते रत्नं दधाति दाशुषे जनाय सुवीर्यम्॥

पदार्थः—(देवाः) मुमुक्षु उपासकजन (अध्वरस्य होतारं प्रचेतसम्) अध्यात्मयज्ञ के आधार प्रकृष्ट चेतन—प्रसिद्ध करने वाले—(तं वह्निम्) उस वहनकर्ता परमात्मा को (अकृण्वत) साक्षात् करते हैं, जो (अग्निः) ज्ञान—प्रकाशमान परमात्मा (विधते रत्नं दधाति) उपासना करते हुए के लिये रमणीय वस्तु धारण कराता है (दाशुषे जनाय सुवीर्यम्) आत्मसमर्पी के लिये उत्तम आत्मिक बल देता है॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती॥

१५१५. **अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः। उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः॥ १॥**

---

१. "अघ्न्या–वाङ्नाम" [निघं० १.११]। २. "धेनुः वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
३. "इषुध्यति याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।

पदपाठः— **अदर्शिगातुवित्तमः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४७)

१५१६. **यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः। सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २ ॥**

पदपाठः— **यस्मात् रेजन्त कृष्टयः चर्कृत्यानि कृण्वतः सहस्रसाम् सहस्र साम् मेधसातौ मेध सातौ इव त्मना अग्निम् धीभिः नमस्यत ॥ २ ॥**

अन्वयः—चर्कृत्यानि कृण्वतः-यस्मात् कृष्टयः-रेजन्त सहस्रसाम् मेधसातौ त्मना धीभिः नमस्यत ॥

पदार्थः—(चर्कृत्यानि कृण्वतः-यस्मात्) सुन्दर या यथायोग्य कर्मफल रूप पुरस्कार या दण्ड प्रदान कर्मों के करते हुए जिस परमात्मा से (कृष्टयः-रेजन्त) मनुष्य[1] भय करते[2] हैं (सहस्रसाम्) बहुत सम्भाजक (मेधसातौ) अध्यात्मयज्ञ में (त्मना) आत्मभाव से परमात्मा को (धीभिः) ध्यान धारणा समाधियों से[3] या स्तुतिवाणियों से[4] (नमस्यत) नमस्कार करो ॥ २ ॥

१५१७. **प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना। अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्रदैवोदासोअग्निः ॥ ३ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१)

तृतीय तृच

ऋषिः—शतं वैखानसः-ऋषयः (बहुत सारे अमृत आनन्द का विशेष खनन—खोज करने वाले उपासकजन) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५१८. **अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अग्नआयूंषिपवसे ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ६२७, १४६४)

---

१. "कृष्टयः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३]। २. "रेजते-इति भयवेपनयोः" [निरु० ३.२३]।
३. "धीरसि ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च" [काठ० २४.३]।
४. "वाग्वै धीः" [का० श० ४.२८४.१३]।

१५१९. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्॥ २॥

पदपाठः— अग्निः ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पाञ्च जन्यः पुरोहितः पुरः हितः तम् ईमहे महागयम् महा गयम्॥ २॥

अन्वयः—अग्निः-ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तं महागयम्-ईमहे॥

पदार्थः—(अग्निः-ऋषिः) अग्रणायक परमात्मा सर्वद्रष्टा (पवमानः) पवित्रकारक है (पाञ्चजन्यः) पञ्चजनों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद—वनवासी जनों का उपास्य—एवं हितकर (पुरोहितः) पुरः-हित—पूर्व से वर्तमान हितकर है (तं महागयम्-ईमहे) उस महान् घर वाले[1] मोक्षरूप महान् घर वाले परमात्मा की माँग करते हैं—चाहते हैं[2]॥ २॥

१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्॥ ३॥

पदपाठः— अग्ने पवस्व स्वपाः सु अपाः अस्मेइति वर्च्चः सुवीर्यम् सु वीर्यम् दधत् रयिम् मयि पोषम्॥ ३॥

अन्वयः—अग्ने स्वपाः अस्मे वर्चः सुवीर्यं पवस्व मयि पोषं रयिं दधत्॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञान प्रेरक परमात्मन्! (स्वपाः) उत्तम कर्म वाला—अबाधित कर्म वाला[3] (अस्मे वर्चः सुवीर्यं पवस्व) हमारे अन्दर तेज उत्तम बल को प्रेरित कर (मयि) मेरे में (पोषं रयिं दधत्) पोषक ज्ञान धन को धारण कराता हुआ उपास्य देव को॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसूयवः (अध्यात्म धन का इच्छुक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५२१. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान् वक्षि यक्षि च॥ १॥

पदपाठः— अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया आदेवान्व-क्षियक्षिच॥ १॥

---

१. "गयः-गृहनाम" [निघं० ३.४]। २. "ईमहे याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।
३. "अपः-कर्मनाम" [निघं० २.१]।

अन्वयः—पावक-अग्ने देव रोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान्-आवक्षि यक्षि च॥

पदार्थः—(पावक-अग्ने देव) हे शोधक परमात्मदेव! तू (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया) रोचमान दीप्त, हर्षित करने वाली, स्तुतिवाणी के द्वारा (देवान्-आवक्षि यक्षि च) हमें देवों—मुमुक्षुजनों के प्रति आवहन कर समन्तरूप से लेजा और उनके साथ समन्तरूप से सङ्गत कर॥ १॥

१५२२. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्।
देवाँ आ वीतये वह॥ २॥

पदपाठः— तम् त्वा घृतस्नो घृत स्नो ईमहे चित्रभानो चित्र भानो स्वर्दृशम् स्वः दृशम् देवान् आ वीतये वह॥ २॥

अन्वयः—घृतस्नो चित्रभानो तं त्वा स्वर्दृशम्-ईमहे देववीतये देवान्-आवह॥

पदार्थः—(घृतस्नो चित्रभानो) तेज को स्रवित करने वाले[1] अद्भुत दीप्ति वाले परमात्मन्! (तं त्वा स्वर्दृशम्-ईमहे) उस तुझ सुखदर्शक को हम चाहते हैं (देववीतये देवान्-आवह) हम उपासकों को देवों मुमुक्षुओं की कमनीय मुक्ति के लिये ले-जा॥ २॥

१५२३. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे॥ ३॥

पदपाठः— वीतिहोत्रम् वीति होत्रम् त्वा कवे द्युमन्त सम् इधीमहि अग्ने बृहतम् अध्वरे॥ ३॥

अन्वयः—कवे-अग्ने त्वा वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तम् अध्वरे समिधीमहि॥

पदार्थः—(कवे-अग्ने) हे क्रान्तदर्शी परमात्मन्! (त्वा वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तम्) तुझ कमनीय दान देने वाले—दीप्तिमान् महान् परमात्मा को (अध्वरे समिधीमहि) अध्यात्मयज्ञ में हम प्रकाशित करें—साक्षात् करें॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५२४. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य॥ १॥

---

१. "ष्णु प्रस्रवणे" [अदादि०]।

पदपाठः— **आ नः अग्ने ऊतिभिः गायत्रस्य प्रभर्मणि प्र भर्मणि विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥**

अन्वयः—विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने गायत्रस्य प्रभर्मणि ऊतिभिः-नः-अव ॥

पदार्थः—(विश्वासु धीषु वन्द्य) समस्त प्रज्ञानों में अध्यात्मध्यानों में वन्दनीय देव (अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (गायत्रस्य प्रभर्मणि) स्तुतिकर्म के[1] प्रकृष्ट भरण, समर्पण या अनुष्ठान में (ऊतिभिः-नः-अव) रक्षाविधियों से हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

१५२५. **आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्॥ २ ॥**

पदपाठः— **आ नः अग्ने रयिम् भर सत्रासाहम् सत्रा साहम् वरेण्यम् विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् दुः तरम्॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्ने नः सत्रासाहं वरेण्यं रयिम् विश्वासु पृत्सु आभर ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (नः) हमारे लिये (सत्रासाहं वरेण्यं रयिम्) सब को[2] सुगमता से सहन करने वाले वरणीय अध्यात्म ऐश्वर्य को (विश्वासु पृत्सु) सारी संघर्ष स्थितियों में[3] (आभर) आभरित कर ॥ २ ॥

१५२६. **आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ नः अग्ने सुचेतुना सु चेतुना रयिम् विश्वायुपोषसम् विश्वायु पोषसम् मार्डीकम् धेहि जीवसे ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्ने नः सुचेतुना मार्डीकम् विश्वायुपोषकम् जीवसे आधेहि ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (नः) हमारे लिये (सुचेतुना) शोभन ज्ञान से युक्त (मार्डीकम्) सुख से भरे हुए (विश्वायुपोषकम्) समस्त आयु तक पोषणप्रद रमणीय ऐश्वर्य को (जीवसे) जीवन के लिये (आधेहि) आधान कर—स्थापित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय पञ्चर्च

ऋषिः—केतुः (ज्ञानी सावधान उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाश-स्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५२७. **अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनंधनम्॥ १ ॥**

---

१. "गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः" [निरु १.८]। २. "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४.६.१.१५]। ३. "पृत्सु संग्रामनाम" [निघं० २.१७]।

पदपाठः— **अग्निम् हिन्वन्तु नः धियः सप्तिम् आशुम् इव आजिषु तेन जेष्म धनन्धनम् धनम् धनम्॥ १॥**

अन्वयः—नः-धियः अग्निं हिन्वन्तु आजिषु तेन धनं धनं जेष्म॥

पदार्थः—(नः-धियः) हमारी स्तुतिवाणियाँ[1] (अग्निं हिन्वन्तु) अग्रणायक परमात्मा को हमारी ओर प्रेरित करें (आजिषु) गन्तव्य—प्राप्तव्य स्थानों में[2] संयत घोड़ों को जैसे प्रेरित करते हैं (तेन) उस से (धनं धनं जेष्म) धन धन—प्रत्येक धन—धारणीय[3] वस्तु को अभिभूत करे—स्वायत करें[4]॥ १॥

१५२८. **यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या। तां नो हिन्व मघत्तये॥ २॥**

पदपाठः— **यया गाः आकरामहै आ करामहै सेनया अग्ने तव ऊत्या ताम् नः हिन्व मघत्तये॥ २॥**

अन्वयः—अग्ने तव यथा-ऊत्या सेनया गाः-आकरामहे तां नः-मधत्तये हिन्व॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (तव यथा-ऊत्या सेनया) तेरी जिस रक्षारूप बन्धनी[5]—रक्षाबन्धनी के द्वारा (गाः-आकरामहे) ज्ञानवाणियों—उपदेश उक्तियों को हम अङ्गीकार करते हैं—अपनाते हैं—जीवन में ढालते हैं (तां नः-मधत्तये हिन्व) उसे हमें ऐश्वर्य देने के लिये प्रेरित कर॥ २॥

१५२९. **आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्। अङ्धि खं वर्तया पविम्॥ ३॥**

पदपाठः— **आ अग्ने स्थूरम् रयिम् भर पृथुम् गोमन्तम् अश्विनम् अङ्धि त्वम् वर्त्तय पविम्॥ ३॥**

अन्वयः—अग्ने स्थूरम् पृथुम् गोमन्तम् अश्विनम् रयिम् आभर त्वम्-अङ्धि पविंवर्तय॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (स्थूरम्) स्थिर या समाश्रितमात्र[6] सब मात्राओं वाले—पूर्ण (पृथुम्) प्रयत्नशील उपकार में आने वाले (गोमन्तम्) इन्द्रियों का हित जिसमें हो तथा (अश्विनम्) व्यापन मन की

---

१. ''धीरसि ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च'' [काठ० ३४.३], ''वाग्वै धीः'' [ऐ० आ० १.१.४]।

२. ''अज गतिपूजनयोः'' [भ्वादि०], ततः ''अज्यतिभ्यां च इण्'' [उणा० ४.१३१]।

३. ''धाञः क्युः'' [उणा० २.८१]। ४. ''जि-अभिभवे'' [भ्वादि०]।

५. ''षिञ् बन्धने'' [स्वादि० कुमादि०]।

६. ''स्थूः-समाश्रितमात्रो महान् भवति'' [निरु० ६.२२]।

मननशीलता जिसमें हो, ऐसे (रयिम्) आध्यात्मिक धन को (आभर) मेरे अन्दर आभरित कर (त्वम्–अङ्गधि) तू मेरे हृदयावकाश को अपने स्वरूप से पूरित कर (पविंवर्तय) मेरी स्तुतिवाणी को[1] वर्तित—प्रतिवर्तित—प्रतिफलित कर या अपने आनन्दरथ की चक्रनेमि को मेरी ओर घुमा दे॥ ३॥

१५३०. अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि। दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः॥ ४॥

पदपाठः— अग्ने नक्षत्रम् अजरम् अ जरम् आसूर्यंरोहयोदिवि दधत् ज्योतिः जनेभ्यः॥ ४॥

अन्वयः—अग्ने अजरं नक्षत्रम् सूर्यम् जनेभ्यः-ज्योतिः-दधत् दिवि रोहय॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (अजरं नक्षत्रम्) अविनाशी देवगृह—जीवन्मुक्त के घररूप (सूर्यम्) आनन्द धन को[2] (जनेभ्यः-ज्योतिः-दधत्) उपासकजनों के लिये ज्ञानज्योति को धारण करने के हेतु (दिवि रोहय) मोक्षधाम में आरोपित किया है—रखा है॥ ४॥

१५३१. अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत्॥ ५॥

पदपाठः— अग्ने केतुः विशाम् असि प्रेष्ठः श्रेष्ठः उपस्थसत् उपस्थसत् बोध स्तोत्रे वयः दधत्॥ ५॥

अन्वयः—अग्ने विशां केतुः-असि प्रेष्ठः-श्रेष्ठः-उपस्थसत् स्तोत्रे बोध वयः-दधत्॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (विशां केतुः-असि) उपासक प्रजाओं का प्रज्ञापक है—सावधान करने वाला है (प्रेष्ठः-श्रेष्ठः-उपस्थसत्) तू अत्यन्त प्रिय और अत्यन्त प्रशंसनीय उपस्थान—समीप स्थान—हृदय में स्थित होने वाला (स्तोत्रे बोध) स्तोता के लिये बोध दे, और (वयः-दधत्) जीवन को धारण करा॥ ५॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविध प्रकार से रूपित निरूपित करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५३२. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति॥ १॥

---

१. "पविः-वाङ्नाम" [निघं० १.११], "पविः-रथनेमिर्भवति"।
२. "एष सूर्यो वै वसुः" [ऐ० ४.२०]।

पदपाठः— **अग्निर्मूर्द्धादिवःककुत्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७)

१५३३. **ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः। स्तोता स्यां तव शर्मणि॥ २॥**

पदपाठः— **ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्य अग्ने स्वःपतिः स्वा३रिति पतिः स्तोता स्यां तव शर्मणि॥ २॥**

अन्वयः—अग्ने स्वः पतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे स्तोता तव शर्मणि स्याम्॥

पदार्थः—(अग्ने) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (स्वः पतिः) मोक्षसुख का स्वामी (वार्यस्य) वरणीय—(दात्रस्य) दातव्य धन का (ईशिषे) स्वामित्व कर रहा है (स्तोता तव शर्मणि स्याम्) मैं स्तुतिकर्ता उपासक तेरी शरण[1] में हो जाऊँ—तुझे पा जाऊँ॥ २॥

१५३४. **उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योतींष्यर्चयः॥ ३॥**

पदपाठः— **उत् अग्ने शुचयः तव शुक्राः भ्राजन्तः ईरते तव ज्योतीꣳषि अर्चयः॥ ३॥**

अन्वयः—उद् अग्ने तव शुचयः शुक्राः भ्राजन्ते तव ज्योतींषि-अर्चयः॥

पदार्थः—(उद्) (अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! (तव शुचयः शुक्राः भ्राजन्ते) तेरे वीर्यबल[2] शुभ्र प्रदीप्त चमचमाते हुए गुणबल सम्मुख प्राप्त हो रहे हैं (तव ज्योतींषि-अर्चयः) और तेरी ज्ञानज्योतियाँ तथा आनन्द तरङ्गें भी हमें प्राप्त हो रही हैं॥ ३॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

---

१. ''यच्छ नः शर्म यच्छ शरणम्'' [निरु० ९.३२]।
२. ''वीर्यं वै शुचिः'' [श० २.२.१.८]।

अथ पञ्चदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः॥ १॥

पदपाठः— कः ते जामिः जनानाम् अग्ने कः दाश्वध्वरः दाशु अध्वरः कः ह कस्मिन् असि श्रितः॥ १॥

अन्वयः—अग्ने जनानाम् ते जामिः कः दाश्वध्वरः-कः कः-ह कस्मिन् श्रितः-असि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (ते जामिः कः) तेरा बन्धु—स्नेही कौन है—कोई विरला उपासक जीवन्मुक्त (दाश्वध्वरः-कः) दिया है अध्यात्मयज्ञ—आत्मसमर्पी कौन है—कोई विरला मुमुक्षु है (कः-ह) तू कौन है—ऐसा जानने वाला भी विरला ही योगी है (कस्मिन् श्रितः-असि) तू किसमें श्रित है—विराजमान है—किसी विरले ध्यानी में विराजमान है॥ १॥

१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः॥ २॥

पदपाठः— त्वम् जामिः जनानाम् अग्ने मित्रः मि त्रः असि प्रियः सखा स खा सखिभ्यः स खिभ्यः ईड्यः॥ २॥

अन्वयः—अग्ने त्वम् जनानां जामिः मित्रः प्रियः-असि सखिभ्यः-ईड्यः सखा॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (जनानां जामिः) मनुष्यों का बन्धु—स्नेही है तू महान् उदार है (मित्रः प्रियः-असि) मित्र है हितसाधक तृप्तिकर्ता है (सखिभ्यः-ईड्यः सखा) तू मित्रों के लिये स्तुति करने योग्य मित्र है—सच्चा मित्र है॥ २॥

१५३७. **यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम्॥ ३॥**

पदपाठः— **यज नः मित्रा मि त्रा वरुणा यज देवान् ऋतम् बृहत् अग्ने यक्षि स्वम् दमम्॥ ३॥**

अन्वयः—अग्ने नः-मित्रावरुणौ यज देवान् यज बृहत्-ऋतम् स्वं दमं यक्षि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! तू (नः-मित्रावरुणौ यज) हमारे प्राण अपान को[1] सङ्गत कर (देवान् यज) इन्द्रियों को सङ्गत कर (बृहत्-ऋतम्) तू महान् सत्य को सङ्गत कर (स्वं दमं यक्षि) अपने घर—हृदय को सङ्गत कर॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५३८. **ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा॥ १॥**

पदपाठः— **ईडेन्यः नमस्यः तिरः तमाꣳसि दर्शतः सम् अग्निः इध्यते वृषा॥ १॥**

अन्वयः—दर्शतः-अग्निः ईडेन्यः नमस्यः तमांसि तिरः वृषा समिध्यते॥

पदार्थः—(दर्शतः-अग्निः) दर्शनीय ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (ईडेन्यः) स्तुति करने योग्य (नमस्यः) नम्रतया प्रार्थनीय (तमांसि तिरः) अज्ञानान्धकारों को तिरस्कृत करता है (वृषा) कामनावर्षक (समिध्यते) अन्तःकरण में सम्यक् दीप्त होता है॥ १॥

१५३९. **वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईडते॥ २॥**

पदपाठः— **वृषा उ अग्निः सम् इध्यते अश्वः न देववाहनः देव वाहनः तम् हविष्मन्तः ईडते॥ २॥**

अन्वयः—वृषा-उ-अग्निः देव-वाहनः-अश्वः-न समिध्यते तं हविष्मन्तः-ईडते॥

पदार्थः—(वृषा-उ-अग्निः) अवश्य कामनावर्षक परमात्मा (देव-वाहनः-

1. "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [जै० १.१०९]।

अश्वः-न समिध्यते) देव परमात्मदेव की ओर ले जाने वाला 'न सम्प्रत्यर्थे पदपूरणो वा' हृदय में प्रकाशित किया जाता है (तं हविष्मन्तः-ईडते) उसे आत्मसमर्पण करने वाले स्तुत करते हैं ॥ २ ॥

१५४०. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत्॥ ३ ॥

पदपाठः— वृषणम् त्वा वयम् वृषन् वृषणः सम् इधीमहि अग्ने दीद्यतम् बृहत्॥ ३ ॥

अन्वयः—वृषन्-अग्ने वयं वृषणः त्वा बृहत्-दीद्यतं समिधीमहि ॥

पदार्थः—(वृषन्-अग्ने) हे सुखवर्षक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वयं वृषणः) हम स्तुतिवर्षक उपासक (त्वा बृहत्-दीद्यतं समिधीमहि) तुझे महान् चमकते हुए को स्तुतियों से प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविधरूपों में निरूपण करने वाला उपासक)॥

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते॥ १ ॥

पदपाठः— उत् ते बृहन्तः अर्च्चयः समिधानस्य सम् इधानस्य दीदिवः अग्ने शुक्रासः ईरते॥ १ ॥

अन्वयः—दीदिवः-अग्ने ते समिधानस्य बृहन्तः-शुक्रासः-अर्चयः उदीरते ॥

पदार्थः—(दीदिवः-अग्ने) हे दीप्तिमान् परमात्मन्! (ते समिधानस्य) तुझ समिध्यमान—हृदय के अन्दर प्रकाशित—साक्षात् किए हुए को (बृहन्तः-शुक्रासः-अर्चयः) महान् शीघ्र कार्यकारी—शीघ्र सफल होने वाली अर्चनाएँ—स्तुतियाँ (उदीरते) उठती रहती हैं—उठती रहें ॥ १ ॥

१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत। अग्ने हव्या जुषस्व नः॥ २ ॥

पदपाठः— उप त्वा जुह्वः मम घृताचीः यन्तु हर्यत अग्ने हव्या जुषस्व नः॥ २ ॥

अन्वयः—हर्यत-अग्ने मम घृताचीः जुह्वः त्वा उपयन्तु नः हव्या जुषस्व ॥

पदार्थः—(हर्यत-अग्ने) हे कमनीय[1] परमात्मन्! (मम) मेरी (घृताचीः) स्निग्ध स्तुतिवाणियाँ[2] तथा (जुह्वः) आत्मभावनायें[3] (त्वा) तुझे (उपयन्तु) प्राप्त हों—और (नः) हमारे (हव्या जुषस्व) हव्यों—दातव्य उपहार रूप श्रवण, मनन, निदिध्यासनों शम, दम, सदाचरण दोनों को सेवन कर—स्वीकार कर ॥ २ ॥

१५४३. **मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्। अग्निमीडे स उ श्रवत्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **मन्द्रम् होतारम् ऋत्विजम् चित्रभानुम् चित्र भानुम् विभावसुम् विभा वसुम् अग्निम् ईडे सः उ श्रवत्॥ ३ ॥**

अन्वयः—मन्द्रम् होतारम् ऋत्विजम् चित्रभानुम् विभावसुम् अग्निम् ईडे सः-उ श्रवम्॥

पदार्थः—(मन्द्रम्) हर्षकर—(होतारम्) स्वीकार करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु समय पर वस्तु से यजनकर्ता—उत्पादक (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाश वाले (विभावसुम्) विशेष दीप्ति वाले (अग्निम्) परमात्मा की (ईडे) स्तुति करता हूँ (सः-उ श्रवम्) वह ही हमारी प्रार्थना को सुनता है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥
छन्दः—विषमा (बृहती)॥

१५४४. **पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥ १ ॥**

पदपाठः— **पाहिनोअग्नएकया॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३६)

१५४५. **पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव। त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥ २ ॥**

पदपाठः— **पाहि विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः अ राव्णः प्र स्म वाजेषु नः अव त्वाम् इत् हि नेदिष्ठम् देवतातय आपिम् नक्षामहे वृधे॥ २ ॥**

---

१. "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६]।

२. "वाग्वै घृताची" [ऐ० आ० १.१.४]।

३. "आत्मा वै जुहूः" [मै० ४.१.१२]।

अन्वयः—विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः नः वाजेषु प्र–अव स्म देवतातये नेदिष्ठम् त्वाम्–इत्–हि आपिं वृधे नक्षामहे ॥

पदार्थः—(विश्वस्मात्) समस्त—(रक्षसः) जिससे रक्षा की जावे उससे (अराव्णः) अनृत—असत्य के प्रशंसक असत्य मानने बोलने आचरण करनेवाले[1] (नः) हमारी (वाजेषु प्र–अव स्म) कामादि के संघर्ष में हमारी रक्षा कर (देवतातये) देवों की प्राप्ति के लिए (नेदिष्ठम्) अत्यन्त निकट देव (त्वाम्–इत्–हि) तुझे ही हमें (आपिं वृधे नक्षामहे) उन्नति के लिये सम्बन्ध अपनाने वाला मानते हैं ॥ २ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रितः-आप्त्यः (तीनों ज्योतियों से सम्पन्न आप्तजन से सम्बद्ध)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१५४६. **इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि। चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन्॥ १ ॥**

पदपाठः— **इनः राजन् अरतिः समिद्धः सम् इद्धः रौद्रः दक्षाय सुषुमान् अदर्शि चिकित् वि भाति भासा बृहता असिक्नीम् एति रुशतीम् अपाजन् अप अजन्॥ १ ॥**

अन्वयः—राजन् इनः अरतिः रौद्रः दक्षाय सुषुमान् अदर्शि बृहता भासा चिकित्–हि–भाति असिक्नीम्–अपाजन्–एति ॥

पदार्थः—(राजन्) हे सर्वत्र राजमान प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (इनः) संसार का ईश्वर[1] स्वामी है (अरतिः) अतः सबको प्राप्त है (रौद्रः) स्तोता[2] उपासक का अत्यन्त स्नेही (दक्षाय) बल समृद्धि के लिये (सुषुमान्) शोभनरूप में साक्षात् करने वाले उपासक के द्वारा[3] (अदर्शि) देखा जाता है—साक्षात् किया जाता है (बृहता भासा चिकित्–हि–भाति) बड़ी दीप्ति से चेताने वाला ही (असिक्नीम्–अपाजन्–एति) उपासक की अन्धकारमयी स्थिति को हटाने के हेतु प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१५४७. **कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्। ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति॥ २ ॥**

---

१. "इनः–ईश्वरः" [निघं० २.२२]। २. "रुद्रः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
३. "सुष्मता" तृतीयास्थाने प्रथमाव्यत्ययेन।

पदपाठः— **कृष्णाम् यत् एनीम् अभि वर्पसा भूत् जनयन् योषाम् बृहतः पितुः जाम् ऊद्ध्वम् भानुम् सूर्यस्य स्तभायन् दिवः वसुभिः अरतिः वि भाति ॥ २ ॥**

अन्वयः—कृष्णाम्-एनीं यत्-वर्पसा-अभिभूत् बृहतः पितुः-जां योषाम्-जनयन् सूर्यस्य भानुम्-ऊर्ध्वं स्तभायत् दिवः-अरतिः वसुभिः-'वसुषु' विभाति ॥

पदार्थः—(कृष्णाम्-एनीं यत्-वर्पसा-अभिभूत्) जब परमात्मा उपासक के अन्दर की कृष्णरंग वाली पापाज्ञान स्थिति को अपने शुभ्र प्रकाशरूप[1] से अभिभूत कर लेता है—दबा देता है (बृहतः पितुः-जां योषाम्-जनयन्) महान् पालक सूर्य की अपत्य उषा के समान अपनी वाक्ज्ञानज्योति[2] को प्रादुर्भूत करता हुआ (सूर्यस्य भानुम्-ऊर्ध्वं स्तभायत्) ज्ञानसूर्य के ज्ञानमय तेज को उपासक के ऊपर मस्तिष्क में स्तम्भित किया धारा—रखा पुनः (दिवः-अरतिः) मोक्षधाम का व्यापक स्वामी परमात्मा (वसुभिः-'वसुषु' विभाति) अपने में वसने वाले जीवन्मुक्तों उपासकों में विशेष भासित होता है ॥ २ ॥

१५४८. **भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णै रभि राममस्थात् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **भद्रः भद्रया सचमानः आ अगात् स्वसारम् चारः अभि एति पश्चात् सुप्रकेतैः सु प्रकेतैः द्युभिः अग्निः वितिष्ठन् वि तिष्ठन् रुशद्भिः वर्णैः अभि रामम् अस्थात् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्निः भद्रः भद्रया सचमानः आगात् जारः स्वसारम्-अभि पश्चात् एति सुप्रकेतैः-द्युभिः उशद्भिः-वर्णैः तिष्ठन् रामम्-अभि-अस्थात् ॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (भद्रः) भन्दनीय—अर्चनीय[3] (भद्रया) अर्चना से—स्तुति से (सचमानः) समवेत—सङ्गत हुआ (आगात्) उपासक के अन्दर आता है (जारः) जैसे अन्धकार का जीर्ण करने वाला सूर्य (स्वसारम्-अभि पश्चात् एति) सु-असा[4] शोभन ढङ्ग से अन्धकार को फेंकने वाली उषा को लक्ष्य कर पीछे आता है[5] (सुप्रकेतैः-द्युभिः) सम्यक् चेताने वाली

---

१. ''वर्पः-रूपनाम'' [निघं० ३.७]। २. ''योषा हि वाक्'' [श० १.९.४.८]।
३. ''भद्रे-भन्दनीये'' [निरु० ११.१९], ''भन्दते अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।
४. ''स्वसा-सु-असा'' [निरु० ११.३२]।
५. अत्र लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।

ज्ञानदीप्तियों—(उशद्भिः-वर्णैः) कमनीय वर्णनों—ज्ञानोपदेशों के साथ (तिष्ठन्) हृदय में स्थित हुआ (रामम्-अभि-अस्थात्) रमणयोग्य उपासक आत्मा को लक्ष्य कर—उपासक आत्मा में विराजमान हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—उशनाः (मोक्ष की कामना करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५४९. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

पदपाठः— कया ते अग्ने अङ्गिरः ऊर्जः नपात् उपस्तुतिम् उप स्तुतिम् वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

अन्वयः—अङ्गिरः ऊर्जः-नपात्-अग्ने देव वराय मन्यवे कया-उपस्तुतिम् ॥

पदार्थः—(अङ्गिरः) हे अङ्गों में आनन्दरस भरने वाले एवं अङ्गों के प्रेरक (ऊर्जः-नपात्-अग्ने देव) आत्मबल के न गिराने वाले परमात्मदेव! (वराय मन्यवे) वरने योग्य मनन करने योग्य ज्ञानप्रकाशस्वरूप लाभ के[1] लिये (कया-उपस्तुतिम्) किसी—विरली ऊँची योगपद्धति से की हुई मेरी उपासना को स्वीकार कर ॥ १ ॥

१५५०. दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो। कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥

पदपाठः— दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसः यहो कत् उ वोचे इदम् नमः ॥ २ ॥

अन्वयः—कस्य यज्ञस्य सहसः-यहो 'यहोः' मनसा-इदं नमः कद्-उ वोचे ॥

पदार्थः—(कस्य यज्ञस्य) सुखस्वरूप यजनीय—(सहसः-यहो 'यहोः') बलवान्—[2] सर्वत्र गतिमान् सर्वत्र प्राप्त[3] परमात्मा के लिये[4] (मनसा-इदं नमः) मन से यह नम्र वचन—प्रार्थना वचन (कद्-उ वोचे) कभी भी कहूँ—बोलूँ उसे वह स्वीकार करता है ॥ २ ॥

१५५१. अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥

---

१. ''मन्युर्मन्यते दीप्तिकर्मणः'' [निरु० १०.२९]।

२. ''सहः-बलनाम'' [निघं० २.९] ततो—मतुबर्थीयस्य लोपश्छान्दसः।

३. ''ओहाङ्गतौ'' [जुहां०]।

४. ''सर्वत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी छान्दसी।''

पदपाठः— अध त्वम् हि नः करः विश्वाः अस्मभ्यम् सुक्षितीः सु क्षितीः वाजद्रविणसः वाज द्रविणसः गिरः ॥ ३ ॥

अन्वयः—अध त्वं हि अस्मभ्यम् नः-गिरः सुक्षितीः वाजद्रविणसः करः ॥

पदार्थः—(अध) अनन्तर—और (त्वं हि) तू ही (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (नः-गिरः) हमारी स्तुतिवाणियों को (सुक्षितीः) शोभन भूमि वाली[१] (वाज-द्रविणसः) अमृत अन्नभोगों[२] धन फल वाली (करः) कर—बना ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१५५२. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्ने आ याहि अग्निभिः होतारन्त्वावृणीमहे आ त्वाम् अनक्तु प्रयता प्र यता हविष्मती यजिष्ठम् बर्हिः आसदे आ सदे ॥ १ ॥

अन्वयः—अग्ने-आयाहि त्वा होतारम् अग्निभिः वृणीमहे त्वां यजिष्ठम् प्रयता हविष्मती अनक्तु बर्हिः-आसदे ॥

पदार्थः—(अग्ने-आयाहि) हे ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मन्! तू मेरे हृदय में आ (त्वा होतारम्) तुझ अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विक् को (अग्निभिः) ब्राह्मणों के[३] समान[४] (वृणीमहे) हम वरते हैं (त्वां यजिष्ठम्) तुझ अत्यन्त याजक को (प्रयता हविष्मती) संयता आत्मसमर्पण वाली[५] स्तुति (अनक्तु) स्निग्ध करे—हमारी ओर द्रवित करे (बर्हिः-आसदे) हृदयाकाश में आ बैठने के लिये ॥ १ ॥

१५५३. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे । ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

पदपाठः— अच्छ हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचः चरन्ति अध्वरे ऊर्जः नपातम् घृतकेशम् घृत केशम् ईमहे अग्निम् यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

---

१. "क्षितिः पृथिवीनाम" [निघं० १.१] । २. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३] ।
३. "अग्निर्वै ब्राह्मणः" [काठ० ६.६] । ४. लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।
५. "आत्मा वै हविः" [काठ० ८.५] ।

अन्वयः—सहसः सूनो–अङ्गिरः त्वा–अच्छा अध्वरे स्रुचः–चरन्ति ऊर्जः–नपातम् घृतकेशम् पूर्व्यम् अग्निम् ईमहे ॥

पदार्थः—(सहसः सूनो–अङ्गिरः) हे बल के उत्पादक अङ्गों के रसरूप रसयिता परमात्मन्! (त्वा–अच्छा हि) तुझे लक्ष्य कर (अध्वरे) अध्यात्मयज्ञ में (स्रुचः–चरन्ति) स्तुतिवाणियाँ चलती हैं—होती रहती हैं[१] (ऊर्जः–नपातम्) अध्यात्मबल के न गिराने वाले—(घृतकेशम्) दीप्त रश्मि वाले[२] (पूर्व्यम्) शाश्वतिक—(अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (ईमहे) चाहते हैं—प्रार्थित करते हैं ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (स्तुति का सुदानकर्ता और स्तुति को बहुत ही सींचने वाला उपासक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१५५४. **अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्। अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अच्छ नः शीरशोचिषम् शीर शोचिषम् गिरः यन्तु दर्शतम् अच्छ यज्ञासः नमसा पुरूवसुम् पुरु वसुम् पुरुप्रशस्तम् पुरु प्रशस्तम् ऊतये ॥ १ ॥**

अन्वयः—शीरशोचिषम् दर्शतम् नः–गिरः अच्छ यन्तु पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं नमसा यज्ञासः अच्छ–ऊतये ॥

पदार्थः—(शीरशोचिषम्) व्यापक ज्योति वाले[३] (दर्शतम्) दर्शनीय परमात्मा को (नः–गिरः) हमारी स्तुतियाँ (अच्छ यन्तु) भली प्रकार प्राप्त हों (पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं) बहुत वसाने वाले और बहुत प्रशंसनीय परमात्मा को (नमसा यज्ञासः) नम्रभाव से अध्यात्मयज्ञ (अच्छ–ऊतये) अच्छी रक्षा के लिये प्राप्त हो ॥ १ ॥

१५५५. **अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्। द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अग्निम् सूनुम् सहसः जातवेदसम् जात वेदसम् दानाय वार्याणाम् द्विता यः भूत् अमृतः अ मृतः मर्त्येषु आ होता मन्द्रतमः विशि ॥ २ ॥**

---

१. ''वाग्वै स्रुक्'' [श० ६.३.१.८]।

२. ''तेजो वै घृतम्'' [मै० १.६.८]।

३. ''शीरम्.......आशिनम्'' [निरु० ४.१४]।

अन्वयः—सहसः सूनुम् जातवेदसम् अग्निम् वार्याणां दानाय यः-अमृतः द्विता-अभूत् मर्त्येषु-आ विशि होता मन्द्रतमः ॥

पदार्थः—(सहसः सूनुम्) योगाभ्यासरूप बल से साक्षात् होने वाले (जातवेदसम्) उत्पन्नमात्र के ज्ञाता (अग्निम्) परमात्मा को (वार्याणां दानाय) वरने योग्य पदार्थों के देने के लिये 'मन्त्र' हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों (यः-अमृतः) जो अमृत परमात्मा (द्विता-अभूत्) दो रूपों में—(मर्त्येषु-आ) मरणधर्मी जनों में—साधारण जनों में और[1] अमरजनों—मुमुक्षु उपासकों में (विशि) दोनों प्रकार की प्रजा में वर्तमान हैं (होता) जीवन निर्वाहक वस्तु देने वाला है और अमरजनों मुमुक्षु उपासकों के लिये (मन्द्रतमः) अत्यन्त हर्ष—आनन्द का मोक्ष का दाता है ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाश-स्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५५६. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम्। तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥

पदपाठः— अदाभ्यः अ दाभ्यः पुरएता पुरः एता विशाम् अग्निः मानुषीणाम् तूर्णिः रथः सदा नवः ॥ १ ॥

अन्वयः—अदाभ्यः-अग्निः मानुषीणाम् विशाम् पुरः-एता तूर्णिः-रथः सदा नवः ॥

पदार्थः—(अदाभ्यः-अग्नि) अदम्भनीय—अबाध्यज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मा (मानुषीणाम् विशाम्) मननशील प्रजाओं उपासकों का (पुरः-एता) अग्रगामी—अग्रणायक है (तूर्णिः-रथः) शीघ्रगामी रथ समान या उपासक के पाप को छिन्न-भिन्न करने वाला[2] रमणीय-रमण स्थान (सदा नवः) सदा अजर शरण या सदा स्तुतियोग्य[3] है ॥ १ ॥

१५५७. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः। क्षयं पावकशोचिषः ॥ २ ॥

पदपाठः— अभि प्रयाꣳसि वाहसा दाश्वान् अश्नोति मर्त्यः क्षयम् पावकशोचिषः पावक शोचिषः ॥ २ ॥

---

१. ''एतस्मिन्नेवार्थे 'समुच्चये' देवेभ्यश्च पितृभ्य आ इत्याकारः'' [निरु० १.४]।

२. सर्वंह्येव पाप्मानं तरति तस्मादाह तूर्णिः [श० १.४.२.१२]।

३. ''णु स्तुतौ'' [अदादि०]।

अन्वयः—दाश्वान्–मर्त्यः वाहसा प्रयांसि अभि–अश्नोति पावक शोचिषः–क्षयम् ॥

पदार्थः—(दाश्वान्–मर्त्यः) आत्मदानी—आत्मसमर्पी उपासक (वाहसा) स्तुतिप्रापण—स्तुतिप्रवाह से[1] (प्रयांसि) अत्यन्त प्रिय भोगों को (अभि–अश्नोति) भोगता है[2] या प्राप्त करता है[3] (पावक शोचिषः–क्षयम्) पवित्रकारक ज्ञानदीप्तिमान् परमात्मा अमृत निवास को—उसके अमृतभोग को भी भोगता है या प्राप्त करता है ॥ २ ॥

१५५८. **साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।**
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥

पदपाठः— **साह्वान् विश्वाः अभियुजः अभि युजः क्रतुः देवानाम् अमृक्तः अ मृक्तः अग्निः तुविश्रवस्तमः तुवि श्रवस्तमः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्निः देवानाम् विश्वाः–अभियुजः साह्वान् अमृक्तः क्रतुः तु विश्रवस्तमः ॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (देवानाम्) उपासक मुमुक्षुओं की (विश्वाः–अभियुजः) समस्त अभियोगी विरोधी प्रवृत्तियों को (साह्वान्) दबाने वाला (अमृक्तः क्रतुः) अमृत[4] प्रज्ञान प्रेरक[5] (तुविश्रवस्तमः) बहुत श्रवणीयतम है—अत्यधिक श्रवण मननादि करने योग्य है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (अपने अन्दर परमात्मा को धारण करने वाला)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—प्रागाथं काकुभम् ॥

१५५९. **भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।**
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

पदपाठः— **भद्रोनोअग्निराहुतः ॥ १ ॥**
(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १११)

---

१. "इन्द्राय वाहः कृणवावः अभिवहन् स्तुतिम्" [निरु० ४.१६]।
२. "अश भोजने" [क्र्यादि०] विकरणव्यत्ययेन श्लुः अथवा "अशूङ् व्याप्तौ" [क्र्यादि०] विकरणव्यत्ययेन श्लुः अथवा "अशूङ्व्याप्तौ" [स्वादि०] व्यत्ययेन परस्मैपदम्।
३. "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता"।
४. "मृङ्प्राणत्यागे" [तुदादि०] 'ततः क्तः प्रत्यय' ककारलोपाभावश्छान्दसः।
५. "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९] मतुबर्थप्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः।

१५६०. **भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः। अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये॥ २॥**

पदपाठः— **भद्रम् मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये वृत्र तूर्ये येन समत्सु स मत्सु सासहिः अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्द्धताम् वनेम ते अभिष्टये॥ २॥**

अन्वयः—वृत्रतूर्ये मनः-भद्रं कृणुष्व येन समत्सु सासहिः भूरि शर्धताम् स्थिरा अव तनुहि ते वनेम अभिष्टये॥

पदार्थः—(वृत्रतूर्ये) हे परमात्मन्! पापनाशन में—पाप नष्ट करने के निमित्त[1] (मनः-भद्रं कृणुष्व) हमारे मन को पवित्र या स्तुति करने योग्य कर (येन समत्सु सासहिः) जिससे कि उनके संघर्षों में अत्यन्त सहनशील—साहसी हो जावें (भूरि शर्धताम्) बहुत प्रबल हुए पापों के (स्थिरा अव तनुहि) स्थिर जमावों को दुर्बल कर दे (ते वनेम) तेरी सम्भक्ति करें (अभिष्टये) अभिवाञ्छा पूरी करने के लिए॥ २॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमो राहूगणः (राग आदि से रहित स्तुति वाला अत्यन्त गतिशील परमात्मा)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१५६१. **अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः॥ १॥**

पदपाठः— **अग्नेवाजस्यगोमतः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ९९)

१५६२. **स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि॥ २॥**

पदपाठः— **सः इधानः वसुः कविः अग्निः ईडेन्यः गिरा रेवत् अस्मभ्यम् पुर्वणीक पुरु अनीक दीदिहि॥ २॥**

अन्वयः—सः-अग्निः इधानः वसुः कविः गिरा-ईडेन्यः अस्मभ्यम् रेवत् पुर्वणीकम् दीदिहि॥

पदार्थः—(सः-अग्निः) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (इधानः) प्रकाशित हुआ—साक्षात् हुआ[2] (वसुः) वसाने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (गिरा-ईडेन्यः) स्तुतिवाणी से स्तुति करने योग्य है, वह ऐसा तू परमात्मन्! (अस्मभ्यम्)

१. ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ११.१.५.७]। २. 'इधानः-इन्धानः' नकारलोपश्छान्दसः।

हमारे लिए (रेवत्) मोक्षैश्वर्य वाले (पुर्वणीकम्) बहुत काल वाले जीवन[1] मोक्ष के जीवन को (दीदिहि) प्रज्वलित कर[2] प्रसिद्ध कर ॥ २ ॥

१५६३. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥

पदपाठः— क्षपः राजन् उत त्मना अग्ने वस्तोः उत उषसः सः तिग्मजम्भ तिग्म जम्भ रक्षसः दह प्रति ॥ ३ ॥

अन्वयः—राजन्-तिग्मजम्भ-अग्ने सः त्मना-'आत्मनः' रक्षसः उतवस्तोः उत-उषसः क्षपः प्रति दह ॥

पदार्थः—(राजन्-तिग्मजम्भ-अग्ने) हे सर्वत्र राजमान पापियों के लिए तीक्ष्णनाशन शक्ति वाले परमात्मन् (सः) वह तू (त्मना-'आत्मनः') उपासक आत्मा के (रक्षसः) हानिकर पापों को (उतवस्तोः) दिन में भी (उत-उषसः) रात्रि में भी[3] (क्षपः) तिरस्कृत कर (प्रति दह) दग्ध कर ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोपवनः सप्तवध्रिर्ता (इन्द्रियों को पवित्र करने रखने वाला या पाँच ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि इन सात को बान्धने नियन्त्रण में रखने वाला उपासक)॥

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१५६४. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्। अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

पदपाठः— विशोविशोवोअतिथिम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ८७)

छन्दः—गायत्री॥

१५६५. यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्। प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

पदपाठः— यम् जनासः हविष्मन्तः मित्रम् मि त्रम् न सर्पिरासुतिम् सर्पिः आसुतिम् प्रशꣳसन्ति प्र शꣳसन्ति प्रशस्तिभिः प्र शस्तिभिः ॥ २ ॥

---

१. "अन प्राणने" [अदादि०] ततः-ईकन् प्रत्ययः "अभितृषिभ्यां किञ्च" [उणा० ४.१७]।
२. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.६]। ३. "रात्रिर्वा उषा" [तै० ३.८.१६.४]।

अन्वयः—हविष्मन्तः-जनासः सर्पिः-आसुतिं मित्रं न यम् प्रशस्तिभिः-प्रशंसन्ति ॥

पदार्थः—(हविष्मन्तः-जनासः) पवित्र आत्मरूप भेंट वाले[1] उपासकजन (सर्पिः-आसुतिं मित्रं न) प्राप्त होने वाले[2] साक्षात् मित्र समान (यम्) जिस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (प्रशस्तिभिः-प्रशंसन्ति) प्रशंसाओं से—स्तुतियों से प्रशंसित करते हैं वह सिद्ध उपास्य हैं ॥ २ ॥

१५६६. पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता। हव्यान्यैरयद् दिवि ॥ ३ ॥

पदपाठः— पन्यांसम् जातवेदसम् जात वेदसम् यः देवताति उद्यता उत् यता हव्यानि ऐरयत् दिवि ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः देवताति-उद्यता हव्यानि दिवि-ऐरयत् पन्यांसं जातवेदसम् ॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (देवताति-उद्यता हव्यानि) 'देवतातौ' अध्यात्मयज्ञ में[3] उत्तम सम्पन्न आत्माओं को[4] (दिवि-ऐरयत्) मोक्षधाम में प्रेरित करता है—भेजता है (पन्यांसं जातवेदसम्) उस अत्यन्त स्तुति करने योग्य उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को प्रशंसित करते हैं वह उपास्य है ॥ ३ ॥

द्वितीयं तृच

ऋषिः—बार्हस्पत्यो भरद्वाजो वीतहव्यो वा (ऊँचे आचार्य से सम्बद्ध अर्चनबल को धारण करने वाला या गृहयज्ञ से निवृत्त उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती ॥

१५६७. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्। विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥

पदपाठः— समिद्धम् सम् इद्धम् अग्निम् समिधा सम् इधा गिरा गृणे शुचिम् पावकम् पुरः अध्वरे ध्रुवम् विप्रम् वि प्रम् होतारम् पुरुवारम् पुरु वारम् अद्रुहम् अ द्रुहम् कविम् सुम्नैः ईमहे जातवेदसम् जात वेदसम् ॥ १ ॥

अन्वयः—गिरा समिधा समिद्धम् अध्वरे शुचिम् ध्रुवम्-अग्निम् पुरः गृणे

---

१. "आत्मा वै हविः" [काठ० ८.५]। २. "सर्पति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
३. "देवताति 'देवतातौ' सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७.१.३९] ङिविभक्ते र्लुक्।
४. "आत्मा वै हविः" [काठ० ८.५]।

विप्रं होतारम् पुरुवारम् कविम् जातवेदसम् सुम्नैः-ईमहे ॥

पदार्थः—(गिरा समिधा) स्तुतिरूप समित्-'समिधा' के द्वारा (समिद्धम्) प्रकाशमान (अध्वरे) अध्यात्मयज्ञ में (शुचिम्) दोषशोधक (ध्रुवम्-अग्निम्) नित्य परमात्मा को (पुरः) प्रथम (गृणे) स्तुत करूँ—स्तुति में लाऊँ (विप्रं होतारम्) विशेष कामनापूरक दाता (पुरुवारम्) बहुत वरणीय (कविम्) क्रान्तदर्शी (जातवेदसम्) उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को (सुम्नैः-ईमहे) साधु भावों से[1] माँगते हैं—चाहते हैं ॥ १ ॥

१५६८. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्। देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ २ ॥

पदपाठः— त्वाम् दूतम् अग्ने अमृतम् अ मृतम् युगेयुगे युगे युगे हव्यवाहम् हव्य वाहम् दधिरे पायुम् ईड्यम् देवासः च मर्त्तासः च जागृविम् विभुम् वि भुम् विश्पतिम् नमसा नि सेदिरे ॥ २ ॥

अन्वयः—अग्ने त्वां दूतं हव्यवाहम् पायुम्-अमृतम्-ईड्यम् युगे युगे दधिरे देवासः-च मर्तासः-च जागृविं विभुं विश्पतिम् नमसा निषेदिरे ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वां दूतं हव्यवाहम्) तुझ दोषनिवारक[2] दातव्य स्तुतिसमूह[3] को वहने वाले-प्राप्त करने वाले (पायुम्-अमृतम्-ईड्यम्) रक्षक अमर करने वाले स्तुतियोग्य परमात्मा को (युगे युगे दधिरे) ध्यान के प्रत्येक अवसर पर उपासक धारण करते हैं (देवासः-च मर्तासः-च) देव—मुमुक्षु उपासक भी और साधारणजन भी (जागृविं विभुं विश्पतिम्) स्वयं जागरूक—सदा सावधान और उपासकों को जागरूक करने वाले—सावधान करने वाले व्यापक ज्येष्ठ स्वामी[4] परमात्मा को (नमसा निषेदिरे) नमस्कार नम्र प्रार्थना द्वारा अपने अन्दर बिठा लेते हैं ॥ २ ॥

१५६९. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे। यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥

---

१. "सुम्ने मा धत्तमिति.....साधौ मा धत्तमित्येवैतदाह" [श० १.८.३.७]।
२. "दूतो......वारयतेर्वा" [निरु० ५.१]।
३. "जुहोति दानकर्मा" [निरु० १०.१०], "हुदानादनयोः" [जुहो०]।
४. "ज्येष्ठो विश्पतिः" [तै० ऐ० २.३.१.३]।

पदपाठः— **विभूषन् वि भूषन् अग्ने उभयान् अनु व्रता दूतः देवानाम् रजसीइति सम् ईयसे यत् ते धीतिम् सुमतिम् सु मतिम् आवृणीमहे आ वृणीमहे अध स्म नः त्रिवरूथः त्रि वरूथः शिवः भव ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्ने उभयान् व्रता-'व्रतानि' अनु विभूषन् 'विभूषयन्' देवानां दूतः रजसी समीयसे यत् ते धीतिं सुमतिम्-आवृणीमहे अध नः त्रिवरूथः शिवः-भव स्म ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (उभयान्) दोनों जीवन्मुक्तों तथा साधारण उपासकजनों को (व्रता-'व्रतानि' अनु) कर्मों के[1] अनुरूप (विभूषन् 'विभूषयन्') विविधरूप से पुरस्कृत करता है। परन्तु (देवानां दूतः) मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का प्रेरक—मोक्ष में प्रेरित करने वाला है (रजसी समीयसे) उन्हें तू दोनों दिनों[2] में या दोनों लोकों में[3] प्राप्त रहता है (यत् ते) तेरी (धीतिं सुमतिम्-आवृणीमहे) धारणा ध्यान क्रिया को कल्याणकारी मति—अर्चना को हम अपनाते हैं (अध) अनन्तर—तव (नः) हमारे लिये तू (त्रिवरूथः शिवः-भव स्म) तृतीय[4] घर[5] मोक्षधाम वाला कल्याणस्वरूप हो—होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्निप्रज्वलनवेत्ताओं की परम्परा में प्रयोगकर्ता उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—जगती॥

१५७०. **उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः। वायोरनीके अस्थिरन्॥ १ ॥**

पदपाठः— **उप त्वाजामयोगिरः॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३)

१५७१. **यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्। आपश्चिन्नि दधा पदम्॥ २ ॥**

---

१. ''व्रतं कर्मनाम'' [निघं० २.१]।

२. ''अहनी रजसी उच्येते'' [निरु० ४.१९]।

३. ''लोका रजांसि'' [निरु० ४.१९], ''अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च'' [ऋ० ६.९.१], ''अहश्च कृष्णं रात्रिः शुक्लं चाहरर्जुनं विवत्से'' [निरु० २०.१]।

४. ''त्रिनाके त्रिदिवे'' [ऋ० ९.११३.९] यथा तृतीय नाके।

५. ''वरूथं गृहनाम'' [निघं० ३.५]।

पदपाठः— **यस्य त्रिधातु त्रि धातु अवृतम् अ वृतम् बर्हिः तस्थौ असन्दिनम् अ सन्दिनम् आपः चित् नि दध पदम् पदम्॥ २॥**

अन्वयः—यस्य त्रिधातु—अवृतम्—असन्दितं पदम् बर्हिः–तस्थौ आपः–चित् निदधा॥

पदार्थः—(यस्य) जिस अग्नि—ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (त्रिधातु—अवृतम्—असन्दितं पदम्) तीन धारणाओं—स्तुति प्रार्थना उपासनाओं वाला या श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अवृत—प्रत्यक्ष—साक्षात् 'असन्दित' सर्वथा अविचल[1] एकरस पद—स्वरूप (बर्हिः–तस्थौ) हृदय आकाश में स्थित है उसे (आपः–चित्) आप्तजन[2] ऊँचे उपासक[3] (निदधा) अपने अन्दर धारण करते हैं॥ २॥

१५७२. **पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः। भद्रा सूर्यइवोपदृक्॥ ३॥**

पदपाठः— **देवस्य मीढुषः अनाधृष्टाभिः अन् आधृष्टाभिः ऊतिभिः भद्रा सूर्यः इव उपदृक् उप दृक्॥ ३॥**

अन्वयः—मीढुषः–देवस्य पदम् अनाधृष्टाभिः–ऊतिभिः उपदृक्–भद्रा सूर्यः–इव॥

पदार्थः—(मीढुषः–देवस्य) सुख सींचने वाले परमात्मदेव का (पदम्) प्रापणीय स्वरूप (अनाधृष्टाभिः–ऊतिभिः) अबाध्य रक्षाओं से सुरक्षित है (उपदृक्–भद्रा) दर्शनानुभूति कल्याणकारी (सूर्यः–इव) जैसे सूर्य की आभा कल्याणकारी है॥ ३॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

---

१. "दीयति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
२. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०]।
३. "चित् पूजायाम् आचार्यश्चिदिदं ब्रूयादिति पूजायाम्" [निरु० १.४]।

अथ षोडश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम द्वृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से अतन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१५७३. अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥ १ ॥

पदपाठः— अभित्वापूर्वपीतये॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २५६)

१५७४. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ २॥

पदपाठः— अस्य इत् इन्द्रः वावृधे वृष्ण्यम् शवः मदे सुतस्य विष्णवि अद्य अ द्य तम् अस्य महिमानम् आयवः अनुष्टुवन्तिपूर्वथा॥ २॥

अन्वयः—इन्द्रः अस्य सुतस्य विष्णवि मदे इत् वृषणं शवः-वावृधे अद्य-आयवः पूर्वथा अस्य महिमानम् अनुष्टुवन्ति॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (अस्य सुतस्य विष्णवि मदे इत्) उपासक द्वारा प्रस्तुत किए इस पूर्वपान निष्पन्न भारी उपासनारस के व्यापने वाले हर्ष में—हर्ष के निमित्त कृपालु हो जाने पर ही (वृषणं शवः-वावृधे) उपासक के सुखवर्षण योग्यबल को[1] बढ़ाता है, अतः (अद्य-आयवः) आज—अब उपासकजन[2] (पूर्वथा) पूर्व—पहिले उपासकों के समान उनकी परम्परा में (अस्य) इस इन्द्र—परमात्मा की (महिमानम्) महिमा की (अनुष्टुवन्ति) परम्परागत वैसी ही स्तुति करते हैं॥ २॥

---

१. ''शवः बलनाम'' [निघं० २.९]।
२. ''आयवः-मनुष्यनाम'' [निघं० २.३]।

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक)॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आ वृणे॥ १॥

पदपाठः— प्र वाम् अर्च्चन्ति उक्थिनः नीथाविदः नीथ विदः जरितारः इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति इषः आ वृणे॥ १॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी वाम् उक्थिनः नीथाविदः जरितारः प्र-अर्चन्ति इषे-आवृणे॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वाम्) तुझ दोनों रूपों वाले को (उक्थिनः) स्तुतिवाणी वाले[1] (नीथाविदः) अध्यात्मदृष्टि वेत्ता[2] (जरितारः) स्तोता उपासकजन[3] (प्र-अर्चन्ति) प्रकृष्ट अर्चित किया करते हैं, (इषे-आवृणे) अपनी कामनापूर्ति के लिये समन्तरूप से तुझे वरण करता हूँ॥ १॥

१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा॥ २॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति नवतिम् पुरः दासपत्नीः दास पत्नीः अधूनुतम् साकम् एकेन कर्मणा॥ २॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी दासपत्नीः-नवतिं-'नवतीः' पुरः एकेन कर्मणा साकं-अधूनुतम्॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (दासपत्नीः-नवतिं-'नवतीः' पुरः) उपक्षय करने वाले काम आदि को पालने वाली—उभारने वाली गतिशील[4] मनोवृत्तियों[5] को (एकेन कर्मणा साकं-अधूनुतम्) एक कर्म—साक्षात् दर्शन के साथ ही कम्पाता—नष्ट कर देता है॥ २॥

१५७७. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः। ऋतस्य पथ्या३ अनु॥ ३॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति अपसः परि उप प्र यन्ति धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु॥ ३॥

---

१. ''वागुक्थम्'' [ष० १.५] तद्वन्तः।
२. ''हनिकुशिनीरभिकाशिभ्यः कथन्'' [उणा० २.२] नीययेन स नीथ नयनम् [दयानन्दः]।
३. ''जरिता स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]। ४. ''नवते गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।
५. ''मन एव पुरः'' [श० १०.३.५.७]।

अन्वयः—इन्द्राग्नी अपसः–परि धीतयः ऋतस्य पथ्याः–अनु उप प्रयन्ति ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् (अपसः–परि) तेरे दर्शन कर्म को अधिकृत कर—लक्ष्य कर (धीतयः) प्रज्ञाएँ—अर्थात् स्तुतियाँ[1] (ऋतस्य पथ्याः–अनु) अध्यात्मयज्ञ के मार्गों के[2] अनुसार[3] (उप प्रयन्ति) तेरी ओर या तुझे प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१५७८. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च। युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ४ ॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति तविषाणि वाम् सधस्थानि सध स्थानि प्रयाꣳसि च युवोः अप्तूर्यम् अप् तूर्यम् हितम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी वाम् तविषाणि सधस्थानि प्रयांसि युवोः 'युवयोः' अप्तूर्य–हितम् ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वाम्) तेरे (तविषाणि) महान्[4]—महत्त्व वाले—महत्त्वपूर्ण (सधस्थानि) सहस्थान—सहयोग स्थान (प्रयांसि) अत्यन्त प्रिय मोक्ष सुख है (युवोः 'युवयोः') तेरे अन्दर (अप्तूर्य–हितम्) तुझे प्राप्त कर श्रेयान् हो जाना[5] मुक्त हो जाना या आप्तगति पाना[6] निहित है ॥ ४ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानतेज से जाज्वल्यमान तेजस्वी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१५७९. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

पदपाठः— शग्ध्यू३षुशचीपते ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २५३)

---

१. "पञ्चम्यः–परावध्यर्थे" [अष्टा० ८.३.५१]।
२. "ऋतस्य धीतः.....ऋतस्य प्रज्ञाः" [निरु० १०.४१]।
३. "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छ" [अष्टा० ७.१.३९] इति पथिन् शब्दात्–उभा प्रत्ययः।
४. "तविषः–महन्नाम" [निघं० ३.३], "तविषेभिः–महद्भिः" [निरु० २.२४]।
५. "असुरमिति....आप्त्वा श्रेयांसम्" [जै० १.९०]।
६. "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७.३.१.२०], "ततः–तूरी गत्याम्" [दिवादि०]।

१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः। न किर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर॥ २॥

पदपाठः— पौरः अश्वस्य पुरुकृत् पुरु कृत् गवाम् असि उत्सः उत् सः देव हिरण्ययः न किः हि दानम् परिमर्द्धिषत् परि मर्द्धिषत् त्वेइति यद्यत् यत् यत् यामि तत् आ भर॥ २॥

अन्वयः—देव अश्वस्य पौरो गवां पुरस्कृत-असि हिरण्ययः-उत्सः दानं न किः-हि परि मर्धिषत् त्वे यत्-यत्-यामि तत्-आभर॥

पदार्थः—(देव) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मदेव! तू उपासकों के (अश्वस्य पौरः) व्यापनशील मनोरूप पुर्—पुरी[1] का वासी—स्वामी है (गवां पुरस्कृत-असि) इन्द्रियों का पुरस्कर्ता—सदुपयोगदाता है (हिरण्ययः-उत्सः) अमृत[2] भरा कूँवा है[3] (दानं न किः-हि परि मर्धिषत्) तेरे दान को कोई नहीं नष्ट कर सकता या परिहृत नहीं कर सकता[4] (त्वे यत्-यत्-यामि) तेरे में तेरे पास जो जो दान देने योग्य हैं उन्हें मैं उपासक माँगता हूँ[5] (तत्-आभर) उसे आभरित कर—समन्तरूप से प्रदान कर॥ २॥

चतुर्थ द्व्यृच

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानतेज से जाज्वल्यमान तेजस्वी उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१५८१. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥ १॥

पदपाठः— त्वꣳह्येहिचेरवे॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४०)

१५८२. त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे। आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे॥ २॥

---

१. "मन एव पुरः" [श० १०.३.५.७]।

२. "अमृतं वै हिरण्यम्" [काठ० ११.४]।

३. "उत्सः कूपनाम" [निघं० ३.२३]।

४. "मर्दति वधकर्मा" [निघं० २.१९] दकारस्य धकारश्छान्दसः, अथवा मृध वधार्थे छान्दो धातुर्यस्य "मृधः संग्रामनाम" [निघं० २.१७]।

५. "यामि याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।

पदपाठः— **त्वम् पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मꣳहसे आ पुरन्दरम् पुरम् दरम् चकृम विप्रवचसः विप्र वचसः इन्द्रम् गायन्तः अवसे ॥ २ ॥**

अन्वयः—त्वम् दानाय शतानि सहस्राणि च यूथः 'यूथानि' पुरू 'पुरूणि' मंहसे पुरन्दरम् इन्द्रम् विप्रवचसः गायन्तः अवसे आचक्रम् ॥

पदार्थः—(त्वम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (दानाय) आत्मदान-आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये[1] (शतानि) सैंकड़ों (सहस्राणि) सहस्रों (च) अपितु (यूथः 'यूथानि') सब—सारे[2] (पुरू 'पुरूणि') कामनापूर्तियों को[3] (मंहसे) देता है (पुरन्दरम्) बन्धन पुर—शरीर को अपने दयादर्शन से दीर्ण-विदीर्ण—छिन्न-भिन्न करने वाले—(इन्द्रम्) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (विप्रवचसः) विशेष प्रकृष्ट स्तुतिवचन जिनका है वे (गायन्तः) गुणगान करते हुए हम उपासक (अवसे) आत्मतृप्ति के लिये[4] (आचक्रम्) अङ्गीकार करें—अपनावें या स्मरण करें[5] ॥ २ ॥

पञ्चम द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१५८३. **यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्। मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १ ॥**

पदपाठः— **योविश्वादयतेवसु ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४४)

छन्दः—बृहती ॥

१५८४. **अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः। उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अश्वम् न गीर्भिः रथ्यम् सुदानवः सु दानवः मर्मृज्यन्ते देवयवः उभेइति तोकेइति तनये दस्म विश्पते पर्षिराधो मघो नाम् ॥ २ ॥**

---

१. "यो ददाति सोऽर्यमा दानमर्यमा" [मै० २.३.६]।

२. "यूथस्य माता सर्वस्य माता" [निरु० ११.४९]।

३. "पृ पालनपूरणयोः" [जुहो०] ततः कुः प्रत्ययः [उणा० १.२३]।

४. "अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्ति..." [भ्वादि०]।

५. "आ वाक्यस्मरणयोः" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]।

अन्वयः—विश्पते दस्म रथ्यम्-अश्वं व गीर्भिः देवयवः सुदानवः मर्मृज्यन्ते उभये तोके तनये मघोनां राधः पर्षि ॥

पदार्थः—(विश्पते दस्म) हे हम उपासक प्रजाओं के पालक एवं दर्शनीय[1] (रथ्यम्-अश्वं व) रथवहन योग्य समर्थ घोड़े के समान तुझ संसारवाहक को (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (देवयवः सुदानवः) तुझ देव को चाहने वाले शोभनदान—आत्मदान—आत्मसमर्पण करने वाले उपासक (मर्मृज्यन्ते) भलीभाँति अलङ्कृत पूजित या प्राप्त किया करते हैं[2] (उभये तोके तनये) दोनों रूप पुत्र और पौत्र—पुरातन और नवीन उपासक के अन्दर (मघोनां राधः पर्षि) ज्ञानधन वाले अध्यात्म धन वाले उपासकों का जो धन हुआ करता है उसे पूरित करता[3] भरता है ॥ २ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक) ॥ देवता—वरुणः (वरनेयोग्य तथा वरनेवाला परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५८५. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥

पदपाठः— इमम् मे वरुण श्रुधि हवम् अद्य अ द्य च मृडय त्वाम् अवस्युः आ चके ॥ १ ॥

अन्वयः—वरुण मे इमं हवम् श्रुधि च अद्य मृडय अवस्युः त्वाम्-आचके ॥

पदार्थः—(वरुण) हे वरने योग्य परमात्मन्! (मे) मेरे (इमं हवम्) इस आमन्त्रण या प्रार्थना को (श्रुधि) सुन—स्वीकार कर (च) और (अद्य मृडय) आज—तुरन्त इसी जीवन में मुझे सुखी कर (अवस्युः) रक्षा चाहने वाला मैं (त्वाम्-आचके) तुझे चाहता हूँ[4] तेरी प्राप्ति एवं दर्शन की कामना करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—सुकक्षः (उत्तम अध्यात्मकक्षा वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५८६. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

---

१. ''दस दर्शने'' [चुरादि०] ततः 'मन् प्रत्ययः' [उणा० १.१४५]।
२. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।
३. ''पृ पालनपूरणयोः'' [जुहा० क्रमादि०] विकरणस्य लुक् छान्दसः।
४. ''आचके कान्तिकर्मा'' [निघं० २.६]।

पदपाठः— **कया त्वम् नः ऊत्या अभि प्र मन्दसे वृषन् कया स्तोतृभ्यः आ भर॥ २॥**

अन्वयः—वृषन् त्वम् कया-ऊत्या नः-अभिप्रमन्दसे कया स्तोतृभ्यः-आभर॥

पदार्थः—(वृषन्) हे सुखवर्षक परमात्मन्! (त्वम्) तू (कया-ऊत्या) किसी भी रक्षा विधि से (नः-अभिप्रमन्दसे) हमें प्राप्त होकर आनन्दित करता है (कया स्तोतृभ्यः-आभर) किसी भी कृपा से स्तोताओं में अपने दर्शन को आभरित करता है॥ १॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा पवित्रवृत्ति से अतनगमन—प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५८७. **इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्रमिद्देवतातये॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४९)

१५८८. **इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥ २॥**

पदपाठः— **इन्द्रः मह्ना रोदसीइति पप्रथत् शवः इन्द्रः सूर्यम् अरोचयत् इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानासः इन्दवः॥ २॥**

अन्वयः—इन्द्रः रोदसी मह्ना पप्रथत् इन्द्रः-शवः सूर्यम्-अरोचयत् इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानासः-इन्दवः॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (रोदसी) द्यावापृथिवीमय जगत्[1] को (मह्ना) अपनी महिमा—महती शक्ति से (पप्रथत्) प्रथित करता है—विविधरूप से फैलाता है (इन्द्रः-शवः सूर्यम्-अरोचयत्) परमात्मा अपने बल से[2] सूर्य को चमकाता है (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) परमात्मा के अन्दर ही उसके शासन में सब लोक-लोकान्तर नियमित गति करते हैं (इन्द्रे स्वानासः-इन्दवः) परमात्मा के अन्दर प्रथम उत्पन्न होते हुए सूक्ष्मभूत या परमाणु प्रकट हुए नियमित रहते हैं अथवा उपासनारस वाले[3] मुक्त आत्माएँ वर्तमान रहते हैं॥ २॥

---

१. ''रोदसी द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०]।

२. ''शवः-बलनाम'' [निघं० २.९] लुक्छान्दसः।

३. मतुब्लोपश्छान्दसः।

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—विश्वकर्मा भौवनः (भुवन-संसार में जन्मा हुआ सब अध्यात्मकर्म करने में समर्थ उपासक)॥ देवता—विश्वकर्मा (विश्व-जगत् जिसका कर्म है जगत् का रचयिता-जीवात्माओं का कर्मफलदाता परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१५८९. **विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वा३ स्वाहिते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥ १॥**

पदपाठः— **विश्वकर्म्मन् विश्व कर्म्मन् हविषा वावृधानः स्वयम् यजस्व तन्वम् स्वा हि ते मुह्यन्तु अन्ये अन् ये अभितः जनासः इह अस्माकम् मघवा सूरिः अस्तु॥ १॥**

अन्वयः—विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं तन्वं यजस्व स्वा हि ते अन्ये जनासः अभितः-मुह्यन्तु इह-अस्माकं मघवा सूरिः-अस्तु॥

पदार्थः—(विश्वकर्मन्) हे विश्व के कर्ता—रचयिता परमात्मन्! (हविषा वावृधानः) मुझ उपासक आत्मा के समर्पण से[1] बढ़ता हुआ या बढ़ने के हेतु (स्वयं तन्वं यजस्व) स्वयं अपने में आत्मा को सङ्गत कर (स्वा हि ते) यह आत्मा अपनी ही तेरी तनु देह है[2] (अन्ये जनासः) अन्य जन जो तेरे प्रति अपना समर्पण नहीं करते वे (अभितः-मुह्यन्तु) प्रलय में वे नितान्त मुग्ध हो जाते हैं (इह-अस्माकं मघवा सूरिः-अस्तु) इस स्थिति में हम उपासकों का प्रेरक[3] परमात्मा ही होता है॥ १॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः (पापों में न झुकने वाला स्पर्शज्ञान में अत्यन्त समर्थ)॥ देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः॥

१५९०. **अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः॥ १॥**

पदपाठः— **अयारुचाहरिण्यापुनानः॥ १॥**

---

१. ''आत्मा वै हविः'' [काठ० ८.५]।

२. ''आत्मनि तिष्ठन् यस्य आत्मा शरीरम्'' [श० १४.३०]।

३. ''सुमखस्य सूरिः-सुमहतो बलस्येरयिता'' [निरु० १२.३]।

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४६३)

१५९१. **प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता॥ २॥**

पदपाठः— **प्राचीम् अनु प्रदिशम् प्र दिशम् याति चेकितत् सम् रश्मिभिः यतते दर्शतः रथः दैव्यः दर्शतः रथः अग्मन् उक्थानि पौंस्या इन्द्रम् जैत्राय हर्षयन् वज्रः च यत् भवथः अनपच्युता अन् अपच्युता समत्सु स मत्सु अनपच्युता अन् अपच्युता॥ २॥**

अन्वयः—चेकितत् प्राचीं प्रदिशम्–अनुयाति रश्मिभिः–संयतते दर्शतः–रथः दैव्यः–दर्शतः–रथः पौंस्या–उक्थानिः–इन्द्रम्–अग्मन् जैत्राय हर्षयन् वज्रः–च यद्–भवथः अनपच्युता समत्सु–अनपच्युता॥

पदार्थः—(चेकितत् प्राचीं प्रदिशम्–अनुयाति) धारारूप में प्राप्त होनेवाला शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को चेताता हुआ उसके सामने की दिशा में अनुगत होता है—उसे सीधा साक्षात् होता है (रश्मिभिः–संयतते) अपनी ज्ञानज्योतियों के द्वारा उपासक में सङ्गत होता है—उससे मिलता है[1] वह (दर्शतः–रथः) दर्शनीय अनुभवनीय रसरूप[2] (दैव्यः–दर्शतः–रथः) वह लौकिक रस नहीं किन्तु दैव्य—देवों मुक्तों का अलौकिक अनुभवनीय रस है (पौंस्या–उक्थानिः–इन्द्रम्–अग्मन्) उपासक के बल प्रबल स्तुतिवचन उस ऐश्वर्यवान् सोम—शान्त परमात्मा के प्रति पहुँचते हैं (जैत्राय हर्षयन्) काम आदि पर विजय पाने के लिये[3] उपासक को हर्षित करता हुआ (वज्रः–च) और वज्रवान् ओजस्वी[4] (यद्–भवथः) और उपासक दोनों मिले हुए हो जाते हैं (अनपच्युता) पृथक् न होने वाले (समत्सु–अनपच्युता) कामादि से संघर्षों में सफल होते हैं॥ २॥

१५९२. **त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे। परावतो न साम तद्यत्रा**

---

१. "यतते गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।
२. "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १.२.२१]।
३. "जि जये" [भ्वादि०] ततः–त्रण् बाहुलकादौणादिकः।
४. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०], मतुब्लोपश्छान्दसः।

रणन्ति धीतयः। त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे॥ ३॥

पदपाठः— **त्वम् ह त्यत् पनीनाम् विदः वसु सम् मातृभिः मर्जयसि स्वे आ दमे ऋतस्य धीतिभिः दमे परावतः न साम तत् यत्र रणन्ति धीतयः त्रिधातुभिः त्रि धातुभिः अरुषीभिः वयः दधे रोचमानः वयः दधे॥ ३॥**

अन्वयः—त्वं ह पणीनाम् त्यत्–वसु विदः 'अविदः' स्वे दमे मातृभिः–आ सम्मर्जयति ऋतस्य धीतिभिः–दमे यत्र धीतयः परावतः–न सामारणन्ति अरुषीभिः–त्रिधातुभिः आरोचमानः–वयः–दधे वयः–दधे॥

पदार्थः—(त्वं ह) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू निश्चय[1] (पणीनाम्) अर्चना—स्तुति करने वालों के[2] योग्य दातव्य (त्यत्–वसु) उस अध्यात्म धन को (विदः 'अविदः') प्राप्त कराता है (स्वे दमे मातृभिः–आ सम्मर्जयति) उसके अपने हृदय स्थान में प्राप्त हो अध्यात्म जीवन निर्माण करने वाली[3] आनन्द धाराओं द्वारा अलङ्कृत करता है[4] (ऋतस्य धीतिभिः–दमे) अध्यात्मयज्ञ की प्रज्ञाओं से[5] उनके हृदयगृह में (यत्र) जहाँ (धीतयः) प्रज्ञाएँ (परावतः–न) उपासकों से प्रेरणा प्राप्त की हुई[6] (सामारणन्ति) सन्तोष–सान्त्वना को[7] गाती हैं[8] (अरुषीभिः–त्रिधातुभिः) प्रसिद्ध हुई तीन धारणा, ध्यान, समाधियों द्वारा[9] (आरोचमानः–वयः–दधे) साक्षात् हुआ परमात्मा अध्यात्म अवस्था को धारण करता है (वयः–दधे) हाँ, अध्यात्मजीवन—मुक्तजीवन धारण कराता है॥ ३॥

तृतीय खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने लिये धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—पूषा (पोषणकर्ता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५९३. **उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत्कृणुह्यूतये॥ १॥**

---

१. "ह निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]।
२. "पणते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४], "पण् स्तुतौ" [भ्वादिः]।
३. "मातरो निर्मात्र्यः" [निरु० १२.७]। ४. "मृजू शौचालङ्करणयोः" [चुरादि०]।
५. "धीतिः प्रज्ञा" [निरु० १०.४१]। ६. "परावतः प्रेरितवतः" [निरु० ११.४८]।
७. "अरुषीः–आरोचनाः" [निघं० १२.७]। ८. "साम सान्त्वप्रयोगे" [चुरादि०]।
९. "रण शब्दे" [भ्वादि०]।

पदपाठः— **उत नः गोषणिम् गो सनिम् धियम् अश्वसाम् अश्व साम वाजसाम् वाज साम् उत नृवत् कृणुहि ऊतये ॥ १ ॥**

अन्वयः—उत नः-ऊतये नृवत्: गोषणिम् अश्वसाम् उत वाजसाम् धियं कृणुहि ॥

पदार्थः—(उत नः-ऊतये) हे पोषणकर्ता परमात्मा! तू ही हम उपासकों की तृप्ति[1] शान्ति के लिये (नृवत्:) जीवन्मुक्तों जैसी[2] (गोषणिम्) स्तुतिवाणी की सम्भाजिका—परमात्मा की स्तुति कराने वाली (अश्वसाम्) परमात्मा में व्यापनशील मन की सम्भाजिका—(उत वाजसाम्) और मोक्षामृत अन्नभोग की सम्भाजिका—(धियं कृणुहि) प्रज्ञा[3] प्रकृष्ट ज्ञानदृष्टि बना दे—प्रदान कर ॥ १ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में विशेष गतिशील उपासक)॥ देवता—मरुतः (वासनाओं को मार देने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५९४. शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः॥ १ ॥

पदपाठः— **शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः सत्य शवसः विद कामम्य वेनतः॥ १ ॥**

अन्वयः—सत्यशवसः-नरः शशमानस्य वा स्वेदस्य वेनतः कामस्य 'कामम्' विद॥

पदार्थः—(सत्यशवसः-नरः) हे सत्यबल वाले नायक उन्नत पथ पर ले जाने वाले वासनाओं को मारने वाले परमात्मन्![4] तू (शशमानस्य) शंसमान—प्रशंसा करने वाले—स्तुति करने वाले[5] के (वा) और[6] (स्वेदस्य) तुझ से स्नेह करने वाले[7]—अनुरक्त श्रद्धावान् के (वेनतः) तेरे दर्शन की कामना करने वाले

---

१. ''अव रक्षणगतिकान्तितृप्ति........'' [भ्वादि०] अवधातोः तिप्रत्ययो निपात्यते तृप्तिरर्थश्चेष्येते।

२. ''नरो ह वै देवविशः'' [जै० १.८९]।

३. ''धीः प्रज्ञाननाम'' [निघं० ३.९]।

४. बहुवचनं पूजार्थम्।

५. ''शशमानः शंसमानः'' [निरु० ६.८], ''शंसु स्तुतौ'' [भ्वादि०], ताच्छीलिके चानशि शशभावः।

६. ''वा अथापि समुच्चयार्थे'' [निरु० १.५]।

७. ''ष्विदा स्नेहने'' [भ्वादि०]।

उपासक[1] के (कामस्य 'कामम्' विद) काम—कमनीय स्वदर्शन एवं मोक्षानन्द को[2] प्राप्त करा ॥ १ ॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—ऋजिश्वाः (ऋजुगामी उपासक)॥ देवता—विश्वेदेवाः (समस्त दिव्यगुण वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५९५. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥

पदपाठः— उप नः सूनवः गिरः शृण्वन्तु अमृतस्य अ मृतस्य ये सुमृडीकाः सु मृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥

अन्वयः—ये अमृतस्य सूनवः नः-गिरः उप शृण्वन्तु नः सुमृडीकाः-भवन्तु ॥

पदार्थः—(ये) जो (अमृतस्य सूनवः) अमृत सुख को उत्पन्न करने वाला परमात्मा है[3] (नः-गिरः) हम उपासकों की स्तुतियों को (उप शृण्वन्तु) समीप से सुने (नः) हमारा (सुमृडीकाः-भवन्तु) आ सुखकारक हो ॥ १ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ[4] (प्रकाशस्वरूप और आधार परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१५९६. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥

पदपाठः— प्र वाम् महि द्यवीइति अभि उपस्तुतिम् उप स्तुतिम् भरामहे शुचीइति उप प्रशस्तये प्र शस्तये ॥ १ ॥

अन्वयः—द्यवी शुची वाम्-अभि उपस्तुतिं प्र भरामहे प्रशस्तये-उप ॥

पदार्थः—(द्यवी शुची वाम्-अभि) हे द्योतमान—अध्यात्मदृष्टि से प्रकाशमान और पवित्र प्रजापति—पिता और माता परमात्मन्! तुझे लक्ष्य कर (उपस्तुतिं प्र भरामहे) समीपी स्तुति समर्पित करते हैं (प्रशस्तये-उप) गुणगान करने के लिये पास जाते हैं ॥ १ ॥

---

१. "वेनति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६]। २. द्वितीयास्थाने षष्ठी व्यत्ययेन।

३. "बहुवचनं पूर्ववदादरार्थम्"।

४. "द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः" [श० ५.१.५.२६], "द्यौर्मे पिता......माता पृथिवी महीयम्" [ऋग्वेद], "तृतीये मन्त्रे महीपाठाद् गम्यते द्यावापृथिव्यौ देवते" "मही द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.३०]।

१५९७. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। ऊह्याथे सनादृतम्॥ २॥

पदपाठः— पुनानेइति तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ऊह्याथेइति सनात् ऋतम्॥ २॥

अन्वयः—तन्वा मिथः पुनाने स्वेन दक्षेण राजथः सनात्-ऋतम्-ऊह्याथे॥

पदार्थः—(तन्वा मिथः पुनाने) हे परमात्मन्! तू संसार का प्रकाशक और धारक साथ ही (स्वेन दक्षेण राजथः) अपने बल से स्वामित्व करता है (सनात्-ऋतम्-ऊह्याथे) सदा से ब्राह्मण[1] उपासकजन को मोक्ष की ओर पहुँचाता है॥ २॥

१५९८. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। परि यज्ञं नि षेदथुः॥ ३॥

पदपाठः— महीइति मित्रस्य मि त्रस्य साधथः तरन्तीइति पिप्रतीइति ऋतम् परि यज्ञम् नि सेदथुः॥ ३॥

अन्वयः—मही मित्रस्य साधथः ऋतं तरन्ती पिप्रती यज्ञं परिनिषेदथुः॥

पदार्थः—(मही) हे प्रकाशमान और आधाररूप परमात्मन्! तू (मित्रस्य साधथः) स्नेही उपासक का अभीष्ट साधता है (ऋतं तरन्ती पिप्रती) ब्राह्मण उपासक को संसार सागर से तराता है और पालन करता है (यज्ञं परिनिषेदथुः) सङ्गतिकर्ता उपासक को परिप्राप्त होता है॥ ३॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१५९९. अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे॥ १॥

पदपाठः— अयमुतेसमतसि॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १८३)

१६००. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता॥ २॥

---

१. ''ब्राह्मणः-ऋतम्'' [मै० ५.८.७]।

पदपाठः— **स्तोत्रम् राधानाम् पते गिर्वाहः वीर यस्य ते विभूतिः वि भूतिः अस्तु सूनृता सु नृता ॥ २ ॥**

अन्वयः—राधानां पते वीर गिर्वाहः यस्य ते स्तोत्रम् विभूतिः-सूनृता-अस्तु ॥

पदार्थः—(राधानां पते) हे सिद्धियों के स्वामिन्! ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वीर) विरोधी शक्तियों पर पराक्रम करने वाले (गिर्वाहः) स्तुतियों द्वारा उपासक को वहन करने वाले (यस्य ते स्तोत्रम्) जिस तेरा स्तुतिवचन हम करते हैं, हमारे लिये (विभूतिः-सूनृता-अस्तु) तेरी विभूति—वैभवमय सत्ता कल्याणकारी हो ॥ २ ॥

१६०१. **ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **ऊर्ध्वः तिष्ठ नः उतये अस्मिन् वाजे शतक्रतो शत क्रतो सम् अन्येषु अन् येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥**

अन्वयः—शतक्रतो नः-ऊतये अस्मिन्-वाजे ऊर्ध्वः-तिष्ठ (समन्येषु) ब्रवावहै ॥

पदार्थः—(शतक्रतो) हे बहुत प्रज्ञान कर्म वाले परमात्मन्! तू (नः-ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अस्मिन्-वाजे) इस काम क्रोधादि संघर्ष में[1] (ऊर्ध्वः-तिष्ठ) हमारे ऊपर विराजमान रह (समन्येषु) (ब्रवावहै) यह सम्यक् प्रार्थना करता हूँ[2] ॥ ३ ॥

षष्ठ तृच

ऋषिः—हर्यतः प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा-उत्तम स्तुति में कुशल कान्तिमान् उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६०२. **गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥**

पदपाठः— **गावउपवदावटे ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११७)

१६०३. **अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अभ्यारम् अभि आरम् इत् अद्रयः अ द्रयः निषिक्तम् नि सिक्तम् पुष्करे मधु अवटस्य विसर्जने वि सर्जने ॥ २ ॥**

---

१. "वाजः संग्रामनाम" [निघं० २.१७]।

२. व्यत्ययेन द्विवचनं छान्दसम्।

अन्वयः—अद्रयः–'अद्रिभिः' अभ्यारम्–इत् विसर्जने–अवटस्य 'अवटे' पुष्करे मधु निषिक्तम्॥

पदार्थः—(अद्रयः–'अद्रिभिः') स्तुतिकर्ता उपासकजनों[1] ने[2] (अभ्यारम्–इत्) समन्तरूप से रमणस्थान लक्ष्य कर (विसर्जने–अवटस्य 'अवटे' पुष्करे) सृष्टि विसर्जन करने वाले[3] सृष्टि रचयिता रक्षण स्थान पूजनीय[4] परमात्मा में (मधु निषिक्तम्) अपने आत्मा को[5] नियतरूप से सींच दिया—समर्पित कर दिया॥ २॥

१६०४. सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
नीचीनवारमक्षितम्॥ ३॥

पदपाठः— **सिञ्चन्ति नमसा अवटम् उच्चाचक्रम् उच्चा चक्रम् परिज्मानम् परि ज्मानम् नीचीनवारम् नीचीन वारम् अक्षितम् अ क्षितम्॥ ३॥**

अन्वयः—अक्षितम् उच्चाचक्रम् परिज्मानम् नीचीनवारम् नमसा सिञ्चति॥

पदार्थः—(अक्षितम्) क्षयरहित—अविनाशी—(उच्चाचक्रम्) उच्च सर्वोच्च तृप्तिकर्ता[6] (परिज्मानम्) सर्वत्र परिप्राप्त—व्याप्त[7] (नीचीनवारम्) नीचे हम उपासकों की ओर द्वार वाले[8] प्रवृत्त होने वाले आनन्दस्रोत परमात्मा को (नमसा सिञ्चति) उपासकजन नमस्कारों—नम्र स्तुतियों से अपने आत्मा को समर्पित करते हैं॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्मदेव में अतन-प्रवेश करने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—प्रगाथः (विषमा बृहती)॥

१६०५. मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव। महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥ १॥

---

१. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [काठ० १.५]।
२. ''अद्रिभिः तृतीयास्थाने प्रथमा सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम् छन्दसि।''
३. विपूर्वकसृजधातोः कर्तरि ल्युप्रत्ययश्छान्दसः विभक्तिव्यत्ययश्च।
४. ''पुष्करं पूजाकरं पूजनीयम्'' [निरु० ५.१४]।
५. ''आत्मा वै पुरुषस्य मधु'' [तै० सं० २.३.३.९]।
६. ''चक्रं चकतेः'' [निरु० ४.२७], ''चक तृप्तौ'' [भ्वादि०], ततो रक् [उणादि०]।
७. ''परिज्मा'' [उणादि०], परिपूर्वात् जू गतौ [भ्वादि०] वकारस्थ मकारश्छान्दसः।
८. ''नीचीनवारं निचीनद्वारम्'' [निरु० १०.५]।

पदपाठः— मा भेम मा श्रविष्म उग्रस्य सख्ये स ख्ये तव महत् ते वृष्णः अभिचक्ष्यम् अभि चक्ष्यम् कृतम् पश्येम तुर्वशम् यदुम्॥ १ ॥

अन्वयः—तव-उग्रस्य-वृष्णः सख्ये मा भेम मा श्रमिष्म ते कृतम् महत्-अभि चक्ष्यम् तुर्वशं यदुं पश्येम ॥

पदार्थः—(तव-उग्रस्य-वृष्णः) तुझ प्रतापी सुखवर्षक ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (सख्ये) सखित्व—मित्रता में (मा भेम) हम न भय करें—किसी भी भयप्रद या भयावह से दुःख न पा सकें (मा श्रमिष्म) न स्वयं हम खेद को प्राप्त करें—न खिन्न[1] हो सकें यह निश्चित है (ते) तेरा (कृतम्) सखिकार्य—मित्रत्व का कार्य (महत्-अभि चक्ष्यम्) महान् सर्वथा प्रशंसनीय—स्तुत्य है[2] जिसे हम (तुर्वशं यदुं पश्येम) समीप[3] देखते हैं—जो सूँघने को नासिका, स्वाद लेने को जिह्वा, रूप दर्शन के लिये नेत्र, स्पर्श करने को त्वचा, शब्द सुनने को कान—भोग साधन और भोग दिया है तथा दूसरा कार्य मित्रता का है अपवर्ग—मोक्षप्रदान करना जो दूर का है—इस लोक का नहीं (तुर्वश) समीप की तुलना से दूर का कार्य हुआ अपवर्ग—मोक्ष प्रदान कार्य 'तुर्वश' तुरन्त वश में होने वाला—मिलने वाला जो[4] 'यदुम्' यजनीय—सङ्गमनीय कहा जा सकता है[5] ॥ १ ॥

१६०९. सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति। मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥

पदपाठः— सव्याम् अनु स्फिग्यम् वावसे वृषा न दानः अस्य रोषति मध्वा सम्पृक्ताः सम् पृक्ताः सारघेण धेनवः तूयम् आ इहि द्रव पिब ॥ २ ॥

अन्वयः—वृषा सव्यां स्फिग्यम्-अनु वावसे दानः-अस्य न रोषति सारघेण मध्वा सम्पृक्ताः-धेनवः तूयम्-एहि द्रव पिब ॥

पदार्थः—(वृषा) सुखवर्षक परमात्मा (सव्यां स्फिग्यम्-अनु वावसे) वाम

---

१. ''श्रमु तपसि खेदे च'' [दिवादि०]।
२. ''चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि'' [अदादि०]।
३. ''तुर्वशः-अन्तिकनाम'' [निघं० २.१६]।
४. ''तुर त्वरणे'' [जुवो०] ततः क्विप्।
५. ''त्यजितनियजिभ्यो जित्-अदिः'' [उणादि १.१३२], ''दद्-ततः-उङ्'' ''शब्दे'' [भ्वादि०] जयनीयं च वक्तव्यं च कर्मणि क्विप् छान्दसः।

जङ्घा के साथ सारे संसार को आच्छादित करता है परमात्मा की विभुता के सम्मुख एकदेशी तुच्छ है पाद मात्र सो भी वाम पाद मात्र है[१] (दानः-अस्य न रोषति) इसका खण्डयिता—खण्डन करने वाला[२] नास्तिकजन उसे हिंसित नहीं कर सकता किन्तु अपनी हिंसा है—बार बार जन्म लेकर मृत्यु का ग्रास बनता है (सारघेण मध्वा सम्पृक्ताः-धेनवः) ब्राह्मणों—ब्रह्मवेत्ता उपासकों के[३] आत्मा[४] से सम्पृक्त—सङ्गत हुई स्तुति वाणियाँ[५] समर्पित की जा रही हैं उनके रस को पान करने (तूयम्-एहि) शीघ्र आ (द्रव पिब) हम उपासकों के प्रति द्रवित हों—पास आ और पान कर स्वीकार कर ॥ २ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से गति प्रवेश करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—बृहती ॥

१६०७. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

पदपाठः— इमाउत्वापुरूवसो ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २५०)

१६०८. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

पदपाठः— अयम् सहस्रम् ऋषिभिः सहस्कृतः सहः कृतः समुद्रः सम् उद्रः इव पप्रथे सत्यः सः अस्य महिमा गृणे शवः यज्ञेषु विप्रराज्ये विप्र राज्ये ॥ २ ॥

अन्वयः—अयम् सहस्रम्-ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रः-इव पप्रथे अस्य सः सत्यः-महिमा विप्रराज्ये यज्ञेषु शवः-गृणे ॥

पदार्थः—(अयम्) यह इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सहस्रम्-ऋषिभिः) सब[६] ऋषियों अमृत उपासकों द्वारा (सहस्कृतः) आत्मबल से साक्षात् किया हुआ

---

१. ''पादौ अस्य विश्वा भूतानि'' [ऋ० १०.९०.३], ''तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्'' [ऋ० १०.१]।
२. ''दो अवखण्डने'' [दिवादि०]।
३. ''ब्राह्मणाः सरघाः'' [जै० २.३९६]।
४. ''आत्मा वै पुरुषस्य मधु'' [तै० सं० २.३.२.९]।
५. ''धेनुः वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।
६. ''सर्वं वै सहस्रम्'' [श० ४.६.१.१५]।

(समुद्रः-इव पप्रथे) उनके अन्दर समुद्र के समान विस्तृत हो गया (अस्य सः सत्यः-महिमा) इसका यह यथार्थ स्थिर महत्त्व है (विप्रराज्ये) स्तुतिकर्ताजनों के धर्म में[1] वर्तमान (यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञ में—योगाङ्गों में उसके (शवः-गृणे) बलगुणों की मैं प्रशंसा करूँ—करता हूँ॥ २॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—पुष्टिगुः (पुष्टि-आत्मपुष्टि-आत्मसमृद्धि के लिये स्तुति जिसकी है ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१६०९. **यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः॥ १॥**

पदपाठः— **यस्य अयम् विश्वः आर्यः दासः शेवधिपाः शेवधि पाः अरिः तिरः चित् अर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्य इत् सः अज्यते रयिः॥ १॥**

अन्वयः—यस्य अयं विश्वः आर्यः दासः शेवधिपाः अरिः तिरश्चित् रुशमे पवीरवि तुभ्य-'त्वयि' अर्ये इत् रयिः-अज्यते॥

पदार्थः—(यस्य) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा का (अयं विश्वः) यह सब (आर्यः) अर्य—जगत्स्वामी[2] जगदीश परमात्मा का ज्ञाता ब्राह्मण (दासः) भृत्य कर्म कर्ता शूद्र (शेवधिपाः) धनकोष का रक्षक वैश्य (अरिः) शस्त्र प्रहारकर्ता—दण्डदाता क्षत्रियजन (तिरश्चित्) छिपकर वन में रहने वाला निषाद—वनवासी भी[3] (रुशमे पवीरवि तुभ्यं-'त्वयि' अर्ये इत्) रोचमान[4] शस्त्रधारी[5] तुझ सर्वस्वामी परमात्मा के निमित्त ही (रयिः-अज्यते) आत्मदान स्तुतिप्रदान समर्पित करता है[6] वह तू उपास्य देव है॥ १॥

१६१०. **तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः। अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः॥ २॥**

---

१. ''राज्यं वै धर्मः'' [जै० ३.२३१]।
२. ''अर्यः स्वामिवैश्ययोः'' [अष्टा० ३.१]।
३. ''तिरोऽन्तर्धौ'' [अष्टा० १.४.७०]।
४. ''रुशत्-वर्णनाम रोचते र्ज्वलतिकर्माः'' [निरु० ३.१३]।
५. ''पविः शल्यो भवति.....तद्वत् पवीरमायुधं तद्वान्-इन्द्रः'' [निरु० १२.३०]।
६. कर्तरि कर्मप्रत्ययो व्यत्ययेन।

पदपाठः— **तुरण्यवः मधुमन्तम् घृतश्चुतम् घृत श्चुतम् विप्रासः वि प्रासः अर्कम् आनृचुः अस्मेइति रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवः अस्मेइति स्वानासः इन्दवः॥ २॥**

अन्वयः—तुरण्यवः विप्रासः मधुमन्तम् घृतश्चुतम् अर्कम् आनृचुः अस्मे रयिः-वृष्ण्यं शवः पप्रथे अस्मे स्वानासः-इन्दवः॥

पदार्थः—(तुरण्यवः) तीव्र संवेगी (विप्रासः) उपासक विद्वान् (मधुमन्तम्) आनन्द रसवान्—(घृतश्चुतम्) तेज प्रसारक—(अर्कम्) अर्चनीयदेव[1] इन्द्र परमात्मा को (आनृचुः) अर्चित करते हैं (अस्मे रयिः-वृष्ण्यं शवः पप्रथे) हमारे अन्दर अध्यात्म धर्मसुख वर्षण योग्य और अध्यात्मबल प्रथित हो (अस्मे स्वानासः-इन्दवः) हमारे अन्दर परमात्मा के प्रति उपासनारस प्रथित हो॥ २॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—अत्यन्त तृप्तिमान् और नर विषयक ज्ञानदाता)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१६११. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव। शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय॥ १॥

पदपाठः— **गोमन्नइन्दोअश्ववत्॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५७४)

१६१२. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः। सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव॥ २॥

पदपाठः— **सः नः हरीणाम् पते इन्दो देवप्सरस्तमः देव प्सरस्तमः सखा स खा इव सख्ये स ख्ये नर्यः रुचे भव॥ २॥**

अन्वयः—इन्दो सः देवप्सरस्तमः नः-हरीणां पते सख्ये सखा-इव नर्यः-रुचे भव॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! (सः) वह तू (देवप्सरस्तमः) मुमुक्षुओं का अत्यन्त दर्शनीयरूप[2] (नः-हरीणां पते) हम उपासकजनों[3] के पालक! (सख्ये सखा-इव) मित्र के लिये मित्र के समान (नर्यः-रुचे भव) हम मुमुक्षुओं का[4] हितकर तू अमृतत्व के लिये हो॥ २॥

---

१. "अर्को देवो यदेनमर्चन्ति" [निरु० ५.४]। २. "प्सरः-रूपनाम" [निघं० ३.७]। ३. "हरयः-मनुष्यनाम" [निघं० २.३]। ४. "अमृतत्वं वै रुक्" [श० ९.४.३.१४]।

१६१३. **सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम्। साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम्॥ ३॥**

पदपाठः— **सनेमि त्वम् अस्मत् आ अदेवम् अ देवम् कम् चित् अत्रिणम् साह्वान् इन्दो परि बाधः अप द्वयुम्॥ ३॥**

अन्वयः—इन्दो त्वम् अस्मत् सनेमि आ अदेवम्–कंचित्–अत्रिणं साह्वान् बाधः परि द्वयुम्–अप॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! (त्वम्) तू (अस्मत्) हमारा[1] (सनेमि) पुराना साथी—मित्र है[2] (आ) और[3] (अदेवम्–कंचित्–अत्रिणं साह्वान्) तुझे अपना देव न मानने वाले किसी भी नास्तिक विचार को तथा पाप को[4] अभिभव करने वाला—हटाने वाला—तिरस्कृत करने वाला है (बाधः परि) बाधाओं—बाधक विघ्नों को 'परिवर्जय' परे हटा[5] (द्वयुम्–अप) द्विधा—संशय या मन में कुछ आचरण में कुछ ऐसे दोष को 'अप गमय' पृथक् कर दे॥ ३॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अत्रिः (अत्र—इस जन्म में ही तृतीय धाम को प्राप्त करनेवाला)॥
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)॥
छन्दः—जगती॥

१६१४. **अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥ १॥**

पदपाठः— **अञ्जतेव्यञ्जतेसमञ्जते॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५६४)

१६१५. **विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा हरिः॥ २॥**

---

१. ''सुपां सुलुक्.....'' [अष्टा० ७.१.३९] इति, षष्टीविभक्तेर्लुक्।
२. ''सनेमि पुराणनाम'' [निघं० ३.२७]।
३. ''एतस्मिन्नेवार्थे 'समुच्चये' आकारः'' [निरु० १.४]।
४. ''पाप्मानोऽत्रिणः'' [ष० ३.१]।
५. ''अपपरी वर्जने'' [अष्टा० १.४], ''परिवर्जने अपवर्जने'' [अव्ययार्थनिबधनम्]।

पदपाठः— **विपश्चिते विपः चिते पवमानाय गायत मही न धारा अति अन्धः अर्षति अहिः न जूर्णाम् अति सर्पति त्वचम् अत्यः न क्रीडन् असरत् वृषा हरिः ॥ २ ॥**

अन्वयः— विपश्चिते पवमानाय गायत अन्धः-मही न धारा-अति-अर्षति अहिः-न जूर्णां त्वचम्-अति-सर्पति वृषा हरिः अत्यः-न क्रीडन्-असरत् ॥

पदार्थः— (विपश्चिते पवमानाय गायत) उपासकजनो! सर्वज्ञ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा का स्तुतिगान करो (अन्धः-मही न धारा-अति-अर्षति) जो अध्यानीय[1] ध्यान में आया हुआ वृष्टिधारा के समान अपनी आनन्दधारारूप में बरसता है (अहिः-न जुर्णां त्वचम्-अति-सर्पति) सर्प जैसे जीर्ण त्वचा को छोड़ देता है ऐसे उपासक की पुरातन वासना को अति सर्पित करता है—निकाल देता है (वृषा हरिः) सुखवर्षक दुःखहर्ता परमात्मा (अत्यः-न क्रीडन्-असरत्) घोड़ा जैसे[2] क्रीड़ा करता हुआ अच्छी गति करता हुआ आगे बढ़ता है ऐसे परमात्मा स्वभावतः रमण करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१६१६. **अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः। हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अग्रेगः अग्रे गः राजा अप्यः तविष्यते विमानः वि मानः अह्नाम् अ ह्नाम् भुवनेषु अर्पितः हरिः घृतस्नुः घृत स्नुः सुदृशीकः सु दृशीकः अर्णवः ज्योती रथः ज्योतिः रथः पवते रायः ओक्यः ॥ ३ ॥**

अन्वयः— अग्रेगः राजा अप्यः भुवनेषु-अर्पितः अह्नां विमानः तविष्यते हरिः घृतस्नुः सुदृशीकः अर्णवः ज्योतिः-रथः ओक्यः राये-पवते ॥

पदार्थः— (अग्रेगः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को आगे ले जाने वाला (राजा) राजमान—प्रकाशमान (अप्यः) आप्तजनों का[3] हितकर (भुवनेषु-अर्पितः) लोकों में[4] प्राप्त (अह्नां विमानः) उनके दिनों—दिनमानों का व्यवस्थापक (तविष्यते) महत्त्व को प्राप्त करता है[5] (हरिः) दुःखहर्ता (घृतस्नुः) तेज का सर्जनकर्ता

---

१. ''अन्धः-आध्यानीयो भवति'' [निरु० ५.१]।

२. ''अत्यः-अश्वनाम'' [निघं० १.१४]।

३. ''मनुष्या वा आपश्चन्द्राः'' [श० ७.३.१.२०]।

४. ''इमे वै लोका भुवनम्'' [काठ० १.४०.७]।

५. ''तविषः-महन्नाम'' [निघं० ३.३]।

(सुदृशीकः) सुदर्शनीय (अर्णवः) प्राणस्वरूप[1] (ज्योतिः-रथः) ज्योति का रमणस्थान—ज्योतिर्मयः (ओक्यः) समवेत—सङ्गतियोग्य—आश्रयणीय (राये-पवते) ज्ञानानन्द धन देने के लिये प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१. ''प्राणो वा अर्णवः'' [श० ७.५.२.५१]।

अथ सप्तदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो॥ १॥

पदपाठः— विश्वेभिः अग्ने अग्निभिः इमम् यज्ञम् इदम् वचः चनः धाः सहसः यहो॥ १॥

अन्वयः—अग्ने विश्वेभिः–अग्निभिः इमं यज्ञम्–इदं वचः सहसः–यहो चनः–धाः ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (विश्वेभिः–अग्निभिः) सभी ब्राह्मणों[1] ब्रह्मज्ञाता उपासकों द्वारा उपासित हुआ उपासना में लाया—ध्याया हुआ (इमं यज्ञम्–इदं वचः) हमारे अध्यात्मयज्ञ की प्रार्थना को स्वीकार कर (सहसः–यहो) योगाभ्यास बल से प्राप्तव्य और दातव्य—आमन्त्रणीय[2] परमात्मन्! तू (चनः–धाः) पूज्य अमृत अन्न धारण करा॥ १॥

१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः॥ २॥

पदपाठः— यत् चित् हि शश्वता तना देवन्देवम् देवम् देवम् यजामहे त्वेइति इत् हूयते हविः॥ २॥

अन्वयः—यत्–चित्–हि शश्वतातना–'तनयाः' देवं देवम् यजामहे त्वे–इत्–हविः–हूयते ॥

पदार्थः—(यत्–चित्–हि) हे अग्ने अग्रणेता परमात्मन्! यद्यपि (शश्वतातना–'तनयाः') बहुत—अनेक श्रद्धा[3] अनेक प्रकार श्रद्धा—इच्छा भावना से (देवं देवम्)

---

१. "अग्निर्वै ब्राह्मणः" [६.६]।

२. "यह्वः–यातश्च हूतश्च भवति" [निरु० ८.८]।

३. "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०]।

इन्द्र मित्र वरुण आदि देव को—इन्द्र मित्र वरुण नाम से कहे जाने वाले देव को (यजामहे) पूजते हैं—उन उनकी स्तुति करते हैं परन्तु (त्वे-इत्-हविः-हूयते) तेरे अन्दर ही आत्मा[१] समर्पित किया जाता है—आत्मसमर्पण किया जाता है कारण कि अग्नि नाम से परमात्मा सब देवता है[२] तथा अन्य इन्द्र मित्र वरुण देव नाम अग्निनामक परमात्मा के ही हैं[३] ॥ २ ॥

१६१९. **प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **प्रियः नः अस्तु विश्पतिः होता मन्द्रः वरेण्यः प्रियाः स्वग्नयः सु अग्नयः वयम् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—विश्पतिः होता वरेण्यः मन्द्रः नः वयम् स्वग्नयः प्रियाः ॥

पदार्थः—(विश्पतिः) प्रजापालक (होता) दाता (वरेण्यः) वरने योग्य (मन्द्रः) हर्षकारक अग्रणेता परमात्मा (नः) हमारा प्रिय हो (वयम्) और हम (स्वग्नयः) अग्रणायक परमात्मा के सु स्तुति क्रिया करने वाले (प्रियाः) उसके प्रिय हो जावें ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६२०. **इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **इन्द्रम् वः विश्वतः परि हवामहे जनेभ्यः अस्माकम् अस्तु केवलः ॥ १ ॥**

अन्वयः—वः-जनेभ्यः परि इन्द्रम् विश्वतः-हवामहे केवलः-अस्माकम्-अस्तु ॥

पदार्थः—(वः-जनेभ्यः) तुम जनों—साधारण जनों के—अनुपासकों के लिये (परि) पर्याप्त—बस भोग वस्तु द्वारा परिपालक है, परन्तु हम (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (विश्वतः-हवामहे) सर्व प्रकार से अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं—उपासनार्थ आमन्त्रित करते हैं (केवलः-अस्माकम्-अस्तु) बस वह

---

१. "आत्मा वै हविः" [काठ० ८.५]।

२. "अग्निः सर्वा देवताः" [सं० ६.३]।

३. "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो स दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥" [ऋ० १.१६४.४६]।

हमारा इस रूप से सर्वथा सहायक हो ॥ १ ॥

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

पदपाठः— सः नः वृषन् अमुम् चरुम् सत्रादावन् सत्रा दावन् अप वृधि अस्मभ्यम् अप्रतिष्कुतः अ प्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

अन्वयः—सः सत्रादावन् नः वृषन् अमुं चरुम् अपावृधि अस्मभ्यम् अप्रतिष्कुतः ॥

पदार्थः—(सः) वह तू (सत्रादावन्) हे सब कुछ भोग पदार्थ देने वाले परमात्मन्![1] (नः) हम उपासकों के लिये (वृषन्) अमृतवर्षक (अमुं चरुम्) उस अपवर्ग—मोक्षरूप अमृतभरे पात्र को (अपावृधि) खोल दे, आशा है तू ऐसा करेगा, कारण कि तू (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिये (अप्रतिष्कुतः) अस्खलित है—अविचलित है तथा किसी भी प्रकार प्रतीकार करने योग्य नहीं है[2] ॥ २ ॥

१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥

पदपाठः— वृषा यूथा इव वंसगः कृष्टीः इयर्त्ति ओजसा ईशानः अप्रतिष्कुतः अ प्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥

अन्वयः—वृषा यूथा-इव अप्रतिष्कुतः-ईशानः वंसगाः-कृष्टीः ओजसा-इयर्ति ॥

पदार्थः—(वृषा यूथा-इव) गौओं के समूह में साण्ड की भाँति (अप्रतिष्कुतः-ईशानः) प्रतिरोधन करने वाला—अपनाने वाला परमात्मा (वंसगाः-कृष्टीः) सम्भजन को प्राप्त मनुष्यों[3] अर्थात् उपासकजनों को (ओजसा-इयर्ति) आत्मतेज से आत्मभाव से—अपनेपन से प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—तृणपाणिः शंयुः (तृणसमान तुच्छ भेंट हाथ में जिसके है ऐसा समित्पाणि के जैसा, शम्-कल्याणकारी परमात्मा का इच्छुक उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

---

१. ''सर्व वै सत्रम्'' [श० ४.६.१.१५], 'सत्र संत्रा' ''अन्येषामपि दृश्यते'' [अष्टा० ६.३.१३५] इति दीर्घः।

२. ''अप्रतिष्कुतोऽप्रतिष्कृतोऽप्रतिस्खलितो वा'' [निरु० ६.१६]।

३. ''कृष्टयः-मनुष्यनाम'' [निघं० २.३]।

१६२३. **त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय । अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वन्नश्चित्रऊत्या ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४१)

१६२४. **पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः । अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ २ ॥**

पदपाठः— **पर्षि तोकम् तनयम् पर्तृभिः त्वम् अदब्धैः अ दब्धैः अप्रयुत्वभिः अ प्रयुत्वभिः अग्ने हेडाᳬसि दैव्या युयोधि नः अदेवानि अ देवानि ह्वराᳬसि च ॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्ने अदब्धैः-अप्रयुत्वभिः पर्तृभिः तोकं तनयं पर्षि दैव्या हेडांसि च अदेवानि ह्वरांसि नः-युयोधि ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मन्! तू (अदब्धैः-अप्रयुत्वभिः) दबाए न जानेवाले—अबाधित—पृथक् न होनेवाले—सदा साथ रहनेवाले—(पर्तृभिः) पालन करनेवाले गुणों से (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र पौत्ररूप उपासकों का तू पालन रक्षण करता है, तथा (दैव्या हेडांसि) देवों—वायुसूर्य आदि से हुए आधिदैविक कोपों[१] दुःखों को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) आधिभौतिक और आध्यात्मिक कोपों[२] दुःखों को भी (नः-युयोधि) हमारे—हमारे से या हमारे पास से अलग कर दे ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥
देवता—विष्णुः (व्यापक परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१६२५. **किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि । मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥**

पदपाठः— **किम् इत् ते विष्णो परिचक्षि परि चक्षि नाम प्र यत् ववक्षे शिपिविष्टः शिपि विष्टः अस्मि मा वर्पः अस्मत् अप गूहः एतत् यत् अन्यरूपः अन्य रूपः समिथे सम् इथे बभूथ ॥ १ ॥**

अन्वयः—विष्णो किम्-इत् ते परि चक्षि नाम यद्-शिपिविष्टः-अस्मि प्रववक्षे

१. "हेडः क्रोधनाम" [निघं० २.१३]।   २. "ह्वरः क्रोधनाम" [निघं० २.१३]।

अस्मत् वर्पः-मा-अपगूह एतत्-यत्-अन्यरूपः समिथे बभूथ ॥

पदार्थः—(विष्णो) हे व्यापक परमात्मन्! (किम्-इत् ते परि चक्षि नाम) क्या ही तेरा व्याख्या करने योग्य नाम है जो लोक-लोकान्तरों में व्याप्त छिपा हुआ है, जबकि (यद्-शिपिविष्टः-अस्मि प्रववक्षे) ज्ञानरश्मियों[1] से विष्ट—आविष्ट—भरपूर हूँ ऐसा कहना उपासकों के प्रति ध्यान में आकर (अस्मत्) हम उपासकों से (वर्पः-मा-अपगूह) अपने रूप[2] को मत छिपा—नहीं छिपाता है, अन्यों—साधारण जनों के सामने तेरा रूप छिपा रहता है वे तुझे स्थूल दृष्टि से देखते हैं लोकों में मात्र व्यापक है—छिपा हुआ है ऐसा ही मानते हैं (एतत्-यत्-अन्यरूपः) यह जो अन्यरूप वाला—ज्ञानदृष्टि वाला (समिथे बभूथ) अभ्यास वैराग्य द्वारा वृत्तिनिरोध संग्राम में—विजय पर तू साक्षात् हो जाता है ॥ १ ॥

१६२६. **प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।**
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥ २ ॥

पदपाठः— **प्र तत् ते अद्य अ द्य शिपिविष्टः शिपि विष्टः हव्यम् अर्यः शशंसामि वयुनानि विद्वान् तम् त्वा गृणामि तवसम् अतव्यान् अ तव्यान् क्षयन्तम् अस्य रजसः पराके ॥ २ ॥**

अन्वयः—शिपिविष्ट अद्य ते तत् हव्यम् वयुनानि विद्वान् अर्यः शंसामि अस्य रजसः पराके क्षयन्तम् तं त्वा तवसम् अतव्यान्-गृणामि ॥

पदार्थः—(शिपिविष्ट) हे ज्ञानरश्मियों से पूर्ण व्यापक परमात्मन्! (अद्य) आज इस जन्म में (ते तत्) तेरे उस (हव्यम्) हृदय ग्राह्यस्वरूप को (वयुनानि विद्वान्) जोकि तू हमारे प्रज्ञानों—विचारों को या कमनीय अभिप्रायों को जानने वाला है[3] उसे (अर्यः शंसामि) मैं अभ्यास वैराग्य से चित्तवृत्तियों का स्वामी बना प्रशंसित करता हूँ (अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) इस लोक समूह—जगत् के पराक्रान्त[4]—द्युलोक मोक्षधाम में रहते हुए—(तं त्वा तवसम्) उस तुझ महान्[5]

---

१. "शिपयो रश्मयः-उच्यन्ते" [निरु० ५.८]।
२. "वर्पः-रूपनाम" [निघं० ३.७]।
३. "वयुनानि विद्वान् प्रज्ञानानि विद्वान्" [निरु० ८.२०], "यमुनं वेतेः कान्ति" [निघं० ५.१५]।
४. "पराके पराक्रान्ते" [निरु० ५.९], "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।
५. "तवस इति महन्नामधेयम्" [निरु० ५.९]।

परमात्मा को (अतव्यान्-गृणामि) मैं अल्पस्थानी अणु आत्मा स्तुत करता हूँ—स्तुति में लाता हूँ॥ २॥

१६२७. **वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्। वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ३॥**

पदपाठः— **वषट् ते विष्णो आसः आ कृणोमि तत् मे जुषस्व शिपिविष्ट शिपि विष्ट हव्यम् वर्द्धन्तु त्वा सुष्टुतयः सु ष्टुतयः गिरः मे यूयम्पातस्वस्तिभिः-सदा नः॥ ३॥**

अन्वयः—शिपिविष्ट विष्णो आसः ते वषट्-आकृणोमि मे तत्-हव्यं जुषस्व मे सुष्टुतयः-गिरः त्वा वर्धन्तु यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात॥

पदार्थः—(शिपिविष्ट विष्णो) हे ज्ञानरश्मियों—ज्योतियों से आविष्ट तथा सब में व्यापक परमात्मन्! (आसः) आस्य[१] मुख से (ते) तेरे लिये (वषट्-आकृणोमि) मैं स्तुतिवाणी[२] समर्पित करता हूँ (मे तत्-हव्यं जुषस्व) मेरे उस ग्राह्य स्तुतिवचन 'वषट्' को सेवन कर—स्वीकार कर (मे सुष्टुतयः-गिरः) मेरी उत्तम स्तुति वाली वाणियाँ (त्वा वर्धन्तु) तुझे बढ़ावें—प्रसन्न करें या अधिक साक्षात् करावें (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तू[३] कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारी रक्षा कर॥ ३॥

द्वितीय खण्ड
प्रथम तृच

ऋषिः—वामदेव (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)॥
देवता—वायुरिन्द्रश्च (जीवनगतिदाता और ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥
छन्दः—अनुष्टुप्॥

१६२८. **वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु। आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता॥ १॥**

पदपाठः— **वायो शुक्रः अयामि ते मध्वः अग्रम् दिविष्टिषु आ याहि सोमपीतये सोम पीतये स्पार्हः देव नियुत्वता नि युत्वता॥ १॥**

१. "पदन्नो.....आसनप्रभृतिषु" [अष्टा० ६.१.६१]।
२. "वाग्वै वषट्कारः" [श० १.७.२.२१]।
३. "बहुवचनं पूजार्थम्"

अन्वयः—वायो दिविष्टिषु शुक्रः ते अग्रे मध्वाः-'मधुः' अयामि स्पार्हाः-देव सोम पीतये नियुत्वता-आयाहि ॥

पदार्थः—(वायो) हे अध्यात्मजीवन के प्रेरक परमात्मन्! (दिविष्टिषु) मोक्षधाम प्राप्त कराने वाली स्तुतियों में[1] उनके निमित्त (शुक्रः) मैं निर्मल और सत्यवान्[2] (ते) तेरे लिये (अग्रे मध्वाः-'मधुः') श्रेष्ठरस—उपासनारस को (अयामि) पहुँचाता हूँ[3] अर्पित करता हूँ (स्पार्हाः-देव) स्पृहणीय—कमनीय देव! तू (सोम पीतये) उपासनारस पान—स्वीकार करने के लिये (नियुत्वता-आयाहि) स्पृहणीय अमृत अन्नभोग के साथ[4] आ—प्राप्त हो ॥ १ ॥

१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः । युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥

पदपाठः— इन्द्रः च वायो एषाम् सोमानाम् पीतिम् अर्हथः युवाम् हि यन्ति इन्दवः निम्नम् आपः न सध्र्यक् स ध्र्यक् ॥ २ ॥

अन्वयः—वायो च इन्द्रः एषां सोमानाम् पीतिम् अर्हथः इन्दवः युवां हि यन्ति निम्नम्-आपः-न सध्र्यक् ॥

पदार्थः—(वायो) हे अध्यात्मजीवनप्रेरक (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (एषां सोमानाम्) इन सोमों—उपासनरसों को (पीतिम्) पान को—स्वीकार करने को (अर्हथः) योग्य हो (इन्दवः) आर्द्ररस भरे उपासनारस प्रस्तुत करने वाले उपासक आत्माएँ[5] (युवां हि) तेरी ओर ही (यन्ति) जाते हैं (निम्नम्-आपः-न सध्र्यक्) नीचे स्थान—समुद्र को जैसे जलप्रवाह एक दूसरे से मिलकर चले जाते हैं ॥ २ ॥

१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती । नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥

पदपाठः— वायो इन्द्रः च शुष्मिणा सरथम् स रथम् शवसः पतीइति नियुत्वन्ता नि युत्वन्ता नः ऊतये आ यातम् सोमपीतये सोम पीतये ॥ ३ ॥

---

१. "दिविष्टिषु दिव एषणेषु" [निरु० ६.२२]।
२. "सत्यं वै शुक्रम्" [श० ३.९.३.२५]।
३. "अन्तर्गतणिजर्थः"।
४. "असौ वै स्पार्होऽन्नं नियुत्वत्" [जै० २.३९]।
५. "इन्दुरात्मा" [निरु० १४.१९]।

अन्वयः—वायो च इन्द्रः शुष्मिणा शवसः-पती नियुत्वन्ता सोमपीतये॥

पदार्थः—(वायो) हे अध्यात्मजीवन के प्रेरक (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शुष्मिणा) बलवान् (शवसः-पती) बलों के पालक (नियुत्वन्ता) अमृत अन्नभोग वाला—अमृतान्न भोग देने वाला (सोमपीतये) उपासनारस पान के लिये—स्वीकार करने के लिये आ॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काश्यपौ रेभसूनू ऋषी (द्रष्टा से सम्बन्ध स्तोता और साक्षात्कर्ता उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१६३१. **अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे। यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे॥ १॥**

पदपाठः— **अध क्षपा परिष्कृतः परि कृतः वाजान् अभि प्र गाहसे यदि विवस्वतः वि वस्वतः धियः हरिम् हिन्वन्ति यातवे॥ १॥**

अन्वयः—क्षपा-अध परिष्कृतः वाजान्-अभि प्रगाहसे यदी विवस्वतः-धियः हरि यातवे हिन्वन्ति॥

पदार्थः—(क्षपा-अध) रात्रि के[1] अनन्तर उषाकाल—प्रभातवेला में (परिष्कृतः) उपासक द्वारा भूषित पूजित स्तुत हुआ तू परमात्मन्! (वाजान्-अभि प्रगाहसे) अमृत अन्नभोगों को[2] प्राप्त कराता है (यदी विवस्वतः-धियः) यदि उपासकजन[3] की स्तुतिवाणियाँ[4] (हरि यातवे हिन्वन्ति) तुझ दुःखहर्ता परमात्मा को उपासक के प्रति प्राप्त होने को प्रेरित करती हैं—खींचती हैं प्रेरणा देती हैं॥ १॥

१६३२. **तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः। यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः॥ २॥**

पदपाठः— **तम् अस्य मर्जयामसि मदः यः इन्द्रपातमः इन्द्र पातमः यम् गावः आसभिः दधुः पुरा नूनम् च सूरयः॥ २॥**

अन्वयः—अस्य तम् मर्जयामसि यः-मदः-इन्द्रपातमः यम् गावः-आसभिः

---

१. "क्षपा रात्रिनाम" [निघं० १.७], "सुपां सुलुक्....." [अष्टा० ७.१.३९]। आकारादेशः।

२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

३. "विवस्वन्तः-मनुष्यनाम" [निघं० ३.३]।

४. "वाग्वै धीः" [श० ४.२.६.१३]।

पुर दधुः नूनं च सूरयः ॥

पदार्थः—(अस्य) इस सोम परमात्मा के (तम्) उस मद—हर्ष आनन्दरस को (मर्जयामसि) प्राप्त करें[1] (यः-मदः-इन्द्रपातमः) जो आनन्दरस अत्यन्त पीने योग्य है—अन्दर धारण करने योग्य है[2] (यम्) जिस आनन्दरस को (गावः-आसभिः पुर दधुः) स्तुतिगानकर्ता[3] आसन आदि योगाङ्गों द्वारा पूर्वकाल में धारण करते रहे (नूनं च सूरयः) और आज—इस समय भी[4] स्तुतिकर्ता उपासकजन धारण करते हैं ॥ २ ॥

१६३३. **तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत। उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **तम् गाथया पुराण्या पुनानम् अभि अनूषत उत ऊ कृपन्त धीतयः देवानाम् नाम बिभ्रतीः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—तं पुनानम् पुराण्या गाथया अभ्यनूषत देवानाम्-उत-उ नाम बिभ्रतीः धीतयः कृपन्त ॥

पदार्थः—(तं पुनानम्) उस पवित्रकारक परमात्मा को (पुराण्या गाथया) सनातनी वेदवाणी[5] के द्वारा (अभ्यनूषत) उपासकजनो! आन्तरिकभाव से स्तुत करो—स्तुति में लाओ[6] (देवानाम्-उत-उ) और मुमुक्षुओं के भी (नाम बिभ्रतीः) नम्रभाव को धारण करने के हेतु (धीतयः) प्रज्ञाएँ[7] (कृपन्त) समर्थ होती हैं—सफल करती हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६३४. **अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अश्वन्नत्वावारवन्तम् ॥ १ ॥**

---

१. ''मार्ष्टि गतिकर्मा'' [निघं० २.१४] लेट् प्रयोग।

२. ''पातमः'' इति शब्दो न तमप्प्रत्ययान्तस्तद्धितः किन्तु कृत्यार्थेछान्दसः, अतः पातमः पातव्यः, तथाकृत्वा ''कृत्यानां कर्तरि वा'' [अष्टा० २.३.७१] षष्ठी, पुनः इन्द्रशब्देन सह षष्ठीसमासः।

३. ''गौः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]। ४. ''सुरिः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।

५. ''गाथा वाङ्नाम'' [निघं० १.११]। ६. ''णू स्तवने'' [तुदादि०]।

७. ''ऋतस्य धीतिः ऋतस्य प्रज्ञा'' [निरु० १०.४१]।

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १७)

१६३५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः। मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्॥ २॥

पदपाठः— सः घ नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा पृथु प्रगामा सुशेवः सु शेवः मीढ्वान् अस्माकम् बभूयात्॥ २॥

अन्वयः—सः-घ नः सूनुः सुशेवः शवसा पृथुगामा अस्माकं मीढ्वान् भवतु॥

पदार्थः—(सः-घ) यह अग्रणायक परमात्मा निश्चय से (नः सूनुः) हम उपासकों का प्रेरक[1] (सुशेवः) शोभन सुख[2] आध्यात्मिक अमृत जिससे मिले ऐसा (शवसा पृथुगामा) बल से विस्तृत—व्यापक गति वाला[3] है (अस्माकं मीढ्वान् भवतु) हमारा कामनावर्षक हो॥ २॥

१६३६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदमिद्विश्वायुः॥ ३॥

पदपाठः— सः नः दूरात् दुः आत् च आसात् च नि मर्त्यात् अघायोः पाहि सदम् इत् विश्वायुः विश्व आयुः॥ ३॥

अन्वयः—सः अघायोः मर्त्यात् दूरात्-च-आरात्-च सदम्-इत्-नः-निपाहि विश्वायुः॥

पदार्थः—(सः) वह तू अग्रणायक परमात्मन्! (अघायोः) पाप चाहने वाले—अनिष्ट चाहने वाले—(मर्त्यात्) मनुष्य से (दूरात्-च-आरात्-च) दूरवर्ती से और निकटवर्ती से भी[4] (सदम्-इत्-नः-निपाहि) सदा ही हमारी पूर्ण रक्षा कर (विश्वायुः) तू पूर्ण आयु का निमित्त बन॥ ३॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—नृमेधाः (मुमुक्षु मेधा वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१६३७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः। अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ १॥

---

१. "षू-प्रेरणे" [तुदा०], "सुवः किच्च नुः" [उणा० ३.३५]।

२. "शिवः सुखनाम" [निघं० ३.६] बहुव्रीहिसमासे सुशेवः।

३. "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णा" [अष्टा० ७.१.३९] आकारादेशः।

४. "आसात्-आन्तिकनाम" [निघं० २.१६]।

पदपाठः— त्वमिन्द्रप्रतूर्त्तिषु॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३११)

१६३८. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥ २॥

पदपाठः— अनु ते शुष्मम् तुरयन्तम् ईयतुः क्षोणीइति शिशुम् न मातरा विश्वाः ते स्पृधः श्रथयन्त मन्यवे वृत्रम् यत् इन्द्रः तूर्वसि॥ २॥

अन्वयः—ते-'त्वां' तुरयन्तं शुष्मम्ः-अनु क्षोणी ईयतुः शिशुं न मातरा इन्द्र यत्-वृत्रं तूर्वसि ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्रथयन्त॥

पदार्थः—(ते-'त्वां' तुरयन्तं शुष्मम्ः-अनु) हे परमात्मन् गति करते हुए तुझ[1] बलवान् के[2] पीछे (क्षोणी) द्युलोक से पृथिवीलोक तक[3] (ईयतुः) चलते हैं (शिशुं न मातरा) शंसनीय प्रिय पुत्र के पीछे जैसे माताएँ या माता पिता चलते हैं (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्-वृत्रं तूर्वसि) जब तू पाप[4] पापी को हिंसित करता है (ते मन्यवे) तुझ मन्युरूप के लिये—क्रोधरूप के लिये[5] (विश्वाः स्पृधः श्रथयन्त) उपासक में वर्तमान सारी संघर्ष करने वाली वासनाएँ स्वयं हत हो जाती हैं मर जाती हैं[6]॥ २॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वनावृषी (इन्द्रिय सम्बन्धी अच्छी प्रार्थना करने वाला, विषय व्यापनशील मन के सम्बन्ध में अच्छी प्रार्थना करने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि॥ १॥

---

१. ''तुर त्वरणे'' [जुहो०] ''बहुलं छन्दसि'' [अष्टा० २.४.७६] इति शम्।
२. ''शुष्मं बलनाम'' [निघं० २.९] अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः।
३. ''क्षोणी द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०]।
४. ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ११.१.५.७]।
५. ''मन्युरसि मन्युंमयि धेहि'' [यजु० १९.९]।
६. ''श्नथसि वधकर्मा'' [निघं० २.१९]।

पदपाठः— **यज्ञइन्द्रमवर्द्धयत्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १२१)

१६४०. **व्या३न्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम्॥ २ ॥**

पदपाठः— **वि अन्तरिक्षम् अतिरत् मदेसोमस्य रोचना इन्द्रः यत् अभिनत् वलम्॥ २ ॥**

अन्वयः—इन्द्रः सोमस्य मदे रोचना 'रोचनम्' अन्तरिक्षम् वि-अतिरत् यत्-वलम्-अभिनत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सोमस्य मदे) उपासनारस के प्रतीकार में (रोचना 'रोचनम्' अन्तरिक्षम्) रुचि करने वाले—कामना वाले उपासक आत्मा को[1] (वि-अतिरत्) विशेषरूप से ऊपर चढ़ा देता है या संसार सागर से तरा देता है (यत्-वलम्-अभिनत्) जो आत्मा को घेरने वाले[2]—बान्धने वाले अज्ञान या राग या भोग को छिन्न-भिन्न कर देता है॥ २ ॥

१६४१. **उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **उत् गाः आजत् अङ्गिरोभ्यः आविः आ विः कृण्वन् गुहा सतीः अर्वाञ्चम् नुनुदे वलम्॥ ३ ॥**

अन्वयः—गुहा सतीः-गाः अङ्गिरोभ्यः आविष्कृण्वन् उदाजत् वलम्-अर्वाञ्च नुनुदे॥

पदार्थः—(गुहा सतीः-गाः) गुहा—संवरण करने वाली[3] ढकने—छिपाने वाली प्रकृतिरूप जड़ प्रवृत्तियों में वर्तमान वाणियों—वेदवाणियों को[4] (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गों को प्रेरित करने वाले आरम्भिक ज्ञानी अग्नि आदि उपासकों के लिये[5] (आविष्कृण्वन्) साक्षात् कराने के हेतु (उदाजत्) ऊपर उभार दिया प्रकाशित कर दिया (वलम्-अर्वाञ्च नुनुदे) उपासक आत्मा के आवरक अज्ञान राग को इधर वा बाहर फेंक देता है॥ ३ ॥

---

१. "आत्माऽन्तरिक्षम्" [काठ० १६.२]।
२. "वलं वृणोतेः" [निरु० ६.२]।
३. "गुहू संवरणे" [भ्वादि०]।
४. "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
५. "अभिनोऽङ्गिरसः पर्यपश्यन्" [जै० २.१४२], "अङ्गिरसां क एकोऽग्निः" [ऐ० ६.३४]।

द्वितीय तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (अध्यात्म कक्ष सुन लिया जिसने या अच्छी कक्षा जिसकी है ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६४२. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

पदपाठः— त्यमुवःसत्रासाहम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १७०)

१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥

पदपाठः— युध्मम् सन्तम् अनर्वाणम् अन् अर्वाणम् सोमपाम् सोम पाम् अनपच्युतम् अन् अपच्युतम् नरम् अवार्यक्रतुम् अवार्य क्रतुम् ॥ २ ॥

अन्वयः—युध्यम् अनर्वाणम् सोमपाम् अनपच्युतम् अवार्यक्रतुम् सन्तम् नरम् ॥

पदार्थः—(युध्यम्) हे उपासक ! तू पाप—पापियों के प्रहर्तानाशक (अनर्वाणम्) दूसरे पर अनाश्रित स्वयं सर्वशक्ति सम्पन्न[1] (सोमपाम्) उपासनारस के पानकर्ता स्वीकारकर्ता—(अनपच्युतम्) स्वगुण कर्म से अपच्युत न होनेवाले एकरस वर्तमान (अवार्यक्रतुम्) अबाध्य प्रज्ञानवाले—निर्भ्रान्तज्ञानवाले—(सन्तम्) होते हुए (नरम्) नायक—उन्नतपथ मोक्ष की ओर ले जानेवाले परमात्मा को अपनी ओर प्रेरित करता हूँ ॥ २ ॥

१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम। अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥

पदपाठः— शिक्ष नः इन्द्र रायः आ पुरु विद्वान् ऋचीषमः अव नः पार्ये धने ॥ ३ ॥

अन्वयः—ऋचीषम-इन्द्र नः रायः पुरु शिक्षा विद्वान् नः पार्ये धने-आ-अव ॥

पदार्थः—(ऋचीषम-इन्द्र) हे ऋचों मन्त्रों के प्राप्त करानेवाले या ऋचों-मन्त्रों के दर्शन[2] ज्ञान कराने वाले परमात्मन् (नः) हमें (रायः) ज्ञानधन (पुरु)

१. ''अनर्वाऽप्रत्यतोऽस्मिन्'' [निरु० ६.२३]।
२. ''ऋचामीषयितः-गमयितो दर्शयितो वा'' ''ईश गतिहिंसादर्शनेषु'' [भ्वादि०] ततः—अमच् प्रत्ययः औणादिकः, अनेकार्थप्रसंगे नैगमकाण्डेऽर्थ एष सङ्गच्छतेऽत्र मन्त्रे।

बहुत (शिक्षा) दे प्रदान कर[1] (विद्वान्) ज्ञानधनों का स्वामी या ज्ञाता है, अतः (नः पार्ये धने–आ–अव) पर—परधाममोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ स्वदर्शन धन के अन्दर हमें समन्तरूप से रख॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियविषयक अच्छी प्रार्थना एवं व्यापनशील मनसम्बन्धी अच्छी प्रार्थना वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम्। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥ १॥

पदपाठः— तव त्यत् इन्द्रियम् बृहत् तव दक्षम् उत क्रतुम् वज्रम् शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥ १॥

अन्वयः—धिषणा तव त्यत् बृहत्–इन्द्रियम् तव दक्षम् उत क्रतुम् वरेण्यं वज्रम् शिशाति॥

पदार्थः—(धिषणा) हे परमात्मन्! स्तुतिवाणी[2] (तव) तेरे (त्यत्) उस (बृहत्–इन्द्रियम्) महान् लिङ्ग—स्वरूप को (तव) तेरे (दक्षम्) बल को (उत) अपि—और (क्रतुम्) प्रज्ञान—प्रकृष्ट ज्ञान को या दर्शनभान को (वरेण्यं वज्रम्) वरने योग्य ओज को[3] स्वात्मबल को (शिशाति) तीक्ष्ण कर देता है—विकसित कर देता है—उपासक के लिये स्वाक्षात् करने योग्य बना देता है॥ १॥

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे॥ २॥

पदपाठः— तव द्यौः इन्द्र पौंस्यम् पृथिवी वर्द्धति श्रवः त्वाम् आपः पर्वतासः च हिन्विरे॥ २॥

अन्वयः—इन्द्र द्यौः तव पौंस्यम् पृथिवी श्रवः वर्धति त्वाम् आपः च पर्वतासः हिन्दिरे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (द्यौः) द्युलोक—विशाल ज्योतिर्मण्डल (तव) तेरे (पौंस्यम्) बल को[4] और (पृथिवी) अन्नादि से पूर्ण प्रथित भूलोक (श्रवः) यश को[5] (वर्धति) बढ़ाता है[6] (त्वाम्) तुझे (आपः)

---

१. "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० २.२०]। २. "धिषणा वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
३. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]। ४. "पौंस्यानि बलानि" [निघं० २.९]।
५. "श्रवः–श्रवणीयं यशः" [निरु० १.९]।
६. "वर्धति–वर्धयति" अन्तर्गतणिजर्यः, यथा—"तमिद् वर्धन्तुनो गिरः–वर्धयन्तु नो गिरः" [निरु० १.१२]।

अन्तरिक्ष में वर्तमान जल—जल धाराएँ—वर्षा—जल (च) और (पर्वतासः) मेघ भी[1] (हिन्दिरे) बढ़ाते हैं[2] स्वरूपमहत्ता दर्शाते हैं ॥ २ ॥

१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— त्वाम् विष्णुः बृहन् क्षयः मित्रः मि त्रः गृणाति वरुणः त्वाम् शर्द्धः मदति अनु मारुतम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—त्वाम् बृहन् क्षयः-विष्णुः मित्रः वरुणः गृणाति त्वाम् मारुतं शर्द्धः अनुमदति ॥

पदार्थः—(त्वाम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तुझे (बृहन् क्षयः-विष्णुः) महान् निवास हेतु व्यापक आकाश जो सब को अपने अन्दर स्थान देता है (मित्रः) अग्नि[3] (वरुणः)[4] समुद्र (गृणाति) स्तुति करता है—तेरा गुण गाता है (त्वाम्) तुझे (मारुतं शर्द्धः) मरुतो 'वातस्तरों'—प्रत्येक लोक के वायुस्तरों का बल[5] (अनुमदति) अनुरूप अर्चित करता है[6] ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विशेष निरूपित करने वाला)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

पदपाठः— नमस्तेअग्नओजसे ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११)

१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

पदपाठः— कुवित् सु नः गविष्टये गो इष्टये अग्ने संवेशिष सम् वेषिषः रयिम् उरुकृत् उरु कृत् उरु नः कृधि ॥ २ ॥

---

१. ''पर्वतः-मेघनाम'' [निघं० १.१०]। २. ''हि वृद्धौ च'' [स्वादि०]।
३. ''एषः-अग्निः-भवति मित्रः'' [श० २.३.२.१२]।
४. ''समुद्रौ वै वरुणः'' [मै० ४.७.८]। ५. ''शर्द्ध-बलम्'' [निघं० २.९]।
६. ''मदति-अर्चतिकर्मा'' [निघं० ३.१४]।

अन्वयः—अग्ने देव नः-गविष्टये सुरयिम् कुवित् संवेविषः उरुकृत्-नः-उरुकृधि ॥

पदार्थः—(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव! (नः-गविष्टये) हमारी वागिष्टि—स्तुतियज्ञ के लिये[1] (सुरयिम्) शोभन धन—स्वदर्शन धन को (कुवित् संवेविषः) बहुत[2] समाविष्ट करा (उरुकृत्-नः-उरुकृधि) हे बहुत प्रकार या महान् संसार को करने रचने वाले हमें महान् आत्मा या महान् उपासक जीवन्मुक्त बना दें ॥ २ ॥

१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा। संवर्गं सं रयिं जय ॥ ३ ॥

पदपाठः— मा नः अग्ने महाधने महा धने परा वर्क भारभृत् भार भृत् यथा संवर्गम् सम् वर्गम् सम् रयिम् जय ॥ ३ ॥

अन्वयः—अग्ने महाधने नः मा परि वर्क् यथा भारभृत् संवर्गं रयिं सञ्जय ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (महाधने) महान् धन—महती तृप्ति करने वाले मोक्षैश्वर्य मोक्षधाम में (नः) हम उपासकों को (मा परि वर्क्) मत त्यागना (यथा भारभृत्) जैसे राष्ट्र का[3] भरण पालनकर्ता राजा अपनी प्रजा को नहीं त्यागता है (संवर्गं रयिं सञ्जय) संवर्जनीय—त्यागने योग्य पापभोग धन पर सम्यक् जय करा[4] हमें संयमी बना, जैसे राष्ट्रभृत् राजा अपनी प्रजा को पापों से बचाता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मेधावी से सम्बद्ध स्तुतिवक्ता उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

पदपाठः— समस्यमन्यवेविशः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३७)

१६५२. वि चिद् वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना। वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

---

१. ''गौः-वाङ्नाम'' [निघं० १.२१]।
२. ''कुवित् बहुनाम'' [निघं० ३.१]।
३. ''राष्ट्रं वै भारः'' [तै० ३.९.७.१]।
४. ''अन्तर्गतणिजर्थः''

पदपाठः— **वि चित् वृत्रस्य दोधतः शिरः विभेद वृष्णिना वज्रेणशतपर्वणा ॥ २ ॥**

अन्वयः—दोधतः-वृत्रस्य शिरः-चित् वृष्णिना-'वृष्णिः' शतपर्वणा वज्रेण वि विभेद ॥

पदार्थः—(दोधतः-वृत्रस्य) आत्मा के कम्पाते आवरक पाप बन्धन के[1] (शिरः-चित्) शिरोरूप राजा को भी (वृष्णिना-'वृष्णिः') सुखवर्षक[2] इन्द्र—परमात्मा (शतपर्वणा वज्रेण वि विभेद) बहुत पर्व—पालन साधन ओज[3] आत्मीय बल के द्वारा कष्ट देता है ॥ २ ॥

१६५३. **ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **ओजस्तदस्यतित्विषे मं० १८२ ॥ १ ॥**

अन्वयः—अस्य ओजः तित्विषे यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी चर्म-इव समवर्तयत् ॥

पदार्थः—(अस्य) इस इन्द्र परमात्मा का (ओजः) आत्मबल (तित्विषे) प्रदीप्त हो रहा है (यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी) जिससे परमात्मा दोनों—द्युलोक पृथिवीलोक को—द्यावापृथिवीमय जगत् को (चर्म-इव समवर्तयत्) चमड़े की भाँति लपेटता है और खोलता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—एकपदा विराट् ॥

१६५४. **सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥**

पदपाठः— **सुमन्मा सु मन्मा वस्वी रन्ती सूनरी सू नरी ॥ १ ॥**

अन्वयः—सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥

पदार्थः—(सुमन्मा) उपासक के लिये परमात्मा शोभन ज्ञान वाला (वस्वी) वासधन देने वाला (रन्ती) रमणीय सुख वाला (सूनरी) शोभन नीति वाला—शोभन नेता है ॥ १ ॥

छन्दः—गायत्री ॥

१६५५. **सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि। ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥**

---

१. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]। २. व्यत्ययेन प्रथमास्थाने तृतीया।

३. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]।

पदपाठः— सरूप स रूप वृषन् आ गहि इमौ भद्रौ धुर्यौ अभि तौ इमौ उप सर्पतः ॥ २ ॥

अन्वयः—सरूप वृषन् आगहि इमौ भद्रौ धुर्यौ तौ अभि–उपसर्पतः ॥

पदार्थः—(सरूप वृषन्) हे प्रकाशसहित और सुखवर्षक परमात्मन्! (आगहि) मुझ उपासक की ओर आ (इमौ) यह तू अग्निरूप और इन्द्ररूप (भद्रौ) कल्याणकारी (धुर्यौ) संसारधुरा को सम्भालने वाला (तौ) वह दोनों रूपों वाला (अभि–उपसर्पतः) उपासक को लक्ष्य कर उपगत होता है—पास आता है ॥ २ ॥

१६५६. नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन्॥ ३ ॥

पदपाठः— नि इव शीर्षाणि मृढ्वम् मध्ये आपस्य तिष्ठति शृङ्गेभिः दशभिः दिशन्॥ ३ ॥

अन्वयः—आपस्य मध्ये तिष्ठति दशभिः शृङ्गेभिः–दिशन् शीर्षाणि नि मृढ्वम्–इव ॥

पदार्थः—(आपस्य मध्ये तिष्ठति) वह परमात्मा आप्त–प्राप्त किया जाता है जहाँ—उस हृदय देश के[1] मध्य—अन्दर रहता है (दशभिः शृङ्गेभिः–दिशन्) दृष्टार्थ[2] देख लिये—जान लिये अर्थ—पदार्थमात्र जिनके द्वारा ऐसे विविध ज्ञानप्रकाशों द्वारा[3] उपासक को ज्ञान उपदेश एवं अध्यात्म मार्ग का निर्देश करता हुआ रहता है (शीर्षाणि नि मृढ्वम्–इव) हे उपासको! तुम उस परमात्मा के उपदेशों से अपने को अवश्य[4] अलंकृत करो—संस्कृत करो ॥ ३ ॥

इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१. ''आप्यते प्राप्यते यस्मिन् स आपो हृदयदेशः,'' ''आप्लृ धातोर्घञ्, अधिकरणे।''

२. ''दश दृष्टार्थः'' [निरु० ३.१०]।

३. ''शृङ्गाणि ज्वलतो नाम'' [निघं० १.१०]।

४. ''अत्र 'इव शब्द एवार्थः परोक्षप्रिया इव हि देवाः''', इति यथा, अथवा पदपूरणः ''इवोऽपि दृश्यते'' [निरु० १.१०]।

अथ अष्टादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (परमात्मा में मेधा से अतन करने वाला और पवित्र हो अतन प्रवेश करने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१६५७. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय। सोमं वीराय शूराय॥ १॥

पदपाठः— पन्यम्पन्यमित्सोतारः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १२३)

१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्। इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम्॥ २॥

पदपाठः— आ इह हरीइति ब्रह्मयुजा ब्रह्म युजा शग्मा वक्षतः सखायम् स खायम् इन्द्रम् गीर्भिः गिर्वणसम् गिः वनसम्॥ २॥

अन्वयः—ब्रह्मयुजा शग्मा हरी गिर्वणसम्–इन्द्रं गीर्भिः इह–आवक्षतः॥

पदार्थः—(ब्रह्मयुजा) ब्रह्म—महान् इन्द्र—परमात्मा में युक्त होने वाले—उस तक पहुँचने वाले—(शग्मा) सुखकारी सङ्गम कराने वाले (हरी) परमात्मा को मेरी ओर ले आने वाले ऋक् और साम—स्तुति और उपासना[1] (गिर्वणसम्–इन्द्रं गीर्भिः) वाणियों को सेवन करने वाले परमात्मा को प्रार्थनाओं के द्वारा (इह–आवक्षतः) इस मुझ उपासक में या मेरे हृदय में आवाहन करते हैं—ले आते हैं॥ २॥

१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्। नि यमते शतमूतिः॥ ३॥

पदपाठः— पाता वृत्रहा वृत्र हा सुतम् आ घ गमत् न आरे अस्मत् नि यमते शतमूतिः शतम् ऊतिः॥ ३॥

---

१. ''ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी'' [ऐ० २.२४]।

अन्वयः—वृत्रहा सुतं पाता घ—आगमत् न–आरे–अस्मत् शतम्–ऊतिः–नियमते ॥

पदार्थः—(वृत्रहा) पापनाशक[1] परमात्मा (सुतं पाता) मेरे द्वारा निष्पादित उपासनारस का पान करने—स्वीकार करने के शील वाला[2] (घ—आगमत्) अवश्य आवे (न–आरे–अस्मत्) हम से दूर न हो—रहे (शतम्–ऊतिः–नियमते) बहुत रक्षणाक्रियाओं से हमारी सम्भाल करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने या सु–शोभन है कक्षा में जो ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥

पदपाठः— आत्वाविशन्त्विन्दवः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १९७)

१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे। य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥

पदपाठः— विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षम् सोमस्य जागृवे यः इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥

अन्वयः—वृषन्–जागृवे–इन्द्र महिना सोमस्य भक्षं विव्यक्थ यः–ते जठरेषु ॥

पदार्थः—(वृषन्–जागृवे–इन्द्र) हे सुखवर्षक जीवों के कर्मफल प्रदान में न्याय करने में निरन्तर जागरूक सावधान ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (महिना) अपनी महती कृपा से (सोमस्य भक्षं विव्यक्थ) उपासक के द्वारा समर्थित उपासनारस के खान–पान को निमित्त बनाता है[3] अपना समागम आनन्द प्रदान करने को (यः–ते जठरेषु) जो उपासनारस तेरे मध्य में[4] कृपा प्रसाद बन बैठ जाता है ॥ २ ॥

१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्। अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥

---

१. ''पाप्मा वै वृत्रः'' [श० ११.१.५.७]।

२. पाधातोरत्र ताच्छीलिकस्तृन् प्रत्ययः।

३. ''व्यच व्याजीकरणे'' [तुदादि०] व्यच् धातोर्लिटि थलिरूपम्।

४. ''मध्यं वै जठरम्'' [श० ७.१.१.२२]।

पदपाठः— **अरम् ते इन्द्र कुक्षये सोमः भवतु वृत्रहन् वृत्र हन् अरम् धामभ्यः इन्दवः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—वृत्रहन्–इन्द्र ते–कुक्षये सोमः अरं भवतु इन्दवः धामभ्यः–अरम् ॥

पदार्थः—(वृत्रहन्–इन्द्र) हे पापनाशक ऐश्वर्यवन्[1] परमात्मन्! (ते–कुक्षये) तेरे कोख–जठर–मध्य में समाने के लिये उपासक का (सोमः) उपासनारस (अरं भवतु) 'अलम्' पर्याप्त या बहुत होवे, उपासक अपनी अल्प शक्ति के अनुसार उपासनारस प्रस्तुत कर सकेगा, तू अनन्त है अतः तेरा कुक्षि या जठर–मध्य अवकाश भरा नहीं जा सकता, एवं (इन्दवः) निरन्तर असंख्य धाराप्रवाह से आर्द्र उपासनारस (धामभ्यः–अरम्) तेरे व्यापनशील अङ्गों[2] उपासक के अन्दर वर्तमान तेरे कृपांशों के लिये बहुत या पर्याप्त हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक जन)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६६३. **जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥ १ ॥**

पदपाठः— **जराबोधतद्विविड्ढि ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५)

१६६४. **स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः नः महान् अनिमानः अ निमानः धूमकेतुः धूम केतुः पुरुश्चन्द्रः पुरु चन्द्रः धिये वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः महान्–अनिमानः धूमकेतुः पुरश्चन्द्रः नः–धिये वाजाय हिन्वतु ॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (महान्–अनिमानः) महान् है और गुणों से न मापने योग्य—अनन्त गुणबल क्रिया वाला है (धूमकेतुः) पाप पापी को कम्पाने योग्य प्रज्ञान वाला (पुरश्चन्द्रः) बहुत आह्लादक (नः–धिये वाजाय हिन्वतु) हमें बुद्धि के लिये और बल के लिये प्राप्त हो ॥ २ ॥

---

१. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।

२. "अङ्गानि वै धामानि" [का० श० ४.३.२.११]।

१६६५. स रेवाँइव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः॥ ३॥

पदपाठः— सः रेवान् इव विश्पतिः दैव्यः केतुः शृणोतु नः उक्थैः अग्निः बृहद्भानुः बृहत् भानुः॥ ३॥

अन्वयः—सः-अग्निः दैव्यः केतुः बृहद्भानुः नः-उक्थैः रेवान् विश्पतिः-इव शृणोतु॥

पदार्थः—(सः-अग्निः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दैव्यः केतुः) दिव्यप्रेरक है (बृहद्भानुः) महातेजस्वी (नः-उक्थैः) हमारे स्तुतिवचनों को[1] (रेवान् विश्पतिः-इव शृणोतु) धनवान् या राजा की भाँति सुने—सुनता है—स्वीकार करता है॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—बार्हस्पत्यः शंयुः (विद्यानिष्णात से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक) देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद् गवे न शाकिने॥ १॥

पदपाठः— तद्वोगायसुतेसचा॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ११५)

१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत् सीमुपश्रवद्गिरः॥ २॥

पदपाठः— न घ वसुः नि यमते दानम् वाजस्य गोमतः यत् सीम् उप श्रवत् गिरः॥ २॥

अन्वयः—वसुः यत् सीं गिरः-उपश्रवत् गोमतः वाजस्य दानम् न घ नियमते॥

पदार्थः—(वसुः) वसाने वाला परमात्मा (यत्) जबकि (सीं गिरः-उपश्रवत्) सर्वतः—प्रार्थना वचनों को पास से सुनता है, और (गोमतः वाजस्य दानम्) वाक्ज्ञान से युक्त आध्यात्मिक अन्न दान को (न घ नियमते) न कभी नियमित करे—रोके किन्तु देता ही चला जावे। अतः वह स्तुतियोग्य है॥ २॥

१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत्॥ ३॥

---

१. द्वितीयार्थे तृतीया व्यत्ययेन।

पदपाठः— कुवित्सस्य कुवित् सस्य प्र हि व्रजम् गोमन्तम् दस्युहा
दस्यु हा गमत् शचीभिः अप नः वरत्॥ ३॥

अन्वयः—दस्युहा कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजम् हि प्र-आगमत् नः शचीभिः-अपवरत्॥

पदार्थः—(दस्युहा) सद्‌गुणों के क्षयकर्ता का नाशक परमात्मा (कुवित्सस्य) कु—निन्दित—दुराचरण को प्राप्त हुए (गोमन्तं व्रजम्) इन्द्रियों वाले स्थान मन—अन्तःकरण में (हि) ही—वहीं (प्र-आगमत्) चला जावे पहुँच जावे (नः) हम उपासकों को (शचीभिः-अपवरत्) अपनी प्रज्ञान दान कृपाओं के द्वारा दूर रखे॥ ३॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम षड्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतनगमन प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—विष्णुः (व्यापनशील परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुले॥ १॥

पदपाठः— इदं विष्णुर्विचक्रमे॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २२२)

१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥ २॥

पदपाठः— त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुः गोपाः गो पाः अदाभ्यः अ दाभ्यः अतः धर्माणि धारयन्॥ २॥

अन्वयः—गोपाः अदाभ्यः विष्णुः त्रीणि पदा विचक्रमे अतः-धर्माणि धारयन्॥

पदार्थः—(गोपाः) जगत् का पालक (अदाभ्यः) न दबने वाला—अहिंसनीय (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीन पदों—प्रापणीय स्थानों में विक्रम करता है—पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में (अतः-धर्माणि धारयन्) अतः सदाचरण तथा उपासना को धारण करता हुआ—आस्तिक बना रहे॥ २॥

१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ३॥

पदपाठः— विष्णोः कर्माणि पश्यत यतः व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा स खा॥ ३॥

अन्वयः—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतः-व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा॥

पदार्थः—(विष्णोः कर्माणि पश्यत) व्यापक परमात्मा के कर्मों—जगद्रचन चालन धारण जीवों के लिये भोगप्रदान कर्मानुसार फल प्रदान आदि को देखो (यतः-व्रतानि पस्पशे) जिन्हें देखकर मनुष्य अपने सङ्कल्पों आचरणों कर्त्तव्यों को स्पर्श करता है[1] उसके प्रति और संसार में रहने के लिये (इन्द्रस्य युज्यः सखा) उपासक आत्मा का योग से प्राप्त होने वाला साथी मित्र है, अतः उससे योग करना चाहिए॥ ३॥

१६७२. **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ४॥**

पदपाठः— **तत् विष्णोः परमम् पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः दिवि इव चक्षुः आततम् आ ततम्॥ ४॥**

अन्वयः—सूरयः विष्णोः तत् परमं पदम् सदा पश्यन्ति दिवि-इव-चक्षुः-आततम्॥

पदार्थः—(सूरयः) स्तोता उपासक विद्वान्[2] (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (तत् परमं पदम्) उस परम आनन्दस्वरूप को (सदा पश्यन्ति) सदा अपने आत्मा में देखते हैं (दिवि-इव-चक्षुः-आततम्) आकाश में प्रकाशित हुए सूर्य की[3] भाँति॥ ४॥

१६७३. **तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ५॥**

पदपाठः— **तत् विप्रासः वि प्रासः विपन्युवः जागृवाꣳसः सम् इन्धते विष्णोः यत् परमम् पदम्॥ ५॥**

अन्वयः—विष्णोः-यत् परमं पदम् तत् विप्रासः जागृवांसः विपन्यवः समिन्धते॥

पदार्थः—(विष्णोः-यत् परमं पदम्) व्यापक परमात्मा का जो उत्कृष्ट आनन्दस्वरूप है (तत्) उसे (विप्रासः) मेधावी[4] (जागृवांसः) जागरूक—सावधान (विपन्यवः) विशेष स्तुति करने वाले[5] (समिन्धते) अपने अन्दर सम्यक् प्रकाशित

१. "स्पर्श बाधनस्पर्शयोः" [भ्वादि०]।
२. "सूरिः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।
३. "चक्षुरसावादित्यः" [ऐ० आ० २.१.५]।
४. "विप्रः-मेधाविनाम" [निघं० ३.१५]।
५. "पन स्तुतौ" [भ्वादि०], "ततो विपूर्वात्-बाहुलकादौणदिको युच्प्रत्ययः" [उणा० ३.२०]।

करते हैं ॥ ५ ॥

१६७४. **अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥**

पदपाठः— **अतः देवाः अवन्तु नः यतः विष्णुः विचक्रमे वि चक्रमे पृथिव्याः अधि सानवि ॥ ६ ॥**

अन्वयः—पृथिव्याः-अधि सानवि यतः-विष्णुः-विचक्रमे अतः देवाः-नः-अवन्तु ॥

पदार्थः—(पृथिव्याः-अधि सानवि) पृथिवीलोक से लेकर ऊपर द्युलोक तक में (यतः-विष्णुः-विचक्रमे) जिससे कि व्यापक परमात्मा ने अपनी व्याप्तिरूप विक्रम क्रिया है (अतः) इससे वह परमात्मा सर्वत्र है (देवाः-नः-अवन्तु) जीवन्मुक्त आत्माएँ हमें उस व्यापक परमात्मा का श्रवण एवं बोध करावे[1] ॥ ६ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१६७५. **मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥**

पदपाठः— **मोषुत्वावाघतश्चन ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २८४)

१६७६. **इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते। इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **इमे हि ते ब्रह्मकृतः ब्रह्म कृतः सुते सचा मधौ न मक्षः आसते इन्द्रे कामम् जरितारः वसूयवः रथे न पादम् आ दधुः ॥ २ ॥**

अन्वयः—ते हि इमे ब्रह्मकृतः सुते सचा-आसते मधौ न मक्षः वसूयवः-जरितारः इन्द्रे कामम्-आदधुः रथे न पादम् ॥

पदार्थः—(ते हि) हे परमात्मन्! तेरे ही (इमे ब्रह्मकृतः) ये स्तुतिकर्ता[2]

---

१. ''अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवण'' [भ्वादि०]।

२. ''वाग्वै ब्रह्म'' [ऐ० ६.३, जै० १.१०२]।

(सुते) तुझ उपासित के आश्रय (सचा-आसते) समवेत होकर बैठते हैं (मधौ न मक्षः) मधु के आश्रय—मधु पर जैसे मक्खियाँ बैठती हैं (वसूयवः-जरितारः) अपने वासयोग्य आश्रय की कामना करने वाले स्तुतिकर्ताजन[१] (इन्द्रे कामम्-आदधुः) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा के अन्दर अपने कमनीय अभीष्ट को रख देते हैं (रथे न पादम्) जैसे रथ—यान—गाड़ी में पैर को रख देते—जमा देते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काण्वः आयुः (कण्व मेधावी से सम्बद्ध परमात्मा में गमनशील उपासकजन) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

पदपाठः— अस्तावि मन्म पूर्व्यम् ब्रह्म इन्द्राय वोचत पूर्वीः ऋतस्य बृहतीः अनूषत स्तोषुः मेधाः असृक्षत ॥ १ ॥

अन्वयः—अस्तावि इन्द्राय पूर्व्यं मन्म ब्रह्म वोचत ऋतस्य पूर्वीः-बृहतीः-अनूषत स्तोतुः-मेधाः-असृक्षत ॥

पदार्थः—(अस्तावि) ऐश्वर्यवान् परमात्मा स्तुत किया जाता है, अतः (इन्द्राय) उस ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा के लिये (पूर्व्यं मन्म ब्रह्म वोचत) शाश्वत मननयोग्य मन्त्र[२] को बोलो (ऋतस्य पूर्वीः-बृहतीः-अनूषत) ब्रह्मयज्ञ की पूर्ववर्ती स्तुतिवाणियों को[३] स्तुति में लाओ (स्तोतुः-मेधाः-असृक्षत) स्तुतिकर्ता की बुद्धियाँ इस ब्रह्मयज्ञ में प्रवृत्त हों ॥ १ ॥

१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्। सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥

पदपाठः— सम् इन्द्रः रायः बृहतीः अधूनुत सम् क्षोणीइति सम् उ सूर्यम् सम् शुक्रासः शुचयः सम् गवाशिरः गो आशिरः सोमाः इन्द्रम् अमन्दिषुः ॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्रः बृहतीः-रायः सम्-अधूनुत क्षोणी सम् सूर्यम्-उ सम् इन्द्रम् शुक्रासः शुचयः सम्-अमन्दिषुः गवाशिरः सोमाः सम् अमन्दिषुः ॥

---

१. ''जरिता स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।
२. ''ब्रह्म वै मन्त्रः'' [जै० १.८८]।
३. ''वाग्वै बृहती'' [श० १४.७.१.२२]।

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (बृहतीः-रायः सम्-अधूनुत) बड़ी धनसम्पत्तियों को सम्यक् प्रकट करता है (क्षोणी सम् सूर्यम्-उ सम्) द्युलोक पृथिवीलोक को[1] सम्यक् प्रकट करता है, सूर्य को भी सम्यक् प्रकट करता है। उस ऐसे (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (शुक्रासः शुचयः सम्-अमन्दिषुः[2]) सत्य और पवित्र प्रार्थनाएँ स्तुतियाँ सम्यक् हर्षित करें (गवाशिरः सोमाः सम् अमन्दिषुः) स्तोता के[3] आश्रय उपासनारस हर्षित करें॥ २॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—अम्बरीषः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला उपासक)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१६७९. **इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे। नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे॥ १॥**

पदपाठः— **इन्द्रायसोमपातवे॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १३३१)

१६८०. **तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः। अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम्॥ २॥**

पदपाठः— **तम् सखायः स खायः पुरूरुचम् पुरू रुचम् वयम् यूयम् च सूरयः अश्याम वाजगन्धयम् वाज गन्ध्यम् सनेम वाजपस्त्यम् वाज पस्त्यम्॥ २॥**

अन्वयः—सखायः सूरयः वयं यूयं च तं पुरूरुचम् वाजगन्ध्यम् वाजपस्त्यम् सनेम॥

पदार्थः—(सखायः सूरयः) हे समानधर्मी स्तुतिकर्ता[4] जनो! (वयं यूयं च) हम और तुम मिलकर (तं पुरूरुचम्) उस बहुत दीप्ति वाले—(वाजगन्ध्यम्) अमृत अन्नभोग गन्धयुक्त[5] शान्तस्वरूप परमात्मा को सेवन करें—जीवन में धारण करें, तथा (वाजपस्त्यम्) अमृत अन्न के गृह[6] भण्डार शान्तस्वरूप परमात्मा को

---

१. ''क्षोणी द्यावापृथिवीनाम'' [निघं० ३.३०]।
२. ''सत्यं वै शुक्रम्'' [श० ३.९.३.२५]।
३. ''गौः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।
४. ''सूरिः स्तोतृनाम'' [निघं० ३.१६]।
५. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]।
६. ''पस्त्यं गृहनाम'' [निघं० ३.४]।

(सनेम) सम्भजन स्तवन करें॥ २॥

१६८१. **परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण। यो देवान्विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति॥ ३॥**

पदपाठः— **परित्यंः हर्यतंः हरिम्॥ ३॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५५२, १३२९)

पञ्चम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१६८२. **कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥ १॥**

पदपाठः— **कस्तमिन्द्रत्वावसो॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २८०)

१६८३. **मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु। तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥ २॥**

पदपाठः— **मघोनः स्म वृत्रहत्येषु वृत्र हत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु तव प्रणीति प्र नीति हर्यश्व हरि अश्व सूरिभिः विश्वा तरेम दुरिता दुः इता॥ २॥**

अन्वयः—हर्यश्व मघोनः 'मघोने' प्रिया 'प्रियाणि' वसु 'वसूनि' ददति वृत्रहत्येषु चोदय स्म तव प्रणीती सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम॥

पदार्थः—(हर्यश्व) दुःखहरणशील गुण कर्म हैं व्यापने वाले जिसके ऐसे हे परमात्मन्! (मघोनः 'मघोने') तुझ मघवा के लिये (प्रिया 'प्रियाणि' वसु 'वसूनि' ददति) जो प्रिय धनों को दान कर देते हैं—त्याग देते हैं (वृत्रहत्येषु चोदय स्म) उन्हें तू पापनाशक[1] कार्यों में प्रेरित कर—करता है (तव प्रणीती) तेरी प्रकृति नेतृत में (सूरिभिः) पूर्व स्तुतिकर्ताओं[2] के समान (विश्वा दुरिता तरेम) सब दुःख कठिनाइयों को हम तर जावें—पार कर जावें॥ २॥

---

१. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।

२. "सूरिः स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]।

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैयश्वो विमनाः (विशेष संस्कृत इन्द्रिय घोड़ों से सम्पन्न प्राणिमात्र के विशेष मनोभाव रखने वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीर स्तवते सदावृधः॥ १॥

पदपाठः— एदुमधोर्मदिन्तरम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३८५)

१६८५. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना॥ २॥

पदपाठः— इन्द्र स्थातः हरीणाम् न किः ते पूर्व्यस्तुतिम् पूर्व्य स्तुतिम् उत् आनंश्श शवसा न भन्दना॥ २॥

अन्वयः—हरीणां स्थातः-इन्द्र ते पूर्व्यस्तुतिं न किः-उदानंश शवसा न भन्दना॥

पदार्थः—(हरीणां स्थातः-इन्द्र) हे मनुष्यों के[1] अन्दर स्थान लेने वाले परमात्मन्! मनुष्य ही तुझे जान सकते हैं (ते पूर्व्यस्तुतिं न किः-उदानंश) तेरी पूर्व से चली आई—शाश्वती स्तुति को कोई नहीं सम्भाल सकता है—नहीं पा सकता[2] (शवसा न भन्दना) न बलसे—बल के हेतु या कल्याण द्वारा, तेरा बल महान् है कल्याण प्रदान महान् है॥ २॥

१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्॥ ३॥

पदपाठः— तम् वः वाजानाम् पतिम् अहूमहि श्रवस्यवः अप्रायुभिः अ प्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम्॥ ३॥

अन्वयः—तं वः 'त्वाम्' वाजानां पतिम् श्रवस्यवः अहूमहि अप्रायुभिः-यज्ञेभिः वावृधेन्यम्॥

पदार्थः—(तं वः 'त्वाम्' वाजानां पतिम्) उस तुझ अमृत अन्नभोगों[3] के स्वामी परमात्मा को (श्रवस्यवः) श्रवणीय यशोरूप परमात्मा को[4] चाहते हुए हम

---

१. ''हरयः-मनुष्याः'' [निघं० २.३]। २. ''आनशे व्याप्तिकर्मा'' [निघं० २.१८]।
३. ''अमृतोऽन्नं वै वाजः'' [जै० २.१९३]। ४. ''यस्य नाम महद्यशः'' [यजु० ३२.३]।

उपासकजन (अहूमहि) आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं (अप्रायुभिः-यज्ञेभिः) प्रमादीजन न हों जिन में ऐसे सावधान जनों[1] से सम्पादित अध्यात्मयज्ञों से (वावृधेन्यम्) बढ़ने बढ़ाने वाले परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—ककुप्॥

१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

पदपाठः— तङ्गूर्द्धयास्वर्णरम्॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १०९)

१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्। अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम्॥ २ ॥

पदपाठः— विभूतरातिम् विभूत रातिम् विप्र वि प्र चित्रशोचिषम् चित्र शोचिषम् अग्निम् ईडिष्व यन्तुरम् अस्य मेधस्य सोमस्य सोभरे प्र ईम् अध्वराय पूर्व्यम्॥ २ ॥

अन्वयः—सौभरे विप्र विभूतरातिम् चित्रशोचिषम् यन्तुरम्-अग्निम् ईडिष्व अस्य मेधस्य सोम्यस्य ईम्-पूर्व्यम् अध्वराय ॥

पदार्थः—(सौभरे विप्र) हे परमात्मा के आनन्दज्ञान को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक! तू (विभूतरातिम्) बहुत दान जिसके हैं ऐसे महादानी (चित्रशोचिषम्) चायनीय—दर्शनीय प्रकाश वाले—(यन्तुरम्-अग्निम् ईडिष्व) विश्व नियन्ता ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को स्तुत करो—स्तुति में लाओ (अस्य मेधस्य सोम्यस्य) इस पवित्र शान्तिप्रद—(ईम्-पूर्व्यम्) हाँ शाश्वत परमात्मा को (अध्वराय) अध्यात्मयज्ञ के लिये स्तुत कर॥ २ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—सप्तर्षयः (सात ऋषि—परमात्मा को प्राप्त होने योग्य उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया। जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे॥ १ ॥

---

१. "अप्रायुवो प्रमाद्यन्तः" [निरु० ४.१९]।

पदपाठः— **आसोमस्वानोअद्रिभिः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ५१३)

१६९०. **स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः। अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **सः मामृजे तिरः अण्वानि मेष्यः मीढ्वाꣳत्सप्तिर्न-वाजयुः अनुमाद्यः अनु माद्यः पवमानः मनीषिभिः सोमः विप्रेभिः वि प्रेभिः ऋक्वभिः ॥ २ ॥**

अन्वयः—सः-पवमानः सोमः मेष्यः अण्वानि तिरः-मामृजे वाजयुः-मीढ्वान् सप्तिः-न मनीषिभिः-विप्रेभिः-ऋक्वभिः-अनुमाद्यः ॥

पदार्थः—(सः-पवमानः सोमः) वह आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा (मेष्यः) अपनी आनन्दधाराओं द्वारा उपासक को सींचने वाला[1] (अण्वानि तिरः-मामृजे) उपासक आत्मा के सूक्ष्मकरणों—अन्तःकरणों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार के प्रति—इनके अन्दर होकर[2] उपासक आत्मा को प्राप्त होता है (वाजयुः-मीढ्वान् सप्तिः-न) जैसे[3] वीर्य सेचन—समर्थ घोड़ा[4] अपने तबेले में अन्न खाने का इच्छुक हुआ प्राप्त होता है (मनीषिभिः-विप्रेभिः-ऋक्वभिः-अनुमाद्यः) मन से सोचने वाला बुद्धिमानों स्तुतिकर्ताओं द्वारा अर्चनीय[5] है ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—कलिः (गुण कथनकर्ता) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१६९१. **वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्। तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥**

पदपाठः— **वयमेनमिदाह्यः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७२)

---

१. "मिषु सेचने" [भ्वादि०] "ततो ण्यत् प्रत्ययः कर्तरि" कृत्यल्युटो बहुलमिति वार्तिकेन।

२. "तिरोऽन्तर्धौ" [अष्टा० १.४.७०], "तिरो दधे-अन्तर्दधे" [निरु०]।

३. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

४. "सप्तिः-अश्वनाम" [निघं० १.१४]।

५. "मदति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।

१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति। सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥ २॥

पदपाठः— वृकः चित् अस्य वारणः उरामथिः उरा मथिः आ वयुनेषु भूषति स इमम् नः स्तोमम् जुजुषाणः आ गहि इन्द्र प्र चित्रया धिया॥ २॥

अन्वयः—वृकः-चित् उरामथिः वारणः अस्य वयुनेषु-आभूषति सः इन्द्र नः इमं स्तोमं जुजुषाणः चित्रया धिया प्र-आगहि॥

पदार्थः—(वृकः-चित्) चोर जन—भीतर कुछ बाहिर कुछ—वास्तविकता को न प्रकट करने वाला[१] कोई (उरामथिः) स्वदोषाच्छाद स्वभाव को मथने वाला[२] जन (वारणः) वरयिता वरने वाला बनकर[३] (अस्य वयुनेषु-आभूषति) इस परमात्मा के प्रज्ञानों—गुण सङ्केतों—गुणगानों में अपने को समन्तरूप से अलङ्कृत करता है—सजाता है (सः) वह तू (इन्द्र) परमात्मन् (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिसमूह को सेवन करने के हेतु (चित्रया धिया) विचित्र—चमत्कारी अपनी कृति एवं बुद्धि से (प्र-आगहि) प्राप्त हो॥ २॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—विश्वमित्रः (सबका मित्र सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)॥
देवता—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥
छन्दः—गायत्री॥

१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः। तद्वां चेति प्र वीर्यम्॥ १॥

पदपाठः— इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः तत् वाम् चेति प्र वीर्यम्॥ १॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी दिवः-रोचना वाजेषु परिभूषथः वाम् वीर्यं तत् प्रचेति॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (दिवः-रोचना) तू मोक्षधाम का प्रकाशक है (वाजेषु परिभूषथः) अर्चनावसरों में[४] सर्वतः भूषित होता है, (वाम्) तुझ को (वीर्यं तत् प्रचेति) तेरा जो गुण सामर्थ्य है वह तुझे जनाता है॥ १॥

---

१. "वृकः स्तेनाम" [निघं० ३.२४]।
२. "उरामथिः-उरणमथिः, उरणवान्, ऊर्णा वृणोतेरूणोतेर्वा" [निरु० ५.२१]।
३. "वञ् वरणे" [स्वादि०] ततः-ण्यश्छान्दसः।
४. "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।

१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः। ऋतस्य पथ्या ३ अनु॥ २॥

पदपाठः— इन्द्राग्नीअपसस्परि॥ २॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५७७)

१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च। युवोरप्तूर्यं हितम्॥ ३॥

पदपाठः— इन्द्राग्नीतविषाणिवाम्॥ ३॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५७८)

षष्ठ तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला)॥
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥ १॥

पदपाठः— कईंवेदसुतेसचा॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २९७)

१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे। न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा॥ २॥

पदपाठः— दाना मृगः न वारणः पुरुत्रा चरथम् दधे न किः त्वा नि यमत् आ सुते गमः महान् चरसि ओजसा॥ २॥

अन्वयः—दाना मृगः न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे सुते आगमः न किः-त्वा नियमत् महान्-ओजसा-चरसि॥

पदार्थः—(दाना) दान से[१] आत्मदान—आत्मसमर्पण द्वारा (मृगः) अन्वेषणीय[२] (न) इस जीवन में ही[३] (वारणः) वारक—वरने वाला[४] इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा (पुरुत्रा चरथं दधे) उपासक के बहुत अध्यात्म प्रसङ्गों में चरण—प्रापण—समागम धारण करता है (सुते) साक्षात् प्रसिद्ध होने के निमित्त (आगमः) तू आता है (न

---

१. ''टा विभक्तेः स्थाने-आकारादेशश्छान्दसः।''
२. ''मृग अन्वेषणे'' [चुरादि०]। ३. ''नः सम्प्रत्यर्थे'' [निरु० ६.८]।
४. ''वृञ् वरणे'' [स्वादि०] ल्युप्रत्यये नन्दनो यथा।

किः–त्वा नियमत्) न कोई तुझे रोक सकता है, कारण कि तू (महान्–ओजसा–चरसि) महान् है, निज आत्मबल से गति करता है ॥ २ ॥

१६९८. **य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः। यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यः उग्रः सन् अनिष्टृतः अ निष्टृतः स्थिरः रणाय सꣳस्कृतः सम् कृतः यदि स्तोतुः मघवा शृणवत् हवम् न इन्द्रः योषति आ गमत् ॥ ३ ॥**

अन्वयः—यः उग्रा–अनिष्टृतः स्थिरः सन् रणाय संस्कृतः स्तोतुः–हवम् यदि–यद्–इ मघवा शृणवत् इन्द्रः–न योषति आगमत् ॥

पदार्थः—(यः) जो (उग्रा–अनिष्टृतः) तेजस्वी नितान्त किसी प्रकार हिंसित न होने वाला—अविनाशी (स्थिरः) एकरस रहने वाला (सन्) होता हुआ (रणाय संस्कृतः) रमण करने के लिये[१] उपासना द्वारा सम्यक् उपासित या साक्षात्कृत है (स्तोतुः–हवम्) स्तुतिकर्ता के प्रार्थनावचन या आमन्त्रण को (यदि–यद्–इ) जब कि (मघवा शृणवत्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा सुन ले—सुन लेता है (इन्द्रः–न योषति) परमात्मा उपासक से पृथक् नहीं होता, किन्तु (आगमत्) उपासक को समन्तरूप से प्राप्त रहता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—निध्रुविः (नियत स्थिर वृत्ति वाला उपासक)॥ देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१६९९. **पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः। अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥**

पदपाठः— **पवमानाअसृक्षत सोमाः शुक्रासः इन्दवः अभिविश्वानिकाव्या ॥ १ ॥**

अन्वयः—पवमानाः शुक्रासः इन्दवः सोमाः विश्वानि काव्या असृक्षत ॥

पदार्थः—(पवमानाः) धारारूप में प्राप्त होने वाला (शुक्रासः) शुभ्र निर्मल अधर्माज्ञान दोषरहित (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण (सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा[२] (विश्वानि काव्या) सब वेदरूप काव्यों को[३] अभिलक्षित कर—उनके अनुसार

---

१. ''नाहमिन्द्राणि रारणे–नाहमिद्राणि रमे'' [निरु० ११.३१]।

२. सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्।

३. ''त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः'' [श० ८.५.२.७]।

उपासित हो उपासक के अन्दर (असृक्षत) पहुँचता है ॥ १ ॥

१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

पदपाठः— पवमानाः दिवः परि अन्तरिक्षान् असृक्षत पृथिव्याअधिसानवि ॥ २ ॥

अन्वयः—पवमानाः दिवः-अन्तरिक्षात् पृथिव्याः-अधिसानवि असृक्षत ॥

पदार्थः—(पवमानाः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा (दिवः-अन्तरिक्षात् परि) द्युलोक में अन्तरिक्षलोक में[1] (पृथिव्याः-अधिसानवि) पृथिवीलोक में वर्तमान इनके सम्भजन स्थान—उपासनास्थान—आत्मा के उपकरण मूर्धा[2] हृदय[3] और शरीर[4] में कर्मेन्द्रियगण में (असृक्षत) उपासना द्वारा पहुँचता है जिससे क्रमशः सद्विचार सद्भाव सदाचार प्रवाहित होता रहता है ॥ २ ॥

१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः। घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

पदपाठः— पवमानासः आशवः शुभ्राः असृग्रम् इन्दवः घ्नतः विश्वाः अप द्विषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—आशवः शुभ्राः पवमानासः इन्दवः विश्वाः-द्विषः अपघ्नन्तः असृग्रम् ॥

पदार्थः—(आशवः) व्यापनशील (शुभ्राः) शुभ्र—निर्मल (पवमानासः) धारारूप में प्राप्त होनेवाला (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (विश्वाः-द्विषः) सारी द्वेष-भावनाओं को (अपघ्नन्तः) नष्ट करता हुआ (असृग्रम्)[5] आत्मा के अन्दर पहुँचता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्र (सब का मित्र या सब जिसके मित्र हैं) ॥ देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता। इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

---

१. ''पञ्चम्याः परावध्यर्थे'' [अष्टा० ८.३.५१] इति सकारः।

२. ''एतद्वै प्रत्यक्षं दिवोरूपं यन्मूर्धा'' [जै० २.४०४]।

३. ''तद्यदस्मिन्निदं सर्वमन्तस्तः-यदन्तर्यक्षम्। अन्तर्यक्षं ह वै नामैतत्। तदन्तरिक्षमिति'' [जै० उ० १.६.१.५]।

४. ''यच्छरीरं सा पृथिवी'' [ऐ० आ० २.३.३]।

५. ''पुरुषवचनव्यत्ययश्छान्दसः।''

पदपाठः— **तोशा वृत्रहणा वृत्र हना हुवे सजित्वाना स जित्वाना अपराजिता अ पराजिता इन्द्राग्नी इन्द्र अग्नीइति वाजसातमा वाज सातमा ॥ १ ॥**

अन्वयः—तोशा 'तोशौ' वृत्रहणा सजित्वाना अपराजिता वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे ॥

पदार्थः—(तोशा 'तोशौ') दोषनाशक[1] (वृत्रहणा) पापहन्ता[2] (सजित्वाना) समान प्रभावक (अपराजिता) पराजित न होने वाला—सदा विजयी (वाजसातमा) अमृत अन्नभोग देने वाला[3] (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (हुवे) प्रार्थित करता हूँ—प्रार्थना में लाता हूँ ॥ १ ॥

१७०३. **प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ २ ॥**

पदपाठः— **प्रवामर्च्चन्त्युक्थिनः ॥ २ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५७५)

१७०४. **इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमकेन कर्मणा ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **इन्द्राग्नीनवतिम्पुरः ॥ ३ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५७६)

तृतीय तृच

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक)॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७०५. **उप त्वा रणवसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत। अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **उप त्वा रणवसंदृशम् रणव संदृशम् प्रयस्वन्तः सहस्कृत सहः कृत अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥**

अन्वयः—सहस्कृत-अग्ने प्रयस्वन्तः त्वा रणवसन्दृशम् गिरः-उपससृज्महे ॥

पदार्थः—(सहस्कृत-अग्ने) हे अध्यात्मबल से साक्षात् करने योग्य

१. "नितोशते वधकर्मा" [निघं० २.१९]।
२. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।
३. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (प्रयस्वन्तः) योगाभ्यासरूप प्रयत्नवान् हम उपासक[1] (त्वा रण्वसन्दृशम्) तुझ रमणीय स्वरूप को[2] (गिरः-उपससृज्महे) स्तुतियों[3] को उपसृष्टि करते हैं—उपहार देते हैं—समर्पित करते हैं ॥ १ ॥

१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्। अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥ २ ॥

पदपाठः— उप छायाम् इव घृणेः अगन्म शर्म ते वयम् अग्ने हिरण्यसंदृशः हिरण्य संदृशः ॥ २ ॥

अन्वयः—अग्ने ते घृणेः-हिरण्यसन्दृशः शर्म छायाम्-इव वयम्-उप-अगन्म ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन्! (ते घृणेः-हिरण्यसंदृशः) तुझ जाज्वल्यमान—दीप्त[4] अमृतस्वरूप[5] के (शर्म छायाम्-इव वयम्-उप-अगन्म) वृक्ष छाया समान घर[6]—आश्रय को हम उपाश्रित करें पास प्राप्त करें ॥ २ ॥

१७०७. य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥

पदपाठः— यः उग्रः इव शर्यहा शर्य हा तिग्मशृङ्गः तिग्म शृङ्गः न वꣳसगः अग्ने पुरः रुरोजिथ ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः शर्यहा-उग्रः-इव वंसगः-तिग्मशृङ्गः-न अग्ने पुरः-रूरोजिथ ॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (शर्यहा-उग्रः-इव) शर्य—इषु—वाण[7] से हनन करने वाले शस्त्रधारी उग्र—बलवान् के समान प्रहारकर्ता (वंसगः-तिग्मशृङ्गः-न) कमनीय—यथेष्टमार्ग को जाने वाला[8] तीक्ष्ण सींगों वाले साण्ड के समान आगे आने वाले के अङ्ग-भङ्ग करता हुआ (अग्ने) परमात्मन्! तू (पुरः-रूरोजिथ) हमारे मनो को[9] निरुद्ध कर ॥ ३ ॥

---

१. "यसु प्रयत्ने" [दिवादि०] प्रपूर्वात् क्वपि रूपम्।
२. 'रण रमणे' "रणाय चक्षसे....रमणीयाय चक्षसे" [निरु० ९.२६]।
३. "स्तुतयो गिरो गृणातेः" [निरु० १.१०]।
४. "घृणिः-ज्वलतो नाम" [निघं० १.१७]।
५. "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० ५.२.७.२]।
६. "शर्म गृहनाम" [निघं० ३.४]।
७. "शर्या इषवः शरमय्यः" [निरु० ५.४]।
८. "वनोति कान्तिकर्मा" [निघं० २.६] ततो बाहुलकात् सः प्रत्ययः [उणा० ३.६२]।
९. "मन एव पुरः" [श० १०.२.६.५१]।

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—वैश्वानरोऽग्निः (विश्वनायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे॥ १ ॥

पदपाठः— ऋतावानम् वैश्वानरम् वैश्व नरम् ऋतस्य ज्योतिषः पतिम् अजस्रम् अ जस्रम् घर्मम् ईमहे॥ १ ॥

अन्वयः—ऋतावानम् ऋतस्य ज्योतिषः-पतिम् अजस्रं घर्मम्-ईमहे॥

पदार्थः—(ऋतावानम्) अमृत वाले मोक्षानन्द देने वाले[1]—(ऋतस्य ज्योतिषः-पतिम्) अमृतज्ञान ज्योति के स्वामी (अजस्रं घर्मम्-ईमहे) आलस्य अनश्वर तेजोरूप[2] अमृतानन्द परमात्मा को माँगते हैं॥ १ ॥

१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्। ऋतूनुत्सृजते वशी॥ २ ॥

पदपाठः— यः इदम् प्रतिपप्रथे प्रति पप्रथे यज्ञस्य स्वः उत्तिरन् उत् तिरन् ऋतून् उत सृजते वशी॥ २ ॥

अन्वयः—यज्ञस्य स्वः-उत्तिरन् यः इदं प्रतिपप्रथे वशी ऋतून्-उत्सृजते॥

पदार्थः—(यज्ञस्य स्वः-उत्तिरन्) उपासकों के अध्यात्मयज्ञ के सुखफल को देने के हेतु (यः) जो विश्वनायक परमात्मा (इदं प्रतिपप्रथे) इस जगत् को पुनः पुनः प्रथित करता है—मनुष्यों के कर्म करणार्थ (वशी ऋतून्-उत्सृजते) वह वशकर्ता परमात्मा जगत् में ऋतुओं को उत्सर्जित करता है—उत्पन्न करता है पुनः मोक्ष की ओर भी ले जाता है॥ २ ॥

१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति॥ ३ ॥

पदपाठः— अग्निः प्रियेषु धामसु कामः भूतस्य भव्यस्य संम्राट् सम् राट् एकः वि राजति॥ ३ ॥

अन्वयः—प्रियेषु धामसु भूतस्य भव्यस्य कामः 'कामस्य' एकः सम्राट्-

---

१. ''ऋतममृतमित्याह'' [जै० २.१५०]।

२. ''तेजो घर्मः'' [मै० २.२.८]।

अग्नि:-विराजति ॥

पदार्थ:—(प्रियेषु धामसु) प्रिय मन नेत्र आदि अङ्गों में[1] (भूतस्य भव्यस्य काम: 'कामस्य') हुए और आगे होने वाले काम—इच्छाभाव[2] का (एक: सम्राट्-अग्नि:-विराजति) अकेला सम्राट् परमात्मा विराजमान है ॥ ३ ॥

इति अष्टादशोऽध्याय: ॥ १८ ॥

---

१. "ईमहे याञ्चाकर्मा" [निघं० ३.१९]।

२. "अङ्गानि वै धामानि" [श० ४.३.४.१]

अथ एकोनविंश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आङ्गिरसो विरूपः (अङ्गों के प्रेरण नियन्त्रण में कुशल विशेषरूप में परमात्मा को निरूपित करने वाला)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां ३ स्वाम्। कविर्विप्रेण वावृधे॥ १ ॥

पदपाठः— अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानः तन्वम् स्वाम् कविर्विप्रेणवावृधे॥ १ ॥

अन्वयः—कविः-अग्निः प्रत्नेन जन्मना स्वां तन्वं शुम्भानः विप्रेण वावृधे॥

पदार्थः—(कविः-अग्निः) सर्वज्ञ अग्रणायक परमात्मा (प्रत्नेन जन्मना) पुरातनशाश्वतिक—स्वाभाविक अभौतिक प्रादुर्भाव से या पुरातन स्वाभाविक कर्म से[1] या दिव—मोक्षधाम वाले[2] अमृतस्वरूप से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपनी तनुरूप उपासक आत्मा को[3] शोभित करने वाला (विप्रेण वावृधे) मेधावी उपासक द्वारा स्तुत हुआ—स्तुति में लाया हुआ बढ़ता है—महत्त्व को प्राप्त होता है—उपासक के अन्दर साक्षात् होता है॥ १ ॥

१७१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम्। अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे॥ २ ॥

पदपाठः— ऊर्जोंनपातमाहुवे अग्निम् पावकशोचिषम् पावक शोचिषम् अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे सु अध्वरे॥ २ ॥

अन्वयः—अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञं ऊर्जः-नपातम् पावक-शोचिषम् अग्निम् आहुवे॥

---

१. ''जन्मसु कर्मसु'' [निरु० ११.२३]।

२. ''असौ वै द्युलोकः प्रत्नम्'' [मै० १.२.५], ''त्रिपादस्यामृतं दिवि'' [ऋ० १०.९०.३]।

३. ''वृणुते तनूं स्वाम्'' [कठो० २.२३, मुण्ड० ३.२.३], ''य आत्मनि तिष्ठन्-यस्यात्मा शरीरम्'' [श० १४.७.६.३०], ''आत्मा वै तनूः'' [श० ६.७.२.६]।

पदार्थः—(अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञं) इस शोभन प्राणप्रद[1] अध्यात्मयज्ञ में (ऊर्जः-नपातम्) अध्यात्मरस[2] के न गिराने वाले (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (अग्निम्) अग्रणायक परमात्मा को (आहुवे) आमन्त्रित करता हूँ॥ २॥

१७१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा। देवैरा सत्सि बर्हिषि॥ ३॥

पदपाठः— सः नः मित्रमहः मित्र महः त्वम् अग्ने शुक्रेण शोचिषा देवैः आ सत्सि बर्हिषि॥ ३॥

अन्वयः—सः-त्वम् मित्रमहः-अग्ने शुक्रेण शोचिषा देवैः बर्हिषि आ सत्सि॥

पदार्थः—(सः-त्वम्) वह तू (मित्रमहः-अग्ने) स्नेह करने वाले उपासकों के प्रशंसनीय स्तुतियोग्य अग्रणायक परमात्मन्! (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल दीप्ति से[3] (देवैः) अपने दिव्यगुणों के साथ (बर्हिषि) हृदयाकाश में (आ सत्सि) आ बैठ॥ ३॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए का अनुसरणकर्ता उपासक)॥
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः। नुदस्व याः परिस्पृधः॥ १॥

पदपाठः— उत् ते शुष्मासः अस्थुः रक्षः भिन्दन्तः अद्रिवः अ द्रिवः नुदस्व याः परिस्पृधः परि स्पृधः॥ १॥

अन्वयः—अद्रिवः ते शुष्मासः रक्षः-भिन्दन्तः उद्-अस्थुः याः-स्पृधः परि नुदस्व॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे स्तुतिकर्त्ताओं वाले[4] (ते शुष्मासः) तेरे बल वेगशक्ति—प्रवाह (रक्षः-भिन्दन्तः) अपने को जिससे रक्षित रखना बचाना ऐसे काम आदि दोष को विदीर्ण करने के हेतु (उद्-अस्थुः) उठ रहे हैं (याः-स्पृधः) जो हमारी स्पर्द्धा करने वाली विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं उन्हें (परि नुदस्व) परे निकाल दे॥ १॥

१७१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते। स्तवा अबिभ्युषा हृदा॥ २॥

---

१. ''प्राणोऽध्वरः'' [श० ७.२.१.५]। २. ''ऊर्ग्वै रसः'' [श० ५.१.२.८]।
३. ''शोचिः-ज्वलतो नाम'' [निघं० १.१०]।
४. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [काठ० १.५]।

पदपाठः— **अया निजघ्निः निज घ्निः ओजसा रथसङ्गे रथ सङ्गे धने हिते स्तवै अबिभ्युषा अ बिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥**

अन्वयः—अया-ओजसा निजघ्निः रथसङ्गे धने हिते अबिभ्युषा हृदा स्तवै ॥

पदार्थः—(अया-ओजसा) इस स्वात्मबल से—इसके आधार पर (निजघ्निः) पापों का हननकर्त्ता है[1] (रथसङ्गे धने हिते) मेरे साथ रमणीय सङ्ग में अन्तर्हित—अन्दर रखे अध्यात्म धन—मोक्षैश्वर्य के निमित्त (अबिभ्युषा हृदा स्तवै) भयरहित—सङ्कोचरहित हृदय से—मन से तेरी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१७१६. **अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अस्य व्रतानि न आधृषे आ धृषे पवमानस्य दूढ्या रुज यः त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अस्य पवमानस्य व्रतानि दूढ्या न-आधृषे यः-त्वा पृतन्यति रुजः ॥

पदार्थः—(अस्य पवमानस्य) इस धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा के (व्रतानि) कर्मों[2] नियमों को (दूढ्या) दुष्टबुद्धि—अन्यथा विचार से (न-आधृषे) कोई भी नहीं दबा सकता है (यः-त्वा पृतन्यति) जो तुझे—तेरे साथ संग्राम चाहता है परमात्मन्! तू उसे (रुजः) भग्न कर देता है ॥ ३ ॥

१७१७. **तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥**

पदपाठः— **तम् हिन्वन्ति मदच्युतम् मद च्युतम् हरिम् नदीषु वाजिनम् इन्दुम् इन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—तम् मदच्युतम् हरिम् वाजिनम् मत्सरम् इन्दुम् इन्द्राय नदीषु हिन्वन्ति ॥

पदार्थः—(तम्) उस—(मदच्युतम्) हर्ष बहाने वाले (हरिम्) दुःखहर्ता—(वाजिनम्) बलवान्—(मत्सरम्) आनन्दस्वरूप—(इन्दुम्) दीप्त परमात्मा को (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (नदीषु हिन्वन्ति) स्तुतिधाराओं में[4] उपासकजन प्राप्त करते हैं[5] ॥ ४ ॥

---

१. "आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च" [अष्टा० ३.२.१७१] किः प्रत्ययः।

२. "व्रतं कर्मनाम" [निघं० २.१]।

३. "धीः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९]।

४. "नदः-नदतेः स्तुतिकर्मणः" [निरु० ५.२], "नदति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।

५. "हिन्वन्ति....आप्नुवन्ति" [निरु० १.२०]।

तृतीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र और सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१७१८. **आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा केचिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥ १॥**

पदपाठः— **आमन्द्रैरिन्द्रहरिभिः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४६)

१७१९. **वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः। स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः॥ २॥**

पदपाठः— **वृत्रखादो वृत्र खादः वलम्ँरुजः बलम् रुजः पुराम् दर्मः अपाम् अजः स्थाता रथस्य हर्योः अभिस्वरे अभि स्वरे इन्द्रः दृढा चित् आरुजः आ रुजः॥ २॥**

अन्वयः—इन्द्रः वृत्रखादः वलं रुजः पुरां दर्मः अपाम्-अजः रथस्य स्थाता हर्योः-अभिस्वरः दृढाचित्-आरुजः॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वृत्रखादः) पाप का भक्षकनाशक[1] (वलं रुजः) वरण—वारक—अज्ञान भञ्जक[2] (पुरां दर्मः) मन का विदीर्णकर्ता—मनोवृत्तिहर्त्ता[3] (अपाम्-अजः) कामनाओं[4] वासनाओं को निकाल फेंकने वाला (रथस्य स्थाता) रमणीय[5] मोक्षानन्द का स्थापक—प्राप्त कराने वाला (हर्योः-अभिस्वरः) ऋक् और साम[6]—स्तुति और उपासना के अर्चन—सेवन में[7] (दृढाचित्-आरुजः) दृढ़ दुर्वृत्तियों का भी अस्तव्यस्त करने वाला है॥ २॥

१७२०. **गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव। प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्याइवाशत॥ ३॥**

---

१. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।
२. "वलं वृणोतेः" [निरु० ६.२]।
३. "मन एव पुरः" [श० १०.३.५.७]।
४. "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०.५.४.१५]।
५. "रथो......रममाणोऽस्मिन् तिष्ठतीति" [निरु० ९.११]।
६. "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २.२४]।
७. "स्वरति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]।

पदपाठः— गम्भीरान् उदधीन् उत धीन् इव क्रतुम् पुष्यसि गाः इव प्र सुगोपाः सु गोपाः यवसम् धेनवः यथा ह्रदम् कुल्याः इव आशत ॥ ३ ॥

अन्वयः—गम्भीरान्-उदधीन्-इव गाः-इव सुगोपाः क्रतुं पुष्यसि धेनवः-यथा यवसम् कुल्याः-इव ह्रदम्-आशत ॥

पदार्थः—(गम्भीरान्-उदधीन्-इव) हे परमात्मन्! तू गहरी जलधाराओं को जैसे, तथा (गाः-इव) गौओं को जैसे (सुगोपाः) अच्छा रक्षक राजा रक्षित करता है उनकी रक्षा करता है ऐसे तू (क्रतुं पुष्यसि) प्रज्ञावान्[1] उपासक को पुष्ट करता है (धेनवः-यथा यवसम्) गौएँ जैसे घास को (कुल्याः-इव ह्रदम्-आशत) नहरें जैसे महान् जलाशय—नद को प्राप्त होती हैं ऐसे तुझे उपासक प्राप्त होते हैं[2] ॥ ३ ॥

चतुर्थ द्व्यृच

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में अतनगमन-प्रवेश करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१७२१. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥

पदपाठः— यथागौरोअपाकृतम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २५२)

१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते। आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥ २ ॥

पदपाठः— मन्दन्तु त्वा मघवन् इन्द्र इन्दवः राधोदेयाय राधः देयाय सुन्वते आमुष्य आ मुष्य सोमम् अपिबः चमूइति सुतम् ज्येष्ठम् तत् दधिषे सहः ॥ २ ॥

अन्वयः—मघवन्-इन्द्र त्वा इन्दवः-मदन्तु राधः-देयाय सुन्वते आमुष्य सोमम्-अपिबः चमू सुतम् तत्-ज्येष्ठे सहः-दधिषे ॥

पदार्थः—(मघवन्-इन्द्र) हे अध्यात्मयज्ञ के आधार परमात्मन्! (त्वा) तुझे (इन्दवः-मदन्तु) आर्द्रभावनापूर्ण उपासनारस हर्षित करे (राधः-देयाय सुन्वते) राधनीय—साधनीय मोक्ष देय दातव्य जिससे है अतः उपासनारस निष्पादन करते

---

१. "कतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९]।

२. उपमेयलुप्तालङ्कारः।

हुए उपासक के लिये (आमुष्य सोमम्-अपिबः) सामने आ—साक्षात् होकर[१] उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर—करता है पर निश्चय है, और (चमू सुतम्) चमनी—आचमनी[२] वाक्—वाणी के अन्दर निष्पन्न किया है उसे स्वीकार कर (तत्-ज्येष्ठे सहः-दधिषे) मुझ उपासक के अन्दर उस अपने श्रेष्ठ साहस को[३] धारण कराता है ॥ २ ॥

पञ्च द्वयृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के अन्दर अत्यन्त गतिशील)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१७२३. **त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **त्वमङ्गप्रशꣳसिषः ॥ १ ॥**
(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २४७)

१७२४. **मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्। विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २ ॥**

पदपाठः— **मा ते राधाꣳसि मा ते ऊतयः वसो अस्मान् कदा च न दभन् विश्वा च नः उपमिमीहि उप मिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्यः आ ॥ २ ॥**

अन्वयः—वसो ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दभन् ते-ऊतयः मानुष च नः-चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ-उपमिमीहि ॥

पदार्थः—(वसो) हे वसाने वाले परमात्मन्! (ते राधांसि) तेरे ज्ञान आदि धन (अस्मान् कदाचन) हमें कभी भी (मा दभन्) नहीं दबाते—नहीं सताते (ते-ऊतयः) तेरी रक्षाएँ हमें कभी नहीं दबाती—सताती हैं अन्य जन को सता सकती हैं (मानुष) हे हम मननशील उपासकों के हितकर परमात्मन्! (च) और (नः-चर्षणिभ्यः) हम दर्शनेच्छुकों के (विश्वा वसूनि) सब वसाने वाले निर्वाहक धनों को भी (आ-उपमिमीहि) समन्तरूप में उपस्थापित कर ॥ २ ॥

---

१. ''आमुष्य उपसर्गबलाद्धातोरर्थविकरणं 'विशिष्टत्वकरणं' भवति'' [निरु० १.३]।
२. ''कृषिचमितरतिधविसनिखनिभ्यः-ऊः स्त्रिमाम्'' [उणा० १.८०]।
३. ''सहोऽसि सहो मयि धेहि'' [यजु० १९.९]।

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)॥ देवता—उषाः[1](परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मा की ज्योति)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता॥ १॥

पदपाठः— प्रति स्या सूनरी सु नरी जनी व्युच्छन्ती वि उच्छन्ती परि स्वसुः दिवः अदर्शि दुहिता॥ १॥

अन्वयः—स्या सूनरी जनी स्वसुः परि व्युच्छन्ती दिवः-दुहिता प्रति-अदर्शि॥

पदार्थः—(स्या) वह परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (सूनरी) उपासकों की सुनेतृत्व करने वाली (जनी) उत्तम जीवन देने वाली (स्वसुः परि) सम्यक् अज्ञान को फेंकने वाली[2] मानवीय ज्ञान से ऊपर (व्युच्छन्ती) अन्दर प्रकाशित होती हुई (दिवः-दुहिता प्रति-अदर्शि) मोक्षधाम की दोहने वाली उपासक के अन्दर प्रत्यक्ष होती हैं॥ १॥

१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखा भूदश्विनोरुषाः॥ २॥

पदपाठः— अस्वा इव चित्रा अरुषी माता गवाम् ऋतावरी सखा स खा भूत् अश्विनोः उषाः॥ २॥

अन्वयः—उषाः अश्वा-इव चित्रा अरुषी गवां माता ऋतावरी अश्विनोः-सखाः-अभूत्॥

पदार्थः—(उषाः) परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (अश्वा-इव) व्यापनशील[3] (चित्रा) चायनीया दर्शनीया (अरुषी) आरोचमान[4] (गवां माता) स्तोताओं[5] का मान करने वाली (ऋतावरी) अमृत वाली[6] (अश्विनोः-सखाः-अभूत्) श्रोत्रों—कानों[7] की सखा—समान ख्यान धर्म वाली है कान सुनते हैं वह भी उपासक की स्तुति सुनती है॥ २॥

---

१. "अत्र स्त्रीलिङ्गे परमात्मरूपादीप्तिर्लक्ष्यते यथाऽन्यत्र वागम्भृणी पारमेश्वरी" [ऋ० १०.१२५]।

२. "स्वसा-सु-असा" [निरु० ११.३३]।

३. "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १.१०]।

४. "अरुषीरारोचनाः" [निरु० २.१६]।

५. "गौः स्तोतृनाम" [निघं० २.१६]।

६. "ऋतममृतमित्याह" [जै० १६०]।

७. "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १.९.१.१३]।

१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे॥ ३॥

पदपाठः— उत सखा स खा असि अश्विनोः उत माता गवाम् असि उत उषः वस्वः ईशिषे॥ ३॥

अन्वयः—उत-अश्विनोः सखा-असि उत गवां माता उत उषः वस्वः-ईशिषे॥

पदार्थः—(उत-अश्विनोः सखा-असि) हाँ तू कानों की सखा—समान ख्यान—समान धर्म वाली है (उत गवां माता) और स्तुतिकर्ताओं का मान करने वाली है (उत) और (उषः) तू परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (वस्वः-ईशिषे) जगत् की वस्तुमात्र का[1] स्वामित्व करती है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—प्रस्कण्वः (मेधावी का पुत्र[2] प्रकृष्ट मेधावी उपासक)॥ देवता—अश्विनौ देवते (ज्ञानप्रकाशस्वरूप एवं आनन्दरसरूप दोनों धर्म वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत्॥ १॥

पदपाठः— एषोउषाअपूर्व्या॥ १॥

अन्वयः—एषा-उ-उषाः अपूर्व्या प्रिया दिवः-व्युच्छति अश्विना वां बृहत् स्तुषे॥

पदार्थः—(एषा-उ-उषाः) अहो यह उषा—परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (अपूर्व्या प्रिया) सर्वश्रेष्ठ समाधि प्रज्ञा में साक्षात् होने वाली तृप्तिकारी (दिवः-व्युच्छति) मोक्षधाम से[3] उपासक के अन्दर प्रकाशित हो रही है (अश्विना वां बृहत् स्तुषे) हे ज्ञानज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन्! तुझे—तेरी बड़ी स्तुति करता हूँ॥ १॥

१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा॥ २॥

पदपाठः— या दस्रा सिन्धुमातरा सिन्धु मातरा मनोतरा रयीणाम् धिया देवा वसुविदा वसु विदा॥ २॥

---

१. "यद्वै किञ्च विन्दते तद् वसु" [काठ० १०.६]।

२. "प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" [निरु० ३.१७]।

३. "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।

अन्वयः—या दस्रा सिन्धुमातरा रयीणां मनोहरा धिया वसुविदा देवा॥

पदार्थः—(या दस्रा) जो दर्शनीय[1] (सिन्धुमातरा) स्यन्दमान उपासनारस का मान कराने वाले जिसके हैं ऐसा दोनों धर्मों युक्त (रयीणां मनोहरा) धनों के मन को धन संग्रह के मनो विचार को हराने हटाने वाला (धिया वसुविदा) ध्यान धारणा से वसाने योग्य वस्तु को प्राप्त कराने वाला (देवा) इष्टदेव उपास्य ज्योतिस्वरूप आनन्दरसरूप परमात्मा है॥ २॥

१७३०. **वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात्॥ ३॥**

पदपाठः— **वच्यन्ते वाम् ककुहासः जूर्णायाम् अधि विष्टपि यत् वाम् रथः विभिः पतात्॥ ३॥**

अन्वयः—ककुहासः जूर्णायाम् अधिविष्टपि वां वच्यन्ते यत्–वाम्–रथः विभिः–पतात्॥

पदार्थः—(ककुहासः) महान् आत्मा जीवन्मुक्त[2] (जूर्णायाम्) जीर्ण तनु अन्तिम देह समाप्त हो जाने पर (अधिविष्टपि) मोक्षधाम में[3] (वां वच्यन्ते) तुझ परमात्मा को प्राप्त होते हैं[4] (यत्–वाम्–रथः) जो तेरा रमणस्थान मोक्ष (विभिः–पतात्) उपासकों द्वारा प्राप्त किया जाता है[5]॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोमतः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)॥ देवता—उषाः (परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति)॥ छन्दः—उष्णिक्॥

१७३१. **उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तनयं च धामहे॥ १॥**

पदपाठः— **उषः तत् चित्रम् आ भर अस्मभ्यम् वाजिनीवति येन तोकम् च तनयम् च धामहे॥ १॥**

अन्वयः—वाजिनीवति–उषः अस्मभ्यम् तत्–चित्रम्–आभर येन तोकं तनयं

---

१. ''दस दर्शने'' [चुरादि०], ततो रक् [उणा० २.१३]।
२. ''ककुहो महन्नाम'' [निघं० ३.३]।
३. ''तदेव ब्रध्नस्य विष्टपं तस्मिन्नेतद् देवाः सर्वान् कामान् दुहे'' [जै० ३.३३९], ''यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। तत्र माममृतं कृधि'' [ऋ० ९.११३.१०]।
४. ''वञ्चु गत्यर्थः'' [भ्वादि०] कर्तरि कर्मप्रत्ययश्छान्दसः।
५. ''कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः।''

च धामहे ॥

पदार्थः—(वाजिनीवति-उषः) हे अमृत अन्न वाली परमात्मदीप्ति! या परमात्मज्योति! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (तत्-चित्रम्-आभर) उस चायनीय दर्शनीय अमृत अन्नभोग को आभरित कर (येन) जिससे (तोकं तनयं च धामहे) तोदने व्यथित करने वाले मन को[1] और इन्द्रियगण को[2] तेरे अन्दर धरते समर्पित करते हैं ॥ १ ॥

१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि। रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

पदपाठः— उषः अद्य अ द्य इह गोमति अश्वावति विभावरि वि भावरि रेवत् अस्मेइति वि उच्छ सूनृतावति सु नृतावति ॥ २ ॥

अन्वयः—उषः अद्य इह गोमति अश्वावति विभावरि सुनृतावति अस्मे रेवत्-व्युच्छ ॥

पदार्थः—(उषः) हे परमात्मस्वरूप दीप्ति! या परमात्मज्योति! तू (अद्य) आज—अब (इह) इस जीवन में (गोमति) वाक्—विद्या वाली—ज्ञान देने के लिये (अश्वावति) व्यापनशील मन वाली—मननशक्ति देने के लिये (विभावरि) विशेष मति वाली—विशिष्ट बुद्धि या सूझ देने के लिये (सुनृतावति) उत्तम वाणी वाली सुसंयत सत्यवाणी देने के लिये (अस्मे) हमारे लिये[3] (रेवत्-व्युच्छ) वीर्य[4] आत्मबलयुक्त प्रकट हो—साक्षात् हो ॥ २ ॥

१७३३. युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः। अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥

पदपाठः— युंक्ष्व हि वाजिनीवति अश्वान् अद्य अ द्य अरुणान् उषः अथ नः विश्वा सौभगानि सौ भगानि आ वह ॥ ३ ॥

अन्वयः—वाजिनीवति-उषः अरुणान्-अश्वान् युङ्क्ष्वहि अथ नः विश्वा सौभगानि आवह ॥

---

१. ''तोकं तुद्यतेः, तनयं तनोतेः'' [निरु० १०.७]।

२. ''तुद व्यथने'' [तुदादि०], ''तनु श्रद्धोपकरणयोः'' [चुरादि०] उपकरणम्-इन्द्रियम्।

३. ''सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे.....'' [अष्टा० ७.१.३९] इति शे।

४. ''वीर्यं वै रयिः'' [श० १३.४.२.१३], ''रयेर्मतौ सम्प्रसारणम्'' [अष्टा० ६.१.३४ पर वार्तिक]।

पदार्थः—(वाजिनीवति-उषः) हे अमृत अन्नभोग वाली परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति! तू आज (अरुणान्-अश्वान् युङ्क्ष्वहि) ओरोचन[1] ज्ञान से प्रकाशमान तथा ईश्वर[2] इन्द्रिय संयम में प्रकृष्टयुक्त समर्थ उपासकों को अपने में अवश्य युक्त कर (अथ) अनन्तर (नः) हमारे लिये (विश्वा सौभगानि) सारे सौभाग्यों को (आवह) ले आ—प्राप्त करा॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—गोमतः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)॥
देवता—अश्विनौ (ज्ञानज्योतिस्वरूप और आनन्दरसपूर्ण परमात्मा)॥
छन्दः—उष्णिक्॥

१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्त्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्॥ १॥

पदपाठः— अश्विना वर्त्तिः अस्मत् आ गोमत् दस्त्रा हिरण्यवत् अर्वाग्रथꣳसमनसानियच्छतम्॥ १॥

अन्वयः—दस्त्रा-अश्विना अस्मत्-वर्त्तिः गोमत् हिरण्यवत् रथम् अर्वाक् समनसा नियच्छतम्॥

पदार्थः—(दस्त्रा-अश्विना) हे दर्शनीय ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप परमात्मन्! (अस्मत्-वर्त्तिः) हमारा[3] अध्यात्ममार्ग[4] (गोमत्) स्तुति वाला[5] (हिरण्यवत्) अमृत वाला[6]—अमृतानन्द वाला हो (रथम्) इस अध्यात्ममार्ग में रथरूप अपने रमणीय स्वरूप को (अर्वाक्) इधर—हमारी ओर (समनसा) समान मन हुआ (नियच्छतम्) नियतकर स्थिर कर॥ १॥

१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्त्रा हिरण्यवर्त्तनी। उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये॥ २॥

पदपाठः— आ इह देवा मयोभुवा मयः भुवा दस्त्रा हिरण्यवर्त्तनी हिरण्य वर्त्तनीइति उषर्बुधः उषः बुधः वहन्तु सोमपीतये सोम पीतये॥ २॥

---

१. "अरुष आरोचनः" [निरु० ५.२१]।
२. "ईश्वरो वा अश्वः प्रयुक्तः परा परावतो गन्ता" [तै० ३.८.९.३]।
३. "सुपां सुलुक्....." [अष्टा० ७.१.३२] इति अस्मत् शब्दात् षष्ठीविभक्तेर्लुक्।
४. "वर्तते गतिकर्मा" [निघं० २.१४], "वृतेश्छन्दसि-इन्" [उणा० ४.१४१]।
५. "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
६. "अमृतं वै हिरण्यम्" [श० ९.४.४.५]।

अन्वयः—मयोभुवा हिरण्यवर्तनी दस्रा देवा इह उषर्बुधः सोमपीतये आवहन्तु ॥

पदार्थः—(मयोभुवा) हे सुखों को भावित करने वाले—(हिरण्यवर्तनी) हृदयरमण मार्ग वाले[1]—(दस्रा) दर्शनीय (देवा) दिव्य गुण वाले—परमात्मन्! (इह) इस अध्यात्ममार्ग में चलने, वर्तमान (उषर्बुधः) तेरी ज्योति को समझने वाले उपासकजन (सोमपीतये) उपासनारस को पान कराने—स्वीकार कराने के लिये (आवहन्तु) तुझे प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१७३६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः । आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— यौ इत्था श्लोकम् आ दिवः ज्योतिः जनाय चक्रथुः आ नः ऊर्जम् वहतम् अश्विना युवम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यौ इत्था श्लोकं ज्योतिः दिवः युवम् 'युवाम्'-अश्विना जनाय चक्रथुः नः ऊर्जम्–आवहतम् ॥

पदार्थः—(यौ) जो ज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा (इत्था) सत्य[2]—अविनाशी (श्लोकं ज्योतिः) प्रशंसनीय या ज्ञान ज्योति को[3] (दिवः) मोक्षधाम से (युवम् 'युवाम्'-अश्विना) तू हे ज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन्! (जनाय चक्रथुः) उपासकजन के लिये प्रकाशित करता है (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्–आवहतम्) अध्यात्मरस को प्राप्त करा ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसुश्रुतः (वसाने वाले परमात्मा का श्रवण किया जिसने ऐसा उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—पंक्तिः ॥

१७३७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्निन्तम्मन्येयोवसुः ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४२५)

---

१. "हिरण्यं.....हृदयरमणम्" [निरु० २.१०]।

२. "इत्था सत्यनाम" [निघं० ३.१०]।

३. "श्लोकः-वाङ्नाम" [निघं० १.३१]।

१७३८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः। अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ २॥

पदपाठः— अग्निः हि वाजिनम् विशे ददाति विश्वचर्षणिः विश्व चर्षणिः अग्निः राये स्वाभुवम् सु आभुवम् सः प्रीतः याति वार्यम् इषꣳस्तोतृभ्यआभर॥ २॥

अन्वयः—विश्वचर्षणिः-अग्निः-हि विशे वाजिनं ददाति सः-अग्निः प्रीतः राये स्वाभुवं याति स्तोतृभ्यः-इषम् आभर॥

पदार्थः—(विश्वचर्षणिः-अग्निः-हि) सर्वद्रष्टा अग्रणायक परमात्मा ही (विशे) उसमें विष्ट-प्रविष्ट उपासक प्रजाजन[1] के लिये (वाजिनं ददाति) आत्मबल को देता है[2] (सः-अग्निः) वह अग्रणायक परमात्मा (प्रीतः) प्रसन्न हुआ (राये स्वाभुवं याति) उसमें रमण करने वाले या रमणीय[3] प्रिय उपासक के लिये अपने सम्यक् प्रकटरूप—साक्षात् स्वरूप को[4] प्राप्त कराता है[5] (स्तोतृभ्यः-इषम् आभर) स्तुतिकर्ताओं के लिये एषणीय सुख को आभरित कर॥ २॥

१७३९. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः। समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ३॥

पदपाठः— सः अग्निः यः वसुः गृणे सम् यम् आयन्ति आ यन्ति धेनवः सम् अर्वन्तः रघुद्रुवः रघु द्रुवः सम् सुजातासः सु जातासः सूरयः इषꣳस्तोतृभ्यआभर॥ ३॥

अन्वयः—सः-अग्निः यः-वसुः-गृणे यं धेनवः सम्-आयन्ति रघुद्रुवः-अर्वन्तः सुजातासः सूरयः सम् स्तोतृभ्यः-इषम्-आभर॥

पदार्थः—(सः-अग्निः यः-वसुः-गृणे) वह अग्रणायक परमात्मा जो मोक्षधाम में वसाने वाला उपासकों द्वारा स्तुत किया जाता है (यं धेनवः सम्-आयन्ति) जिसे स्तुतिवाणियाँ[6] सम्यक् प्राप्त करती हैं (रघुद्रुवः-अर्वन्तः) मृदुगति करने वाले एवं

---

१. ''आद्या ही मनः प्रजाविशः'' [श० ४.२.१.१७]।
२. वाजिनशब्दोऽकारान्तो बलार्थः, यथा ''वाजिना वाजिनम्'' [मै० १.१०.१]।
३. ''राये.....'' [ऋ० १.८४.१७] अत्र निरुक्तम् ''राय-रणाय रमणीय'' [निरु० १४.३९]।
४. 'सु-आभुवम्' इति पदपाठः, सु-आभूः-सम्यक् प्रकटभावः, यथा ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' [ऋ० १०.१२९.७], ''प्राणं वा अनुप्रजाः पशव आभवन्ति'' [जै० ३०२.२.४]।
५. याति-यापयन्ति अन्तर्गतणिजर्थः।
६. ''धेनुः-वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

प्रेरणा वाले[1] अपने को अर्पित करने वाले (सुजातासः सूरयः सम्) शुद्ध संयत स्तुतिकर्ता[2] सम्यक् प्राप्त करते हैं (स्तोतृभ्यः-इषम्-आभर) उन स्तुतिकर्ताओं के लिये एषणीय सुख को आभरित कर॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सत्यश्रवाः (सत्यस्वरूप परमात्मा श्रवणीय है जिसका)॥ देवता—उषाः (परमात्मा की दीप्ति या ज्योतिः)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७४०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती। यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥ १॥

पदपाठः— महेनोअद्यबोधय॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४२१)

१७४१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः। सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥ २॥

पदपाठः— या सुनीथे सु नीथे शौचद्रथे शौचत् रथे व्यौच्छः वि औच्छः दुहितः दिवः सा वि उच्छ सहीयसि सत्यश्रवसिवाय्ये सुजातेअश्वसूनृते॥ २॥

अन्वयः—या सुनीथे शौचद्रथे दिवः-दुहितः व्यौच्छ सा सहीमसि व्युच्छ सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते॥

पदार्थः—(या) जो तू परमात्मा की दीप्ति या ज्योति! (सुनीथे) हे अध्यात्ममार्ग में शोभननेत्री—सम्यक् ले जाने वाली[3] (शौचद्रथे) प्रकाशमान रमणीय स्वरूप वाली (दिवः-दुहितः) मोक्षधाम की तत्रस्थ आनन्दरस की दूहने वाली (व्यौच्छः तू मुझ उपासक के अन्दर प्रकाशित हो (सा सहीमसि व्युच्छ) वह तू पापों अज्ञानों को अत्यन्त प्रसहन करने दबाने वाली मेरे अन्दर प्रकाशित हो, तथा (सत्यश्रवसि) हे सत्यस्वरूप परमात्मा का श्रवण कराने वाली (वाय्ये) वरणीय (सुजाते) सुप्रसिद्ध (अश्वसुनृते) व्यापक परमात्मा की वाणी जिसमें हो ऐसी परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति मेरे अन्दर प्रकाशित हो॥ २॥

१७४२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः। यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥ ३॥

---

१. "अर्वैरणवान्" [निरु० १०.३१]।

२. "सूरिः स्तोतृनाम" [निरु० ३.१६]।

३. "नी धातोः क्थन् प्रत्ययः" [उणा० २.२]।

पदपाठः— सा नः अद्य अ द्य आभरद्वसुः आभरत् वसुः वि उच्छ दुहितः दिवः या उ व्यौच्छः वि औच्छः सहीयसि सत्यःश्रवसिवाय्येसुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

अन्वयः—सा आभरद्वसुः दिवः-दुहितः अद्य या-उ व्युच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते ॥

पदार्थः—(सा) वह तू परमात्मा की दीप्ति या ज्योति! (आभरद्वसुः) वसाने वाले परमात्मा को आभरित करती हुई (दिवः-दुहितः) हे मोक्षधाम की दूहने वाली (अद्य) आज—इस जन्म में मुझ उपासक के अन्दर प्रकाशित (या-उ) जो ही तू (व्युच्छः) प्रकाशित हो चुकी पूर्व भी (सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते) पापों अज्ञानों को प्रसहन करने वाली दबाने वाली सत्यस्वरूप परमात्मा का श्रवण कराने वाली वरणीय सुप्रसिद्ध व्यापक परमात्मा की वाणी जिसमें है ऐसी तू मुझ उपासक के अन्दर प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अवस्युः (परमात्मप्राप्ति का इच्छुक) ॥ देवता—अश्विनौ (ज्ञानज्योतिःस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्। स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

पदपाठः— प्रतिप्रियतमꣳरथम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४१८)

१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना। दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥

पदपाठः— अत्यायातम् अति आयातम् अश्विना तिरः विश्वाः अहम् सना दस्रा हिरण्यवर्त्तनी हिरण्य वर्त्तनीइति सुषुम्णा सु सुम्ना सिन्धुवाहसा सिन्धु वाहसा माध्वीममश्रुतꣳहवम् ॥ २ ॥

अन्वयः—अश्विना अहं सना विश्वाः-तिरः आयातम् दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम हवं श्रुतम् ॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! (अहं सना विश्वाः-तिरः) मैं उपासक सदा सारी कामनाओं को—वासनाओं चित्तवृत्तियों को तिरष्कृत करता हूँ, अतः तू (आयातम्) समन्तरूप से प्राप्त हो (दस्रा) हे दर्शनीय (हिरण्यवर्तनी) हृदयरमण मार्ग वाले (सुषुम्णा) शोभन सुख वाले—शोभन सुखप्रद (सिन्धुवाहसा) स्यन्दशील—बहते हुए उपासनारसों को प्राप्त करने वाला (माध्वी) जीवन में अध्यात्म मधु लाने वाले परमात्मन्! (मम हवं श्रुतम्) मेरे प्रार्थनावचन सुन ॥ २ ॥

१७४५. **आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्। रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ नः रत्नानि बिभ्रतौ अश्विना गच्छतम् युवम् रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी हिरण्य वर्त्तनीइति जुषाणा वाजिनीवसू वाजिनी वसूइति माध्वीममश्रुतꣳहवम्॥ ३ ॥**

अन्वयः—अश्विना युवम्-'युवाम्' नः रत्नानि बिभ्रतौ आगच्छतम् रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसु माध्वी मम हवं श्रुतम्॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! (युवम्-'युवाम्') तू (नः) हम उपासकों के लिये (रत्नानि बिभ्रतौ) रमणीय सुख साधनों को धारण करता हुआ (आगच्छतम्) आ—प्राप्त हो (रुद्रा) हमें बुलाता हुआ[१] (हिरण्यवर्तनी) हितरमण मार्ग वाला (जुषाणा) हम उपासकों को प्रेम करता हुआ (वाजिनीवसु) अमृत अन्न वाला[२] मुक्ति में वसाने वाला (माध्वी मम हवं श्रुतम्) जीवन अध्यात्म मधु लाने वाले परमात्मन्! मेरे प्रार्थना वचन को सुन॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—बुधगविष्ठरावृषी (ज्ञानी और स्तुतिवाणी में स्थिर)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१७४६. **अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्। यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ॥ १ ॥**

---

१. "रुद्रो रौतीति सतः" [निरु० १०.६]।

२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।

पदपाठः— **अबोध्यग्निःसमिधाजनानाम्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ७३)

१७४७. **अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्। समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि॥ २ ॥**

पदपाठः— **अबोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वः अग्निः सुमनाः सु मनाः प्रातः अस्थात् समिद्धस्य सम् इद्धस्य रुशत् अदर्शि पाजः महान् देवः तमसः निः अमोचि॥ २ ॥**

अन्वयः—होता-अग्निः यजथाय देवान्-अबोधि सुमनाः प्रातः-ऊर्ध्वः-अस्थात् समिद्धस्य रुशत् पाजः महान् देवः तमः-निरमोचि॥

पदार्थः—(होता-अग्निः) स्वीकारकर्ता ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (यजथाय देवान्-अबोधि) अध्यात्मयज्ञ करने के लिये मुमुक्षुउपासकों को सावधान करता है (सुमनाः) शोभन मनोभाव जिससे हो ऐसा है (प्रातः-ऊर्ध्वः-अस्थात्) जीवन के मार्ग प्रकृष्ट करते हुए बढ़ते समय में उत्कृष्टरूप में[1] आत्मा में साक्षात् होता है जरावस्था में नहीं (समिद्धस्य रुशत् पाजः) प्रसिद्ध हुए का प्रकाशमान बलस्वरूप[2] साक्षात् होता है (महान् देवः) महान् देव परमात्मा (तमः-निरमोचि) अज्ञानान्धकार से छुड़ा देता है॥ २ ॥

१७४८. **यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः। आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **यत् ईम् गणस्य रशनाम् अजी गरिति शुचिः अङ्क्ते शुचिभिः गोभिः अग्निः आत् दक्षिणा युज्यते वाजयन्ति उत्तानाम् ऊद्‌र्ध्वः अधयत् जुहूभिः॥ ३ ॥**

अन्वयः—यद्-ईम्-अग्निः गणस्य रशनाम् अजीगः शुचिः शुचिभिः-गोभिः-अङ्क्ते दक्षिणा वाजयन्ती आयुज्यते उत्तानाम् जुहूभिः ऊर्ध्वः-अधयत्॥

पदार्थः—(यद्-ईम्-अग्निः) जब यह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (गणस्य रशनाम्) स्तुतिकर्ता की[3] रसीली स्तुति को[4] (अजीगः) प्राप्त करता है तो (शुचिः)

---

१. ''युवैव धर्मशीलः स्यात्'' [महाभारत शान्ति० मो० १७५]।

२. ''पाजः-बलनाम'' [निघं० २.९]।

३. ''गणः, गणा-वाङ्नाम'' [निघं० १.११]।

४. ''ऊर्ग्वै रशना'' [तै० सं० ६.१.४.५]।

प्रकाशमान एवं पवित्र परमात्मा (शुचिभिः-गोभिः-अङ्क्ते) प्रकाशमान वाग्ज्योतियों—ज्ञानधाराओं से युक्त कर देता है, तब (दक्षिणा) उपासक की कामना[१] (वाजयन्ती) अमृतअन्नभोग को चाहती हुई[२] (आयुज्यते) पूरी हो जाती है (उत्तानाम्) उस उत्कृष्ट कामना को (जुहूभिः) स्तुतिवाणियों से[३] (ऊर्ध्वः-अधयत्) ऊपर संरक्षक बन उसे अपना आनन्दरस पिलाता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता उपासक[४]) ॥ देवता—उषाः (परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा। यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

पदपाठः— इदम् श्रेष्ठम् ज्योतिषाम् ज्योतिः आ अगात् चित्रः प्रकेतः प्र केतः अजनिष्ट विभ्वा वि भ्वा यथा प्रसूता प्र सूता सवितुः सवाय एव रात्री उषसे योनिम् आरैक् ॥ १ ॥

अन्वयः—इदं श्रेष्ठम् ज्योतिषां ज्योतिः-आगात् चित्रः-विभ्वा प्रकेतः यथा प्रसूता सवितुः सवाय रात्रि-उषसे योनिम्-आरैक् ॥

पदार्थः—(इदं श्रेष्ठम्) यह श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः-आगात्) ज्योतियों की ज्योति मेरे अन्दर आ गई—साक्षात् हो गई (चित्रः-विभ्वा प्रकेतः) चायनीय-दर्शनीय मेरे अन्दर बाहिर व्याप्त चेताने वाला प्रकाश है (यथा प्रसूता सवितुः सवाय) जैसे सविता—उत्पादक परमात्मा के साक्षात् कराने के लिये समाधिप्रज्ञा होती है, सो (रात्रि-उषसे योनिम्-आरैक्) पापवासना[५] दूर होकर परमात्मज्योति के लिये स्थान रिक्त कर देती है ॥ १ ॥

१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः। समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

---

१. "कामो वै दक्षिणा" [मै० १.९.४]।
२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
३. "वाग् जुहू" [ऐ० आ० २.१७.२]।
४. "ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३.१२]।
५. "पाप्मा रात्रिः" [कौ० १७.६]।

पदपाठः— रुशद्वत्सा रुशत् वत्सा रुशती श्वेत्या आ अगात् आरैक् उ कृष्णा सदनानि अस्याः समानबन्धू समान बन्धूइति अमृते अ मृतेइति अनूचीइति द्यावा वर्णम् चरतः आमिनाने आ मिनानेइति ॥ २ ॥

अन्वयः—रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्या—आगात् अस्याः सदनानि कृष्णा—आरैक्—उ समानबन्धू अमृते अनूची आमिनाने द्यावा वर्णं चरतः ॥

पदार्थः—(रुशद्वत्सा रुशती) ज्ञानप्रकाशक वेद है वक्ता जिसका ऐसी परमात्मज्योति चमचमाती हुई (श्वेत्या—आगात्) निर्मल वाणी शुभ्ररूपा मुझ उपासक में साक्षात् हो गई—होती है (अस्याः सदनानि कृष्णा—आरैक्—उ) इसके स्थानों—'मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार' को पापवासना ने रिक्त कर दिया (समानबन्धू) ये दोनों परमात्मज्योति और पापवासना समान आश्रय वाली—आत्मा में अनुभूत होने वाली (अमृते) संसार में सदा रहने वाली (अनूची) एक दूसरे के पीछे अनुगत होती है—पर्याय से अनुभूत होती है (आमिनाने द्यावा वर्णं चरतः) एक दूसरे की तुलना में आई हुई अपने अपने घने ज्ञानप्रकाश और घने पापभाव को प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

१७५१. समानो अध्वा स्वस्त्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे। न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

पदपाठः— समानः सम् आनः अध्वा स्वस्त्रोः अनन्तः अन् अन्तः तम् अन्यान्या अन्या अन्या चरतः देवशिष्टे देव शिष्टेइति न मेथेतेइति न तस्थतुः सुमेके सु मेकेइति नक्ता उषासा समनसा स मनसा विरूपे वि रूपेइति ॥ ३ ॥

अन्वयः—स्वस्त्रोः समानः—अध्वा तं देवशिष्टे—अन्या—अन्या चरतः नक्तोषासा विरूपे समनसः सुमेके न मेथेते न तस्थतुः ॥

पदार्थः—(स्वस्त्रोः) परमात्मज्योति और पापवासना दोनों बहिन जैसियों का (समानः—अध्वा) समान अनन्तमार्ग है परम्परा से प्रवाहरूप (तं देवशिष्टे—अन्या—अन्या चरतः) उसको मन[1] द्वारा प्रेरित या लक्षित दोनों भिन्न—भिन्न हुई कार्य करती है—अपवर्ग—मोक्ष और भोग—संसार में ले जाती है (नक्तोषासा) नक्त—नअक्त—जिसमें कल्याण नहीं सूझता, वह पापवासना और उषाबोध देने वाली

१. "मनो देवः" [गो० १.२.१०]।

परमात्मज्योति दोनों (विरूपे) भिन्न-भिन्न रूप वाली—वस्तु को अलग अलग निरूपित करने वाली (समनसः) एक मन से अनुभूत होने वाली (सुमेके न मेथेते न तस्थतुः) समानकाल संवत्सर में[1] हिंसित नहीं करते न ठहरते हैं—उपासक में परमात्मज्योति भोगी नास्तिक में पापवासना चलती रहती है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अत्रिः[2] (इस जन्म में तृतीयधाम मोक्ष को प्राप्त करने योग्य हो जाने वाला उपासक)॥ देवता—अश्विनौ (ज्योतिःस्वरूप परमात्मा एवं आनन्दरसरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७५२. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

पदपाठः— आ भाति अग्निः उषसाम् अनीकम् उत् विप्राणाम् वि प्राणाम् देवयाः देव याः वाचः अस्थुः अर्वाञ्चा नूनम् रथ्या इह यातम् पीपिवांसम् अश्विना घर्मम् अच्छ ॥ १ ॥

अन्वयः—उषसाम् अनीकम्-अग्निः आ भाति विप्राणां देवयाः-वाचः-उदस्थुः अश्विना रथ्या नूनम् अर्वाञ्चा इह पीपिवांसं धर्मम् आयातम् ॥

पदार्थः—(उषसाम्) कामनाओं का[3] (अनीकम्-अग्निः) आधार ज्ञानप्रकाश-स्वरूप परमात्मा (आ भाति) उपासक आत्मा में समन्तरूप से भासित होता है—साक्षात् होता है, जिसको (विप्राणां देवयाः-वाचः-उदस्थुः) ब्राह्मणों—ब्रह्मज्ञानियों—उपासकों की[4] देव तक जाने वाली—स्तुतिवाणियाँ उसमें आश्रित होती हैं वही (अश्विना) ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! तू (रथ्या) रमणीय मोक्षधाम के स्वामिन्! (नूनम्) निश्चय (अर्वाञ्चा) इधर प्रवृत्त हुआ (इह) इस जीवन में (पीपिवांसं धर्मम्) प्रवृद्ध अध्यात्मयज्ञ को (आयातम्) भलीभाँति प्राप्त हो ॥ १ ॥

१७५३. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वे ऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्त्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥

---

१. "सुमेकः संवत्सरः" [श० १.७.२.२६]।
२. "अत्रैव तृतीयमृच्छतेत्युचुस्तस्मादत्रिः" [निरु० ३.१७]।
३. "उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः" [निरु० १२.६]।
४. "ब्राह्मणा ह वै विप्राः" [जै० ३.८४]।

पदपाठः— न संस्कृतम् सम् कृतम् प्रमिमीतः गमिष्ठा अन्ति नूनम् अश्विना उपस्तुता उप स्तुता इह दिवा अभिपित्वे अभि पित्वे अवसा आगमिष्ठा आ गमिष्ठा प्रति अवर्त्तिम् दाशुषे शम्भविष्ठा शम् भविष्ठा ॥ २ ॥

अन्वयः—उपस्तुता-अश्विना संस्कृतं न प्रमिमीतः इह अन्ति नूनं गमिष्ठा दिवा-अभिपित्वे अवसा आगमिष्ठा अवति प्रति दाशुषे शम्-भविष्ठा ॥

पदार्थः—(उपस्तुता-अश्विना) पास से स्तुत किया गया ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा (संस्कृतं न प्रमिमीतः) सम्पन्न अध्यात्मयज्ञ को हिंसित नहीं करता है अपितु बढ़ाता रक्षित करता है (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (अन्ति नूनं गमिष्ठा) समीप—आन्तरिक भाव से निश्चय प्राप्त होने वाला है (दिवा-अभिपित्वे) दिन के अभिप्राप्त—उभयतः प्राप्त—प्रातःकाल और सायंकाल में (अवसा) रक्षण साधन से (आगमिष्ठा) समन्तरूप से प्राप्त होने वाला है (अवति प्रति) वृत्तिरहित चित्त को लक्ष्य कर (दाशुषे) समर्पित करने वाले उपासक के लिये (शम्-भविष्ठा) कल्याणरूप होने वाला है ॥ २ ॥

१७५४. उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य। दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

पदपाठः— उत आ यातम् सङ्गवे सम् गवे प्रातः अह्नः अ ह्नः मध्यन्दिने उदिता उत् इता सूर्यस्य दिवा नक्तम् अवसा शन्तमेन न इदानीम् पीतिः अश्विना आ ततान ॥ ३ ॥

अन्वयः—अश्विना उत-आयातम् सङ्गवे प्रातः अह्नः-मध्यन्दिनं सूर्यस्य-उदिता दिवानक्तम् शन्तमेन-अवसा-आयातम् इदानीं पीतिः न-आततान ॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! (उत-आयातम्) हमें आ—प्राप्त हो (सङ्गवे) जिसमें सूर्यकिरणें सूर्य में मिल जाती हैं या गौएँ जङ्गल से चरकर घर में प्राप्त होती हैं उस ऐसे सायं समय में, तथा (प्रातः) प्रातःकाल में (अह्नः-मध्यन्दिनं) दिन के मध्याह्न में (सूर्यस्य-उदिता) सूर्य के उदय होने पर (दिवानक्तम्) दिन रात में जब भी (शन्तमेन-अवसा-आयातम्) कल्याणकारी मार्ग से आ—प्राप्त हो (इदानीं पीतिः न-आततान) इस समय विषय पान—भोग को उपासक नहीं सेवन करता है ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)॥ देवता—उषाः (परमात्मज्योतिः)॥ छन्दः—जगती॥

१७५५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते। निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥ १॥

पदपाठः— एताः उ त्याः उषसः केतुम् अक्रत पूर्वे अर्द्धे रजसः भानुम् अञ्जते निष्कृण्वानाः निः कृण्वानाः आयुधानि इव धृष्णवः प्रति गावः अरुषीः यन्ति मातरः॥ १॥

अन्वयः—एताः-त्याः-उषसः-उ रजसः-पूर्वे-अर्धे भानुम्-अञ्जते केतुम्-अक्रत धृष्णवः-निष्कृण्वाना-आयुधानि-इव अरुषीः-गावः-मातरः प्रतियन्ति॥

पदार्थः—(एताः-त्याः-उषसः-उ) यह वह ही परमात्मज्योति[१] (रजसः-पूर्वे-अर्धे) रञ्जनात्मक भोगापवर्गरूप फल के श्रेष्ठ तथा समृद्ध[२] स्थान—मोक्षधाम में (भानुम्-अञ्जते) प्रकाश अध्यात्म को युक्त करती हैं (केतुम्-अक्रत) मुक्तात्मा को प्रज्ञानमय बनाती है (धृष्णवः-निष्कृण्वाना-आयुधानि-इव) जैसे शत्रुधर्षणशील अपने शस्त्रों को चमकाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ऐसे (अरुषीः-गावः-मातरः प्रतियन्ति) आरोचन—प्रकाशमान ज्ञानरश्मि सबके निर्माण करने वाली परमात्मज्योति भोगरूप संसार के निर्माणार्थ पुनः प्राप्त होता है॥ १॥

१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत। अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः॥

पदपाठः— उत् अपप्तम् अरुणाः भानवः वृथा स्वायुजः सु आयुजः अरुषीः गाः अयुक्षत अक्रन् उषासः वयुनानि पूर्वथा रुशन्तम् भानुम् अरुषीः अशिश्रयुः॥ २॥

अन्वयः—उषासः-वयुनानि पूर्वथा-अक्रन् रुशन्तं भानुम्-अरुषीः-अशिश्रयुः स्वायुजः-अरुषीः-गाः-वृथा-अयुक्षत भानवः-अरुणाः-उदपप्तन्॥

पदार्थः—(उषासः-वयुनानि पूर्वथा-अक्रन्) परमात्मज्योति उपासक के मन,

१. "पूजार्थं बहुवचनम्" [निरु० १२.७]।
२. "अर्धः-ऋध्नोतेर्वा" [निरु० ३.९]।

बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को[1] पूर्ववत् वृत्तिरहित शुद्ध कर देती है (रुशन्तं भानुम्-अरुषी:-अशिश्रयु:) निर्मल प्रकाशमान ज्ञानवान् आत्मा को रोचमान परमात्मज्योति आश्रित हो जाती है—प्राप्त हो जाती है (स्वायुज:-अरुषी:-गा:-वृथा-अयुक्षत) स्वयं युक्त होने वाली आरोचमान ज्ञानरश्मि अनायास स्वभावत: उपासक में युक्त हो जाती है (भानव:-अरुणा:-उदपप्तन्) ज्ञान से भासमान आरोचमान हुई—उपासकजन का मोक्षधाम की ओर उत्थान कराती हैं ॥ २ ॥

१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः। इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

पदपाठः— अर्चन्ति नारीः अपसः न विष्टिभिः समानेन सम् आनेन योजनेन आ परावतः इषम् वहन्तीः सुकृते सु कृते सुदानवे सु दानवे विश्वा इत् अह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अन्वयः—नारी:-विष्टिभि: समानेन योजनेन परावत: अपस: 'अपस्वन्त:' सुकृते सुदानवे सुन्वते यजमानाय इषं वहन्ती: विश्वा-इत् ॥

पदार्थः—(नारी:-विष्टिभि:) नेत्री देवियां निविष्ट स्वभाव वाली—प्राप्त प्रवृत्तियों से जैसे (समानेन योजनेन) समान धर्म्य प्रकार से (परावत:) परागत दूरदेश से[2] आए (अपस: 'अपस्वन्त:') कर्मवान् की सेवा करती है ऐसे (सुकृते सुदानवे) सुकर्ता—सुगम कर्मकर्ता तथा शोभनदानी—आत्मदानी (सुन्वते) उपासनारस निकालने वाले—(यजमानाय) उपासक आत्मा[3] के लिये (इषं वहन्ती:) कामना को वहन करती—प्राप्त करती हुई (विश्वा-इत्) सब सुखों को प्राप्त कराती है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—दीर्घतमाः (दीर्घकाल से अज्ञानान्धकार जिसमें है या आयु को चाहने वाला[4]) ॥ देवता—अश्विनौ (ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥

---

१. ''वयुनं प्रज्ञानम्'' [निघं० ३.९]। २. ''परावत: परागताद्वा'' [निरु० ११.४८]।
३. ''आत्मा यजमान:'' [कौ० १७.७]।
४. ''आयुर्वै दीर्घम्'' [तां० १३.११.१], ''तमु कांक्षायाम्'' [दिवादि०]।

पदपाठः— **अबोधि अग्निः ज्मः उत् एति सूर्यः वि उषाः चन्द्रा महो आवः अर्च्चिषा आयुक्षाताम् अश्विना यातवे रथम् प्र असावीत् देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥**

अन्वयः—अश्विना रथे यातवे आयुक्षाताम् 'आयुक्षाथाम्' ज्मः–अग्निः–अबोधि सूर्यः–उदेति मही चन्द्रा–उषाः–अर्चिषा वि–आव सविता देवः पृथक्–जगत् ॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! तू (रथे) संसार रथ में (यातवे) उसे चलाने के लिये (आयुक्षाताम् 'आयुक्षाथाम्')[१] समंतरूप से युक्त होता है तो (ज्मः–अग्निः–अबोधि) पृथिवी का अग्नि—पार्थिव अग्नि जागता है—प्रकट होता है (सूर्यः–उदेति) सूर्य उदय होता है (मही चन्द्रा–उषाः–अर्चिषा वि–आव) महती आह्लादकारी—प्रसन्नता देने वाली उषा प्रभातज्योति तेज के साथ प्रकट होती है (सविता देवः) वायु[२] देव (पृथक्–जगत्) पृथक्–पृथक् जगत्—जङ्गम श्वास लेने वाला गति करने वाले प्राणीमात्र को प्रकट करता है ॥ १ ॥

१७५९. **यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥**

पदपाठः— **यत् युञ्जाथेइति वृषणम् अश्विना रथम् घृतेन नः मधुना क्षत्रम् उक्षतम् अस्माकम् ब्रह्म पृतनासु जिन्वतम् वयम् धना शूर साता शूर साता भजेमहि ॥ २ ॥**

अन्वयः—अश्विना यम्–वृषणं रथं युञ्जाथे नः मधुना घृतेन क्षत्रम्–उक्षतम् अस्माकम् 'अस्मासु' पृतनासु ब्रह्म जिन्वतम् शूरसाता वयं धना भजेमहि ॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! (यम्–वृषणं रथं युञ्जाथे) जब संसार रथ से भिन्न मन रथ[३] रमण स्थान को—में युक्त होता है (नः) हमारे लिये (मधुना घृतेन क्षत्रम्–उक्षतम्) मधुर तेज से ओज[४] आत्मबल को सींचता है (अस्माकम् 'अस्मासु' पृतनासु ब्रह्म जिन्वतम्) हम उपासकजनों में[५] अमृत[६] को प्रेरित कर (शूरसाता वयं धना भजेमहि) बलवान्—प्रबल कामादि संघर्ष[७] में अध्यात्मधनों—शम–दम आदि को भजें—सेवन करें ॥ २ ॥

---

१. पुरुषव्यत्ययेन मध्यमस्थाने प्रथमः पुरुषः । २. "वायुरेव सविता" [गो० १.१.३३] ।
३. "वृषा हि मनः" [श० १.४.४.३] । ४. "ओजः क्षत्रम्" [तै० सं० ५.३.४.२] ।
५. व्यत्ययेन सप्तमी स्थानेषष्ठी । "पृतनाः–मनुष्याः" [निघं० २.३] ।
६. "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० उ० १.८.१.१०] ।
७. "धाञः क्युः" [उणा० २.८१] ।

१७६०. **अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः। त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे॥ ३॥**

पदपाठः— **अर्वाङ्त्रिचक्रः त्रि चक्रः मधुवाहनः मधु वाहनः रथः जीराश्वः जिर अश्वः अश्विनोः यातु सुष्टुतः सु स्तुतः त्रिबन्धुरः त्रि बन्धुरः मघवा विश्वसौभगः विश्व सौभगः शम् नः आ वक्षत् द्विपदे द्वि पदे चतुष्पदे चतुः पदे॥ ३॥**

अन्वयः—अश्विनोः मधुवाहनः त्रिचक्रः जीराश्वः रथः सुष्टुतः अर्वाङ्यातु त्रिबन्धुरः मघवा विश्वसौभगः नः शम्–आवक्षत् द्विपदे चतुष्पदे॥

पदार्थः—(अश्विनोः) ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा का (मधुवाहनः) आत्मा को[1] वहन करने वाला (त्रिचक्रः) तीन तृप्तियों वाला—कर्मेन्द्रियों ज्ञानेन्द्रियों और मन की तृप्ति करने वाला[2] (जीराश्वः) क्षिप्र शीघ्र व्यापन शक्ति वाला (रथः) रमणीय स्वरूप (सुष्टुतः) सम्यक् प्रशंसनीय (अर्वाङ्यातु) हमारी ओर गति करे—हमें प्राप्त हो (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धन वाला—स्तुति प्रार्थना उपासना हैं बान्धने वाले जिसके ऐसा (मघवा) ऐश्वर्यवान् (विश्वसौभगः) सारे सौभाग्य जिसमें हैं जिससे प्राप्त होते हैं ऐसा (नः) हमारे लिये (शम्–आवक्षत्) कल्याण वहन करे—प्राप्त करावे (द्विपदे चतुष्पदे) दो पैर वाले के लिये चार पैर वाले के लिये भी॥ ३॥

तृतीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षण करते हुए परमात्मा के अनुसार चलने वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७६१. **प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः। अच्छा वाजं सहस्त्रिणम्॥ १॥**

पदपाठः— **प्र ते धाराः असश्चतः अ सश्चतः दिवः न यन्ति वृष्टयः अच्छ वाजम् सहस्त्रिणम्॥ १॥**

अन्वयः—ते धाराः–असश्चतः सहस्त्रिणम्–अच्छ वाजं प्रयन्ति दिवः–न वृष्टयः॥

---

१. ''आत्मा वै पुरुषस्य मधु'' [तै० सं० २.३.२.९]।

२. ''चक्रश्चकतेर्वा'' [निरु० ४.२७], ''चकी तृप्तौ'' [भ्वादि०]।

पदार्थः—(ते धाराः-असश्चतः) हे परमात्मन्! तेरी आनन्दधाराएँ न टकराती हुईं—न विरोध करती हुईं[1] (सहस्रिणम्-अच्छ वाजं प्रयन्ति) सहस्रों में ऊँचे अच्छे अमृत अन्नभोग को[2] प्रदान करती हैं (दिवः-न वृष्टयः) आकाश से वर्षा धाराएँ जैसे भौमवाज—साधारण अन्न को देती हैं ॥ १ ॥

१७६२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

पदपाठः— **अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणः अर्षति हरिः तुञ्जानः आयुधा ॥ २ ॥**

अन्वयः—हरिः विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः-अभि-अर्षति आयुधानि तुञ्जानः ॥

पदार्थः—(हरिः) दुःखहर्ता (विश्वा प्रियाणि काव्या) सारे प्रिय वेदवचनों को[3] (चक्षाणः-अभि-अर्षति) उपदिष्ट करता हुआ अभि प्राप्त होता है जो कि (आयुधानि तुञ्जानः) आयु—ध—स्तुतिकर्ता मनुष्यों को धारण करने वाले साधनों को पालित रक्षित करता हुआ अभिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

१७६३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः। श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

पदपाठः— **सः मर्मृजानः आयुभिः इभः राजा इव सुव्रतः सु व्रतः श्येनः न वंसु सीदति ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सः इभः राजा-इव सुव्रतः आयुभिः-मर्मृजानः श्येनः न वंसु-सीदति ॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (इभः) स्वयं भयरहित तथा उपासकों की भयरहित शरण[4] (राजा-इव) राजा के समान (सुव्रतः) श्रेष्ठ कर्मवान् (आयुभिः-मर्मृजानः) उपासकजनों[5] द्वारा स्तुति करके भूषित पूजित किया जाता हुआ (श्येनः न वंसु-सीदति) शंसनीय गति वाले पक्षी के समान सम्भागी—सम्भजन करने वाले उपासक आत्मा में विराजमान होता है ॥ ३ ॥

---

१. "असश्चन्ती-असज्यमाने इति वा-अव्युदसन्त्याविति वा" [निरु० ५.२]।
२. "अमृतो अन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
३. "त्रयी वै विद्याकाव्यम्" [श० ८.५.३.४]।
४. "इभेन गतभयेन" [निरु० ६.१२]। ५. "आयवः-मनुष्याः" [निघं० ३.२]।

१७६४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि। पुनान इन्दवा भर॥ ४॥

पदपाठः— सः नः विश्वा दिवः वसु उत उ पृथिव्याः अधि पुनानः इन्दो आ भर॥ ४॥

अन्वयः—इन्दो सः नः दिवः-उत-उ पृथिव्याः-अधि विश्वावसु पुनानः-आभर॥

पदार्थः—(इन्दो) हे आर्द्ररस पूर्ण परमात्मन्! (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (दिवः-उत-उ पृथिव्याः-अधि) मोक्षधाम में स्थित भी पृथिवी लोक में स्थित भी (विश्वावसु) सब वसाने वाले साधनों उच्च ऐश्वर्यों—अध्यात्म ऐश्वर्यों को (पुनानः-आभर) हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ आभरित कर॥ ४॥

इति एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु की मेधा वाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः। देवाँ अनु प्रभूषतः॥ १ ॥

पदपाठः— प्र अस्य धाराः अक्षरन् वृष्णः सुतस्य ओजसः देवान् अनु प्रभूषतः प्र भूषतः॥ १ ॥

अन्वयः—अस्य सुतस्य वृष्णः-धाराः प्रभूषतः-देवान्-अनु ओजसः-'ओजसा' प्र-अक्षरन्॥

पदार्थः—(अस्य सुतस्य वृष्णः-धाराः) इस उपासित सुखवर्षक शान्तस्वरूप परमात्मा की आनन्दधाराएँ (प्रभूषतः-देवान्-अनु) स्तुतियों द्वारा अलंकृत करते हुए प्रशंसित करते हुए विद्वानों-मुमुक्षु उपासकों के प्रति (ओजसः-'ओजसा') ओज से स्वतेज से (प्र-अक्षरन्) प्रवाहित हो रही है॥ १ ॥

१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा। ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम्॥ २ ॥

पदपाठः— सप्तिम् मृजन्ति वेधसः गृणन्तः कारवः गिरा ज्योतिः जज्ञानम् उक्थ्यम्॥ २ ॥

अन्वयः—वेधसः गृणन्तः कारवः सप्तिम् उक्थ्यम् ज्योतिः जज्ञानम् गिरा मृजन्ति॥

पदार्थः—(वेधसः) मेधावी[1] (गृणन्तः) गुणगान करते हुए (कारवः) स्तुतिकर्ताजन (सप्तिम्) अर्चनीय[2] (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय—(ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप (जज्ञानम्) प्रसिद्ध—साक्षात् होने वाले परमात्मा को (गिरा मृजन्ति) स्तुति द्वारा प्राप्त करते हैं[3]॥ २ ॥

---

१. "वेधाः-मेधाविनाम" [निघं० ३.१५]। २. "सपति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४]। ३. "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो। वर्द्धा समुद्रमुक्थ्य॥ ३॥

पदपाठः— सुषहा सु सहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो प्रभु वसो वर्द्धासमुद्रमुक्थ्य॥ ३॥

अन्वयः—प्रभूवसो-उक्थ्य सोम ते पुनानाय तानि सुषहा समुद्रं वर्ध॥

पदार्थः—(प्रभूवसो-उक्थ्य सोम) हे भरपूर धनैश्वर्य वाले प्रशंसनीय शान्तस्वरूप परमात्मन्! (ते पुनानाय) तुझ अध्येषमाण—प्रार्थित किये जाते हुए या स्तुति द्वारा प्राप्त होते हुए के[1] (तानि सुषहा) वे सुशोभन सहन करने योग्य शान्त तेज हैं, उनसे (समुद्रं वर्ध) सम्यक्—उल्लास हाव भाव भरे उपासक पुरुष को[2] बढ़ा—समृद्ध कर॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वरज्ञान में कुशलवक्ताजन[3]) नृमेधो वा[4] (मुमुक्षु बुद्धि वाला)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः॥

१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे॥ १॥

पदपाठः— एषब्रह्मायऋत्वियः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४३८)

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः॥ २॥

पदपाठः— त्वाम् इत् शवसः पते यन्ति गिरः न संयतः सम् यतः॥ २॥

अन्वयः—शवसः-पते संयतः-गिरः-न त्वाम्-इत्-यन्ति॥

पदार्थः—(शवसः-पते) हे बल के स्वामिन् परमात्मन्! (संयतः-गिरः-न) संयमी उपासक की स्तुतियाँ[5] (त्वाम्-इत्-यन्ति) तुझे ही प्राप्त होती हैं, अतः तू ही स्तुत्य उपासनीय है॥ २॥

---

१. व्यत्ययेन षष्ठीस्थाने चतुर्थी षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि।

२. "पुरुषो वै समुद्रः" [जै० ३.६-७]।

३. [पू० अ० ४.१०] सायणानुसारतः।

४. उत्तरार्चिके सायणभाष्यतः।

५. "स्तुतयो गिरो गृणाते....." [निरु० १.१०], नकारोऽत्र सम्प्रत्यर्थो निश्चयार्थो वा, यथा [ऋ० ९.९९.३, निरु० ६.८]।

१७७०. वि स्रुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ॥ ३ ॥

पदपाठः— विस्रुतयोयथापथः ॥ ३ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४५३)

तृतीय तृच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको ऐसा उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ॥

१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥ १ ॥

पदपाठः— आत्वारथंयथोतये ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३५४)

१७७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते। आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

पदपाठः— तुविशुष्म तुवि शुष्म तुविक्रतो तुवि क्रतो शचीवः विश्वया मते आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

अन्वयः—तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवः मते विश्वया महित्वना आ पप्राथ ॥

पदार्थः—(तुविशुष्म) हे बहुत[1] बल वाले[2] (तुविक्रतो) बहुत कर्म—असंख्यात कर्म[3] जिसके हैं ऐसे (शचीवः) प्रज्ञा वाले[4] (मते) मेधावी[5] परमात्मन् (विश्वया महित्वना) विश्व को प्राप्त होने वाली—व्यापने वाली महिमा से (आ पप्राथ) समन्तरूप में प्रसारित हो—व्याप्त प्राप्त हो ॥ २ ॥

१७७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— यस्य ते महिना महः परि ज्मायतम् ईयतुः हस्ता वज्रम् हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यस्य ते महः महिना ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रम् हस्ता परिईयतुः ॥

---

१. "तुवि बहुनाम" [निघं० २.१]। २. "शुष्म बलनाम" [निघं० २.९]।
३. "क्रतुः कर्मनाम" [निघं० २.१]। ४. "शची प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९]।
५. "मतयो मेधाविनः" [निघं० ३.१५]।

पदार्थः—(यस्य ते महः) जिस तुझ महान् परमात्मा की—(महिना) महिमा से (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रम्) दिव्-द्युलोक—मोक्षधाम से पृथिवी तक[१] पहुँचते हुए—चमकते हुए या अमृत[२] ओज को[३] (हस्ता परिईयतुः) हस्तसमान—हँसाने वाले दोनों भोग संसार और अपवर्ग—मोक्ष दोनों प्राप्त कर रहे हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—दीर्घतमाः (ऊँची आयु को चाहने वाला उपासक) ॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—विराट् ॥

१७७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा। सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥

पदपाठः— आ यः पुरम् नार्मिणीम् अदीदेत् अत्यः कविः नभन्यः न अर्वा सूरः न रुरुक्वान् शतात्मा शत आत्मा ॥ १ ॥

अन्वयः—यः अत्यः कविः नभन्यः-न-अर्वा सूरः-रुरुक्वान् शतात्मा नार्मिणीं पुरम् अदीदेत् ॥

पदार्थः—(यः) जो (अत्यः) निरन्तर प्राप्त—व्यापनशील (कविः) सर्वज्ञ (नभन्यः-न-अर्वा)[४] आकाशीय विद्युत् के समान गतिशील (सूरः-रुरुक्वान्) सूर्य के समान तेजस्वी (शतात्मा) असंख्य—अनन्त जीवों का आत्मा परमात्मा (नार्मिणीं पुरम्) नृ—नर—मुमुक्षुजन[५] के मन सम्बन्धी या 'नृमन्'—आगे बढ़ने वाले[६] उपासक सम्बन्धी मोक्षपुरी भूमि को (अदीदेत्) प्रकाशित करता है[७] ॥ १ ॥

१७७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्। होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ २ ॥

पदपाठः— अभि द्विजन्मा द्वि जन्मा त्रि रोचनानि विश्वा रजांऽसि शुशुचानः अस्थात् होता यजिष्ठः अपाम् सधस्थे सध स्थे ॥ २ ॥

---

१. "ज्या पृथिवीनाम" [निघं० १.१]।
२. "अमृतं वै हिरण्यम्" [श० ९.४.४.५]।
३. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]।
४. "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०.३१]।
५. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.८९], "नृणां मनः-नृमणः, तत्सम्बन्धिनीं तद्रुचिकरीम्। अथवा "नृ नये" धातोः-मनिन् वित् छान्दसः।"
६. नृमन् नृमा नेता, उत्कृष्टनेता हत्सम्बन्धिनीं मोक्षपुरीं भूमिम्।
७. "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १.१६]।

अन्वयः—द्विजन्मा त्री (त्रीणि) रोचनानि विश्वा-रजांसि शुशुचानः यजिष्ठः होता अपां सधस्थे-अस्थात् ॥

पदार्थः—(द्विजन्मा) दो—जप और अर्थभावन या स्वाध्याय और योग[1] के द्वारा अन्तरात्मा में प्रकाशित[2] होने वाला परमात्मा (त्री 'त्रीणि' रोचनानि) अपने दर्शन के तीन अभिप्रीणन करने योग्य आत्मा, मन और नेत्र—आँख को (विश्वा-रजांसि) सारे रञ्जनीय—प्रीणन करने तृप्त करने योग्य श्रोत्र, वाक् आदि इन्द्रियों को भी (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ[3] (यजिष्ठः) अध्यात्मयज्ञ का महान् विधाता—आधार (होता) आदाता—अपनाने वाला परमात्मा (अपां सधस्थे-अस्थात्) आप्तजनों के[4] उपासक आत्माओं के समान स्थान हृदयदेश में विराजित होता है ॥ २ ॥

१७७६. **अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।**
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ३ ॥

पदपाठः— **अयम् सः होता यः द्विजन्मा द्वि जन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या मर्त्तः यः अस्मै सुतुकः सु तुकः ददाश ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अयं सः-होता यः-द्विजन्मा विश्वा वार्याणि श्रवस्या दधे श्रवस्या अस्मै यः-मर्त्तः ददाश सुतुकः ॥

पदार्थः—(अयं सः-होता) यह वह होता—अपनाने वाला (यः-द्विजन्मा) जो दो से—जप और अर्थभावन—या स्वाध्याय और योग से साक्षात् होने वाला परमात्मा (विश्वा वार्याणि) सब वरने योग्य वस्तुओं तथा (श्रवस्या दधे) यश योग्य प्रशंसनीय कर्मों को धारण कराता है (अस्मै) इस परमात्मा के लिये (यः-मर्त्तः) जो मनुष्य (ददाश) देता है अपने को समर्पित करता है वह (सुतुकः) उस परमात्मा का सुपुत्र है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक) ॥
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा) ॥ छन्दः—पदपंक्तिः ॥

१७७७. **अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥**

---

१. 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' [योग० १.२८] तत्रैव स्वाध्यायाद् योगमासीतयोगात्स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।
२. ''जनी प्रादुर्भावे'' [दिवादि०] ।
३. ''शोचति ज्वलतिकर्मा'' [निघं० १.१६] ।
४. ''मनुष्या वा आपश्चन्द्राः'' [श० ७.२.१.२०] ।

पदपाठः— **अग्रेतमद्य ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४३४)

१७७८. **अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अध हि अग्ने क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य साधोः रथीः ऋतस्य बृहतः बभूथ ॥ २ ॥**

अन्वयः—अग्ने अध हि भद्रस्य क्रतोः साधोः-दक्षस्य बृहतः-ऋतस्य रथीः-बभूथ ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (अध हि) अनन्तर ही—बस अब ही (भद्रस्य क्रतोः) कल्याण सङ्कल्प[1] का (साधोः-दक्षस्य) अच्छे-सच्चे बलसमृद्धि का[2] (बृहतः-ऋतस्य) महान् अमृत[3] मोक्षानन्द का (रथीः-बभूथ) नायक है ॥ २ ॥

१७७९. **एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाक् स्वा३र्ण ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **एभिः नः अर्कैः भव नः अर्वाङ् स्वः न ज्योतिः अग्ने विश्वेभिः सुमनाः सु मनाः अनीकैः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अग्ने नः-एभिः-अर्कैः-अव नः-अर्वाक्-भव स्वः-न ज्योतिः विश्वेभिः-अनीकैः सुमनाः ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन्! तू (नः-एभिः-अर्कैः-अव) हमारे इन अर्चनमन्त्रों[4] द्वारा (नः-अर्वाक्-भव) हमारी ओर हो (स्वः-न ज्योतिः) सूर्य समान ज्योति है (विश्वेभिः-अनीकैः सुमनाः) सारे अपने प्रमुख तेजों के द्वारा सुमन हमारे लिये कल्याण मन वाला—कल्याणकारी हो जा ॥ ३ ॥

---

१. "स यदेव मनसा कामयते-इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः" [श० ४.१.४.१], "हृत्सु त्वययंक्रतुर्मनोजवः प्रविष्टः" [श० ३.३.४.७]।

२. "अथ यदस्मै यत्समृध्यते स दक्षः" [श० ४.१.४.१], "दक्षः-बलनाम" [निघं० २.९]।

३. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०]।

४. "अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति" [निरु० ५.४]।

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती॥

१७८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य। आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः॥ १॥

पदपाठः— अग्नेविवस्वदुषसः॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४०)

१७८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्। सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्॥ २॥

पदपाठः— जुष्टः हि दूतः असि हव्यवाहनः हव्य वाहनः अग्ने रथीः अध्वराणाम् सजूः स जूः अश्विभ्याम् उषसा सुवीर्यम् सु वीर्यम् अस्मेइति धेहि श्रवः बृहत्॥ २॥

अन्वयः—अग्ने जुष्टः-हि दूतः हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः असि अश्विभ्याम्-उषसा सजूः अस्मे सुवीर्यं-बृहत्-श्रवः-धेहि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन्! तू (जुष्टः-हि) हम उपासकों द्वारा सेवित हुआ उपासित हुआ (दूतः) प्रेरक—आगे ले-जानेवाला (हव्यवाहनः) स्तुतिरूप दातव्य को लेनेवाला एवं आदातव्य सद्गुण सुख शान्ति को लानेवाला (अध्वराणां रथीः) अध्यात्म यज्ञों—योगाङ्गों का नेता रथ स्वामी[1] के समान आधार (असि) तू है (अश्विभ्याम्-उषसा सजूः) श्रोत्रों[2] प्रकाश प्रज्ञा के द्वारा[3] (अस्मे) हमारे अन्दर[4] (सुवीर्यं-बृहत्-श्रवः-धेहि) शोभनबल—आत्मबल और महान् श्रवण धारण करा॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—बृहदुक्थः (महती वाक्-ओ३म् उपास्य जिसका है ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१७८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥ १॥

---

१. "छन्दसीवनियौ वक्तव्यौ" [अष्टा० ५.२.१०९] रथशब्दात् ई प्रत्यय।

२. "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२.९.१.१३]। ३. "सजूः सहार्थे" [अव्ययार्थःनिबन्धनम्]।

४. "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे" [अष्टा० ७.१.३९] इति शे प्रत्ययः, अस्मद्-शब्दात्।

पदपाठः— **विधुन्दद्राणꣳसमनेबहूनाम्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३२५)

१७८३. **शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः। यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता॥ २ ॥**

पदपाठः— **शाक्मना शाकः अरुणः सुपर्णः सु पर्णः आ यः महः शूरः सनात् अनीडः अ नीडः यत् चिकेत सत्यम् इत् न मोघम् वसुस्पार्हम् उत जेता उत दाता॥ २ ॥**

अन्वयः—यः शाक्मना शाकः अरुणः सुपर्णः महः शूरः सनात् अनीडः आ यत् सत्यम्-इत् चिकेत तत्-न मोघम् स्पार्ह वसु जेता-उत दाता-उत॥

पदार्थः—(यः) जो इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (शाक्मना शाकः) कर्म के लिये जगद्रचन के लिये[१] शक्त—समर्थ[२] (अरुणः सुपर्णः) आरोचन[३] ज्ञानप्रकाशक शोभन पालनकर्ता (महः) महान् (शूरः) पापदोषनाशक (सनात्) शाश्वतिक—सनातन (अनीडः) गृहरहित[४] एकदेशरहित—सर्वव्यापी (आ) आवे[५] (यत् सत्यम्-इत् चिकेत) जिसे सत्य ही जाने—जानता है (तत्-न मोघम्) वह व्यर्थ नहीं है (स्पार्ह वसु जेता-उत) स्पृहणीय—कमनीय अध्यात्म धन को स्वाधीन रखता है (दाता-उत) दानकर्ता भी वह है॥ २ ॥

१७८४. **ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री। ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ एभिः ददे वृष्ण्या पौꣳस्यानि येभिः औक्षत् वृत्रहत्याय वृत्र हत्याय वज्री ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्ना ऋतेकर्मम् ऋते कर्मम् उदजायन्त उत् अजायन्त देवाः॥ ३ ॥**

---

१. "शक्म कर्मनाम" [निघं० २.१] अत्र कर्मशब्दो जगद्वाची "जगद्वाचित्वात्" [वेदान्त दर्शनम्], "शकधातोःकर्निन् प्रत्ययः" [उणा० ३.१४७] 'वृद्धिश्छान्दसी' विभक्तिव्यत्ययेन चतुर्थीस्थाने तृतीया।

२. "शक्लृ शक्तौ" [स्वादि०] ततो णः प्रत्ययश्छान्दसः।

३. "अरुण-आरोचनः" [निरु० ५.२१]।

४. "नीडं गृहनाम" [निघं० ३.४]।

५. उपसर्गबलाद् योग्यक्रियाध्याहारः।

अन्वयः—ये देवाः क्रियमाणस्य मह्नः कर्मणः ऋते कर्मम् उदजायन्त एभिः-येभिः वज्री वृष्ट्या पौंस्यानिं आददे वृत्रहत्याय औक्षत्॥

पदार्थः—(ये देवाः) जो मुमुक्षु उपासक (क्रियमाणस्य मह्नः कर्मणः) किये जाते हुए महत्त्वपूर्ण कर्म के (ऋते कर्मम्) कर्म के[1] अमृत फल[2] को (उदजायन्त) उद्भावित करते हैं—सम्मुख लाते हैं (एभिः-येभिः) इन जिनको हेतु बनाकर या इन जिनके लिये[3] (वज्री) ओजस्वी[4] परमात्मा (वृष्ट्या पौंस्यानि) सुखवर्षण योग्य बलों को (आददे) ग्रहण करें उन्हें (वृत्रहत्याय) पापनाशन[5] के लिये (औक्षत्) वरसा देता है॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विन्दुः (स्ववानसाओं को छिन्न-भिन्न करने वाला)॥ देवता—मरुतः (समस्त वासनाओं को अमृत जीवनदाता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१७८५. **अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः। उत स्वराजो अश्विना॥ १॥**

पदपाठः— **अस्तिसोमोअयथंऽसुतः॥ १॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १७४)

१७८६. **पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः। त्रिषधस्थस्य जावतः॥ २॥**

पदपाठः— **पिबन्ति मित्रः मि त्रः अर्यमा तना पूतस्य वरुणः त्रिषधस्थस्य त्रि सधस्थस्य जावतः॥ २॥**

अन्वयः—त्रिषधस्थस्य पूतस्य जावतः तना मित्रः अर्यमा वरुणः पिबन्ति॥

पदार्थः—(त्रिषधस्थस्य) आत्मा, मन, वाणी तीन सहस्थान वाले[6] उपासना, प्रार्थना स्तुति द्वारा (पूतस्य) सम्पादित—(जावतः) उपासक जन वाले (तना) धनरूप सोम—अध्यात्मरस को[7] (मित्रः) प्रेरक परमात्मा (अर्यमा) आनन्ददाता

---

१. "कर्मण ऋतम्" ऋते कर्मम् छान्दः प्रयोगः।
२. "ऋतममृतमित्याह" [जै० २.१६०]।
३. चतुर्थीस्थाने तृतीया व्यत्ययेन।
४. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२०]।
५. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।
६. द्वितीयास्थाने षष्ठी व्यत्ययेन।
७. "तना धननाम" [निघं० २.६०]।

परमात्मा (वरुणः) वरणकर्ता परमात्मा (पिबन्ति) पीता है स्वीकार करता है ॥ २ ॥

१७८७. उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः। प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥

पदपाठः— उत उ नु अस्य जोषम् आ इन्द्रः सुतस्य गोमतः प्रातः होता इव मत्सति ॥ ३ ॥

अन्वयः—उत-उ नु इन्द्रः अस्य गोमतः-सुतस्य जोषं मत्सति प्रातः-होता-इव ॥

पदार्थः—(उत-उ नु) और हाँ फिर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (अस्य गोमतः-सुतस्य) इस स्तुतिवाणी वाले निष्पन्न उपासना रस के (जोषं मत्सति) प्रेम को चाहता है[१] (प्रातः-होता-इव) प्रातःकाल में जैसे होता उपासक चाहता है[२] वैसे तुझे चाहता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रकाशित ज्ञानस्वरूप परमात्मा जिसमें हो ऐसा उपासक)॥ देवता—सूर्यः (अपनी ज्ञानरश्मियों से स रणशील व्यापक परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ १ ॥

पदपाठः— बण्महाꣳअसिसूर्य ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २७६)

१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि। मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ २ ॥

पदपाठः— बट् सूर्य श्रवसा महान् असि सत्रा देव महान् असि मह्ना देवानाम् असुर्यः अ सुर्यः पुरोहितः पुरः हितः विभु वि भु ज्योतिः अदाभ्यम् अ दाभ्यम् ॥ २ ॥

अन्वयः—सूर्य देव बट् श्रवसा महान्-असि सत्रा महान्-असि मह्ना देवानाम्-असुर्यः पुरोहितः अदाभ्यं विभु ज्योतिः ॥

पदार्थः—(सूर्य देव) हे ज्ञानरश्मियों से सरणशील परमात्मदेव! (बट् श्रवसा

---

१. 'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' [भ्वादि०], 'मोदमहि याञ्चाकर्मा' [निघं० ३.१८]।
२. "आत्मा वै होता" [ऐ० ६.८]।

महान्–असि) सच तू श्रवणीय ज्ञान के कारण से महान् है वह तुझे महान् सिद्ध करता है (सत्रा महान्–असि) तू सर्वभाव से[1] महान् है (मह्ना) महत्ता से (देवानाम्–असुर्यः पुरोहितः) उपासक विद्वानों का साधुप्राणप्रद है[2] (अदाभ्यं विभु ज्योतिः) अदम्य व्यापक ज्योति है ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन अध्यात्मकक्षा वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१७९०. **उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते। उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **उपनोहरिभिःसुतम् ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १५०)

१७९१. **द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः। उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥**

पदपाठः— **द्विता यः वृत्रहन्तमः वृत्र हन्तमः विदे इन्द्रः शतक्रतुः शत क्रतुः उपनोहरिभिःसुतम् ॥ २ ॥**

अन्वयः—यः–इन्द्रः द्विता विदे वृत्रहन्तमः शतक्रतुः हरिभिः सुतं 'सुतः' नः–उप 'याहि' ॥

पदार्थः—(यः–इन्द्रः) जो परमात्मा (द्विता विदे) दो भावों से जाना जाता है (वृत्रहन्तमः) एक तो पाप का अतिनाशक और दूसरा अर्थापत्ति से उसके विरुद्ध—पुण्यों—स्वोपासकों का पोषक (शतक्रतुः) सैंकड़ों प्रज्ञानों का प्रदाता है (हरिभिः सुतं 'सुतः' नः–उप 'याहि') अपने दुःखनाशक गुणों से हमारे पास उपासित हुआ प्राप्त हो ॥ २ ॥

१७९२. **त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि। उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **त्वम् हि वृत्रहन् वृत्र हन् एषाम् पाता सोमानाम् असि उपानोहरिभि सुतम् ॥ ३ ॥**

---

१. ''सर्वं वै सत्रम्'' [श० ४.६.१.२५], ''सत्रा–सत्रेण'' तृतीयाया आकारादेशः। ''सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे'' [अष्टा० ७.१.३९]।

२. ''असुः प्राणनाम'' [निरु० ३.८] असून् प्राणान् राति ददाति–असुरः तत्र साधुः–आसुर्यः।

अन्वयः—त्वं हि एषां सोमानां पाता-असि वृत्रहन् सुतं 'सुतः' हरिभिः-नः-उप याहि ॥

पदार्थः—(त्वं हि) हे परमात्मन्! तू ही (एषां सोमानां पाता-असि) इन उपासनारसों का पानकर्ता—स्वीकारकर्ता है (वृत्रहन्) हे पापनाशक! (सुतं 'सुतः') तू उपासित हुआ (हरिभिः-नः-उप याहि) दुःखहरणकर्ता गुणों से हमारे पास आ ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विराट् ॥

१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ १ ॥

पदपाठः— प्रवोमहेमहेवृधेभरध्वम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३२८)

१७९४. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥

पदपाठः— उरुव्यचसे उरु व्यचसे महिने सुवृक्तिम् सु वृक्तिम् इन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः वि प्राः तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥

अन्वयः—विप्राः महिने-उरुव्यचसे-इन्द्राय सुवृक्तिं ब्रह्म जनयन्त तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति ॥

पदार्थः—(विप्राः) मेधावी उपासक (महिने-उरुव्यचसे-इन्द्राय) महान् तथा बहुत व्याप्त परमात्मा के लिये (सुवृक्तिं ब्रह्म जनयन्त) शोभन स्तुति[1] को और प्रार्थना मन्त्र को[2] प्रदर्शित करते हैं (तस्य व्रतानि) उसके कर्मों—नियमों को (धीराः) ध्यानीजन (न मिनन्ति) हिंसित नहीं करते हैं ॥ २ ॥

१७९५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ ३ ॥

पदपाठः— इन्द्रम् वाणीः अनुत्तमन्युम् अनुत्त मन्युम् एव सत्रा राजानम् दधिरे सहध्यै हर्यश्वाय हरि अश्वाय बर्हय सम् आपीन् ॥ ३ ॥

---

१. "सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः" [निरु० २.२४] ।
२. "ब्रह्म वै मन्त्रः" [जै० १.८८] ।

अन्वयः—सत्रा राजानम् अनुत्तमन्युम् इन्द्रम्-एव वाणीः समृध्यै दधिरे हर्यश्वाय-आपीन् संबर्हय ॥

पदार्थः—(सत्रा राजानम्) सत्य राजा—(अनुत्तमन्युम्) अबाधित तेज वाले[1] (इन्द्रम्-एव) परमात्मा को ही (वाणीः समृध्यै दधिरे) स्तुति वाणियाँ काम आदि बाधकों को सहने दबाने के लिये हमें धारण करती हैं (हर्यश्वाय-आपीन् संबर्हय) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता व्यापनशील धर्म वाले तुझ परमात्मा की प्राप्ति के लिये प्राप्त सम्बन्ध वाले हम उपासकों को तू परमात्मन् सम्यक् बढ़ा ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—विषमा बृहती ॥

१७९६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ १ ॥

पदपाठः— यदिन्द्रयावतस्त्वम् ॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३१०)

१७९७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद् विदे। न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥ २ ॥

पदपाठः— शिक्षेयम् इत् महयते दिवेदिवे दिवे दिवे रायः आ कुहचिद्विदे कुहचित् विदे न हि त्वत् अन्यत् अन् यत् मघवन् नः आप्यम् वस्यः अस्ति पिता च न ॥ २ ॥

अन्वयः—मघवन् कुहचित्-विदे महयते दिवेदिवे रायः 'रायं' आशिक्षेयम् त्वत्-अन्यत् आप्यं न हि न वस्यः पिता च न-अस्ति ॥

पदार्थः—(मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (कुहचित्-विदे) कहीं भी सर्वत्र विद्यमान—(महयते) तुझ पूजा को प्राप्त होते हुए—पूजनीय[2] के लिये (दिवेदिवे) दिन दिन—प्रतिदिन[3] (रायः 'रायं') देने योग्य—समर्पण करने योग्य स्तुतिवचन हावभाव को (आशिक्षेयम्) मैं उपासक भली प्रकार देता हूँ—समर्पित करता हूँ[4] (त्वत्-अन्यत्) तुझ से भिन्न (आप्यं न हि) प्राप्त करने योग्य नहीं (न

---

१. "मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०.२९]।

२. "मह पूजायाम्" [भ्वादि०]।

३. "दिवे दिवे अहर्नाम" [निघं० १.९]।

४. "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३.२०]।

वस्यः पिता च न-अस्ति) न ही अधिक वसाने वाला—साथ रखने वाला पिता है॥ २॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—विराट्॥

१७९८. **श्रुधी हवं विपिपा नस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्। कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा॥ १॥**

पदपाठः— **श्रुधि हवम् विपिपानस्य वि पिपानस्य अद्रेः अ द्रेः बोध विप्रस्य वि प्रस्य अर्च्चतः मनीषाम् कृष्व दुवाꣳसि अन्तमा सचा इमा॥ १॥**

अन्वयः—विपिपानस्य अद्रे हवं श्रुधि अर्चतः-विप्रस्य बोध इमा दुवांसि-अन्तमा सचा कृष्व॥

पदार्थः—(विपिपानस्य) विशेष अध्यात्मरस पान करने वाले—(अद्रे) श्लोककृत्[१] स्तुतिकर्ता के (हवं श्रुधि) आमन्त्रण को सुन—स्वीकार कर (अर्चतः-विप्रस्य) अर्चना करते हुए मेधावी[२] विद्वान् के मनोभाव को सुन (बोध) जान (इमा दुवांसि-अन्तमा सचा कृष्व) मेरे इन नम्र वचनों[३] या अर्चनीय कथनों या अभीष्टों[४] को समीप—साथ देने वाले कर॥ १॥

१७९९. **न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिम सुर्यस्य विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि॥ २॥**

पदपाठः— **न ते गिरः अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिम् सु स्तुतिम् असुर्यस्य अ सुर्यस्य विद्वान् सदा ते नाम स्वयशः स्व यशः विवक्मि॥ २॥**

अन्वयः—तुरस्य ते गिरः विद्वान् न-अपि मृष्ये असुर्यस्य सुष्टुतिं न सदा ते स्वयशः-नाम विवक्मि॥

पदार्थः—(तुरस्य ते) हे परमात्मन्! संसारसागर से तारक—तुझ तराने वाले की (गिरः) स्तुतियाँ (विद्वान् न-अपि मृष्ये) मैं जानता हुआ उपेक्षित नहीं करता

१. ''अद्रिरसि श्लोककृत्'' [काठ० २.५]।
२. ''विप्रः-मेधाविनाम'' [निघं० ३.२५]।
३. ''समिधाग्निं दुवस्यतेति समिधाग्निं नमस्यतेत्येतत्'' [श० ६.८.१.६]।
४. ''दुस्यति-राध्नोतिकर्मा'' [निरु० १०.२०]।

(असुर्यस्य सुष्टुतिं न) प्राणप्रदों में साधु तुझ वास्तविक प्राणप्रद की शोभन स्तुति करने को भी उपेक्षा नहीं करता (सदा ते स्वयशः-नाम) सदा तेरे स्वाधीन यशोरूप 'ओ३म्' नाम को (विवक्मि) पुनः पुनः उच्चारित करता हूँ—जपता हूँ॥ २॥

१८००. **भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्।**
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः॥ ३॥

पदपाठः— **भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वाम् इत्**
मा आरे अस्मत् मघवन् ज्योक् करिति॥ ३॥

अन्वयः—मघवन् ते मानुषेषु भूरि हि सवना मनीषी त्वाम्-इत्-भूरि हवते अस्मत्-आरे ज्योक्-मा कः॥

पदार्थः—(मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते मानुषेषु भूरि हि सवना) तेरे लिये मननशील जनों में बहुत ही श्रद्धास्थान[1] है (मनीषी त्वाम्-इत्-भूरि हवते) स्तुति करने वाला उपासक तुझे ही बहुत[2] आमन्त्रित करता है (अस्मत्-आरे ज्योक्-मा कः) हमारे से दूर[3] सम्प्रति—अब अपने को मत कर॥ ३॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुदाः (परमात्मा के लिये अपने को उत्तम रूप से देने समर्पित करने वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—शक्वरी॥

१८०१. **प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा। अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ १॥**

पदपाठः— **प्र उ सु अस्मै पुरोरथम् पुरः रथम् इन्द्राय शूषम् अर्चत अभीके चित् उ लोककृत् लोक कृत् सङ्गे सम् गे समत्सु स मत्सु वृत्रहा वृत्र हा अस्माकम् बोधि चोदिता नभन्ताम् अन्यकेषाम् अन् यकेषाम् ज्याकाः अधि धन्वसु॥ १॥**

अन्वयः—अस्मै 'अस्य' इन्द्राय 'इन्द्रस्य' शूषम्-अचंत अभीके चित्-लोककृत्

१. "सवना स्थानानि" [निरु० ५.२५]।
२. "भूरि बहुनाम" [निघं० ३.१]।
३. "आरे दूरनाम" [निघं० ३.२६]।

सङ्गे समत्सु वृत्रहा अस्माकम् 'अस्मान्' बोधि चोदिता अन्यकेषां ज्याका:-अधि धन्वसु (नभन्ताम्) ॥

पदार्थः—(अस्मै 'अस्य' इन्द्राय 'इन्द्रस्य') इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के[1] रमणस्थान—मोक्षधाम से पूर्व जगत् में वर्तमान (शूषम्-अचंत) जगद्रचन धारणादि बल पराक्रमको उपासकजनो अर्चित करो—प्रशंसित करो (अभीके चित्-लोककृत्) जो समीप में ही[2] पृथिवी आदि लोकों का करने रचने वाला है तथा जो (सङ्गे समत्सु वृत्रहा) सदा सङ्ग में—शरीर में और शरीर से बाहर सम्मोदन स्थानों में[3] स्वास्थ्यवारक रोगों और पापों का हननकर्ता[4] है (अस्माकम् 'अस्मान्' बोधि) हमें बोधित करता है (चोदिता) प्रेरक है (अन्यकेषां ज्याका:-अधि धन्वसु) अन्य कुत्सितजनों[5] की हमें अभिभव करने दबाने वाली दुर्भावनाएँ[6] उनके हृदयावकाशों में[7] (नभन्ताम्) नष्ट हो जावें[8] या न होवें—न रहें[9] ॥ १ ॥

१८०२. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम्। तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ २ ॥

पदपाठः— त्वम् सिन्धून् अव असृजः अधराचः अहन् अहिम् अशत्रुः अ शत्रुः इन्द्र जज्ञिषे विश्वम् पुष्यसि वार्यम् तम् त्वा परि स्वजामहे नभन्तामन्यकेषाम् ज्याकाअधिधन्वसु॥ २ ॥

अन्वयः—इन्द्र त्वम् सिन्धून्-अधराचः-असृजः अहिम्-अहन् अशत्रुः-जज्ञिषे विश्वं वार्यं पुष्यसि तं त्वा परिष्वजामहे ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (त्वम्) तू (सिन्धून्-अधराचः-असृजः) स्यन्दनशील एक दूसरे के पास पहुँचने वाली वेदवाणियों को[10] नीचे—अपने

---

१. षष्ठ्यर्थे चतुर्थी व्यत्ययेन। २. "अभीके-अभ्यक्ते" [निरु० ३.२०]।

३. "समदः सम्मदो वा मदतेः" [निरु० ९.१७]।

४. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.१.५.७]।

५. "कुत्सिते-अकच्" [अष्टा० ५.३.७४]।

६. "ज्या ज्यतेर्वा" [निघं० ९.१७], "जि-अभिभवे" [भ्वादि०]।

७. "धन्व-अन्तरिक्षनाम" [निघं० १.३]।

८. "णभ हिंसायाम्" [भ्वादि०]। ९. "न भन्तां मा भुवन्" [निरु० १०.६]।

१०. "समुद्रं न सिन्धवः उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आविशन्ति" [काठ० ३८.७] उपमायाम्। "सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः, अनु क्षरन्ति काकुदम्" [ऋ० ८.६९.१२], "सिन्धुः स्रवणात्" [निरु० ५.२८]।

अन्दर से ऋषियों के अन्त:करण में सर्जन करता है—छोड़ता है (अहिम्-अहन्) सर्वत्र प्राप्त अज्ञान को नष्ट करता है (अशत्रु:-जज्ञिषे) तू शत्रुरहित प्रसिद्ध है (विश्वं वार्यं पुष्यसि) हमारे लिये सब वरणीय वस्तु को पुष्ट करता है (तं त्वा परिष्वजामहे) उस तुझको हम सर्वत: आलिङ्गित करते हैं अन्य कुत्सितजनों की दुर्भावनाओं को उनके हृदयावकाशों में ही नष्ट हो जावें या न रहें ॥ २ ॥

१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति। या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥ ३ ॥

पदपाठः— वि सु विश्वाः अरातयः अ रातयः अर्यः नशन्त नः धियः अस्ता असि शत्रवे वधम् यः नः इन्द्र जिघांसति या ते रातिः ददिः वसु नभन्तामन्यकेषाम् ज्याकाअधिधन्वसु॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्र नः विश्वाः अर्यः अरातयः-धियः सुविनशन्तु यः-न-जिघांसति शत्रवे वधम्-अस्ता-असि ते या रातिः-वसुः-ददिः ॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन्! (नः) हमारे लिये (विश्वाः) सारी (अर्यः) आक्रमणकारी[१] (अरातयः-धियः) न देने वाली अपितु जीवनीय तत्त्व लेने वाली अन्य दुर्बुद्धियाँ (सुविनशन्तु) भली प्रकार नष्ट हो जावें (यः-न-जिघांसति) जो हमें पापभाव से मारना चाहता है (शत्रवे वधम्-अस्ता-असि) तू परमात्मन्! उस शत्रु के लिये हिंसासाधन को फेंकने वाला है (ते या रातिः-वसुः-ददिः) तेरी जो दानक्रिया है वह वसाने वाले धन को दे, शेष पूर्ववत्॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधो वा (परमात्मा में मेधा से गमन अतन करने वाला या प्रिय है मेधा जिसको ऐसा उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१८०४. रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः सुतस्य॥ १ ॥

पदपाठः— रेवान् इत् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतः मघोनः प्र इत् उ हरिवः सुतस्य॥ १ ॥

---

१. 'अरी' इत्यस्य बहुवचनम्।

अन्वयः—हरिवः देवतः स्तोता रेवान्–इत् स्यात् त्वावतः–सुतस्य मघोनः प्र–इत् ॥

पदार्थः—(हरिवः) हे दुःखहरणकर्ता सुखाहर्ता परमात्मन्! (देवतः स्तोता रेवान्–इत् स्यात्) धनवान् का स्तोता—प्रशंसक धनवान् ही हो जाता है पुनः (त्वावतः–सुतस्य मघोनः) तेरे जैसे साक्षात् किए हुए ऐश्वर्य वाले परमात्मा का स्तोता (प्र–इत्) प्रकृष्ट धनवान्—मोक्षैश्वर्य वाला अवश्य हो जावे ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २
१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत। न गायत्रं
३ १ २
गीयमानम् ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २
पदपाठः— उक्थञ्चनशस्यमानम् ॥ २ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या २२५)

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३
१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः। शिक्षा शचीवः
१ २
शचीभिः ॥ ३ ॥

३ १ २ १ २र १ २र ३ १ २र ३
पदपाठः— मा नः इन्द्र पीयत्नवे मा शर्द्धते परा दाः शिक्ष शचीवः
१ २र
शचीभिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्र नः पीयत्नवे मा परादाः शर्धते मा शचीवः शचीभिः शिक्षा ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (नः) हम उपासकों को (पीयत्नवे) हिंसक के लिये[१] (मा परादाः) मत त्यागना (शर्धते मा) दबाते हुए के लिए[२] मत त्याग (शचीवः शचीभिः शिक्षा) हे प्रज्ञान वाले[३] परमात्मन्! तू प्रज्ञानों द्वारा मुझे शिक्षा दे—शिक्षारहित हिंसक के हाथ में न पड़ूँ, पाप कर दण्ड का भागी न बन सकूँ, तेरी शिक्षा में रहूँ ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काम्वोनीपातिथिः (मेधावी से सम्बद्ध परमात्मा के निकट[४] पहुँचने वाला) ॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्। दिवो अमुष्य
१ २ ३ १ २ ३ १ २
शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

---

१. ''पीयति हिंसाकर्मा'' [निरु० ४.२१]।

२. ''शृधु प्रसहने'' [चुरादि०]।

३. ''शची प्रज्ञानाम'' [निघं० ३.९]।

४. ''नि–अप् नीपः'' ''द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्'' [अष्टा० ६.३.९५]।

पदपाठः— **एन्द्रयाहिहरिभिः ॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३४८)

१८०८. **अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥**

पदपाठः— **अत्र वि नेमिः एषाम् उराम् न धूनुते वृकः दिवोअमुष्यशासतः दिवंययदिवावसो ॥ २ ॥**

अन्वयः—अत्र एषां नेमिः उरां न वृकः-धूनुते दिवावसो अमुष्य दिवः शासतः दिवं यय ॥

पदार्थः—(अत्र) इस अध्यात्मयज्ञ में (एषां नेमिः) परमात्मन्! इन हरियों अज्ञान पाप हरने वाली शक्तितरङ्गों की नयनप्रवृत्ति[1] गतिविधि (उरां न) ऊन के लिये भेड़ को जैसे (वृकः-धूनुते) भेड़िया विकम्पित कर देता है—निःसत्त्व बना देता है ऐसे पापवासना[2] को विकम्पित कर देता है—निःसत्त्व बना देता है[3] (दिवावसो) हे प्रकाश धन वाले या प्रकाश में वसाने वाले परमात्मन्! (अमुष्य दिवः शासतः) उस प्रकाशमय अमृतलोक मोक्षधाम के शासन करते हुए के अपने (दिवं यय) प्रकाशमय अमृतधाम को मुझ उपासक को ले-जा ॥ २ ॥

१८०९. **आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **आ त्वा ग्रावा वदन् इह सोमी घोषेण वक्षतु दिवोअमुष्यशासतोदिवंययदिवावसो ॥ ३ ॥**

अन्वयः—त्वा ग्रावा सोमी इह घोषेण वदन् आ-वक्षतु दिवावसो० ॥

पदार्थः—(त्वा) हे इन्द्र—परमात्मन् तुझे (ग्रावा) अर्चना करने वाला[4] विद्वान्[5] (सोमी) उपासना रस वाला (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (घोषेण वदन्) अव्यक्त—मानसिक जप से बोलता हुआ तेरी स्तुति करता हुआ (आ-वक्षतु) भली-भाँति प्राप्त करे, शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

---

१. "नियो भिः" [उणा० ४.४३] नेभिः।

२. "वृकः-उरामथिः-उरणमथिः-उरण ऊर्णावान्" [निरु० ५.२१]।

३. अत्र लुप्तोपमालङ्कारः।

४. "ग्रावाणो-गृणातेर्वा" [निरु० ९.८]।

५. "गृणाति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३.१४], "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३.९.३.१४]।

चतुर्थ तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित-प्रकाशित ज्ञानाग्निवाला उपासक)॥ देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)॥ छन्दः—द्विपदा गायत्री ॥

१८१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥

पदपाठः— पवस्व सोम मन्दयन् इन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥

अन्वयः—सोम मधुमत्तमः इन्द्राय मन्दयन् पवस्व ॥

पदार्थः—(सोम) शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर रस वाला (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (मन्दयन्) आनन्द देने के हेतु (पवस्व) प्राप्त हो ॥ १ ॥

१८११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥

पदपाठः— ते सुतासः विपश्चितः विपः चितः शुक्राः वायुम् असृक्षत ॥ २ ॥

अन्वयः—ते सुतासः विपश्चितः शुक्राः वायुम्-असृक्षत ॥

पदार्थः—(ते) वह (सुतासः) उपासित[1] (विपश्चितः) सर्वज्ञ (शुक्राः) शुभ्र प्रकाशमान शान्तस्वरूप परमात्मा (वायुम्-असृक्षत) उपासक आत्मा को[2] मोक्ष पाने योग्य सम्पन्न करता है, बनाता है ॥ २ ॥

१८१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथाइव ॥ ३ ॥

पदपाठः— असृग्रम् देववीतये देव वीतये वाजयन्तोरथाइव ॥ ३ ॥

अन्वयः—वाजयन्तः देववीतये असृग्रन् रथाः-इव ॥

पदार्थः—(वाजयन्तः) उपासक के लिये अमृत अन्नभोग को चाहता हुआ[2] परमात्मा (देववीतये) मुक्तात्माओं की तृप्ति जिसमें हो जाती है उस मुक्ति के लिये[3] (असृग्रन्) धारारूप में प्राप्त होता है (रथाः-इव) रथों के समान जैसे रथ प्रवाहरूप से गति करता है तू भी कर ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—परुच्छेपः (पर्व पर्व—अवसर अवसर पर परमात्मा का स्पर्श या स्तुतियों में पर्व-ग्रन्थि बनाने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥

---

१. बहुवचनमादरार्थम्। २. ''वायुः-आत्मा'' [तै० आ० २.१४.२]।
३. छन्दसि परेच्छायामपि क्यच्।

१८१३. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः॥ १॥

पदपाठः— अग्निम्। होतारम्। मन्ये। दास्वन्तम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ४६५)

१८१४. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः। परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्। शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः॥ २॥

पदपाठः— यजिष्ठम् त्वा यजमानाः हुवेम ज्येष्ठम् अङ्गिरसाम् विप्र वि प्र मन्मभिः विप्रेभिः वि प्रेभिः शुक्र मन्मभिः परिज्मानम् परि ज्मानम् इव द्याम् होतारम् चर्षणीनाम् शोचिष्केशम् शोचिः केशम् वृषणम् यम् इमाः विशः प्र अवन्तु जूतये विशः॥ २॥

अन्वयः—विप्र त्वा यजिष्ठम् अङ्गिरसां ज्येष्ठम् विप्रेभिः मन्मभिः यजमानाः-हुवेम शुक्र मन्मभिः चर्षणीनां होतारं द्याम्-इव परिज्मानम् शोचिष्केशम् वृषणम् यम् ऊतये इमाः-विशः-प्रावन्तु॥

पदार्थः—(विप्र) हे विशेष कामनापूरक परमात्मन्! (त्वा यजिष्ठम्) तुझ अत्यन्त यष्टा—अध्यात्मयज्ञ के आधार (अङ्गिरसां ज्येष्ठम्) अङ्गों को रसीला बनाने वालों में अत्यन्त प्रशस्त को (विप्रेभिः मन्मभिः) विशेष कामनापूरक मननीय स्तुतिसमूहों से[१] (यजमानाः-हुवेम) हम अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक आमन्त्रित करते हैं (शुक्र मन्मभिः) हे शुभ्र परमात्मन्! मननीय स्तुतिसमूहों—(चर्षणीनां होतारं द्याम्-इव परिज्मानम्) दर्शक मनुष्यों के अध्यात्म होता ऋत्विक् को मोक्षधाम की ओर प्रेरक (शोचिष्केशम्)[३] ज्ञानरश्मि[४] वाले (वृषणम्) सुखवर्षक (यम्) जिस तुझ को (ऊतये) रक्षा के लिये (इमाः-विशः-प्रावन्तु) ये उपासक प्रजाएँ

१. "मन्मभिः-मननीयैः स्तोमैः" [निरु० १०.२०]।
२. "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १.१०]।
३. "शोचिः-ज्वलतो नाम" [निघं० १.१७]।
४. "केशाः-रश्मयः" [निरु० १२.२५]।

प्रकृष्टरूप से प्राप्त हों ॥ २ ॥

१८१५. **स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्। निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥**

पदपाठः—सः हि पुरु चित् ओजसा विरुक्मता वि रुक्मता दीद्यानः भवति द्रुहन्तरः द्रुहम् तरः परशुः न द्रुहन्तरः द्रुहम् तरः वीडु चित् यस्य समृतौ सम् ऋतौ श्रुवत् वना इव यत् स्थिरम् निष्षहमाणः निः सहमानः यमते न अयते धन्वासहा धन्व सहा न अयते ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः-हि ओजसा विरुक्मता पुरुचित्-दीद्यानः भवति द्रुहन्तरः परशुः-न द्रुहन्तरः यस्य समृतौ वीडु चित् स्थिरम् श्रुवत् वनाइव निष्षहमाणः यमते न-अयते धन्वासहा न-अयते ॥

पदार्थः—(सः-हि) वह अग्रणायक परमात्मा ही (ओजसा) स्वात्मबल से (विरुक्मता) विशेष तेजस्विता से (पुरुचित्-दीद्यानः भवति) बहुत ही द्योतमान है (द्रुहन्तरः) द्रोही—नास्तिक को तरने—ताड़ने वाला है (परशुः-न द्रुहन्तरः) कुठार जैसा द्रु—काष्ठ का हननकर्ता होता है (यस्य समृतौ) जिस की टक्कर में (वीडु चित् स्थिरम्) दृढ़ स्थिर भी पाप—पापी (श्रुवत्) शीर्ण हो जावे (वनाइव) जल जैसे ताप से बिखर जाता है—भाप बन जाता है (निष्षहमाणः) पापों को नितान्त हटाता हुआ (यमते) स्वाधीन करता है (न-अयते) उपासक से अलग नहीं होता है (धन्वासहा न-अयते) हृदयाकाश पर आसहन—आश्रय बनाता हुआ अलग नहीं होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय षड्च

ऋषिः—पावकोऽग्निः (पवित्र अग्रगन्ता उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)॥ छन्दः—विष्टारपंक्तिः॥

१८१६. **अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥**

पदपाठः— **अग्ने तव श्रवः वयः महि भ्राजन्ते अर्च्चयः विभावसो विभा वसो बृहद्भानो बृहत् भानो शवसा वाजम् उक्थ्यम् दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥**

अन्वयः—विभावसो बृहद्भानो-अग्ने तव श्रवः-वयः-महि अर्चयः शवसा भ्राजन्ते कवे दाशुषे उक्थ्यं वाजं दधासि॥

पदार्थः—(विभावसो बृहद्भानो-अग्ने) हे विशेष ज्ञानज्योति में बसानेवाले महादीप्तिमान् अग्रणेता परमात्मन्! (तव श्रवः-वयः-महि) तेरा श्रवणीय यश[1] ज्ञान[2] महान् है (अर्चयः शवसा भ्राजन्ते) तेरी ज्ञानरश्मियाँ जगद्रचन विषयक जगत् में प्रबलरूप से भासित हो रही हैं (कवे) हे क्रान्तदर्शी! (दाशुषे) आत्मदानी उपासक के लिये तू (उक्थ्यं वाजं दधासि) प्रशंसनीय अमृतान्न—मोक्षानन्द को धारण करता है॥ १॥

१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥ २॥

पदपाठः— **पावकवर्च्चाः पावक वर्च्चाः शुक्रवर्च्चाः शुक्र वर्च्चाः अनूनवर्च्चाः अनून वर्च्चाः उत् इयर्षि भानुना पुत्रः पुत् त्रः मातरा विचरन् वि चरन् उप अवसि पृणक्षि रोदसीइति उभेइति॥ २॥**

अन्वयः—पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः भानुना-उदियर्षि पुत्रः-मातरा विचरन्-उप-अवसि उभे रोदसी पृणक्षि॥

पदार्थः—(पावकवर्चाः) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू पवित्रकारक—तेज वाला (शुक्रवर्चाः) शुभ्र तेज वाला (अनूनवर्चाः) पूर्ण तेज वाला हुआ (भानुना-उदियर्षि) अपने ज्ञानप्रकाश से उपासक के अन्दर उदित रहता है या उस आस्तिक को संसार में सदा भासता रहता है (पुत्रः-मातरा विचरन्-उप-अवसि) पुत्र जैसे माता पिता के पास विचरण करता हुआ उन्हें तृप्त करता है ऐसे मुझ उपासक को भी तृप्त कर[3] (उभे रोदसी पृणक्षि) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक को—अपवर्ग स्थान मोक्षधाम को[4] और भोगस्थान प्रथित संसार को अभ्युदय को आत्मा के दोनों आश्रय को (पृणक्षि) हमारे लिये सम्पृक्त कराता है[5], सम्बद्ध कराता है, उनके भोग और अमृत को भुगाता है॥ २॥

१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः॥ ३॥

---

१. "श्रवः-श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९]।
२. "वी गतिव्याप्ति...." [अदादि०] ततः असुन्।
३. "अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्ति....." [भ्वादि०] लुप्तोपमावाचकालङ्कारः।
४. "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३.१], "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०.९०.३]।
५. "पृची सम्पर्के" [रुधादि०]।

पदपाठः— **ऊर्ज्जः नपात् जातवेदः जात वेदः सुशस्तिभिः सु शस्तिभिः मन्दस्व धीतिभिः हितः त्वेइति इषः सम् दधुः भूरिवर्पसः भूरि वर्पसः चित्रोतयः चित्र उतयः वामजाताः वाम जाताः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—ऊर्जः-नपात्-जातवेदः सुशस्तिभिः-धीतिभिः हितः मन्दस्व 'मन्दयस्व' भूरिवर्पसः चित्रोतयः वामजाताः त्वे इषः सन्दधुः ॥

पदार्थः—(ऊर्जः-नपात्-जातवेदः) हे उपासक के बल को न गिराने वाले अपितु बढ़ाने वाले उत्पन्न मात्र के ज्ञाता परमात्मन्! (सुशस्तिभिः-धीतिभिः) उत्तम प्रशंसाओं स्तुतियों और योगाभ्यास कर्मों से[१] (हितः) धारण किया हुआ (मन्दस्व 'मन्दयस्व') आनन्दित कर (भूरिवर्पसः) बहुत रूप में उपासना करने वाले—बहुत प्रकार वरने वाले[२] (चित्रोतयः) अद्भुत प्रीति वाले (वामजाताः) श्रेष्ठगुणजात—श्रेष्ठ गुणों से संजात प्रसिद्ध उपासक (त्वे) तेरे अन्दर (इषः) कामनाएँ (सन्दधुः) सन्धानित कर देते हैं और हम उपासकों ने तुझे ही ऐसा अपना आधार बनाया है ॥ ३ ॥

१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य। स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥

पदपाठः— **इरज्यन् अग्ने प्रथयस्व जन्तुभिः अस्मेइति रायः अमर्त्त्य अ मर्त्त्य सः दर्शतस्य वपुषः वि राजसि पृणक्षि दर्शतम् क्रतुम् ॥ ४ ॥**

अन्वयः—अमर्त्य-अग्ने इरज्यन् अस्य जन्तुभिः 'जन्तुभ्यः' रायः प्रथयस्व सः दर्शतस्य वपुषः विराजसि दर्शतं क्रतुं पृणक्षि ॥

पदार्थः—(अमर्त्य-अग्ने) हे मरणधर्मरहित अग्रणेता परमात्मन्! तू (इरज्यन्) स्वामित्व करता हुआ[३] (अस्य जन्तुभिः 'जन्तुभ्यः') हम उपासक मनुष्यों के लिये[४] (रायः प्रथयस्व) धनों—अध्यात्म ऐश्वर्यों—शम-दम आदियों को प्रथित कर—प्रसारित कर (सः) वह तू (दर्शतस्य वपुषः) दर्शनीयरूप—स्वरूप—मोक्ष का (विराजसि) विशेष राजा हो रहा है (दर्शतं क्रतुं पृणक्षि) दर्शनीय कर्म—जगत्[५] को सम्पृक्त करता है—हमारे से मिलाता है ॥ ४ ॥

---

१. "धीतिभिः कर्मभिः" [निरु० ११.१६]।
२. "वर्प इति रूपनाम वृणोतीति सतः" [निरु० ५.८]।
३. "इरज्यति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २.२१]।
४. चतुर्थीस्थाने तृतीया व्यत्ययेन।
५. "जगद्वाचित्वात्" [वेदान्तद०]।

१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः। रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम्॥ ५॥

पदपाठः— इष्कर्तारम् अध्वरस्य प्रचेतसम् प्र चेतसम् क्षयन्तम् राधसः महः रातिम् वामस्य सुभगाम् सु भगाम् महीम् इषम् दधासि सानसिम् रयिम्॥ ५॥

अन्वयः—अध्वरस्य-इष्कर्तारम् प्रचेतसम् महः-राधसः क्षयन्तम् वामस्य रातिम् महीं सुभगाम्-इषम् सानसिं रयिम् दधासि॥

पदार्थः—(अध्वरस्य-इष्कर्तारम्) हे अग्रणेता परमात्मन्! अध्यात्म यज्ञ के तुझ निष्पादक[1] (प्रचेतसम्) ज्ञान देकर सावधान करने वाले—(महः-राधसः क्षयन्तम्) महान् धन का स्वामित्व करते हुए को[2] (वामस्य रातिम्) वननीय अध्यात्म सुखलाभ के दाता[3]—को स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं (महीं सुभगाम्-इषम्) महती सुभाग्य करने वाली कामना को, तथा (सानसिं रयिम्) सनातन[4] शाश्वतिक—स्थिर ऐश्वर्य मोक्षैश्वर्य को (दधासि) तू धारण कराता है॥ ५॥

१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः। श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा॥ ६॥

पदपाठः— ऋतवानम् महिषम् विश्वदर्शतम् विश्व दर्शतम् अग्निम् सुम्नाय दधिरे पुरः जनाः श्रुत्कर्णम् श्रुत् कर्णम् सप्रथस्तमम् स प्रथस्तमम् त्वा गिरा दैव्यम् मानुषा युगा॥ ६॥

अन्वयः—जनाः ऋतावानम् महिषम् विश्वदर्शतम् त्वा-अग्निम् पुरः-दधिरे मानुषा युगा श्रुतकर्णम् सप्रथस्तमम् दैव्यम् गिरा॥

पदार्थः—(जनाः) उपासकजन (ऋतावानम्) यथार्थ ज्ञान अर्थात् वेद वाले[5] (महिषम्) महान्[6] अनन्त (विश्वदर्शतम्) सबके दर्शनीय (त्वा-अग्निम्) तुझ अग्रणेता परमात्मा को (पुरः-दधिरे) पूर्व से—आरम्भ सृष्टि से धारण करते हैं (मानुषा युगा) मनुष्य सम्बन्धी युगल—स्त्री पुरुष सब (श्रुतकर्णम्) सुन चुके हुए

---

१. ''निष्कर्तारम्'' नकारलोपश्छान्दसः। २. ''क्षियति-ऐश्वर्यकर्मा'' [निघं० २.२१]।
३. ''रा दाने'' [अदादि०] ततः, क्तिच्, अन्तोदात्तत्वात्।
४. ''पृणक्षि सानसिं क्रतुमिति पृणक्षि सनातनं क्रतुमित्येवैतत्'' [श० ७.३.१.१२]।
५. ''ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत'' [ऋतं वेदज्ञानम् यजु० १७.८ दयानन्दः]।
६. ''महिषो महन्नाम'' [निघं० ३.३]।

कान जिससे हो जाते हैं—[१] अन्य श्रवण की आवश्यकता नहीं रहती—श्रवण से तृप्त श्रोत्र हो जाता है (सप्रथस्तमम्) सपृथु—अत्यन्त विस्तार वाले सावधान (दैव्यम्) देवों—मुमुक्षुओं के इष्ट अग्रणेता परमात्मा को (गिरा) स्तुति से धारण करते हैं॥ ६ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा ककुप्॥

१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ॥ १ ॥

पदपाठः— प्रसोअग्नेतवोतिभिः॥ १ ॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १०८)

१८२३. तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि॥ २ ॥

पदपाठः—तव द्रप्सः नीलवान् वाशः ऋत्वियः इन्धानः विष्णो आ ददे त्वम् महीनाम् उषसाम् असि प्रियः क्षपः वस्तुषु राजसि॥ २ ॥

अन्वयः—सिष्णो तव द्रप्सः नीलवान्=वाशः ऋत्वियः इन्धानः आददे त्वम् महीनाम्-उषसां प्रियः-असि क्षपः-वस्तुषु-राजसि॥

पदार्थः—(सिष्णो) हे सर्वत्र प्राप्त[२] अग्रणेता परमात्मन्! (तव द्रप्सः) तेरा अणु—[३] अणु परिमाण वाला उपासक आत्मा, तू तो विभु है (नीलवान्=) शरीररूप घर में[४] रहने वाला एकदेशी है, (वाशः) तुझे चाहने वाला (ऋत्वियः) पितरों—माता पिता आदि से सम्बन्ध रखने वाला[५] (इन्धानः) उपासना द्वारा तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करने के हेतु (आददे) ग्रहण करता है—अपनाता है (त्वम्) तू (महीनाम्-उषसां प्रियः-असि) कामना करने वाली[६] उपासक प्रजाओं का प्रिय है (क्षपः-वस्तुषु-राजसि) रात्रि में वसने वालों अन्धकार में रहने वालों के ऊपर राजमान है—प्रकाशमान है उन्हें प्रकाश देता है॥ ३ ॥

---

१. ''श्रुतौ-श्रुतवन्तौ कर्णौ यस्मात्-यस्य ज्ञानाद्वा स श्रुतकर्णस्तं श्रुतकर्णम्''।
२. ''सिसति गतिकर्मा'' [निघं० २.१४]।
३. ''द्रप्सः सम्भृतः'' [निरु० ५.१४], ''स्तोको वै द्रप्सः'' [गो० २.१.२२]।
४. ''नीडं गृहनाम'' [निघं० ३.४]।
५. ''पितरो वा ऋतवः'' [मै० १.१०.१७]।
६. ''उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः'' [निरु० १२.६]।

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—अरुणः (आरोचमान तपस्वी उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—विषमा ककुप्॥

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः। तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा॥ १॥

पदपाठः— तम् ओषधीः ओष धीः दधिरे गर्भम् ऋत्वियम् तम् आपः अग्निम् जनयन्त मातरः तम् इत् समानम् सम् आनम् वनिनः च वीरुधः अन्तर्वतीः च सुवते च विश्वहा विश्व हा॥ २॥

अन्वयः—तम्–ऋत्वियं गर्भम्–अग्निम् ओषधीः–दधिरे तम्–आपः–मातरः–जनयन्त तम्–इत् समानं वनिनः–च वीरुधः–अन्तर्वतीः–च विश्वाहा सुवते॥

पदार्थः—(तम्–ऋत्वियं गर्भम्–अग्निम्) उस प्रत्येक ऋतु में—सर्वदा वर्तमान गर्भसमान ग्रहण करने योग्य अग्रणेता परमात्मा को (ओषधीः–दधिरे) 'दैवी विशः' जीवन्मुक्त प्रजाएँ[१] धारण करती हैं (तम्–आपः–मातरः–जनयन्त) उस परमात्मा को आप्त मनुष्य[२] निर्माण करने वाले अपने अन्दर गृहस्थ में प्रादुर्भूत करते हैं (तम्–इत् समानं वनिनः–च) उस ही परमात्मा को वैसे ही अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं वनी जन—वानप्रस्थाश्रमीजन (वीरुधः–अन्तर्वतीः–च विश्वाहा सुवते) जीवन में विशेष रोहण करने वाली[३] अन्दर ज्ञान धारण करती हुई ब्रह्मचारी[४] व्यक्तियाँ सर्वदा ब्रह्मचर्य में वर्तमान उस अग्रणेता परमात्मा को सम्पन्न सम्यक् प्राप्त करती है॥ १॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—प्रजापतिरग्निः (प्रजा का स्वामी-इन्द्रियों का स्वामी विद्वान्)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति। महिषीव वि जायते॥ १॥

पदपाठः— अग्निः इन्द्राय पवते दिवि शुक्रा वि राजति महिषी इव वि जायते॥ १॥

---

१. ''दैवी वा एता विशो यदोषधयः'' [काठ० २५.१०]।
२. ''मनुष्या आपश्चन्द्राः'' [श० ७.३.१.२०]।
३. ''वीरुधः-विरोहणात्'' [निरु० ६.३]।
४. ''यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'' [कठो० २.१५]।

अन्वयः—अग्निः इन्द्राय पवते शुक्रः-दिवि वि राजति महिषी-इव वि जायते ॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्रणेता परमात्मा (इन्द्राय पवते) उपासक आत्मा के लिये प्राप्त होता है (शुक्रः-दिवि वि राजति) जोकि शुभ्र—प्रकाशमान हुआ मोक्षधाम में विशेषरूप से विराजमान है (महिषी-इव वि जायते) महिमा[1] वाला[2] विशेषरूप से या विविध गुणयोग से साक्षात् होता है ॥ १ ॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षण करते हुए परमात्मा के अनुसार आचरण करने वाला)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८२६. **यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥**

पदपाठः— **यः जागार तम् ऋचः कामयन्ते यः जागार तम् उ सामानि यन्ति यः जागार तम् अयम् सोमः आह तव अहम् अस्मि सख्ये स ख्ये न्योकाः नि ओकाः ॥ १ ॥**

अन्वयः—यः-जागार तम्-ऋचः कामयन्ते यः-जागार तम्-उ सामानि यन्ति यः-जागार तम् अयं सोमः-आह अहम् तव सख्ये न्योकाः-अस्मि ॥

पदार्थः—(यः-जागार) जो सदा जागरूक है (तम्-ऋचः कामयन्ते) उस उपासक को स्तुतियाँ चाहती हैं (यः-जागार) जो सदा जागता है, सावधान है (तम्-उ) उसके प्रति ही (सामानियन्ति) उपासनाएँ भी प्राप्त होती हैं (यः-जागार) जो जाग रहा है (तम्) उसकी (अयं सोमः-आह) यह सौम्य धर्मयुक्त उपासक कहता है कि (अहं तव सख्ये) मैं तेरी मित्रता में (न्योकाः-अस्मि) निश्चित स्थायी हूँ[3] प्राणवाला हूँ ॥ १ ॥

पञ्चम एकर्च

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षण करते हुए परमात्मा के अनुसार आचरण करने वाला)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८२७. **अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति। अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥**

---

१. ''महिषी महन्नाम'' [निघं० ३.३] तद्वान् महिषी।
२. ''इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः'' [निरु० १.१०]।
३. ''गृहा वा ओकः'' [ऐ० ८.२६], ''प्राणा ह खलु वा ओकः'' [जै० १.२१४]।

पदपाठः— **अग्निः जागार तम् ऋचः कामयन्ते अग्निः जागार तम् उ सामानि यन्ति अग्निः जागार तम् अयम् सोमः आह तवाहमस्मिसख्येन्योकाः ॥ १ ॥**

अन्वयः— अग्निः-जागार तम्-ऋचः कामयन्ते अग्निः-जागार तम्-उ सामानि यन्ति अग्निः-जागार अयं सोमः-आह तव सख्ये अहं न्योकाः-अस्मि ॥

पदार्थः— (अग्निः-जागार) अग्रणेता परमात्मा जागता है सदा जागरूक है (तम्-ऋचः कामयन्ते) उसे उपासक की स्तुतियाँ चाहती हैं (अग्निः-जागार) परमात्मा जागता है (तम्-उ सामानि यन्ति) उसे ही उपासनाएँ प्राप्त होती है (अग्निः-जागार) परमात्मा जागता है—सावधान है (तम्) उसे (अयं सोमः-आह) यह सोम—सौम्य स्वभाव उपासक कहता है (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अहं न्योकाः-अस्मि) मैं निश्चित स्थान वाला या स्थायी प्राण वाला हूँ—अमर जीवन वाला हूँ ॥ १ ॥

षष्ठ तृच

ऋषिः—मृग[1] (परमात्मा का अन्वेषक) ॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा) ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१८२८. **नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः । युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥**

पदपाठः— **नमः सखिभ्यः स खिभ्यः पूर्वसद्भ्यः पूर्व सद्भ्यः नमः साकन्निषेभ्यः साकम् निषेभ्यः युञ्जे वाचम् शतपदीम् शत पदीम् ॥ १ ॥**

अन्वयः— पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः-नमः साकन्निषेभ्यः शतपदीं वाचं युञ्जे ॥

पदार्थः— (पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः-नमः) पूर्व से विराजमान—मोक्षधाम में विराजमान[2] अग्रणेता मित्र परमात्मा[3] के लिये स्वागत हो (साकन्निषेभ्यः) इस जन्म में निषण्ण—साथ रहने वाले परमात्मा के लिये स्वागत है (शतपदीं वाचं युञ्जे) उसके लिये बहुत पदों—बहुत प्राप्तव्य फल वाली स्तुतिवाणी को मैं प्रयुक्त करता हूँ ॥ १ ॥

१८२९. **युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्त्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥**

---

१. सायणभाष्ये।

२. ''क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहै यदवृकं पुराचित्'' [ऋ० ७.८८.५]।

३. बहुवचनमादरार्थम्।

पदपाठः— युञ्जेवाचᳲशतपदीम् गाये सहस्रवर्त्तनि सहस्र वर्त्तनि गायत्रम् त्रैष्टुभम् त्रै स्तुभम् जगत् ॥ २ ॥

अन्वयः—शतपदी वाचं युञ्जे सहस्रवर्तनि गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्-गाये ॥

पदार्थः—(शतपदी वाचं युञ्जे) बहुत प्रास्तव्य फल वाली स्तुतिवाणी को मैं प्रयुक्त करता हूँ (सहस्रवर्तनि गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्-गाये) बहुत ज्ञानमार्ग वाले गायत्री सम्बन्धी त्रिष्टुभ् सम्बन्धी जगती सम्बन्धी स्तोत्र या साम को परमात्मा के लिये मैं गाता हूँ ॥ २ ॥

१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता। देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥

पदपाठः— गायत्रन्त्रैष्टुभञ्जगत् विश्वा रूपाणि सम्भृता सम् भृता देवाः ओकाᳲसि चक्रिरे ॥ ३ ॥

अन्वयः—गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् सम्भृता विश्वारूपाणि देवाः-ओकांसि चक्रिरे ॥

पदार्थः—(गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्) गायत्रीसम्बन्धी त्रिष्टुप्सम्बन्धी जगतीसम्बन्धी स्तोत्रों या सामों को (सम्भृता विश्वारूपाणि) अपितु सम्यक् भरण धारण किए सब रूप—सब प्रकार के छन्दों वाले स्तोत्रों या सामों को परमात्मा के लिये गाता हूँ (देवाः-ओकांसि चक्रिरे) उपासक विद्वान् अपना आश्रय करते हैं—बनाते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम तृच

ऋषिः—अवत्सारो वत्सप्रीर्वा (रक्षा करते हुए परमात्मा के अनुसार चलने वाला या वक्ता बन परमात्मा को प्रसन्न करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री ॥

१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

पदपाठः— अग्निः ज्योतिः ज्योतिः अग्निः इन्द्रः ज्योतिः ज्योतिः इन्द्रः सूर्यः ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

अन्वयः—अग्निः-ज्योतिः ज्योतिः-अग्निः इन्द्रः-ज्योतिः ज्योतिः-इन्द्रः सूर्यः-ज्योतिः ज्योतिः-सूर्यः ॥

पदार्थः—(अग्निः-ज्योतिः) पृथिवी स्थानी अग्नि ज्योति है (ज्योतिः-अग्निः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है वही आग्नेय शक्ति उसमें देता है[1] (इन्द्रः-ज्योतिः) मध्यस्थानी विद्युत् ज्योति है (ज्योतिः-इन्द्रः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा

१. "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" [कठो० ५.१५]।

है वही उसमें चमक देता है (सूर्यः-ज्योतिः) द्युस्थानी सूर्य ज्योति है (ज्योतिः-सूर्यः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है उसकी ज्योति से सूर्य प्रकाशित होता है॥ १॥

१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः॥ २॥

पदपाठः—पुनः ऊर्जा नि वर्त्तस्व पुनः अग्ने इषा आयुषा पुनः नः पाहि अंहसः॥ २॥

अन्वयः—अग्ने पुनः-ऊर्जा निवर्तस्व पुनः-इषा-आयुषा नः पुनः अंहसः पाहि॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (पुनः-ऊर्जा निवर्तस्व) हमें पुनः आत्मबल देने के लक्ष्य से नितरां वर्तो—प्राप्त हो (पुनः-इषा-आयुषा) पुनः कमनापूर्ति—मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य से तथा वहाँ की आयुप्राप्ति के लक्ष्य से नितरां प्राप्त हो (नः) हमें (पुनः) फिर (अंहसः पाहि) बन्धनकारण पाप से बचा॥ २॥

१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥ ३॥

पदपाठः— सह रय्या नि वर्त्तस्व अग्ने पिन्वस्व धारया विश्वप्स्न्या विश्व प्स्न्या विश्वतः परि॥ ३॥

अन्वयः—अग्ने रय्या सह निवर्तस्व विश्वतः-परि विश्वप्स्न्या धारया पिन्वस्व॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (रय्या सह निवर्तस्व) रमणीय गति से नितरां प्राप्त हो (विश्वतः-परि) सब के परे उत्कृष्ट (विश्वप्स्न्या धारया पिन्वस्व) समस्त भोगप्रद आनन्दधारा से हमें सिञ्चित कर—तृप्त कर॥ ३॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियों की संयमरूप उक्ति वाला और व्यापनशील मन की शिवसङ्कल्परूप उक्ति वाला उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोसखा स्यात्॥ १॥

पदपाठः— यदिन्द्राहंयथात्वम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १२२)

१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥ २॥

पदपाठः— शिक्षेयम् अस्मै दित्सेयम् शचीपते शची पते मनीषिणे यत् अहम् गोपतिः गो पतिः स्याम्॥ २॥

अन्वयः—शचीपते यद्-अहं गोपतिः स्याम् अस्मै मनीषिणे दित्सेयम् शिक्षेयम्॥

पदार्थः—(शचीपते) हे प्रज्ञा[1] प्रज्ञान—प्रकृष्टज्ञान के स्वामिन् परमात्मन् (यद्-अहं गोपतिः स्याम्) यदि मैं गो—स्तुति वाणियों का स्वामी बन जाऊँ—कुशल स्तुतिकर्ता बन जाऊँ, तो (अस्मै मनीषिणे) इस बुद्धिमान् तेरे स्तोता के लिये जो मेरे पास धन है उसे (दित्सेयम्) देने की इच्छा करूँ, और (शिक्षेयम्) देदूँ[2] भी तब परमात्मन् तू भी जितना ऐश्वर्य तेरे पास है मुझ अपने स्तुतिकर्ता को देदे—दे देता है॥ २॥

१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ ३॥

पदपाठः— धेनुः ते इन्द्र सूनृता सु नृता यजमानाय सुन्वते गाम् अश्वम् पिप्युषी दुहे॥ ३॥

अन्वयः—इन्द्र ते सूनृता धेनुः सुन्वते यजमानाय पिप्युषीं गाम्-अश्वं दुहे॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते) तेरी (सूनृता धेनुः) अध्यात्म-यज्ञ[3] रूप गौ (सुन्वते यजमानाय) देवपूजन करने वाले[4] अध्यात्मयज्ञ करते हुए उपासक के लिये (पिप्युषीं गाम्-अश्वं दुहे) बढ़ती बढ़ाती हुई उत्तम वाणी को और आशुगामी मन को दूहता हूँ॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्रिशिरः सिन्धुद्वीपः (तीन ज्ञान श्री[5] वेदत्रयी वाला स्यन्दमान दो प्रवाहों—संसार और मोक्ष में वर्तमान उपासक)॥ देवता—आपः (आप्तव्य परमात्मा)॥ छन्दः—गायत्री॥

१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ १॥

---

१. "शची प्रज्ञानाम" [निघं० ३.९]। २. "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३.२०]।
३. "यज्ञो वै सूनृता" [तै० सं० १.६.११.२]।
४. "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]।
५. "श्रीर्वै शिरः" [श० १.४.५.५]।

पदपाठः— **आपः हि स्थ मयोभुवः मयः भुवः ताः नः ऊर्जे दधातन दधात न महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥**

अन्वयः—आपः मयः-भुवः-हि स्थ ताः-नः ऊर्जे महे रणाय चक्षसे दधातन ॥

पदार्थः—(आपः) हे आप्तव्य—प्राप्त करने योग्य परमात्मन्![1] तू (मयः-भुवः-हि स्थ) सुख[2] भावित करने वाला निश्चय है (ताः-नः) वह तू हमें (ऊर्जे) मोक्षानन्दरस के लिये[3] (महे रणाय चक्षसे) महान् रमणीय अपने दर्शन के लिये[4] (दधातन) धारण करा ॥ १ ॥

१८३८. **यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥**

पदपाठः— **यः वः शिवतमः रसः तस्य भाजयत इह नः उशतीः इव मातरः ॥ २ ॥**

अन्वयः—वः यः शिवतमः-रसः तस्य 'तम्' इह नः-भाजयत उशतीः-इव मातरः ॥

पदार्थः—(वः) हे प्राप्तव्य परमात्मन्! तेरा (यः शिवतमः-रसः) जो अत्यन्त कल्याणकारी रस—आनन्दरस है (तस्य 'तम्' इह नः-भाजयत) उसका हमें भागी बना (उशतीः-इव मातरः) हितकामना करती हुई माताओं के समान, जैसे माताएँ पुत्र की हितकामनाएँ करती हैं ॥ २ ॥

१८३९. **तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **तस्मै अरम् गमाम वः यस्य क्षयाय जिन्वथ आपः जनयथ च नः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—तस्मै वः 'त्वाम्' अरङ्गमाम यस्य क्षयाय जिन्वथ च आपः-नः-जनयथ ॥

पदार्थः—(तस्मै वः 'त्वाम्' अरङ्गमाम) उस तेरे आनन्दरस के लिये तुझे हम भली-भाँति या सामर्थ्य से प्राप्त होते हैं (यस्य क्षयाय जिन्वथ) जिसके हमारे अन्दर निवास कराने—वसाने के लिये प्राप्त होता है[5] (च) और (आपः-नः-जनयथ) हे प्राप्त करने योग्य परमात्मम्! तू हमारे लिये उस आनन्दरस को प्रादुर्भूत कर ॥ ३ ॥

---

१. "आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी" [श० ८.२.३.१३]।
२. "मयः सुखनाम" [निघं० ३.६]। ३. "ऊर्वै रसः" [मै० ३.१०.४]।
४. "रणाय चक्षसे-रमणीयाय च दर्शनाय" [निरु० ९.२६]।
५. "जिन्वति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

तृतीय तृच

ऋषिः—वातायन उलः (अध्यात्म वात के अयन-वातावरण में उल्लास को प्राप्त उपासक)॥ छन्दः—गायत्री॥

१८४०. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूँषि तारिषत्॥ १॥

पदपाठः— वातआवातुभेषजम्॥ १॥

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या १८४)

१८४१. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि॥ २॥

पदपाठः— उत वात पिता असि नः उत भ्राता उत नः सखा स खा सः नः जीवातवे कृधि॥ २॥

अन्वयः—वात नः पिता-असि उत भ्राता उत नः सखा सः नः जीवातवे कृधि॥

पदार्थः—(वात) हे विभुगतिमन् परमात्मन्! तू (नः) हमारा (पिता-असि) पिता है (उत) अपि (भ्राता) भ्राता है (उत) और (नः) हमारा (सखा) समानख्यान मित्र है (सः) वह तू (नः) हमें (जीवातवे कृधि) जीवन के लिये योग्य कर—बना॥ २॥

१८४२. यददो वात ते गृहे ३ऽमृतं निहितं गुहा। तस्य नो धेहि जीवसे॥ ३॥

पदपाठः— यत् अदः वात ते गृहे अमृतम् अ मृतम् निहितम् नि हितम् गुहा तस्य नः धेहि जीवसे॥ ३॥

अन्वयः—वात ते गृहे यत्-अदः अमृतम् गुहा निहितम् तस्य नः-जीवसे धेहि॥

पदार्थः—(वात) हे विभुगतिमन् परमात्मन्! (ते गृहे) तेरे घर में—मोक्षधाम में (यत्-अदः) जो वह अमुक (अमृतम्) अमृतानन्द (गुहा निहितम्) सूक्ष्म स्थिति में छिपा हुआ रखा है (तस्य नः-जीवसे धेहि) उसे हमारे जीवन—दीर्घ जीवन अमर जीवन के लिये धारण करा॥ ३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—सुपर्णः (सुपर्णवान्-उपासना द्वारा सम्यक् पालनकर्ता परमात्मा को धारण करने वाला उपासक)॥ देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८४३. अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः। सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान॥ १ ॥

पदपाठः—अभि वाजी विश्वरूपः विश्व रूपः जनित्रम् हिरण्ययम् बिभ्रत् अत्कम् सुपर्णः सु पर्णः सूर्यस्य भानुम् ऋतुथा वसानः परि स्वयम् मेधम् ऋजः जजान॥ १ ॥

अन्वयः—सुपर्णः वाजी विश्वरूपः हिरण्ययं जनित्रम् अत्कम्-अभि बिभ्रत् ऋतुथा सूर्यस्य भानुं वसानः ऋज्रः मेधं स्वयं परि जजान॥

पदार्थः—(सुपर्णः) शोभनपालन गुणवाला परमात्मा (वाजी) अमृत अन्नभोग का स्वामी[1] (विश्वरूपः) विश्व को रूप देनेवाला—विश्व रचयिता (हिरण्ययं जनित्रम्) सौवर्ण—सुनहरे जनन साधन—(अत्कम्-अभि बिभ्रत्) गमक—अण्ड—ब्रह्माण्ड को सर्व प्रकार धारण करने के हेतु, तथा (ऋतुथा सूर्यस्य भानुं वसानः) ऋतु के अनुसार सूर्य के प्रकाश को वसाने फैलाने के हेतु (ऋज्रः) तेजस्वी परमात्मा (मेधं स्वयं परि जजान) सङ्गमनीय संसारयज्ञ[2] को स्वयं परिपूर्ण करता है॥ १ ॥

१८४४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् सम्बभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः॥ २ ॥

पदपाठः—अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपम् विश्व रूपम् तेजः पृथिव्याम् अधि यत् सम्बभूव सम् बभूव अन्तरिक्षे स्वम् महिमानम् मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णः अश्वस्य रेतः॥ २ ॥

अन्वयः—अप्सु रेतः शिश्रिये पृथिव्याम्-अधि विश्वरूपम् तेजः-यत् सम्बभूव अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः वृष्णः-अश्वस्य रेतः-कनिक्रन्ति॥

पदार्थः—(अप्सु रेतः शिश्रिये) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा ब्रह्माण्ड या सृष्टि के रचनार्थ द्युलोक[3] में रेत—प्राण[4] को आश्रय देता है—(पृथिव्याम्-अधि विश्वरूपे तेजः-यत् सम्बभूव) पृथिवी में सब प्राणी वनस्पति को रूप देने वाले तेज को जोकि जब प्रकट हुआ (अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः) अन्तरिक्ष में निज महिमा को महत्त्व को मापता हुआ—फैलाता हुआ (वृष्णः-अश्वस्य रेतः-कनिक्रन्ति)

१. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]। २. "मेधो यज्ञनाम" [निघं० ३.१७]।
३. "आपो वै द्यौः" [श० ६.४.१.९]। ४. "प्राणो रेतः" [ऐ० २.३८]।

सुखवर्षक व्यापक परमात्मा बल प्रगति=प्रदान करता है ॥ २ ॥

१८४५. **अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥**

पदपाठः— **अयम् सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुम् यज्ञः दाधार सहस्रदाशतदाभूरिदावा धर्त्ता दिवः भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥**

अन्वयः—अयं यज्ञः युक्ता सहस्रा परिवसानः भानुं सूर्यस्य 'सूर्यं' दाधार दिवः-धर्ता भुवनस्य विश्पतिः शतदाः-सहस्रदाः-भूरिदावा ॥

पदार्थः—(अयं यज्ञः) यह सङ्गमनीय परमात्मा (युक्ता सहस्रा परिवसानः) असंख्य उपयुक्त या अपने साथ संयुक्त गुण बलों को समाविष्ट करता हुआ (भानुं सूर्यस्य 'सूर्यं' दाधार) प्रकाशमान सूर्य को धारण करता है (दिवः-धर्ता) मोक्षधाम का धारणकर्ता (भुवनस्य विश्पतिः) जगत् का प्रजापालक परमात्मा (शतदाः-सहस्रदाः-भूरिदावा) सैंकड़ों सुखों का देने वाला सहस्रों सुखों का देने वाला बहुत ही सुखों का देने वाला है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—भार्गवो वेनः (तेजस्वी पिता या गुरु से सम्बद्ध परमात्म सत्सङ्ग कामना करने वाला उपासक)॥ देवता—वेनः (कमनीय परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८४६. **नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्॥ १ ॥**

पदपाठः— **नाकेसुपर्णमुपयत्पतन्तम्॥ १ ॥**

(देखो अर्थव्याख्या मन्त्र संख्या ३२०)

१८४७. **ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि। वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा ३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥**

पदपाठः— **ऊद्ध्र्वः गन्धर्वः अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ्प्रति अङ् चित्रा बिभ्रत् अस्य आयुधानि वसानः अत्कम् सुरभिम् सु रभिम् दृशे कम् स्वः न नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥**

अन्वयः—ऊर्ध्वः गन्धर्वः नाके-अधि प्रत्यङ्-अस्थात् चित्रा-आयुधानि बिभ्रत् दृशे-अत्कं सुरभिं कं वसानः स्वर्ण नाम प्रियाणि जनत ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वः) चेतन आत्माओं में उत्कृष्ट या उन पर रक्षक (गन्धर्वः) गति करने वाले लोकों[1] पिण्डों का धारणकर्ता परमात्मा (नाके-अधि प्रत्यङ्-अस्थात्) दुःखरहित नितान्त सुखपूर्ण मोक्षधाम में साक्षात् स्वरूप स्थित है (चित्रा-आयुधानि बिभ्रत्) भिन्न-भिन्न—आयु धारण करने वाले शरीरों को भरण—आत्माओं से पूरित करता हुआ विराजमान है (दृशे-अत्कं सुरभिं कं वसानः) आत्माओं को दिखाने भुगाने के लिये सर्वत्र प्राप्त शोभन सुख का आच्छादन करता हुआ (स्वर्ण नाम प्रियाणि जनत) सुनहरे आकर्षक नाम—नमाने वाले प्रिय भोग वस्तुओं को प्रकट करता है ॥ २ ॥

१८४८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्। भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥

पदपाठः— द्रप्सः समुद्रम् सम् उद्रम् अभि यत् जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्म्मन् वि धर्म्मन् भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानः तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥

अन्वयः—द्रप्सः समुद्रम्-अभि यद्-जिगाति विधर्मन् गृध्रस्य 'गृध्रं' चक्षसा पश्यन् शुक्रेण शोचिषा भानुः-चकानः तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे ॥

पदार्थः—(द्रप्सः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मा (समुद्रम्-अभि) समुद्भूत संसार को[2] (यद्-जिगाति) जब प्राप्त होता है—गति देता है[3] (विधर्मन् गृध्रस्य 'गृध्रं' चक्षसा पश्यन्) विविधरूप में वर्तमान भोग के चाहने वाले को ज्ञान दृष्टि—सर्वज्ञता से देखता हुआ—जानता हुआ (शुक्रेण शोचिषा) शुभ्रदीप्ति से (भानुः-चकानः) प्रकाशस्वरूप दीप्यमान परमात्मा (तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे) तृतीय रञ्जनात्मक धाम—मोक्ष में उपासक आत्मा के लिये प्रिय सुखों को सम्पादन करता है ॥ ३ ॥

इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

१. ''इमे वै लोका गौः'' [श० ६.१.२.३४]।
२. ''समुद्रमनु प्रजाः प्रजायन्त'' [तै० सं० ५.२.६.१]।
३. ''जिगाति गतिकर्मा'' [निरु० २.१४]।

अथ एकविंश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रजापतिः[१] (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८४९. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः॥ १॥

पदपाठः— आशुः शिशानः वृषभः न भीमः घनाघनः क्षोभणः चर्षणीनाम् संक्रन्दनः सम् क्रन्दनः अनिमिषः अ निमिषः एकवीरः एक वीरः शतम् सेनाः अजयत् साकम् इन्द्रः॥ १॥

अन्वयः—इन्द्रः आशुः शिशानः वृषभः-न भीमः चर्षणीनां घनाघनः अनिमिषः संक्रन्दनः एकवीरः शतं सेनाः साकम्-अजयत्॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (आशुः शिशानः) व्यापक सुखदाता[२] (वृषभः-न भीमः) दुष्टों—नास्तिकों के प्रति साण्ड के समान भयङ्कर (चर्षणीनां घनाघनः) ज्ञानी उपासकों का अत्यन्त प्रेरक है (अनिमिषः संक्रन्दनः) निरन्तर सम्यक् अपनी ओर आमन्त्रित करने वाला (एकवीरः) स्वपराक्रम में अकेला (शतं सेनाः साकम्-अजयत्) उपासक आत्मा के बान्धने वाली सैंकड़ों कामादि वासनाओं को जीतने—नष्ट करने वाला है॥

१८५०. सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥ २॥

पदपाठः— संक्रन्दनेन सम् क्रन्दनेन अनिमिषेण अ निमिषेण जिष्णुना युत्कारेण युत् कारेण दुश्च्यवनेन दुः च्यवनेन धृष्णुना तत् इन्द्रेण जयत तत् सहध्वम् युधः नरः इषुहस्तेन इषु हस्तेन वृष्णा॥ २॥

१. सायणः। २. "शिशुः शिशीतेर्दानकर्मणः" [निरु० १०.३९]।

अन्वयः—अनिमिषेण संक्रन्दनेन युत्कारेण जिष्णुना दुश्च्यवनेन धृष्णुना इन्द्रेण इषुहस्तेन वृष्णा तत्-जयत तत्सहध्वम् ॥

पदार्थः—(अनिमिषेण संक्रन्दनेन) उपासक को निरन्तर आमन्त्रण करने वाले (युत्कारेण जिष्णुना) काम आदि से युद्ध करने वाले जयशील—(दुश्च्यवनेन धृष्णुना) अजेय धर्षणशील (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के साथ (इषुहस्तेन वृष्णा) वरण हाथों वाले जैसे सुखवर्षक के साथ (तत्-जयत) उस काम को जीतो (तत्सहध्वम्) उसे अभिभूत करो—दबाओ—नष्ट करो ॥ २ ॥

१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सं सृष्टा स युध इन्द्रो गणेन। सं सृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥

पदपाठः— **सः इषुहस्तैः इषु हस्तैः सः निषङ्गिभिः नि सङ्गिभिः वशी सꣳस्रष्टा सम् स्रष्टा सः युधः इन्द्रः गणेन सꣳसृष्टजित् सꣳसृष्ट जित् सोमपाः सोम पाः बाहुशर्द्धी बाहु शर्द्धी उग्रधन्वा उग्र धन्वा प्रतिहिताभिः प्रति हिताभिः अस्ता ॥ ३ ॥**

अन्वयः—सः-इन्द्रः निषङ्गिभिः-इषु-हस्तैः-गणैः वशी सः-संस्रष्टा युधः संसृष्टजित् सोमपाः बाहुशर्धी उग्रधन्वा प्रतिहिताभिः-अस्ता ॥

पदार्थः—(सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा (निषङ्गिभिः-इषु-हस्तैः-गणैः) निरन्तर सङ्ग करने वाले प्राप्तव्य मोक्ष है हाथों में जैसे जिनके हैं ऐसे अभ्यास कर्मशील उपासकगणों के द्वारा (वशी) वश में आने वाला उनका स्नेही (सः-संस्रष्टा) वह उनसे सङ्गति प्राप्तकर्ता (युधः) काम आदि दोषों से युद्ध करने वाला—बुराइयों से समझौता न करने वाला (संसृष्टजित्) अपने साथ सङ्गत होने योग्य को जिताने वाला—सफल बनाने वाला (सोमपाः) उपासनारस का पानकर्ता—स्वीकारकर्ता (बाहुशर्धी) बाँधने—दोष निवारण करने वाला बल[१] जिसमें है ऐसा (उग्रधन्वा) पाप के लिये तीक्ष्ण ध्वंस शक्ति वाला (प्रतिहिताभिः-अस्ता) प्रेरणाओं द्वारा उपासक को ऊँचे मोक्ष में पहुँचाता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥ देवता—बृहस्पतिः (स्तुतिवाणी का रक्षक परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

---

१. "शर्द्धः-बलनाम" [निघं० २.९]।

१८५२. **बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥ १॥**

पदपाठः— **बृहः पते परि दीय रथेन रक्षोहा रक्षः हा अमित्रान् अ मित्रान् अपबाधमानः अप बाधमानः प्रभञ्जन् प्र भञ्जन् सेनाः प्रमृणः प्र मृणः युधा जयन् अस्माकम् एधि अविता रथानाम्॥ १॥**

अन्वयः—बृहस्पते रक्षोहा अमित्रान् बाधमानः रथेन परिदीय सेनाः प्रभञ्जन् युधा प्रमृणः जयन् अस्माकम् रथानाम् अविता एधि॥

पदार्थः—(बृहस्पते) हे स्तुतिवाणी के रक्षक—स्वीकारकर्ता परमात्मन्! तू (रक्षोहा) जिससे रक्षा करनी चाहिए ऐसे दोष का हननकर्ता (अमित्रान् बाधमानः) शत्रुओं को दूर करने वाला (रथेन परिदीय) अपने रमणीय स्वरूप से परिप्राप्त हो[1] (सेनाः प्रभञ्जन्) बान्धने वाली वासनाओं को नष्ट करता हुआ (युधा प्रमृणः) संघर्ष करने वालों को हिंसित कर (जयन्) जीतता हुआ (अस्माकम्) हमारे (रथानाम्) रमणीय भोगों का (अविता एधि) रक्षक हो॥ १॥

ऋषिः—प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥ देवता—बृहस्पतिः (स्तुतिवाणी का रक्षक परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८५३. **बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्॥ २॥**

पदपाठः— **बलविज्ञायः बल विज्ञायः स्थविरः स्थ विरः प्रवीरः प्र वीरः सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभि वीरः अभिसत्वा अभि सत्वा सहोजाः सहः जाः जैत्रम् इन्द्र रथम् आ तिष्ठ गोवित् गो वित्॥ २॥**

अन्वयः—इन्द्र बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभिसत्त्वा सहोजाः गोवित् जैत्रं रथम्-आतिष्ठ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (बलविज्ञायः) समस्त देवों को विशेष

---

१. "दीयति गतिकर्मा" [निघं० २.१४]।

जानने वाला[1] अतएव (स्थविरः) शाश्वतिक (प्रवीरः) प्रकृष्टरूप से प्रेरणाप्रद (सहस्वान्) ओजस्वी—ओजप्रद (वाजी) अमृतान्न वाला अमृतान्नप्रद[2] (सहमानः) सर्वसहनकर्ता—सर्वाधार (उग्रः) प्रतापी (अभिवीरः) सर्वोपरि राजमान (अभिसत्त्वा) सर्वव्यापक (सहोजाः) उपासकों में आत्मबल को प्रादुर्भूत करने वाला (गोवित्) स्तोता जनों को प्राप्त होने वाला (जैत्रं रथम्–आतिष्ठ) जितेन्द्रिय रमण करने वाले उपासक में आ विराज ॥ २ ॥

१८५४. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ३ ॥

पदपाठः— गोत्रभिदम् गोत्र भिदम् गोविदम् गो विदम् वज्रबाहुम् वज्र बाहुम् जयन्तम् अज्म प्रमृणन्तम् प्र मृणन्तम् ओजसा इमम् सजाताः स जाताः अनु वीरयध्वम् इन्द्रम् सखायः स खायः अनु सम् रभध्वम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—गोत्रभिदम् गोविदम् वज्रबाहुम् जयन्तम् ओजसा–अज्म प्रमृणन्तम् इमम्–इन्द्रम् अनु सजाताः सखायः वीरयध्वम् अनुसंरभध्वम् ॥

पदार्थः—(गोत्रभिदम्) स्तोता[3] उपासक के त्राण स्थान मोक्ष को खोलने वाले (गोविदम्) उपासकों को प्राप्त होने वाले—(वज्रबाहुम्) ओजरूप भुजा वाले[4] (जयन्तम्) स्वामित्व करते हुए (ओजसा–अज्म प्रमृणन्तम्) ओज से शीघ्रकारी विरोधी को नष्ट करते हुए—(इमम्–इन्द्रम्) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (अनु) आश्रय बना (सजाताः सखायः) समान प्रसिद्धि वाले समान ख्यान ज्ञान वाले—उपासको! तुम (वीरयध्वम्) अपना प्रेरक बनाओ (अनुसंरभध्वम्) अनुरूप उपासित करो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥

१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥

---

१. "बलं विश्वेदेवाः" [मै० ४.७.८]। २. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
३. "गौः–स्तोतृनाम" [निघं० ३.१६]। ४. "वज्रो वा ओजः" [श० ८.४.१.२७]।

पदपाठः— **अभि गोत्राणि सहसा गाहमानः अदयः अ दयः वीरः शतमन्युः शत मन्युः इन्द्रः दुश्च्यवनः दुः च्यवनः पृतनाषाट् अयुध्यः अ युध्यः अस्माकम् सेनाः अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्द्रः गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः अदयः-वीरः शतमन्युः दुश्च्यवनः पृतनाषाट् अयुध्यः अस्माकं सेनाः युत्सु अवतु ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमात्मा (गोत्राणि) स्तोता के त्राण स्थानों को (सहसा) अपने ओज से (अभिगाहमानः) अभिव्याप्त हुआ (अदयः-वीरः शतमन्युः) अन्य की दया उपेक्षित न करता हुआ स्वयं समर्थ वीर बहुत दीप्तिमान[1] (दुश्च्यवनः) अबाध्यः (पृतनाषाट्) विरोधी भावनाओं को दबाने वाला (अयुध्यः) किसी से युद्ध करने—हराने योग्य नहीं पूर्ण शक्तिमान् (अस्माकं सेनाः) हमारी सद्‌गुण प्रवृत्तियों—हमारे साथ सम्बद्ध सद्भावनाओं को (युत्सु) संघर्षों में (अवतु) वह सुरक्षित रखे ॥ १ ॥

१८५६. **इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥**

पदपाठः—इन्द्रः आसाम् नेता बृहः पतिः दक्षिणा यज्ञः पुरः एतु सोमः देवसेनानाम् देव सेनानाम् अभिभञ्जतीनाम् अभि भञ्जतीनाम् जयन्तीनाम् मरुतः यन्तु अग्रम् ॥ २ ॥

अन्वयः—आसां देवसेनानाम् अभि भञ्जतीनां जयन्तीनाम् नेता इन्द्रः बृहस्पतिः दक्षिणा यज्ञः सोमः पुरः-एतु मरुतः-अग्रे यन्तु ॥

पदार्थः—(आसां देवसेनानाम्) इन हम मुमुक्षु की सद्‌गुण गरिमाओं (अभि भञ्जतीनां जयन्तीनाम्) कामादि शत्रुओं का अभिभञ्जन करने वाली जय पाने वाली हैं, उनका (नेता) नायक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) सर्वज्ञ (दक्षिणा यज्ञः) उत्साहक प्रवृत्ति के साथ सङ्गमनीय (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (पुरः-एतु) आगे हो—है, (मरुतः-अग्रे यन्तु) वासनाओं को मार देने वाली परमात्मा की स्तुतियों से प्राप्त ओज आदि गुण आगे हो ॥ २ ॥

१८५७. **इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥**

---

१. ''मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः'' [निरु० १०.२९]।

पदपाठः— इन्द्रस्य वृष्णः वरुणस्य राज्ञः आदित्यानाम् आ दित्यानाम् मरुताम् शर्द्धः उग्रम् महामनसाम् महा मनसाम् भुवनच्यवानाम् भुवन च्यवानाम् घोषः देवानाम् जयताम् उत् अस्थात्॥ ३ ॥

अन्वयः—इन्द्रस्य राज्ञः-वृष्णः आदित्यानाम् मरुताम् उग्रः शर्द्धः महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानाम् घोषः-उदस्थात्॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्—(राज्ञः-वृष्णः) राजमान सुखवर्षक (आदित्यानाम्) अदिति—अखण्डसुखसम्मत्ति मुक्ति के स्वामी—(मरुताम्) वासनाओं को मार देने वाले—परमात्मा का (उग्रः शर्द्धः) तीव्र प्रभावकारी बल[1] है (महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानाम्) महामना—महान् ज्ञानी—सर्वज्ञ लोकों को गति देने वाले, अभिमत करने, स्वाधीन रखने वाले दीप्यमान परमात्मा का (घोषः-उदस्थात्) आशीर्वादवचन ऊपर है॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥

१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥ १ ॥

पदपाठः— उत् हर्षय मघवन् आयुधानि उत् सत्वानाम् मामकानाम् मनांᳬसि उत् वृत्रहन् वृत्र हन् वाजिनाम् वाजिनानि उत् रथानाम् जयताम् यन्तु घोषाः॥ १ ॥

अन्वयः—वृत्रहन् मघवन् आयुधानि-उद्-हर्षय मामकानां सत्त्वानां मनांसि-उद् वाजिनां वाजिनानिउद् जयतां रथानां घोषाः-उद्यन्तु॥

पदार्थः—(वृत्रहन् मघवन्) हे पापनाशक ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (आयुधानि-उद्-हर्षय) आयु धारण कराने वाले चरित्रों को हमारे अन्दर उच्चरूप से विकसित कर (मामकानां सत्त्वानां मनांसि-उद्) मेरे से सम्बद्धजनों के भी मनों को उच्चरूप से विकसित कर, कल्याण सङ्कल्प वाले बना (वाजिनां वाजिनानिउद्) हम अमृत अन्नभोगी उपासकों के[2] वाग्ज्ञेयों—ज्ञानों[3] को उच्चरूप से विकसित

---

१. "शर्द्धः-बलनाम" [निघं० २.९]।
२. "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २.१९३]।
३. "वाजिनेषु वाग्ज्ञेयेषु" [निरु० १.२०]।

कर—उन्नत कर (जयतां रथानां घोषाः-उद्यन्तु) कामादि पर जय पाने वाले, परमात्मा में रमण करने वालों के मानसिक जय और सङ्कल्प उन्नत हों॥ १॥

१८५९. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु॥ २॥

पदपाठः— अस्माकम् इन्द्रः समृतेषु सम् ऋतेषु ध्वजेषु अस्माकम् याः इषवः ताः जयन्तु अस्माकम् वीराः उत्तरे भवन्तु अस्मान् उ देवाः अवत हवेषु॥ २॥

अन्वयः—इन्द्रः अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु याः-इषवः जयन्तु अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु देवाः-हवेषु-अस्मान्-अवतः॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमात्मा (अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु) हमारे समुद्यत प्रज्ञान[१]— (याः-इषवः) जो सदिच्छाएँ हैं (जयन्तु) वे समर्थ हों (अस्माकं वीराः) हमारे वीर—प्राण[२] (उत्तरे भवन्तु) उत्कृष्ट हों (देवाः-हवेषु-अस्मान्-अवतः) विद्वान् आमन्त्रणों में हमारी रक्षा करो॥ २॥

१८६०. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात्॥ ३॥

पदपाठः— असौ या सेना मरुतः परेषाम् अभ्येति अभि एति नः ओजसा स्पर्द्धमानाः ताम् गूहत तमसा अपव्रतेन अप व्रतेन यथा एतेषाम् अन्यः अन् यः अन्यम् अन् यम् न जानान्॥ ३॥

अन्वयः—मरुतः परेषां या-असौ सेना नः-अभि-ओजसा स्पर्द्धमाना एति ताम् अपव्रतेन तमसा गूहत यथा एषाम् अन्यः-अन्यं न जानात्॥

पदार्थः—(मरुतः) हे पापमारक ओज वीर्य साहस गुणों[३] (परेषां या-असौ सेना) उपासकजनों से भिन्न नास्तिक दुष्टजनों की जो वह सेना—इन्हें बान्धने वाली काम आदि प्रवृत्तियाँ (नः-अभि-ओजसा स्पर्द्धमाना एति) हमारे अन्दर भी

---

१. प्रथमायां सप्तमी व्यत्ययेन।

२. ''प्राणा वै दश वीराः'' [श० ९.९.१०.२]।

३. ''ओजो वै वीर्यं मरुतः'' [जै० ३.३०९]।

स्पर्द्धा से वेग से आती हैं तो (ताम्) उसे (अपव्रतेन तमसा) निष्कर्म—निष्फल-निर्बल कर देने वाले कांक्षाभाव[1] सङ्कल्प से (गूहत) लुप्त कर दो (यथा) जिसे (एषाम्) इनमें से (अन्यः-अन्यं न जानात्) एक दूसरे को न जान सके परस्पर बल पाकर न उभर सके॥ ३॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)॥ देवता—अप्वा (भीति[2] भयप्रद परमात्मशक्ति)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८६१. **अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्॥ १॥**

पदपाठः— **अमीषाम् चित्तम् प्रतिलोभयन्ती प्रति लोभयन्ती गृहाण अङ्गानि अप्वे परा इहि अभि प्र इहि निः दह हृत्सु शोकैः अन्धेन अमित्राः अ मित्राः तमसा सचन्ताम्॥ १॥**

अन्वयः—अप्वे अमीषां चित्तम् प्रति लोभयन्ती परेहि अङ्गानि गृहाण अभिप्रेहि शोकैः-हृत्सु निर्दह अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम्॥

पदार्थः—(अप्वे) हे भयप्रद परमात्मशक्ति! तू (अमीषां चित्तम्) उन काम आदि शत्रुओं के चित्त को[3]—क्रियाशक्ति को (प्रति लोभयन्ती परेहि) घबराहट देती हुई जा (अङ्गानि गृहाण) उनके अवयवों—पूर्वरूपों को पकड़ (अभिप्रेहि) सामने जा (शोकैः-हृत्सु निर्दह) सन्तापों से हृदयों में—हृदयों को भस्म कर (अमित्राः) काम आदि शत्रु (अन्धेन तमसा) घने अन्धकार से (सचन्ताम्) युक्त हो जावे॥ १॥

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१८६२. **प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥ २॥**

पदपाठः— **प्र इत् जयत नरः इन्द्रः वः शर्म्म यच्छतु उग्राः वः सन्तु बाहवः अनाधृष्याः अन् आधृष्याः यथा असथ॥ २॥**

---

१. "तमु कांक्षायाम्" [दिवादि०]।

२. "अप्वा व्याधिर्वा भयं वा" [निरु० ६.१२]।

३. जडेषु चेतनवद् व्यवहार आलङ्कारिकः कूलं पिपतिषति—इतिवत्।

अन्वयः—नरः प्रेत जयत इन्द्रः वः शर्म यच्छतु वः बाहवः-उग्राः अनाधृष्याः यथा-असथ ॥

पदार्थः—(नरः) हे मुमुक्षुजनो![1] (प्रेत) प्रगति करो (जयत) कामादि को जीतो (इन्द्रः) परमात्मा (वः) तुम्हारे लिये (शर्म यच्छतु) सुख को प्रदान करे (वः) तुम्हारे (बाहवः-उग्राः) पाप के बाधक बल प्रबल हों, तथा (अनाधृष्याः) अबाध्य (यथा-असथ) जिससे तुम योग्य जीवन्मुक्त हो जाओ ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्, भारद्वाजः पायुर्वा (पूर्ववत्, या भरद्वाज से सम्बद्ध आत्मरक्षा कुशल उपासक)॥ देवता—इषुः (एषणा सङ्कल्पशक्तिः)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८६३. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥ ३ ॥

पदपाठः— अव सृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ब्रह्म सꣳशिते गच्छ अमित्रान् अ मित्रान् प्र पद्यस्व मा अमीषाम् कम् च न उत् शिषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—ब्रह्मसंशिते शरव्ये अवसृष्टा परापत अमित्रान् गच्छ प्रपद्यस्व अमीषां कञ्चन मा-उच्छिषः ॥

पदार्थः—(ब्रह्मसंशिते शरव्ये) हे मन्त्र विचार से सिद्ध कामादि के हिंसन करने में समर्थ सङ्कल्पशक्ति! तू (अवसृष्टा) छोड़ी हुई—प्रयुक्त की हुई (परापत) दूर दूर तक जा (अमित्रान् गच्छ) काम आदि शत्रुओं को प्राप्त हो (प्रपद्यस्व) उन्हें दबा दे (अमीषां कञ्चन मा-उच्छिषः) उन काम आदि में से किसी को मत रहने दे ॥ ३ ॥

षष्ठ तृच

ऋषिः—पूर्ववत्, भारद्वाजः पायुर्वा (पूर्ववत्, या भरद्वाज से सम्बद्ध आत्मरक्षा कुशल उपासक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८६४. कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना। मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान्॥ १ ॥

पदपाठः—कङ्काः सुपर्णाः सु पर्णाः अनु यन्तु एनान् गृध्राणाम् अन्नम् असौ अस्तु सेना मा एषाम् मोचि अघवहारः अघव हारः च न इन्द्र वयाꣳसि एनान् अनुसंयन्तु अनु संयन्तु सर्वान्॥ १ ॥

---

१. "नरो ह वै देवविशः" [जै० १.९३]।

अन्वयः—एनान् सुपर्णाः कङ्काः अनु-यन्तु असौ सेना-गृध्राणाम्-अन्नम्-अस्तु अघहारः-च इन्द्र न-एषां मा मोचि एतान् सर्वान् वयांसि-अनु संयन्तु ॥

पदार्थः—(एनान्) इन काम आदि शत्रुओं को (सुपर्णाः कङ्काः) सुन्दर पालन करने वाले परमात्मा के प्रति सङ्कल्प विकल्प[1] (अनु-यन्तु) प्राप्त हो (असौ सेना-गृध्राणाम्-अन्नम्-अस्तु) वह कामादि सेनाक्रम—प्रवृत्ति परमात्मा की कांक्षा रखने वाले सङ्कल्पों का भोजन—खादरूप हो जावे (अघहारः-च) और पाप को खा जाने वाला शिवसङ्कल्प (इन्द्र न-एषां मा मोचि) हे परमात्मन्! सम्प्रति इनमें से किसी को मत छोड़ (एतान् सर्वान्) इन सब को (वयांसि-अनु संयन्तु) प्राण[2] इन्हें सम्प्राप्त हो ॥ १ ॥

१८६५. अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि। उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

पदपाठः— अमित्रसेनाम् अमित्र सेनाम् मघवन् अस्मान् शत्रूयतीम् अभि उभौ ताम् इन्द्र वृत्रहन् वृत्र हन् अग्निः च दहतम् प्रति ॥ २ ॥

अन्वयः—मघवन्-इन्द्र-अग्निः-च उभौ अस्मान्-अभि तां शत्रुयतीम्-अमित्रसेनाम् प्रति दहतम् ॥

पदार्थः—(मघवन्-इन्द्र-अग्निः-च) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तथा ज्ञानप्रकाश-स्वरूप परमात्मन् (उभौ) दोनों रूपों वाले तू (अस्मान्-अभि) हमारे प्रति (तां शत्रुयतीम्-अमित्रसेनाम्) उस शत्रुभाव को प्राप्त हुई काम आदि शत्रु सेना को (प्रति दहतम्) प्रति दग्ध कर—सर्वथा भस्म कर—नष्ट कर ॥ २ ॥

१८६६. यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाइव। तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥

पदपाठः—यत्र बाणाः सम्पतन्ति सम् पतन्ति कुमाराः विशिखाः वि शिखाः इव तत्र नः ब्रह्मणः पतिः अदितिः अ दितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥

अन्वयः—यत्र बाणाः कुमाराः-विशिखाः-इव सम्पतन्ति तत्र ब्रह्मणः-पतिः-अदितिः नः-शर्म यच्छतु ॥

पदार्थः—(यत्र) जिस अवसर पर (बाणाः) कामबाण—काम आदि दोषों

---

१. ''ककि लौल्यै'' [भ्वादि०]।

२. ''प्राणो वै वयः'' [ऐ० १.२.८]।

का बाण—प्रहारक प्रभाव (कुमाराः-विशिखाः-इव) कुत्सित मार करने वाले धूमरहित ज्वालाओं के समान (सम्पतन्ति) प्रहार कर रहे हैं (तत्र) उस अवसर पर (ब्रह्मणः-पतिः-अदितिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी अविनाशी समस्त देवों की माता निर्माता परमात्मा (नः-शर्म यच्छतु) हमारे लिये सुख शरण दे॥ ३॥

सप्तम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः शासः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाले से[1] सम्बद्ध अध्यात्म शिक्षक)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

१८६७. **वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥ १॥**

पदपाठः— **वि रक्षः वि मृधः जहि वि वृत्रस्य हनूइति रुज वि मन्युम् इन्द्र वृत्रहन् वृत्र हन् अमित्रस्य अ मित्रस्य अभिदासतः अभि दासतः॥ १॥**

अन्वयः—वृत्रहन्-इन्द्र रक्षः-वि-जहि मृधः-वि वृत्रस्य हनू विरुज अभिदासतः-अमित्रस्य मन्युं वि॥

पदार्थः—(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापनाशक परमात्मन्! तू (रक्षः-वि-जहि) जिससे अपनी रक्षा करनी चाहिए उस काम आदि को विशेषरूप से नष्ट कर (मृधः-वि) दूसरे के प्रति होने वाले हमारे अन्दर संग्रामभावों हिंसाभावों को[2] नष्ट कर (वृत्रस्य हनू विरुज) पाप[3] के हनन साधनों लोभ और मोह को विनष्ट कर (अभिदासतः-अमित्रस्य मन्युं वि) हमें अभिक्षीण करते हुए शत्रुरूप द्वेष को विनष्ट कर॥ १॥

१८६८. **वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः॥ २॥**

पदपाठः— **वि नः इन्द्र मृधः जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः योअस्मांऽअभिदासति अधरम् गमय तमः॥ २॥**

अन्वयः—इन्द्र नः किम् मृधः-वि जहि पृतन्यतः-नीचा यच्छ यः-अस्मान्-अभिदासति अधरं तमः-गमय॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (नः) हमारे प्रति (किम्) कैसे भी (मृधः-

---

१. "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघं० १.१७]।

२. "मृधः संग्रामनाम" [निघं० २.१७]।

३. "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११.८.५.७]।

वि जहि) हिंसक दुर्भावनाओं को विनष्ट कर (पृतन्यतः-नीचा यच्छ) हमारे प्रति संघर्ष करने वाले विचारों को नीचे पहुँचा दे (यः-अस्मान्-अभिदासति) जो दोष हमें अभिक्षीण करता है, उसे (अधरं तमः-गमय) नीचे गहरे अन्धकार में पहुँचा दे॥ २॥

छन्दः—विराट् जगती॥

१८६९. **इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ। तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत्॥ ३॥**

पदपाठः— **इन्द्रस्य बाहूइति स्थवीरौ स्थ वीरौ युवानौ अनाधृष्यौ अन् आधृष्यौ सुप्रतीकौ सु प्रतीकौ असह्यौ अ सह्यौ तौ युञ्जीत प्रथमौ योगे आगते आ गते याभ्याम् जितम् असुराणाम् अ सुराणाम् सहः महत्॥ ३॥**

अन्वयः—इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानौ अनाधृष्यौ सुप्रतीके असह्यौ तौ प्रथमौ युञ्जीत आगते योगे याभ्याम् असुराणां महत् सहः-जितम्॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) परमात्मा के (बाहू) काम आदि को बाँधने वाले ज्ञान और आनन्द गुण (स्थविरौ) स्थिर (युवानौ) जरारहित बलवान् (अनाधृष्यौ) न दबाए जाने वाले (सुप्रतीके) सुस्पष्ट (असह्यौ) न सह सकने योग्य (तौ प्रथमौ युञ्जीत) हे उपासको! उन प्रमुखों से युक्त होओ (आगते योगे) प्राप्त अवसर या योग प्राप्त होने के निमित्त (याभ्याम्) जिनके द्वारा (असुराणां महत् सहः-जितम्) अनृतों—अनर्थों पापों के महान् बल को जीता है—जीता जाता है॥ ३॥

अष्टम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः शासः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाले से सम्बद्ध अध्यात्म शिक्षक)॥ देवता—लिङ्गोक्ताः (मन्त्र के पढ़े नामपद—सोम शान्तस्वरूप वरणकर्ता परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८७०. **मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥ १॥**

पदपाठः— **मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमः त्वा राजा अमृतेन अ मृतेन अनु वस्ताम् उरोः वरीयः वरुणः ते कृणोतु जयन्तम् त्वा अनु देवाः मदन्तु॥ १॥**

अन्वयः—ते मर्माणि वर्मणा छादयामि सोमः-राजा त्वा-अमृतेन-अनुवस्ताम् वरुणः ते उरो वरीयः त्वा जयन्तं देवाः-अनु मदन्तु॥

पदार्थः—(ते मर्माणि वर्मणा छादयामि) हे काम आदि के बाधक सत्यसङ्कल्पीजन! तेरे निर्बल प्रसङ्गों को वरणीय परमात्मदर्शन से सुरक्षित रखता हूँ (सोमः-राजा त्वा-अमृतेन-अनुवस्ताम्) राजमान शान्त परमात्मा तुझे अमृत ज्ञान प्रकाश से अनुरक्षित रखे (वरुणः) वरणकर्ता परमात्मा (ते) तेरे लिये (उरो वरीयः) हृदय के महान् अभीष्ट को करे (त्वा जयन्तं देवाः-अनु मदन्तु) तुझ जय करते हुए के साथ परमात्मदेव हर्षित करे॥ १॥

१८७१. अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहयइव। तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥ २॥

पदपाठः— अन्धाः अमित्राः अ मित्राः भवत अशीर्षाणः अ शीर्षाणः अहयः इव तेषाम् वः अग्निनुन्नानाम् अग्नि नुन्नानाम् इन्द्र हन्तु वरं वरम् वरम् वरम्॥ २॥

अन्वयः—अमित्राः अशीर्षाणः-अन्धाः-अहयः-इव भवत तेषां वः-अग्निनुन्नानाम् इन्द्रः-वरं वरं हन्तु॥

पदार्थः—(अमित्राः) हे काम आदि शत्रुओ! तुम (अशीर्षाणः-अन्धाः-अहयः-इव भवत) छिन्न शिर वाले या फण रहित अन्धे सर्पों के समान हो जाओ (तेषां वः-अग्निनुन्नानाम्) उन तुम्हारे ज्ञानाग्नि से पछाड़े—दबाए हुओं से (इन्द्रः-वरं वरं हन्तु) परमात्मा बड़े बड़े दोष को नष्ट करे—करता है॥ २॥

१८७२. यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति। देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम्॥ ३॥

पदपाठः— यः नः स्वः अरणः यः च निष्ट्यः जिघांसति देवाः तम् सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म मम अन्तरम् शर्म वर्म मम अन्तरम्॥ ३॥

अन्वयः—यः स्वः अरणः च यः निष्ट्यः नः-जिघांसति सर्वे देवाः धूर्वन्तु ममान्तरम् ब्रह्मवर्म शर्म वर्म मम-अन्तरम्॥

पदार्थः—(यः) जो दोष (स्वः) अपने अन्दर रहनेवाला (अरणः) परसम्बन्धी (च) और (यः) जो (निष्ट्यः) गुप्त—अज्ञात—होने वाला (नः-जिघांसति) हमें मारना चाहता है (सर्वे देवाः) सारे देव—देवों का देव (धूर्वन्तु) नष्ट करे (ममान्तरम् ब्रह्म वर्म) मेरे अन्दर विराजमान ब्रह्म—महान् परमात्मा तथा रक्षक परमात्मा नष्ट करे (शर्म वर्म मम-अन्तरम्) सुखस्वरूप रक्षक परमात्मा नष्ट कर दे॥ ३॥

नवम तृच

ऋषिः—ऐन्द्रो जयः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा का उपासक इन्द्रियजयशील)॥ देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥

१८७३. **मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥ १ ॥**

पदपाठः— **मृगः न भीमः कुचरः गिरिष्ठाः गिरि स्थाः परावतः आ जगन्थ परस्याः सृकम् सꣳशाय सम् शाय पविम् इन्द्र तिग्मम् वि शत्रून् ताढि वि मृधः नुदस्व॥ १ ॥**

अन्वयः—इन्द्र गिरिष्ठाः-मृगः-न कुचरः परावतः परस्याः-आजगन्थ सृकं तिग्मं पविं संशाय शत्रून् विताढि मृधः-विनुदस्व॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (गिरिष्ठाः-मृगः-न कुचरः) पर्वतीय सिंह के समान भयङ्कर दुष्प्रवृत्तियों के लिये है, कहाँ तू विचरता विभुगतिमान् है (परावतः परस्याः-आजगन्थ) दूर देश दूर दिशा होने पर भी प्राप्त होता है (सृकं तिग्मं पविं संशाय) मरणशील तीक्ष्ण वाग्वज्र[1] ज्ञान प्रवृत्ति को प्रखर करके (शत्रून् विताढि) काम शत्रुओं को ताड़न कर—नष्ट कर (मृधः-विनुदस्व) हिंसक प्रवृत्तियों को विच्छिन्न कर॥ १ ॥

ऋषिः—राहुगणः-गोतमः (दोषरहित स्तुति वाले से सम्बद्ध परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)॥ देवता—विश्वेदेवाः (समस्त देवों के गुणों से युक्त परमात्मा)॥

१८७४. **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ २ ॥**

पदपाठः— **भद्रम् कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रम् पश्येम अक्षभिः अ क्षभिः यजत्राः स्थिरैः अङ्गैः तुष्टुꣳसः तु स्तुवाꣳसः तनूभिः वि अशेमहि देवहितम् देव हितम् यत् आयुः॥ २ ॥**

अन्वयः—यजत्राः-देवाः कर्णेभिः-भद्रं शृणुयाम अक्षभिः-भद्रं पश्येम स्थिरैः-अङ्गैः-तुष्टुवांसः देवहितं यत्-आयुः तनूभिः व्यशेमहि॥

पदार्थः—(यजत्राः-देवाः) हे सङ्गमनीय सर्वदेव धर्म वाले परमात्मदेव

(कर्णेभिः-भद्रं शृणुयाम) हम कानों से शुभ श्रवण करें (अक्षभिः-भद्रं पश्येम) आँखों से शुभ दर्शन करें (स्थिरैः-अङ्गैः-तुष्टुवांसः) दृढ़—शक्त मन वाणी आदि साधनों से तेरी स्तुति करते हुए (देवहितं यत्-आयुः) तुझ देव द्वारा निर्दिष्ट जो आयु है सौ वर्ष या उससे भी आगे—अधिक से अधिक है[२] उसे (तनूभिः व्यशेमहि) शरीराङ्गों से विशेष सेवन करें—प्राप्त करें॥ २॥

ऋषिः—गोतमो राहूगणः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—विराट्॥

१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।
[स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु][३] ॥ ३॥

पदपाठः— स्वस्ति सु अस्ति नः इन्द्रः वृद्धश्रवाः वृद्ध श्रवाः
स्वस्ति सु अस्ति नः पूषा विश्ववेदाः विश्व वेदाः
स्वस्ति सु अस्ति नः तार्क्ष्यः अरिष्टनेमिः अरिष्ट नेमि
स्वस्ति सु अस्ति नः बृहः पतिः दधातु ओम्
स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु॥ ३॥

अन्वयः—वृद्धश्रवाः-इन्द्रः-नः स्वस्ति विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति अरिष्टनेमिः-तार्क्ष्यः-नः स्वस्ति बृहस्पतिः-नः स्वस्ति दधातु॥

पदार्थः—(वृद्धश्रवाः-इन्द्रः-नः स्वस्ति) प्रवृद्ध—महान् यश जिसका है[४] ऐसा परमात्मा हमारे लिये कल्याणरूप हो (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सबको जानने वाला सर्वज्ञ पोषणकर्ता प्रजास्वामी[५] हमारे लिये कल्याणरूप हो (अरिष्टनेमिः-तार्क्ष्यः-नः स्वस्ति) दुष्ट प्रवृत्तियों को ताडने में अहिंसित—अकुण्ठित वज्र दण्डरूप शक्ति[६] जिसकी है ऐसा तुरन्त कल्याण कार्य सम्पादक व्यापनशील[६] परमात्मा हमारे लिये कल्याणरूप हो (बृहस्पतिः-नः स्वस्ति दधातु) महान् ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा हमारे लिये, कल्याण को धारण करे—प्रदान करे॥ ३॥

सामवेद-आध्यात्मिकमुनिभाष्य एकविंशअध्यायः समाप्तः

पूर्ण सामवेदभाष्य समाप्त

---

१. "पविः-वाङ्नाम" [निघं० १.११]।
२. "जीवेम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्"।
३. कोष्ठान्तर्गत पाठः साम सम्प्रदायिनां स्यात् काल्पनिकः। क्वचिद्वर्ततेऽपि न।
४. "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११.९], "यस्य नाम महद्यशः" [यजु० ३२.३]।
५. "पूषा विशां विट्पतिः" [तै० २.९.४.७]।
६. "नेमिः-वज्रनाम" [निघं० ३.२०], "तार्क्ष्यः-तूर्णमर्थं रक्षति अश्नोतेर्वा" [निरु० १०.२६]।

अष्टाध्यायी मूल	रु०	५
उपदेश-मञ्जरी (पूना प्रवचन)	रु०	२०
वैदिक सूक्तिसुमन	रु०	२५
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अजिल्द)	रु०	४०
संस्कारविधि (सजिल्द)	रु०	४०
प्राणायाम-चिकित्सा	रु०	२०
ईशादि दशोपनिषद् (मूल)	रु०	१०
आर्याभिविनय बड़ा आकार (सजिल्द)	रु०	१०
ऋग्वेद के प्रथम बाईस मन्त्रो का भाष्य	रु०	५
विवाहपद्धति	रु०	१०
महर्षि दयानन्द आत्मकथा	रु०	१५
दयानन्द ग्रन्थमाला द्वितीय खण्ड	रु०	१००
आर्य धर्मेन्द्र जीवन (सजिल्द)	रु०	१००
दयानन्द निर्वाण-शती स्मृति ग्रन्थ	रु०	१००
वेदार्थविमर्शः	रु०	२५
अनुभ्रमोच्छेदन	रु०	३
भ्रान्तिनिवारण	रु०	२
वेदविरुद्धमतखण्डन	रु०	१०
आर्योद्देश्यरत्नमाला (हिन्दी)	रु०	२
गोकरुणानिधि	रु०	३
अष्टाध्यायी-भाष्य भाग १, २ और ३	रु०	३५०
वैदिक कोष (निघण्टु मणिमाला)	रु०	२५

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीति-पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये । और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।